Saraswati : 1935-II

सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका

भाग ३६, खराड २

जुलाई-दिसम्बर

१९३५

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल

श्रीनाथसिंह

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

वार्षिक मूल्य साढ़े छः रुपये

Contributed by: Prabhat Kumar

लेख-सूची

चित्र-सूची

रङ्गीन चित्र

सादे-चित्र

जुलाई १९३५
आषाढ़ १९९२

सरस्वती

सम्पादक
देवीदत्त शुक्ल, श्रीनाथसिंह

भाग ३६ खंड २
संख्या १ पूर्ण संख्या ४२७

योरप—जैसा कि मैंने उसे देखा

१—जहाज़ पर

गताङ्क में पाठकों ने पढ़ा होगा कि हमारे प्रेस के जेनरल मैनेजर श्रीयुत हरिकेशव घोष योरप गये हैं। इनकी इस यात्रा का एक उद्देश 'सरस्वती' को हिन्दी की प्रतिनिधि और सुव्यवस्थित पत्रिका बनाना भी है जैसा कि इस लेख से विदित होगा। इस यात्रा के सम्बन्ध में आप 'सरस्वती' के लिए एक लेख-माला लिख रहे हैं। उसका यह पहला लेख है।

लेखक
श्रीयुत हरिकेशव घोष



[यो]रप की यह मेरी पहली यात्रा है। गत पन्द्रह वर्षों [में] मुझे छुट्टी मनाने का अवसर [बि]लकुल नहीं मिला। पिछले वर्ष मैं छुट्टी का आनन्द लेने एवं [व्य]वसाय और आनन्द को एक [में] मिलाने की बात सोच रहा था। [गत] नवम्बर मास में यह अवसर [मिल]ा जब कि एक प्रमुख जर्मन-[विक्रे]ता ने मुझे एक 'रोटरी प्रिंटिंग [मशी]न' देने को कहा। मुझे एक [इस] प्रकार की मशीन मँगानी थी ताकि बहुत [बड़े] पैमाने पर पुस्तकें विशेषकर मासिक पत्रिकायें [छाप]ने में सुविधा हो। हमारी 'सरस्वती' दिन प्रति-दिन लोकप्रिय होती जा रही थी और मैं मित्रों और पाठकों का कृतज्ञ हूँ कि हमें अब इसे बहुत बड़े पैमाने में छापने की आवश्यकता प्रतीत हुई है। यह स्पष्ट था कि यदि हम अपने पाठकों को अधिक पाठ्य-सामग्री, अधिक चित्र दे सकें और वार्षिक मूल्य में कुछ कमी कर दें तो इस पत्रिका को इँग्लेंड या योरप की सुव्यवस्थित पत्रिकाओं के समकक्ष ला सकेंगे। दुःख की बात है कि यद्यपि भारतवर्ष की सम्पूर्ण जन-संख्या का दो-तिहाई भाग हिन्दी-भाषी है, तथापि अभी तक ऐसी कोई पत्रिका नहीं है

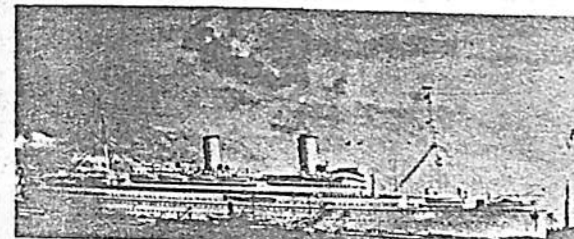
जो वास्तव में हिन्दी की प्रतिनिधि पत्रिका कही जाय। हिन्दी-पत्रिकाओं की ग्राहक-संख्या अत्यन्त कम है, कदाचित् ही किसी की ६००० से अधिक हो। ऐसी दशा में शीघ्र से शीघ्र एक ऐसी पत्रिका की आवश्यकता है जिसके द्वारा मध्यवर्ग के ऊँचे और नीचे दर्जे के लोगों में हिन्दी-साहित्य के प्रचार का उद्देश सिद्ध हो सके। मैंने सोचा कि यदि अमरीकन ढंग पर पत्रिका निकाली जाय, जहाँ कि मूल्य बहुत कम रक्खा जाता है, क़रीब क़रीब उसका आधा जो कि हम भारतवर्ष में देते हैं, तो हम हिन्दी-भाषी जनता के एक बड़े भाग तक पहुँच सकेंगे। अभी हम वैसा नहीं कर सकते, क्योंकि प्रकाशन की वर्तमान पद्धति अधिक व्यय-साध्य है।

इस प्रकार अपनी पत्रिका और स्टैंडर्ड साहित्य को बहुत बड़े पैमाने पर छापने की आवश्यकता से प्रेरित होकर मैंने रोटरी प्रिंटिंग मशीन का आर्डर दिया। योरप जाने और वहाँ प्रचलित विभिन्न कार्य-प्रणालियों के देखने का इसे मैंने अच्छा अवसर समझा। २३ मई से पहले मैं नहीं रवाना हो सका, यद्यपि इसमें सन्देह था कि समुद्र शान्त मिलेगा। मुझे समुद्र-यात्रा, समुद्री-बीमारी और उनसे सम्बन्ध रखनेवाली समस्त परेशानियों का सदैव बड़ा भय रहा है। परन्तु मैं अपनी इच्छा के अनुसार कार्य नहीं कर सकता था, क्योंकि मुझे प्रेस और अपनी शूगर कम्पनी के बहुत-से महत्त्वपूर्ण मामलों को साफ़ करना था। मेरे बहुत-से मित्रों ने १० मई को रवाना होने की सलाह दी, परन्तु मैं वैसा नहीं कर सका। कभी कभी मुझे बड़ी निराशा होती थी, क्योंकि यात्रा से पूर्व मुझे जो कार्य करने बाक़ी थे उनका अन्त ही न मिलता था। ख़ैर, मैंने यथासम्भव उन्हें समाप्त किया और 'एस० एस० कोन्टेरेसो' नामक जहाज से यात्रा करने के लिए लिखा-पढ़ी की। मेरे कलकत्ता के मित्रों ने, जिनके सुपुर्द मैंने यह काम किया था, देरी कर दी। इससे जहाज में मुझे अनुकूल स्थान न मिल सका। अन्तिम घड़ी में मुझे एक 'बर्थ' मिली जो ऊपर के डेक के दो मंज़िला नीचे थी। यह बन्द और अँधेरी जगह थी। ख़ैर, अब मैं कर ही क्या सकता था? मुझे इसी से संतोष करना पड़ा।

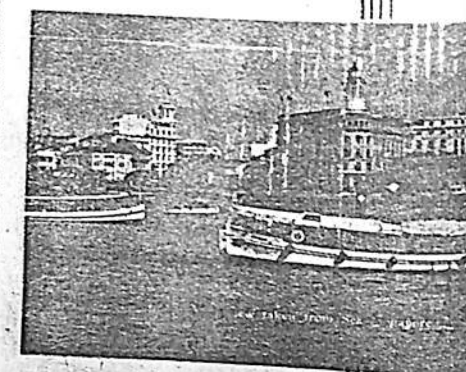
हमारे बहुत-से पाठक जहाज़ी यात्रा के आराम और तकलीफ़ से परिचित होंगे, इसलिए मैं विस्तार के साथ उनका वर्णन न करूँगा। यात्री-जहाज़ के विषय में साधारण तौर पर हमारी जो धारणायें होती हैं उनसे वह भिन्न होता है। यहाँ मैं पाठकों को यह बता देना चाहता हूँ कि तकलीफ़ों के सम्बन्ध में हमारा भय बहुत अतिशयोक्तिपूर्ण होता है। मैंने इटालियन लाइन लायड ट्रिस्टिनो के जहाज़ से यात्रा की और जहाज़ पर चढ़ने से पूर्व हमारे मन में भय की जो आशङ्कायें रहती हैं उनका मुझे कोई सबूत नहीं मिला। जहाज के कर्मचारी बड़े ही विनम्र होते हैं और वे यात्रियों की सहायता करने के लिए सदैव तैयार रहते हैं। भोजन बहुत अच्छा और स्वादिष्ट मिलता है। कई प्रकार का भारतीय भोजन भी वे देते हैं और यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि व्यक्तिगत माँगों का वे कितना ध्यान रखते हैं। कोई भी शाकाहारी अपनी रुचि के अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार का भोजन प्राप्त कर सकता है। फल सुरक्षित रूप में और यथेष्ट मात्रा में मिलते हैं।

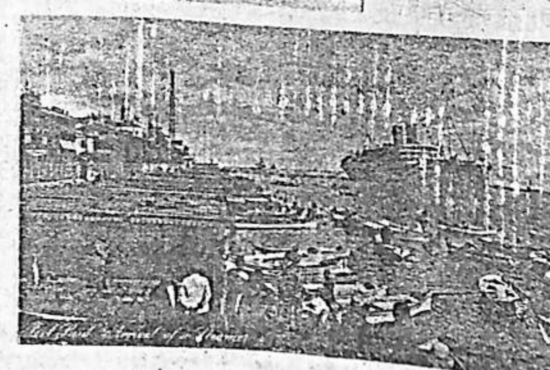
आम तौर से सब यात्री-जहाज़ों में चार दर्जे होते हैं। पहला दर्जा, दूसरा दर्जा, दूसरा इकानोमिक दर्जा और डेक। हमारे जहाज़ के पहले दर्जे में बहुत-से भारतीय थे, जिनमें श्रीयुत घनश्यामदास बिड़ला, और सर चिमनलाल सीतलवाद मुख्य थे। इकानोमिक दर्जे में लाहौर की मिसेज़ दत्त थीं। ये भारतवर्ष की कुछ छात्राओं को योरप के शिक्षा-सम्बन्धी वातावरण से परिचित कराने के लिए वहाँ अपने साथ ले जा रही थीं। जहाज़ ख़ूब भरा था।

इस प्रकार की यात्रा में एक ऐसा भव्य अवसर मिलता है जो अन्यत्र सम्भव नहीं होता। भूमंडल के विभिन्न भागों के लोगों का एक कासमोपालिटन समूह दस अच्छे दिन एक साथ व्यतीत करने के लिए एकत्र









ऊपर—एस. एस. कोन्ते रेसो। बीच में—नहर स्वेज़ और जहाज़ से सिंगापूर का दृश्य। नीचे—पोर्ट सईद

कर दिया जाता है। वे साथ साथ खाते हैं, साथ साथ खेलते हैं, साथ साथ टहलते हैं और अपने अपने जीवन के दृष्टिकोणों के सम्बन्ध में परस्पर विचार-विनिमय करते हैं। विभिन्न स्वभावों और विचित्र रुचियों के लोग परस्पर एक दूसरे को क़रीब से देखते हैं और अपने देश और अपने रहन-सहन की मर्यादा का परिचय देते हैं। कदाचित् शरीर-विज्ञान की दृष्टि से मनुष्य के अध्ययन के लिए इन कुछ दिनों के उदाहरणों से बढ़कर उदाहरण नहीं मिल सकते जब हम यहाँ चीनियों, जापानियों, जावावासियों, इटालियनों, फ़िलिपाइनवालों और भूमंडल के कोने कोने के लोगों से मैत्री-सूत्र में आवद्ध होते हैं।

यह मेरी प्रथम समुद्र-यात्रा थी, इसलिए मुझमें पास-पड़ोस के सम्बन्ध में पूछताछ करने का विशेष भाव पैदा हुआ। मैंने यह निश्चय किया कि मैं बहुत-से लोगों का परिचय प्राप्त करूँगा। इस यात्रा से मुझे दूसरे देशों की स्थिति—राजनैतिक और आर्थिक दोनों के जानने का यथेष्ट अवसर मिला। चीन के एक प्रधान व्यापारी से, जो चीन की वर्तमान स्थिति समझाने के लिए लेबर कान्फ़रेंस में भाग लेने जनेवा जा रहे हैं, मेरी घनिष्टतापूर्ण बातें हुईं। यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि चीनी व्यापारी कितनी सतर्कता के साथ पाश्चात्य तरीक़ों का अनुसरण कर रहे हैं। कोड़ियों चीनी नवयुवक क़ाहिल चीन को व्यावसायिक रूप देने के निश्चित उद्देश से शिक्षा ग्रहण करने के लिए दूसरे देशों को गये हैं। वस्त्र, चीनी, इनेमिलिङ्ग, काँच और मिट्टी के वर्तनों आदि के अब वहाँ तमाम कारख़ाने खुल गये हैं। यह सच है कि बड़े पैमाने पर इन चीज़ों का निर्माण करने में वे जापान से बहुत पीछे हैं, जैसा कि मेरे चीनी मित्र ने स्वीकार किया, पर अपने तरीक़ों में सुधार करते हुए वे क्रमशः आगे बढ़ रहे हैं। बहुत-से नवयुवक व्यवसाय को प्रभावित करनेवाली समस्याओं का अध्ययन करने के लिए जर्मनी और अमरीका गये हैं। अमरीका और जर्मनी के साथ उन्होंने अच्छे व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित कर लिये हैं और अपने व्यवसाय में उन्नति करने के लिए इन देशों से वे समुचित सलाह पाते रहते हैं। पाश्चात्य वेषभूषा और रहन-सहन को वे शीघ्रता के साथ अपनाते जा रहे हैं। जापान को वे भय के भाव से देखते हैं और वे जानते हैं कि वे शीघ्रता के साथ जापानी तरीक़ों का अनुसरण करके ही सफलता प्राप्त कर सकते हैं। हम भारतीय विदेश जानेवाले अनेक भारतीय विद्यार्थियों के अनुभवों से लाभ उठाने से वञ्चित रह जाते हैं। इसका एक बड़ा सजातीय कारण यह है कि हम अपने विद्यार्थियों को पारिभाषिक तरीक़ों के अध्ययन करने के लिए बहुत थोड़ा समय देते हैं। तीन वर्ष का कोर्स काफ़ी नहीं होना चाहिए। हमारे नवयुवकों को व्यवसाय और उत्पादन में प्रयुक्त होनेवाले विभिन्न पारिभाषिक तरीक़ों का अध्ययन और अभ्यास करने के लिए योरप में लगभग दस वर्ष दत्तचित्त होकर रहना चाहिए ताकि वे प्रत्येक व्यवसाय में वह पारिभाषिक दक्षता और ज्ञान प्राप्त कर लें जो उन्हें अपने पूर्ण पारिभाषिक ज्ञान के द्वारा दूसरे देशों से प्रतिद्वन्द्विता करने में समर्थ बनाये।

मेरे मित्र जावा-निवासी मिस्टर इस्सर ने मुझसे जावा के सामाजिक और आर्थिक जीवन का बड़ा दिलचस्प वर्णन किया। उन्होंने अच्छी डच-सरकार के सम्बन्ध में अपनी इस टिप्पणी पर ज़ोर दिया कि वहाँ वर्णगत भेद-भाव नहीं है। वे एम्सटर्डन जा रहे हैं। वहाँ वे अपने परिवार को छोड़ देंगे और तब अटलांटिक पार करके दक्षिणी अमरीका में अपने पिता से मिलने जायँगे। मैं ने उनसे एम्सटर्डन में मिलने का वादा किया। वे बहुत अच्छे और प्रसन्न-चित्त अधेड़ पुरुष हैं। वे सदैव मुस्कुराते हुए मिलते और सवेरे ऊपरी डेक पर टहलते समय हर किसी से, जो मिलता, परिचय प्राप्त करने को तैयार रहते।

ये दस दिन पहाड़ हो जाते हैं। यद्यपि समय काटने के लिए आनन्द-विनोद की यथेष्ट सामग्री रहती है, तथापि उन आनन्दों में लिप्त होना बहुतों के

स्वभाव के अनुकूल नहीं होता—विशेष-कर उनके जो शान्तिमय आनन्द पसन्द करते हैं। सौभाग्य से इस जहाज़ का पुस्तकालय सज्जित है और समय व्यतीत करने के लिए यहाँ नई से नई पुस्तकें प्राप्त हो सकती हैं। सिनेमा, नृत्य और शिकार का भी प्रबन्ध है।

पहले यह आस्ट्रिया का जहाज़ था। परन्तु जब इटलीवालों ने ट्रीस्ट पर अधिकार किया तब युद्ध के बाद से यह भी उनके अधिकार में आ गया। समस्त महत्त्वपूर्ण बन्दरों पर ठहरता हुआ यह शंघाई से ट्रीस्ट तक जाता-आता है। मेरे मित्र इस्सर बड़े निपुण फ़ोटोग्राफ़र हैं। उन्होंने कृपापूर्वक कुछ फ़ोटो मुझे भी दिये जो उन्होंने मार्ग में लिये थे। वे यहाँ छापे जाते हैं।

एक बड़े यात्री-जहाज़ का सुन्दर प्रबन्ध देखकर हम सब आश्चर्यचकित हुए हैं। भारतीय इटालियन लाइन को बहुत पसन्द करते हैं, क्योंकि इसके जहाज़ों में भोजन अति उत्तम और विभिन्न प्रकार का मिलता है। संसार के विभिन्न भागों के फल, योरप अमरीका और भारत की खाद्य-सामग्री और आठ विभिन्न देशों के रसोइयें इसके जहाज़ में यात्रियों की सेवा करने के लिए उपस्थित हैं। इस जहाज़ में ५०० मुसाफ़िर और लगभग ३५० नाविक हैं। सब मिलाकर ९०० आदमी हैं, जिन्हें प्रतिदिन चार बार नियत समय पर भोजन मिलता है। कोइ भी फल जितने आप चाहें, मिल सकता है। जहाज़ का भाण्डार अक्षय्य प्रतीत होता है। इस जहाज़ में एक बड़ा तापहारी कमरा है, जिसमें सब प्रकार के फल, मांस और अन्य प्रकार की खाद्य सामग्री रक्खी जा सकती है। हमें यहाँ गोभी, जो अब उत्तर-भारत में शायद ही मिले, और बहुत-सी भारतीय फलियाँ जो अब वहाँ बे-मौसम हैं, मिल सकती हैं। जहाज़वालों ने इन वस्तुओं को महीनों पहले ख़रीदा था और तापहारी कमरे में जमा कर रक्खा है।

मेरे मित्र......, मुझे यह उल्लेख करते हुए दुःख होता है, बुरी सोहबत में पड़ गये और यदि हम उन्हें सचेत करने का शीघ्र प्रयत्न न करते तो हालत और भी ख़राब हो जाती। उनकी सदिच्छा और हमारे अनुनय-विनय को धन्यवाद है कि उन्होंने वह सोहबत छोड़ दी और हमारे बीच में आ गये। फिर वे उस 'काकटेलबार' में न गये, जिसमें वे कुछ विदेशी मित्रों के साथ आधे दर्जन बार जा चुके थे और बहुत बेवक़ूफ़ बनाये गये थे। श्रीयुत तिवारी भी जो मेरे ही कमरे में थे, बड़े आनन्द के साथ जा रहे हैं। वे लन्दन में क़रीब तीन महीने ठहरेंगे। वहाँ उन्होंने मुझसे मिलने का वादा किया है।

जो लोग मिस्र की एक झलक—प्राचीन पिरामिड, रहस्यमयी ममी और गंदा बाज़ार देखना चाहते हैं उन्हें यह जहाज़ बड़ा सुन्दर अवसर देता है। वे स्वेज़ में उतर सकते हैं। टामस कुक एण्ड सन्स के कर्मचारी वहाँ से मुसाफ़िरों को 'लाञ्च बोट' पर किनारे और वहाँ से मोटर पर कैरो ले जाते हैं। कुछ मित्रों ने, जिनमें मैं भी हूँ, इस यात्रा में सम्मिलित होने के लिए लिखा-पढ़ी की है। मुझे आशा है कि जब मैं शहर से लौटूँगा तब मैं अपने पाठकों को मिस्र और उसके निवासियों के बारे में कुछ नई बातें बता सकूँगा।

हमारे प्रान्त के विश्वविद्यालयों में पाली भाषा का अध्ययन

लेखक, बाबा राघवदास

पाली किसी समय में भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा थी। आज भी चीन, जापान, तिब्बत आदि बौद्ध देशों पर उसका प्रभाव है। उसके अध्ययन से हिन्दू, बौद्ध और बौद्धधर्म का पारस्परिक सम्बन्ध ही नहीं प्राचीन भारतीय संस्कृति का भी ज्ञान प्राप्त होता है। इस लेख में इसी बात का उल्लेख कर यह माँग पेश की गई है कि अन्य विश्वविद्यालयों की भाँति यू० पी० के विश्वविद्यालयों में भी पाली के अध्ययन की व्यवस्था होनी चाहिए।

भारत में संयुक्त-प्रान्त प्राचीन काल से अपना एक ख़ास स्थान रखता है। भारतीय संस्कृति का अधिकांश निर्माणकार्य इसी प्रान्त में हुआ है। गंगा-यमुना का यह प्रान्त भारतीयों के लिए आदर तथा गौरव का स्थान है। काशी, प्रयाग, अयोध्या, हरिद्वार, मथुरा, वृन्दावन, बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्तरी, यमुनोत्तरी आदि तीर्थ-स्थान अध्यात्म-विद्या, ऐश्वर्य्य तथा पावित्र्य के लिए भारत में सदैव आदरणीय रहे हैं। यह तो है ही। संसार के एक महान् धर्म—बौद्धधर्म—का क्रीड़ास्थल होने के कारण भी यह प्रान्त संसार के विभिन्न देशों के यात्रियों के लिए तीर्थस्थान हो गया है। भगवान् बुद्धदेव का जन्म-स्थान (गोरखपुर-ज़िले के नौतनवा स्टेशन से ८ मील दूर नेपाल-राज्य में) लुम्बिनी, प्रथमोपदेश-स्थान काशी से ४ मील दूर सारनाथ तथा महापारिनिर्वाण-स्थान गोरखपुर ज़िले में कुशीनगर (कसया) है। इसके अतिरिक्त बलरामपुर आदि बौद्धों के प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान भी हैं। बौद्धधर्म के पाली भाषा के साहित्य-निर्माण में इस प्रान्त का भी हाथ रहा है।

इस प्रकार बौद्धधर्म का इस प्रान्त से बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। इतना होने पर भी यह बड़े दुख का विषय है कि पाली-साहित्य के अध्ययन-अध्यापन का कोई प्रबन्ध इस प्रान्त के शिक्षा-विभाग की ओर से या विश्वविद्यालयों की ओर से नहीं हुआ है।

दूरस्थ कलकत्ता, बम्बई तथा मदरास के विश्व-विद्यालयों में तो पाली भाषा के अध्ययन-अध्यापन का प्रबन्ध हो, पर इस प्रान्त के प्रयाग, लखनऊ, काशी, अलीगढ़ तथा आगरा, काँगड़ी के विश्व-विद्यालयों में इस विषय की शिक्षा के सम्बन्ध में चुप्पी साधे देखकर किसको हार्दिक दुख हुए बिना न रहेगा।

आज भी पाली भाषा संसार के लगभग ४० करोड़ भाई-बहनों की धर्म-भाषा है। इस भाषा में लिखा हुआ साहित्य भारतीय संस्कृति से ओतप्रोत भरा हुआ है। भारतीय संस्कृति का अमर सन्देश संसार के कोने कोने तक पहुँचाने में इस भाषा ने बड़ी सहायता की है और आज भी कर रही है। जापान, चीन, ब्रह्मदेश, सिंहलद्वीप, तिब्बत आदि देशों के साहित्य तथा वहाँ की भाषाओं पर पाली भाषा का ख़ास प्रभाव आज भी विद्यमान है। यह भारतीय संस्कृति की विजय-पताका है।

ऐसी भारतीय भाषा का स्वागत कौन न करेगा?

शिक्षाप्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता

लेखक, श्रीयुत खुशहालमणि पर्वतीय, बी० ए०

शिक्षितों में बेकारी की वृद्धि देखकर बहुत-से लोग कहते हैं कि हमारे यहाँ शिक्षा का आवश्यकता से अधिक प्रचार हो गया है। पर बात ऐसी नहीं है। वास्तविक बात यह है कि हमें जैसी शिक्षा चाहिए वैसी नहीं मिलती, इससे हम और भी पंगु होते जाते हैं। इस विषम स्थिति से निकलने का एक मात्र उपाय यह है कि हम अपनी शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन करें। इस लेख में विद्वान् लेखक ने इसी विषय को बड़े सुन्दर ढङ्ग से उपस्थित किया है और बताया है कि हमारी नवीन शिक्षा-प्रणाली का क्या ध्येय होना चाहिए।

प्रकृति मनुष्य को अपूर्ण पैदा करती है। पूर्णता प्राप्त करने के लिए उसको शिक्षा की आवश्यकता है। शिक्षित मनुष्य अपढ़ मनुष्य से इसलिए श्रेष्ठ है कि उसने अपनी कमी पूरी की है। शिक्षा का उद्देश ही यही है कि वह मनुष्य को पूर्ण बनावे। परन्तु जिस शिक्षा के पाने के बाद भी मनुष्य अपने को अपढ़ मनुष्य की अपेक्षा अधिक असहाय पावे तो यह समझ लेना चाहिए कि वह शिक्षा शिक्षा नहीं, उसमें कोई दोष अवश्य है। विश्व में भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ शिक्षा का प्रेम सबसे पहले मनुष्य के हृदय में अंकुरित हुआ था और उसका व्यापक प्रभाव भी पड़ा था। परन्तु आश्चर्य है कि ब्रिटिश राज्य जैसे सभ्यतम राज्य के अधीन एक सौ सत्तर वर्ष से रहते हुए भी भारत अशिक्षा के अन्धकार में ही डूबा हुआ है। परन्तु इसके विपरीत कुछ लोगों की यह धारणा भी है कि शिक्षितों का इतने अधिक परिमाण में बेकार होना इस बात को सिद्ध करता है कि भारत में शिक्षा की गति बहुत तेज़ है और इसको कुछ धीमी करने की आवश्यकता है। परन्तु यह दृष्टिकोण ग़लत है। बेकारी का उग्र रूप धारण करना शिक्षा के अधिक प्रचार से नहीं, वरन् शिक्षा-प्रणाली की दोष-पूर्णता से या कुशिक्षा के प्रचार से है। सच्ची शिक्षा तो मनुष्य को बेकार बनाने की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठता से जीविका उपार्जन करने के योग्य ही बनाती है। इसलिए शिक्षा के प्रचार को कम करना बेकारी की दवा नहीं है। हाँ, शिक्षा-प्रणाली को अधिक उपयुक्त बनाने से उद्देश की सिद्धि हो सकती है।

सरकार के शिक्षा-विभाग की रिपोर्ट के अनुसार शिक्षित नरनारियों का प्रतिशत सन् १९२१ में ७·२ था। सन् १९२७ में पुरुष-जन-संख्या का केवल ६·९१ प्रतिशत और स्त्री-जन-संख्या का केवल १·४६ प्रतिशत स्कूलों में शिक्षा पा रहा था। सब स्कूलों और कालेजों की सम्पूर्ण उपस्थिति का जोड़ भारतवर्ष में सन् १९२१-२२ में ७५ लाख था। इसमें से लगभग ५० लाख तो प्राइमरी या प्रारम्भिक स्कूलों की पहली कक्षा (बाल-कक्षा मिलाकर) में थे और बाक़ी एक तिहाई प्राइमरी स्कूलों की बाक़ी तीन कक्षाओं और विश्वविद्यालयों और कालेजों के सहित अन्य सम्पूर्ण शिक्षा संस्थाओं में था। बालकों की अधिक संख्या पहली कक्षा में ही छूट जाती है और प्राइमरी स्कूलों की पहली कक्षा में भर्ती होनेवाले बालकों की संख्या का केवल १९ प्रतिशत ही चौथी कक्षा तक पहुँच पाता है। पहली कक्षा के बच्चे लिख-पढ़ नहीं सकते और जो थोड़ा-बहुत उन्हें सिखला दिया जाता है उसे वे जल्दी ही भूल जाते हैं। हाल की सरकारी रिपोर्ट में इस बात की गम्भीर प्रतिध्वनि है कि ये अंक जिस अपव्यय और अशिक्षा का पता देते हैं वह भयानक है।

जहाँ प्राइमरी स्कूलों की अवस्था इस प्रकार अव्यवस्थित है, वहाँ रात्रि-पाठशालों या सयानों के लिए शिक्षा की व्यवस्था होने की आशा करना भ्रममात्र है।

माध्यमिक शिक्षा प्रदान करनेवाले स्कूल भी अपर्याप्त शिक्षा के विचार से बहुत ही पिछड़े हुए हैं। जो शिक्षा उनमें दी जा रही है वह विदेशों में वैसे ही स्कूलों में दी जानेवाली शिक्षा की अपेक्षा बहुत निम्न-कोटि की है और शिक्षा को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए बहुत ही अपर्याप्त है। ये स्कूल इस बात में भी दोष-पूर्ण हैं कि इनमें बालकों को केवल साधारण शिक्षा ही दी जाती है—व्यावसायिक शिक्षा की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। ऐसे स्कूल बहुत थोड़े हैं जिनमें कृषि, व्यापार या शिल्प-कला की शिक्षा दी जाती हो। जो हैं भी वे बहुत अपूर्ण हैं। उस प्रकार की कृषि, व्यापार और शिल्प-कला आदि का जो पाठ्यक्रम इँग्लैंड के सेन्ट्रल स्कूलों में प्रचलित है उसके प्रचलित होने की यहाँ के स्कूलों में आशा करना व्यर्थ है।

उक्त सरकारी रिपोर्ट में माध्यमिक स्कूलों के विषय में लिखा है—"मेट्रिकुलेशन और विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में फ़ेल होनेवालों की अत्यधिक संख्या शिक्षा-प्रचार के प्रयत्न की हान असफलता और अपव्ययता का द्योतक है। व्यवसाय और शिल्प-सम्बन्धी शिक्षा प्रदान करने का जो उद्योग किया गया है उसका साधारण शिक्षा-प्रणाली से कोई सम्पर्क नहीं है, फलतः वह अपने उद्देश में असफल हुआ है।"

विश्वविद्यालयों की तुलना उन वृक्षों से की जा सकती है जिनका मूल प्राइमरी स्कूल-रूपी पृथ्वी की गहराई में घुसा हुआ है। ये वृक्ष अपनी खाद और बल माध्यमिक स्कूलों से प्राप्त करते हैं। जहाँ ये दोनों दुर्दशा-ग्रस्त और सदोष हों, जहाँ विद्यार्थियों के व्यावसायिक पाठ्यक्रम की ओर झुकने के लिए व्यवस्था ही न हो, जहाँ लगभग प्रत्येक छात्र एक ऐसे पाठ्यक्रम को पढ़ने के लिए बाध्य हो जो उसको एक मामूली क्लर्क के काम को छोड़कर और सब कामों के अयोग्य बनाती हो, वहाँ कोई आश्चर्य नहीं है यदि विश्वविद्यालयों को बिना विचार के ऐसे छात्रों को भर्ती करना पड़ता है, जो विश्वविद्यालय की शिक्षा पाने की क्षमता नहीं रखते हैं और अधिकतर दूसरे प्रकार के जीवन-क्रम में सफल हुए होते। प्रकृत दशा में विश्वविद्यालयों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे पाठ्यक्रम की कक्षा को जितना ऊँचा चाहें, कर लें। इसलिए यह स्पष्ट है कि ऐच्छिक सुधार और उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि सार्वजनिक अनिवार्य और निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली एवं आकर्षक व्यावसायिक पाठ्यक्रम से युक्त माध्यमिक शिक्षा का प्रचार और उपयोग किया जाय। इसी मार्ग पर चलने से वर्तमान असन्तोषप्रद स्थिति से छुटकारा मिल सकता है।

विश्वविद्यालयों और कालेजों से निकले हुए स्नातकों की बेकारी का यह कारण है कि विश्वविद्यालय भी छात्रों को जीविका की उपयुक्त शिक्षा प्रदान करने के लिए भिन्न भिन्न पाठ्यक्रमों से युक्त नहीं हैं। इसलिए साधारणतः वे छात्र जो कला या शुष्क विज्ञान की डिग्री प्राप्त करते हैं, अध्यापकी या शासन-प्रबन्ध के किसी पद को छोड़कर और किसी काम के योग्य नहीं होते। लेकिन स्कूल, कालेज और सरकारी नौकरियाँ हर-साल बहुसंख्या में निकलनेवाले स्नातकों में से इने-गिनों को ही जीविका प्रदान कर सकती हैं। रोज़गार और व्यवसाय की शिक्षा का पाठ्यक्रम न होने से बहुत-से छात्र क़ानून पढ़ने को बाध्य होते हैं, जहाँ उनको निराशा ही निराशा है। इसलिए इस रोग का उपचार तो इसी में है कि उपयुक्त प्रकार के व्यापारिक, कृषि-सम्बन्धी, शिल्पकला-सम्बन्धी तथा इंजीनियरिंग की शिक्षा उचित मात्रा में प्रदान करने की व्यवस्था की जाय। यह कहना कि कृषि और व्यापार में अधिक लोगों की आवश्यकता नहीं है, बुद्धिमानी का उत्तर नहीं है। शिक्षा को इस प्रकार व्यावहारिक बनाना होगा कि उसकी माँग हो सके—और इस माँग को भी बढ़ाना ही पड़ेगा। सरकार और विश्वविद्यालयों को नवयुवकों को उचित शिक्षा देने के लिए सहयोग से कार्य करना और उनके लिए उपयुक्त जीविका के द्वार निश्चित करना होगा। भिन्न भिन्न सार्वजनिक विभागों में से कोई भी एक विभाग किसी असीम संख्या में शिक्षितों को नहीं खपा सकता, परन्तु सब विभाग मिलकर उसका अधिकांश खपा सकते हैं।

वर्तमान-शिक्षा प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यह है कि बीस बरस तक स्कूल और कालेज की शिक्षा प्राप्त करने पर भी बेचारा भारतीय युवक अपना, अपनी पत्नी और बच्चों का तथा अपने माता-पिता का पालन करने में असमर्थ रहता है। इसलिए इसमें आमूल परिवर्तन करने की आवश्यकता है। बालक की शिक्षा का आरम्भ उसी समय से होना चाहिए जब से वह माता के गर्भ में आता है। इसके लिए युवकों और युवतियों को माता-पिता होने के पहले ही शिक्षित करना होगा। जिस प्रकार इँग्लैंड या दूसरे देशों में अपने अपने देश-काल के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था होती है, उसी प्रकार हमें भी अपने देश-काल के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी। इँग्लैंड में माता भी शिक्षित, पिता भी शिक्षित और पड़ोसी भी शिक्षित होते हैं। वहाँ लगभग प्रत्येक व्यक्ति को विद्यालय से लाभ उठाना ही पड़ता है। शिक्षा-संस्थायें और शिक्षा-सम्बन्धी प्रत्येक कार्य-क्रम एक दूसरे से सहयोग करते हैं। समाचारपत्र और पुस्तक प्रत्येक के हाथ में रहती है। प्रत्येक सम्भव उपाय से पढ़ने-लिखने और ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा को प्रोत्साहन दिया जाता है—जनता के हृदय में शिक्षा के प्रेम ने अपनी जड़ जमा ली है। वहाँ शिक्षा जीवन की एक आवश्यक वस्तु हो गई है। इस बात का तन-मन-धन से प्रयत्न किया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति जन्म से लेकर जीवनान्त तक प्रत्येक दशा में शिक्षा प्राप्त कर सके। इसी प्रकार के वातावरण में अँगरेज़ बच्चे का जन्म और पालन-पोषण होता है। क्या बाल-पाठशाला में, क्या प्रारंभिक पाठशाला में, क्या माध्यमिक स्कूल में और क्या शिल्प-स्कूल में, सब कहीं बड़ी तत्परता, रुचि और मनोयोग से उसकी शिक्षा होती है और अन्त में जब वह स्कूल से निकलता है तब उपयुक्त रोज़गार के सर्वथा योग्य होता है और इसमें भी उसकी समुचित सहायता की जाती है। यदि वह विश्वविद्यालय में प्रवेश करता है तो इसके लिए भी वह पूर्णरूप से तैयार होता है और उत्साह एवं उच्चाभिलाषा से भरकर वह उच्च शिक्षा प्राप्त करने में जुटता है। यदि भारतीय युवक को भी ऐसी ही परिस्थितियाँ प्रदान की जायँ, उसको भी समुचित अवसर और सुविधायें प्राप्त हों, तो वह भी जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता है।

भारतवर्ष के बाहर अँगरेज़ी-भाषा की उपादेयता चाहे कितनी ही अधिक क्यों न हो, पर यहाँ तो लाभ की अपेक्षा उससे हानि ही अधिक हुई है। योग्यता प्राप्त करने के मार्ग में यहाँ वह तो बाधक ही हुई है। हमारे स्कूलों में शिक्षा का माध्यम सात समुद्र पार की एक विदेशी भाषा बनाई गई है। संसार के किसी सभ्य देश में शिक्षा का ऐसा अस्वाभाविक माध्यम नहीं है। यद्यपि भारत में कुछ प्रान्तों में शिक्षा तथा परीक्षा के लिए कुछ विषयों में देशी भाषा का माध्यम स्वीकार किया गया है, तो भी अँगरेज़ी का प्रयोग अभी बहुत ही व्यापक रूप से होता है। यहाँ बालक सात वर्ष की ही अवस्था से अँगरेज़ी पढ़ना प्रारम्भ कर देता है और उसी समय से मातृभाषा की शिक्षा की उपेक्षा शुरू हो जाती है। फल यह होता है कि उस समय से लेकर स्कूल छोड़ने के समय तक उसका बहुमूल्य समय ऐसी भाषा की जानकारी प्राप्त करने में नष्ट होता है 'जिसके शब्दों के हिज्जे याद करना किसी भी विदेशी को पागल बना सकता है।' भारतीय जनता के जितने धन और परिश्रम एवं समय का इस प्रकार विनाश होता है उसका हिसाब लगाना कठिन है। कालेज की शिक्षा की भी यही दशा है। तिस पर तुर्रा यह कि कभी कभी कतिपय मनचले शिक्षा-निरीक्षक यह कहते हुए संकोच नहीं करते कि हमारे युवकों में बहुत थोड़े ही अँगरेज़ी में शुद्धता से अपने विचार प्रकट कर सकते हैं। जब स्वयं पूज्य मालवीय जी ऐसे अँगरेज़ी में धारा-प्रवाह वक्तृता देनेवाले महापुरुष यह स्वीकार करते हैं कि "सात[1] वर्ष की अवस्था से लेकर आज तक लगातार अँगरेज़ी पढ़ने पर भी मैं अँगरेज़ी में उसकी आधी आसानी और विश्वास से नहीं बोल सकता जिस प्रकार कि अपनी मातृभाषा में" तब समझ में नहीं आता कि इन स्कूलों और सरकारी दफ़्तरों में अँग-

१-कनवोकेन ऐड्रेस हि० वि० वि० १९१९

रेज़ी के व्यवहार का क्या प्रयोजन है? वर्षों के परिश्रम के पश्चात् भी हमारे नवयुवकों को अपना काम चलाने भर की भी अँगरेज़ी में योग्यता नहीं होती। अँगरेज़ी के माध्यम-द्वारा पढ़े हुए किसी भी शास्त्र की पूर्ण योग्यता उन्हें नहीं होती। अतः राष्ट्रीय शिक्षा की समुन्नति तब तक नहीं हो सकती जब तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा नहीं होता।

परन्तु श्रीमती सरोजनी नायडू और प्रिंसपल शेषाद्रि ऐसे विद्वान् अँगरेज़ी को ही शिक्षा का माध्यम बनाने पर ज़ोर देते हैं। यह आश्चर्य की बात है, क्योंकि भारतवर्ष की संस्कृति संसार की किसी भी संस्कृति से हीन नहीं है। फिर हमारी भाषा भी ऐसी नहीं है कि उसमें उच्च विचार न प्रकट किये जा सकें। जब काशी-विद्यापीठ, कांगड़ी-गुरुकुल, हिन्दू-विश्वविद्यालय तथा उस्मानिया-विश्वविद्यालय ऐसी संस्थायें देशी भाषाओं के द्वारा ऊँची से ऊँची शिक्षा सफलतापूर्वक दे रही हैं और जिनकी प्रशंसा मेकेंज़ी साहब जैसे शिक्षा के विशेषज्ञ उच्च अधिकारी भी स्वयं कर चुके हैं तब कोई कारण नहीं देख पड़ता कि हमारे बालकों के ऊपर अँगरेज़ी-भाषा का भार लादा जाय।

जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ, प्राइमरी स्कूलों से ही शिक्षा के पाठ्य-क्रम में कई विषयों—(व्यावसायिक, चित्र-कला तथा शिल्प-सम्बन्धी) का समावेश होना चाहिए, जिससे उपयुक्त बालक को उपयुक्त शिक्षा दी जा सके। सबकी रुचि एक नहीं होती—'मुंडे मुंडे रुचिर्भिन्ना'। हर एक मनुष्य प्रतिभावान् होता है, ऐसा मेरा विश्वास है। परन्तु उसकी प्रतिभा अपने विषय को पाकर ही विकसित होती है। प्रत्येक छात्र साहित्य, गणित, भूगोल, इतिहास, विज्ञान, चित्रकला एवं शिल्पकला में एक साथ ही रुचि नहीं रख सकता। बीजगणित या रेखागणित की जो शिक्षा हाईस्कूलों में दी जाती है वह उन छात्रों के किस काम की है जो उन विषयों के पढ़ने में रत्तीभर रुचि नहीं रखते और उनको भारस्वरूप ही समझते हैं। साधारण व्यावहारिक जीवन के लिए प्रत्येक शास्त्र के जितने ज्ञान की आवश्यकता है उतना आज-कल के अँगरेज़ी स्कूलों की आठवीं कक्षा तक की पढ़ाई में प्राप्त हो जाता है। आठवीं कक्षा के बाद सब विषय ऐच्छिक होने चाहिए! वर्तमान क्रम को जारी रख-कर हम अपने छात्रों का बहुत बड़ा अपकार कर रहे हैं। भला अपने जीवन में सम्पादक या व्यापारी का काम करनेवाले छात्र के लिए स्कूल में पढ़ाये जानेवाले रेखागणित या बीजगणित किस प्रयोजन के हैं? वर्ष में तीन बार अपने विषय की परीक्षा पास करने का अवसर प्रत्येक छात्र को मिलना चाहिए। इँगलेंड और दूसरे देशों में तीन-चार ऐच्छिक विषयों में से किसी एक या दो की परीक्षा कोई भी छात्र प्रथम अवसर की परीक्षा में पास कर सकता है और बाक़ी विषयों को तीन मास पश्चात् होनेवाली दूसरी परीक्षा में पास कर लेता है। यह बड़े सुभीते की बात है। यहाँ ऐसा मिडिल स्कूल की पढ़ाई समाप्त होने पर ही करना उचित होगा। यहाँ तक पहुँचने पर छात्र अपना उत्तरदायित्व समझने लग जाते हैं। विशेष विषयों के प्रति प्रत्येक छात्र की रुचि पहचानने के लिए मिडिल क्लास तक की पढ़ाई पर्याप्त है। उसके पश्चात् उसके ऊपर अरुचिकर विषयों की पढ़ाई का भार नहीं लादना चाहिए। अनुभवी और शिक्षित अध्यापक और स्वयं छात्र भी यह बहुत अच्छी तरह कह सकते हैं कि उनकी रुचि किस विषय की ओर है।

देशी भाषाओं में शिक्षा का माध्यम करने के साथ साथ शिक्षा का स्टैण्डर्ड आज की अपेक्षा ऊँचा करना होगा, जिससे साधारण नागरिकता के लिए मिडिल स्कूल की पढ़ाई पूर्ण साबित हो सके। अध्यापकों और छात्रों में अधिक प्रेम और अधिक सम्पर्क स्थापित करने के लिए यह उचित होगा कि प्रारम्भिक कक्षाओं को छोड़कर बाक़ी कक्षाओं के छात्रों के लिए अनिवार्य रूप से रेज़िडेंशल स्कूल होने चाहिए। ये स्कूल केवल किताबी शिक्षा देनेवाली या अकर्मण्य पुरुष पैदा करने-वाली संस्था न बनाये जायँ। व्यावहारिक ज्ञान की आवश्यकता जिस प्रकार कालेज में पूर्णता को प्राप्त होनी चाहिए, उसी प्रकार उसका प्रारम्भ स्कूल से ही हो जाना चाहिए। परन्तु जब यहाँ के कालेजों में ही व्यावहारिक शिक्षा नहीं दी जाती है तब स्कूलों की क्या बात है। स्कूल या कालेज से निकले हुए छात्र मामूली देहाती अपढ़ की अपेक्षा व्यावहारिक ज्ञान में बिलकुल कच्चे ही रहते हैं। और तो और, वे गेहूँ, धान या कपास का पौधा तक नहीं पहचानते। रेज़ीडेंशियल स्कूलों में यह प्रबन्ध अच्छे प्रकार हो सकेगा कि वर्ष में कुछ सप्ताह के लिए वे व्यावहारिक शिक्षा देने के लिए, प्रकृति का निरीक्षण करने के लिए कारखानों या देहातों में ले जाये जायँ।

शिक्षा का महत्त्व इसी में है कि वह हमारे बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक भावों को सुषुप्ति से जाग्रत करती है तथा संकुचित अवस्था से विकसित अवस्था में लाती है। शारीरिक विकास भी इसी की परिधि के अन्तर्गत है। मनुष्य शिक्षा की वास्तविक पूर्णता तब तक नहीं प्राप्त कर सकता जब तक उसकी शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का एकरस विकास न हो जाय। निरा ज्ञान-संग्रह शिक्षा नहीं है। यदि कोई मनुष्य शिक्षित कहलाने का अधिकारी है तो उसमें दृढ़ नैतिक विश्वास, आचरण की सभ्यता और दूसरों को समझने की शक्ति होनी चाहिए। शिक्षा का अर्थ यह नहीं है कि अमुक भाषा पढ़ी जाय। कोई मनुष्य एक अक्षर भी किसी भाषा का न जानता हो, परन्तु यदि वह विचारवान्, विवेकी, विश्वासपात्र, पक्षपात-हीन और धर्मात्मा है, यदि उसे इस बात का ज्ञान है कि मेघ कैसे बनते हैं, वर्षा का आविर्भाव कहाँ से होता है, एक ऋतु का अनुगमन दूसरी ऋतु कैसे करती है, स्वास्थ्य किस प्रकार बनाया जा सकता है, यदि वह भले प्रकार जानता है कि इस जगत् में उसके कर्त्तव्य क्या हैं एवं उसके जीवन का उद्देश और अर्थ क्या है, यदि वह दूसरे प्राणियों के सुख-दुःख को समझता है और ईश्वर की शक्ति और अपनी आत्मा में विश्वास रखकर कार्य करता है, तो वह वास्तव में शिक्षित मनुष्य है।

प्रयाग-विश्वविद्यालय के छात्रों-द्वारा अर्पण किये गये मानपत्र के उत्तर में राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने उस दिन कहा था—"शिक्षा का ध्येय मनुष्य तैयार करना है। मनुष्य से मेरा अर्थ उस व्यक्ति से है जो ज्ञानी और दयावान् एवं सच्चा सेवक है। मनुष्य कई प्रकार के होते हैं। पुस्तकें पढ़ लेने से कोई ज्ञानवान् नहीं हो सकता ....यदि आपने पुस्तकों को अपने मस्तिष्क में भर लिया अथवा लाद लिया तो आप मनुष्य नहीं बन सकते। पुस्तकों के ज्ञान तथा उस पर मनन करने से आप मनुष्य बन सकते हैं। धर्म और सचाई पर चले बिना पुस्तकों का ज्ञान अधूरा है। विद्या और ज्ञान में अन्तर है। हमारे विश्वविद्यालयों में विद्या का अंश अधिक होता है—ज्ञान की ओर ध्यान नहीं दिया जाता।"

भारत में शिक्षा की उपेक्षा जिस भयानकता से की गई है अथवा की जा रही है उसकी ओर बहुत कम लोगों का ध्यान गया है। इन सहस्रों नये ढंग के स्कूलों और बड़े बड़े कालेजों की इमारतों से यह समझना कि भारत में शिक्षा का प्रचार हो रहा है, भूल है। ये स्कूल और कालेज भारतवर्ष के प्रतीक नहीं, ये भारतीय सभ्यता के द्योतक नहीं, इनमें भारत की संस्कृति की छाप नहीं।

हम यह अप्राकृतिक, अनुपयुक्त एवं अभारतीय शिक्षा पुरुषों एवं स्त्रियों दोनों के ऊपर लाद रहे हैं। हम लोग अपनी कन्याओं को भी ऐसे ही पाठ्यक्रम को पढ़ने को कहते हैं जो हमारे नवयुवकों को पढ़ाया जाता है और इस बात का तनिक भी विचार नहीं करते कि इसका परिणाम क्या होगा। स्त्रियों और पुरुषों की प्रकृति में प्राकृतिक वैषम्य है। उनकी शिक्षा पृथक् एवं भिन्न पद्धति पर होनी चाहिए। सहशिक्षा से केवल शिक्षा-विषयक हानि ही नहीं होती, बरन चारित्रिक निर्बलता भी उत्पन्न होती है। फिर स्त्रियों की शिक्षा स्त्री-समाज के मध्य में होनी चाहिए। भारत का जीवन गार्हस्थ्य धर्ममय है—अर्थात् सम्मिलित जीवन; वह निर्द्वन्द्व और उच्छृङ्खल नहीं है।

भारत की विशेषता आध्यात्मिकता से है, भौतिकता से नहीं। उसका सान्निध्य प्रकृति से है, विलासिता और ऐश्वर्य से नहीं। उसकी संस्कृति का संस्कार एवं विकास सादगी, नम्रता, त्याग और तप के वातावरण में हुआ है—धूर्तता और दिखावट में नहीं। भारतीयता हृदय और मस्तिष्क के मेल में है—कोरा मस्तिष्क नहीं। जब तक योरप की नक़ल को छोड़कर स्वतन्त्र रूप से भारतीयता के आधार पर हम अपने विद्यालयों का पुनस्संस्कार नहीं कर लेते तब तक भारत ऐसी ही दयनीय दशा को प्राप्त रहेगा।

हम लोग योरप और अमरीका एवं जापान जाकर उनकी शिक्षाप्रणालियों से प्रभावित होते हैं और वैसा ही आदर्श यहाँ भी स्थापित करना चाहते हैं। हमारा यह दृष्टिकोण ग़लत है, हमारा अपना आदर्श होना चाहिए, जिससे जिस प्रकार हम विदेशों की प्रणाली पर मोहित होते हैं उसी प्रकार विदेशी लोग हमारी प्रणाली पर मोहित हों। अन्धाधुन्ध का अनुकरण कल्याणकारक नहीं हो सकता। अनुकरण होना चाहिए तात्त्विक बातों का—बाह्याडम्बर का नहीं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि हम पुरुषत्व एवं नारीत्व दोनों में अपना आदर्श रक्खें।

दूसरों की रहन-सहन एवं दूसरों के आचार-विचार पर मोहित होना किसी संस्कृतिशील जाति के लिए अनिष्टकारक ही है। क्योंकि उस दशा में उसको अपनी हर वस्तु में दोष ही दोष और दूसरों की हेय वस्तु तक में गुण ही गुण दिखाई देते हैं। हम लोगों की आज यही दशा है। हम हर एक बात में—खान-पान में, बोल-चाल में, आचार-व्यवहार में एवं शिक्षा में—हम परमुखापेक्षी हैं और दूसरों की वस्तुओं को अपना आदर्श समझने लग गये हैं। विज्ञान की बात छोड़ दीजिए। हमारे विश्वविद्यालयों के स्नातक आज दर्शन-शास्त्र, ज्योतिष-शास्त्र, यहाँ तक कि हिन्दी और संस्कृत में भी विशेषता प्राप्त करने के लिए इँग्लेंड आदि देशों को जाते हैं और वहाँ के विद्वानों-द्वारा हिन्दी-संस्कृत तथा दर्शन में परीक्षित होकर उपाधि-विभूषित होकर अपने को धन्य समझते हैं। यह हमारी दुर्दशा का कितना दयनीय चित्र है।

सरल समस्या

लेखक, श्रीयुत जीवन, एम० ए०

अगणित सपने ले लेकर,
रवि नित प्रति मुसकाता है।
झूठे सपनों की नभ में,
नित चिता जला जाता है॥

राकापति भी आता है,
दल-बल से साज सजाकर।
अपने मिटने से पहले,
जाता है सभी मिटाकर॥

ये जीवन की अरमानें,
भी हा ! ऐसी ही होतीं।
जीवन की अन्तिम घड़ियों,
से पहले ही क्षय होतीं॥

जीवन तो मधुमय होता,
पर मृत्यु सुधा ही होती।
सुख जीना अथवा मरना—
यह सरल समस्या होती॥

हम जिसे आज डरते हैं,
करते उसकी अगवानी।
'जीवन' तेरा भी जीवन,
बन जाता अमर कहानी॥

बाबू शिवप्रसाद गुप्त

लेखक, श्रीयुत सीतलासहाय

हिन्दी-लिपि और हिन्दी-साहित्य का गर्व करनेवाले बहुत हैं परन्तु कड़ाई के साथ अपने जीवन में उस गर्व को निभानेवाले एक-मात्र बाबू शिवप्रसाद गुप्त ही हैं। राष्ट्र के साथ साथ उन्होंने राष्ट्र-भाषा की भी अभूतपूर्व सेवा की है। हमारे विशेष अनुरोध से बाबू सीतलासहाय ने आपके आदर्श जीवन की कुछ बातें यहाँ बताई हैं।

बाबू शिवप्रसाद जी गुप्त के यहाँ अतिथि होने का सौभाग्य मुझे इस वर्ष वैशाख में क़रीब एक वर्ष के बाद प्राप्त हुआ। 'सेवा-उपवन' वहीं स्थित है जहाँ गत वर्ष था। सुन्दर और सुगन्धित पुष्पों की क्यारियों और वृक्षों से तथा नाना प्रकार की लताओं और वल्लरियों से युक्त सेवा-उपवन की वाटिका पूर्ववत् मनोहर है। श्री गंगा जी की उज्ज्वल धारा आज भी इस उपवन की दूसरी मंज़िल से विश्वनाथ की निवास-भूमि काशी नगर को परिष्कृत करती हुई दिखाई देती है। किन्तु यहाँ एक बहुत बड़ी तब्दीली यह आ गई है कि इस उपवन का स्वामी इस विशाल और रमणीक स्थान को छोड़कर सेवा-उपवन के हाते के भीतर ही एक फूस की झोपड़ी में निवास कर रहा है। उदारचरितों के मन में जीवन के किसी न किसी काल में जीवन की मधुर और मनोहर चीज़ों से एक प्रकार की अरुचि पैदा हो जाती है। जिन चीज़ों की प्राप्ति की अभिलाषा में साधारण पुरुष अपना सारा जीवन व्यतीत करते हैं उन्हीं चीज़ों से ये लोग दूर भागने लगते हैं। पूर्वीय संस्कृति में पले हुए व्यक्तियों में तो इस भावना का उदय और भी विशेषता से होता है। पिछले सत्याग्रह-आन्दोलन के बाद से बाबू शिवप्रसाद जी सेवा-उपवन के मुख्य भवन में न रहकर निकटस्थ एक पर्णकुटी में रहते हैं, जिसमें पहले पुस्तकालय था।



इस मर्तबा एक वर्ष के बाद मुझे गुप्त जी से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ था। अपनी पर्णकुटी में फूस के बरामदे के नीचे वे हैरिंगटन चेयर पर बैठे थे, जहाँ कभी कभी गरम हवा का झोंका हम सब लोगों को वास्तविक लू का मज़ा चखा देता था। डेढ़ फ़ुट लम्बा-चौड़ा एक छोटा स्टूल उनके पास रक्खा था, जिस पर वे दो-चार चीज़ें रक्खी हुई थीं जिन्हें वे अपनी नज़र के सदा सामने रखते हैं। आश्रम-भजनावलि, गीता, तकली का छोटा बक्स, एक साधारण क़लमदान जिसमें लिफ़ाफ़ा खोलने की सलिया भी मौजूद थी, उस स्टूल पर रक्खा था। एक टेलीफ़ोन भी पास ही लगा हुआ था, मानो वह इस बात का प्रमाण था कि इस स्थान पर पूर्वीय और पश्चिमीय सभ्यता का मधुर सम्मिश्रण हो रहा है।

जिसने बाबू शिवप्रसाद जी को दो-तीन वर्ष पहले देखा है उसे अब उन्हें पहचानने में कठिनाई होगी। दो आँखों को और चार अंगुल चौड़े माथे को छोड़कर



[श्री शेरसिंह—दौहित्र व उत्तराधिकारी। अवस्था १८ वर्ष, बनारस-हिन्दू-विश्वविद्यालय के द्वितीय वर्ष के छात्र।]

इङ्गितज्ञ के पास उनकी वदनाकृति से उनकी मनोदशा जानने के लिए अब और कोई साधन बाक़ी नहीं रह गया है। बालों की विपुल वृद्धि से उनका मुखमण्डल सम्पूर्ण रूप से आच्छादित रहता है। उनके होंठ और ठुड्ढी पर की प्रचुर उपज उनकी मधुर मुसकराहट को, राहु के समान ग्रस लेने को सदा सावधान रहती है। और दर्शक पर यह असर पड़ता है कि शायद दिन भर में वे किसी भी समय मुसकराते न हों। पहले-पहल पहुँचने पर ज्यों ही मैंने उनके समक्ष जाकर प्रणाम किया, मैंने देखा कि मेरे सत्कार के लिए उनके चेहरे पर वही पहले की-सी मुसकराहट चमक गई। लेकिन वह मुसकराहट उनके दाढ़ी और मूछों में उसी प्रकार उलझकर रह गई जैसे आश्विन मास में हलके मेघों से आच्छादित आकाश में चन्द्रमा की ज्योति कभी-कभी फँस कर रह जाती है। आँखों में मैंने पूर्ववत् स्नेह पाया, किन्तु ललाट पर कुछ शिकन आ गई है। दोनों भ्रूप्रदेश साधारण आघात पर भी आसानी से निकटतर आ जाया करते हैं। और मुझे यह देखकर दुख हुआ कि पिछले १२ मास की बीमारी ने उनके ललाट-पट को विशेष रूप से रेखाङ्कित कर दिया है। उनकी पिछली बीमारी बड़ी भयंकर थी। उनसे कम संयम और सम्पत्ति का मनुष्य फ़ालिज के ऐसे प्रबल प्रकोप से नहीं बच सकता था। ईश्वर की कृपा है कि इस भयंकर रोग ने उनकी प्रकृति में हलकी-सी बेसब्री के अलावा और कोई भी दुष्प्रभाव नहीं छोड़ा। हमारा मतलब यह नहीं है कि गुप्त जी बिलकुल नीरोग हैं। अभी तक वे चल-फिर नहीं सकते और न हर एक चीज़ खा-पी ही सकते हैं। ओषधि का सेवन अभी तक जारी है।

मैं बैठा ही था कि टेलीफ़ोन की घंटी घनघना उठी। गुप्त जी ने रिसीवर उठाकर कान से लगाया। रिसीवर ज़रा तेज़ क़िस्म का था, इसलिए कुछ आवाज बाहर भी सुनाई देती थी।

"हलो !" गुप्त जी ने कहा,

"हलो !" पुकारनेवाले महाशय बोले।

"फ़र्माइए" गुप्त जी बोले।

"का क क का के कोक के को"।

टेलीफ़ोन से आवाज़ आई, जैसे कठपुतलीवाले बोलते हैं, जिसका अर्थ मैंने समझा कि आप कहाँ से बोल रहे हैं।

"सेवा-उपवन से"। गुप्त जी बोले।

"कहाँ से ?" फिर आवाज़ आई।

"सेवा-उपवन से"। गुप्त जी ने फिर कहा।

"नहीं सुना।"

"सेवा-उपवन से !" शिवप्रसाद जी ने बहुत सहूलियत से समझाया।

"आपका नाम ?"

"शिवप्रसाद गुप्त"

"आयँ !"

"शिवप्रसाद गुप्त"।

"कौन ?"

"शिवप्रसाद गुप्त"।

मैंने देखा कि बाबू शिवप्रसाद जी की पेशानी पर शिकन आ गई।

"आपका नाम ?" फिर टेलीफ़ोन से पुकारनेवाले ने पूछा।

"भाई", गुप्त जी बेसब्री से बोले—"मेरा नाम है शिवप्रसाद गुप्त, मेरे बाप का नाम है नरोत्तमदास और उनके बाप का नाम था सीतलप्रसाद। अब आप समझे"।

लेकिन टेलीफ़ोन बन्द हो गया। हम लोग भी शान्त हो गये। गुप्त जी ने रिसीवर को लटका दिया और यंत्र को बक्स पर रख दिया।

"इडियट्स" (मूर्ख)! वे बोले।

क्षण भर में ही पेशानी की शिकन जाती रही और फिर वे हम लोगों से पूर्ववत् प्रेम से बातें करने लगे।

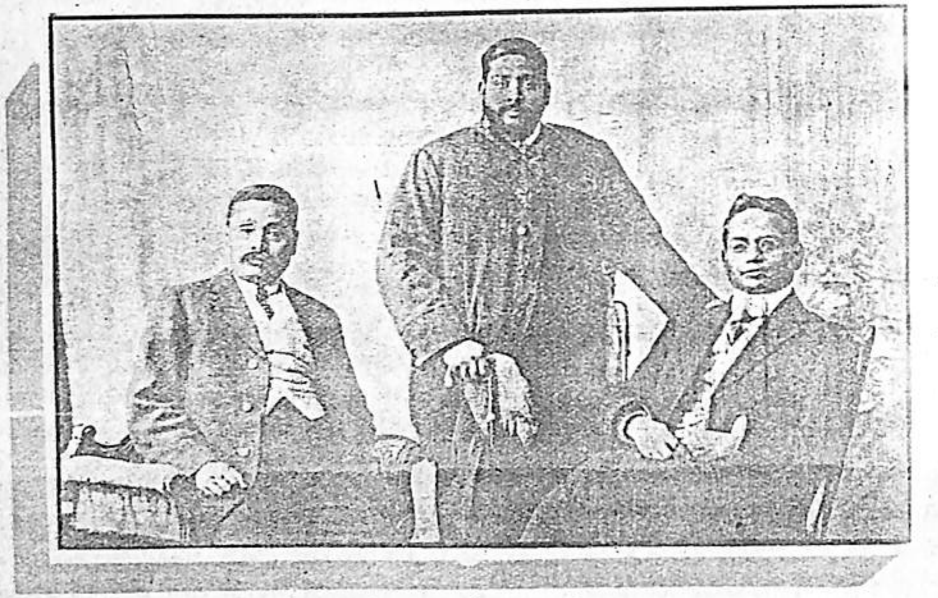


[बाबू शिवप्रसाद गुप्त, श्री नरेन्द्रदेव शास्त्री और श्री सम्पूर्णानन्द जी]

बाबू शिवप्रसाद गुप्त का जन्म काशी में आषाढ़ कृष्ण अष्टमी संवत् १९४० को हुआ था। इनके जन्म के पहले इनके माता-पिता की कई सन्तानें छीज चुकी थीं। इसलिए इनके जन्म के अवसर पर इनकी माताश्री अपना घर छोड़कर बनारस में चौकाघाट पर शिवलाल जी दुबे के बाग़ीचे में एक फूस की कुटिया में रहा करती थीं। वहीं इनका जन्म हुआ था। पैदा होते ही ये नाल काटनेवाली चमारिन के हाथ सात कौड़ी पर बेच दिये गये थे और फिर बहुत धन देकर इनके माता-पिता ने इनको उसी चमारिन से ख़रीद लिया था। उस समय के हिन्दू-समाज के प्रचलित विचारों के अनुसार यह प्रपंच इनको जीवित रखने के लिए किया गया था।

इनके पिता का देहान्त संवत् १९४८ के चैत में जब ये केवल ८ वर्ष के ही थे, हो गया था। इसके बाद ये लोग बनारस चले आये थे और अपने चचा के कुटुम्ब के साथ रहने लगे थे। बाल्यावस्था में इन्होंने फ़ारसी की शिक्षा पाई, किन्तु कुछ दिनों के बाद इन्होंने अँगरेज़ी भी पढ़नी शुरू कर दी। संवत् १९६१ में इन्होंने बनारस के जयनारायण स्कूल से मेट्रीक्यूलेशन पास किया और दूसरे वर्ष हिन्दू-कालेज में नाम लिखाया। किन्तु इन्होंने एफ़० ए० प्रयाग से पास किया। और बी० ए० पास न कर सके थे कि स्वास्थ्य के कारण तथा दूसरी वजहों से इन्हें पढ़ना छोड़ देना पड़ा।

इन्ट्रेंस पास करने के बाद से ही इनका मन अनेक सामाजिक और धार्मिक प्रश्नों के हल करने में लग गया था। बुद्धि और हृदय के विकास में कभी ये इस्लामधर्म की ओर, कभी ईसाई-धर्म की ओर झुके, कभी शालग्राम, हनूमान जी आदि की उपासना करते, कभी वल्लभमत मानते और कभी सूर्य की पूजा करते। किन्तु अन्त में आर्य-समाज ने इन्हें कुछ दिनों के लिए शान्ति दी।



[यह तसवीर अमरीका में १९१४ में ली गई थी
बाईं ओर से (१) लाला लाजपतराय, (२) बाबू शिवप्रसाद गुप्त खड़े हुए, (३) श्री सरकार]

सामाजिक सेवा करने का इन्हें बचपन से ही शौक़ था। संवत् १९६१ में काशी में 'अग्रवाल स्पोर्टस क्लब' की स्थापना हुई। इसके आप सदस्य बने और इसी संस्था में रहते हुए इनके सामाजिक और राजनैतिक विचारों का उदय हुआ और इन्हें भाषण देने का भी अभ्यास वहीं हुआ। ये संवत् १९६१-६२ (सन् १९०४-५ ई०) से ही राजनैतिक प्रवृत्तियों में दिलचस्पी लेने लग गये थे। बम्बई की कांग्रेस में इसी वर्ष ये पहली बार कांग्रेस के डेलीगेट बन कर गये। सन् १९०५ में बनारस में कांग्रेस हुई। उस समय इन्होंने स्वयंसेवक की हैसियत से कांग्रेस की सेवा की। उस समय पंचनद-केशरी लाला लाजपतराय, लोकमान्य तिलक और श्री विपिनचन्द्र पाल का राष्ट्रीय क्षेत्र में बोलबाला था। इन नेताओं के विचारों ने गुप्त जी के हृदय में देश की सेवा करने का भाव दृढ़ कर दिया।

वैशाख सुदी ५ संवत् १९७१ को अर्थात् ३० अप्रेल १९१४ को ये पहली बार विलायत गये। बम्बई से वैशाख सुदी १३ अर्थात् ८ मई १९१४ को जहाज़ पर बैठे। ये केवल ६ मास की यात्रा का विचार करके घर से बाहर निकले थे। किन्तु इन्हें लग गये २१ मास। इस यात्रा में इन्होंने इँग्लिस्तान, आयर्लैंड, अमरीका, जापान, कोरिया, चीन आदि देशों का भ्रमण किया।

अमरीका में रहते हुए ये लाला लाजपतराय जी के अच्छी तरह सम्पर्क में आये और अपने राजनैतिक विचारों को निर्भीकता-पूर्वक प्रकट करते रहे। इसी बीच में योरपीय महायुद्ध छिड़ गया और सिंगापुर में हिन्दुस्तानी फ़ौज ने विद्रोह कर दिया। स्वभावतः शासकगण विशेषरूप से सख्त हो गये। पुलिस ने ग़लती से गुप्त जी के बारे में शायद यह रिपोर्ट कर दी कि ये

विद्रोही हैं और ब्रिटिश गवर्नमेंट के दुश्मनों से मिले हुए हैं। जब ये पिनाँग पहुँचे, गिरफ़्तार कर लिये गये और बहुत दिनों तक फ़ौजी जेल में गिरफ़्तार रहे। फ़ौजी जेल की यातनायें अवर्णनीय होती हैं। उनके वर्णन की यहाँ आवश्यकता नहीं है। पुलिस की ओर से कुछ दिन तक तहक़ीक़ात होती रही। अन्त में इनके ख़िलाफ़ कुछ न पाकर उसे इनको छोड़ देना पड़ा।

कष्ट संसार में सबसे बड़ा शिक्षक है। पीनाँग के जेल में रहकर अपनी तथा अपने देश की परवशता का अनुभव केवल महीने भर में जितना अधिक हुआ १० वर्ष के कठिन राजनैतिक अध्ययन से भी उतना सम्भव नहीं था। उसी समय के अनुभव ने गुप्त जी के ऊपर ऐसा असर डाला है कि आज तक उनकी देश-प्रेम और राजनैतिक सेवा की प्रवृत्ति कञ्चन के समान निष्कलंक देदीप्यमान है।



[यह तसवीर १९२९ में जेनवा में ली गई थी और इसमें निम्नलिखित व्यक्ति हैं।
खड़े हुए बाईं ओर से (१)—श्री विनयकुमार सरकार, (२) श्री अन्नपूर्णानन्द सेक्रेटरी, बाबू शिवप्रसाद गुप्त, (३) बाबू शिवप्रसाद गुप्त। बैठी हुईं—(१) श्रीमती सरकार, (२) सरकार की कन्या, (३) श्रीमती गुप्त जी।]

बाबू शिवप्रसाद की देश-सेवा ज़बानी जमा-खर्च की सेवा नहीं है। उन्होंने देश के नाम पर अपना जीवन तो ख़तरे में डाला ही है, अपनी सम्पत्ति का भी उतना अधिक अंश देश के काम के लिए समर्पित किया है कि भारत में राष्ट्रीय सेवा के अर्वाचीन इतिहास में अद्वितीय कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

देश में राष्ट्रीय विचारों को हिन्दी-भाषा-द्वारा प्रचार करने के उद्देश से इन्होंने कृष्ण-जन्माष्टमी संवत् १९७७ को 'ज्ञानमण्डल-यंत्रालय' की स्थापना की। इस यंत्रालय से हिन्दी की बहुसंख्यक अमूल्य पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और हो रही हैं। हिन्दी का प्रसिद्ध दैनिक 'आज' इसी यंत्रालय से प्रकाशित होता है और इस प्रयत्न में गुप्त जी का अब तक क़रीब ४ लाख रुपया लग चुका है। 'काशी-विद्यापीठ' इन्हीं की दानवीरता और अनुकरणीय देश-प्रेम का प्रमाण है। यह संस्था इन्होंने संवत् १९७७ में स्थापित की थी। निम्नलिखित वाक्य जो विद्यापीठ के 'समर्पण-पत्र' से उद्धृत किये जाते हैं, स्थिति को स्पष्ट करते हैं—

"१—मैं शिवप्रसाद गुप्त, श्रीनरोत्तमदास परलोकवासी का पुत्र, जाति से वैश्य-अग्रवाल, काशी का रहनेवाला हूँ। मैं अज़मतगढ़वालों के नाम से विदित कुल का एक सदस्य हूँ। और मैं अब अपने कुल के दूसरे सदस्यों से पूर्णतया

पृथक् हो गया हूँ। अतएव मैं उस सब सम्पत्ति का जिसका उल्लेख नीचे किया गया है, स्वयं बिना किसी दूसरे की शिरकत के मालिक हूँ और मुझे अधिकार है कि अपने इच्छानुसार इसको जिस तरह चाहूँ, ख़र्च करूँ या दान दूँ। मेरी ज़मींदारी बनारस, जौनपुर, फ़ैज़ाबाद, छपरा (सारन), आरा, भागलपुर इत्यादि ज़िलों में है और मेरी एक सर्राफ़े की कोठी काशी में है जो श्री बालकृष्णदास विश्वेश्वरप्रसाद' की कोठी के नाम से प्रसिद्ध है और जिसमें लेन-देन आदि का काम होता है।

"२—मेरे एक कनिष्ठ सहोदर भ्राता थे। उनका नाम श्री हरप्रसाद था। उनकी अकाल और सोचनीय मृत्यु १६ वर्ष की अवस्था में संवत् १९६० विक्रमी में हो गई। उनकी स्मृति को चिरस्थायी बनाने की कामना से मैं इस समर्पण-पत्र (ट्रस्टडीड)-द्वारा एक निधि (ट्रस्ट) की प्रतिष्ठा करता हूँ, जिसका नाम 'श्री हरप्रसाद-शिक्षानिधि' होगा।

"३—इस शिक्षानिधि के लिए मैंने दस लाख रुपया अपनी निजी पृथक् सम्पत्ति में से निकालकर समर्पण कर दिया है और उसकी स्थायी रूप से एक निधि (ट्रस्ट) बना दी है, जिसका जमाखर्च मेरी कोठी 'श्री बालकृष्णदास विश्वेश्वरप्रसाद' के बही-खाते में समर्पण (ट्रस्ट) के नाम से हो गया है और यह रुपया मेरी कोठी में जमा है, जिसका सूद दर ॥) सैकड़ा माहवारी के हिसाब से कोठी इस समय 'काशी-विद्यापीठ' को दे रही है। आगे चल कर सुविधे से इस मूल्य की उपयोगी और बिना जोखिम की चल अथवा अचल सम्पत्ति ख़रीद करके अलग कर दी जायगी, जो सूद की आमदनी अथवा मुनाफ़ा इससे होगा वह नीचे लिखे हुए उद्देश की पूर्ति में लगाया जायगा। जिनके लिए यह निधि स्थापित की जाती है किन्तु मूलधन या सम्पत्ति जो उस धन से ख़रीदी जाय वह किसी अवस्था में भी खर्च नहीं की जायगी।"

गुप्त जी की एक दूसरी प्रशंसनीय योजना 'भारत-माता का मन्दिर' है, जिसका शिला-न्यास २४ लाख गायत्रीजप और हवन के बाद चैत्र शुक्ल प्रतिपदा संवत् १९८४ को किया गया है। इस मन्दिर की बुनियाद में बहुत हिफ़ाज़त के साथ पार्चमेंट में अनेक पुस्तकें रक्खी गई हैं, जिनमें भारतीय इतिहास की मुख्य मुख्य घटनाओं की विक्रम-संवत् में ५००० वर्ष पूर्व के समय से तालिका दी गई है। आर्य-विद्या का परिचय दिया गया है। वेद, ब्राह्मण-ग्रंथ आदि जो इस समय विद्यमान हैं उनकी सूची है। नास्तिक-दर्शन, जैन, बौद्ध, चार्वाक सिद्धान्तों के ग्रंथों की भी सूची है। इस मन्दिर में भारतवर्ष का ३० फ़ुट लम्बा और ३० फ़ुट चौड़ा एक मानचित्र होगा जो देश-सेवकों का और भारतवर्ष के समस्त रहनेवाले हिन्दुओं, मुसलमानों और ईसाइयों का एक व्यापक पूजा-स्थान होगा। इस मन्दिर का निर्माण अभी तक जारी है और इसमें गुप्त जी क़रीब एक लाख रुपया लगा चुके हैं।

बाबू शिवप्रसाद जी इस प्रान्त के अग्रणी नेताओं में हैं। अनेक वर्ष तक ये आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी के सभासद् रहे हैं। सन् १९२७-२८ में 'युक्तप्रान्त कांग्रेस-कमेटी' के ये प्रमुख चुने गये और उसके बाद 'कांग्रेस-वर्किङ्ग कमेटी' के मेम्बर बनाये गये। सत्याग्रह-आन्दोलन में अनेक बार जेल गये हैं। नमक-सत्याग्रह का आरम्भ होने पर २५ जून सन् १९३० में बस्ती में इन पर दफ़ा १४४ लगाई गई थी। श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन और श्री नरेन्द्रदेव उस समय इनके साथ थे। गुप्त जी ने दफ़ा १४४ का उल्लंघन किया और दफ़ा १८८ में ३ महीने की सख़्त क़ैद की सज़ा पाई और ३००) जुर्माना हुआ। सज़ा की यह अवधि समाप्त न हो पाई थी कि ८ अगस्त १९३० को दफ़ा १२४ ए में इनके ऊपर दूसरा मुक़दमा चलाया गया और राजविद्रोह के अपराध में इन्हें एक वर्ष की सज़ा मिली। इसके बाद गान्धी-इरविन समझौते की बात शुरू हुई और वर्किङ्ग-कमेटी के मेम्बर होने के कारण २७ जनवरी १९३१ को ये सज़ा की अवधि समाप्त होने के पहले ही छोड़ दिये गये। दूसरी बार १९३२ में जब फिर आन्दोलन शुरू हुआ, ५ जनवरी १९३२ को ये दफ़ा १२४ ए में बनारस में व्याख्यान देने के अपराध में गिरफ़्तार किये गये और ६ महीने की सज़ा पाई। १ जुलाई १९३२ को ये इस क़ैद से छूटे। लेकिन १७ अगस्त १९३२ को फिर गिरफ़्तार हो गये और एक वर्ष के लिए कड़ी क़ैद की

सज़ा मिली। लखनऊ-जेल में रहते हुए १५ आक्टोबर १९३२ को इन पर फ़ालिज गिरा और बायाँ अंग बेकार हो गया। यह रोग बहुत भयंकर था और डाक्टरों को इनके बचने की कोई आशा नहीं रह गई थी। इनकी नाज़ुक हालत देखकर गवर्नमेंट ने इन्हें २३ आक्टोबर को अवधि से पहले ही छोड़ दिया।

बाबू शिवप्रशाद जी ने दो दफ़े विदेश-यात्रा की है। पहली बार ये १९१४ में विदेश गये थे। इस यात्रा में इन्होंने मिस्र, इँग्लैंड, आयर्लैंड, अमरीका, कोरिया, चीन, जापान आदि देशों का भ्रमण किया था। 'पृथ्वी-प्रदक्षिणा' नाम की पुस्तक में इन्होंने अपने इस भ्रमण का वृत्तान्त प्रकाशित किया है, जो अत्यन्त रोचक और शिक्षाप्रद है। दूसरी बार ये १९२९ के मई मास में योरप गये और २४ अप्रैल १९३० को भारत वापस आये। इस यात्रा में इन्होंने इटली, स्वीज़र्लैंड, फ्रांस, इँग्लैंड, जर्मनी, ज़ेकोस्लोवेकिया, आस्ट्रिया आदि देशों का भ्रमण किया। इनकी पत्नी इस यात्रा में इनके साथ थीं। इस बार ये अपने प्राइवेट सेक्रेटरी हास्य-रस के अद्वितीय लेखक श्री अन्नपूर्णानन्द जी को भी अपने साथ ले गये थे।

हिन्दी-भाषा के और हिन्दू-संस्कृति के श्री गुप्त जी बड़े भक्त हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि 'मंगला-प्रसाद-पारितोषिक' की स्थापना में गुप्त जी का काफ़ी हाथ था। सौर तिथियों का प्रचार और सौर पंचाङ्ग का प्रकाशन जो राष्ट्रीय दृष्टि से इतना महत्त्वपूर्ण है, इन्हीं के प्रबन्ध में और इन्हीं के पैसे से होता है। अपने जीवन के प्रत्येक कार्य में ये हिन्दी को ही स्थान देते हैं। इन्होंने अपने मोटरकार के पीछे हिन्दी में नम्बर का प्लेट लगाया था। पुलिस ने हिन्दी-लिपि में लिखे हुए नम्बर को क़ानून की दृष्टि से काफ़ी नहीं समझा और मोटर का चालान कर दिया। स्थानीय अदालत से ५) जुर्माना हो गया। गुप्त जी ने हिन्दी की प्रतिष्ठा क़ायम करने के नाम पर इस मुक़दमे को हाईकोर्ट तक पहुँचाया, लेकिन वहाँ से भी उक्त जुर्माना क़ायम रहा।

हिन्दी-साहित्य की जो कुछ सेवा 'ज्ञान-मण्डल' और 'आज' के द्वारा हुई है उससे हमारे देशवासी अच्छी तरह परिचित हैं। इसके अलावा गुप्त जी स्वयं अनेक बहुमूल्य पुस्तकों के प्रकाशक हैं, जैसे 'बुद्धचर्या', 'तिब्बत में बौद्धधर्म' 'हिन्दुत्व' इत्यादि। इनका पुस्तकालय हिन्दी, संस्कृत और अँगरेज़ी की अप्राप्य और दुष्प्राप्य पुस्तकों का भाण्डार है, जिसका मूल्य (यदि ऐसे पुस्तकालयों का मूल्य लगाया जा सकता है) कम से कम ४ लाख रुपया होगा।

गुप्त जी का स्वास्थ्य अभी तक पूर्ण रूप से सन्तोष-जनक नहीं है, तो भी पहले की अपेक्षा बहुत अच्छा है। प्रातःकाल ५ बजे उठते हैं और सवेरे का समय गायत्री के पाठ में लगाते हैं। ७ से ८ बजे तक का समय भजन सुनने में जाता है। इसके बाद ११ बजे तक समाचारपत्रों को पढ़ाकर सुनते हैं। दोपहर को विश्राम करते हैं और ३ बजे से ५ बजे तक फिर अख़बार सुनते हैं। सूर्यास्त होने के पहले ही संध्या करके भोजन कर लेते हैं। शाम को थोड़ी देर मोटर पर हवा खाने जाते हैं। शाम का यह समय अर्थात् ८॥ से ९॥ तक ज़्यादातर पूज्यपाद पंडित मदनमोहन मालवीय जी के पास बातचीत में समाप्त होता है। रात को ९ बजे से १० बजे तक वाल्मीकीय रामायण का या किसी अन्य धर्म-ग्रन्थ का पाठ सुनते हैं।

गुप्त जी ने अपने जीवन से भारतीय रईसों और ज़मींदारों के सामने एक अनुकरणीय और आदर्श जीवन पेश किया है। इनकी ठोस सेवाओं ने और इनके अनुकरणीय राष्ट्र-प्रेम ने देश में इनके नाम को इतनी ख्याति दे दी है कि मेरे लेख या मेरे ऐसे लेखकों के अनुग्रह की उसे ज़रा भी ज़रूरत बाक़ी नहीं रह गई है!

अन्त में मैं बाबू शिवप्रसाद जी गुप्त के दौहित्र और उत्तराधिकारी श्री शेरसिंह जी को हृदय से धन्यवाद दूँगा, जिनकी सहायता से ही इस लेख का लिखना सम्भव हो सका है। श्री शेरसिंह जी इस समय काशी-विश्वविद्यालय में द्वितीय वर्ष में शिक्षा पा रहे हैं। अत्यन्त योग्य और होनहार व्यक्ति हैं और जिनसे यह पूर्ण आशा है कि गुप्त जी के सिद्धान्तों और आदर्शों को ये चिरकाल तक जीवित रक्खेंगे।

—

तलाक़

तलाक़ के पक्ष और विपक्ष में सरस्वती में कई लेख प्रकाशित हो चुके हैं। यह लेख उन सब लेखों से भिन्न और अधिक विचार-पूर्ण है। इस लेख में विद्वान् लेखक ने बड़े ज़ोरदार तर्कों से यह सिद्ध किया है कि सभ्य-समाज में सर्वत्र तलाक़ का प्रचार हुआ है और होना चाहिए।

आवश्यकता आविष्कार की जननी ही नहीं, प्रत्येक परिवर्तन के पूर्व की अवस्था भी है। जब हम किसी प्रकार के परिवर्तन—किसी प्रकार की क्रान्ति को जन्म देते हैं तब उसके पूर्व आवश्यकता और असंतोष का एक ऐसा विक्षुब्ध वातावरण पाते हैं जिसे उस समय की प्रचलित प्रणाली किसी प्रकार नियंत्रण करने में समर्थ नहीं हो सकी थी। समाज के सारे नियम-उपनियम किसी अतीत अवस्था के द्योतक भले ही हों, वे सदा के लिए सत्य नहीं हो सकते। मनुष्य समय समय पर इन नियमों का, इन रूढ़ियों का परिष्कार करता आया है। इसी को हम सामाजिक सुधार का नाम देते हैं।

जब जब समाज रूढ़ियों और अन्धपरम्पराओं के बाहुल्य से व्याकुल हो उठता है तब 'धर्म की हानि' का कारण बताकर ईश्वर महाराज चाहे अवतार लेने में पिछड़ जाते हों, पर समाज-सुधार के सच्चे पुजारी सामाजिक क्रान्ति करके समाज को विनाश की ओर जाने से बचाने में आगा-पीछा नहीं करते। बुद्ध और ईसा ने जिस प्रकार सामाजिक क्रान्ति का प्रारम्भ किया था, महात्मा गान्धी भी आज उसी सामाजिक दासता को दूर करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

आज-कल यह कुछ नियम-सा हो गया है कि सामाजिक स्वतंत्रता का ज़िक्र आते ही हमारे रूढ़िवादी भाई बिना समझे ही विरोध करने को तैयार हो जाते हैं। इसे हम अपने देश का दुर्भाग्य ही कहेंगे। वास्तव में हमारा सामाजिक दृष्टिकोण ही ऐसा हो गया है कि हम अपने पुराने सिद्धान्तों को लेकर वास्तविक जगत् से एक-दम दूर चले जाते हैं और यह सोचना एक-दम छोड़ देते हैं कि अमुक प्रश्न मनु के साँचे में ढलकर भी समाज की वर्तमान समस्या के हल करने में समर्थ हो सकेगा या नहीं। हम लोगों को विदेशियों के फ़ैशन-परस्त की उपाधि दी जाती है, पर हमारे वे भाई यह सोचना भूल जाते हैं कि पीरपरस्ती तो सदैव ही पीरपरस्ती ही रहेगी, चाहे वह देश की हो या विदेश की—अन्धविश्वास जैसे भारत का त्याज्य है, वैसे ही योरप का।

'सरस्वती' के पिछले किसी अंक में एक सज्जन ने तलाक़ के विपक्ष में एक लेख लिखा है। उसमें विवाह की सार्थकता और उसकी उपादेयता के प्रमाण में उन्होंने



लेखक, कुँवर सुरेशसिंह

पशु-विज्ञान के कुछ उद्धरण दिये हैं। पशु-जगत् के सभी उदाहरण मनुष्यों पर लागू हो जायँ, ऐसी बात नहीं है। सामाजिक मनुष्य-पशु का पशुओं की जिस श्रेणी से विकास हुआ है, हमें उसके सम्बन्ध में उदाहरण भी उसी श्रेणी के पशु का देना चाहिए। स्तनपायियों का स्वभाव पक्षियों से भिन्न होता है, अतः पक्षियों के वैषयिक सुकुमारता की तुलना एक स्तनपायी जीव से नहीं की जा सकती। पक्षियों में विवाह की ओर अग्रसर करनेवाली सौन्दर्योपासना बहुत ही विकसित है। वे साधारणतः बलात्कारी नहीं होते। फिर भी उनमें सबका जोड़ा स्थायी नहीं होता, बहुत-से अस्थायी भी होते हैं।

अब रहा पशु-जगत्, सो उसमें अधिकतर बहुपत्नीक बलात्कारी होते हैं। रीछ, शेर आदि एकपत्नीक भी हैं। पर हमें तो मनुष्यों के सम्बन्ध में उदाहरण उस श्रेणी के पशुओं का लेना चाहिए जिसमें से उसका विकास हुआ है। मनुष्यों के सबसे निकट के सम्बन्धी गोरिला और शिम्पैंज़ी हैं। ये छोटे छोटे गोलों में रहते हैं, जिसमें से प्रत्येक में एक नर होता है और बाक़ी मादायें। यह अवस्था मनुष्यों की असभ्य और जंगली जातियों में अभी तक विद्यमान है। अतः इस प्रकार के निरर्थक उद्धरणों और उदाहरणों से समाज की सामूहिक माँग की उपेक्षा नहीं की जा सकती। सच बात तो यह है कि हमें इस समय यह देखने का अवकाश नहीं है कि अमुक काल में अमुक राजा के समय में तलाक़ की प्रथा थी या नहीं अथवा शेर आदि दो-चार एकपत्नीक प्राणियों में जोड़ा-विच्छेद होता है या नहीं। हमें तो इस समय अपने वर्तमान समाज, वर्तमान समय और वर्तमान परिस्थिति को सम्मुख रखकर इस प्रश्न पर विचार करना है। पहले क्या था, इसका सवाल यहाँ नहीं है। यहाँ तो प्रश्न यह है कि इस वर्तमान अवस्था में तलाक़ का जो प्रश्न उठाया गया है वह कहाँ तक सही है। यदि यह माँग सही है तो यह ज़रूरी नहीं कि हम अपने पूर्वजों की ग़लती में हाँ में हाँ मिलाकर अपने को गुमराह होने दें। हमें तो उसे सच्चे हृदय से स्वीकार करके उसका वैसा प्रबन्ध कर देना चाहिए। ईमानदारी का तकाज़ा तो कम से कम यही है।

वैसे भौतिक सुविधाओं के होने से इस प्रकार के सामाजिक परिवर्तन अपने आप ही हो जायँगे और किसी का इस ओर ध्यान भी नहीं जायगा। आज परिस्थिति के कुछ प्रतिकूल होने के कारण इस प्रश्न पर कुछ हल्ला ज़रूर मचा दिया गया है, नहीं तो जिस प्रकार बहुपत्नीक और बलात्कारी होते हुए भी भौतिक वातावरण के अनुसार मनुष्य सरीखा एक स्तनपायी पशु एकपत्नीक और सौन्दर्यप्रिय हो सकता है, उसी प्रकार उसका भावी विकास भी भौतिक सुविधाओं और परिस्थितियों के कारण ऐसा आकार ग्रहण कर सकता है जिसकी हम कल्पना नहीं कर सके हैं। इससे हमारे धर्म-प्राण भाइयों को ज़्यादा शोर-गुल मचाने की आवश्यकता नहीं है। यदि यह प्रश्न कुछ विदेशी विचारों के नक़्क़ालों की क्षीण पुकार है तो यह अपने आप ही शान्त हो जायगी और यदि यह हमारी बहनों की परम्परा की दासता का क्रान्तिमय सामूहिक विरोध है तो इस ज्वाला को कोई भी समाज शान्त नहीं कर सकता। तब इस जर्जर हिन्दू-समाज की तो बात ही दूसरी है।

विदेशों में इस विषय पर काफ़ी छान-बीन हुई है और हो रही है। आज उन देशों में यह एक बड़ी जटिल समस्या-सी हो गई है। विवाह की निस्सारता और फिर खासकर हिन्दुओं की ज़बर्दस्ती स्थायी जोड़ा मिलाने की संकीर्णता का अनुभव धीरे-धीरे जन-समुदाय को हो रहा है।

पाश्चात्य में विवाह-प्रथा में क्या भूल है, इस प्रश्न को तय करने के लिए सौ विवाहित पुरुषों और सौ विवाहिता स्त्रियों के सामने भिन्न प्रकार के लगभग ४०० प्रश्न रक्खे गये थे। इन प्रश्नोत्तरों को तैयार करने में चार वर्ष का समय लगा। उनको यदि हम किसी प्रथा को नष्ट कर देने का आधार न भी मानें तो भी उनसे हम जन-साधारण की प्रवृत्ति का अन्दाज़ा तो लगा ही सकते हैं।

उन दो सौ स्त्री-पुरुषों में से केवल २६ पुरुष और २१ स्त्रियाँ ऐसी निकलीं जो अपने दाम्पत्य-जीवन से सुखी हैं। शेष लोगों में २२ पुरुष और २४ स्त्रियों के भाग्य में सुख-दुःख दोनों पड़े हैं। वे किसी प्रकार वैवाहिक सुख-दुःख के मार्ग में होकर अपनी गृहस्थी की गाड़ी को खींचे

लिये जा रहे हैं। शेष ३६ पुरुष और ४१ स्त्रियों की परिस्थिति में आशा की कहीं झलक भी नहीं है।

जब हम इनके असंतोष के मुख्य कारण की ओर देखते हैं तब हमें ज्ञात होता है कि इनमें ३७ स्त्रियाँ और ४६ पुरुषों के दुःख का कारण स्वभाव-मूलक असन्तोष था। दुःख का दूसरा कारण शारीरिक निर्बलता प्रकट हुआ है। इसमें ३० स्त्रियाँ और ३६ पुरुष निकले हैं। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के कारण भी १० पुरुष और १८ स्त्रियाँ असन्तुष्ट पाई गईं। डाह भी ११ स्त्रियों और ८ पुरुषों के असंतोष का कारण हुआ। बच्चों के कारण ७ स्त्रियाँ और ८ पुरुष, रिश्तेदारों के कारण ४ स्त्रियाँ और ७ पुरुष असन्तुष्ट पाये गये। परन्तु सबसे बड़ा आश्चर्य यह जानकर होगा कि शराब पीने के कारण केवल ३ स्त्रियों ने झगड़ा किया था।

इस तालिका को देखकर तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वैवाहिक जीवन में दुख का सबसे बड़ा कारण स्वभाव-मूलक असंतोष ही है। वास्तव में हम किन्हीं दो प्राणियों से जिनके दो भिन्न भिन्न मस्तिष्क हैं, जिनका अलग अलग दृष्टिकोण है और जिनकी पृथक् पृथक् अनुभूतियाँ हैं, यह कैसे आशा कर सकते हैं कि वे सभी विषयों पर एक-मत होंगे। अलग अलग सोचनेवाली शक्तियाँ अक्सर नहीं, ज़्यादातर सब विषयों पर एक-दूसरे से मतभेद रक्खेंगी। हाँ, कोई स्त्री या कोई पुरुष दूसरे के लिए यदि अपनी सच्ची भावना को दबाकर दूसरे को खुश करने के लिए अथवा दूसरे पर आश्रित रहने के कारण उसकी हाँ में हाँ मिला देता है तो इसे कम से कम मैं तो दाम्पत्य-सुख नहीं कहूँगा। यह तो सुख और प्रेम दोनों के नाम पर मक्कारी करना है। सुख और प्रेम पराधीनता की छाया में नहीं पलते। मेरा तो ख़याल है कि विवाहरूपी मरुभूमि में स्नेह की मृगतृष्णा के पीछे दौड़नेवाले प्रेमी युगल अन्त में असंतोष के ही किनारे पहुँचते हैं।

यहाँ तलाक़ के प्रश्न पर विचार करने के पहले उससे अधिक महत्त्वपूर्ण विवाह के प्रश्न के बारे में भी कुछ जानकारी कर लेना ज़रूरी है।

विवाह-व्यवस्था की कहानी बहुत ही सरल है, और उसका उद्देश भी बहुत ही स्वाभाविक था। पर समाज के धर्मान्ध सूत्रधारों ने जब से इसे धार्मिक पवित्रता का आवरण पहनाकर इसे अटूट जोड़ाबन्दी का स्वरूप दे दिया है तब से इसके नाम पर स्त्रियों पर बहुत अत्याचार हुए हैं। परन्तु अब संसार के साथ ही समय में भी बहुत परिवर्तन हो गया है। उर्मिला को अकेली घर में छोड़ कर जङ्गल को चले जानेवाले लक्ष्मण को उनकी वीरता के लिए विक्टोरिया क्रास भले ही दे दिया जाय, पर अपने ऊपर आश्रिता को इस प्रकार घर में रहकर बाल सफ़ेद करने को मजबूर करने का अधिकार समाज अब मर्दों के हाथ में नहीं रहने देगा।

विवाह वास्तव में स्त्री-पुरुष का स्थायी अथवा अस्थायी सम्बन्ध है, जो वासना की भित्ति पर ही स्थित है। इसमें किसी प्रकार की धार्मिक पवित्रता की आवश्यकता नहीं, न यह किसी ईश्वरीय नियम से निर्धारित होता है। इसका वास्तविक रूप ईश्वर के रूप की भाँति अभी तक निर्धारित नहीं हो सका है। गोरिला आदि मनुष्यों के पूर्वजों और सामाजिक असभ्य जातियों के समाज का निरीक्षण करके विद्वान् लोग इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि संकरता, बहुपत्नीत्व, बहुपतित्व, एकपतित्व या एकपत्नीत्व आदि भिन्न भिन्न वैवाहिक सम्बन्धों के अलावा मुताह, नियोग, धार्मिक संयोग आदि की अस्थायी प्रथायें भी हममें अब भी विद्यमान हैं, जिनको देखते हुए यह कहना उचित नहीं जान पड़ता कि स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध की कौन-सी प्रथा ग्रहण करने योग्य है और कौन-सी नहीं। विवाह के सम्बन्ध में समाज अनेक प्रयोग कर चुका है और कर रहा है।

अब तलाक़ की बात पर आइए।

विवाह-विच्छेद के वैसे तो बहुत-से कारण भिन्न भिन्न देशों में प्रचलित हैं, पर सबसे मुख्य कारण जिसे प्रायः सभी देश स्वीकार करते हैं—स्त्री का परपुरुष से अनुचित सम्बन्ध स्थापित करना है। इस अवस्था को पुरुष-समाज सहन नहीं कर सकता। अपने को तो वह इस नियम से मुक्त रखता है, पर स्त्रियों को इसकी स्वतन्त्रता नहीं दी है।

चीन में पति अपनी पत्नी को तलाक़ दे सकता है, पर उसे वहाँ की क़ानूनी पुस्तक में दिये हुए व्यभिचार आदि दोषों को साबित करना ज़रूरी है। चीनी स्त्रियाँ किसी भी दशा में पुरुषों को तलाक़ नहीं दे सकतीं। जापान में भी यही नियम था। पर १८१३ में क़ानून में संशोधन हुआ और वहाँ के न्यायालय ने स्त्री और पुरुष के समान अधिकार की माँग को स्वीकार करके स्त्रियों को भी तलाक़ देने का अधिकार दे दिया। इसका फल यह हुआ कि तलाक़ों की संख्या उस देश में बहुत कम हो गई। यहूदियों के समान मुसलमानों में स्त्रियाँ अपने पति को कभी तलाक़ नहीं दे सकतीं।

हिन्दुओं की दुनिया तो काशी के समान सबसे न्यारी ही है। उनकी विवाह-पद्धति के अनुसार एक दफ़ा सात बार चक्कर कर लेने पर आजीवन कालेपानी की सज़ा मिल जाती है। शादी वैसे तो लाटरी के समान एक जोखिम-सी है, पर हिन्दुओं के विवाह में तो जुआरी को इतना भी मौक़ा नहीं दिया जाता कि वह हारने पर इस बला से तोबा कर सके। एक स्त्री व्यभिचार की इल्लत में दोषी ठहराई जाने पर जाति से और घर से निकाली जाने पर भी पति से मुक्ति नहीं पा सकती। धर्म और जाति का परिवर्तन भी हिन्दुओं की स्थायी वैवाहिक शृङ्खला से छुटकारा नहीं दिला सकते। एक ओर तो बिना देखे-सुने दो प्राणी—स्त्री-पुरुष समाज के कठोर नियम में सदा के लिए जकड़ दिये जाते हैं और दूसरी ओर उन्हें कभी यह स्वतंत्रता भी नहीं दी जाती कि वे अपने माता-पिता की ग़लतियों के शिकार बनने से अपने को रोक सकें। जब तक दोनों—स्त्री-पुरुषों के लिए क़ानून तलाक़ की व्यवस्था नहीं कर देता तब तक यदि कोई माता-पिता अपने प्रिय सन्तानों को इस लाटरी में फँसाने का उद्योग करते हैं तो मैं तो उनसे यही कहूँगा कि वे अपने बच्चों के शुभैषी नहीं, उनके शत्रु हैं। जो बालक-बालिकायें अपना विवाह अपने इच्छानुसार करते हैं उनके लिए तो मुझे कुछ नहीं कहना है। वे समझबूझकर यदि इस प्रकार का जुआ खेलते हैं तो ठीक है। सुख या दुख जो भी हाथ लगे उसमें उन्हें सन्तोष ही करना चाहिए, क्योंकि उसके वे ज़िम्मेदार हैं। पर जिन बालक-बालिकाओं का विवाह बालकों के माता-पिता दुलार के मारे कर देते हैं उनको तो विवाह दुखान्त होने पर अपने पूज्यवरों की अक़्लमन्दी पर सारा जीवन रोना पड़ता है और भाग्य के सिर इसका दोष मढ़कर अपने जी को किसी प्रकार शान्त करना पड़ता है। समाज की इसी अव्यवस्था को बदलने के लिए तलाक़ की आवश्यकता है।

उदाहरण के लिए मैं योरप के दो देशों ग्रीस और रोम को लेता हूँ। हिन्दुओं के समान इन देशों के निवासियों में भी विवाह एक स्थायी सम्बन्ध माना जाता था। ग्रीस में पहले तलाक़ का कोई नाम भी नहीं जानता था। पर धीरे धीरे सामाजिक माँग की अवहेलना नहीं की जा सकी और तलाक़ ग्रीस में रोज़मर्रा की मामूली-सी बात हो गई। पुरुष जब चाहे अपनी स्त्री को बिना किसी प्रकार का दोष लगाये छोड़ सकता था। हाँ, उसे ऐसा करने के पूर्व अपनी स्त्री को उसके पिता के घर से पाये हुए दहेज़ के साथ लौटाल देना पड़ता था। पत्नी को तलाक़ के लिए अदालत में कारण-सहित प्रार्थनापत्र देना पड़ता था। रोम में भी विवाह एक प्रकार से स्थायी ही था। पति को कुछ ऐसे अधिकार प्राप्त थे जिनके द्वारा वह अपनी पत्नी को छोड़ सकता था, पर उसके इन अधिकारों पर जनता का नियंत्रण रहता था। यही कारण था कि रोम में पाँच सौ वर्ष तक जनता की सम्मति की अवहेलना करके किसी को तलाक़ देने का साहस नहीं हुआ। पर बाद को समाज में तलाक़ का प्रचार हो गया और इतना अधिक हो गया कि उस समय की सभ्य स्त्रियाँ बीते हुए वर्षों की गिनती अपने छोड़े हुए पतियों से करने लगीं।

तलाक़ के विरोधी जो दलीलें पेश करते हैं उनमें कोई तथ्य नहीं है। उदाहरण के लिए वे बच्चों के हित की आड़ लेकर इस प्रश्न को निस्सार साबित करना चाहते हैं। तलाक़ देने से बालकों के हित पर कोई विशेष आघात पहुँचता है, इसे मैं स्वीकार करने को तैयार नहीं हूँ। मैं तो उस गंदे वातावरण में जहाँ माता-पिता के नित्य झगड़े होते हैं, बालकों के नवीन मस्तिष्क ख़राब हो जाने की अधिक संभावना पाता हूँ और मेरा तो विश्वास है कि

इस प्रकार के झगड़ालू वातावरण में बालकों को रहने देने से उनके माता-पिता को तलाक़ की स्वतंत्रता देकर अलग हो जाने का मौक़ा देने से हम बालकों के हितों की अधिक रक्षा कर सकेंगे। तलाक़ के लिए क़ानूनी स्वीकृति मिल जाने पर भी कुछ कारण ऐसे हैं जो विवाह-सम्बन्ध के विच्छेद में बाधक होंगे। उदाहरणार्थ हम संतान के स्नेह को ही ले सकते हैं।

तलाक़ विवाह-प्रथा का शत्रु है। ऐसा कहना भ्रमपूर्ण है। यदि वास्तव में विवाह एक पवित्र सम्बन्ध है तो तलाक़ भी विवाह का सुधार करने के लिए एक आवश्यक वस्तु है। किसी भी पवित्र सम्बन्ध की रक्षा क़ानून के दबाव से करना उसका अपमान करना है। यदि विवाह कृत्रिमता की भित्ति पर नहीं, वरन दो हृदयों के पारस्परिक प्रेम की सुदृढ़ चट्टान पर स्थित है, तो तलाक़ का क़ानून होने पर भी वह पूर्ववत् सुरक्षित बना रहेगा और यदि विवाह स्त्रियों को ग़ुलाम बनाने का पुरुषों का एक साधन-मात्र है तो इसके नाश को संसार की कोई भी शक्ति रोक नहीं सकती।

जुगनू-गीत

लेखक, श्रीयुत मोहनलाल महतो

जगमग कर जुगनू छनछन पर,
जीवन-मग का तम प्रतिपल हर।
किसलय किसलय पर हँस सजनी,
सिहरे ओस बूँद मिस रजनी॥

तम-अञ्चल हीरक से दे भर,
जगमग कर जुगनू छनछन पर।
चूर्चूर धन अभिलाषा-सी,
दीप्तिमान-नीरव भाषा-सी॥

मूर्तिमान कविता-सी सुखकर,
जगमग कर जुगनू छनछन पर।
तू भूतल की तारावलियाँ,
विद्युलता की जगमग कलियाँ॥

तू ज्वलन्त स्मृतियों का निर्झर,
जगमग कर जुगनू छनछन पर।
अपने नवगीतों में कविवर,
रख न सका जिसको सँभाल कर॥

तू है वही उपेक्षित सुस्वर,
जगमग कर जुगनू छनछन पर।
एक आह भर चले गये जो,
अपनापन दे छले गये जो॥

तू उनका है जरजर-अन्तर,
जगमग कर जुगनू छनछन पर।
जिनको भूला जग हँस, रोकर,
उनकी चिताकणा है सुन्दर॥

उड़ती है तू आज लगा पर,
जगमग कर जुगनू छनछन पर।
विरहपत्रिका वह सकरुणतर—
जिसके तू ज्वालामय अक्षर॥

पढ़ता जिन्हें निशा भर अम्बर,
जगमग कर जुगनू छनछन पर!

भूषण का दूषण

हिन्दी में 'शिवाबावनी' की अराष्ट्रीयता का प्रश्न महात्मा जी के सम्मेलन के भाषण से उठ खड़ा हुआ है। इसी सम्बन्ध में हम यहाँ यह लेख छाप रहे हैं। आशा है, हिन्दी के विद्वान् इस महत्त्व के प्रश्न पर धैर्यपूर्वक विचार करने का कष्ट करेंगे।

लेखक, श्रीयुत विनोद विहारी

शिवाबावनी वीर-रस की उच्च कोटि की कविता का ग्रन्थ माना जाता है। अब से लगभग ३०० वर्ष पूर्व महाकवि भूषण ने इसकी रचना करके अपार धन और यश का अर्जन किया था। तब से अब तक इस कविता की हिन्दी में वैसी ही धाक जमी चली आ रही है। परन्तु अब समय बदला है। अब लोगों ने कहना शुरू किया है—"राष्ट्रीय दृष्टि से इस कविता का कोई महत्त्व नहीं।" महात्मा गांधी ने इन्दौर-सम्मेलन में सभापति के आसन से जो भाषण किया था उसमें उन्होंने इसकी ओर इशारा किया है और कहा है—"परीक्षाओं की पाठ्य पुस्तकों में से एक पुस्तक के बारे में एक मुसलमान की भी, जो देवनागरी लिपि अच्छी तरह जानते हैं, शिकायत है। उसमें मुग़ल बादशाह के लिए भली-बुरी बातें हैं। वे सब ऐतिहासिक भी नहीं हैं। मेरा नम्र निवेदन है कि पाठ्य पुस्तकों का चुनाव सूक्ष्म विवेक के साथ होना चाहिए और उसमें राष्ट्रीय दृष्टि रहनी चाहिए।"

महात्मा गांधी ने जो प्रश्न उठाया है उस पर हमें गम्भीरता-पूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। शिवाबावनी केवल इसी लिए त्याज्य नहीं है कि वह साम्प्रदायिकता की आग को भड़कानेवाली है, बल्कि इसलिए भी कि वह वीररस का वास्तविक उदाहरण न होकर रीति-ग्रन्थ-काल की अन्य शृङ्गारी कविताओं की भाँति ही कामुकता-पूर्ण भी है।

पंडित लक्ष्मीधर बाजपेयी ने महात्मा जी के उक्त भाषण का प्रतिवाद किया है। भाषण के इस अंश के सम्बन्ध में उदाहरण-स्वरूप शिवाबावनी का एक कवित्त उद्धृत करके वाजपेयी जी जोश में क्या कह गये हैं, ज़रा यह भी सुन लीजिए—"जब कोई ग्रामीण बुड्ढा कड़ककर 'यह कवित्त पढ़ने लगता है तब सुननेवालों का ख़ून खौल उठता है, भुजायें फड़कने लगती हैं........सुननेवाले चाहे मुसलमान ही क्यों न हों, वे भी अपने जातीय भाव को भूलकर एक बार वीर-रस के प्रखर प्रवाह में वह जाते हैं।" वाजपेयी जी ने जो कवित्त उद्धृत किया है उसकी अन्तिम पंक्ति इस प्रकार है—

तेज तम-अंस पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ-बंस पर सेर शिवराज है।

परन्तु इस प्रकार के रूपक बाँधकर कोई किसी के हृदय में वीर-रस का संचार नहीं कर सकता। ख़ून तब खौलता है, भुजायें तब फड़कती हैं, युद्ध की प्रवृत्ति तब होती है, जब किसी प्रकार का अपमान या अनाचार का अवसर सामने उपस्थित होता है और कवि पूर्व-गौरव की याद दिलाता हुआ उसका चित्र उपस्थित करता है और उसका मुक़ाबला करने के लिए मरने-मारने का संदेश देता है। यदि भूषण औरंगज़ेब के अत्याचारों का वर्णन करते और हिन्दुओं को उन अत्याचारों का

मुक़ाबला करने का जोश दिलाते तब बेशक उनकी कविता वीर-रस की कही जाती और वह हिन्दुओं को फड़कानेवाली होती। हमारा ख़याल है कि उनकी कविता हिन्दुओं में मुस्लिम-विरोधी भाव न तब पैदा कर सकी थी और न अब कर सकती है। इसलिए जहाँ तक हिन्दुओं के भड़काने का सवाल है, यह कविता निर्जीव है और इससे निर्दोष है। पर मुसलमान इससे भड़क सकते हैं। वाजपेयी जी चाहे जितना कहें, यह बात कोई भी स्वीकार नहीं कर सकता कि मुसलमान अपने आपको 'मलेच्छ-वंस' का कहलवाना पसन्द करेंगे। यह बात उन्हें ज़रूर बुरी लगेगी। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि एक मुसलमान ने ही महात्मा जी से इसकी शिकायत की है। वाजपेयी जी तो राष्ट्रीय विचारवाले हैं। हिन्दू-मुसलिम-एकता पर वे बहुत-कुछ लिख-पढ़ चुके हैं। मिश्रबन्धु तक जो राष्ट्रीयता में वाजपेयी जी से बहुत पीछे हैं और हिन्दू-मुसलिम प्रश्न पर इतने उदार विचार भी नहीं रखते, अपनी भूषण-ग्रन्थावली की भूमिका में जो काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुई है, लिखते हैं—"वर्तमान समय की दृष्टि से इस कवि की मुसलमानों के प्रति कटूक्तियाँ बहुत ही अनुचित एवं विषगर्भित ज्ञात होती हैं।" यद्यपि मिश्रबन्धुओं ने यह भी लिखा है कि "इनकी कविता को इस दृष्टि से न जाँचना चाहिए," तथापि हम कहेंगे कि औरंगज़ेब के समय में चाहे जो परिस्थिति रही हो, हमारे देश की वर्तमान स्थिति ऐसी नहीं है कि हम इस प्रकार की कविताओं को प्रोत्साहन दें। उस समय हिन्दू-मुसलमान दोनों शासक थे। दोनों राजनैतिक शक्ति के लिए लड़ रहे थे। दोनों एक दूसरे को हिन्दुस्तान से हटा देने का स्वप्न देख रहे थे। आज वह बात नहीं रही। आज दोनों पराधीन हैं और यह अनुभव कर रहे हैं कि मिलकर रहने में ही कल्याण है। इस दिशा में प्रयत्न भी जारी है। ऐसी दशा में यदि हम औरंगज़ेब और शिवाजी का समय बनाये रहें और गायें कि—

डाढ़ी के रखैयन की डाढ़ी-सी रहति छाती,
बाढ़ी मरजाद जस हद्द हिन्दुवाने की।
कढ़ि गई रैयति के मन की कसक सब,
मिटि गई ठसक तमाम तुरकाने की॥

तो हम अपने उठते हुए राष्ट्र का अहित ही करेंगे। यह ज़हर हम अपने बालकों को, भारत के भावी नागरिकों को क्यों पिलायें? पाठ्य पुस्तकों का निर्माण हम नवीन दृष्टिकोण से क्यों न करें?

आख़िर शिवाबावनी का हममें इतना मोह क्यों है? केवल इसी लिए न कि पिछले तीन सौ वर्षों से हम उसे वीर-रस का काव्य मानते चले आ रहे हैं और अब इस जाग्रति के युग में हमें उसकी और भी आवश्यकता है। परन्तु मैं कहूँगा कि शिवाबावनी में वह वीर-रस नहीं है जिसका आस्वादन कर हम वीर बाँकुरे बनना चाहते हैं। वह तो भटैती-मात्र है। धन की इच्छा से लिखा गया सत्रहवीं शताब्दी के अन्य साहित्यिक प्रयत्नों की भाँति वह भी एक प्रयत्न है। उस कविता को पढ़ने से ज्ञात होता है कि कवि का उद्देश एकमात्र शिवाजी का गुणानुवाद करना है। उस कविता में उस समय के हिन्दुओं को जगानेवाली कोई बात नहीं है। हिन्दू तो मानो उस समय असमर्थ थे, भयत्रस्त थे। शिवाजी न होते तो वे सब मुसलमान हो जाते। फिर उस कविता में यह भी नहीं है कि शिवाजी ने किस प्रकार लड़ाइयाँ लड़ीं, किस प्रकार मुसीबतों का सामना किया, किस प्रकार शत्रु का दमन किया तथा उन्होंने कौन-सा बल, साहस या पराक्रम दिखाया। अधिकांश पद्यों में भयत्रस्त मुग़लों की स्त्रियों का वर्णन है और औरंगज़ेब को कोसा है कि तूने बाप को क़ैद किया, भाई को मारा, तुझे नर्क होगा। यह असमर्थों और अपाहिजों की वाणी है। समर्थ अन्याय का दमन स्वयं करते हैं, ईश्वर का सहारा नहीं लेते।

वह असल में रीति-ग्रन्थों का युग था। सभी कवि अलङ्कार के ग्रन्थ बनाते थे और नायिकाभेद लिखते थे। युग के प्रभाव से भूषण भी नहीं बचे। उनका शिवराजभूषण अलङ्कार का ही ग्रन्थ है और शिवाबावनी के कवित्तों में भयत्रस्त मुग़ल-स्त्रियों का वर्णन नायिकाभेद का ही एक स्वरूप है। वे कहते हैं, शिवाजी की धाक सुनकर मुग़लानियाँ डरी हुई भागी जा रही हैं, उनकी साड़ियाँ ढीली हुई जा रही हैं, पैजामे खिसकते जा रहे हैं, बाल बिखर रहे हैं, बहुतों की सुथनियाँ उतर भी गई हैं, स्तन खुल गये हैं। कुछ उदाहरण लीजिए—

बाजि गजराज सिवराज सैन साजतहि,
दिली दिलगीर दसा दीरघ दुखन की।
तनियाँ न तिलक सुथनियाँ पगनियाँ न,
घामै घुमरात छोड़ सेजियाँ सुखन की॥
भूषन भनत पतिबाँह बहियाँ न तेऊ,
छहियाँ छबीली ताकि रहियाँ रुखन की।
बालियाँ बिथुरिं जिमि आलियाँ नलिन पर,
लालियाँ मलिन मुगलानियाँ मुखन की॥

× × ×

आगरे अगारन ह्वै फाँदती कगारन छ्वै,
बाँधती न बारन मुखन कुम्हिलानियाँ।
कीबी कहैं कहा औ गरीबी गहे भागी जाहिं,
बीबी गहे सूथनी सु नीबी गहे रानियाँ॥

× × ×

अन्दर ते निकसीं न मन्दिर को देख्यो द्वार,
बिन रथ पथ ते उघारे पाँव जाती हैं।
हवा हू न लागती ते हवा ते बिहाल भईं,
लाखन की भीरि में सम्हारतीं न छाती हैं॥
भूषन भनत सिवराज तेरी धाक सुनि,
हयादारी चीर फारि मन झुँझलाती हैं।
ऐसी परी नरम हरम बादशाहन की,
नासपाती खातीं ते बनासपाती खाती हैं॥

× × ×

सोंधे को अधार किसमिस जिनको अहार,
चारि को सो अंक लंक चंद सरमाती हैं।
ऐसी अरि-नारी सिवराज बीर तेरे त्रास,
पायन में छाले परे कन्द-मूल खाती हैं॥

ग्रीषम तपनि एती तपनी न सुनि कान,
कंज कैसी कली बिनु पानी मुरझाती हैं।
तोरि तोरि आछे से पिछौरा सों निचोरि मुख,
कहैं 'अब कहाँ पानी मुकतौं में पाती हैं?'॥

तात्पर्य्य यह कि जिस वक़्त शिवाजी और औरङ्गज़ेब में लड़ाई हो रही थी भूषण यह देखने में लगे थे कि मुग़ल-राजघराने की सुन्दर सुकुमार औरतें पर्दे से निकल कर कहाँ किस प्रकार धक्के खा रही हैं। वीर योद्धा अपने शत्रु की स्त्रियों के साथ उदारतापूर्वक पेश आते हैं। उन्हें इस प्रकार भयत्रस्त नहीं करते—उनका इस प्रकार उपहास नहीं करते।

फिर यह भी एक प्रश्न है कि शिवाजी से शाही औरतें ही क्यों इतना डरी हुई थीं। मुग़लों की फ़ौज नहीं भगी, सरदार नहीं भगे, स्वयं औरङ्गज़ेब नहीं भगा। उसके महलों पर शिवाजी का क़ब्ज़ा नहीं हुआ, पर उन महलों से शाही औरतें भग निकलीं। ग़रीबी और विवशता ने उनके वस्त्र उतार लिये। इस प्रकार कामुक हिन्दू-समाज ने उनके नग्न अङ्गों को देखा। वीर-रस की आड़ में भूषण ने तत्कालीन कामुक हिन्दू-समाज के सामने मुग़ल-राजवंश की सुकुमार सुन्दरियों को नङ्गी करके इस प्रकार उपस्थित करके ख़ूब यश और धन लूटा है! खेद है कि उनकी इस गंदी मनोवृत्ति को आज भी हम वीर-रस की पवित्र मन्दाकिनी समझते और उसी रूप में उसका आदर करते हैं। यदि हमारे साहित्य में वीर-रस का अभाव है तो हमारा यह कर्तव्य है कि हम उसकी वृद्धि करें। न कि यह कि जिसमें वीरता का नाम-निशान नहीं है उसका ढोंग करके अपने आपको धोखा दें। शिवाबावनी धोखे की टट्टी है।

महात्मा जी ने यह प्रश्न बहुत ठीक उठाया है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का यह कर्तव्य है कि वह शीघ्र से शीघ्र समस्त पाठ्य पुस्तकों से ऐसे ज़हरीले अंश निकाल दे और जैसा कि महात्मा जी कहते हैं, नवीन राष्ट्रीय दृष्टि-कोण से नये पाठ्य ग्रन्थों का निर्माण करे।

कोणार्क की यात्रा

लेखक, श्रीयुत [illegible] सूर्यप्रसाद पाठक

'कोणार्क' उड़ीसा-प्रान्त का एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान है। इस लेख में पाठक जी ने वहाँ के प्रख्यात मन्दिर का जो सचित्र विवरण दिया है, वह पाठकों को काफ़ी मनोरञ्जक प्रतीत होगा।



[मन्दिर का पश्चिमी भाग, हमारे दो साथी खड़े हैं।]

उस दिन रात्रि के १२ बजे थे, पौष मास का शुक्लपक्ष था। हम दस व्यक्तियों ने कोणार्क देखने के लिए यात्रा की। कटक से रेलगाड़ी-द्वारा पुरी पहुँचे। स्टेशन पर ही स्नानादि से निवृत्त हो गये। रायबहादुर दूधवाले की धर्मशाला में सामान रखकर जगदीश-मन्दिर देखने के लिए चले। थोड़ी देर तक मन्दिर का परिदर्शन किया, फिर भात लेकर खाया। इसके बाद कोणार्क जाने के लिए ४ बैलगाड़ियाँ १८) रुपये में ठीक की गईं।

पुरी से कोणार्क २५ मील की दूरी पर एक बालुकामय स्थान है। वहाँ जाने के लिए दो रास्ते हैं—एक मोटर का, दूसरा बैलगाड़ी का। मोटर अनेक स्थानों का चक्कर मारते-मारते कोणार्क के ५ मील इधर ही पसर जाता है—बालू को देखकर उसके नथुने फूल जाते हैं। और बैलगाड़ी कितने ही मुर्दे बैल क्यों न हों, मन्दिर तक ले ही जाती है। हम लोग गाड़ियों में बैठ कर कोणार्क को ४ बजे संध्या-समय रवाना हुए।



[मन्दिर का पूर्वी द्वार।]

पुरी नगर के बाहर आने पर बालुकामय मार्ग का श्रीगणेश हो गया। सारे हिन्दुस्तान भर में जिसकी लोग इतनी खोज करते हैं वही केवड़ा, यहाँ मार्ग के दोनों तरफ़ बन्दनवार-सा सुशोभित था। जहाँ तक मार्ग दिखता, दोनों तरफ़ केवड़ा या झाऊ के ही वृक्ष दिखते। रात को १० बजे हम लोग एक गाँव में पहुँचे। यह गाड़ीवालों का गाँव था। बैल बदलने और भोजन करने के लिए वे लोग रुक गये। हम लोगों ने भी यहीं जलपान कर लेना उचित समझा।

रात को १२ बजे वहाँ से चले। पौष मास का



[मन्दिर का उत्तरी द्वार जिसे सरकार ने बन्द कर दिया है।]



[कोणार्क-मन्दिर के भोगशाला का पूर्व द्वार।]



[मन्दिर का दक्षिणी भाग—रथ के साथ शिलाखंड का सिंह।]



[कोणार्क-मन्दिर के ऊपर की मूर्ति।]



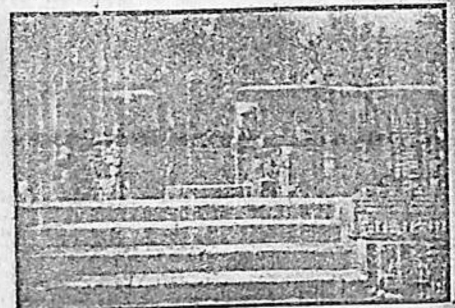
[कोणार्क मन्दिर के प्रकाण्ड शिलाखण्ड के हाथी जिनका वज़न ३५० मन से ऊपर माना जाता है।]

कृष्णपक्ष था। त्रयोदशी की अँधेरी रात थी। लालटेन की रोशनी के सिवा और कुछ भी दिखाई नहीं देता था। रास्ते से हम सब यात्री अपरिचित थे। बालू की खर-खर की आवाज़ के सिवा कुछ न सुनाई देता था। गाड़ी कहाँ जा रही है, पता नहीं था। राम-भरोसे चल रहे थे। सूर्योदय की प्रतीक्षा में सारी रात बीत गई। जब सुदूर पूर्व की ओर लाल-लाल किरणें खेलती दिखलाई दीं, मन प्रफुल्लित हो उठा। गाड़ी से उतर कर सब पैदल ही चलने लगे। चारों ओर बालू थी। बालू के टीले थे। कहीं कहीं झाऊ के वृक्ष दिखलाई पड़ रहे थे। समुद्र का गर्जन सुनाई दे रहा था। चलते-चलते हम लोग एक नदी के पास आये। गाड़ीवालों से पूछने पर पता लगा कि इस नदी का नाम "लियाखिया" (लेना-खाना) है। गौराङ्ग महाप्रभु जिस समय कोणार्क के दर्शनार्थ यहाँ आये थे उस समय इस नदी में स्नान कर इसी ग्राम में लेकर भोजन किया था, इसी लिए इसका नाम पड़ा—'लियाखिया'। हम लोग भी प्रातःकर्म कर नदी के ऊपर के ग्राम में गये और मूड़ी (चावल भाजा) और नारियल लेकर खाया। गाड़ीवालों ने भी खाया। बैलों को भी खिलाया। गाँव छोटा था, १०-१५ घर थे।

८ बजे यहाँ से प्रस्थान किया। बालू के सिवा दूर तक किसी बस्ती का पता न था। बालू में चलने में बड़ा आनन्द आता था। बीच-बीच में कहीं-कहीं पीली, कहीं-कहीं काली बालू भी मिलती थी। चलते चलते ४ मील चले आये। समय ११ के क़रीब हो गया था। पूछने पर पता लगा कि समुद्र के किनारे रामचण्डी नाम का एक ग्राम है। यहाँ से क़रीब एक मील होगा। हम लोगों ने निश्चय किया कि वहीं समुद्र में स्नान करेंगे, भोजन आदि बना कर खायँगे।

यथासमय रामचण्डी पहुँच गये। यह स्थान एकदम समुद्र के किनारे पर था। यहाँ से कोणार्क दो-तीन मील उत्तर-पूर्व के कोने में था। मन्दिर का ऊपरी भाग साफ़ दिखलाई देता था। रामचण्डी ६-७ घरों की बस्ती थी। एक काली-मन्दिर भी था। हम समुद्र-स्नान करने के लिए गये। नदी की छोटी लहरियाँ, सूर्य की किरणों से चकचक होती चल रही थीं। उधर महासागर की उत्ताल तरंगें आकर उनसे मिलती थीं। बड़े आनन्द के साथ दो घंटे तक समुद्र-स्नान किया। दो बजे भोजन-सामग्री जुटाई गई। खा-पीकर ४ बजे कोणार्क को चल पड़े। फिर पैदल चलना आरम्भ किया। गाड़ी का मार्ग छोड़कर मन्दिर को देखते बालू से होकर सीधा चले और ६ बजे शाम को कोणार्क पहुँच गये।

कोणार्क में बाबू दिव्यसिंह महन्ती के यहाँ हम लोग उतरे। उनके विनम्र, शान्त एवं सुशील स्वभाव से सबों को बड़ा आनन्द मिला। कोणार्क २०-२५ घर की बस्ती

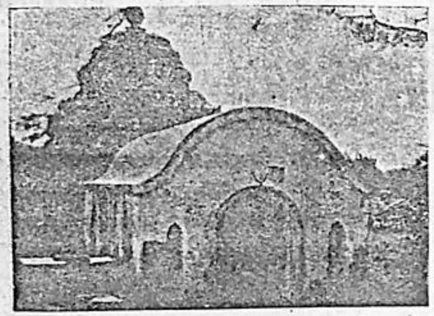


[मन्दिर के पीछे का रसोईघर, जिसमें भगवान् सूर्य का भोग बनता था।]

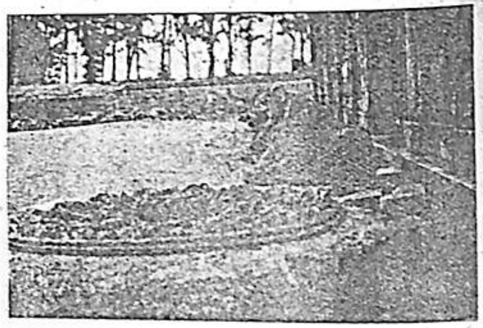
है। यहाँ एक सरकारी डाक बँगला भी है। दिव्यसिंह बाबू के घर में बड़ी भीड़ थी, कोई सभा हो रही थी, इस-लिए भोजन के लिए १२ बज गये। रात को यह निश्चय किया गया कि सबेरे ३ बजे उठकर चन्द्रभागा चला जाय। यहाँ का सूर्य-दर्शन प्रसिद्ध है। माघ-सप्तमी के दिन यहाँ एक बड़ा भारी मेला होता है। १० हज़ार के क़रीब नरनारियों का जमाव होता है। कोणार्क से २ मील की दूरी पर चन्द्रभागा समुद्र से मिलती है।

क़रीब ४॥ बजे नींद खुली। प्रातःसमीर में विचरते हुए चन्द्रभागा-पुलिन पर पहुँचे। चन्द्रभागा में पानी नहीं था। केवल १५-२० हाथ लम्बा ४ हाथ चौड़ा एक कुण्ड था। उसी में थोड़ा पानी था, थोड़ी दूर चलकर चन्द्रभागा का मुहाना था। पर पानी का प्रवाह न होने के कारण मुहाने को देखकर आनन्द नहीं मिला। यह चन्द्रभागा पहले 'चित्रोत्पला' के नाम से पुकारी जाती थी। चीनी-यात्री हूएनसाँग ने अपने यात्रा-वर्णन में जिस 'चित्रोत्पला' का उल्लेख किया है वह यही है। ग्रीक-लेखक टोलेमी ने मुहाने पर जिस नागर बन्दर का उल्लेख किया है वह यहीं बतलाया जाता है।

हठात् हम लोगों की आँखें पूर्व की ओर गईं। अब हम आनन्द-सिन्धु की लहरियों में खेलने लगे। सर्वत्र नीरवता, निस्तब्धता, शान्ति-किसलय-युक्त पौधे लहलहाने



[कोणार्क से एक मील दूर दक्षिण रामचण्डी ग्राम का काली-मन्दिर।]



[पत्थर पर सहस्रदल कमल]

लगे। पूर्व की ओर समुद्र की कोख से द्वितीय चन्द्रकोर के समान एकदम लाल दिखलाई दिया। थोड़ी ही देर में वह अरुण अर्ध चन्द्राकार में परिणत हो गया। अब वह सोने के घड़े के आकार में परिणत हुआ। साफ़ मालूम देने लगा जैसे कुंभकार चाक में घड़े को फिराता है। इसके बाद यह देखा गया, मानो कोई लाल लट्टू घुमाया जा रहा हो। फिर वह एकाएक ऊपर उठ गया। दिग्-दिगन्त में किरणें दौड़ गईं। शान्ति भंग हो गई। यही अद्भुत दृश्य देखने के लिए माघ-सप्तमी को यहाँ १०-१२ हज़ार आदमी एकत्र होते हैं। उसी दिन का सूर्योदय-दर्शन पुण्यप्रद भी माना जाता है। इस सूर्योदय की सुन्दरता का आँकना चित्रकार की तूलिका की शक्ति के बाहर की बात है।

इसके सौन्दर्य से विस्मय-विमुग्ध होकर हमारी [illegible] की सरोजनी चौधरानी के ५ वर्षीय नाती ने कहा कि मां (नानी) देख तो कितना सुन्दर दिखाता है। ५ वर्ष के बालक को भी उस अलौकिक सुन्दरता का परिबोध हुआ। यह दृश्य देखने के पश्चात् समुद्र की लहरों के साथ खेलने लगे। २०-२० हाथ ऊँची उदधि-ऊर्मि उठती थी। स्नान कर हम सब कोणार्क को लौटे।

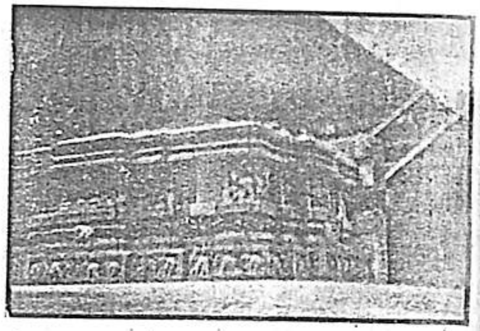
कोणार्क का प्रसिद्ध मन्दिर अति जीर्ण अवस्था में है। प्रधान मन्दिर गिर गया है। सामने का हिस्सा जिसे भोगशाला कहते हैं, विद्यमान है। इसके अन्दर

जाने का द्वार बन्द कर दिया गया है, क्योंकि इसके भी गिर जाने का भय सदा रहता था। घूम-फिरकर मन्दिर देखा। यह मन्दिर उत्कल की शिल्पकला का एक उत्कृष्ट नमूना है। मन्दिर रथाकार है। इसमें अश्व भी पत्थर के ही बनाये गये हैं, जिनकी संख्या सात है। उत्तर और दक्षिण की तरफ़ पत्थर के बड़े बड़े चक्र (पहिया) हैं। उन्हीं पर यह विशाल मन्दिर स्थित था। यहाँ की छोटी से लेकर बड़ी बड़ी तक—सभी मूर्तियाँ तक्षणकला के उत्कृष्ट नमूने हैं। छोटी-छोटी मूर्तियाँ इस खूबी से सुसज्जित की गई हैं मानों सजीव हों। प्रत्येक मूर्ति जैसी चाहिए वैसी ही बनाई गई है—कला की सूक्ष्म से सूक्ष्म बात अंकित करने में कुछ छोड़ा नहीं गया है। मुख्य मन्दिर में जहाँ सूर्यनारायण की प्रतिमा थी, अब भी ऐसी सुन्दर मूर्तियाँ हैं जो हाल की बनाई जान पड़ती हैं। मन्दिर के ऊपर शिला की एक बड़ी मूर्ति खड़ी है। मन्दिर के चारों तरफ़ जगह जगह तरह तरह की मूर्तियाँ रक्खी हुई हैं। कोई नृत्य का प्रदर्शन कर रही है तो कोई वाद्य-यन्त्रों का। मन्दिर के सामने जो भोगशाला है उसके द्वार पर सिंह की मूर्ति है। उसके पास ही कमल बनाया गया है।

कोणार्क एक प्राचीन स्थान है। प्राचीन काल से यह सूर्योपासना का एक प्रसिद्ध पीठ रहा है और यह 'मैत्रेयवन' के नाम से विख्यात था। श्री कृष्ण के पुत्र साम्ब जब शापवश कुष्ठ-रोग से ग्रसित हुए थे तब

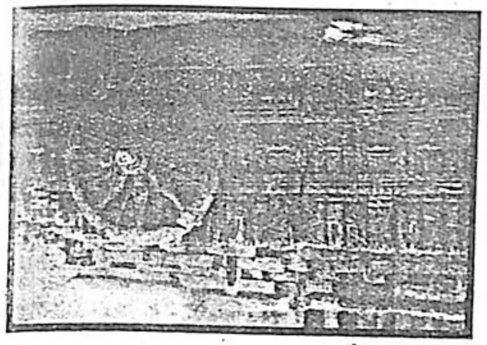


[लियाकिया नदी और सागर का संगम।]



[प्रधान मन्दिर जो टूट गया है उसके भीतर की वेदी।]

उन्होंने इसी मैत्रेयवन में चन्द्रभागा के तट पर सूर्य की आराधना की थी और वे अपने रोग से मुक्त हुए थे। उन्होंने इस स्थान पर सूर्य-ग्रह-मन्दिर बनवाया था और उसकी पूजा की व्यवस्था भी की थी। केशरी-शासन-काल में पुरन्दर केशरी ने इसी स्थान पर एक नया मन्दिर बनवाया था और पूजा का विशाल आयोजन किया था। परन्तु दुर्दैव की प्रेरणा से आज वही स्वर्गोपम कोणार्क बालुकामय मरुभूमि में परिणत हो गया है। पहले यह एक सम्पत्तिशाली नगर और प्रसिद्ध बन्दर ही नहीं था, किन्तु इसे उत्कल की राजधानी होने का भी गौरव प्राप्त हुआ था। कालान्तर में जब यहाँ का प्राचीन मन्दिर जरा-जीर्ण हो गया तब उत्कल-नरेश नरसिंहदेव ने वर्तमान मन्दिर बनवाया था। नरसिंहदेव के राजत्वकाल में ईसवी सन् १२२५ में इस मन्दिर का निर्माण-कार्य आरम्भ किया गया था और सन् १२४० में अर्थात् १६ वर्ष में बन कर तैयार हुआ था। उस समय के हिसाब से इसके निर्माण में ४० कोटि रुपया व्यय हुआ था। १,२०० कारीगर तथा मज़दूर इसके बनाने में लगे रहे। बड़ा मन्दिर २३० फ़ुट और भोगशाला १५० फ़ुट ऊँचे थे। बड़ा मन्दिर तो ध्वंस हो गया है। भोगशाला का शिखर भी भग्न हो गया है। तो भी उसकी ऊँचाई १३० फ़ुट है। मन्दिर १६ फ़ुट की पीठ पर स्थापित है। इसमें जो हाथी थे वे उत्तर तरफ़ दूर खड़े हैं। दक्षिण तरफ़ भी हैं। जिस आधार पर मन्दिर बनाया गया है उसका भार धारण करनेवाले



[मन्दिर के रथ का चक्र जिस पर समूचा मन्दिर स्थित है। नक़्क़ाशी का सर्वोत्कृष्ट नमूना।]

चक्रों का घेरा १४ फ़ुट है। इसमें नाना प्रकार की चित्रकारी की गई थी। भोगशाला २४ पहियों के सात अश्वों पर स्थित है। मन्दिर के चारों तरफ़ प्राचीर भी है। इसका घेरा ५४० फ़ुट है। यह सब ११ एकड़ भूमि में स्थित है।

पुरी, भुवनेश्वर और कोणार्क—इन तीनों स्थानों के मन्दिर अपनी कारीगरी के लिए भारत-प्रसिद्ध हैं। इन मन्दिरों में तीन बातों की विशेषता दिखाई देती है। पहली है उनकी शिल्पकला, दूसरी है उनकी विशालता और तीसरी है उनकी गंभीर आध्यात्मिकता। कोणार्क में ये तीनों बातें प्रचुर परिमाण में देखने को मिलती हैं। जिन शिल्पियों ने मनोनिग्रह-पूर्वक अपनी कारीगरी मूर्तियों की रचना में प्रदर्शित की है उनकी वह कारीगरी इस क्षत-विक्षत-अवस्था में भी भले प्रकार दिखाई देती है। टूट जाने पर भी कोणार्क-मन्दिर मनोमुग्धकारी है। उसकी चित्र-कला अति विस्मयजनक है। मन्दिर के निर्माण में बड़ी बड़ी शिलायें काम में लाई गई हैं। मन्दिर के पूर्व-द्वार पर पत्थर की एक बड़ी पटिया पर नवग्रहों की मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गई थीं। मन्दिर के टूट जाने से वह पटिया गिर गई है। वह वहाँ से उठाकर पास के अजायबघर में रख दी गई है। जिस पटिया में विस्मयजनक सुन्दर सुडौल मूर्तियाँ बनी हुई हैं वह २० फ़ुट लम्बी, ५ फ़ुट चौड़ी और ४ फ़ुट मोटी है। उसका वज़न ७४० मन कहा जाता है। नवग्रहों की मूर्तियों की इस पटिया को कलकत्ते के म्यूज़ियम में ले जाने का बड़ा प्रयत्न किया गया था। मन्दिर से समुद्र तक ट्रामवे लाइन लगाई गई थी। इस काम में सरकार की ओर से काफ़ी अर्थ-व्यय किया गया। पर नवग्रह की मूर्तियों की पटिया टस से मस नहीं हुई। उसके तृतीयांश को तोड़ कर ले जाने का उपाय किया गया, पर वह भी व्यर्थ हुआ। तब से मन्दिर से कुछ दूर पर वह छोड़ दिया गया। चन्द्रभागा के मार्ग में एक झाड़ी के नीचे बालू में वह पटिया दबी पड़ी है। सब मूर्तियाँ वहीं पास के मन्दिर में सुरक्षित रक्खी हैं।

बड़े मन्दिर के ऊपर एक गजसिंह की मूर्ति थी। वह आज वेढ़ा में पड़ी है। उसका वज़न १,३०० मन के क़रीब होगा। यह विशाल मूर्ति मन्दिर के ऊपर १६० फ़ुट की ऊँचाई पर रक्खी गई थी। बड़े मन्दिर के शिखर में जो पत्थर का कलश था, वह एक पत्थर का बना हुआ था और उसका वज़न ५,६०० मन था। यह विशाल कलश २०० फ़ुट की ऊँचाई पर रक्खा गया था। आज-कल के यांत्रिक युग में नवग्रह की पटियों का तृतीयांश ले जाना संभव नहीं हो सका। किन्तु उत्कल के शिल्पियों ने आज से ६०० वर्ष पूर्व न मालूम किस शक्ति से उन सबको उठाकर उतने ऊँचे चढ़ाया था तथा वे पत्थरों को



[लियाकिया ग्राम में यात्री साथी जलपान कर रहे हैं।]

कहाँ से किस प्रकार लाये थे। इस प्रदेश में २५ कोस तक केवल बालू ही बालू है। मन्दिर के निर्माण में किसी प्रकार का गारा-चूना नहीं लगाया गया है। और यह इतना विशालकाय मन्दिर बनाकर किस प्रकार खड़ा किया गया होगा, यह और भी एक इसकी अद्भुत बात है।

इस मन्दिर के निर्माण में एक और मज़ेदार घटना है। उड़ीसा के प्रसिद्ध नाटककार आशुनी बाबू ने उसका उपयोग अपने 'कोणार्क' नाटक में किया है। वह घटना इस प्रकार है—नरसिंहदेव के समय में बीसी महाराणा नामक एक शिल्प-विशारद था। वह बड़ा बुद्धिमान् था। उससे भूल कभी नहीं होती थी। और होती थी तो कोई पकड़ नहीं पाता था। कोणार्क-मन्दिर के निर्माणकर्ताओं में वह प्रधान था। उसके नीचे १,२०० कारीगर काम करते थे। मन्दिर जहाँ है, पहले वहाँ समुद्र का पानी भरा रहता था। मन्दिर बनकर तैयार हो गया, पर शिखर का बनना शेष था। इसी बीच में राजा ने हुक्म दिया कि मन्दिर को बनते १२ वर्ष बीत गये हैं और वह अभी तक बनकर तैयार नहीं हुआ है। यदि मन्दिर १५ दिन के भीतर बनकर न तैयार होगा तो सब मिस्त्रियों को प्राणदण्ड दिया जायगा। बीसी महाराणा को घर छोड़े १२ वर्ष हो गये थे। उसकी अनुपस्थिति में उसके एक पुत्र हुआ। उसका नाम धर्मा था। बाल्यकाल से वह शिल्पकला सीखने लगा। एक दिन माता से उसे अपने पिता का इतिहास मालूम हुआ। अतएव वह अपने पिता के पास जाने का आग्रह करने लगा। उसकी माता ने बहुत समझाया, पर उसने न माना और वह उसके पास चला गया। वह उसके पास उसी समय पहुँचा था जब राजा ने उक्त आदेश किया था। पिता को चिन्ताग्रस्त देख तथा उसका कारण जानकर धर्मा मन्दिर के निकट गया। वहाँ से लौटकर उसने आकर मन्दिर की त्रुटियाँ पिता को बतलाईं। इस पर उसका पिता बहुत नाराज़ हुआ। अन्त में धर्मा के विशेष अनुरोध पर पिता ने उसे आज्ञा दे दी। उसने एक रात में ही मन्दिर के शेष कार्य को तैयार कर दिया।

सवेरा होते ही मन्दिर को पूरा बना देखकर सब कारीगर आश्चर्य में डूब गये। और जब उन्हें यह मालूम हुआ कि एक १२ वर्ष के बालक ने शिखर को इस तरह तैयार किया है तब वे और भी चिन्ता में पड़ गये। वे सोचने लगे कि यदि राजा जानेगा तो सबको बिना मारे न छोड़ेगा। इस बात को लेकर वे उसी के ऊपर बिगड़े। धर्मा यह स्वार्थ-पूर्ण दृश्य देखकर दुखी हुआ और उसने आत्महत्या करने का निश्चय किया। वह उसी समय पास के समुद्र में जाकर कूद पड़ा। बीसी भी झपटा, पर लोगों ने उसे पकड़ लिया। बीसी शोक में पागल हो गया। राजा ने जब सुना कि मन्दिर बन गया है तब बीसी पर बहुत खुश हुआ और उसे पुरस्कार देने का निश्चय किया। पर राजा को इसका पता लग गया कि धर्मा ने मन्दिर को तैयार किया है और वह समुद्र में डूबकर मर गया है। राजा बहुत दुखी हुआ और धर्मा की प्रतिमा मन्दिर के सामने बनवाने का निश्चय किया। पर वह कार्य बाद को न हुआ।

कोणार्क का यह सूर्यमन्दिर पुरी तथा भुवनेश्वर के मन्दिरों की तरह अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। परन्तु यहाँ के इन भव्य मन्दिरों की शृङ्गारिक मूर्तियों से उड़ीसा के विलासमय जीवन का भी प्रमाण मिलता है। पुरी, भुवनेश्वर और कोणार्क की विलासमय जीवन के द्योतक मूर्तियों को देखकर आश्चर्य इसलिए होता है कि धर्म-स्थानों में यह सब प्रदर्शन क्यों किया गया है और दुःख इसलिए होता है कि कला का बेरहमी के साथ दुरुपयोग किया गया है।

कलिंग-युद्ध

लेखक, श्रीयुत अनूप शर्मा, एम० ए० एल० टी०

[कलिंग-युद्ध भारतीय संग्रामों में एक ऐतिहासिक संघर्ष है। यह वह युद्ध है जिसने सम्राट् अशोक के जीवन को कहाँ से कहाँ प्रवाहित कर दिया। संसार-विजिगीषु चक्रवर्ती को धर्माचार्य बनानेवाला यह युद्ध भारतीय इतिहास में चिर-स्मरणीय रहेगा। प्रस्तुत प्रसंग में उसी युद्ध का संध्याकालीन दृश्य है जब सम्राट् अशोक, लाखों की संख्या में वीरों का संहार करके, उसी युद्ध-भूमि के मध्य से होकर अपने शिविर को जा रहा है। जाते-जाते वह निम्नलिखित मर्मवेधी शब्द म्रियमाण सैनिकों के मुख से सुन रहा है—]

(१)

साहस ने, शक्ति ने, समुन्नति की साधना ने,
नाश को, निपात को, निधन को जगा दिया।
आहत जनों के प्राण-वायु की प्रतारणा ने,
आह के धुएँ को आसमान में लगा दिया॥
क्रोधित नृपों के युग लोहित विलोचनों ने,
लौह लेखनी से युद्ध-पटल रँगा दिया।
हाय ! प्रतिशोध के पिशाच सूत्र-धारकों ने,
वीर नायकों को रंग-मंच से भगा दिया॥

(२)

देखो म्रियमाण की दशा को भर लोचनों को,
तड़प रहा है अंग-अंग, मृत्यु आई है।
पीतभूमिका पै रक्त-रंग के प्रसंग-संग,
लाल लीक ललित ललाट पर धाई है॥
अटक रही है कंठ-कूप में गिरा की धार,
शुष्क रसना ने कुछ स्नेह-पुट पाई है।
उसकी पुकार—लौ गमिष्यमाण दीपक की—
युद्ध-भूमि-मंडल में श्रूयमाण छाई है॥

(३)

"हाय, हाय ! पुत्र मेरे ! हाय, रे कलत्र मेरे !
हाय, भूप ! जिसके लिए यों मैंने जान दी
जिसके लिए ही हा, हा ! पेट भरने के हेतु,
सुभट-संहारिणी लड़ाई घोर ठान दी
सुनता नहीं है आज वह भी नृपाल मूढ़,
जिसने मुझे है ऐसी विपति महान दी
ज्ञात होता, भूप के अनूप कर्ण-कुंजरों को,
बधिर विधाता ने अहंता की अलान दी

(४)

तो फिर सहाय सर्व-शक्तिमान शंकर तू,
तेरे दरबार में प्रवेश दीन पाता
तेरे ही अचल चरणों में क्रोस पीड़ितों का,
टूटता नहीं है जब जाके टकराता
शेष में शयान एक तू ही शेषशायी नाथ !
तू तो सुनता है, तू ही विश्व का विधाता
यह कह लोहू के पलंग पै तड़प वीर,
वीर-गति-वाले मार्ग-द्वारा स्वर्ग जाता

(५)

"एहो प्रजा-पीडक पतित पृथिवी के पति !
　　आपके लिए ही पूतनायें ध्वजा धारतीं।
भ्राता की द्वितीया का सु-व्रत छुट जाता हाय !
　　वीर-बहनों की श्रेणियाँ 'धिक' पुकारतीं ॥
खोकर असंख्य प्यारे पुत्र संगरस्थल में,
　　आपके लिए ही मायें हृदय विदारतीं।
मसक कलेजा आँसू कसक निकालती हैं,
　　आपके लिए ही विधवायें धाड़ मारतीं।"

(६)

"आदिम अनादि में कि इस ब्रह्म-मंडल में,
　　ज्योति भी न जब थी, तमिस्र भी न छाया था।
जब सार-संचित असार में—अभाव में—यों,
　　भाव उत्तरोत्तर प्रवर्धमान छाया था ॥
ऐसे एक विपुल विकास को शरीर दे के,
　　जब श्री मुकुन्द ने जगत उपजाया था।
युद्ध का प्रचार न किया था अवनीतल पै,
　　ऐसा नारकीय कृत्य ध्यान में न आया था।।"

(७)

"तब तो नृलोक-मौलि-मंडित महीप-वृन्द !
　　एहो भौम ईश्वर ! तुम्हारा यह काम है।
अपने कुकृत्य का प्रचंड परिणाम लखो,
　　पहुँचो पताकिनी समस्त स्वर्ग-धाम है ॥
हाय ! वह सुदिन उदित कब होगा नाथ !
　　देखें कब होता पारतन्त्र्य का विराम है।
मानें कब होता न विनाश भू का भूभुजों से,
　　जानें कब मिटता नृशंसता का नाम है ॥"

(८)

"जब लौं क्षितीश ईश-अंश कहलानेवाले,
　　होते हैं अनीश अवनीश नाम धर के।
एक शक्ति-मत्त की रहेगी शक्ति भूतल में,
　　जब लौं धरेंगे बाण वेप विषधर के ॥
जब लौं नृपाल एक तुच्छ वस्तु के ही हेतु,
　　मरते हुओं को देखते हैं आँख भर के।
तब लौं सहानुभूति-संयुत न होगी सृष्टि,
　　तब लौं रुकेगी न कृपाण नाश करके ॥"

(९)

"हंत ! वह काल जब शोणित-पिपासुओं ने,
　　संयम हिलाकर स्वभाव को डुला दिया।
संगर-निशा में नर-नाह-नीति-नायिका को,
　　भीति-कुट्टिनी ने नाश-नायक बुला दिया ॥
भेंट भूत-नाथ को दे जब भूमि-नायकों की,
　　भूमियों को भूमि में निधन ने सुला दिया।
प्यारी शान्ति ! सुखद हमारी शान्ति ! तूने तब,
　　कैसे वह प्रेम-पूर्ण जीवन भुला दिया ॥"

(१०)

"आगे मूर्तिमान भय सारथी-समान डटा,
　　मृतक-मही को पार करता दिखाता है।
क्रोश का, प्रहार का, विरोध और संगर का,
　　चार चक्रवाला रथ जोते लिये जाता है ॥
धूल के समान संज्ञा उड़ती मनुष्यता की,
　　ध्वस्त प्रलयानिल से ध्वज फहराता है।
भू पै शव-भार और शव पै निधन-भार,
　　निधन पै भार प्रलयाग्नि का गिराता है ॥"

(११)

"दाह युद्ध-भू की, भग्न-चाह मृत सैनिकों की,
　　आह भी अनाथों की, कराह विधवाओं की।
चढ़ के समुच्च शव-शैल से प्रकाशती है,
　　अग्नि जलते-हुए गृहों की और गाँवों की ॥
घोर हाहाकार के विघात से नृपालकों के,
　　हिल उठी चूल है सिंहासनों के पाँवों की।
ज्ञात होता फिर से विरंचि विश्वामित्र बन,
　　रचने लगे हैं सृष्टि प्रथित प्रजाओं की ॥"

गोविन्दचन्द्रिका

बाराबंकी-ज़िले के शाहपुर के श्रीमान् कुँवर भूषण-सिंह गोविन्दचन्द्रिका नाम के एक अप्रकाशित प्राचीन काव्य का पता इस प्रकार देते हैं—

गोविन्दचन्द्रिका महाकवि इच्छाराम की अप्राप्य रचना है। इसकी रचना विक्रमीय संवत् १६८४ में हुई है।

केशवदास के समकालीन होने के कारण केशव की कविता का प्रभाव इच्छाराम जी की कविता पर काफ़ी पड़ा है और इन्होंने रामचन्द्रिका की भाँति ही गोविन्द-चन्द्रिका की रचना की है।

जिस प्रकार रामचन्द्रिका में अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है, वैसे ही इस पुस्तक में भी अनेक प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं। दोनों पुस्तकों का प्रारम्भिक भाग भी बहुत-कुछ एक-दूसरे से मिलता-जुलता है।

परन्तु गोविन्दचन्द्रिका की कविता प्रसाद-गुण-पूर्ण है, रामचन्द्रिका की कविता की भाँति क्लिष्ट नहीं है। इसके सिवा इसका प्रबन्ध प्रशंसनीय है। कथाप्रवाह सम्यक् रूप से चलता है और वह अन्त तक समान रहता है, कहीं शिथिलता दृष्टिगोचर नहीं होती।

महात्मा सूरदास जी की कविता मुक्तक रूप में है। उनके सूरसागर में सब कथाओं का पूरा वर्णन नहीं है। व्रजवासी-दास-कृत व्रजविलास में कथायें पूर्ण तो हैं, पर उनमें साहित्यिक छटा का अभाव है। गोविन्दचन्द्रिका में इन दोनों बातों का सम्यक् योग है। प्रबन्ध खूब गठा हुआ तथा साहित्यिक छटा से परिपूर्ण है। अतएव जो स्थान 'रामचरितमानस' को प्राप्त है, वही स्थान कृष्ण-काव्य में 'गोविन्दचन्द्रिका' को प्राप्त होना चाहिए।

यहाँ हम उसके कुछ पद्य उदाहरण-स्वरूप उद्धृत करते हैं—

कुण्डलिया

भाषा प्राकृत संस्कृत, बानि विभेद अनेक।
बहुत रंग सुरभीन जस, हरि जस पय सम एक ॥
हरिजस पय सम एक विशदभव आमयहारी।
गावहिं सुनहिं सुजान दसा मुदमंगलकारी ॥
सब अपूत जल बंग, गंग सँग सुचि सिर राखा।
हरि गुन गान प्रमान, करहि कोउ कौनिहु भाखा ॥६०॥

हरिगीत

हरिचरित अनुपम अकथ सब कह कोउ न पावत पार है।
विधि शंभु शारद नारदादिक कह्यो मति अनुसार है ॥
तहँ बापुरो मैं कौन गनती काम किल्विष मति भरे।
लघु डाबरन को कमठ कैसो मंद मंदर गिरि धरै ॥६१॥
श्रीकृष्ण लीला अमृत अर्णव भरयो पूरण ब्रह्म है।
तिहि ते कछू लै बुंदकन किय यथामति प्रारम्भ है ॥
हरिजन सुपारावार के करतार अरु आधार है।
ले है सँवारि विचारि जन सुखसील के भंडार है ॥६२॥
तेहि उदधिते गोविन्द जसु सोई इन्दुपरिपूरन जन्यो।
तेहि चन्द्र की यह चन्द्रिका लखि नाम हरिभक्तन भन्यो ॥
खल कमल एक बिहाइ सब कँह सुखद होइ अनादि की।
हरिदास है भवरोग औषधि सुधा श्रम श्रवनादि की ॥
गोपाल पुंज प्रताप रवि लखि होइ नहिं छवि छीनता।
हरि कृपापूरन छपा छिति बसिन है है हीनता ॥६४॥
गोविन्दचन्द्र प्रकाशिका हरि आसिका अविकार है।
सुख-रासिका भवनासिका को जान जाननहार है ॥६३॥

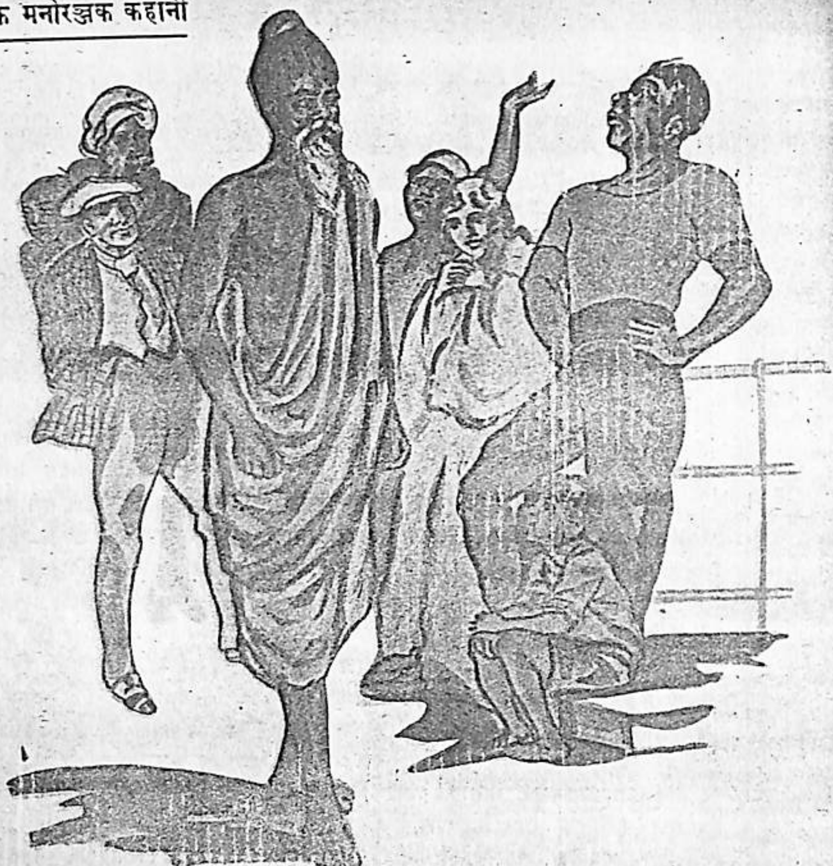
दोहा

हरि की कीरति चंद्रिका, चारौं फल की दानि।
चारयो जुग आश्रमवरण, चारयो श्रुति नवखानि ॥६५॥

दंडक

सुधा सिंधु सोमसेस संत औ गणेसदंति
　　ऐरावति रविबाजि बिसद बड़ाई है।
देवधुनी धारापार नारद औ शारदाऊ
　　हरिजू के हाथ शोभा शंखचक्र पाई है ॥
हंस हीराहिमि शंभु शंभुसैल कुन्द कंद
　　चंदन मदार क्षीर बुद्धि सुद्धि ताई है।
कृष्ण जू की कीरति ते सूरति ले एक कन-
　　जग में अनेकनि अनेक छवि पाई है ॥६६॥

आशा है, कुँवर साहब या कृष्ण-काव्य-भक्त कोई प्रकाशक इस अप्राप्य प्राचीन काव्य-ग्रन्थ का प्रकाशन कर साहित्य का उपकार करेंगे।





[हर एक मुसाफ़िर बहुरूपिया बन कर आया]

बहुरूपिया साधु

लेखक, श्रीयुत धर्मवीर, एम० ए०

"भूँ-भूँ! भूँ-भूँ-भूँ-भूँ!"

इंजन की यह आवाज़ कान में कई वार पड़ी। काग़ज़ों को वहीं मेज़ पर पटककर मैं ऊपर डेक पर आया। इधर-उधर देखा। कोई आदमी न नज़र आया। वाईं ओर से ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने की आवाज़ आई। उधर भागा। देखा तो जमघट। जँगले के नज़दीक पहुँचा तब जहाज़ के ऊपर के हिस्से से लाइफ़-वोट उतरती देखी। नीचे पानी में लाइफ़-वुआय (कार्क की पेटी) तैर रही थी। समझ गया कि कोई मनुष्य डूब गया है। जँगले के पास एक भारतीय महिला या सम्भवतः लंका की रहनेवाली स्त्री रो रही थी। वीच-वीच में वह चुप भी हो जाती। ख़ासकर उस समय जब नीचे समुद्र में कार्क की पेटी के पास किसी चीज़ के उभरने का ख़याल पैदा होता। इतने में जहाज़ का रुख़ बदल गया। पहले वह सीधा जा रहा था, अब वाईं तरफ़

हो गया। उत्तर से उसने पश्चिम की ओर मुँह कर लिया। इसके बाद फिर मुड़ गया; पश्चिम से दक्षिण को हो गया और दक्षिण से पूर्व को।

अभी पहला चक्कर पूरा न हुआ था कि लाइफ़-बोट ऊपर से नीचे पहुँच गई। इसमें तीन मल्लाह थे। एक अधेड़ उम्र का, बाक़ी दो नौजवान। तीनों ख़ूब मज़बूत थे। कश्ती के पानी को छूते ही उन्होंने समुद्र में रस्से फेंके। इनके अतिरिक्त कार्क की कई एक पेटियाँ भी फेंकीं। परन्तु मेहनत बेकार गई; यात्री का कुछ पता न चला। अब तो उस महिला ने फूट-फूटकर रोना शुरू कर दिया। वहीं दूसरे यात्री खड़े थे। नारी के रोने ने सबके दिल दहला दिये। फिर भी किसी को साहस न हुआ कि उसे तसल्ली देने की कोशिश करे। बेचारी को रोना ही तो एक चारा था। इसे भी छीन लेना उसके साथ शायद ज़ुल्म होता।

जहाज़ तीसरा चक्कर काट चुका था। जहाज़ पर काम करनेवालों में काना-फूसियाँ होने लगीं कि अब यह सीधा चलने लगेगा। तीन चक्कर हो गये हैं। इससे ज्यादा समय देना इसके लिए मुश्किल है। लेकिन मालूम नहीं, कप्तान के दिल पर उस अबला की अवस्था ने असर किया या किसी अन्य बात ने, उसने चौथे चक्कर के लिए हुक्म दे दिया। वह अभागिनी ङ्गले के साथ सिर पटक रही थी। बाक़ी लोग भी निराश हो चुके थे। जहाज़ ने आधा चक्कर और काट लिया। इतने में लाइफ़-बोट से कुछ दूर पर एक सफ़ेद-सी चीज़ तैरती हुई दिखाई दी। उस अधेड़ उम्र के मल्लाह ने बाज़ की तरह हाथ बढ़ाया और उसे पकड़ लिया। कश्ती पास आ गई थी। दूसरे मल्लाहों ने भी मदद की।

[२]

अगले दिन दोपहर से ही जहाज़ के डेक को झंडियों वग़ैरह से ख़ूब सजाना शुरू कर दिया गया। डिनर (रात्रि-भोजन) के बाद फ़ैंसी ड्रेस शो था। हर एक मुसाफ़िर बहुरूपिया बनकर आया। कोई साधु का भेस बना कर आया तो कोई दूकानदार का। एक यहूदी बन कर आया तो दूसरा पादरी। एक औरत बुढ़िया बन कर आई, दूसरी जादूगरनी। सब स्त्री-पुरुष यात्रियों में से किसका रूप, वेष आदि सर्वोत्तम है, इसका निर्णय करने के लिए तीन निर्णायक नियत किये गये। उन्होंने फ़ैसला दिया कि साधु का रूप धारण करनेवाला पहले नम्बर पर है। जब गपशप और तमाशे की बातें ख़त्म हो गईं तब संगीत आरम्भ हुआ। इतने में साधु ने ऊँची आवाज़ में कहा—"ठहरो! शांत हो जाओ!"

किसी ने पूछा—"क्या बात है?"

उत्तर मिला—"हम एक बात कहना चाहते हैं।"

"हाँ हाँ, कहिए!" सब ओर से आवाज़ें आईं।

साधु ने अपनी कथा शुरू की—"सीलोन की राजधानी कोलंबो में मैं पहले डाक्टर था। यह पिछले जन्म की बात है।"

इस पर सभी यात्री हँस पड़े।

साधु ने गम्भीरता की मुद्रा बनाते हुए कहा—

"मेरी पत्नी बहुत अच्छी थी। उसका स्वभाव बहुत शांत था। लेकिन कभी-कभी वह मुझसे मामूली-सी बात पर भी नाराज़ हो जाती थी—ख़ासकर उस समय जब वह किसी बात पर अड़ जाती। एक बार हम दोनों चीन के शंघाई शहर की ओर जा रहे थे कि एक शाम को खाना खाने के बाद चहलक़दमी के लिए ऊपर डेक पर आये। अँधेरा हो रहा था, किन्तु रात अभी नहीं पड़ी थी। इतने में हमको समुद्र के पानी के ऊपर कोई चीज़ तैरती हुई दिखाई दी। मैंने अपने जीवन-साथी से कहा—देखो, वहाँ मछली है। तुम्हें भी नज़र आती है?"

"मछली! मुझे तो मछली कहीं नहीं दिखाई देती। वह तो पक्षी है।" उसने कहा।

"पक्षी? हुँ।" मैंने सवाल किया—"अरे पक्षी होता तो अँधेरा हो जाने पर भी क्या वह अपने घोंसले को वापस न जाता? क्या इतनी देर तक वह यहीं उड़ता रहता?"

"यहाँ ही उड़ता रहता या नहीं, यह तो मैं नहीं जानती, लेकिन है यह पक्षी ही।" मेरी पत्नी बोली।

"तू भी पगली है।" मेरे मुँह से निकला।

"पता नहीं, उसने इस बात का बुरा माना या उसे यों ही गुस्सा आ गया। ज़ोर से कहने लगी—अच्छा, अगर मछली है तो अभी अभी मेरे काग़ज़ फेंकने पर वह नीचे क्यों नहीं चली गई थी?"

"बस, इसी बात पर झगड़ा शुरू हो गया। अंत में मैंने कहा—अच्छा तो लो मैं शी-शी करता हूँ। यह कह कर मैं जँगले के ऊपर चढ़ गया। मैंने दोनों हाथों से ताली बजाने की कोशिश की। इतने में उधर से धक्का आया। जहाज़ डोल रहा था। मेरा सिर चकराया और मैं पानी के अंदर जा पड़ा। कहते हैं, जब मैं डूब रहा था तब मेरी पत्नी बहुत रोई। इतना कि उससे समुद्र-देवता का दिल पिघल गया। यह उस भाग्यवती का ही काम था कि मैं बच गया।"

साधु अभी अपनी बात ख़त्म न कर पाया था कि वह स्त्री जो जादूगरनी बनी हुई थी, लाठी टेकती हुई मैदान में आई। उसने सिर हिलाते हुए कहा—

"मैंने ही इस आदमी को बचाया है। हा-हा-हा! आप लोग हँसते हैं। अगर आपको विश्वास नहीं तो बेशक इसी समय कोई शख़्स पानी में छलाँग लगाकर देख ले।"

इस पर सभी यात्री ख़ूब हँसे। जब हँसी ज़रा कम हुई तब जादूगरनी ने लाठी डेक पर मारी और चिल्लाई—"अच्छा तुम लोग अगर इस बात को सच नहीं मानते तो इस आदमी से पूछो। (यहाँ उसने साधु की ओर इशारा किया।) अपने दिल में यह शख़्स जानता है कि मैंने इसे क्योंकर बचाया है।"

इतना कहकर जादूगरनी ने अपना लंबा-सा चोग़ा उतार दिया। पहले झुकी हुई थी, अब सीधी खड़ी हो गई। यह एक साधारण महिला थी। उधर उस साधु ने भी बहुरूपियों के कपड़े उतार दिये थे।

अब वे दोनों कुर्सियों पर साथ-साथ बैठ गये। उधर जहाज़ का कप्तान अपनी कुर्सी पर खड़ा हो गया। उसने सबको बताया—"यही साधु हैं जो आज डूबते-डूबते बचे हैं।"

सरिता

लेखक, कुँवर हरिश्चन्द्रदेव वर्मा 'चातक'

एकान्त शान्त में सञ्चय कर,
यह स्नेह-धार अतिशय मनहर।
अब चली बाँटने ग्राम नगर,
सरिते! किससे प्रेरित होकर?
प्रियतम का ध्यान हृदय में धर,
काल्पनिक मिलन भावों से भर।
हो उठा रही लहरों के कर,
सरिते! तुम हो कितनी सुन्दर?

लहरों की खींच खींच रेखा,
या लगा रही हो यह लेखा।
"देखें कब मिलते हैं प्यारे,
जीवन-धन, नयनों के तारे"?
दिन स्वर्ण लुटाता है आकर,
चाँदी बरसाती निशि लाकर।
पर तुम्हें न इनसे काम सखी!
प्रियतम बिन कब आराम सखी!

गिरि की गृह गलियाँ छोड़ चुकीं,
बाधा-बंधन सब तोड़ चुकीं।
अब जा अगाध से मिलो प्रिये!
हाथों में फेनिल-फूल लिये!!
मैं भी तुम-सा ही मिलनातुर,
चल पड़ूँ लगूँ प्रियतम के उर।
फिर मेरापन सब बह जाये,
प्रियतम ही प्रियतम रह जाये।



लेखक, श्रीयुत बालकृष्ण पोद्दार

गीत विश्व की एक अमर विभूति है। संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ गीत का अस्तित्व न हो। मनुष्यों की पहुँच से दूर, प्रकृति के राज्य में भी, जहाँ न हारमोनियम है, न तबला है और न गीत बनानेवाले कवि ही हैं, संगीत का रूखा रूप विद्यमान रहता है। प्रत्येक देश में, प्रत्येक जाति में, किसी न किसी अंश में गीत अवश्य गाये जाते हैं। जङ्गली जातियों में भी उनके विशेष अवसरों पर गायन और नृत्य होते हैं, यद्यपि उनका वह संगीत सभ्य-समाज की समझ के बिलकुल बाहर होता है।

भारतवर्ष में अन्य देशों की अपेक्षा गीतों का अधिक प्रचार है। वैसे तो यहाँ भी ऐसा कोई स्थान नहीं बचा है जहाँ गीत न गाये जाते हों, तो भी कई प्रान्त गीतों के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। उन प्रान्तों के गीतों पर अनेक लेखकों-द्वारा ख़ासा प्रकाश भी डाला गया है। किन्तु अभी तक मारवाड़ के गीतों के सम्बन्ध में हिन्दी-साहित्य में एक प्रकार से कुछ भी नहीं लिखा गया है। कुछ साहित्यिकों ने वैसा करने का प्रयास ज़रूर किया है, किन्तु एक तो उनके मारवाड़ी न होने के कारण, दूसरे गीतों की भाषा सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य न होने से वे विशेष रूप से अपने प्रयत्न में सफल नहीं हो सके। इसके अतिरिक्त मारवाड़ के गीतों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की ग़लतफ़हमियाँ भी हिन्दी-साहित्य में फैली हुई हैं।

कई एक पुस्तकें एवं पत्रों के विशेषांक इस ढंग के प्रकाशित हुए हैं कि उनमें केवल चुन चुनकर मारवाड़ के गीतों की गन्दगी पर ही प्रकाश डाला गया है। इसके अलावा मारवाड़ के वे गीत जिनसे किसी दिन मारवाड़ का समूचा वायुमण्डल चारणों और बारहठों के सिंहनाद से गूँजा करता था, जिन गीतों से किसी दिन मारवाड़ के नवयुवकों में अद्भुत शक्ति उत्पन्न होती थी, आज वे गीत अन्धकार में पड़े हुए

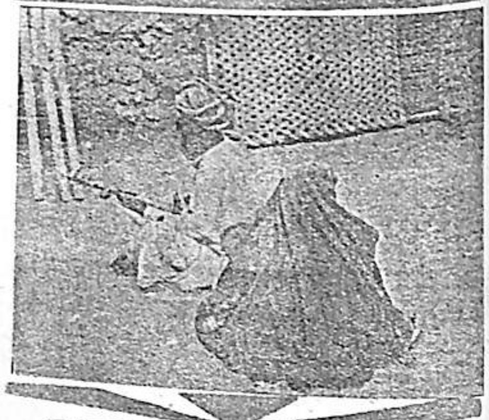
हैं। कुछ अश्लील गीतों को लोगों के सामने रखकर जो घृणित प्रचार किया गया है वह निन्द्य है। इससे स्वयं मारवाड़ी नवयुवक भी अपने गीत-साहित्य को घृणित समझने लग गये हैं। किन्तु उन गीतों के सौन्दर्य की कहानी आज भी वहाँ बड़ी दिलचस्पी के साथ सुनी जाती है।

मारवाड़ में गीतों का यथेष्ट प्रचार है, और वहाँ उनका उपयोग बड़े सुन्दर रूप से किया जाता है। वहाँ कई ऐसी श्रेणी के लोग बसते हैं जिनका पेशा ही गीत गाना है। उनमें से एक श्रेणी के गायक 'भोपाभोपी' कहलाते हैं; उनमें एक स्त्री और एक पुरुष होता है। जिस समय संसार शान्ति की गोद में विश्राम करता है, उसी समय प्रायः इनका गाना प्रारम्भ होता है। ठीक दो पहर रात बीते ये लोग गाना प्रारम्भ करते हैं और प्रातःकाल तक गाते रहते हैं। इनके गाने का विषय अमर आत्माओं की कथायें एवं विशेष कर 'पाऊजी' की कहानी होती है। इन पाऊजी ने बड़ी कठिनाई के पश्चात् राजस्थान में ऊँटों का प्रचार किया था। अनेक लड़ाइयाँ लड़ने के बाद इन्हें काबुल से ऊँटों के लाने में सफलता मिली थी। 'भोपाभोपी' के गीत का कथानक एक पर्दे पर चित्र के रूप में लिखा रहता है। जब वे गीत गाते हैं उस समय श्रोता संसार के दुःखों को भूलकर आनन्द से ओत-प्रोत हो जाते हैं।

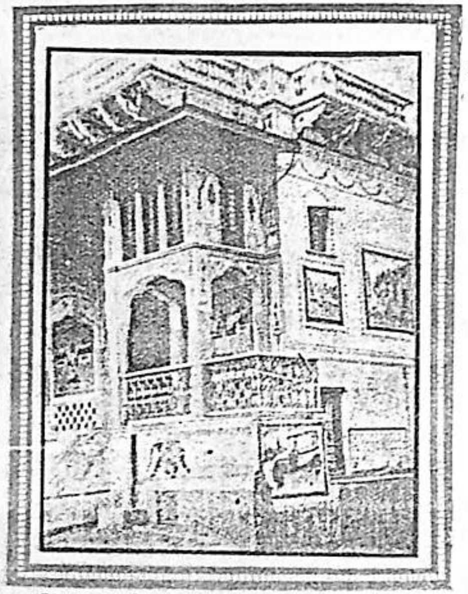
मारवाड़ के ग्रामों में ब्राह्म मुहूर्त में उठकर पनिहारे कुओं पर जाकर पानी भरते हैं। उस समय सत्तर-अस्सी हाथ गहरे कुएँ के भीतर की तरफ़ मुह करके वे ज़ोर ज़ोर से गीत के रूप में पानी के ऊपर आने का अपने साथी को संकेत करते हैं। उनके गीतों की प्रतिध्वनि कुएँ से निकलकर निस्तब्ध गाँव में फैल जाती है। उस मौलिक राग के द्वारा शान्ति का अनन्त प्रवाह प्रवाहित होने लगता है। दूर से सुनाई पड़नेवाले उन गीतों का राग हृदय में शान्ति, शक्ति, कोमलता और निर्मलता की वृद्धि करता है।

उसी ब्राह्म मुहूर्त में ग्रामीण स्त्रियाँ उठकर चक्की पीसा करती हैं। चक्की पीसने के साथ वे गीत भी गाती

श्रीयुत बालकृष्ण पोद्दार मारवाड़ी नवयुवक हैं। अपने प्रान्त के जन-गीत का आपने यहाँ सुन्दर परिचय दिया है। नीचे का चित्र भोपा-भोपी का है और उसके बाद स्वयं लेखक का।







[चित्रकला से सुसज्जित मारवाड़ की इमारतें।]

हैं। उस समय चक्की की घर्र घर्र आवाज़ के साथ उनके गीतों में सरसता आ जाती है। वे सुनने में स्वर्गीय प्रतीत होते हैं।

राजस्थान के रेगिस्तान में रात के समय ऊँटों पर यात्रा करनी पड़ती है। वहाँ के निर्जन रास्तों में डाकुओं का भय रहता है, इसलिए ऊँटवालों को बहुत सतर्क रहना पड़ता है। वे लोग जागते रहने के लिए रास्ते भर 'निहालदे', 'बनजारे' इत्यादि के गीत गाते हैं। कई व्यक्तियों के मुँह से एक साथ निकले हुए वे गीत दूर से बहुत मधुर प्रतीत होते हैं।

होली के दिनों में गुजरात के 'गर्वा-नृत्य' की ही भाँति मारवाड़ में रात के समय 'गींदड़' हुआ करती है। बीच में एक व्यक्ति नगाड़ा बजाता है। उसके चारों ओर कुण्डली के आकार में सौ तक की संख्या में ग्रामीण लोग दो दो डंके लेकर नृत्य और गायन करते हैं। डंके की चोट के साथ ही साथ उनके नृत्य की गति भी तेज़ होती जाती है, यहाँ तक कि अन्त में वह नृत्य इतना उन्मादकारी हो जाता है कि अनेक नर्तक संज्ञाविहीन होकर ज़मीन पर गिर पड़ते हैं। नर्तकों में कई व्यक्ति स्त्री, साधु, राजा, रानी इत्यादि के स्वाँग भी बनाते हैं।

मारवाड़ में 'गनगोर', 'तीज', 'बासेड़ा' इत्यादि बहुत-से त्योहार होते हैं। इन त्योहारों के दिन वहाँ की स्त्रियों के झुण्ड के झुण्ड गीत गाते हुए किसी निश्चित स्थान पर जाते हैं, और अपना त्योहार मनाते हैं। उस समय एक साथ अनेक सुरीले गलों से गाये गये गीत समूचे ग्राम में संगीत की स्वर्गीय छटा उपस्थित कर देते हैं।

मारवाड़ में सन्ध्या का बड़ी सुन्दरता-पूर्वक प्रवेश होता है। सन्ध्या के समय ग्राम के बाहर बग़ीचों के इर्द-गिर्द मोर प्रकृति के सौन्दर्य पर मुग्ध हो गायन आरम्भ कर देते हैं। कितने ही मोर तो भावुकता में इतने अधिक



[मारवाड़ के भावुक मोर।]



[मारवाड़ की एक ग्रामीण युवती।]

उन्मत्त हो जाते हैं कि अपनी सुनहरे पंखों की पूँछ को छत्र के रूप में विकसित कर नृत्य करने लगते हैं।

इसी भाँति मारवाड़ की प्रत्येक साँस में संगीत लबालब भरा रहता है। किन्तु वहाँ से हज़ारों मील की दूरी पर बसनेवाले वहीं के शिक्षित नवयुवक आज वहाँ के गीतों के इतने सुन्दर रूप का भी घोर विरोध करते हैं। उनकी शिकायत है कि वैसे गन्दे गीतों से हमारी सभ्यता की रक्षा नहीं हो सकती। इसका कारण है उनका जन्म से ही राजस्थान से सुदूर प्रवास एवं वहाँ की प्रकृति-कला से अपरिचित होना। इसके अतिरिक्त एक और भी कारण है, और वह यह कि उन शिक्षित युवकों के सम्मुख 'मारवाड़ी-गीत-संग्रह' जैसे गन्दे साहित्य का प्रचार। ख़ैर, जो कुछ भी हो, अब भी यथेष्ट समय है। यदि और कुछ नहीं तो कम से कम बङ्गाली समाज का ही अनुकरण कर वे अपनी कला के भग्नावशेषों को एकत्र करने में संलग्न हों। अस्तु—

हम यहाँ मारवाड़ के कुछ प्रचलित गीत एवं उनके अनुवाद उद्धृत करते हैं। ये गीत प्रायः प्रेम के ही गीत हैं। इन गीतों में अतीत के गौरव और भविष्य के सुन्दर स्वप्न का सौन्दर्य और यौवन विद्यमान है।

आज से एक शताब्दी पूर्व जब राजस्थान के वणिक् व्यवसाय के लिए कलकत्ता, बम्बई, मदरास इत्यादि दूर स्थानों को जाया करते थे तब उनकी वह यात्रा पाँच-सात वर्ष से कम की नहीं होती थी। किसी किसी को तो बारह वर्ष भी बीत जाते थे। उन दिनों के कवियों ने उन वणिकों की विरहिणी युवती पत्नियों के हृदय के चित्र बड़े सुन्दर ढंग से खींचे थे। और वे कवितायें गीतों के रूप में समूचे मारवाड़ में गाई जाती थीं। उन गीतों में उनकी आशा-निराशा और सुख-दुःख पूर्णरूप से अङ्कित है।

(१)

किसी युवती का पति परदेश को गया है। उसकी अनुपस्थिति में श्रावण महीने का आगमन हुआ। उस मादक महीने में वह विरहिणी अपने पति की याद करती है—

सावण तो लाग्यो पिया,
भादवो जी काँई बरसण लाग्यो,



[पनिहारा, पानी खींचने के साथ ही गीत भी गा रहा है।]

बरसण लाग्यो मेह, हो जी ढ़ोला मेह।
अब घर आय जा गोरी रा वालमा हो जी॥

प्यारे! श्रावण मास आरम्भ हो गया है, भादों भी आनेवाला है, प्रियतम मेघ का भी बरसना शुरू हो गया है। गोरी के बालम! अब तुम घर आ जाओ।

छपर पुराणा पिया पड़ गया रे कोई तिड़कण लाग्या,
तिड़कण लाग्या बोदा बाँस, हो जी ढ़ोला बाँस;
अब घर आय जा बरसा रुत भली हो जी॥

प्यारे! मकान का छप्पर बहुत जीर्ण हो गया है। इसके पुराने बाँस भी फटने लगे हैं। प्रियतम, अब तुम घर आ जाओ, जिससे वर्षा-ऋतु भली भाँति व्यतीत हो जाय।

बादल मैं चिमक पिया बीजली रे,
कोई म्हलाँ मैं डरपै,
म्हलाँ मैं डरपै घर की नार, हो जी छोटी नार,
अब घर आय जा, फूल गुलाब रा हो जी॥

प्यारे! बादल में बिजली चमक रही है, उसकी चमक से तुम्हारी युवती पत्नी अपने महलों में भयभीत हो रही है। गुलाब के पुष्प, अब तुम घर आ जाओ न!

कूवो तो है तो पीया डाक ल्यूँ जी ढ़ोला,
समदर डाक्यो, समदर डाक्यो न जाय,
हाँ जी ढ़ोला न जाय;
अब घर आयजा फूल गुलाब रा हो जी॥

प्रियतम! तुमसे मिलने के लिए यदि कुआँ ही बहता होता तो मैं उसे भी लाँघ सकती थी, किन्तु इतना चौड़ा समुद्र तो मुझसे नहीं लाँघा जा सकता। अब घर आ जाओ न बालम!

नेड़ी-नेड़ी करो पिया चाकरी जी छैला,
साँझ पड्याँ घर, साँझ पड्याँ घर आव,
हो जी ढ़ोला आव;
अब घर आयजा बरसा रुत भली हो जी॥

प्यारे! नज़दीक की ही नौकरी किया करो ताकि सन्ध्या होते ही घर आ सको। अब घर आ जाओ, जिससे वर्षा-ऋतु सफल हो जाय।

थाँन तो प्यारी लाग चाकरी जी ढ़ोला,
म्हान तो प्यारा लागो,
म्हान तो प्यारा लागो, हो जी ढ़ोला आप;
अब घर आव मृगानैणी रा बालमा हो जी॥

तुम्हें तो नौकरी ही प्रिय लगती है प्यारे! किन्तु मुझे केवल तुम ही प्यारे लगते हो। मृगनयनी के बालम! अब घर पर अवश्य आ जाओ।

अस्सी रे टका री ढ़ोला चाकरी रे
कोई लाख मोहर की नार,
लाख मोहर री भोली नार, हो जी ढ़ोला;
अब घर आय जा गोरी रा वालमा हो जी॥

नौकरी तो केवल अस्सी टकों की है प्यारे! किन्तु तुम्हारी भोली नार लाख मोहर की है। गोरी के बालम अब घर अवश्य आ जाओ।

अंग मैं नहीं मावे का चली जी,
ढ़ोला हिवड़े नहीं मावे,
हिवड़े नहीं मावे हार, हो जी ढ़ोला;
अब घर आयजा गोरी रा वालमा हो जी॥

मेरे अंग में अँगिया एवं छाती पर हार नहीं अटता है। अब घर आ जाओ न प्रियतम!

आवण आवण कह गयो रे ढ़ोला,
कर गयो कवल अनेक,
कर गयो कवल अनेक;
अब घर आयजा बरसा रुत भली हो जी॥

प्यारे! आने के लिए कह गये थे, और तुमने आने की बहुत-सी प्रतिज्ञा भी की थी। अब तो घर आ जाओ, जिससे वर्षा की ऋतु सफल हो जाय।

दिनड़ा तो गिण गिण ढ़ोला,
घिस गई म्हारी आँगलियाँ,
काँई आँगलियाँ री रेख, हो जी ढ़ोला;
अब घर आय जा फूल गुलाब रा हो जी॥

तुम्हारी प्रतीक्षा में दिन गिनते गिनते मेरी अँगुलियों की रेखायें घिस गईं। गुलाब के पुष्प, अब घर पर अवश्य आ जाओ प्यारे।

तारा तो छाई रातड़ी, जी ढ़ोला, फुलड़ा छाई,
फुलड़ा छाई सेज, हो जी ढ़ोला सेज,
अब घर आयजा गोरी रा बालमा हो जी॥

रात्रि नक्षत्रों से सजी है एवं मेरी सेज पुष्पों से सजी हुई है। गोरी के बालम अब घर आ जाओ प्रियतम!

बिरछा बिलूँबी बेलड़ी पिया,
नराँ विलूँबी नार हो जी ढ़ोला;
अब घर आय जा बरसा रुत भली हो जी॥

वृक्षों से लतायें आलिङ्गन कर रही हैं और स्त्रियाँ भी अपने अपने पति से आलिङ्गन कर रही हैं। अब तो घर आ जाओ ताकि वर्षा की ऋतु सफल हो जाय, प्रियतम!

उपर्युक्त गीत की भाषा यद्यपि आलङ्कारिक नहीं है, तो भी भावों में लालित्य भरा हुआ है। वृक्षों से लताओं के आलिङ्गन का सादृश्य कुछ कम काव्यमय नहीं है। यह गीत "निहालदे सोढ़ा" का है। वर्षा-ऋतु में 'मेघ-मल्लार' के स्वर में गाया जाता है।

(२)

नीचे के गीत में किसी नवयौवना का पति परदेश जा रहा है। उस विछोह के समय उसकी पत्नी सजल नेत्रों से अपने पति को विदाई दे रही है—

ऊँची तो खींव ढ़ोला बीजली,
नीची खींव छै निवाण जी ढ़ोला;
ओ जी ओ गोरी रा लस्करिया,
ओ लँगड़ी लगायर कोठ्ये चाल्या जी ढ़ोला॥

प्रियतम! बिजली ऊँची ही चमका करती है और पानी नीचे ही बहता है। अजी गोरी के बालम! प्रीति का सम्बन्ध स्थापित कर अब कहाँ जा रहे हो?

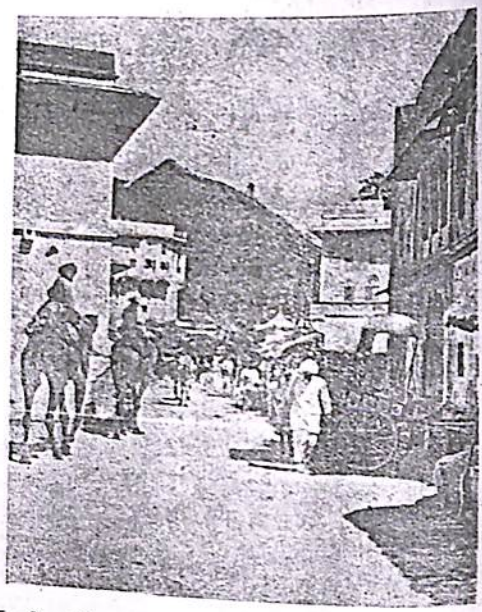
चढ़ो येतो राँधाँ ढ़ोला खीचड़ी,
रहो येतो जींमवारा भात जी ढ़ोला।

प्रियतम! यदि तुम यहीं रहो तो तुम्हें अच्छा से अच्छा भात पका कर खिलाऊँगी, और यदि जाओगे तो केवल खिचड़ी ही।

जीम चढाँगा गोरी खीचड़ी,
आय जीमाँगा जींमवारा भात ये गोरी।

प्रिये! खिचड़ी खा कर मैं चला जाऊँगा। तुम्हारे वे बढ़िया चावल जब परदेश से लौट कर आऊँगा तब खा लूँगा।

चढ़ो येतो ओढ़ाँ ढ़ोला चूनड़ी,
रहो येतो दिखणीरो चीर जी ढ़ोला।



[आमेर की एक सड़क—गीत के सहारे एक लम्बा रास्ता तय करके ये ऊँटों पर सवार लोग बस्ती में पहुँचे हैं।]

प्यारे! यदि तुम जाओगे तो मैं एक साधारण चुनड़ी ही ओढ़ूँगी और यदि यहाँ रहो तो दक्षिण से मँगाया हुआ सुन्दर चीर ओढ़ सकती हूँ।

निरख चढ़ाँगा गोरी चूनड़ी,
आय निरखाँगा दिखणीरो चीर ये गोरी।

प्रिये! मैं तुम्हें चुनड़ी पहने देख कर ही परदेश के लिए प्रस्थान करूँगा। जब मैं वापस आऊँगा, उस समय तुम दक्षिण से मँगाया हुआ चीर पहनना।

चढ़ो येतो घालाँ मारूजी ढ़ोलियो,
रहो येतो फूलड़ाँरी सेज जी ढ़ोला।

प्रियतम! यदि जाओगे तो तुम्हारे लिए केवल खटिया ही बिछाऊँगी और यदि यहाँ रहो तो पुष्पों की सुन्दर से सुन्दर सेज बिछा दूँगी।

पोढ़ चढ़ाँगा गोरी ढ़ोलिये,
आय पोढ़ाँगा फूलड़ाँ री सेज ये गोरी।

जाने के समय तो उस साधारण खटिया पर ही सो लूँगा प्रिये! जब वापस आऊँगा तब फूलों की सेज बिछाना।

इतने प्रलोभन देने पर भी जब प्रेमिका अपने प्रियतम को परास्त नहीं कर सकी तब अपनी असफलता पर झुँझला कर वह कहती है—

चढ़ाँये चढ़ाँओ ढ़ोला के करो,
कोई पुछो म्हार मनड़ री बात जी ढ़ोला।

तुम तो केवल जाने ही जाने की बातें करते हो, मेरे हृदय की तो तुमने एक भी बात नहीं पूछी।

निरुत्तर प्रियतम, अपनी सिसकती हुई वेदना को हृदय में दबाये, घोड़े पर सवार हो जाने के लिए प्रस्तुत हो गया।

जद पग मेल्यो ढ़ोला पागड़,
ड़ब ड़ब भरिया छै नैण जी ढ़ोला।

जब प्रियतम ने पागड़े में पाँव डाला, उस समय प्रेमिका के नेत्रों से अश्रुधारा बह चली।

आँसू तो पुँछ्या ढ़ोला पेच स्यूँ,
लीनी छै हिवड़े लगाय जी ढ़ोला।

प्रियतम ने अपनी पगड़ी के पेंच से आँसू पोंछे एवं प्रेमिका को हृदय से लगा लिया। (सिसकती हुई प्रेमिका कहती है।)

थारी तो ओलूँ ढ़ोला म्हे कराँ,
घड़ी दोय लस्कर थामो जी ढ़ोला।

तुम्हारी तो प्यारे! मैं हमेशा याद करती रहूँगी, इस समय कम से कम दो घड़ी के लिए अपना लश्कर रोक रक्खो न!

म्हारो तो थाम्यो लस्कर न थम,
म्हारा बाबाजी रे हुक्मा लस्कर थमसी ये गोरी।

प्रिये! यह लश्कर मेरा रोका नहीं रुकेगा। यह तो पिता जी की आज्ञा से ही रुक सकता है।

उपर्युक्त गीत में सरलता, आग्रह और करुणा के भावों का सुन्दर समावेश हुआ है। यह गीत जिस उद्देश से गाया जाता था, आज-कल इसे उस अवसर पर न गा कर जिस समय लड़की ससुराल को जाती है, उस समय गाया करते हैं। उस अवसर के उपयुक्त बनाने के निमित्त, इसमें बहुत-सा संशोधन भी कर दिया गया है। किन्तु जितना लालित्य उपर्युक्त गीत में है, उतना संशोधित गीत के भावों में नहीं है।

(३)

प्रियतम के बिछोह में प्रेमिका पति-मिलन का स्वप्न देखती है—

सुपन में देख्या भँवरजी न आवताँ जी,
कोई माथ पचरंग येडी ये पाग;
काँदे ये जी ये सबज रुमाल,
हाथाँ में शीशी—प्याला प्रेम का जी।

स्वप्न में प्रियतम को आते हुए देखा। उनके मस्तक पर पचरंग पगड़ी थी, कंधों के ऊपर हरे रंग की चादर थी और हाथों में प्रेम की मदिरा का मधुघट एवं प्याला लिये हुए थे।

आँगण मोचा भँवर जी रा मचकिया जी,
कोई थलिया ठिमक्या ये जी ये सेल;
गोरी रे आँगण खुड़को कुण करयो जी।

आँगन में प्रियतम के जूतों की चरचराहट एवं भाले की ठिमकन की आवाज़ आने लगी।

टग टग म्हलाँ भँवर जी चढ़ गया जी,
कोई खोल्या धण सजड़ ये जी ये किवाड़;
साँकल तो खोली बीजली सालकी जी।

वे टग् टग् महल में चढ़ गये और व्यग्रता के साथ जिस कमरे में उनकी प्रेमिका सोई हुई थी उसके किवाड़ों की साँकल खोली।

हाथ पकड़कर भँवर बैठी करी जी,
कोई बू जी म्हार मनड़रीये जी ये बात,
अँखिया निमाणी पापण खुल गयी जी।

हाथ पकड़ कर प्रियतम ने मुझे जगाया, और मेरे हृदय की बातें पूछने लगे। इतने में निर्मोही आँखें खुल गईं।

सुपना रे बैरी तन मार घूँ जी,
कोई के थारी कतल ये जी ये कराय,
सूती तैं ठगली भँवर जी री गोरड़ी जी।

हे स्वप्न! तुमने मेरे साथ बड़ा विश्वासघात किया, यदि मेरा वश चलता तो तुझे मैं क़त्ल करा देती।

इस पर स्वप्न कहता है—

म्हे छाँ सुपना सरब सुलखना जी,
कोई बीछुड्या न देवा ये जी ये मिलाय,
म्हें छाँ सुपना ढ़लती रैन का जी।

सुन्दरी! मुझे क़त्ल क्यों कराती हो? मैं तो बिछुड़े हुए प्रेमियों का मिलन कराता हूँ।

(४)

एक और गीत का कुछ अंश—

बाय चल्या भँवरजी पीपली जी,
हाँ जी ढ़ोला हो गई घेर घुमेर,
बैठन की रुत चाल्या चाकरी जी,
ओ जी म्हारी सास सपूती रा पूत,
मतना सिधारो पूरब की चाकरी जी।

स्त्री कहती है—हे प्रियतम! तुमने जो पीपल का वृक्ष लगाया था वह अब ख़ूब घनी छायावाला हो गया है। जब उसकी छाया में बैठने की ऋतु आई तब तुम परदेश को चले। हे मेरी सुपुत्रवती सास के पुत्र! तुम कमाने के लिए पूरब मत पधारो।

ब्याय चल्या छा भँवरजी गोरड़ी जी,
हाँ, जी ढ़ोला हो गई जोध जवान,
बिलसन की रुत चाल्या चाकरी जी,
ओ जी म्हारी लाल नणद राओ वीर,
मतना सिधारो पूरब की चाकरी जी।

तुमने जिस गोरी से विवाह किया था वह यौवनमद से मतवाली हो गई है। जब विलास की ऋतु आई तब तुम कमाने चले। हे मेरी प्यारी ननद के भाई! कमाने के लिए पूरब की ओर मत जाओ।

कुँण थारा घुड़ला भँवर जी कस दिया जी,
हाँ, जी ढ़ोला कुँण थारी कस दिनी जीन,
कुणयारे हुकमा चाल्या चाकरीजी,
ओ जी म्हार हिवड़ा रा जिवड़ा,
मतना सिधारो पूरब की चाकरी जी।

हे नाथ! किसने तुम्हारा घोड़ा कस दिया, किसने उस पर ज़ीन कस दी और किसकी आज्ञा से तुम परदेश जा रहे हो? हे मेरे हृदय के जीव! तुम कमाने के लिए पूरब की ओर मत जाओ।

बड़े बीरे घुड़ला गोरी! कस दिया जी,
हाँ ए गोरी! साथीड़ा कस दीनी जीन,
बाबा जी रे हुकमा चाल्या चाकरी जी।

पति ने कहा—प्रिये! बड़े भाई ने मेरा घोड़ा कस दिया है, और साथियों ने उस पर ज़ीन रख दी है। पिता जी की आज्ञा से मैं कमाने के लिए जा रहा हूँ।

ऐक रुपैयो भँवर जी मैं बणूँ जी,
हाँ जी ढ़ोला बन ज्याऊँ पीली पीली म्होर,
भीड़ पड़ जद भँवर जी बरत ल्यो जी,
ओ जी म्हारी सेजा रा सिणगार,
पिया जी! प्यारी न साग ले चलो जी।

स्त्री ने कहा—हे नाथ! मैं तुम्हारे लिए रुपया बन जाऊँगी। मैं तुम्हारे लिए पीली पीली मोहर बन जाऊँगी। हे प्राणधन! जब आवश्यकता हो उस समय उसे काम में लाना। हे मेरी सेज के श्रृङ्गार! प्रियतम! अपनी प्रेमिका को साथ लेते चलो।

पति परदेश को चला गया। स्त्री पति को पत्र लिखती है—

कदे न ल्याया भँवर जी! सीरणी जी,
हाँ जी ढ़ोला कदे न करी मनुवार,
कदे न पूछी मनड़े री बारता जी,
ओ जी म्हारी लाल नणद रा ओ बीर,
थाँ बिन गोरी न पलक न आवड़ जी।

हे स्वामी! तुम न कभी मिठाई लाये और न मुझे प्यार से खिलाया। न कभी तुमने मन की बात ही पूछी। हे मेरी प्यारी ननद के भाई! तुम्हारे बिना तुम्हारी गोरी को एक क्षण भी चैन नहीं पड़ती।

इस गीत में विरहिणी पत्नी की बड़ी मार्मिक पुकार है। इस गीत में उसके अंतस्तल का प्रेम छलका पड़ता है।

उपर्युक्त गीतों के द्वारा प्रत्येक साहित्यसेवी इस तह तक पहुँच सकता है कि इन गीतों की उपयोगिता तथा व्यापक महत्त्व कितना अधिक है।

भारत के एक प्रसिद्ध व्यक्ति की आत्म-कथा का एक अंश

पुजारी

लेखक, श्रीयुत रा० सा०

(१)

पुजारी यह उनका निजी नाम न था, किन्तु गाँववाले जवानी से ही उन्हें इस नाम से पुकारते थे।

पुजारी का जन्म १८७५ ईसवी में ठेठ देहात के एक बहुत ही छोटे गाँव में हुआ था। उनके गाँव से कोस कोस भर तक कोई कच्ची-पक्की सड़क न थी, डाकख़ाना भी आठ मील दूर था और बाज़ार भी प्रायः उतनी ही दूर। यही हाल पाठशाला या मदरसा का था।

पुजारी अपने पिता की ज्येष्ठ सन्तान थे। उनके पिता की अपने गाँव में ही प्रतिष्ठा न थी, बल्कि आस-पास के कितने ही गाँवों में उनके बिना पंचायत न होती थी। ईमानदारी और विशालहृदयता उनकी पैत्रिक सम्पत्ति थी। पुजारी के पिता एक बड़े परिवार के प्रधान थे। यद्यपि वे अपने पिता के एकमात्र पुत्र थे, तो भी अपने चचेरे तीन भाइयों के साथ उनका सगे भाई से भी अधिक प्रेम था। सबसे छोटे को तो उन्होंने दूर के गाँव में संस्कृत पढ़ने के लिए भेज दिया था। यद्यपि उसकी पढ़ाई 'सत्यनारायण' और 'शीघ्रबोध' से आगे नहीं बढ़ी थी, तो भी वह गाँव में पंडित कहा जाता था, और वह था भी उस गाँव के लिए वैसा ही।

पुजारी के पिता का देहान्त ४५-४६ वर्ष की ही उम्र में हो गया था। उस वक़् पुजारी १५ वर्ष के हो पाये थे। उनसे छोटा एक भाई और तीन बहनें थीं, जिनमें सबसे छोटी ६-७ वर्ष से अधिक न थी। पिता ने बड़े लड़के और बड़ी लड़की की शादी, रवाज के मुताबिक़, १०-१२ वर्ष की ही अवस्था में कर दी थी। उनके पिता के मरने के समय तीनों चचेरे चचे एक ही घर में रहते थे। तीनों ही भलेमानस थे और अपने भाई के प्रेमपूर्ण बर्ताव के चिरकृतज्ञ थे। यदि उनकी चलती तो वे पुजारी को बाप के मरने का ख़याल भी न आने देते, किन्तु पुजारी की मा दूसरी धातु की बनी थीं। मीठी बोली तो मानो वे जानती ही न थीं। ज़रा-सी बात में चार सुना देनी उनकी आदत में थी। पति के जीते समय तो ज़बान पर भारी अंकुश था; किन्तु पीछे कोई रोकनेवाला न था। उनका हृदय बहुत संकीर्ण था। वे कुढ़ा करती थीं—खेतों और धन में हमारा आधा हिस्सा होता है। देवर और उनके लड़के-बाले कैसे हमारे धन को खायँगे? ज़रा-सी बात में वे ताना दे डालती थीं। उनके देवर और देवरानियाँ पहले बहुत लिहाज़ किया करती थीं, किन्तु आये दिन की किचकिच से उनका नाकों-दम हो गया, और तीन वर्ष बीतते न बीतते उन्हें अलग हो जाना पड़ा।

(२)

पुजारी की मा अब बहुत प्रसन्न थीं। उन्होंने घर में ही नहीं, हर एक खेत में आधा आधा करवाया था। खेत उनके पास काफ़ी थे। काम करने के लिए कुछ चमारों और भरों के घर भी मिले थे। किन्तु पुजारी को खुशी कहाँ से हो सकती थी? मा के झगड़ालू स्वभाव के कारण १८ वर्ष की ही उम्र में एक परिवार का सारा बोझ उनके कंधे पर आ पड़ा था। कहाँ खाने-खेलने का समय और कहाँ यह ज़िम्मेदारी! उन्हें खेती-बारी और परिवार

को ही सँभालना न था, बल्कि छोटे भाई और दो बहनों की शादी भी करनी थी। भाई-बंधु इच्छा रहते भी सहायता न कर सकते थे, क्योंकि पुजारी की मा के स्वभाव से वे परिचित थे। कहावत थी, पुजारी की मा के मारे कुत्ते भी दरवाज़े पर फटकने न पाते थे।

गाँव के आस-पास पढ़ने का कहीं इन्तज़ाम न था, यह कह आये हैं। किन्तु पिता के जीते समय जब पुजारी तेरह-चौदह वर्ष के थे, तभी कहीं से भूलते-भटकते एक मुंशी जी उस झारखंड के गाँव में पहुँच गये थे। यद्यपि पीढ़ियों से उस गाँव के ब्राह्मणों ने विद्या से नाता तोड़ रक्खा था, तो भी उनमें अभी कुछ श्रद्धा बाक़ी थी, और मुंशी जी के पास आधा दर्जन से ऊपर लड़कों ने पढ़ाई शुरू कर दी। किन्तु दो-ढाई सप्ताह के भीतर ही अधिकांश घर बैठ गये। डेढ़ महीने में मुंशी जी भी समझ गये—"धोबी बसि के का करे, दीगंबर के गाँव।" मुंशी जी के चेलों में पुजारी ही थे, जो अन्त तक डटे रहे। कोदो देकर पढ़ने की कहावत बहुत मशहूर है। पुजारी ने कोदो तो नहीं दिया, किन्तु कहते हैं, दक्षिणा में मुंशी जी को कुछ धान ही मिलता था।

इस प्रकार अठारह वर्ष की उम्र, डेढ़ महीने की पढ़ाई और नीम से भी कड़वी ज़बानवाली मा—इन तीन साधनों के साथ पुजारी गृहस्थी सँभालने के काम में लगाये गये।

× × ×

पुजारी असाधारण मेधावी थे। बत्तीस वर्ष की उम्र में उनका जो ज्ञान था उसे देखकर कोई नहीं कह सकता था कि उनकी पढ़ाई सिर्फ़ डेढ़ महीने की है। उनमें ज्ञान की बड़ी प्यास थी। अथवा ज्ञान कौन कौन हैं, यह भी तो उन्हें मालूम नहीं था। फिर प्यास कहाँ से होती? हाँ, काम में जब जब जिस ज्ञान की आवश्यकता होती, वे उसके पीछे पड़ जाते, और न जाने कहाँ और किसके पास से सीखकर ही छोड़ते। उन्हें जोड़, बाक़ी, गुणा, भाग ही नहीं मालूम हो गया था, बल्कि भिन्न, त्रैराशिक और पंचराशिक भी वे लगा लेते थे। एक समय गाँव में सरकारी पैमाइश शुरू हुई। उस समय उन्होंने अमीनों और पटवारियों के पास बैठकर पैमाइश का हिसाब भी सीख लिया।

पुजारी की धर्म में बड़ी श्रद्धा थी, इसी से अठारह वर्ष की उम्र में ही वे पुजारी कहे जाने लगे थे। वे बिना स्नान-पूजा के पानी भी नहीं पीते थे। उनके पाठ में यद्यपि पहले हनूमान-चलीसा था, किन्तु धीरे धीरे हनूमान-बाहुक और रामायण भी शामिल हो गये। रामायण के उन्होंने बहुत पाठ किये थे, और उसके ज्ञानदीपक जैसे स्थलों का उनका किया अर्थ बहुत बुरा न होता था। हर एक धर्मभीरु ब्राह्मण को अच्छी-बुरी साइत का ज्ञान रखना ज़रूरी ठहरा। पुजारी के सारे गाँव के ब्राह्मणों के लिए कुल मिलाकर सिर्फ़ एक घर यजमान था। यदि यजमानी बड़ी होती, तो कौन जानता है, उसके कारण पुजारी को कुछ और पढ़ने का अवसर मिला होता। जब उनकी स्त्री बीमार पड़ी उस समय तो उन्होंने 'रसराज-महोदधि' भी मँगा लिया, और यदि लोग कच्चीओषधि की भयंकरता का डर न दिखलाते तो शायद वे अपने बनाये मंडूर से ही पत्नी की चिकित्सा करते। उस समय अख़बार अभी गाँवों तक नहीं पहुँचे थे, तो भी जिन पुस्तकों का गाँवों में प्रवेश था, पुजारी उन्हें पढ़-समझ सकते थे।

एक ओर पुजारी कट्टर पुजारी थे, दूसरी ओर नई बातों के सीखने के लिए उनका दिमाग़ बिलकुल बंद न था। पुजारी की बस्ती के भीतर सिर्फ़ एक कुआँ था, जिसके लम्बे-चौड़े आकार और टूटी-फूटी हालत को देखकर लोग उसे सतयुग के आस-पास का बना कहते थे। उसकी ईंटें एक ओर से पहले ही गिर चुकी थीं। एक दिन वह सारा ही कुआँ बैठ गया। अब लोगों को दूर के कुएँ से पानी भरकर लाना पड़ता था। पुजारी उस समय ३०-३१ वर्ष के हो चुके थे। उनके पास धन भी था। उन्होंने अपने द्वार पर एक कुआँ बनवाना चाहा। अपने दिल में कुएँ का नक़शा खींचा—कुआँ ऐसा हो, जिसकी दीवार से घड़ा न टकराये। यदि नीचे की अपेक्षा कुएँ का ऊपरी भाग संकीर्ण कर दिया जाय तो यह हो सकता है। ईंटों के भी प्रचलित आकार को छोड़कर उन्होंने अपने मन

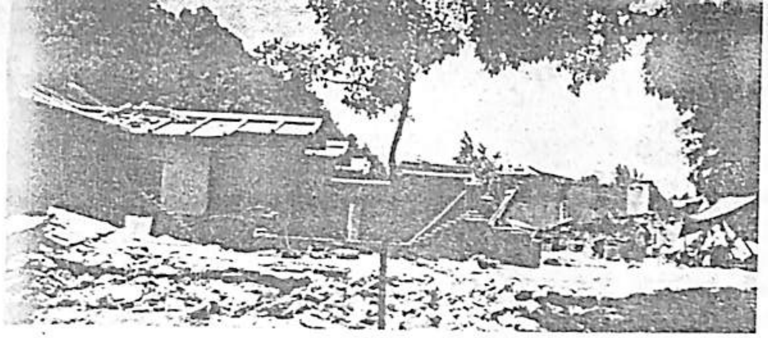
के आकार की ईंटों का साँचा बनवाया। उनमें कुछ तो डेढ़ फ़ुट तक लम्बी और ६-७ इंच चौड़ी थीं। अपने गाँव के बड़े पोखर की मौर्यकालीन ईंटों को देखकर शायद उनको इतनी लम्बी ईंटों के बनवाने का साहस हुआ था। उस काल की ही भाँति यदि ईंधन की इफ़रात होती और लकड़ियाँ ठीक तरह लगाई जातीं तो कदाचित् वे पक जातीं। किन्तु पुजारी का ध्यान इधर न गया, और ईंटें बहुत-सी अधपकी रहकर टूट गईं। तो भी उनके काम भर के लिए ईंटें तैयार मिल सकीं। पुजारी के बुलाने पर उनके ससुर कुआँ बँधवाने के लिए राज लिवाकर आये। ईंटों के विचित्र आकार को ही देख कर ससुर और राज दोनों का माथा ठनका। उस पर पुजारी ने कुआँ बाँधने की अपनी स्कीम पेश की। राज चिल्ला उठा—अरे! यह क्या कर रहे हो? यदि कुएँ का मुँह सिकोड़ दिया जायगा तो ईंटें कुछ ही दिनों में आगे की ओर गिर जायँगी। पुजारी ने कहा—और मेहराब में ऐसा क्यों नहीं होता?

खैर, पुजारी के आग्रह को देखकर राज ने उसी प्रकार कुएँ को बाँधना शुरू किया। कुछ दूर बाँधने और मिट्टी निकालने पर कुआँ भीतर से बहुत बालू फेंकने लगा। राज ने सारा दोष कुएँ की नई चिनाई के मत्थे मढ़ा और फिर से उधेड़कर पुरानी चाल से बाँधने के लिए कहा। किन्तु पुजारी कब माननेवाले थे। जब कुआँ सही-सलामत बनकर तैयार हो गया तब ससुर जी कहने लगे—तैयार तो हो गया, किन्तु इसकी शकल तो कुइयाँ-सी है। पुराने ढंग से बनवाने पर यह एक अच्छा खासा कुआँ मालूम होता।

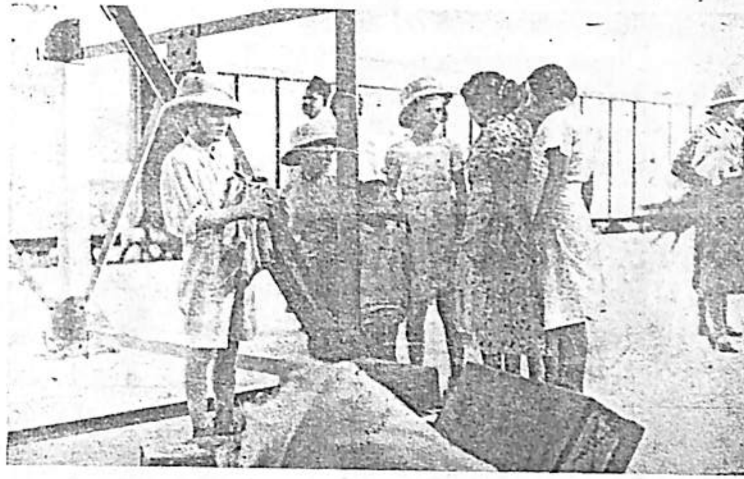
(३)

पुजारी ने छोटे भाई को अपने बहनोई म०...... पंडित के घर पढ़ने के लिए भेजा था, किन्तु उसने इतना ही पढ़ा—ओनामासिधम्। बाप पढ़े न हम्। दो-चार बार भाग आने पर पुजारी ने और ज़ोर देना छोड़ दिया। दोनों बहनों और भाई की भी शादी कर दी। अब दोनों भाई मिलकर खूब मेहनत करते थे। घर के प्रबन्ध में मा बहुत दक्ष थीं। हर साल ही खर्च करने पर कुछ पैसा और अनाज बचने लगा। पुजारी ने उसे सूद और सवाई पर देना शुरू किया। सूद और मूल में गाँव के कुछ लोगों के खेत भी अपने पास रेहन रख लिये। यद्यपि गाँव में ट्रीनीडाड से लौटे एक दूसरे आदमी के पास सबसे अधिक खेत थे, किन्तु अगहन बीतते बीतते वह घर अनाज से खाली हो जाता था, और उधार और खरीद की नौबत आती थी; इसी लिए पुजारी गाँव में सबसे अधिक धनी समझे जाते थे।

पुजारी का जीवन अब सुख का जीवन था। यद्यपि फाटके के रोज़गारियों और सौदागरों की भाँति तो नहीं, फिर भी पुजारी का धन प्रतिवर्ष बढ़ रहा था। उन्हें अभी तक कचहरियों से वास्ता न पड़ा था, किन्तु इसी समय पुजारी के गाँव में पैमाइश होने लगी। अभी तक खेत, बाग़, परती सभी का हिसाब पटवारी के यहाँ रहता था; किन्तु अमीनों ने पैमाइश के साथ दखल-क़ब्ज़ा पूछना शुरू किया। यही तो कमाने का समय होता है। यदि इधर की उधर और उधर की इधर न करें तो क्या खाक कोई अमीन को पूछेगा। हाँ, यह ऐसा भी समय है, जब पहले की पैमाइश की बेईमानियाँ भी प्रकट होने लगती हैं। हम कह चुके हैं, पुजारी बड़े मेधावी पुरुष थे। गाँव में आये हुए अमीन के पास जाकर वे काग़ज़-पत्र देखने लगे। उन्हें मालूम हुआ कि पहले के कितने ही उनके खेत औरों के क़ब्ज़े में हैं। कुछ में इधर नये सिरे से गोल-माल हुआ है। पुजारी उन आदमियों में से थे जिनका सिद्धान्त होता है न अपना एक पैसा जाने देना और न दूसरों का एक पैसा लेना। अब पुजारी के लिए बन्दोबस्त के डिप्टी के पड़ावों और ज़िला तथा तहसील की कचहरियों पर धरना देना ज़रूरी हो गया। जिस पूजा के नियम के कारण उनका नाम पुजारी पड़ा था वह छूटे कहाँ से? उसमें तो कुछ वृद्धि भी हुई थी। यदि पहले एकादशी का ही व्रत होता था तो अब महीने के चार अलोने एतवार भी शामिल कर लिये गये थे। कचहरी का काम तो घर की तरह अपने वश का नहीं, और बिना पूजा-स्नान के पुजारी पानी भी नहीं पी सकते थे। फलतः कभी कभी सूर्यास्त और पुजारी की स्नान-पूजा साथ साथ होती थी। उन्होंने



भूकम्प के बाद कोयटा—ढहे हुए मकानों का एक ढेर-मात्र रह गया है।



हैदराबाद-स्टेशन पर अपने मा-बाप को कोयटा में सदा के लिए छोड़कर आये हुए चार अँगरेज़ बच्चे। साथ की स्त्रियाँ इन्हें सँभालेंगी।



भूकम्प-पीड़ित अपने बचे हुए माल-असबाब के साथ कोयटा से बाहर जाने के लिए स्टेशन पर एकत्र हो रहे हैं।

इस वर्ष भारतवर्ष के विश्वविद्यालयों से इन बीस स्त्रियों का जत्था शिक्षा-सम्बन्धी विशेष जानकारी प्राप्त करने के लिए योरप भेजा गया है। यह दल मिसेज़ दत्त (दाहिनी ओर से नं० ३) के चार्ज में है।





अखिल भारतीय सेवा-समिति के सदस्य, मिस्टर चिन्तामणि उपसभापति, और पं० हृदयनाथ कुँजरू, प्रधान मंत्री बीच में बैठे हैं। यह चित्र वार्षिक बैठक के अवसर पर प्रयाग में लिया गया है।



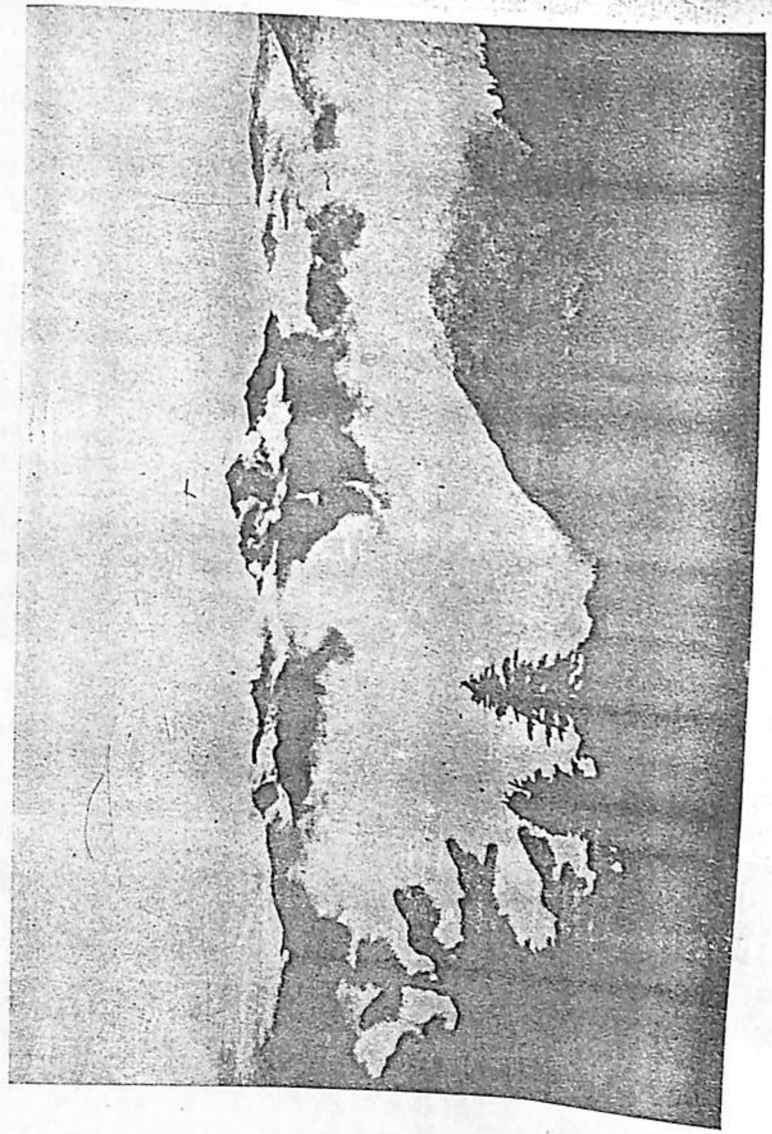
कुमारी पी० गहलोत, जोधपुर के ज़नाना-अस्पताल की लेडी डाक्टर, जो अपने कार्य्य में विशेष योग्यता प्राप्त करने विलायत गई हैं। इस दिशा में इतनी उन्नति करनेवाली ४८ लाख मारवाड़ी महिलाओं में आप प्रथम महिला हैं।



इन्दौर के पंडित लक्ष्मीनारायण त्रिवेदी, जिन्होंने हिन्दी विश्वविद्यालय के लिए ५०,००० रु० की इमारत दान की।



कुमारी वेणुताई दत्तात्रय चिताले—ये भी उच्च शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश से विलायत गई हैं।



शिमला में मानसून का आगमन



कोयटा बाज़ार-भूकम्प के पूर्व। इस बाज़ार में बड़ी चहल-पहल रहती थी जो सदा के लिए नष्ट हो गई।



हैदराबाद-स्टेशन पर अपने मा-बाप को कोयटा में सदा के लिए छोड़कर आनेवाले चार सिन्धी बालक। साथ के हमदर्द लोग इन्हें अपने साथ लिये जा रहे हैं।



स-कोर्स का मैदान हाँ बे-घरबार के कम्प-पीड़ितों ने ाश्रय ग्रहण किया । यहाँ से ये अन्य थानों को भेजे जायँगे।

गंगा-तट या काशी में बाल बनवाने का नियम कर लिया था, इसलिए उनके दाढ़ी-बाल दो-दो, चार-चार महीनों तक नहीं बन पाते थे।

पुजारी यद्यपि धार्मिक और श्रद्धालु आदमी थे, तो भी उनकी श्रद्धा अंधश्रद्धा न थी। यही कारण था, जहाँ गाँव के लोग सभी लम्बी दाढ़ी, भारी जटा, छोटी लँगोटी और सफ़ेद भभूत को साष्टांग दंडवत् करना अपना धर्म समझते थे, वहाँ पुजारी बिना गुण की परख पाये ऐसे साधुओं की आव-भगत से दूर रहते थे। हाँ, उनके गाँव से कुछ दूर एक निर्जन स्थान में एक वृद्ध परमहंस रहा करते थे, जिनकी आयु के बारे में बूढ़े-बूढ़े लोग भी क़सम खाने के लिए तैयार थे कि उन्होंने जब से होश सँभाला तब से परमहंस बाबा को ऐसे ही देखा है। यह भी कहा जाता था कि परमहंस बाबा अपनी जन्मभूमि (पोखरा) नेपाल से विद्या पढ़ने के लिए बनारस आये थे, वहीं पीछे विरक्त हो राजघाट के पास एक कुटिया में रहते थे। जब राजघाट में रेल आई और उसकी गड़गड़ाहट से उनके ध्यान में विघ्न पड़ने लगा तब मुफ़्त में मुक्ति देनेवाली काशी को छोड़कर वे अपने एक भक्त के साथ पुजारी के आस-पासवाले प्रदेश में चले गये। पुजारी परमहंस जी के प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे। हर चौथे-पाँचवें वे दर्शनार्थ वहाँ पहुँचते थे। बंदोबस्त के मुक़दमों से छुट्टी पाने पर तो उन्हें और भी सत्संग का मौक़ा मिलने लगा।

(४)

पुजारी के सुखमय जीवन की दशा का अब अन्त हो रहा था। इतने समय में उनकी आर्थिक अवस्था ही अच्छी नहीं हो गई थी, बल्कि उनके एक कन्या और चार पुत्र भी हो चुके थे। पिता की मृत्यु के बाद घर में किसी की मृत्यु से उन्हें अपनी आँखें भिगोनी नहीं पड़ी थीं। एक तरह वे भूल ही गये थे कि संसार में मृत्यु भी कोई चीज़ है। इसी समय पुजारी की धर्मपत्नी बीमार पड़ीं। पुजारी के उस झारखंड के गाँव में वैद्य पहुँचते ही कहाँ थे? ओझा—सयाने ही सुलभ थे, किन्तु पुजारी उन्हें फूटी आँख से भी देखना नहीं चाहते थे। उनकी मा ने एक-आध बार चुपके से जाकर अपने पड़ोसी ओझा से पूछा

और सहृदय ओझा ने बताया कि घर के पास की बाँस-वाली चुड़ैल का फ़िसाद है, किन्तु पुजारी के मारे उसकी शांति-पूजा हो तब तो! पुजारी इस समय स्वयं रसराज-महोदधि के पन्ने उलट रहे थे। उन्हें यह मालूम हो गया कि स्त्री को पांडु-रोग है। कुछ अपनी और कुछ दूसरे यमराज-सहोदर वैद्यों की दवा भी की; और भी जो उपचार बन पड़ा, किया। किन्तु कुछ महीनों की बीमारी के बाद स्त्री चल बसी। बाहर प्रकट न करने पर भी पुजारी को मर्मान्तक दुःख हुआ।

इस समय पुजारी पूरे तीस वर्ष के भी न हो पाये थे। खाते-पीते व्यक्ति का ब्याह करने के लिए सभी लोग तैयार रहते हैं। स्त्री की बर्षी भी न हो पाई थी कि ब्याह करनेवाले मँडराने लगे। लेकिन पुजारी ने साफ़ कह दिया—मेरे पाँच बच्चे हैं। ब्याह का फल मुझे मिल गया है। अब मुझे शादी नहीं करनी है।

पुजारी के इस दुःख को कम करने की कुछ बातें थीं। सबसे पहले तो उनके अपने मन की दृढ़ता थी। बच्चों का प्रेम भी उसका सहायक था। उनका भाई बहुत ही आज्ञाकारी था—इतना आज्ञाकारी कि कभी कभी इसके लिए उसे अपनी स्त्री का ताना सुनना पड़ा था। पुत्रों के सयाने होने पर पुजारी को और अच्छे दिनों की आशा थी।

(५)

पुजारी धार्मिक विचार के आदमी थे, और उनमें उदारता, दया आदि कितने ही गुण भी थे। वे क्या थे, इसके लिए उनके जीवन की कुछ घटनायें दे देना ज़रूरी है।

एक समय की बात है। पुजारी उस समय २०-२१ वर्ष से अधिक के न रहे होंगे। एक जगह चुपचाप उदास बैठे थे। साधारण उदास नहीं, बहुत ही उदास, यहाँ तक कि कभी कभी आत्महत्या कर डालने का खयाल तक उनके मन में उठ आता था। कारण यह था। पुजारी के पूर्वज छः-सात पीढ़ी पहले सरयूपार से आकर इधर बस गये थे। अब भी लोग कम से कम अपनी कन्याओं को सरयूपार (गोरखपुर-ज़िले में) ही ब्याहना पसंद करते थे। अपनी

दोनों छोटी बहनों के लिए वर ढूँढ़ने वे सरयूपार गये। लोगों ने भुलावा देकर एक घर के दो लड़कों का तिलक चढ़वा दिया। घर आने पर पता लगा कि वरवाला घर किन्हीं कारणों से नीच समझा जाता है। उन्होंने तिलक लौटा देने की बात कही, जिस पर वरवाले तरह तरह की धमकी देने लगे। पुजारी के भाई-बन्धु भी उन्हें समझाने लगे। किन्तु पुजारी कब अपनी बहनों को कुजात के घर ब्याहने लगे! बहुत ज़ोर देने पर वे फूट फूटकर रोने लगे, और बोले—मैं दोनों बहनों को गले से बाँधकर पानी में डूब मरूँगा, पर उस घर में शादी न करूँगा।

आखिर पुजारी ने शादी नहीं की!

और जगहों की भाँति पुजारी के गाँव में भी ग़रीब व्यक्ति बिना ब्याहे ही बूढ़े हो जाते थे। गाँव का एक ब्राह्मण तीस वर्ष से ऊपर का हो गया था, और अब तक उसका ब्याह नहीं हुआ था, न होने की आशा ही थी। दूसरे गाँव में उसकी रिश्तेदारी में एक तरुण विधवा थी। दोनों का देवर-भाभी का नाता था। नित्य की आवाजाही से दोनों में प्रेम ही नहीं हो गया, बल्कि छिपकर रखने की अपेक्षा वह अपनी भावज को घर पर लाकर रखने लगा। पहले तो मालूम हुआ, वह मेहमानी में आई है, किन्तु पीछे बात प्रकट हो गई। पुजारी को यह बात असह्य मालूम हुई और वे बलपूर्वक उस विधवा को गाँव से निकालने के लिए गये। बड़ी मुश्किल से लोग उन्हें मनाकर लाये। वे कहते थे—गाँव में यह बहुत ही बुरा उदाहरण होगा, जिसे देखकर यह रोग औरों में भी फैलेगा।

इस घटना से पुजारी की सामाजिक अनुदारता सिद्ध होगी, किन्तु साथ ही यह भी था कि यदि पुजारी को दुनिया के बारे में और अधिक सुनने-जानने का मौक़ा मिलता तो वे अपने विचारों को जल्दी बदल भी देते, क्योंकि समझ में आ जाने पर वे किसी बात का दुराग्रह नहीं करते थे।

पुजारी की तीन हर की खेती थी, जिनमें एक हरवाहा था चिनगी चमार। चिनगी किसी समय कलकत्ता में किसी साहब का साईस भी रह चुका था। उसके एक लड़का और तीन लड़कियाँ थीं। ब्याह हो जाने पर लड़कियाँ अपने घर चली गईं, और कुछ समय बाद चिनगी का एकलौता बेटा मर गया। पुत्रस्नेह बहुत बड़ी चीज़ होती है, किन्तु इन मज़दूर जातियों के लिए बेटा तो बुढ़ापे का बीमा ही होता है। ख़ुशी-नाराज़ी जैसे भी हो, उसे अपने बूढ़े मा-बाप का बोझा उठाना ही पड़ता है। किन्तु बूढ़े चिनगी के लिए पुजारी भारी अवलम्ब थे। वे उसके पुत्रशोक और भूख को मिटाने का बहुत ध्यान रखते थे। इसके लिए पुजारी की मा कभी कभी बोल भी उठती थीं। कुछ दिन बीमार रहकर एक दिन माघ की बदली में चिनगी चल बसे। लोगों को बहुत अचरज हुआ जब पुजारी ने कहा, चिनगी भगत की दाह-क्रिया गंगातट पर (जो वहाँ से प्रायः तीस मील दूर था) होगी। शर्म, संकोच या दबाव से ही चिनगी के भाई-बन्धु उस बदली में लाश ले जाने के लिए तैयार हुए। पुजारी ने साथ जाकर गंगातट पर चिनगी का दाह-कर्म कराया, और क्रिया-कर्म भी हुआ। लोग कहते थे, पुजारी पर चिनगी का पहले जन्म का क़र्ज़ था; और वे अच्छी तरह उऋण हुए।

पुजारी का एक बलिष्ठ बैल एक दिन लड़ते लड़ते उनके अपने बनवाये कुएँ में गिर पड़ा। बहुत प्रयत्न से जीता तो निकल आया; किन्तु उसका पिछला एक पैर बेकार हो गया। पुजारी के लिए अपने लँगड़े बैल से कोई काम लेना असम्भव था। कम खेतवाले कुछ लोगों ने कई बार कहा, बैल हमें बेच दीजिए। पुजारी का कहना था, यह बैल न बेचा जा सकता है और न काम के लिए दिया जा सकता है। तन्दुरुस्त और मज़बूत होते वक़्त उसने हमें कमाकर खिलाया है। क्या काम न कर सकने पर बूढ़े मा-बाप बेच दिये जाते हैं?

थोड़ी-सी महाजनी के अलावा पुजारी का प्रधान पेशा था खेती। खेती के सम्बन्ध में किसान कट्टर सनातनी होते हैं। पुजारी का गाँव बाज़ार, स्टेशन, शहर, सड़क सभी से बहुत दूर था, इसलिए खेती-सम्बन्धी नई बातों का उनके गाँव में पहुँचना मुश्किल था। तो भी पुजारी लोगों के मज़ाक़ करते रहने पर भी घर के काम के लिए आलू, मूली, गाजर और गोभी भी बोने लगे थे। एक बार वे

कहीं लाल रंगवाली बड़ी ऊख देख आये। उसे लाकर उन्होंने पाँच बिस्वा खेत में बो दिया। गाँव और घरवाले कहते ही रह गये, यह ऊख क्या कोल्हू में जाने पायेगी, इसे तो लोग दाँतों से ही साफ़ कर डालेंगे। ऊख की फ़सल अच्छी हुई, साथ ही लोगों की बात भी बहुत-कुछ सच निकली, और नरम तथा मोटी ऊख पर छिप छिपकर बहुतों ने दाँत साफ़ किये। किन्तु उससे यह फ़ायदा हुआ कि दूसरे साल गाँव में कई और आदमियों ने उसी गन्ने की खेती की। तीसरे साल तो पुजारी ने डेढ़ दो एकड़ बोया। ऊख इतनी ज़बर्दस्त हुई कि घरवाले चिन्ता करने लगे, यह ऊख तो साझेवाले पत्थर के कोल्हू में आषाढ़ तक भी ख़त्म न होगी। पुजारी ने पहले आस-पास से पत्थर का कोल्हू खरीदना चाहा। न मिलने पर बनारस के पास तक की हवा खा आये। पुजारी किसी बात का फ़ैसला तुरन्त न कर डालते थे, उन्हें सोचने में देर लगती थी। इसी लिए उन्हें अनेक बार मीठी-कड़वी भी सुननी पड़ती थीं। उनके एक सम्बन्धी तो उन्हें 'जड़वा-रोग' (ठंडक का रोग) कहा करते थे। दो-तीन बार खाली हाथ लौटने तथा काम के डेढ़-दो मास निकल जाने पर घरवाले और नाराज़ हुए। अन्त में हफ़्ते भर गुम रहने के बाद एक दिन पुजारी बैल पर लोहे का कोल्हू लदाये पहुँच ही गये। गाँव में, और शायद उस देहात में भी, वही पहला लोहे का कोल्हू था। लोग डर रहे थे, कल तो अक्सर बिगड़ जाया करती है। बिगड़ जाने पर कौन मरम्मत करेगा? किन्तु पुजारी बेफ़िक्र थे। संयोग से कोल्हू बहुत अच्छा निकला। उसी साल उसका दाम सध गया। तीन-चार साल काम लेकर पौन दाम पर उन्होंने उसे बेच भी डाला।

पुजारी सादगी के पुजारी थे। वे एक नम्बरवाली मार्कीन को बहुत पसन्द करते थे। कहा करते थे, यह बहुत मज़बूत होती है, जाड़ा-गर्मी दोनों में काम आ सकती है। इसको पहननेवाला न शौकीन ही कहा जायगा और न दरिद्र ही। खद्दर के युग से कुछ दिन पूर्व ही वे इस संसार से चल दिये। नहीं तो पुजारी उसके अनन्य भक्त होते।

(६)

पुजारी की सुनहरे बालोंवाली गोरी गोरी एक... कन्या मा की मृत्यु के एकआध ही वर्ष बाद मर गई। ... में बड़ा ननिहाल में पढ़ता था, बाक़ी तीन को गाँव ... तीन मील दूर के मदरसे में पढ़ने के लिए बैठा दिया था। पुजारी अभी भविष्य का सुख-स्वप्न देख रहे थे। ... समय एक घटना घटी, जिसने उस स्वप्न को चूर चूर ... दिया। उनका बड़ा लड़का अब अपने पिता के ... अधिक आने-जाने लगा था। पिता और उनके ... की देखादेखी वह भी परमहंस बाबा की कुटिया में पहुँ... लगा, और परमहंस जी के एक शिष्य लगे उसके कान ... वेदान्त और वैराग्य का मन्त्र फूँकने। वैराग्यशतक ... विचारसागर के साथ देश देश के नदी-पर्वत, नग... अरण्य के मनोरम चित्र उसके सामने खींचे जाने लगे। उनका असर पड़ना ज़रूरी था। आख़िर पुत्र ने ... पिता की भाँति पूजा-पाठ शुरू कर दिया। त्रिकाल संध्या, स्नान और एकाहार आरम्भ किया। पुजारी को तो इ... अधिक चिन्ता न हुई, किन्तु घर के सारे लोग सोल... वर्ष के लड़के के इस रंग-ढंग को देखकर आशंकि... होने लगे।

एक दिन (१९१० ईसवी में) अचानक वह ग़ायब ... गया। यद्यपि दो बार पहले भी वह भागकर कुछ मही... कलकत्ता रह आया था। किन्तु उस समय वैराग्य ... भूत सिर पर सवार न होने से उतना डर न था, इसी लि... उस समय इतनी चिन्ता न हुई थी। पुजारी की चिन्ता तब दूर हुई जब उन्होंने सुना, लड़का घूम फिर कर बनारस लौट आया है, और वहाँ संस्कृत पढ़ रहा है। पुजारी ने खुशी से संस्कृत पढ़ने की अनुमति दे दी, और उन्हें आशा हो चली कि अब वह हाथ से न जायगा।

दो वर्ष बीतते बीतते उन्होंने सुना—लड़का बनारस से कहीं चला गया है। कुछ महीनों बाद जब उन्हें मालूम हुआ कि वह दूसरे प्रान्त के एक मठ में साधु हो गया है तब वे अपने बहनोई .....पंडित को लेकर वहाँ पहुँचे। उन्होंने लड़के की अनुपस्थिति में समझा-बुझाकर महन्त जी को इस बात पर राज़ी कर लिया कि वे घरवालों को दर्शन

देने के लिए एक बार अपने चेले को जाने दें। आने पर लड़के को यह बात अरुचिकर मालूम हुई, किन्तु दूसरा चारा न था। लौटाने का वादा तो झूठा था, किन्तु भोले-भाले महन्त जी पंडित की चिकनी-चुपड़ी बातों में आ गये। लड़का घर पर लाया गया। अब एक ओर तो लड़के को (पुजारी के स्वभाव के विरुद्ध) शौक़ीन कपड़ों तथा पान आदि का प्रबन्ध किया गया और दूसरी ओर उसके जाने-आने पर कड़ी निगाह रक्खी जाने लगी। लड़का एक बार भागा तब स्टेशन पर पुजारी ने जा पकड़ा। इस तरह काम न बनते देखकर लड़के ने विश्वास पैदा कराना चाहा, और तीन मास तक अवसर ढूँढ़ने के बाद वह अपने इस बन्दी-जीवन से मुक्त हुआ।

× × × ×

पुजारी को इसका कितना दुःख हुआ, यह इसी से मालूम होता है कि चिन्ता के मारे दो वर्ष बीतते-बीतते उनके दिमाग़ में एक प्रकार का उन्माद-सा हो गया। लड़का उस समय आगरे में पढ़ता था। एक मित्र ने सब हाल बतलाकर एक बार पिता को देखने के लिए कहा। इस पर लड़का घर आया। पुजारी को प्रसन्नता ही नहीं हुई, बल्कि जब उनके दिमाग़ की गर्मी दूर करने के लिए फ़स्द खोलनेवाला लाया गया तब उन्होंने कहा—क्या करोगे? अब मेरी तबीअत अच्छी हो गई है। एक हफ़्ते के बाद लड़का उसके इच्छानुसार जाने भी दिया गया।

× × × ×

दो वर्ष और बीत गये। लड़के का कोई पता न था। एक दिन पता लगा, वह बनारस आया हुआ है। फिर ज़बर्दस्ती घर पर लाकर नज़रबन्दी का वही अस्त्र काम में लाया गया। इस बार उसने अपने बन्धुओं से कह दिया—एक बार निकल जाने पर फिर तुम नहीं पकड़ सकोगे। आखिर आदमी का बच्चा कब तक बाँधकर रक्खा जा सकता है? और एक दिन वह फिर निकल भागने में समर्थ हुआ। बनारस से वह विन्ध्यपर्वत की तलहटी में पहुँचा। किन्तु पुजारी को लड़के के एक मित्र ने पता बता दिया, और वे भी वहाँ जा पहुँचे।

पुजारी उन आदमियों में से थे, जो घोर से घोर वेदना को हृदय के भीतर इस तरह छिपा सकते हैं कि आँख तक उसकी छींट भी नहीं पहुँचने पाती। तो भी एक बार उन्होंने पुत्र के सामने दिल खोलने का प्रयास किया। 'नहीं' कहके अभी हल्ला-गुल्ला सुनने की हिम्मत न होने से पुत्र ने उन्हें वहीं कहीं रहकर प्रतीक्षा करने के लिए कह दिया। पुजारी यद्यपि पुत्र की मानसिक अवस्था को समझने लगे थे, और कभी कभी चाहते भी थे कि वह अपनी मर्ज़ी पर रहने दिया जाय, किन्तु अन्त में पुत्रस्नेह का पल्ला भारी हो जाता था।

उनकी वह अर्द्ध विक्षिप्तावस्था जानकारों के हृदय में सहानुभूति पैदा किये बिना नहीं रहती थी। लड़का जिनका अतिथि था उनकी माता तो पुजारी की अवैतनिक गुप्तचर ही थीं। कुछ सप्ताहों के बाद जब लड़का चुपचाप इक्के पर सवार होकर स्टेशन की ओर भाग चला तब पुजारी को भी खबर मिलते देर न लगी; और इक्के के पहुँचने से कुछ ही देर बाद वे भी स्टेशन पर आ धमके। मालूम होता था, दस या बारह मील के रास्ते को उन्होंने दौड़कर ही काटा था। वे तो जानते ही थे कि एक बार रेल में बैठ जाने पर उसे पाना उनके लिए असम्भव हो जायगा। ट्रेन के आने में पन्द्रह-बीस ही मिनट की देर थी।

लड़के ने साथ छोड़ देने के लिए जब कुछ अधिक कहना चाहा तब पुजारी बच्चों की भाँति फूट फूटकर रोने लगे। स्टेशन के यात्री इकट्ठे होकर लगे उसकी लानत-मलामत करने। उससे जान बचाने के लिए उसे फिर बनारस आना पड़ा। बनारस में आकर उसने भले प्रकार समझाकर कह दिया—आप पकड़कर मुझे नहीं रख सकते। मेरी इच्छा घर जाने की बिलकुल नहीं है। घर न जाने की मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। आपके हठ से ध्येय को छोड़ने की अपेक्षा मुझे मरना प्रिय होगा।

पुजारी शायद पहले से काफ़ी सोच चुके थे। उन्होंने तुरन्त और बहुत संक्षेप में कहा—अच्छा अब मैं तुम्हें नहीं रोकूँगा, किन्तु मैं भी घर न जाऊँगा। यहीं काशी में रहकर ज़िन्दगी बिता दूँगा।

लड़के को इतनी आसानी से छुटकारा पाने की कभी आशा न थी। वह दूसरी ट्रेन से चला गया।

× × × ×

कितने ही महीनों के बाद घरवाले मनाकर पुजारी को ले गये। सचमुच ही घर उन्हें काल-सा लगता था। धीरे धीरे फिर चिन्ता ने उनकी देह और दिमाग़ पर प्रभाव जमाया। इसी दुःखमय चिन्ताग्रस्त अवस्था में उन्होंने चार वर्ष और बिताये। १९२० ईसवी का जून या जुलाई का महीना था, जब सुदूर दक्षिण में पुत्र को उनके बालमित्र का पत्र मिला—मामा का देहान्त हो गया। पुत्र की आँखों में आँसू नहीं आये। चिट्ठी की बात पूछने पर उसने जिस प्रकार अपने मित्रों को यह खबर सुनाई उससे वे बोल उठे, तुम्हारा दिल पत्थर का है, पिता की मृत्यु को सुनकर भी तुम्हें रंज नहीं हुआ!

उन्हें पुत्र के हृदय के भीतर की वास्तविक दशा यदि मालूम होती तो वे ऐसा न कहते।

स्वागत-गीत

लेखक, श्रीयुत नरेन्द्र

आई सन्ध्या शशि की प्यारी!
प्यारे प्रियतम के चिन्तन में
झुकी लजाती आनत चितवन,
मिलन-निशा की सुख-आशा में
दिशि-दिशि कभी डोलते लोचन,
विभ्रममयि सन्ध्या सुकुमारी!

अपने नीलम के महलों से
आई अब पश्चिम-दिशि-पथ पर,
कोमल-अरुण-चरण-नख छू छू
अरुण रेणु रँगती है अम्बर,
नभ में खिलती केसर-क्यारी!

कोमल चरणों के दर्शन से
कमल लजाये-से कुम्हलाये,—
हंसों के विहार-शर ने ज्यों
गति लख अपने नयन नवाये—
उन चरणों पर सुखमा वारी!

उत्सुक धरणी पर धीरे से
धरती पग सन्ध्या कोमल-तन,
दरस-परस पा मुसका रज-कन
खिल उठते ज्यों गेंदा के वन—
कनक-सुरभि-घन ज्यों नभचारी!

चिर सुहागिनी के पद-नख छू
बनती अवनी भी सुहागिनी,
व्योम-माँग में सेंदुर भरती
हँसती सरसों-सी सुहागिनी,—
नव-वसन्त की प्राणपियारी!

नीलम की नभ-सरसी में भी
जागीं कुन्द कुमुद की कलियाँ,—
उठीं मिलन की सरस रास को
चाँदी की नन्हीं-सी परियाँ,
जागी शशि की निशि-प्रतिहारी!

सन्ध्या के नत मुख पर लज्जा
होली-मिस बरसाती रोली,
केशर-रंजित चञ्चल अञ्चल
केशाच्छादित सुवरन-चोली,
सोने में मुकुलित उजियारी!

पुलकित तन के अङ्ग-राग को
कुसुमों का पराग हर आई,
मद मकरन्द मदिर नयनों में
अपने मधुकर को भर लाई,
आई सन्ध्या शशि की प्यारी!



जाग्रत महिलायें

सिनेमा में भारतीय स्त्रियों का स्थान

लेखिका, श्रीमती वासंतीदेवी पडकोण

आज-कल की परिस्थिति में अनेक स्त्रियाँ पुरुषों के समान हर तरह के उद्योग कर रही हैं और समाज-सुधारक पुरुषवर्ग उनको उत्तेजन देता है। यह आनन्द की बात है। भारतीय महिलाओं ने हर एक उद्योग में भाग लेने का प्रयत्न किया है और उन्होंने सफलता भी पाई है। सिनेमा भी एक उद्योग है और सिनेमा में भाग लेने के बारे में आज-कल स्त्रियों में—यहाँ तक कि पढ़ी-लिखी और उच्चकुल की कुमारी और विवाहित स्त्रियों में भी काफ़ी चर्चा हो रही है।

परन्तु मेरा कहना यह है कि उच्चकुल की स्त्रियों के सिनेमा में भाग लेने के पहले हमारे सुधारक-समाज को सिनेमा-सम्बन्धी अनेक विषयों पर ध्यान देना होगा। यह सच है कि हमारी भारतीय महिलायें इस कला में भाग लेने के योग्य हैं। उनकी कार्य-कुशलता, नम्रता, तथा कला-प्रेम भूषणास्पद है। पुरुष स्त्रियों का पार्ट लेकर स्त्रियों की नक़ल करने में कभी समर्थ नहीं हो सकते, इसलिए स्त्रियों को चित्रपट में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। अगर चित्रपट-कला के धन्धे को आगे बढ़ाना है तो इस बात की ओर ध्यान देना ही होगा।

परन्तु स्त्रियों को सिनेमा भेजने पर इस बात का ध्यान रखना होगा कि उनकी मर्यादा-रक्षा का समुचित प्रबन्ध है या नहीं। सिनेमा में उनको अपमानजनक पार्ट करने को न देना चाहिए। हमें भारतीय महिलाओं का सम्मान करना चाहिए। युगयुगान्तर से भारतीय महिलायें अपनी सहनशीलता, नम्रता, लज्जा, प्रेमपूर्ण स्वभाव के लिए प्रसिद्ध हैं। अतएव उनके इन गुणों की रक्षा सिनेमा में ज़रूर होनी चाहिए।

क्या हर एक पुरुष कलाप्रेमी है? सिनेमा-कम्पनियों के मालिक और उसमें भाग लेनेवाले युवक क्या सभी कलाप्रेमी हैं? कभी नहीं। हिन्दुस्तान में न जाने कितनी सिनेमा-कम्पनियाँ हैं, परन्तु इनमें सिर्फ़ एक या दो कम्पनियाँ ही ऐसी हैं जो स्त्रियों को गौरवपूर्ण पार्ट देकर उनकी मानमर्यादा का ख़याल रखती हैं।

इसी प्रकार डायरेक्टर देवकी बोस के क़लम से उतरे हुए और उनके ही 'डायरेक्शन' में किये गये कई चित्रपट हैं। बंगाली चण्डीदास, हिन्दी मीराबाई, पूरणभक्त, सीता—इन सब फ़िल्मों में उन्होंने अपना कला-प्रेम सचाई और दिल से प्रकट किया है और स्त्री-पार्ट का गौरव किया है। इनमें भारतीय महिलाओं का सद्गुण, मर्यादा, प्रेमपूर्ण स्वभाव पूर्णरूप से दिखाया गया है। प्रभात फ़िल्म कम्पनी के कई चित्रपटों में भी उन्होंने इसी तरह स्त्रियों को उनके स्वभावानुसार ही पार्ट दिये हैं। उनके चित्रपट ये हैं—चन्द्रसेना, अयोध्या का राजा, जलती निशानी, सैरंध्री, अमृत-

मंथन। ये सब चित्रपट ऐसे हैं कि अनेक बार देखने से भी आँखों को तृप्ति नहीं होती। बाल-बच्चों से लेकर युवक-युवती, बूढ़े आदि सभी ये चित्रपट देख सकते हैं। धन्य है उनका कला-प्रेम! आनन्द की बात है कि कई पढ़ी-लिखी कुमारियाँ और विवाहित स्त्रियाँ और मर्यादाशील कुटुम्ब की महिलायें इन दोनों कम्पनियों में काम कर रही हैं।

मेरे ख़याल में ऐसे कई फ़िल्म हैं जिनमें भारतीय ललनाओं का विनय-स्वभाव, लज्जा-नम्रता आदि सबका छिन्न-विछिन्न कर दिया गया है। कई दृश्य तो इतने लज्जाजनक हैं कि उन्हें देखते ही आँखें मीचनी पड़ती हैं। क्या हमारी हिन्दू ललनायें परपुरुषों से मिल-जुल सकती हैं? कितनी ही पढ़ी-लिखी स्त्री हो, क्या वह अपने पति से अन्य लोगों के सामने लज्जास्पद बर्ताव करने को तैयार होगी या अपने पति को ही ऐसा व्यवहार करने देगी? कभी नहीं। चाहे जो हो योरपीय महिलाओंकी नक़ल करते हुए भी भारतीय महिला अपना लज्जाशील स्वभाव कभी नहीं छोड़ेगी। और एक बात। पुरुष-वेश धारण करना, अपने पति को छड़ी से मारना, पति से नौकर की तरह बर्ताव रखना, बार बार चुम्बन करना—यह सब अँगरेज़ी चित्रपटों की नक़ल है। आर्य-महिलाओं की इज़्ज़त रखना आर्य-पुरुषों का धर्म है। हम लोग प्रत्येक विषय में अन्य देशवासियों की नक़ल करने में अपना हिन्दुत्व भूल जाते हैं। हाँ, हम लोगों को पश्चिमवासियों से सीखने लायक़ अनेक बातें हैं, पर हम लोग उन पर ध्यान ही नहीं देते।

आज-कल पति-पत्नियों का सम्बन्ध पिछले ज़माने की तरह नहीं रह गया है। पति-पत्नी में ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं रहता है, न यह रहना उचित है। भगवान् ने पुरुष और स्त्री में प्रत्येक विषय में भेद-भाव नहीं किया है। तो भी आर्य स्त्री में शील, विनय, आत्मगौरव, लज्जा और प्रेम जन्मगत ही होता है। तो क्या आज सिनेमा घरों में इन सब भूषणास्पद बातों को तिलाञ्जलि दे देना ठीक होगा! यह एक प्रश्न है।

सभ्य गृहिणियों को या सभ्य कुल की कुमारियों को चित्रपट में काम करने के पहले इन सब बातों पर ज़रूर ध्यान देना चाहिए। सिनेमा के डायरेक्टर से इस बात की गारंटी लेनी होगी कि 'स्टुडियो' में डायरेक्टर से या चित्रपट में भाग लेनेवाले पुरुषों से या वहाँ के अन्य पुरुषों से उनको किसी तरह की तकलीफ़ न होने पायेगी। यदि ये लोग इस बात की व्यवस्था करें कि स्त्रियों के चरित्र पर किसी तरह का कलंक न लगने पावेगा तथा उन्हें स्वभाव-विरुद्ध पार्ट करने को न दिये जायँगे तो अवश्य ही उच्चकुल की महिलायें चित्रपट-कला में भाग लेंगी और इस कला को समुन्नत करेंगी।

सबसे पहले आवश्यकता यही है कि आर्यपुरुषों में पूर्णरूप से परिवर्तन होना चाहिए। भारतीय स्त्रियों को वे अपना भोग्य वस्तु समझते हैं। अगर वे कला-प्रेम से भारतीय महिलाओं को भी चित्रपट-कला में भाग लेने का अवसर देना चाहते हैं तो यह ज़रूरी बात है कि वे पहले महिलाओं को गौरवपूर्ण दृष्टि से देखें, और हर एक विषय में योरपीय चित्रपटों की उन बातों की नक़ल न करें, जिनसे हमारे हिन्दुत्व को कलंक लगता है। पाश्चात्यों का अन्धाधुन्ध अनुकरण करना भारतवासियों को उचित नहीं है।

क्या समाज-सुधारक और कला-प्रेमी पुरुष इस विषय पर ध्यान देंगे?

कोयटे का प्रलय-कारी भूकम्प

लेखक, श्रीयुत तिलकराज भसीन, बी० ए०, एल-एल० बी०, वकील



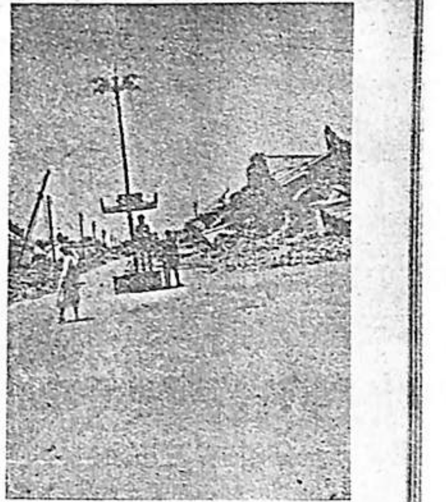
[इस लेख के लेखक महोदय कोयटा-भूकम्प के सम्बन्ध में श्रीयुत जयराम दास दौलत-राम से बातें कर रहे हैं।]



[मेघराज मोटर कंम्पनी का ध्वंशावशेष रेड क्रास के कार्य-कर्त्ताओं के साथ लेखक महोदय घुटने पर हाथ रक्खे खड़े हैं।]



[घायल। स्टेशन पर घायलों को ले जाने वाली स्पेशल गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे हैं।]



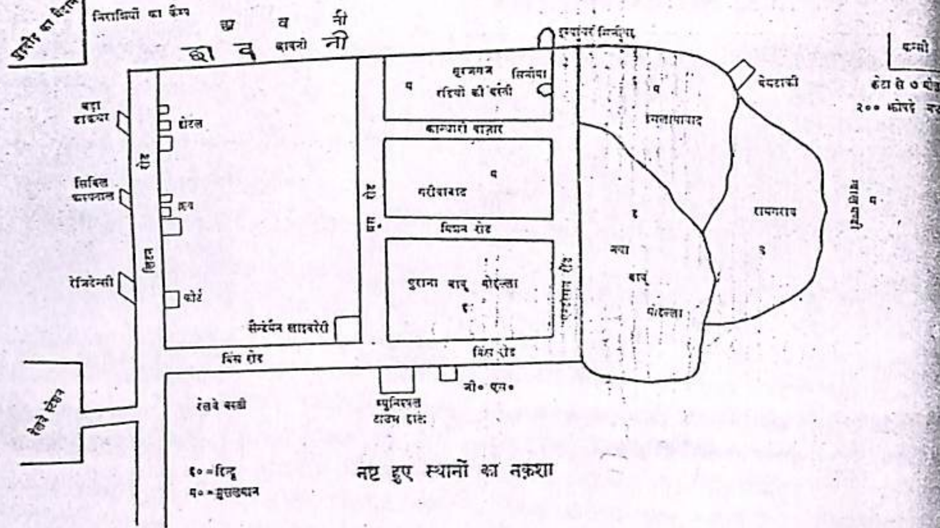
[ब्रूसरोड-कोयटा]

कोयटा में भूकम्प-पीड़ितों के सहायतार्थ बाहर से कोई नहीं जाने पाया। यह सौभाग्य केवल रेड क्रास सोसाइटी को मिला, जिसके साथ हमारे इस लेख के लेखक श्रीयुत तिलकराज भसीन भी वहाँ गये। इस लेख में आपने कोयटा का अपनी आँखों-देखा हाल लिखा है।

कोयटा भूकम्प, वह रोमांचकारी दुर्घटना, जिसने केवल हिन्दुस्तान में ही नहीं वरन सारे सभ्य-संसार में सनसनाहट और व्याकुलता उत्पन्न कर दी है, संसार के इतिहास में सदा के लिए प्रकृति के क्रूर प्रकोप, उद्दण्डता व बर्बरता का एक विशेष दृष्टान्त रहेगा—कोयटे का भूकम्प जिसने हाल में इसी ३१ मई की रात को २ बजने के ४५ मिनट बाद उस "हिन्दुस्थान की सुन्दर उद्यान वाटिका" को श्मशान में परिणित कर दिया है, हमें पुराणों में वर्णित उस महाप्रलय का, जब भोले बाबा महादेव नग्न होकर डमरू बजाते ताण्डव-नृत्य करेंगे और सारी सृष्टि 'त्राहिमाम्' पुकारेगी, स्मरण कराता है। यह विश्वास नहीं होता कि कैसे कुछ मिनटों में वह फल-पुष्प-वाटिकाओं से सुसज्जित सुन्दर नगर एक-दम बंजर-उजाड़ हो गया, जहाँ अब मृत्यु, दुर्गन्ध और धूएँ का साम्राज्य है। पर्वत अब भी वैसे ही शोभायमान खड़े हैं, चश्मे अब भी वैसे ही बह रहे हैं, फल-फूल-युक्त बाग़ अब भी अपनी छटा दरसा रहे हैं, चन्द्र, सूर्य, तारागण अब भी उस नगर का अन्धकार दूर करने का प्रयत्न पूर्ववत् करते हैं; मगर ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति ने मनुष्य और उसकी बनाई सभ्यता से बदला लिया है! उस रमणीक इलाक़े के अत्यन्त स्वास्थ्यप्रद जलवायु में पले हुए हज़ारों सुन्दर स्वस्थ नरनारी सदा की नींद सो गये! बड़े बड़े नगरसेठ दाने-दाने को मुहताज हो गये, हज़ारों बच्चे अनाथ, और सैकड़ों सधवायें विधवायें हो गईं। धन-माल की क्षति का तो कोई अनुमान ही नहीं। कई-एकों का अनुमान है कि केवल कोयटा नगर के बसाने में ही १ करोड़ से अधिक धन लग जायगा।

जैसे ही हमारी ट्रेन कोलपुर पहुँची, हमें भूकम्प के जर्जर दृश्य प्रथम दृष्टिगोचर हुए। कोलपुर के स्टेशन का एक भाग गिर गया है, किन्तु शहर बिलकुल बच गया है, क्योंकि वहाँ की बहुत-सी इमारतें भूकम्प-प्रूफ़ हैं। उससे आगे स्त्रेज़द-स्टेशन है जो एक पहाड़ी के नीचे विद्यमान है, जिसकी बाबत विशेषज्ञों का अनुमान है कि इसी ने भूकम्प को जन्म दिया। स्रेज़द के स्टेशन और आस-पास की इमारतों को काफ़ी क्षति पहुँची है। सरयाब-स्टेशन, जिससे अगला स्टेशन कोयटा है, बिलकुल नष्ट हो गया है, और जानों की भी काफ़ी हानि हुई है। सरयाब-स्टशन पर केवल स्टेशन मास्टर ही बचा था जो एक बाज़ू में पट्टी बाँधे प्लेटफ़ार्म पर दफ़्तर लगाये अपने काम में जुटा हुआ था। सरयाब से कोयटे तक लाइनों के दोनों ओर हृदय-विदारक भूकम्प का नग्न चित्र देखने में आया। एक भी मकान अथवा छप्पर ऐसा न था जो भूकम्प के प्रकोप से बचा हो। कोयटा-स्टेशन तो बुरी तरह गिरा हुआ था और बाहर प्लेटफ़ार्म पर या तंबुओं में दफ़्तर खुले हुए थे। कोयटा शहर की क्षति का अनुमान यहाँ दिये हुए नक़्शे से अच्छी तरह लग सकता है। यह कहना कोई अत्युक्ति न होगी कि कोयटा शहर अब ऐसा प्रतीत होता है, मानो वह सदियों से भूगर्भ में सोया हुआ था और हाल में ही किसी भूगर्भ-वेत्ता ने उसे खोदकर निकाला है। बाबू-मोहल्ला, शिकारपुरी बाज़ार, ब्रूस-रोड, कन्धारी बाज़ार, पुराना बाबू-मोहल्ला, रामगढ़, इस्लामाबाद, ग्वालमंडी, लिटन-रोड आदि स्थानों में धन-जन की विशेष हानि

कोयटा नगर का नक़्शा

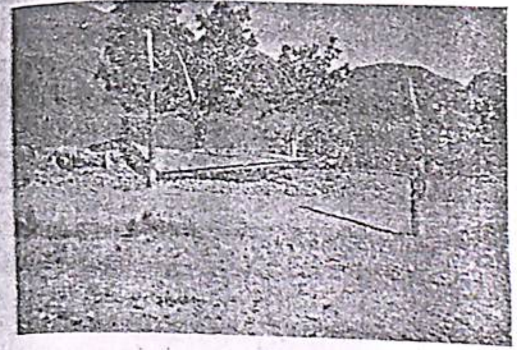


नष्ट हुए स्थानों का नक़्शा

हुई है। बड़ी बड़ी अट्टालिकायें गिरकर मिट्टी में मिल गई हैं। अगर बचे हैं तो वे ग़रीब लोग जो शहर के बाहर फ़ूस की झोपड़ियों में रहते थे।

कोयटा-छावनी शहर की अपेक्षा बहुत-कुछ बच गई है। वहाँ न तो इमारतों की विशेष हानि हुई है, न उतने मनुष्यों का ही नुक़सान हुआ है। तो भी बहुत-सी इमारतें भूचाल के झोंके में बुरी तरह आ जाने के कारण हिल-सी गई हैं—बहुत-एकों में दराज़ हो गये हैं, कई बीच से फट गई हैं और शायद अब भूकम्प का एक भी झटका न सह सकें। बहुत-से पाठक इस बात से अवश्य परिचित होंगे कि कोयटा-छावनी उत्तर-पश्चिम-सीमा-प्रान्त में एक बहुत बड़ी छावनी है। कोयटा से १५ मील आगे कलात स्टेट शुरू हो जाता है, जिसकी सीमा ख़ूँख़ार जातियों के सरहद्दी इलाक़े से जा मिलती है। कलात स्टेट में भी ब्रिटिश फ़ौजों का शासन है। कोयटा-छावनी में साधारण तौर पर ९ ब्रिगेड यानी क़रीब ४०,००० मिश्रित सिपाही रहते हैं।

सरकारी रिपोर्टों-द्वारा यह अनुमान किया जाता है कि इस भूकम्प से मरे अथवा घायल हुए मनुष्यों की संख्या लगभग ५६,००० है, जिसमें से कोई ३०,००० के क़रीब तो कोयटा शहर के ही निवासी हैं। बाक़ी छावनी और आस-पास के इलाक़े के लोग हैं। जैसा कि नक़्शे से विदित होता है, शहर में अधिक आबादी हिन्दुओं की ही थी। मुसलमान लोग तो शहर के आस-पास छोटे-छोटे गाँवों में या शहर के बाहर झोपड़ियों में रहते थे। हिन्दुओं में भी सिंधियों और पंजाबियों का अधिक नुक़सान हुआ है। कोयटे का क़रीब सारा व्यापार सिंधियों व पारसियों के हाथ में था, और बाबू क्लास में पंजाबियों की बहुतायत थी। प्रायः लोगों की आय के दो ज़रिये थे—मकान-जायदाद का किराया-भाड़ा या सरहद्दी वस्तुओं का

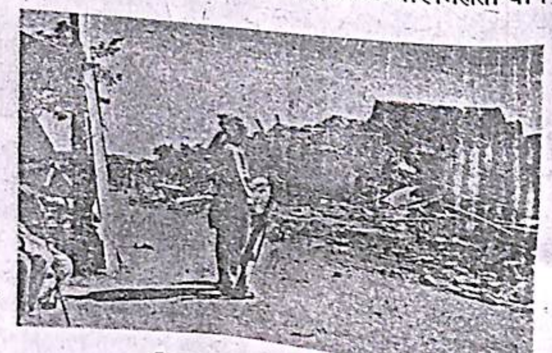


[कोयटा और मुस्तङ्ग के बीच में चुङ्गी की चौकी। ईरान और बलोचिस्तान का व्यापार का मार्ग यहीं से है।]

व्यापार। हमें ऐसे आदमी मिले जो भूकम्प के पहले लखपती थे और बाद को एक मामूली हैसियत के भी न रहे।

भूकम्प के क़रीब दो घण्टे के बाद फ़ौज ने सारे शहर पर क़ब्ज़ा कर लिया और सफ़रमैना (Sappers and miners) के आदमियों ने मलबे की खुदाई शुरू कर दी। विशेषकर दो दिन दो रात तो फ़ौज ने लगातार काम किया और क़रीब ५,००० आदमी निकाले, जिनमें से आधे से अधिक जीवित थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि फ़ौज की इस फुर्ती के कारण बहुत-सी जानें बच गईं। मरे हुओं की लाशें सड़कों पर ही जला दी गईं। बहुत-से आदमियों ने स्वयं अपने सम्बन्धियों का दाह-संस्कार किया और राख अपने साथ रख ली। तीसरे दिन जीवित और घायल सब 'जिमखाना रेसकोर्स' के मैदान में एकत्र किये गये और उनके रहने का प्रबन्ध तम्बुओं में किया गया। सारे शहर के इर्द-गिर्द फ़ौज का पहरा लगा दिया गया। कोई भी अन्दर नहीं जाने पाता था। अधिक घायल अस्पताल में भेजे गये। इसी दिन हमारी स्पेशल गाड़ी कोयटा पहुँची, जिसमें डाक्टर, नर्स, और रेडक्रास सोसायटी के कार्यकर्त्ता थे। रास्ते में हमें रोहरी और सिब्बी में दो स्पेशल गाड़ियाँ मिलीं, जिनमें वे भाग्यवान भरे हुए थे जो इस प्रलय में भी बच गये थे। सिब्बी में फ़ौज का कड़ा पहरा था ताकि कोई फ़ालतू मनुष्य कोयटा न जा सके। गाड़ी की तलाशी पहले सिब्बी में होती थी और फिर कोयटा-स्टेशन से तीन मील इधर। यहाँ रेल की लाइन के दोनों ओर सिपाही खड़े रहते थे जो चलती गाड़ी में चढ़कर मुसाफ़िरों की अच्छी तरह जाँच पड़ताल करते थे। कोयटा-स्टेशन पर भी कड़ा फ़ौजी पहरा था। जिस दिन हम कोयटा पहुँचे, स्टेशन पर पीड़ितों का एक बड़ा जमघट मौजूद था। ये सब लोग बाहर भेजे जाने की प्रतीक्षा में थे।

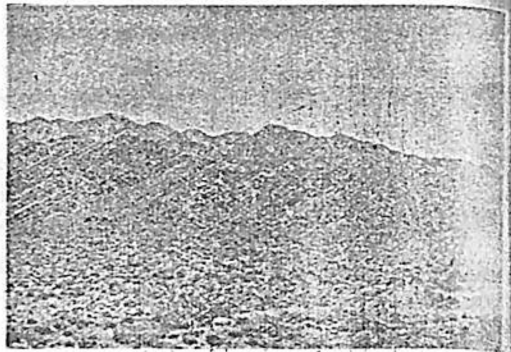
जिमखाना-रेसकोर्स के इर्द-गिर्द भी कड़ा पहरा था। उसके एक नुक्कड़ पर भोजनालय खुला हुआ था। यहाँ सब फ़ौजी प्रबन्ध था। भोजनालय के आस-पास भूखे मनुष्यों का टकटकी लगाये खड़े रहना एक अत्यन्त हृदयस्पर्शी दृश्य था। अमीर-ग़रीब, ऊँच-नीच, नर-नारी, सबको फ़ौजी न्याय के अनुसार दो चपातियाँ और $\frac{1}{2}$ प्याला दाल प्रत्येक बार मिलती थी।



[मुस्तङ्ग का मुख्य बाज़ार]

रेलगाड़ियाँ रेसकोर्स-ग्राउंड से छूटती थीं और स्टेशन पर मुसाफ़िरों को फ़र्जी टिकट मुफ़् दिये जाते थे। गाड़ी के चलने से पहले हर एक को पानी, चाय और बच्चों के लिए दूध-बिस्कुट दिया जाता था, और एक दफ़ा फिर डाक्टरी मुआयना होता था। प्लेट-फ़ार्म पर भी डिस्पेंसरी खोल दी गई थी। अधिक घायल व्यक्ति स्ट्रेचर पर रेडक्रास-सोसायटी के सेवकों या रेलवे वालंटियरों के कन्धों पर लाये जाते थे। एम्बुलेंस गाड़ियों के बहुत देर बाद पहुँचने के कारण मुसाफ़िरों को दो दिन तक काफ़ी कष्ट पहुँचा, क्योंकि मामूली घायल और अधिक घायल दोनों प्रकार के मनुष्य फल की गाड़ियों में भरकर भेजे जाते रहे। यह रेलवालों की ग़फ़लत का परिणाम था। बाद को एम्बुलेंसकारों के आ जाने पर अधिक घायल व्यक्ति विशेष हिफ़ाज़त से भेजे जाने लगे। इस प्रकार पाँच-छः दिन में कोई १० या १२ हज़ार भूकम्प-पीड़ित कोयटे से बाहर लाहौर, मुल्तान, हैदराबाद इत्यादि जगहों को भेजे गये।

जिस दिन हम कोयटा से वापस चले, उस दिन फ़ौज का शहर, छावनी और आस-पास के दुर्गों



[भूकम्प की जननी कोयटा की पहाड़ी—इसकी विभिन्न चोटियों से अब भी धुँवा और गंधक निकल रहा है।]

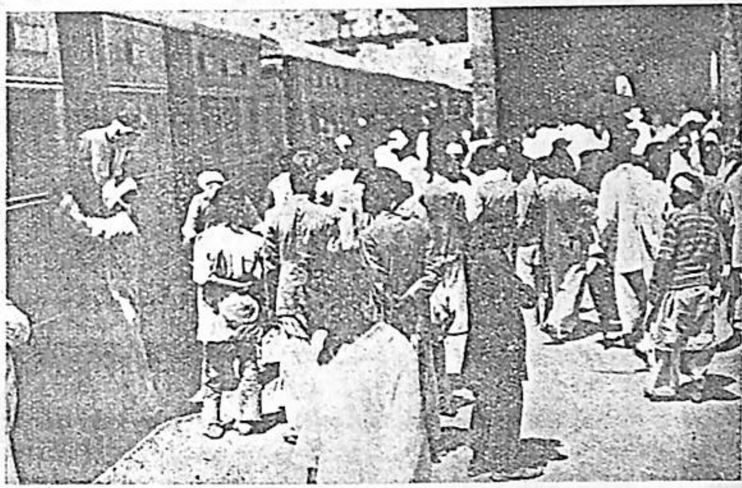


[मुस्तङ्ग का एक बाज़ार]

पर कड़ा पहरा था, क्योंकि अत्यन्त दुर्गन्धि के कारण कुछ समय के लिए खुदाई बन्द कर दी गई थी। इन बर्बर पठान लुटेरों का सदा भय बना रहता है। हमारे कोयटा पहुँचने के दूसरे दिन हमें पता चला कि पिछले रोज़ ४० पठानों की मंडली लूट-मार के लिए शहर में आ धमकी थी, जिसमें से २० तो गोली का शिकार बनाये गये और २० पकड़े गये। बाद में २० पठान शहर के चौराहों पर लटका दिये गये।

इसमें शक नहीं कि ऐसे असाधारण समय में फ़ौज के बिना कोई सरकारी या ग़ैर-सरकारी संस्था इस फ़ुर्ती, सफ़ाई और ईमानदारी के साथ भूकम्प-पीड़ितों की सहायता नहीं कर सकती थी। परन्तु तो भी अन्य संस्थाओं को सेवार्थ न आने देने की नीति उचित नहीं मानी जायगी। जब पब्लिक संस्थायें फ़ौजी शासन के अधीन होकर कार्य करने को तैयार थीं तब इनकी माँग को ठुकराकर सरकार ने बुद्धिमानी का काम नहीं किया है। वापसी पर मेरी सिंध के कांग्रेसी नेता श्रीयुत जयरामदास दौलतराम से भेंट हुई। उन्होंने भी यही कहा कि कोयटा के फ़ौजी शासक हमको सेवा करने की

[सैकड़ों घायल व्यक्ति हैदराबाद सिंध और अन्य स्थानों को भेजे जा रहे हैं। यहाँ एक जत्था हैदराबाद स्टेशन पर उतर रहा है।]



आज्ञा क्यों नहीं देते जब कि हम उनके शासन-विधान में रहकर काम करना चाहते हैं।

केवल रेडक्रास-सोसायटी और रेलवे वालंटियरों को ही भूकम्प-पीड़ितों की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इस भूकम्प में अधिक हानि धनाढ्यों या मध्यम स्थितिवालों की ही हुई है। झोपड़ियों में रहनेवाले दरिद्रनारायण भूकम्प-प्रकोप से बहुत साफ़ बचे जैसा कि एक ग़रीब मुसलमान मज़दूर ने मुझसे हँसकर कहा—"बाबू जी! हमारी ग़रीबी आख़िर एक ही दफ़ा तो काम आई।"

रोहरी स्टेशन पर पीड़ितों का नाम-पता इत्यादि लिख लिया जाता है ताकि बाद को जायदाद के मामले में सरकार उनको बुला सके।

यह तो रहा कोयटे का हाल। परन्तु इस भयानक भूकम्प का असर कोयटे के इर्द-गिर्द ६ मील तक कलात स्टेट व अफ़ग़ान सरहद तक हुआ है। कलात स्टेट की राजधानी मुस्तङ्ग का तो सिवा कुछ सरकारी इमारतों के, जो शाहीबाग़ के सामने पहाड़ी पर हैं, कुछ भी नहीं बचा, और जन-धन की भी क़ाफ़ी हानि हुई है।



[मुस्तङ्ग—मृत्यु के निकट पहुँचता हुआ एक बुड्ढा आदमी।]

कोयटा में प्रलय

लेखक, श्रीयुत धर्मवीर, एम० ए०

कोयटा के भूकम्प के पीड़ितों का वर्णन श्रीयुत धर्मवीर जी ने अपने इस महत्त्वपूर्ण लेख में उन्हीं की ज़बानी दिया है। इससे इस लेख में और भी विशेषता आ गई है। इस लेख के पढ़ने से इस कोयटा के भूकम्प का पूरा इतिहास तो मालूम ही होगा, साथ ही इसका भी बहुत कुछ ज्ञान हो जायगा कि उस महाप्रलय से जो लोग बच सके वे कैसे बच सके और उनकी इस समय क्या दशा है।

गाड़ी लाहौर के रेलवे-स्टेशन पर आकर खड़ी ही हुई थी कि सबसे पहले सत्रह-अठारह बरस की एक युवती उतरी। उसके तन पर एक बनियाइन और धोती थी। बाल खुले हुए थे। सिर में मिट्टी पड़ी हुई थी। नाक, मुँह और आँखें सूजी हुई थीं। उसके साथ एक बुड्ढा था। प्लेटफ़ार्म पर खड़े लोगों ने वृद्ध पुरुष को थाम कर डिब्बे से बाहर निकाला। वह जहाँ का तहाँ बैठ गया। अपने दोनों हाथ उसने आगे को फैला दिये। आँखें उसकी गाड़ी की खिड़की में गड़ी हुई थीं। वह चिल्लाया—"हट जाओ! हट जाओ! भूचाल आ रहा है! चंडू, चैडू! उठ, भाग!"

यह कहते हुए वह कभी सिर के बाल नोचता, कभी डाढ़ी के। वह नौजवान लड़की उसके पास बैठी कभी उसके कपड़े सँभालती, कभी अपना तन ढाँकती।

इतने में स्टेशन की दूसरी तरफ़ से एक अन्य वृद्ध पुरुष आया। उसे देखकर नवयुवती ने बाँहें फैला दीं। वे दोनों एक दूसरे से लिपट गये और फूट-फूट कर रोने लगे।

मालूम हुआ कि कमला का ब्याह हुए अभी सिर्फ़ तीन मास हुए हैं। अपने नौजवान पति चंडूलाल और बुड्ढे ससुर के साथ वह कोयटे गई थी। भूचाल आने पर पति मर गया। इस पर लड़के की मौत से बाप पागल ही हो गया। जो मनुष्य बाद में आया वह कमला का पिता था। कुछ मास पहले उसने अपनी बेटी को सोहाग की साड़ी पहनाकर भेजा था, परन्तु अब उस लड़की के तन पर सोहाग की फटी-हुई धोती भर है।

इस प्रकार की दुःखप्रद घटनायें आज-कल लाहौर के रेलवे-स्टेशन पर हर रोज़ देखने में आती हैं। कहीं माता बेटे से बिछुड़ गई है तो पत्नी पति से, बहन भाई से बिछुड़ गई है तो लड़की मा से, कराँची से लेकर लाहौर तक और लाहौर से नीचे देहली और ऊपर पेशावर तक जानेवाली लाइनों पर जितने बड़े-बड़े स्टेशन हैं उनमें से लगभग हर एक पर ऐसी हृदयवेधी घटनायें देखने में आ रही हैं।

तीस और इकतीस मई की दर्मियानी रात को ३ बज कर २० मिनट पर कोयटा में भूचाल आया। एक कहता है, झटका एक मिनट तक रहा; दूसरा कहता है, ये झटके कई मिनट तक आते रहे। ये भूकम्प कोयटा में ही नहीं महसूस हुए, बल्कि उसके इर्द-गिर्द के समस्त प्रदेश में भी। अफ़ग़ानिस्तान के दक्षिण-भाग—उदाहरणार्थ क़ुलात, चमन और कंधार में, सिंध के उत्तर-भाग-उदाहरणार्थ लड़काना, शिकारपुर, सक्खर आदि में और पंजाब में भी भूकम्प आया। इसी समय जहाँ इधर भारत के कई अन्य भागों, उदाहरणार्थ देहरादून और लाहौर में, लोगों ने इसके झटके मालूम किये, वहाँ उधर इँग्लैंड में ही नहीं, बल्कि जापान के टाइचो और शानशेको के प्रदेशों में भी इससे लाखों मनुष्य मर गये।

गत वर्ष बिहार और नैपाल में भूचाल आया था, और ग़ज़ब का आया था। लेकिन कोयटा का भूचाल तो

उससे भी बाज़ी मार ले गया। बिहार और नैपाल में भूकम्प दिन के समय आया था इसलिए लोग मकानों और दूकानों से बाहर निकलकर खुली जगह में जा खड़े हुए थे। लेकिन कोयटा में यह रात को आया, जिस वक़्त लोग मीठे सपने ले रहे थे। कोयटा की सरदी में लोगों के चेहरे लिहाफ़ों से ढँके थे जब कि यह मुसीबत उन पर टूटी। नतीजा यह हुआ कि लोग अभी अपने शरीर से कंबल भी न हटा पाये थे कि दीवारें उनके ऊपर आ गिरीं। पैंतीस हज़ार की आबादी में से तीस हज़ार आदमी दब कर मर गये। बाक़ी के बच तो गये, लेकिन किसी का हाथ कट गया तो किसी का पाँव, किसी का सिर ज़ख्मी हो गया तो किसी की कमर। बहुत ही थोड़े ऐसे निकल पाये जो सही-सलामत हैं। लेकिन वे बचे क्या, बचे जो अपनी संतानें खो बैठे हैं, जो अपनी धन-दौलत गँवा चुके हैं और निकट सम्बन्धियों से वंचित हो गये हैं।

कोयटा और उसके इर्द-गिर्द के इलाक़े में जान-माल का कितना नुक़सान हुआ है, इसके बारे में इस समय (१४ जून) तक कुछ नहीं कहा जा सकता। विभिन्न अनुमान लगाये गये हैं। एक सूत्र के अनुसार ५६ हज़ार मनुष्य मरे हैं, दूसरे के मुताबिक़ ६० हज़ार और तीसरे के अनुसार एक लाख। माल के नुक़सान का अंदाज़ा तो शायद हो ही नहीं सकता। जो कल लखपति थे वे आज पराये टुकड़ों पर अस्पतालों में पड़े हैं। अकेले रेलवे के महकमे का नुक़सान एक लाख का बतलाया जाता है। महकमा नहर और पलिस के स्टोर नष्ट हो गये हैं। रायल एयर फ़ोर्स के ४३ उड़ाके मर गये हैं। शहर से चार मील की दूरी पर मुस्तङ्ग-नाम का क़स्बा आबाद था। उसकी आबादी के तीन-चौथाई भाग का खातमा हो गया है। आस-पास के एक सौ पचास देहात, उदाहरणार्थ डाँगरा, हराँगाबाद आदि, अब उजड़े हुए मालूम देते हैं। स्वयं कोयटा का बाबू-महल्ला, मोती-महल्ला, मुलतानी महल्ला, पूरन महल्ला, पुरानी आबादी, ब्रूस-रोड, संडेमन-रोड, ग्लास्टर-रोड, फ़ेनी-रोड, गिरजा, क्लबघर, टाऊन-हाल, संडेमन-हाल, सिविल कोर्ट्स, जेनरल पोस्ट आफ़िस, टेलिग्राफ़ आफ़िस, सिविल अस्पताल और सिविल एरिया विनष्ट हो गये हैं।

कोयटा से ८ मील के फ़ासले पर सरयान नाम का एक स्टेशन है। यहाँ जब भूचाल आया तब ज़मीन फट गई और सारे मुलाज़िम तथा उनके परिवार इमारतों में बैठे-बिठाये धरती के अन्दर धँस गये।

शहर क़ुलात में भी बहुत नुक़सान हुआ है—जान और माल दोनों का। वर्तमान नवाब के चाचा भूतपूर्व नवाब, के शाही महल में साढ़े तीन सौ से ऊपर बीबियाँ रहती थीं। यह महल अब मिट्टी में मिल गया है। इन बीबियों को नवाब ने देहात से एकत्र किया था। जो सुन्दर स्त्री नवाब को पसंद आती उसे वे अपने महल में ले आते। यहाँ तक कि अपने पतियों से अलग करके लाई जाती थीं। नवाब जब मरे तब ये औरतें अपने पहले के पतियों के पास वापस भेजी गईं। परन्तु पतियों ने आपत्ति की कि अब तो ये बूढ़ी हो गई हैं, हम इन्हें नहीं लेंगे। इस पर हर एक वृद्धा के साथ उन्हें एक एक युवती स्त्री भी दी गई। नवाब की इन बीबियों को वे आभूषण भी दे दिये गये जो वे महल में पहना करती थीं। इसके अतिरिक्त उन्हें दो दो ऊँट और एक एक घोड़ा भी दिया गया। उन नवाब को एक अन्य बात का भी शौक़ था। वे घोड़ों की पूँछें काटकर उन्हें एक पहाड़ी कन्दरा में बन्द कर दिया करते थे। उस कन्दरा में ऐसे छः सौ घोड़े क़ैद थे जो दस वर्ष तक अँधेरे में रहे थे। उनके उत्तराधिकारी वर्तमान नवाब अपनी पत्नी और बच्चे-सहित बच गये हैं, परन्तु उनकी राजधानी की अत्यधिक हानि हुई है।

एक मित्र ने जो भूचाल के समय कोयटा में थे, अपनी आँखों-देखी कई बातें बतलाईं। ये बहुत ही करुणाजनक हैं। इन्होंने कहा—"भूकम्प का झटका तो ज़्यादा से ज़्यादा पाँच क्षण तक रहा होगा, किन्तु इन पाँच क्षणों में समस्त कोयटा नष्ट हो गया। वह नगर जिसकी ऊँची इमारतें मानव-श्रम की सुन्दर कृतियाँ थीं, देखते-देखते ईंटों और मलबे का ढेर हो गया। वे महिलायें जो मखमली बिछौनों पर आराम कर रही थीं

वे शाहज़ादे जो ज़मीन पर पैर धरना गवारा न करते थे और वे बच्चे जो मा की गोद और मकान की चहार-दीवारी को स्वर्ग समझे बैठे थे, आज छतों और दीवारों के नीचे दबे पड़े हैं। या अगर मलबे से निकाले गये हैं तो उनकी लाशें सड़कों और गली-कूचों में दूसरे का मुँह ताक रही हैं। मा को बच्चे का पता नहीं, पत्नी को पति का नहीं है। बालक बिलबिला रहे हैं, पुरुष सिर धुनते हैं और स्त्रियाँ रुदन कर रही हैं। कोई घर ऐसा नहीं जिसे सदमा न पहुँचा हो। कोई भाग्यवान् घराना ही होगा जो बच गया हो। लाखों के मालिक रात के २ बजे तक सुख की नींद सो रहे। परन्तु २ बजे के बाद वे या तो परलोक सिधार गये या शरीर पर पहने हुए कपड़ों के सिवा सब कुछ खो बैठे। उम्र भर की कमाई तो एक तरफ़, बीबी, बच्चे और आत्मीय भी खो बैठे। एक ओर मर्द "दौड़ो! बचाओ!" की आवाज़ें लगा रहे थे, दूसरी ओर औरतें "कोई पहुँचो! निकालो!" की दुहाई दे रही थीं। जिस महल्ले में मैं रहता था वहाँ चार नवयुवकों ने अपनी जानों को संकट में डालकर कई जीवित स्त्री-पुरुषों और बच्चों को ज़मीन के अंदर से निकाला। इधर रात अँधेरी, उधर बिजली के तार टूट जाने से रोशनी नहीं। सर्दी से ठिठुर रहे लोगों ने लकड़ियाँ जला-जलाकर रिश्तेदारों की तलाश की। किन्तु बे-बस। खोदने का सामान न था। अंत में हारकर सवेरे तक रोते-चिल्लाते रहे। पहले झटके के बाद उसी रात तीन बार और भूचाल आया। परन्तु क़िस्सा तो पहले ने ही खत्म कर दिया था, इस-लिए बाद में आनेवाले झटकों की कोई हस्ती न थी। लोग डर रहे थे कि फिर भूचाल न आजाय। करते भी तो क्या करते! हर महल्ले में पाँच-पाँच, सात-सात आदमी ही बचे। वे अपने रिश्तेदारों को बचाते या दूसरों को।

"जब दिन निकला तब एजन्ट गवर्नर जनरल ने कमांडर-इन-चीफ़ से फ़ौज की सहायता माँगी, क्योंकि कोयटा-छावनी में भूचाल से बहुत कम हानि हुई थी। इसके फलस्वरूप ब्रूस-रोड आदि पर गोरखों और गोरों के फ़ौजी दस्ते पहुँच गये। यह संख्या भी अपर्याप्त थी। फिर भी फ़ौजियों ने कई दबे हुए लोगों की जानें बचाईं। सिविल अस्पताल गिर चुका था, इसलिए जख्मी एंबुलेंस कारों में बिठलाकर ब्रिटिश मिलिटरी अस्पताल पहुँचाये गये। रात होने से पहले-पहल बचे हुए लोग मेकमॉहन-पार्क, ज़नाना मिशन हास्पिटल, जिमखाना आदि में आश्रय लेने के लिए जा पहुँचे।

"रात होते ही शहर के गिर्द फ़ौज का पहरा लगा दिया गया। बाहर तोपें खड़ी कर दी गईं। हवाई जहाज़ भी उड़ते रहे। इस रात भी पाँच झटके आये। इनमें से अंतिम जो ५ बजे आया, पहले दिन के झटके से किसी तरह कम न था।

"कहते हैं, इस रात (३१ मई) पेशीन के मौज़ा से चालीस-पचास पठान शहर को लूटने के लिए रात के साढ़े ग्यारह बजे कोयटा आये। लेकिन गोरखों ने इन पर गोलियाँ चलाईं, जिससे पन्द्रह पठान मारे गये बाक़ी भाग गये।

"पहली जून की सुबह को लोग फिर लाशें निकालने में संलग्न हो गये। उस दिन लोगों को कुछ बलोची भी मिल गये। वे दस रुपये फ़ी लाश की उजरत पर लाश निकालते थे। लेकिन वहाँ दस रुपये क्या, दस पाइयाँ भी किसी की जेब में न थीं। उनकी संपत्ति शरीर पर लिपटे हुए कपड़ों के सिवा कुछ न थी। तो भी लोगों ने इधर-उधर से रुपये माँगकर उनकी भेंट किये।

"इधर लाशों की मुसीबत थी, उधर मछली-बाज़ार, बाज़ार सराफ़ा, कंधारी बाज़ार और ब्रूस-रोड पर गिरी हुई दूकानों से अग्नि प्रज्वलित हो उठी। पहले दो बाज़ारों में तो इसलिए कि वहाँ पर मुसलिम होटलों के होने के कारण दिन-रात के चौबीसों घंटे आग जलती रहती थी। अंतिम दो में इसलिए कि वहाँ बिजली के तार परस्पर टकरा गये। चोरों और बदमाशों ने इस अवसर पर बहुत हाथ-पाँव मारे। परन्तु सबके सब गिरिफ़्तार कर लिये गये। दिन के क़रीब ११ बजे गुरुदत्तसिंह-रोड पर दो मुसलमान पठानों ने एक स्त्री के बाज़ू काटकर उसके सोने के कड़े उतार लिये। लोगों के शोर मचाने पर गोरखा सिपाही जमा हो गये और उन्होंने दोनों को पकड़ लिया।

"इसके बाद शहर के अंदर और बाहर गोरखा-फ़ौज

का पहरा लगा दिया गया। पहाड़ियों और शहर के गिर्द पाँच-पाँच मील तक हथियारबंद फ़ौज खड़ी कर दी गई।"

कानपुर के दयानन्द ऐंग्लो-वैदिक कालेज के प्रिंसि-पल लाला दीवानचन्द के बड़े भाई लाला काहनचन्द भूचाल से दो दिन पहले अपने निज के [illegible] काम से कोयटा गये थे। उन्होंने जो बातें बतलाई हैं वे भी वर्णनीय हैं। वहाँ से बचकर लौटने को लाला जी "यमद्वार से वापसी" कहते हैं। २८ मई को वे कोयटा पहुँचे। डाक-बँगले के सामने एक कोठी में ठहरे। आउट-हौस में एक मिस्त्री और एक नाई भी थे। डाक-बँगले में गुजरात के रईस राय केदारनाथ ठहरे हुए थे। राय केदारनाथ के सम्मान में ३० मई की शाम को कुछ मित्रों ने एक पार्टी दी जो ११ बजे तक जारी रही। जब बाक़ी सज्जन अपने-अपने घर को चले गये तब राय केदारनाथ और लाला काहनचंद दर्मियानी सड़क पर एक घंटा के क़रीब टहलते रहे, परस्पर बातें होती रहीं। १२ बजे म्युनिसिपलटी की बत्तियाँ बुझा दी गईं, इसलिए दोनों अलग होकर सोने के लिए चले गये। लाला काहनचंद को नींद नहीं आई। उन्होंने लेटे-लेटे पढ़ना शुरू कर दिया। दो-ढाई घंटे तक वे पढ़ते रहे। यह असाधारण बात थी। इतने में उन्होंने बहुत ज़ोर की आवाज़ सुनी। देखा कि मकान की छत दीवारों से अलग होकर उनके ऊपर आ रही है। न समय मिला, न साहस हुआ कि कुछ करें। एक क्षण में छत उनके ऊपर थी। कुछ झटके और आये। इससे शरीर तथा मलबे के दर्मियान जो जगह खाली थी वह भी भर गई। सिर के नीचे एक ईंट चुभ रही थी। उसे हिलाना चाहते थे, लेकिन कुछ न कर सकते थे। कभी खयाल आता कि कोशिश करें और मलबे के नीचे से निकलें, कभी खयाल होता कि इस व्यर्थ प्रयत्न में अपनी शक्ति क्यों खत्म करें। मलबे में इत्तिफ़ाक़ से ज़रा-सा सूराख रह गया जो उनकी आँखों में प्रकाश की कुछ किरणें और नाक में कुछ हवा लाता रहा। चार घंटे इसी प्रकार गुज़रे। इसके बाद फेफड़ों और गर्दन पर ज़्यादा बोझ होने से उनका दम घुटने लगा और साँस लेने के लिए उन्हें प्रयत्न करना पड़ा। उन्होंने अनुभव किया कि अंतिम घड़ी आ पहुँची है। ऊँची आवाज़ से कहना शुरू किया कि परमात्मा, मेरा जीवन समाप्त कर दो या मुझे बेहोश कर दो। ये चार घंटे उन्होंने बग़ैर फ़िक्र और मान-सिक दुःख के गुज़ारे। उनकी शक्ति खत्म होने को थी कि उन्होंने भजन पढ़ना और प्रार्थना करना शुरू कर दिया। ऐन ज़रूरत के वक़्त तीन-चार आदमी वहाँ आ पहुँचे जिन्होंने आवाज़ सुनी। उन्होंने पूछा—कौन बोलता है? लाला जी ने कहा—मैं दबा पड़ा हूँ। उन लोगों ने कुछ कोशिश करके लाला जी के शरीर के ऊपर के हिस्से से मलवा अलग किया। निकल आने पर कहा, अब मुझे छोड़ दो। इस मकान के अमुक भाग में दो मनुष्य और दबे पड़े हैं। उनको देखो। उनमें से एक जीवित निकला दूसरा मर चुका था। लाला जी ने उन मज़दूरों से कहा—"डाक-बँगले के फ़लाँ कमरे में राय केदारनाथ को देखो। अगर उनको ज़िन्दा निकाल सकोगे तो तुम्हें एक हज़ार रुपया दिया जायगा। अगर सिर्फ़ उनकी खबर ला दोगे तो दस रुपये दूँगा। मेरे कोट में जो दबा पड़ा है, क़रीब सौ रुपया होगा, वह तुम ले जाओ।" कुछ मिनटों के बाद ये मज़दूर राय केदारनाथ के नौकर के साथ आये और बताया कि वे मर चुके हैं। लाला जी दूसरे दिन कोयटा से निकल आये। एक ताँगे में बैठ गये। उसने डेढ़ रुपया माँगा। यह रुपया वे उधार लेकर ही दे सकते थे। परन्तु यह अब सम्भव न था। उनकी सारी मिलकियत एक कुरता और एक धोती थी। धोती का आधा हिस्सा उन्होंने एक अन्य मनुष्य को जो ज़रूरतमंद था, दे दिया।

इस अवसर पर कुछ लोगों को एक अन्य विचित्र-सी तकलीफ़ भी हुई। वह डी० ए० वी० स्कूल के एक शिक्षक की ज़बानी सुनिए—

"रात सख़्त अँधेरी। तीन साढ़े-तीन का समय। एकाएक ज़ोर-ज़ोर से घूँ-घूँ की आवाज़ कानों में पड़ी। सन् १९३१ के भूचाल के वक़्त भी ऐसी ही आवाज़ आई थी। मेरे साथ चारपाई पर तीन बरस का लड़का सोया पड़ा था। उसे छाती से लगा लिया। बाँया हाथ उसके सिर

पर रख दिया ताकि ऊपर से अगर छत गिरे तो उसकी कुछ रक्षा हो जाय। अपनी धर्मपत्नी को "सँभल जाओ!" कहने को था कि पैरों से दीवार निकल गई। बेहोश-सा हो गया। कुछ हौसला किया। बच्चे को छाती से दबाते हुए सिर की तरफ़ ज़ोर से उछलने की कोशिश की। उसी ओर भूचाल का झटका भी जा रहा था। हमारे ऊपर गिरी हुई साबूत दीवार हटकर दूसरी तरफ़ जा गिरी। साथ ही मैं भी निकल गया। मेरी धर्मपत्नी छः मास की लड़की-सहित नीचे दब गई।

"मुझे फ़िक्र हुई कि धर्मपत्नी और लड़की को भी निकालूँ। पर पता न लगता था कि मेरा मकान कौन-सा है और मकान के किस कोने में वे सोये हुए थे। बैठी हुई छतें और खड़ी हुई दीवारें। मिट्टी के ज़ोर से उड़ने के कारण गर्द-गुबार। हर तरफ़ से चीखों की आवाज़। क्या करता?

"कुछ देर के बाद एक जगह से ईंटें उठा-उठाकर दूसरी तरफ़ फेंकनी शुरू कीं और नीचे से स्व-पत्नी को निकालने लगा। लेकिन वहाँ से एक पड़ोसी निकला। उसने बताया कि यह तो हमारा मकान है। पहले तो मैंने न माना, पर उसके बहुत बार कहने पर समझ गया कि सचमुच यह हमारा मकान नहीं है। नीचे से जो आवाज़ आ रही थी वह एक अन्य की स्त्री थी जो एक मकान छोड़ तीसरे में रहते थे। वह बार-बार कहती थी—"भाई साहब, जल्दी निकालो; आपका भला होगा!" मैं उसे अपनी पत्नी समझकर उसे आश्वासन देता—"हौसला करो; मैं अभी निकाले देता हूँ।" पास ही, चौबारे का मलबा पड़ा था। लड़के को एक ढेर पर बिठलाकर फिर ईंटें हटाने लगा। जब चौबारे का मलबा हट गया तब लोहे की चादर के नीचे स्त्री का सिर नज़र आया। बड़ी मुश्किल से चादर दूर की तब वहाँ से दूसरे पड़ोसी की स्त्री निकली। अब हिम्मत जाती रही। फिर भी तीसरी जगह से ईंटें हटाने लगा। पत्नी की टाँगें नज़र आईं। दूसरे लोगों की मिन्नत की तब कहीं ११ बजे पत्नी को निकाल पाया। वह पीड़ा से मर रही थी। गुरुद्वारे के मैदान में पहुँचे। वहाँ पर थोड़ी ही देर बैठे थे कि दूर की दूकानों से आग भड़क उठी। सेंक आने लगा। बच्चे और धर्मपत्नी को उठाकर अब आर्यसमाज के मैदान में पहुँचे।"

कोयटा में भूचाल आया है, इसकी ख़बर बाहर कैसे गई, यह भी एक दिलचस्प कहानी है। कोयटा में डाकख़ाना और तारघर गिर चुके थे, रेल की लाइन उखड़ चुकी थी। अब बाहर की दुनिया को कैसे सूचित किया जाय? एक फ़ौजी अफ़सर ने साहस किया। शहर से सोलह मील की दूरी पर स्पेज़द नाम का क़स्बा है। वहाँ पर बेतार के तार (वायरलेस) का स्टेशन है। वह अफ़सर भागकर वहाँ पहुँचा और वायरलेस के द्वारा पहले मरी-पर्वत और फिर शिमला तथा लाहौर को सूचित किया। (रिलीफ़ की गाड़ियाँ इस स्पेज़द के स्टेशन तक ही जाती हैं।)

कोयटा में भूचाल पहली बार ही नहीं आया है। बम्बई की वेधशाला का कथन है कि इससे पूर्व सन् १८९२, १९०९ और १९३१ में भी भूकम्प आये थे। इतने भूचाल यहाँ क्यों आते हैं, इसका भी वेधशालावाले एक कारण बताते हैं। खोजक पर्वतों के साथ-साथ ज्वालामुखी पहाड़ हैं। जब जब इस जगह की ज़मीन के नीचे गरम-गरम तरल पदार्थ और गैसें जमा हो जाती हैं और बाहर निकलने की कोशिश करती हैं तब तब भूकम्प आया करता है। यह इन लोगों की एक 'थियरी' ही है, इसलिए कहा नहीं जा सकता कि इसमें सचाई कहाँ तक है।

आज से चार बरस पूर्व जब यहाँ भूचाल आया था तब बोलन का दर्रा और इर्द-गिर्द का इलाक़ा इसके प्रभाव में आये थे। मछ, आबेगुम आदि शहर विनष्ट हो गये। इनके रेलवे-स्टेशन और इमारतें गिर गईं। लेकिन जान का नुक़सान बहुत कम हुआ। इसका एक कारण था। पहले मामूली झटके आये, जिनसे लोग सचेत हो गये और मकानों से बाहर सोने लगे। जब बड़ा झटका आया तब मकान ही गिरे, आदमी बच गये। उन दिनों मछ का जेलख़ाना भी गिर पड़ा, जिसमें से ४७३ क़ैदी भाग निकले। एक एक्स्ट्रा-असिस्टेंट ने अनुभव किया कि ये डाकू इलाक़े में तबाही मचा देंगे, इसलिए

वह रात ही रात एक टट्टू पर सवार होकर कोयटा को चल पड़ा। रास्ते में पहाड़ियाँ उसके इर्द-गिर्द घूमती नज़र पड़ती थीं। उसके घोड़े के पैरों-तले ज़मीन नीचे को धँसी जाती थी। कोयटा में उसी ने जाकर भूचाल की सूचना दी। फ़ौजी सिपाहियों के साथ लारी में बैठकर वह वापस मछ आया। देखा कि क़ैदी भागे नहीं हैं, क्योंकि भूकम्प के कारण वे भयभीत थे। उन दिनों कोयटा पाँच दिन के लिए संसार से अलग हो गया था, क्योंकि कोई गाड़ी वहाँ से किसी दूसरी जगह नहीं जा सकी। इसके अतिरिक्त खास कोयटा में क्लब-घर और अस्पताल भी गिर गये थे।

भूचालों का इतिहास जानने के बाद हमारे सामने प्रश्न होता है कि ख़ुद कोयटे की कितनी उम्र है। क्या यह कोई प्राचीन नगर है, जिसके पीछे भूकम्प इस बुरी तरह से पड़े हुए हैं?

कोयटा नाम की एक तलहटी भी है जो समुद्र-तल से साढ़े पाँच हज़ार फ़ुट ऊँची है। कोयटा-नगर इस समय विशेष भौगोलिक एवं युद्ध-सम्बन्धी महत्त्व रखता है। नार्थ वेस्टर्न रेलवे ने इसे भारत से मिला दिया है। लाहौर से यह ७२७ मील की दूरी पर है और कराँची से ५३६ मील की दूरी पर। एक सड़क पेशीन को कोयटा से मिलाती है। पेशीन से डेरा ग़ाज़ीख़ान तक छकड़े चलते हैं। इन दोनों के दर्मियान २७० मील का फ़ासला है।

कोयटा का हिन्दुस्तानी क़स्बा दक्षिण-पूर्व की ओर स्थित है और सिविल लाइन दक्षिण-पश्चिम की ओर। छावनी तीसरी तरफ़ है। छावनी को बाक़ी दो भागों से अलग करनेवाला हबीब नाम का एक नाला है।

कोलान के दर्रे तक पक्की सड़क बनी हुई है। जब द्वितीय अफ़ग़ान-युद्ध समाप्त हुआ और ब्रिटिश सेना कन्धार से वापस आई तब सेना के एक बड़े भाग ने उस समय कोयटा में आकर दम लिया। यह बात सन् १८८१ की है। कोयटा तब वीरान-सा था। इधर-उधर कीकर और शहतूत को छोड़ किसी दूसरे वृक्ष का नाम भी न था। सर राबर्ट संडेमन की स्वीकृति से तब मिस्टर बारनेस ने कन्धार से कई प्रकार के पेड़ और पौधे दो-तीन सौ ऊँटों पर लाद कर मँगवाये और उन्हें सड़कों पर लगवाया। तभी लिटन-रोड तैयार हुई। पोलो-ग्राउंड भी बारनेस साहब ने ही बनवाई।

गरमियों के मौसम में कोयटा में दिन के वक़्त ज़्यादा गरमी नहीं पड़ती, और रात के समय तो सदा कमरे के अन्दर कम्बल वग़ैरह ओढ़ करके सोना पड़ता है। फूलों के दिनों में वहाँ गुलाब ख़ूब खिलता है। दिसम्बर और मार्च महीनों के बीच यहाँ हर साल वर्षा हुआ करती है। मैदान से गये हुए लोगों को तब बहुत ज़्यादा सर्दी मालूम हुआ करती है।

यों तो कोयटा में भारत के हर प्रान्त के लोग आबाद थे, किन्तु अधिकतर आबादी पंजाबियों और सिंधियों की थी। पंजाबी, सिंधी, कुछ योरपीय और पारसी ही वहाँ के बड़े व्यापारी थे। स्थानीय सरकारी दफ़्तरों में भी ज़्यादातर पंजाबी और सिंधी ही थे।

सन् १८२८ में इस प्रदेश में पहला योरपीय पहुँचा। उसने देखा कि कोयटा मेरी के इर्द-गिर्द बसा हुआ है। (जिस स्थान पर मेरी-क़स्बा आबाद था वहाँ भूचाल से पूर्व अस्त्रालय था।) उन दिनों मिट्टी की एक कच्ची दीवार मेरी के चारों तरफ़ बनी हुई थी और क़स्बे में कुल तीन सौ मकान थे।

सन् १८४० में इस जगह पर आस-पास के क़बीलों के एक लश्कर ने आक्रमण कर दिया जिसे ब्रिटिश फ़ौज ने तीन घंटे में तितर-बितर कर दिया। उसी साल कुजात के कुछ क़बीलों ने कोयटा पर हमला कर दिया। लेकिन उनमें परस्पर फूट पड़ गई और वे वापस चले गये।

जहाँ इस समय कोयटा आबाद था वह ज़मीन गवर्नमेंट ने सन् १८७८ और १८८३ के बीच में प्राप्त की। तब केवल मूलवासियों को ही यहाँ रहने की इजाज़त थी या उनको जो सदा के लिए यहाँ रहना चाहते थे। आरम्भ में गवर्नमेंट ने ३,७५४ एकड़ ज़मीन ख़रीदी। इसमें से ३,४९६ एकड़ तो छावनीवालों ने घेर ली। बाक़ी सिर्फ़ २५८ एकड़ सिविल टाउन के हिस्से में आई। सारी ज़मीन के लिए ढाई लाख से कुछ ज़्यादा रुपया ख़र्च किया गया। छावनी की ज़मीन तो पथरीली-सी थी।

पत्थर भी कुछ क़ीमती न था। परन्तु सिविल लाइन के हिस्से में जो पत्थर आया वह काफ़ी क़ीमती था। तब तेरह हज़ार रुपया पानी जमा करने के प्रबन्ध पर खर्च हुआ, पाँच हज़ार सफ़ाई तथा मरम्मत पर और साढ़े चार हज़ार पुरानी क़ब्रों के साफ़ करने और ढाँपने पर।

छावनी का भाग पथरीला ही नहीं, वरन शहर की निस्बत ऊँचा भी है। यह उँचाई ही इसके भूचाल से बचे रहने का कारण बताया जाता है। एक अन्य कारण शहर और छावनी के बीच बड़ा नाला है। कहते हैं, इसने भूकम्प के झटकों को अपने अन्दर ज़ब्त कर लिया और छावनी बच गई।

ज्यों ही कि भूकम्प का समाचार बेतार-के-तार-द्वारा संसार में फैला, त्यों ही भिन्न-भिन्न देशों से पीडितों के प्रति सहानुभूति के संदेश आने लगे। इधर सम्राट् जार्ज ने संदेश भेजा, उधर नैपाल के महाराज ने, एक तरफ़ जापान से संदेश आया तो दूसरी तरफ़ अमरीका और आस्ट्रेलिया से। कई स्थानों से रुपया भी पहुँचा।

लेकिन डाक्टरों, नर्सों, खाने-पीने की सामग्री तथा दवाइयों की मदद सबसे पहले संभवतः नथियागली से पहुँची, क्योंकि इसी छावनी को वायरलेस के द्वारा सबसे पहले भूकम्प का पता मिला था। नथियागली के अतिरिक्त लाहौर और कोहाट से कई एक हवाई जहाज़ इन्हीं चीज़ों से भरे हुए कोयटा पहुँचे। लाहौर से फल, दूध, घी मक्खन, कपड़ा, दवाई आदि की कई गाड़ियाँ डाक्टरों नर्सों और वालंटियरों के सहित कोयटा को गईं। साढ़े तीन हज़ार से ज़्यादा मनुष्य तो जख़्मी ही पड़े थे। दूसरों को छोड़ उनकी सेवा ही बड़ा काम था। वहाँ जो डाक्टर गये उन्होंने दिन-रात, चौबीस घंटे, मरीज़ों के पट्टियाँ बाँधीं।

अब हम कोयटा में उस जगह चलते हैं जहाँ रिलीफ़ का काम हो रहा है। घुड़दौड़ के मैदान में आजकल तम्बू ही तम्बू दिखाई देते हैं। जिस स्थान पर किसी समय फ़ैशन और सौन्दर्य का प्रदर्शन हुआ करता था, अब वहाँ फटे हुए कपड़े पहने लोग पड़े पाये जाते हैं। यहाँ जिस किसी मनुष्य से सामना होता है वही अपने मरनेवाले रिश्तेदारों की संख्या बतलाता है। आर्यसमाज, डी० ए० वी० स्कूल और मुलतान सेवा-समिति के स्वयंसेवक चौधरी श्यामलाल वकील की अध्यक्षता में यहाँ पीड़ितों की सेवा कर रहे हैं।

एक तरफ़ भारी लंगर लगा हुआ है, जहाँ हज़ारों लोगों को हर वक्त खाना मिलता है। लोहे के बड़े-बड़े तवों पर रोटियाँ पक रही हैं और पीड़ित हाथ फैलाये दाल-रोटी ले रहे हैं। यदि क़िस्मत अच्छी हुई तो एक आध आम और कुछ खुरमानियाँ भी मिल गईं। तम्बुओं में पानी का प्रबन्ध भी सन्तोषजनक है। तीन फ़ुट ऊँचे और दस वर्ग फ़ुट कन्वेस के बैगों में पानी एकत्र किया जाता है।

अभी ये लोग त्रस्त हैं, इसलिए अगर इनके खयाल में भी ज़मीन ज़रा-सी हिलती है तो इनका कलेजा मुँह को आने लगता है। इस जगह मालूम नहीं कितने अमीरज़ादे रोटी के लिए मोहताज हैं। कुछ एक ने मलवा खोदकर एक-आध चारपाई निकाल ली है। वे उस पर बैठे आकाश की ओर एकटक देखते रहते हैं। न जाने किस सोच में डूबे होते हैं। श्रम से पले-पोसे खूबसूरत चौड़े चेहरेवाले इनके बाल-बच्चे आपको अपनी तरफ़ देखने पर मजबूर करते हैं। परन्तु आप उधर देख नहीं सकते।

घायल हुए लोगों के लिए कोयटा में चार जगह प्रबन्ध किया गया है। रेस-कोर्स में वे बीमार जाते हैं जिनको मामूली चोटें आई हैं। दूसरा केन्द्र इंडियन मिलिटरी अस्पताल है। इसके साथ ही कैन्टोन्मेंट जेनरल हास्पिटल भी है। इसमें कई हज़ार बीमारों के रखने का प्रबन्ध है। बीमार इतने ज़्यादा हैं कि उनके लिए संतोषजनक प्रबन्ध होना असंभव-प्राय है। अस्पताल का दृश्य मनुष्य को वहाँ खड़ा नहीं होने देता। रोगियों की चीख़-पुकार कलेजा फाड़ देती है। उनकी अवस्था देखकर पत्थर दिल भी पिघल जाता है। एक रोगी पीड़ा के मारे चिल्ला रहा है और अपना तकिया सिर के नीचे से खींच कर शरीर के साथ दबा रहा है ताकि किसी तरह दर्द कम हो जाय। कोई चीखें मारता हुआ अपनी चारपाई की सलाखों को ही पकड़कर दबाता है। एक अन्य अपने आत्मीयों की याद में फूट-फूटकर रोता है।

तीसरा स्थान रेलवे स्टेशन है, जहाँ सी० एम० ओ० की अध्यक्षता में रेलवे और बाहर के डाक्टर काम करते हैं। यहाँ सहायता बहुत मामूली मिलती है। ज़्यादा काम रोगियों को गाड़ियों पर चढ़ाना रहता है। मरहम-पट्टी की और ट्रेन में बिठला दिया। यह केन्द्र अब बन्द हो रहा है। परन्तु अन्तिम केन्द्र ब्रिटिश हास्पिटल है, जो योरपीय मरीज़ों के लिए अलग रक्खा गया है।

कोयटा के अतिरिक्त सक्खर और लाहौर के बीच बड़े-बड़े स्टेशनों पर रिलीफ़ का काम जारी है। खाने-पीने का सामान, सोने-पहनने की चीज़ें, दवाइयाँ और दूसरी वस्तुएँ—कई सभा-समितियों की ओर से मुफ़्त प्रस्तुत की जाती हैं। लेकिन ये लोग कोयटा से चलने के समय किस मुसीबत में होते हैं, इसकी एक झाँकी देखिए। एक महिला गाड़ी पर सवार हुई। गाड़ी चली तब उसने अपने बाल नोचने शुरू कर दिये (क्योंकि उसके सभी बच्चे मर गये थे।) कोई चीज़ निकालने के लिए उसने अपना ट्रंक खोला। जब अपने मृत बच्चों के कपड़े उसकी नज़र पड़े तब वह फूट-फूट कर रोने लगी। दरवाज़े के साथ सिर पटकने लगी। क़रीब था कि वह खिड़की से छलाँग लगा जाती कि पास बैठे लोगों ने उसे क़ाबू कर लिया।

जब ये लोग इधर आते हैं-तब इनकी जो हालत होती है, यह भी देखिए। १० जून को लाहौर में कोयटा के पीड़ितों की ऐम्बुलेंस ट्रेन पहुँची। इसमें वे लोग थे जो हिल-डुल न सकते थे। स्ट्रेचरों पर डालकर वे उतारे गये। किसी की टाँग कटी हुई थी, किसी की बाँह, किसी का हाथ नहीं था, किसी का पाँव; किसी की पसली टूटी थी, किसी की हड्डी। हर एक डिब्बे में बिजली के पंखे चल रहे थे। नर्सें, डाक्टर और खाने का सामान मौजूद था। ये रोगी मेयो अस्पताल, आर्यसमाज-अस्पताल, महिला-विद्यालय आदि में पहुँचा दिये गये।

ये मूक दृश्य दिल को पिघला देते थे, परन्तु इनसे शायद बढ़कर प्रभाव करनेवाली मुसीबत की वे मूर्तियाँ थीं जिनको न सिर्फ़ आँखों ने देखा, बल्कि कानों ने सुना भी। एक सिक्ख नवयुवक जिसके पास एक छोटा-सा बच्चा था, कहने लगा—"मैं और यह, एक कमरे में सोये हुए थे। स्त्री, पिता आदि दूसरे कमरे में। ३ बजे धमाका हुआ। हम जाग पड़े। मैं अभी सँभलने भी न पाया था कि पैरों के नीचे से मकान निकल गया। अब लोहे की चादर हमारे ऊपर थी। अगले दिन हम छत के नीचे से निकाले गये। हम दोनों तो बच गये, लेकिन वे हमारा साथ छोड़ गये।" इसके बाद वह रोने लगा।

एक अन्य सज्जन ने बताया—"मैं तीसरी छत पर सोया हुआ था। झटका आया तब मैंने उठकर दरवाज़े को मज़बूती से पकड़ लिया। इस बीच में मकान फटा और मैं बाज़ार में आ रहा। मेरे पाँव और टाँगें कट गईं। घरवाले दब कर मर गये।"

माता अपनी सन्तान के लिए क्या कर गुज़रती है, यह भी देखिए। भूकम्प से मकान गिर गया। करतारसिंह की स्त्री रामप्यारी ने अपने तीन मास के बालक को बचाने के लिए उसे अपनी छाती के नीचे रख लिया और आप उसके ऊपर हो गई। मकान के शहतीर ने माता के प्राण ले लिये, बाप भी मर गया, परन्तु बच्चा बच गया।

जो कल लखपति थे, आज दरिद्र हैं। सक्खर-स्टेशन पर एक हिन्दू-महिला गाड़ी से उतरी। कपड़े फटे हुए थे और रो रही थी। पूछने पर बड़ी मुश्किल से उसने बताया कि उसका पति लाखों का मालिक था, लेकिन अब उसके पास फूटी कौड़ी भी नहीं है। कोयटा में उसके शरीर पर कपड़ा भी न रहा। एक मुर्दा लाश से उसने कमीज़ उतारकर ओढ़ी और गाड़ी में उसे एक अन्य स्त्री ने पहनने के लिए धोती दी।

एक ईश्वरविश्वासी सिक्ख ने बताया—"हम बीस आदमी इकट्ठे काम करते थे, परन्तु सिर्फ़ चार बचे। रात को सुख की नींद सोया था। सुबह आँख खुली तब अपने आपको मलवे में दबा पाया। वाहगुरु ने सिर बाहर रक्खा। बार-बार पुकारा, लेकिन कौन सुनता था। सबको अपनी अपनी पड़ी हुई थी। ज़ोर-ज़ोर से रोना शुरू कर दिया। चार घंटे के बाद वाहगुरु ने कृपा की। दूसरा जन्म प्रदान किया और ताक़त बख्शी। ज़ोर लगाया और मिट्टी धीरे-धीरे हट गई।"

एक सज्जन १२ घंटे दबे रहने के बाद कैसे निकले, यह भी सुनिए—"भूचाल से कुछ मिनट पहले मैंने पानी पिया और चारपाई पर लेट गया। जब गड़गड़ाहट की आवाज़ आई तब समझा कि शायद कोई बला आ रही है। दूकान से बाहर भागा। क्या देखता हूँ कि सामने का मकान गिर रहा है। डर कर अन्दर भागा। अँगीठी के साथ मेज़ के नीचे छिप गया। इतने में हमारा मकान भी गिरा। ३५ आदमी सोये पड़े थे। सब दब गये। ६ घंटे के बाद मुझे ऊपर अँगरेज़ी में बातचीत करते हुए कुछ आदमी सुनाई पड़े। मैंने समझा, मेरा ही मकान गिरा है, इसलिए मुझे निकालने आये हैं। लेकिन वे चले गये। मैं हैरान था कि बात क्या है। अँगीठी के रास्ते मुझे हवा आ रही थी। ३ घंटे के बाद फिर कुछ गोरे उधर से गुज़रे। मैंने आवाज़ दी कि मुझे निकालो। वे खड़े हो गये, एक ने कहा—"बहुत नीचे दबा है इसलिए चलो।" वे भी गये। तीसरी बार फिर अँगरेज़ों में बातचीत सुनी। मैंने उनको पुकारा, लेकिन उन्होंने जवाब न दिया। मैं चिल्लाया—"अरे अभी ज़िंदा हूँ, मुझे निकालो।" इस पर उन्होंने मलवा खोदा और मैं बाहर आया।"

एक बच्चा और स्त्री सात दिन तक दबे पड़े रहे। नौ मास का बालक अपनी नानी के पास डोली में सोया पड़ा था। मकान गिरा तब उसकी माँ आदि सभी दब कर मर गये। लेकिन डोली के नीचे लोहा लगा हुआ था। इसने उन दोनों की रक्षा की। डोली कोठरी बन गई और उसमें हवा आती रही। ७ दिन के बाद उन दोनों को जीवित निकाला गया। लेकिन दबे रहने का रिकार्ड चार सिंधी सज्जनों का है, जो ग़रीबाबाद महल्ले में नौ दिन तक मलवे के अन्दर रहे, और जब बाहर निकाले गये तब जीवित थे।

कई स्त्रियाँ मर्दों से आगे निकल जाती हैं। लायलपुर की शान्तिदेवी ऐसी ही वीरांगना है। यह और उसके बाक़ी १३ रिश्तेदार मकान के अन्दर सोये हुए थे, केवल सास सहन में थी। भूचाल के कारण ईंटों और लोहे के गार्डरों का भारी बोझ आ गिरा। रज़ाई से मुँह निकाल कर उसने आवाज़ दी; लेकिन जेठ ने उत्तर दिया कि हम सब दबे हुए हैं। इस पर शान्तिदेवी ने साहस किया। दूध पीती बच्ची को चारपाई के नीचे फेंक कर मुश्किल से गार्डर के नीचे से निकली और सास को लेकर सभी आदमियों को बचा लिया। फ़ौजी सिपाहियों ने जब उसे इस प्रकार काम करते देखा तब हैरान रह गये।

मुसीबत में भी कई बार उपहासजनक बातें हो जाया करती हैं। कराँची के सेठ तोलाराम की विश्वस्त सूत्र से सूचना मिली कि सेठ साहब भूचाल से मर गये हैं। रिश्तेदारों ने मातम किया। दो लड़कों ने अपने सिर भी मुँड़वा दिये। पर दो दिन के बाद उन्हें सक्खर से इत्तला मिली कि सेठ साहब सक्खर के अस्पताल में बीमार पड़े हैं। घरवालों की ग़मी ख़ुशी में बदल गई।

मुज़फ़्फ़रगढ़ का एक दम्पति मलवे में दब गया। लेकिन पत्नी को किसी तरह होश रहा। पति को प्यास लगी थी। स्त्री की छातियों में दूध उतर आया। उसने दूध पिला पिला कर ३ दिन तक पति को जीवित रक्खा। इसके बाद वे दोनों निकाल कर बचा लिये गये।

कई बार थोड़ी-सी नासमझी के कारण बहुत हानि हो जाती है। जगदीशकुमारी कहती है—"हमारा ब्याह हुए तीन मास हुए थे। हम दर्मियानी मंज़िल में सोये पड़े थे। जब पहला हिचकोला आया तब हमें होश था, पर एक-दूसरे को देख न सकते थे। दोनों चारपाइयों में एक गज़ का फ़ासला था। हम दोनों चिल्लाते रहे। कोई मनुष्य सुननेवाला न था। मेरे ऊपर मलवा था, पति के ऊपर शहतीर। ६ बजे एक पड़ोसी लड़के ने मुझ मंद-भागिनी को निकाला। उस वक़्त मेरे पति की आवाज़ आनी बन्द हो रही थी। उस लड़के की मैंने हज़ार मिन्नतें कीं, लेकिन वह न माना; कहने लगा—"मैं मुर्दे को नहीं निकालता। मैंने आध घंटे में उनके चेहरे और छाती पर से मलवा साफ़ किया, लेकिन जब साढ़े ६ बजे तब मेरी सारी आशाओं का अंत हो गया।"

ऐसे समय मनुष्य जब चाहता एक बात है और होती दूसरी है तब उसे बहुत दुःख होता है। मा और भाई को लेकर छोटे युधिष्ठिर की बहन कोयटा में हिन्दी-रत्न की परीक्षा देने गई। साथ में एक अध्यापिका और उसकी दो लड़कियाँ भी थीं। जब भूचाल आया तब युधिष्ठिर पेशाब करने के लिए उठकर बाहर गया था। वह बच गया, बाक़ी दब गये। उसने ३ बजे ही मलवा खोदना शुरू कर दिया। अध्यापिका और उसकी छोटी लड़की जीवित निकल आईं। वह अपनी माता और बहन को आवाज़ें दे रहा था कि अन्दर से किसी के साँस लेने और चूँ-चूँ करने की आवाज़ आई। युधिष्ठिर ने अपनी कोशिश जारी रक्खी। लेकिन जब बहुत मुश्किल से मलवा हटा पाया तब अन्दर से पालतू कुतिया निकली जो ज़ंजीर से बँधी थी। इसे देखकर युधिष्ठिर ख़ुश हुआ, लेकिन साथ ही उसके आँसू बहने लगे। वह थक चुका था।

इसी प्रकार जब पहला झटका आया तब बटाला की एक महिला अपने पति के साथ मकान से बाहर निकल आई। पति ने कहा कि भूचाल अब ख़त्म हो गया है, चलो अन्दर लौट चलें। अभी पति ने एक ही पाँव अंदर रक्खा था कि सारा मकान गिर पड़ा और वह कमर तक ईंटों और मिट्टी में गड़ गया। "उन्होंने पुकारा, पानी लाओ। मैं नल की तरफ़ दौड़ी। परन्तु वह भी मिट्टी के नीचे दबा पड़ा था। बड़ी मुश्किल से मिट्टी हटा कर जब मैं अपना दुपट्टा भिगोकर उनके पास ले गई तब वे तड़फ-तड़फ कर स्वर्ग सिधार चुके थे। मैं पापिनी वहीं खड़ी रह गई।"

एक स्त्री ने बताया—"मैं अपने भाई के पास कोयटा गई हुई थी। मैं तो बच गई, पर भाई अपने परिवार-सहित वहीं मर गया।" एक छोटी बच्ची उसके साथ थी। इसे छाती से लगाकर वह फूट पड़ी। मालूम हुआ कि स्त्री बाल-विधवा है और इसे सिर्फ़ भाई का ही सहारा था।

संकटग्रस्त हिन्दुओं में आत्माभिमान का भी भाव बहुत ज़्यादा देखने में आया है। हिन्दू-सभा के स्वयंसेवक एक महिला के पास गये और उसे कमीज़, धोती तथा दुपट्टा पेश किया, क्योंकि उसके सारे कपड़े फटे हुए थे। कपड़ों को देखकर वह ज़ोर-ज़ोर रोने लगी। अन्त में बोली—"मैं अपना सारा घराना भूचाल की भेंट कर आई हूँ, मुझे इन कपड़ों की ज़रूरत नहीं। मैं आपसे एक बात चाहती हूँ। आप प्रार्थना करें कि ईश्वर मुझे भी सँभाल ले।" बहुत मजबूर करने पर भी उस देवी ने उन कपड़ों को हाथ न लगाया।

कोयटा से आनेवाली कई गर्भवतियों ने रेलगाड़ी में बच्चे जने हैं। लेकिन भूचाल की आवाज़ सुनकर भय के मारे कई एक के गर्भ गिर गये। एक अँगरेज़ मैनेजर की स्त्री के ३१ तारीख़ को सुबह साढ़े तीन बजे लड़की पैदा हुई।

एक बात जो अभी तक समझ में नहीं आई वह पशु-पक्षियों के सम्बन्ध में है। क्या जानवरों को भूचाल के आने की ख़बर पहले ही हो जाती है? एक सज्जन बताते हैं—"यह बात हमने अपनी आँखों देखी है कि भूचाल के आने से एक रात पहले कोयटा से सभी पक्षी उड़ गये थे। इसी कारण भूकम्प में कोई मरा हुआ परिंदा नहीं मिला। उस रात कुत्ते भी ज़ोर-ज़ोर से भूकते रहे थे। ऐसे जैसे रो रहे हों।" बहुत-से लोगों के लिए यह एक समस्या ही बनी रहेगी।

अक्सर लोगों को यह कहते सुना गया है कि कोयटा में जो आदमी बचे हैं उनमें अधिकतर ग़रीब और बुड्ढे हैं। इसके अतिरिक्त यह भी कि अँगरेज़ों की अपेक्षा हिन्दुस्तानियों की आर्थिक हानि अधिक हुई है। कहा नहीं जा सकता कि इन बातों में सचाई कहाँ तक है, लेकिन दो-एक बातें साफ़ हैं। अमीर बड़े-बड़े मकानों में रहते थे, ग़रीब झोंपड़ियों में; यह हर जगह देखने में आता है। बुड्ढों के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता, सिवा इसके कि प्रकृति को उनसे विशेष प्रेम हो। बाक़ी रही अँगरेज़ों का कम नुक़सान होने की बात। इसका कारण यह है कि कोयटा में अधिकतर अँगरेज़ सैर करने के लिए जाते हैं, लेकिन हिन्दुस्तानी तो वहाँ बरसों से घर बना कर रहते थे।

यह खेद की बात है कि ऐसे मौक़ों पर भी मनुष्य का अन्धकारमय पार्श्व देखने में आता है। १० जून को लाहौर में कोयटा से एक ट्रेन आई। इसमें पीड़ित अधिक थे, ज़ख़्मी कम। कई मुसलमानों ने हिन्दू अबलाओं और बच्चों को बहकाने और साथ ले जाने की कोशिश की। लेकिन हिन्दू स्वयंसेवक

इस पहलू में होशियार हो चुके थे, इसलिए कोई बच्चा उनके क़ब्ज़े में न जा सका। एक अबला मुसलमानों के क़ब्ज़े में थी। एक मुसलमान यहाँ तक कहता था कि यह स्त्री मेरी है। अंत में मजिस्ट्रेट को सूचना दी गई। उसने आकर सभी के बयान लिये और हिन्दू स्त्री को मुसलमानों के पंजे से छुट्टी दिलवाई।

६ जून की रात को कुछ मुसलमान स्वयंसेवकों ने एक लावारिस हिन्दू लड़के को गाड़ी से उतार लिया। इस पर कुछ हिन्दुओं ने आपत्ति की। लेकिन मुसलिम स्वयंसेवक लड़ाई करने पर उतारू हो गये। हिन्दू स्वयंसेवक लड़के को अपने खीमे में ले आये, परन्तु मुसलमान वहाँ ज़बरदस्ती घुस आये। उन्हें विश्वास दिलाया गया कि लड़का हिन्दू है। लड़के ने अपना नाम भी बताया। अब मुसलमान स्वयंसेवक शरारत करने लगे कि इतने में लड़के के माता-पिता वहाँ पहुँच गये।

मुलतान में एक गाड़ी में दो बुर्क़ा-पोश स्त्रियों से नाम पूछने पर मालूम हुआ कि वे हिन्दू हैं। लेकिन मुसलमानों ने कहा कि ये मुसलमान हैं। किन्तु खानेवाल-स्टेशन पर भेद खुल गया। मालूम हुआ कि ये दोनों स्त्रियाँ गुजरांवाला की हैं। भूचाल में दोनों के पति मर गये थे। इस पर दो पठानों ने इन्हें डराया-धमकाया और अब बुरके पहनाकर भगा ले जा रहे थे। एक सिपाही की मदद से दो हिन्दू स्वयंसेवकों ने इन अबलाओं को उनके घर पहुँचाया।

अमृतसर-रिलीफ़-कैंप में १२ जून को कुछ मुसलमान स्त्रियाँ आईं और अपने लिए लावारिस बच्चे माँगने लगीं। कैंप के इन-चार्ज ने उत्तर दिया कि यहाँ कोई लावारिस बच्चे बाँटे नहीं जाते। इस पर उन्होंने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"इसी रिलीफ़-कैंप ने एक हवलदार को तो एक बच्चा दिया है; अब हमें क्यों नहीं दिया जाता?" इस बात ने कैंप के सदस्यों को हैरान कर दिया और वे इस भेद की तह तक पहुँचने का यत्न करने लगे।

अगले दिन सुयोग से एक छोटी उम्र का लड़का अमृतसर की मजलिस अहरार इसलाम का बिल्ला छाती पर लगाये हुए कैंप के दरवाज़े पर खड़ा था। कैंप के एक अधिकारी को संदेह हुआ और उसने लड़के से कुछ प्रश्न किये। परन्तु वह संतोषजनक उत्तर न दे सका। मामला कैंप के सभापति के सामने पेश किया गया। खोज करने पर उस लड़के के अतिरिक्त एक अन्य हिन्दू बालक भी कैंप के बाहर मिला। उन्होंने बताया कि वे दोनों मजलिस अहरार के कप्तान के साथ रहते हैं। अब यह मामला डिप्टी कमिश्नर के पास पहुँचा। उसने तहक़ीक़ात करने के बाद अहरारी मजलिस के कप्तान को तत्काल कैंप के बाहर निकाल दिया।

ये दोनों लड़के अपने-अपने निवासस्थान, बटाला और राजा-सांसी, पहुँचाये गये। ऐसा मालूम होता है कि मुसलमानों की मजलिस के कप्तान ने इन दोनों के पते नोट कर लिये और फिर अपने आदमी भेज कर उन दोनों को वहाँ से बरग़ला लिया। यह मुसलिम मनोवृत्ति हिंदुओं के लिए कितनी घातक है, यह बात अब हिंदू धीरे-धीरे समझने लग गये हैं।

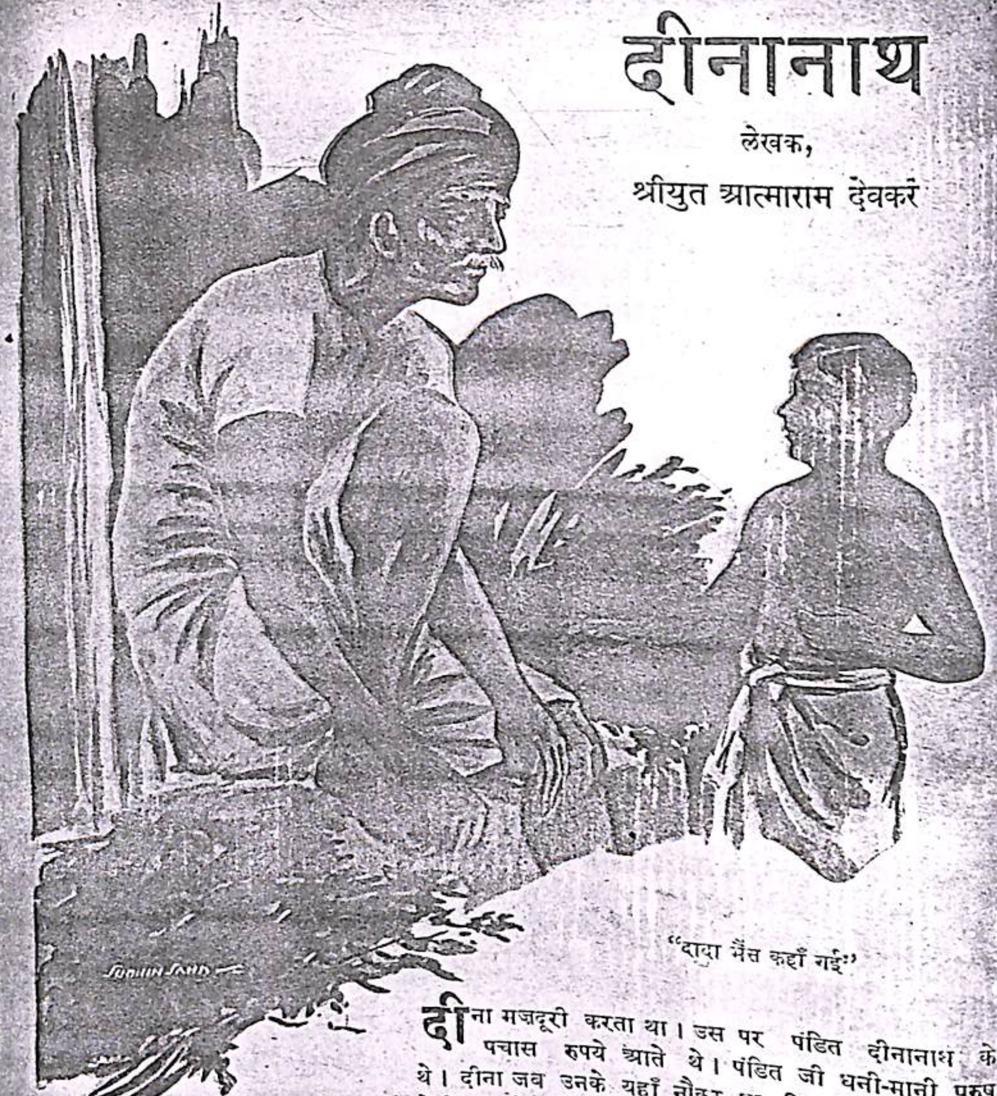
कहा जाता है कि इस बात का क़रीब-क़रीब फ़ैसला हो गया है कि एक साल के लिए कोयटा 'सिंगल स्टेशन' रहेगा अर्थात् कोई मुलाज़िम अपने परिवार को कोयटा में न रख सकेगा। नया कोयटा तीन मील की दूरी पर मेरी के मैदान में तम्बुओं का बनाया जायगा। कुछ मेडिकल विशेषज्ञ इस बात को देख रहे हैं कि खुदवाई का काम कब शुरू किया जाय। अगर इन्होंने राय दी कि फ़ौरन खुदवाने से बीमारी नहीं फैलेगी तो खुदवाई तुरन्त शुरू हो जायगी; नहीं तो कुछ मास बाद। जिन लोगों का रुपया और माल-असबाब दब गया है वे अगर अपनी चीज़ों की सूची बनाकर एजन्ट आफ़िसर कमांडिंग रेस-कोर्स, कोयटा केम्प, के नाम भेज देंगे तो खुदवाई के समय उनका खयाल रक्खा जायगा—इस बात का आश्वासन दिया गया है। खुदवाई के समय विभिन्न सभा-समितियों के प्रतिनिधि भी साथ ले लिये जायँगे।



उषा और चित्रलेखा [चित्रकार—श्रीयुत उपेन्द्रकुमार मित्र

दीनानाथ

लेखक,
श्रीयुत आत्माराम देवकर



"दादा भैंस कहाँ गई?"

दीना मजदूरी करता था। उस पर पंडित दीनानाथ के पचास रुपये आते थे। पंडित जी धनी-मानी पुरुष थे। दीना जब उनके यहाँ नौकर था, किसी आवश्यक कार्य्य के लिए उसने उनसे ये रुपये उधार लिये थे। पंडित जी एक उदार

व्यक्ति थे। दीना से प्रायः कहा करते थे—दीनू, जब तक मैं हूँ, मेरे ही यहाँ बने रहो। वह भी कह देता, आपको छोड़ कर कहाँ जाऊँगा। वह बड़ा स्वामि-भक्त था, किन्तु अकारण किसी की डाँट-डपट सुनने का अभ्यस्त नहीं था। पंडित जी की सहधर्म्मिणी का स्वभाव रूखा तथा कठोर था। इससे उनके यहाँ कोई टिकता नहीं था। दीना यद्यपि सहनशील था, तो भी उसकी भी सीमा थी। आख़िर उसको भी एक दिन पंडित जी के चरण छूकर अपने घर की राह लेनी पड़ी। पंडित जी को परिस्थिति का ज्ञान था ही, अतः कुछ न कह सके। वे दीना के सरल एवं निश्छल व्यवहार से यद्यपि सन्तुष्ट थे, और इच्छा भी हुई कि कुछ कहें, पर कहते कहते रुक गये। किसी ने कान से लग कर कहा, 'दरिद्र दीना को मनाकर रखने की क्या आवश्यकता है।'

(२)

इस घटना के दो महीने बाद पंडित जी ने एक दिन दीना को बुला कर कहा—दीनू, तुम्हारे ऊपर मेरा जो रुपया आता है उसे अब दे न दो। आख़िर देना ही तो है। दीना ने कहा—पंडित जी, इस समय मेरे पास रुपया नहीं है। पर अब मैं उसे अदा करके ही



उन्होंने पत्नी से कहा—
"आज से तुम इसकी माता और यह तुम्हारा पुत्र।"



रहूँगा। पंडित जी ने वात्सल्य-पूर्ण दृष्टि से दीना की ओर देखकर कहा—इसका क्या अर्थ है? दीनू, मैं तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं देना चाहता। अभी सुभीता न हो तो फिर दे देना। मैंने तो याद दिलाने के लिए तुम्हें बुलाया था। दीना ने हाथ जोड़कर कहा—महाराज, यह आपका तकाज़ा नहीं है, घटघटवासी भगवान् का आदेश है। ज़िन्दगी का क्या भरोसा है? आज हूँ, कल न रहूँ! तब यह ऋण कौन चुकायेगा? पंडित जी थोड़ी देर चुप रह कर बोले—तब क्या करना चाहते हो?

दीना ने नम्र स्वर से उत्तर दिया—मेरे पास एक भैंस है। वह अभी दूध दे रही है। उसे लेकर मुझे उद्धार कर दीजिए।

दीनानाथ का हृदय दयार्द्र हो उठा। उन्होंने कहा—देखो दीनू, इस समय वह भैंस तुम्हारा प्रतिपालन कर रही है। उसे अपने ही पास रहने दो। मैं अब कभी तुमसे रुपया न माँगूँगा। जब सुभीता हो, दे जाना।

दीना ने कृतज्ञता-भरे भाव से पंडित जी की ओर देखकर कहा—ऐसी आज्ञा न हो अन्नदाता। मेरा अब निस्तार ही कर दीजिए। यह आधार भी यदि हाथ से निकल जायगा तो मैं फिर ऋण न चुका सकूँगा। मैं मज़दूरी करके अपना पेट पाल लूँगा और आपका गुण गाऊँगा। मुझे कोई कष्ट न होगा।

दीनानाथ ने कुछ तेज़ स्वर में कहा—तुम्हारी यही इच्छा है, तो ले आओ। पीछे देखा जायगा।

दीना ने भैंस लाकर दरवाज़े पर बाँध दी और पैरों पर गिरकर रुद्ध कंठ से कहा—मैं दीन और आप दीनानाथ हैं। मुझे इस ऋण से उद्धार कर दीजिए।

पंडित जी का कोमल हृदय विचलित हो उठा। उन्होंने चाहा कि दीना को भैंस ले जाने की आज्ञा दे दें। किन्तु स्वार्थ-बुद्धि ने ऐसा न कहने दिया। उन्होंने सोचा कि आई हुई लक्ष्मी को कौन छोड़ता है! फिर जब दीना उसे अपनी इच्छा से दे रहा है

तब लेने में क्या दोष है? इस प्रकार किस किसको भैंस लौटाता फिरूँगा।

पंडित जी का मुँह बंद रह गया। दीना प्रणाम करके चला गया।

(३)

दीना के घर में एक छोटे-से बालक के अतिरिक्त कोई न था। छः माह का अबोध शिशु दीना के भरोसे छोड़कर उसकी स्त्री ने अनंतधाम की यात्रा की थी। वह उस समय चार वर्ष का था। दीना अब रोगी और अशक्त हो गया था। इससे वह नियमित रूप से काम पर भी नहीं जा पाता था। उसे अपने पेट की चिन्ता नहीं थी। जो कुछ रूखा-सूखा पा जाता, खा लेता था और बालक को भैंस का दूध पिलाता था। वह उसके लिए यथेष्ट होता।

सवेरे का रक्खा दूध दीना ने दोपहर के भोजन के समय बालक को पिला दिया था। किन्तु शाम के लिए क्या प्रबंध किया जाय, दीना को इसकी चिन्ता हुई। वह लोटा लेकर ग्वाले के घर गया और दो पैसे का दूध लाकर बालक को पिलाने लगा। वह दूध खट्टा हो गया था, इससे बालक ने बर्त्तन से मुँह लगाकर हटा लिया। उसने विह्वल दृष्टि से इधर-उधर देखा और दीना से कहा—दादा, भैंस कहाँ गई? दीना ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से उत्तर दिया—बेटा, भैंस तो पंडित जी के यहाँ चली गई। कल से मैं तुम्हें अच्छा दूध ला दिया करूँगा। यह सुनकर बालक रोने लगा। दीना ने उसे उठाकर गोद में ले लिया और रोटी मसल मसलकर उसके मुँह में देने लगा। बालक ने दो-चार कौर खाकर मुँह बन्द कर लिया। दीना थपकियाँ देकर उसे सुलाने लगा। बालक सो गया। दीना उसे चारपाई पर लिटाकर पास ही बैठ गया। उसके शुष्क मुख को देखकर दीना का हृदय व्यथित हो उठा। नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प उसके मन में उठ उठकर उसे सत्पथ से हटाने की चेष्टा करने लगे। वह सदा का दुखी था। बाल्यकाल से दुख की ही गोद में पला था। अतएव उसमें सहिष्णुता का होना स्वाभाविक था। मजदूर लोग प्रायः एक ही दिन की चिन्ता करते हैं। दूसरे दिन की बात दूसरे ही दिन पर छोड़ देते हैं। दीना की भी यही दशा थी। नैराश्य के अन्धकार में आशा का धुँधला प्रकाश ही बहुत होता है। उसने सोचा कि पंडित जी के पास जाकर थोड़ा-सा दूध ले आऊँ। वह उठकर दरवाजे तक गया। पर ज्यों ही किवाड़ खोलने लगा, उसके मन में अचानक यह आशंका उत्पन्न हुई कि बालक के संकट की बात सुनकर वे कहीं भैंस ही न लौटा दें। मान लो कि उन्होंने ऐसा ही किया तो बालक का दुःख तो दूर हो जायगा, पर मैं उनका जैसा ऋणी पहले था, वैसा ही बना रहूँगा। इस दुर्भावना के अकाट्य बंधन ने उसके पैर जकड़ लिये। वह लौटकर बालक के पास चारपाई पर लेट रहा और सूर्योदय की प्रतीक्षा करने लगा।

(४)

माघ का महीना था। रात को पानी के साथ छोटी छोटी बिनौलियाँ भी पड़ गई थीं। इससे आज शीत का अधिक प्रकोप था। ऐसे कठिन समय में दीना कभी मजदूरी करने के लिए नहीं जाता था। किन्तु दूध की चिन्ता ने उसे विवश कर दिया। विना मजदूरी किये पैसों का प्रबन्ध कैसे होगा? अस्तु, वह बालक को सोता छोड़कर सवेरे ही घर से निकल पड़ा।

उस दिन उसे बहुत दूर काम मिला। कोई ठेकेदार पत्थर की ढुलाई करवा रहा था। गाड़ियाँ लगी हुई थीं। दीना भी पत्थर लादने लगा। उसने दिन भर खूब काम किया और अच्छी मजदूरी पाई। किन्तु ज्यों ही सूर्य डूबा और शीत ने अधिकार जमाया, दीना को कँपकँपी देकर ज्वर आ गया। उस समय वह घर आ रहा था। ज्यों-त्यों कर उसने हलवाई के यहाँ से दूध लिया और घर आया। बालक पड़ोसी के लड़के के साथ दरवाजे पर खेल रहा था। वह दिन भर का भूखा था। बाप को देखकर दौड़ा हुआ आया और दूध दूध कहकर चिल्लाने लगा। दीना ने उसे दूध पिलाया। जो बच रहा उसे सवेरे के लिए रख दिया।

बालक का पेट भर चुका था। उसे शीघ्र ही नींद आ गई। दीना ने भी भगवान् का नाम लेकर चारपाई पकड़ी। ज्वर का वेग क्रमशः बढ़ने लगा और फिर एक-दम घट गया। शीत ने बिजली की नाईं सारे शरीर में फैलकर उसे ओले-सा ठंडा कर दिया। दीना का घट बन्द हो गया। उसकी व्यथित आत्मा बन्धन-मुक्त हो शान्ति-धाम में पहुँच गई।

(५)

दीना की मृत्यु का संवाद पाकर दीनानाथ मर्माहत हुए। वे अपने मुनीम के साथ उसके घर पहुँचे। दीना के दीन मुख को देखकर उनका हृदय भर आया। उन्होंने क्षण भर निस्तब्ध रहकर कहा—दीनू, मैं नहीं समझता था कि तुम बात के ऐसे धनी हो। नहीं तो रुपयों की कभी चर्चा तक न करता। जो वस्तु लखपतियों और करोड़पतियों में प्रयत्न करने पर भी नहीं मिली वह मिथ्या-संसार को सत्य में परिणत करनेवाली अमूल्य निधि तुमने कैसे पाई? सभी शास्त्र और पुराण सत्संग को आत्मा की उन्नति का एक-मात्र साधन बतलाते हैं। किन्तु दैव के इस विचित्र विधान के अनुसंधान तक उनकी भी पहुँच नहीं है। मैं समझता हूँ, हृदय का अनुताप ही मनुष्य का सच्चा गुरु, पथ-प्रदर्शक और जीवन-सुधार का सर्व्वोच्च ध्येय है। यह कहकर उन्होंने उस अनाथ बालक को अपनी गोद में ले लिया और मुनीम को दीना की अन्त्येष्टि-क्रिया कराने की आज्ञा देकर घर चले गये।

स्त्री के निकट जाकर उन्होंने वेदना-पूर्ण गंभीर स्वर में कहा—आज से तुम इसकी माता और यह तुम्हारा पुत्र! लो, इसका पालन-पोषण करो।

पत्नी का हृदय आलोड़ित हो उठा। उसके नेत्रों में अश्रु-जल देखकर घर के नौकर विस्मित हुए। आखिर स्त्री ही तो थी।

दीनानाथ के दो कन्यायें थीं। बड़ी का नाम पन्ना और छोटी का हीरा था। पन्ना कटोरे में दूध भर लाई और बालक के पास आकर बोली—भैया, तुम भूखे होओगे, लो यह दूध पी लो। बालक दूध पीकर कातर-दृष्टि से इधर-उधर देखने लगा। यह देख कर हीरा ने दौड़कर उसका हाथ पकड़ लिया, और हँसकर कहने लगी—तुम डरते क्यों हो? चलो, अब हम सब खेलें।

बालक उस अतीत स्मृति को भुला कर आनन्द से खेलने लगा। उस समय बालक हँसता था और दीनानाथ का हृदय रोता था।

मेरी कविता

लेखक, श्रीयुत बालकृष्णराव

जब सुख के निर्मल नयनों में दुख के आँसू,
छा जाते हैं, विमल व्योम में तारागण से;
भव्य भावना-भूमि दिव्य छविमय तब होकर,
भर देती है मधुर विकलता, सजनि, शान्ति में।
आन्दोलित हो—हर्ष, व्यथा से, सखि, प्रेरित हो,
बज उठती है हृत्तन्त्री तब नीरव स्वर में;

तब लय में, भाषा में, छविमय शब्दजाल में,
हो जाती है व्याप्त काव्य की मूक रागिनी।
छन्दों के मादक गीतों में, शब्दजाल की,
हो जाती समष्टि, सखि, अनुपम अलंकार में;—
आ न सकी जो, सजनि, मधुरिमा के प्रसार में,
केवल वह अस्फुट ध्वनि ही है मेरी कविता॥



१—क्या योरप में युद्ध छिड़ेगा ?

जर्मनी ने अपनी नई प्रगति से योरप की राजनीति का मानो कायापलट कर दिया है। यही नहीं, उससे योरप के राजनीतिज्ञों के आडम्बर का भण्डाफोड़ भी हो गया है और यह प्रकट हो गया है कि कौन कितने पानी में है। अभी तक यह समझा जाता था कि विजयी राष्ट्र ऐक्य के सूत्र में आबद्ध हैं और वे एक मत से वहाँ की राजनैतिक अवस्था के सँभालने का भार अपने ऊपर लिये हुए हैं। परन्तु जर्मनी के हिटलर ने इसका रहस्य खोल दिया है और यह स्पष्ट रूप से प्रकट हो गया है कि पहले चाहे जो कुछ रहा हो, पर अब वह बात नहीं रही। और तो और, मध्य-योरप तथा बाल्कन आदि के जिन राज्यों की फ़्रांस ने स्वाधीनता प्राप्त करने में पूरी सहायता की थी और जिनका वह भरोसा करता था कि मौक़े पर वे साथ देंगे उनमें से पोलेंड का झुकाव तो प्रकट रूप से जर्मनी की ओर है। और अब तो यह जान पड़ता है कि ज़ेचोस्लावेकिया और जुगोस्लाविया भी जर्मनी से घनिष्ठता बढ़ाना चाहते हैं।

और ऐसी अवस्था में अर्थात् जर्मनी को सन्धि-पत्र के विरुद्ध सैनिक तैयारी करते देखकर फ़्रांस को अपना बल बढ़ाना आवश्यक हो गया है। इधर सोवियट रूस अचानक महत्त्व में आ गया था। उसने योरप के कतिपय छोटे छोटे राष्ट्रों से राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। इस बात से तथा इस बात से भी कि उसका जर्मनी से विरोध है, फ़्रांस ने झट अपना मैत्री का हाथ उसकी ओर बढ़ा दिया। फलतः वह राष्ट्र-संघ का सदस्य हो गया और फ़्रांस से उसकी परस्पर सहायता करने की सन्धि भी हो गई। इस सन्धि का जर्मनी ने विरोध ही नहीं किया है, किन्तु इसके जवाब में उसने अपने नौबल के सम्बन्ध में ग्रेटब्रिटेन से समझौता भी कर लिया है। एक इसी बात से प्रकट हो जाता है कि योरप की राजनीति का क्या रुख है। अन्यथा जिस जर्मनी ने वर्सेलीज़ सन्धि-पत्र के विरुद्ध आचरण किया है उसके साथ क्या न्याय की दृष्टि से समझौता हो सकता था ? परन्तु इस समय योरप में यही हो रहा है।

फ़्रांस, ब्रिटेन तथा इटली—ये तीन ही योरप के महा-युद्ध-विजयी राष्ट्र हैं। यद्यपि अभी तक एकमत होकर ही ये तीनों महाशक्तियाँ सब कार्य करती आई हैं और आज भी पूर्ववत् ही सम्मिलितरूप से राष्ट्र-संघ का कार्य संचालित करती हैं, तथापि ये अब कुछ खास मामलों में अपने अपने दृष्टिकोण से ही काम करने लग गई हैं। फ़्रांस ने रूस से और ब्रिटेन ने जर्मनी से अलग अलग समझौता कर ही लिया है। इटली भी आस्ट्रिया और हंगेरी का अपना एक गुट बनाये हुए है। आस्ट्रिया के ही कारण उसका जर्मनी से समझौता नहीं हो सका। अभी हाल में एक और नई बात हुई है। ब्रिटेन और फ़्रांस ने इटली और एबीसीनियी के मामले में हस्तक्षेप किया है। इटली जापान की तरह अबीसीनिया को मंचूको नहीं बना पाया और मुसोलिनी को अपने ओंठ काटकर चुप रह जाना पड़ा।

उपर्युक्त अवस्था से यह बात भले प्रकार स्पष्ट हो जाती है कि योरप के छोटे-बड़े सभी राष्ट्र अपनी रक्षा तथा उन्नति की व्यवस्था तो कदाचित् निर्बाध रूप से कर तो सकते हैं, पर ऐसा कोई काम नहीं कर सकते या नहीं करने पायेंगे जिससे युद्ध छिड़ जाने की सम्भावना होगी।

इस प्रकार योरप की राजनैतिक अवस्था विषमता को प्राप्त है।

परन्तु योरप की इस अवस्था का रूप अब भयंकर

होता जाता है। पिछली सन्धियाँ तथा समझौते उठाकर एक ओर रख दिये गये हैं और सभी राष्ट्र अब नये सिरे से गुट बनाने में लग गये हैं। रही जङ्गी तैयारी सो उसका तो इस समय दौरदौरा ही है। ऐसी दशा में यदि विशेषज्ञ यह अन्दाज़ लगाते हैं कि योरप के आगे भयङ्कर समस्या उपस्थित है और महायुद्ध की पुनरावृत्ति का समय निकट आता जा रहा है तो यह सर्वथा स्वाभाविक ही माना जायगा। तो भी आशावादी निराश नहीं हैं और वे यही कहते जा रहे हैं कि ऐसी आशङ्का की गुञ्जाइश ही नहीं है। भगवान् करे, ऐसा ही हो।

२—सिनकियांग की दयनीय दशा

चीनी तुर्किस्तान या सिनकियांग ही अब एक ऐसा प्रान्त रह गया है जो अभी चीन-साम्राज्य के अन्तर्गत माना जाता है। उसके साम्राज्य के अन्य प्रदेश—तिब्बत, मंगोलिया और मंचूरिया—अब उसके अधिकार में नहीं हैं। तिब्बत तो बहुत पहले से ही स्वतन्त्र है। सोवियट रूस की संरक्षा में मंगोलिता भी एक ज़माने से स्वतन्त्रता का उपभोग कर रहा है। मंचूरिया को अभी हाल में जापान दबा बैठा है। एक यही सिनकियांग उसके अधिकार में रह गया था, सो वहाँ भी सालों से विद्रोह मचा हुआ है, और अब तो जान पड़ता है कि मंगोलिया की भाँति वह भी रूस की संरक्षा में स्वतन्त्रता का उपभोग करना शुरू कर देगा।

चीन का यह प्रान्त एशिया के मध्य में स्थित है और मध्य-एशिया का सारा भू-भाग रूस के अधिकार में है। अतएव यदि सिनकियांग को रूस अपनी दृष्टि में किये रहे तो यह उसके लिए स्वाभाविक ही है। इधर कुछ समय से रूसियों की गतिविधि भी चीन के इस अशान्त प्रदेश में अधिक बढ़ती गई है, जिससे वहाँ के व्यापार को भी रूस ने अपने हाथ में कर लिया है। इसका मंचूरिया तथा भारत से भी व्यापार-सम्बन्ध है। अतएव रूस की उक्त गतिविधि से इन देशों का चौकन्ना होना सर्वथा स्वाभाविक है। मंचूरिया का ताज़ा दृष्टान्त सामने रहने से चीन भी अपने प्रदेश में रूस को इस प्रकार प्रवेश करते देखकर अवश्य ही भयभीत होगा। इन सबको दृष्टि में रखकर विचार करने से यही प्रकट होता है कि इस प्रदेश के कारण कहीं यहाँ भयंकर युद्ध न छिड़ जाय।

चीन के इस प्रदेश का रक़बा तो छः लाख वर्गमील है, पर आबादी ५० लाख ही है। यहाँ खनिज द्रव्यों की भी बहुतायत है। यहाँ मुसलमानों की ही आबादी है। ये लोग गत दस वर्ष से विद्रोह का झंडा उठाये हुए हैं। १९३१ से तो यहाँ से चीनी सत्ता भी जाती रही है। परन्तु चीनी अधिकारी परास्त हो होकर भी अभी तक जमे हुए हैं।

कहते हैं कि वहाँ के हामी नामक मुसलमान शासक के उत्तराधिकारी को चीन-सरकार ने नहीं स्वीकार किया। इस पर चीन के कंसू-प्रदेश के मुसलमान जनरल ने सिनकियांग पर चढ़ाई कर दी। उसने इन दो प्रान्तों को मिलाकर एक स्वाधीन मुसलमानी राज्य स्थापित करने का निश्चय किया। सिनकियांग के चीनी गवर्नर ने रूसियों (ह्वाइट रशियन) की एक सेना का संगठन कर कंसूवालों को मार भगाया। परन्तु बाद को उन्हीं रूसियों ने उस चीनी गवर्नर को भी यहाँ से खदेड़ बाहर किया। इस पर १९३३ में कंसू के उस मुसलमान जनरल ने सिनकियांग पर फिर आक्रमण किया। इसका वारण करने के लिए नये चीनी गवर्नर ने रूस से उन चीनी सैनिकों को प्राप्त किया जो मंचूरिया के युद्ध में जापान से हारकर साइबेरिया भाग गये थे। और जब उनसे पूरा न पड़ा तब उसने रूस-सरकार से सैनिक सहायता प्राप्त करके उक्त मुसलमान जनरल को परास्त किया। इस प्रकार रूस का उस प्रदेश पर अब अधिक प्रभाव स्थापित हो गया है। और यह बात चीन, जापान तथा भारत के लिए विशेष चिन्ता का कारण है। तथापि इतना स्पष्ट है कि चीन का यह एक प्रान्त भी उसके हाथ से जाता हुआ दिखाई दे रहा है।

३—चीन की दुर्दशा

चीन की दुरवस्था की कोई सीमा नहीं है। बोल्शेविकी चीनियों के गृह-युद्ध के कारण वह कुछ

कर-धर नहीं पा रहा है। आज भी चीन में अस्सी हज़ार साम्यवादियों की शक्तिशाली सेना क्यिआँग-सी और फ़ूकेन के प्रान्तों में डटी हुई सरकारी सेनाओं से युद्ध कर रही है। इस संकट में वह पड़ा ही हुआ था कि इसी समय उसे जापान ने फिर एक बार आ दबाया है। उसने इस बात का अन्तिम पत्र दे दिया है कि उत्तरी चीन के चिहली-प्रान्त को चीनी सेनायें ख़ाली कर जायँ और यहाँ के अधिकारियों को वापस बुलाकर उनके स्थान में ऐसे लोगों की नियुक्ति की जाय जो जापान की निगरानी में उस भूभाग की देख-रेख करें। चीन में बल नहीं है कि वह इस अन्तिम पत्र को अस्वीकार कर सके। इस बात की आशा भी नहीं है कि जापान के विरुद्ध उसे किसी पाश्चात्य राष्ट्र से सैनिक सहायता मिलेगी। अतएव उसके लिए दो ही रास्ते हैं। या तो वह बोल्शेविकी लोगों से मेल कर सोवियट रूस से परस्पर की सहायता की सन्धि कर ले या चुपचाप जापान की बात मान ले। चीन की राष्ट्रीय सरकार कदाचित् जापान से मेल-जोल ही बनाये रखना चाहती है। अतएव उसने कुछ हुज्जत कर चुकने के बाद जापान की माँगों को स्वीकार कर लिया है। इससे यही जान पड़ता है, कि कुछ दिनों में समग्र उत्तरी चीन भी मंचूरिया की भाँति जापान की संरक्षा में आ जायगा।

उधर रूस चीनी तुर्किस्तान को हड़पे ही लिये जा रहा है, इधर जापान भी अकस्मात् और सो भी एक मामूली बात का बहाना करके चीन के उत्तरी भाग को भी हथिया लेने का यत्न कर रहा है। जापान और रूस दोनों जानते हैं कि चीन की रक्षा के लिए न तो ब्रिटेन और न अमरीका के संयुक्त-राज्य ही अस्त्र ग्रहण करेंगे। इस प्रकार संसार में जिसकी लाठी उसकी भैंस की कहावत आज भी सोलहो आने चरितार्थ होती दिखाई दे रही है।

४—फ़िलीपाइन द्वीपों की स्वाधीनता

फ़िलीपाइन द्वीप-समूह को जो नया शासन-विधान दिया जा रहा है उस पर प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट ने हस्ताक्षर कर दिया है। इसके अनुसार अगले नवम्बर से वहाँ आत्मशासन या होमरूल का प्रचलन हो जायगा। इस प्रकार उक्त द्वीप-पुञ्ज को स्वाधीनता-प्रदान करने का श्रीगणेश हो गया और जब तक वह पूर्णरूप से स्वतन्त्र नहीं कर दिया जाता तब तक संयुक्त-राज्य उसकी रक्षा एवं वैदेशिक सम्बन्धों की देख-भाल खुद करेगा।

आत्मशासन-सम्बन्धी जिस व्यवस्था-पत्र पर रूज़वेल्ट साहब ने हस्ताक्षर किया है उसे फ़िलीपाइन के निवासियों के मनोनीत सदस्यों ने ही तैयार किया है। इसके लिए उनकी एक सभा बैठी थी और उन्होंने परस्पर वाद-विवाद करके आत्मशासन-सम्बन्धी अपनी माँगों को क्रमपूर्वक लिपिबद्ध किया। इस महत्त्वपूर्ण शासन-विधान की स्वाधीन भावना का पता केवल इस बात से ही भले प्रकार लग जाता है कि उसमें अँगरेज़ी-भाषा के पठन-पाठन की व्यवस्था नहीं की गई है। वहाँ के स्कूलों में इस समय शिक्षा का माध्यम अँगरेज़ी ही है, परन्तु वहाँवालों ने इस शासन-विधान-द्वारा अँगरेज़ी को शिक्षा का माध्यम बनाये रखने से इनकार कर दिया है।

इसमें सन्देह नहीं कि इस शासन-विधान से फ़िलीपाइनवालों को आत्मशासन के सारे अधिकार प्रदान कर दिये गये हैं और इसके वहाँ दृढ़ता से चल निकलने के बाद संयुक्त राज्यों की सरकार रक्षा और वैदेशिक नीति के सञ्चालन का उत्तरदायित्व भी उन्हें उपयुक्त समय पर सौंपकर पूर्णरूप से उन्हें स्वतन्त्र कर देगी। संयुक्त-राज्य की प्रजातंत्र-सरकार का यह सत्कार्य सर्वथा उसके अनुरूप हुआ है और इसके सफलता प्राप्त करने पर यह दूसरों के लिए आदर्श का कार्य करेगा। इस सम्बन्ध में फ़िलीपाइन के निवासी भी प्रशंसा के पात्र हैं कि उन्होंने अपनी स्वाधीन-भावना का परित्याग नहीं किया और संयुक्त-राज्यों के गत ४० वर्ष के शासन-काल में वे उसके लिए दृढ़ता के साथ आन्दोलन करते आये हैं। यही कारण है कि आज संयुक्त राज्यों के अधिकारी तक उन्हें समझदार राजनीतिज्ञ कहकर उनकी प्रशंसा कर रहे हैं और उन्हीं की निश्चित की हुई माँगों के अनुसार उन्हें शासनाधिकार दे रहे हैं।

सम्पादकीय नोट

कोयटा का लोकसंहार

३१ मई को कोयटा में भूकम्प ने सर्वनाश का जो भयंकर दृश्य उपस्थित किया है उस सम्बन्ध में हम इसी अंक में अन्यत्र दो लेख छाप रहे हैं। उनसे पाठकों को इस प्रलयंकर घटना का यत्किंचित् परिचय अवश्य प्राप्त हो जायगा। एक क्षण में किस तरह एक विशाल जनाकीर्ण नगर ढह गया और उसके मलबे के नीचे आबाल-वृद्ध-वनिता-सारे निवासी दब मरे, इसकी करुणकथा बताने को यद्यपि दस-पाँच हज़ार आदमी बच गये हैं, तो भी वे उसका शतांश भी नहीं बता सकते। इस दुर्घटना के स्मरणमात्र से रोएँ खड़े हो जाते हैं। यह भूकम्प १५० मील लम्बे तथा २० मील चौड़े भूभाग में आया था, जिसके परिणाम-स्वरूप कोयटा तथा मातुंग नाम के दो शहर तथा उनके आस-पास के १०० गाँव नष्ट हो गये हैं। और सम्पत्ति के विनाश का अन्दाज़ ५० करोड़ रुपये से ऊपर लगाया जाता है। इसी प्रकार यह भी कहा जाता है कि एक लाख के लगभग जानें गई हैं। इसमें सन्देह नहीं, कोयटा तथा मातुंग ये दोनों विशाल नगर आज मलबे के ढेर हो गये हैं, जिसके साथ वहाँ के हज़ारों निवासी तथा उनकी करोड़ों की सम्पत्ति भी मिट्टी में मिल गई है। इस अचिन्त्य त्रासदायक दुर्घटना की यादकर इटली के प्राचीन पंपिआई नगर का चित्र सामने आ जाता है जिसे ज्वालामुखी के लावे ने बात की बात में उदरस्थ कर लिया था। इस समय आवश्यकता इस बात की है कि जो अल्पसंख्यक लोग इस मरणान्तक विपत्ति से बच निकले हैं और जिनमें आधे के लगभग बुरी तरह से घायल हो गये हैं उनकी जान बचाने का, साथ ही सभी बचे हुओं की मलबे के नीचे दबी पड़ी हुई सम्पत्ति का उद्धार करके उन्हें सौंप देने का भार हम लोग अपने ऊपर लें। प्रसन्नता की बात है, अपने इस कर्तव्य का पालन करने में क्या सरकार ने और क्या जनता ने ज़रा भी अवहेलना नहीं की और शुरू से ही बराबर अभी तक तत्परता से भूकम्प-पीड़ितों का बिना किसी भेदभाव के सेवा-कार्य किया जा रहा है। आशा है, सभी लोग भूकम्प-पीड़ित भाइयों की सहायता करके अपने कर्तव्य का पालन करेंगे।

सङ्घ-शासन-विधान

नये शासन-सुधारों का जो बिल हाउस आफ़ कामंस में पेश था उसके तीन वाचन हो गये और वहाँ से वह कुछ परिवर्तन के साथ पास हो गया। अब वह हाउस आफ़ लार्ड्स में पेश है, जहाँ से, आशा है, वह अपने वर्तमान रूप में जैसा का तैसा ही पास हो जायगा। उसके बाद उस पर सम्राट् के हस्ताक्षर होंगे और तब उसे क़ानून का रूप प्राप्त हो जायगा। इस प्रकार इस वर्ष की समाप्ति के पहले ही इस क़ानून के सारे संस्कार पूरे हो जायँगे और भारत में अगले वर्ष से प्रान्तीय 'स्वराज्य' का प्रवर्तन हो जायगा।

हाउस आफ़ कामंस में इस बिल के विरुद्ध मिस्टर चर्चिल तथा उनके दल के लोगों ने बड़ा वाद-विवाद किया, किन्तु भारतमंत्री सर सैमुअल होर के आगे उनकी एक न चली और सरकार ने अपने बहुमत से उसे तीनों बार हाउस आफ़ कामंस से पास करवा लिया। केवल भारत के देशी नरेश ही उसमें अपने पक्ष में यत्किंचित् परिवर्तन करवा लेने में सफल मनोरथ हुए हैं। पर अँगरेज़ी भारत की भिन्न भिन्न संस्थाओं में से किसी एक की भी नहीं सुनी गई। यहाँ तक उन मुसलमान नेताओं ने भी असन्तोष प्रकट किया है जिनको नये शासन-सुधारों में अन्य जातियों की अपेक्षा विशेष सुविधायें दी गई हैं।

इन मुसलमानों का कहना है कि इस बिल में उनकी सभी माँगों की पूर्ति नहीं की गई है। और जब मुसलमान तक असन्तोष प्रकट करते हैं तब अन्य जातियों के सम्बन्ध में क्या कहा जाय—कांग्रेस या दूसरी संस्थाओं की आकांक्षाओं की पूर्ति का होना तो इस बिल से सोचा ही नहीं जा सकता।

आश्चर्य तो यह है कि पार्लियामेंट के अनुभवी राजनीतिज्ञों तक ने भारतीय लोकमत के दृष्टिकोण को समझने की परवा नहीं की। यह बात हाउस आफ़ कामंस के उक्त बिल-सम्बन्धी वाद-विवादों से बहुत कुछ प्रकट हो चुकी है और जो थोड़ा-बहुत प्रकट होना बाक़ी रह गया है वह अब हाउस आफ़ लार्ड्स के वाद-विवाद से व्यक्त हो जायगा। अभी उस दिन हाउस आफ़ लार्ड्स में स्वयं भूतपूर्व भारतमंत्री लार्ड क्रू ने साफ़ कहा है कि भारत को डोमीनियन स्टेटस का पद कभी से प्राप्त है, रहा उसके अधिकार प्राप्त करना सो धीरे धीरे वे भी प्राप्त हो जायँगे। पार्लियामेंट के बहुमत का ऐसा ही दृष्टिकोण है। एक अकेला मज़दूर-दल अलबत्ता भारतीय लोकमत को पार्लियामेंट में बार बार प्रकट करता आया है। परन्तु उसका वहाँ कुछ भी ज़ोर नहीं है। अतएव नये शासन-सुधार भारत में वही जारी किये जायँगे जिनका जारी होना वहाँ की वर्तमान राष्ट्रीय सरकार ने स्वीकार किया है। यह बिल उसी का लिखित रूप है।

———

साम्प्रदायिक बँटवारा

ग्रेट ब्रिटेन के मंत्रिमण्डल में जो परिवर्तन जून में हुआ है उसके अनुसार अनुदारदल के नेता मिस्टर बाल्डविन प्रधान मंत्री बनाये गये हैं और भारतमंत्री का पद लार्ड ज़ेटलैंड को दिया गया है। लार्ड ज़ेटलैंड बंगाल के गवर्नर रह चुके हैं और ये प्रसिद्ध साम्प्रदायिक बँटवारे के पूर्ण रूप से विरुद्ध रहे हैं। इनका कहना है कि विधान-द्वारा व्यवस्थापक सभाओं में हिन्दुओं को निम्न स्थान देकर यह आशा करना कि नियत समय के बाद हिन्दू और मुसलमान आपस में समझौता करके सम्मिलित चुनाव-प्रणाली ग्रहण कर लेंगे, केवल दुराशा-मात्र है। साम्प्रदायिक बँटवारे के विरुद्ध ऐसे विचार रखते हुए भी उन्होंने भारतमंत्री का पद स्वीकार किया है। उस दिन हाउस आफ़ लार्ड्स में 'इंडियाबिल' के उपस्थित करते समय उन्होंने अपने भाषण में अपनी सफ़ाई देते हुए कहा है कि यद्यपि वे साम्प्रदायिक बँटवारे के विरुद्ध हैं, तथापि उन्होंने बहुमत के आगे सिर झुका दिया है और वे अपने कार्य-काल में उस 'बहुमत' के अनुसार ही कार्य करेंगे। लार्ड ज़ेटलैंड के भारतमंत्री बनाये जाने से संप्रदायवादी हिन्दू प्रसन्न हुए होंगे। परन्तु लार्ड महोदय की उक्त सफ़ाई से उन्हें निराशा भी हुई होगी। वास्तव में भारत के सम्बन्ध में ब्रिटेन के मंत्रिमंडल की एक निश्चिन्त नीति रहती है; जिसका पूर्ण रूप से अनुभव मज़दूर-दल की सरकार के समय ही भारत को हो चुका है। परन्तु आशावादी हार नहीं मान सकते और वे मंत्रिमण्डल के इस परिवर्तन में लार्ड ज़ेटलैंड के भारतमंत्री बनाये जाने से और भी अधिक आशान्वित हुए होंगे। ऐसे लोगों को जान लेना चाहिए कि 'इंडिया-बिल' पास हो चुका है और उसके साथ ही साम्प्रदायिक बँटवारा भी पास हो चुका है। यही नहीं, उसके अनुसार नूतन शासन-प्रणाली भी अगले वर्ष से कार्य में परिणत होगी। मंत्रिमण्डल का कोई भी परिवर्तन अब उसकी प्रगति में बाधा नहीं दे सकेगा। तथापि इतनी बात स्पष्ट है कि वर्तमान भारतमंत्री को भारत का व्यावहारिक ज्ञान है और वे भारतीय प्रश्नों पर अधिक सहानुभूति के साथ विचार करेंगे। कम से कम हिन्दुओं को तो उनसे ऐसी ही आशा है। उन्होंने अपने हाउस आफ़ लार्ड्स के भाषण में इस बात का आश्वासन दिया है कि हिन्दू-मुसलमानों में समझौता करा देने का वे अपने भरसक प्रयत्न भी करेंगे।

———

हिन्दुओं का विकट ह्रास

संसार में केवल भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ हिन्दू बसते हैं। परन्तु उनकी संख्या में दिन प्रतिदिन भारी कमी होती जा रही है। यह हिन्दुओं के लिए सचमुच विशेष चिन्ता की बात है। १९३१ की मनुष्य-गणना के आँकड़ों से प्रकट होता है कि उनकी संख्या की कमी का

क्रम पहले की ही भाँति जारी ही नहीं है, किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि अनिवार्य रूप से जारी ही रहेगा। हिन्दुओं की संख्या में जो यह कमी हो रही है उसका एक कारण धर्मपरिवर्तन भी है। और यह धर्मपरिवर्तन धर्म-जिज्ञासा के भाव से उतना नहीं होता है जितना कि आर्थिक संकट या सामाजिक अनाचार के कारण होता है। यह सच है कि हिन्दू आर्थिक संकट से अपने जाति-बन्धुओं की रक्षा करने में असमर्थ हैं, पर वे सामाजिक अनाचार से उनकी रक्षा ज़रूर कर सकते हैं। खेद की बात है कि उनका ध्यान इस ओर जाकर भी नहीं जा रहा है।

१९३१ की मनुष्यगणना की रिपोर्ट से प्रकट होता है कि पंजाब, बंगाल और ट्रावनकोर एवं कोचीन राज्यों में हिन्दुओं की संख्या जहाँ घटी है, वहाँ मुसलमानों और ईसाइयों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई है। पञ्जाब, बंगाल और आसाम में मुसलमान वृद्धि पर हैं। पंजाब में हिन्दू १९२१ की गणना में ३,१८१ प्रतिशत थे, जो घट कर अब २,६८४ प्रतिशत रह गये हैं। इसी प्रकार बंगाल में वे १९२१ में ४,३२० प्रतिशत थे जो अब घटकर ४,३०४ प्रतिशत रह गये हैं। हाँ, आसाम में मूलनिवासियों के कारण उनकी संख्या में कुछ वृद्धि हुई है, परन्तु उस प्रान्त में मुसलमानों की जो संख्या-वृद्धि होती जा रही है उसके आगे हिन्दुओं की यह संख्या-वृद्धि नगण्य है।

उधर ट्रावनकोर और कोचीन में ईसाइयों की संख्या में सबसे अधिक वृद्धि हुई है। गत दस वर्षों में भारत में उनकी संख्या में ३२५ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। ट्रावनकोर में और कोचीन में तो गत ५० वर्षों के भीतर उनकी संख्या कहीं दुगुनी और कहीं तिगुनी बढ़ गई है। और इनकी इस संख्या-वृद्धि में अछूतों ने बहुत अधिक योग दिया है। दक्षिण में अछूतों के साथ जो व्यवहार होता है वह लोक-विदित है। और इस अवस्था के होते हुए भी यदि वहाँ के सभी अछूतों ने अपना धर्मपरिवर्तन अभी तक नहीं किया है तो इसे आश्चर्य ही समझना चाहिए। यह वहाँ के 'अछूत' हिन्दुओं के दुराग्रह का परिणाम है कि दक्षिण में ईसाइयों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है।

निस्सन्देह हिन्दुओं की संख्या का यह भारी ह्रास हिन्दुओं के लिए विशेष चिन्ता की बात है। उनके समाज के जो लोग उनसे असन्तुष्ट होकर धर्म-परिवर्तन करेंगे वे लोग उनके साथ प्रेम का व्यवहार कैसे कर सकेंगे? देश में इस समय सम्प्रदायवाद का जो ज़ोर है उसका एक कारण यह भी है। अतएव हिन्दुओं को इस विकट समस्या की ओर विशेष सावधानी से ध्यान देना चाहिए और उन्हें अपनी जाति का पुनःसंगठन इस विधि से करना चाहिए कि निम्न समझी जानेवाली जातियाँ भविष्य में वैसी न समझी जायँ। यही नहीं, उनके साथ ऐसा व्यवहार हो कि वे स्वयं अपने को सबके समान ही समझें।

———

स्वर्गीय पंडित गोपीनाथ पुरोहित

स्वर्गीय रायबहादुर सर गोपीनाथ पुरोहित की मृत्यु हो गई। आप जयपुर-राज्य के नररत्न थे।

पुरोहित जी का जन्म संवत् १९१९ के चैत्र में हुआ था। आप केवल ३ वर्ष के ही थे जब आपके पूज्य पिता का स्वर्गवास हुआ था। अनेक आर्थिक एवं कौटुम्बिक आपदाओं को वीरता-पूर्वक झेलते हुए आपने बी० ए० (आनर्स) और एम० ए० की उच्च उपाधियाँ प्राप्तकर जयपुर के महाराजा-कालेज का मुखोज्ज्वल किया। जयपुर-राज्य के आप सर्वप्रथम ग्रेजुएट थे। अतएव आपका राज्य-द्वारा हाथी, घोड़े और राजकीय लवाज़मे से स्वागत किया गया।

प्रारम्भ में पुरोहित जी जयपुर-कालेज में प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए। आपकी साधारण योग्यता से प्रसन्न होकर जयपुर-नरेश ने आपको जयपुर-राज्य की ओर से आबू में अपना वकील नियुक्त किया। इस सम्मानित पद पर नियुक्त होनेवाले आप सर्वप्रथम जयपुरी थे। १५ वर्ष तक इस पद पर आपने बड़ी तत्परता और योग्यता से कार्य किया। इन सेवाओं के फलस्वरूप आपको 'रायबहादुर' की उपाधि मिली।

इसके पश्चात् पुरोहित जी पुलिस-मेम्बर हुए और अन्त में जयपुर-केबिनेट के वाइस-प्रेसिडेण्ट तथा होम-मेम्बर बनाये गये। पेन्शन होने के पूर्व आप 'सर' की उपाधि से विभूषित किये गये।

पुरोहित जी साधारण स्थिति में जन्म लेकर जयपुर जैसे समृद्ध राज्य के प्रधान सचिव बने, फिर भी आपमें अभिमान लेशमात्र भी न था, विनय-सादगी और सज्जनता के आप उदाहरण थे।

पुरोहित जी हिन्दी के लेखक तथा वृद्ध साहित्यसेवी थे। मित्रता, वीरेन्द्र, सती-चरित, चमत्कार आदि पुस्तकें लिखी हैं तथा शेक्सपीयर और भर्तृहरि के शतकत्रय के सुन्दर अनुवाद हिन्दी में किये हैं। हिन्दी-कोविद-रत्नमाला में आपका चरित प्रकाशित हुआ है।

शैशवकाल से लेकर मृत्युपर्यंत आपको विद्या का व्यसन बना रहा। मृत्यु के समय आपकी अवस्था ७३ वर्ष की थी और इस समय आप ग्रामीणों के जल-कष्ट से दुखी होकर एक बड़ा बाँध बँधवाने में दत्तचित्त थे। आपकी मृत्यु से जयपुर का एक श्रेष्ठ व्यक्ति उठ गया है।

नेत्ररोग की व्यापकता

भारत नाना प्रकार की आधि-व्याधियों का घर बन गया है। उसे उन सबसे मुक्त करने के प्रयत्न सरकार तथा इतर परोपकारी जन यथाशक्ति बराबर करते रहते हैं, परन्तु रक्तबीज की तरह वे घटने के स्थान में बढ़ती ही जाती हैं और सो भी नये नये रूपों में। ऐसी दशा में पुरानी व्याधियों का उन्मूलन होना पीछे रह जाता है और सरकार तथा दूसरे लोग नई व्याधियों का प्रतीकार करने में लग जाते हैं। फलतः पुरानी व्याधियाँ जड़ पकड़ लेती हैं। उदाहरण के लिए आँखों के रोग को ही लीजिए। आज क्षय, काला आज़ार, गर्दन तोड़ बुख़ार के आगे उसकी ओर कौन ध्यान देता है? परन्तु वह इस दशा में देशव्यापी होता जा रहा है। अलीगढ़ के श्रीमोहनलाल जी जैसे कुछ लोग लाख अख़बारों में अन्धों के पक्ष में शोरगुल मचाया करें, पर किसे फ़ुर्सत है कि उनकी ओर समुचित रूप से ध्यान दे। काशी-निवासी स्वर्गीय राजा मोतीचन्द ने इधर कई वर्ष से नेत्र-रोगियों की सहायता के लिए विशेष आयोजन किया था, पर उनके निधन से अब वह सहारा भी नहीं रहा। अन्ध-सहायक-सभा के मन्त्री श्री मोहनलाल जी का कहना है कि सिन्ध के बाद अन्धों की संख्या संयुक्तप्रान्त में ही सबसे अधिक है। इस बात में सिन्ध सारे भारत में सबसे आगे है। वहाँ की जन-संख्या में लाख पीछे ३०० आदमी अन्धे हैं, संयुक्त-प्रान्त में वही संख्या २५० है। अतएव यह दूसरे नम्बर पर है। आँख के रोगों में रोहे का रोग 'ट्राकोमा' सबसे भयंकर होता है। आँख के रोगियों में २५ फ़ी सदी लोग इसी रोग से ग्रस्त हैं। पञ्जाब में आँख के रोगियों में ५० फ़ी सदी लोगों में यह फैला हुआ है।

भारत में आविष्कार

सदा की भाँति पेटेन्ट आफ़िस की रिपोर्ट इस बार भी निकली है। इस रिपोर्ट से उन आविष्कारों का ब्योरा प्राप्त होता है जिनका पेटेन्ट आविष्कार करनेवाले प्राप्त करते हैं। इसकी वार्षिक रिपोर्टों से प्रकट होता है कि नये आविष्कारों की संख्या बराबर बढ़ती जा रही है। यह प्रसन्नता की बात है कि भारतीय यंत्र-विशारद अपने कार्य में उत्साहपूर्वक लगे हुए हैं और वे कोई न कोई नया आविष्कार करते ही रहते हैं। पेटेंट-आफ़िस की पिछली रिपोर्ट से प्रकट होता है कि रिपोर्ट के साल पेटेंट कराने की दरख्वास्तें १,००७ आईं, जिनमें ३४२ भारत की थीं और इनमें १२६ अकेले बंगाल की थीं। आविष्कार की प्रक्रिया में बंगाल अन्य प्रान्तों की अपेक्षा पहले की ही तरह अब भी आगे है।

बिजली के भिन्न भिन्न उपयोगों के सम्बन्ध के यन्त्रों का पेटेन्ट कराने के लिए इस वर्ष गतवर्ष के मुक़ाबिले में ७० फ़ी सदी अधिक दरख्वास्तें आईं। परन्तु इनमें भारत की लगभग ८ फ़ी सदी ही रहीं। यह प्रसन्नता की बात है कि बिजली-सम्बन्धी यन्त्रों के आविष्कारों की ओर लोगों का ध्यान विशेषरूप से रहा है। इसी तरह खेती के छोटे छोटे यन्त्रों के आविष्कारों की ओर भी भारतीय आविष्कारकों ने विशेष रूप से ध्यान दिया है और उनमें भी सिंचाई-सम्बन्धी यन्त्रों का आविष्कार करने में। इस प्रकार के यन्त्रों के निर्माण में पंजाबवालों ने विशेषरूप से दिलचस्पी दिखाई है।

संयुक्त-प्रान्त में हिन्दी और उर्दू

प्रान्तीय सरकार की शासन-रिपोर्ट अभी हाल में निकली है। उससे प्रकट होता है कि रिपोर्ट के साल हिन्दी में २,२४०, उर्दू में ३७८ और संस्कृत में १२८ पुस्तकें प्रकाशित हुईं। और इन पुस्तकों की एक तिहाई पुस्तकें कविता में निकलीं, शेष गद्य में निकलीं, जिनमें ५०५ भाषा की, ३३२ धर्म-विषयक, २२७ उपन्यास, २८६ प्रकृति-विज्ञान, गणित तथा यंत्र-विज्ञान-विषयक तथा २०७ इतिहास एवं भूगोल-सम्बन्धी पुस्तकें निकलीं।

रिपोर्ट में उर्दू की पुस्तकों के सम्बन्ध में लिखा गया है कि गुण और परिमाण की दृष्टि से उर्दू इस वर्ष गिरी रही। परन्तु हिन्दी के ग्रन्थ-प्रणेताओं ने मुस्तैदी दिखाई है और उन्होंने विज्ञान, कृषि, पशु-विज्ञान, प्रसूतिशास्त्र, स्वास्थ्य, ग्रामसुधार तथा चरित-विषयक ग्रन्थों की रचना की ओर विशेष ध्यान दिया है।

समाचार-पत्रों तथा मासिक-पत्रों की संख्या ६६६ बताई गई है, जिनमें ६१ नये हैं। इनमें २७ दैनिक, ८ अर्द्ध साप्ताहिक, २३१ साप्ताहिक और २५६ मासिक हैं। इनमें ९२ अँगरेज़ी के, २६५ उर्दू के और २३३ हिन्दी के हैं। इनमें से २ अँगरेज़ी के, ३ उर्दू के और ६ हिन्दी के पत्रों में से प्रत्येक की ग्राहक-संख्या ४ हज़ार से ऊपर है। इसी तरह ३ अँगरेज़ी के, ४ उर्दू के और ११ हिन्दी के पत्रों में से प्रत्येक की ग्राहक संख्या दो हज़ार से चार हज़ार तक है। ५३.४ फ़ी सदी हिन्दू, ४१.२ फ़ी सदी मुसलमान तथा ५.४ फ़ी सदी ईसाई सम्पादक उपर्युक्त पत्रों का सम्पादन करते हैं। यह विवरण कहाँ तक सन्तोषप्रद है, यह विचारणीय है। भले हिन्दी या उर्दूवाले अपने अपने प्रकाशन के प्रतिवर्ष बढ़ते हुए आँकड़ों को देखकर अपने अपने साहित्य की उन्नति का दम्भ किया करें, परन्तु यहाँ की जन-संख्या और संस्कृति को देखते हुए उनके ये आँकड़े कुछ भी नहीं हैं। इन आँकड़ों से एक यह बात भी प्रकट होती है कि उर्दू का हिन्दी की अपेक्षा यहाँ ज़्यादा प्रचार है। इन प्रान्तों में मुसलमानों की आबादी कुल १४ फ़ी सदी है। परन्तु यहाँ उर्दू के पत्रों और सम्पादकों की संख्या ज्यादा हैं।

राष्ट्र-भाषा का प्रश्न

अभी तक हिन्दीवालों की यही धारणा थी कि राष्ट्र-भाषा का प्रश्न तय हो गया है और हिन्दी भारत की राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार कर ली गई है। परन्तु जान पड़ता है कि यह प्रश्न अभी तय नहीं हुआ है और हिन्दीवाले भ्रम में रहे हैं। इन्दौर के सम्मेलन के १६ वें प्रस्ताव-द्वारा इस मामले पर पूरा प्रकाश पड़ता है। उस प्रस्ताव में कहा गया है कि इस सम्बन्ध में 'हिन्दुस्तान के भिन्न भिन्न प्रान्तों में कुछ ग़लतफ़हमी फैली हुई है', अतएव 'यह सम्मेलन घोषित करता है कि राष्ट्र-भाषा की दृष्टि से हिन्दी का वह स्वरूप मान्य समझा जाय जो हिन्दू-मुसलमान आदि सब धर्मों के ग्रामीण और नागरिक व्यवहार करते हैं, जिसमें रूढ़ सर्वसुलभ अरबी, फ़ारसी, अँगरेज़ी या संस्कृत शब्दों या मुहाविरों का बहिष्कार न हो और जो नागरी या उर्दू लिपि में लिखी जाती हो।'

सम्मेलन की इस घोषणा का यह मतलब निकलता है कि वह वर्तमान साहित्यिक हिन्दी या उर्दू को राष्ट्र-भाषा नहीं स्वीकार करता, किन्तु उसके लिए एक ऐसी भाषा का संकेत करता है जिसको अभी कोई साहित्यिक रूप नहीं प्राप्त हुआ है, पर सब धर्मों के लोग जिसका बोलचाल में व्यवहार करते हैं। एक शब्द में उसका नाम 'हिन्दुस्तानी' या 'हिन्दोस्तानी' हो सकता है। प्रयाग की 'हिन्दुस्तानी एकेडमी' का भी यही उद्देश है और उसके प्रधान सर तेजबहादुर सप्रू ने भी अभी हाल में लन्दन में अपने एक भाषण में उक्त घोषणा जैसी ही बात कही है। 'सम्मेलन' ने अपनी घोषणा से इस सम्बन्ध की 'ग़लतफ़हमी' दूर करके बहुत अच्छा काम किया [illegible]। आशा है, हिन्दीवालों का भ्रम दूर हो जायगा और वे यह बात गाँठ बाँध रक्खेंगे कि उनकी 'हिन्दी' 'हिन्दुस्तान' की राष्ट्र-भाषा नहीं है, किन्तु वह भाषा राष्ट्र-भाषा होगी जिसे सब धर्मों के ग्रामीण और नागरिक व्यवहार में लाते हैं तथा जो हिन्दी या उर्दू में लिखी जाती है। इस सम्बन्ध में खेद की बात इतनी ही है कि राष्ट्रभाषा के इस रूप का समर्थन करनेवाली भारत की एक-मात्र संस्था 'हिन्दुस्तानी एकेडमी' अभी तक उसको लिखित रूप में नहीं ला सकी। क्या हम

आशा कर सकते हैं कि 'सम्मेलन' ही इस पुनीत कार्य का भार अपने ऊपर लेकर इस जटिल प्रश्न की मीमांसा सदा के लिए कर डालने का श्रेय लेगा ?

हिन्दुस्तानी एकेडेमी का नया आयोजन

'सरस्वती' के गत अंक में हमने एकेडेमी के जिस नूतन प्रकाशन का उल्लेख अपने एक नोट में किया था वह जिस ग्रन्थमाला के रूप में होगा उसका उद्देश कला और विज्ञान तथा उसके भिन्न भिन्न अंगों पर सस्ती सार्वजनिक उपयोग की पुस्तकें प्रकाशित करना होगा। इस ग्रन्थमाला की प्रत्येक पुस्तक का मूल्य साधारणतया १) रक्खा जायगा और प्रत्येक पुस्तक की छपाई, जिल्द, आकार-प्रकार तथा पृष्ठ-संख्या समान होगी। प्रत्येक पुस्तक प्रायः २०० पृष्ठों की होगी।

पुस्तकें साधारण बोलचाल की भाषा और सरल शैली में लिखी जायँगी और इनमें भिन्न भिन्न विषयों के सम्बन्ध की अपटुडेट और प्रामाणिक पाठ्य सामग्री रहेगी।

एकेडेमी का यह कार्य वास्तव में अधिक लोकोपयोगी जान पड़ता है। इधर पिछले दिनों वह चुपचाप ही अपना निर्दिष्ट कार्य करती रही है। परन्तु उसकी वह नीति कदाचित् उसके अधिकारियों को उसके उपयुक्त नहीं प्रतीत हुई। इसी से उसने अपने कार्य का उक्त आयोजन ही नहीं किया है, किन्तु वह अब पहले की भाँति साहित्यिक जलसा भी किया करेगी जैसा कि उसकी 'कार्यकारिणी समिति' की विज्ञप्ति से प्रकट होता है। समिति ने यह निश्चय किया है कि आगामी जाड़े के दिनों में एक साहित्यिक सम्मेलन किया जायगा, जिसमें हिन्दी-उर्दू के विद्वान् एकत्र होकर साहित्यिक विषयों पर विचार करके इस बात का उपाय ढूँढ़ेंगे कि हिन्दी-उर्दू-साहित्य की उन्नति में सहायता कैसे पहुँचाई जाय। इस सम्मेलन में अनेक साहित्यिक विषयों पर लेख पढ़ने तथा व्याख्यान देने का भी प्रबन्ध रहेगा।

हम हृदय से चाहते हैं कि एकेडेमी अपने प्रयत्न में सफल-मनोरथ हो।

अलमोड़े का वसन्त

गत अङ्क में उपर्युक्त शीर्षक में पन्त जी की एक कविता प्रकाशित हुई थी। हमारे कुछ मित्रों को उसकी प्रथम चार पंक्तियों के अर्थ में भ्रम हुआ है। इसकी सूचना हमने पन्त जी को दी। कविता का जो स्पष्टीकरण पन्त जी ने एक प्राइवेट पत्र में किया है उसे हम यहाँ ज्यों का त्यों छापते हैं। आशा है, अब लोगों का भ्रम दूर हो जायगा, साथ ही 'सरस्वती' के पाठकों का भी मनोविनोद होगा।

"विद्रुम मूँगा (नव पल्लव); मरकत = पन्ना (हरे पत्र); लाल और हरे पत्रों का मिश्रित वर्ण (छाया)। सोने चाँदी का सूर्यातप। प्रातः-सन्ध्या की सुनहरी धूप; मध्याह्न की चाँदी की धूप। वसन्तागम के क़रीब दिगन्त में धूल भरी रहने के कारण भी यहाँ के सूर्यास्त अधिक रक्तिम होते हैं एवं दोपहर अधिक चमकीले। हिम-परिमल—ओस-वाष्प एवं सुगन्ध से पूर्ण रेशमी वायु। अर्थात् कोमल-उष्ण चमकीली वायु। हेमन्त की अत्यन्त ठण्डी वायु के बाद वसन्त की वायु गरमी लिये अत्यधिक प्रिय लगती है। साथ ही शीत-काल की जड़ता के बाद पहाड़ों पर वसन्त-ऋतु में वायु में अधिक उज्ज्वलता एवं कोमलता आ जाती है। शतरत्न-छाय—सौ सौ रत्नों के रंगों के नभ पर जिसमें उड़ते हुए पक्षी ऐसे लगते हों मानो किसी ने नीले रेशम पर चित्रित कर दिये हों—खग-चित्रित नभ। अल्मोड़े की घाटी के दोनों छोर रंग-बिरंगे फूलों से ढँक जाने पर तितली के पंखों से लगते हैं—अतः चित्रशलभ-सी पंख खोल उड़ने को है उद्यत घाटी। इसका पाठान्तर यों भी है लो चित्र-शलभ-सी पंख खोल उड़ने को है कुसुमित घाटी।"

आशा है इससे आपको 'अल्मोड़े का वसन्त' की प्रथम चार पंक्तियों का अर्थ स्पष्ट हो जायगा।

कर्सियाङ्ग में मारवाड़ी सार्वजनिक पुस्तकालय

कर्सियाङ्ग (दार्जिलिङ्ग) में पिछले चार वर्षों से कतिपय मारवाड़ी नवयुवकों ने एक सार्वजनिक पुस्तकालय स्थापित कर रक्खा है। इतने ही समय में इस संस्था ने कर्सियाङ्ग के बाहर के लोगों का भी ध्यान आकर्षित किया है और श्री घनश्यामदास बिड़ला जैसे लोग इसका निरीक्षण भी कर आये हैं। कर्सियाङ्ग जैसे स्थान में उत्साह के साथ हिन्दी-द्वारा ज्ञान-प्रचार का जो कार्य हो रहा है वह प्रशंसनीय है और प्रवासी हिन्दी-भाषियों के लिए अनुकरणीय है। आशा है, यह संस्था इसी प्रकार उन्नति करती जायगी।

देव-पुरस्कार

उपर्युक्त पुरस्कार के सम्बन्ध में हमें निम्न सूचना प्राप्त हुई है—

सर्वसाधारण को सूचित किया जाता है कि इस वर्ष सवाई महेन्द्र महाराजा श्रीमान् वीरसिंहदेव ओरछा-नरेश द्वारा प्रदत्त दो सहस्र रुपये का देव-पुरस्कार खड़ी बोली के पद्य-ग्रन्थों पर दिया जायगा।

प्रतियोगिता में सम्मिलित होनेवाले ग्रन्थों की ग्यारह ग्यारह प्रतियाँ ३१ जुलाई सन् १९३५ तक पुरस्कार-समिति में आजानी चाहिए।

देव-पुरस्कार के लिए जीवित कवियों के दो वर्ष के भीतर प्रकाशित ग्रन्थ पर ही विचार किया जायगा। पर वह ग्रन्थ ग्रन्थ कहलाने योग्य अवश्य होना चाहिए। विषय और छन्द का चुनाव कवि की इच्छा पर निर्भर है।

विशेष जानने के लिए पत्र-व्यवहार कीजिए।

गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर' प्रधान मंत्री, श्री वीरेन्द्र-केशव-साहित्य-परिषद् टीकमगढ़, ओरछा-राज्य

महात्मा गांधी और प्रार्थना

ईश-प्रार्थना के सम्बन्ध में महात्मा गांधी 'हरिजन-सेवक' में लिखते हैं—

जब कोई मनुष्य गिर पड़ता है तब उठने के लिए वह ईश्वर से प्रार्थना करता है। तामिल-भाषा में एक कहावत है कि वह निराधारों का आधार है। कोयटा का यह भयंकर महानाश मनुष्य की बुद्धि को चक्कर में डाल देता है। यह हमारे पुनर्निर्माण के तमाम प्रयत्नों पर पानी फेर देता है। इस महानाश के विषय में सम्पूर्ण सत्य शायद कभी मालूम न हो सकेगा। जो बेचारे इस दुर्घटना में मर गये उन्हें फिर से जीवन-दान नहीं दिया जा सकता।

पर मनुष्य को तो अपना प्रयत्न जारी रखना ही चाहिए। जो बच गये हैं उन्हें सहायता अवश्य मिलनी चाहिए। ऐसा पुनर्निर्माण जहाँ तक संभव है, किया जायगा। पर यह सब और इसी प्रकार का और भी काम ईश्वर-प्रार्थना का स्थान नहीं ले सकता।

मगर प्रार्थना ही क्यों की जाय ? अगर कोई ईश्वर है तो क्या उसे इस भयंकर दुर्घटना का पता न होगा ! उसे क्या इस बात की आवश्यकता है कि पहले उसकी प्रार्थना की जाय तब कहीं वह अपना कर्त्तव्य-पालन करे।

नहीं, ऐसी बात नहीं है, ईश्वर को याद दिलाने की कोई ज़रूरत नहीं। वह तो घट-घट का वासी है। बिना उसकी आज्ञा के एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। हमारी प्रार्थना तो सिर्फ़ इसलिए है कि हम अपने अन्तर का शोधन करें। प्रार्थना के द्वारा तो हम ख़ुद अपने को यह याद दिलाते हैं कि उसके अवलम्ब के बिना हम सब कितने असमर्थ और असहाय हैं। हमारा कोई भी प्रयत्न बिना ईश्वर-प्रार्थना के विफल ही है। वह प्रयत्न तब तक किसी प्रकार पूर्ण नहीं कहा जा सकता जब तक उसमें प्रार्थना का पुट न हो। मनुष्य के जिस प्रयत्न के पीछे ईश्वर का आशीर्वाद नहीं वह कितना ही अच्छा क्यों न हो, बेकार हो जाता है। यह एक मानी हुई बात है। प्रार्थना से हम विनम्र बनते हैं। वह हमें आत्म-शुद्धि की ओर ले जाती है, अंतर निरीक्षण करने के लिए प्रेरणा देती है।

जो बात मैंने बिहार के भूकम्प के समय कही थी उसे मैं आज भी कहूँगा। हर एक भौतिक विपत्ति के पीछे

कोई-न-कोई ईश्वरीय अभिप्राय रहता है। एक समय ऐसा आयेगा जब पूर्ण विज्ञान की बदौलत पहले से ही हमें भूकम्प आने की बात उसी तरह मालूम हो जायगी जिस तरह कि हमें ग्रहण पड़ने की खबर पहले से ही मालूम हो जाती है। मनुष्य के दिमाग़ी ज्ञान की यह एक और विजय होगी। पर ऐसी एक नहीं असंख्य विजयों से भी आत्मा की शुद्धि नहीं हो सकती, और बिना आत्मशुद्धि के सब व्यर्थ है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस प्रकार हम बिहार की विपदा को भूल गये हैं, उसी प्रकार कोयटा की इस महा-विपदा को भी भूल जायँगे। जो लोग आत्मशुद्धि की आवश्यकता में विश्वास करते हैं, मैं उनसे कहूँगा कि वे मेरे साथ प्रार्थना में शरीक हों ताकि ऐसी दारुण विपत्तियों में हम ईश्वर के अभिप्राय को समझ सकें और जब कभी ऐसी विपदा आवे तब हम विनम्र भाव से अपने सिरजनहार की शरण लेकर बिना किसी तरह के भेदभाव के अपने विपद्ग्रस्त भाइयों की सेवा-सहायता कर सकें।

—

कांग्रेस में दलबन्दी

कांग्रेस की दलबन्दी के सम्बन्ध में डाक्टर भगवानदास ने श्रीमती कमलादेवी चटोपाध्याय को एक विचार-पूर्ण पत्र लिखा है। उस पत्र का कुछ अंश यह है—

प्रिय श्री कमलादेवी, पत्रों में प्रकाशित जबलपुर की कार्यवाहियों की रिपोर्ट पढ़ी है। यह देखकर मुझे अतीव कष्ट होता है कि कांग्रेस के पुराने दल और कांग्रेस साम्यवादियों के बीच में पारस्परिक मतभेद बढ़ते ही जाते हैं।

यह मेरा विश्वास है, जिसे समय समय पर मैं प्रायः प्रकट करता रहता हूँ कि इस सारे झगड़े की जड़—हृदय-विदारक, संहारकारी और शक्ति नष्ट करनेवाली कलह का असली कारण यह है कि कांग्रेस का पुराना दल हमेशा ही इस बात की व्याख्या करने से दूर भागता है, बचता फिरता है कि हिन्दुस्तान के लिए किस तरह की सामाजिक व्यवस्था उपयुक्त होगी और समाज की शिक्षा-सम्बन्धी, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक नीतियाँ क्या होंगी।

किन्तु यह बात मैं निस्संकोच भाव से कहता हूँ कि वर्तमान शाब्दिक संग्राम के लिए मुख्यतया कांग्रेस कार्य-समिति अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी और उसके नेता ज़िम्मेदार हैं। आज कांग्रेस के भारत की अनिश्चित अवस्था के लिए उक्त संस्थायें ही दोषी हैं। यह उनका कर्तव्य है कि वे अपने उद्देश की व्याख्या स्पष्ट और सरल शब्दों में कर दें। जिस स्वराज्य के लिए हम इतने दिन से लड़ रहे हैं और आगे भी लड़ते रहेंगे वह क्या है, इसका खुलासा क्यों नहीं कर दिया जाता? कांग्रेसमैन ठीक ठीक अपने कर्तव्य का पालन नहीं कर रहे हैं, बिलकुल अपूर्ण करांची के प्रस्ताव को ही वे सब कुछ समझ कर सन्तोष कर बैठ गये हैं, कांग्रेस-साम्यवादियों के साथ दिल खोल कर हृदय से विचार-विनिमय नहीं करती। यही कारण है कि कांग्रेस-साम्यवादी आज विपथगामी हुए जा रहे हैं।

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.



सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

अगस्त १९३५ } भाग ३६, खंड २ संख्या २, पूर्ण संख्या ४२८ { श्रावण १९९२

आकांक्षा

लेखक, श्रीयुत सुमित्रानन्दन पंत

झर पड़ता जीवन-डाली से
मैं पतझड़ का-सा जीर्ण-पात !—
केवल, केवल जग-कानन में
लाने फिर से मधु का प्रभात !

मधु का प्रभात !—लद-लद जातीं
वैभव से जग की डाल-डाल,
कलि-कलि, किसलय में जल उठती
सुन्दरता की स्वर्गीय-ज्वाल !

नव मधु-प्रभात !—गूँजते मधुर
उर-उर में फिर आशाऽभिलाष,
सुख-सौरभ, जीवन-कलरव से
भर जाता सूना महाकाश !

आ: मधु-प्रभात ! जग के तम में
भरती चेतना अमर प्रकाश,
मुरझाये मानस-मुकुलों में
पाती नव मानवता विकास !

मधु-प्रात !—मुक्त नभ में सस्मित
नाचती धरित्री मुक्त-पाश,
रवि-शशि केवल साक्षी होते
अविराम प्रेम करता प्रकाश !

मैं झरता जीवन-डाली से
साह्लाद, शिशिर का शीर्ण-पात,
फिर से जगती के कानन में
आ जाता नव मधु का प्रभात !

स्वराज्य क्या है ?

भाई जी हिन्दुओं के एक परम आदरणीय नेता हैं। कांग्रेस से आपका मतभेद है और उस मतभेद को आपने सदैव ज़ोर के साथ प्रकट किया है। स्वराज्य किसे कहते हैं ? इस प्रश्न का आप कांग्रेस से भिन्न उत्तर रखते हैं। इस लेख में आपने अपने उसी भिन्न दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है।

लेखक, श्रीयुत भाई परमानंद, एम० ए०, एम० एल० ए०

'स्वराज्य'-शब्द ऐसा आम हो गया है कि हमको कभी खयाल भी नहीं आता कि ज़रा इसका वास्तविक अर्थ समझने का प्रयत्न करें। इस समय यदि किसी बच्चे से भी पूछा जाय तो वह कह देगा कि हम स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं। उसने अपने मन में स्वराज्य का कोई-न-कोई चित्र भी जरूर बना रक्खा होगा। परन्तु वह चित्र कोई हक़ीक़त रखता है या सिर्फ़ खयाल है, यह बात वह बच्चा नहीं जानता। पाठक यह सुन कर हैरान हो जायँगे अगर मैं यह कह दूँ कि कांग्रेस और हिन्दू-महासभा के बीच में भेद या ग़लतफ़हमी का कारण ही यह है कि यद्यपि दोनों स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं, तथापि वास्तव में वे स्वराज्य को एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न समझते हैं। यदि आज हम इस बात का फ़ैसला कर लें कि स्वराज्य किसे कहते हैं तो हमारे बहुत-से पारस्परिक मतभेद तुरन्त दूर हो जायँ।



'स्वराज्य' का शाब्दिक अर्थ 'अपना राज्य' या 'सेल्फ़-गवर्नमेंट' है। राज्य-शब्द के प्रयोग में भी बहुत मतभेद हो सकता है। एक मनुष्य 'राज्य' का अर्थ राजसत्तात्मक गवर्नमेंट करता है तो दूसरा इसका अर्थ प्रजासत्तात्मक गवर्नमेंट समझता है। एक भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत रहते हुए 'सेल्फ़-गवर्नमेंट' को स्वराज्य कह देता है तो दूसरा इसके अर्थ ब्रिटिश गवर्नमेंट से स्वतंत्र होना समझता है। विधायक रूप के संबंध में इस प्रकार के भेद-भाव हमारे दर्मियान हो सकते हैं, परन्तु जिस भेद को मैं यहाँ प्रकट करना चाहता हूँ वह स्वराज्य-शब्द के पहले भाग 'स्व' के सम्बन्ध में है।

'स्व' का अर्थ 'अपना' या 'सेल्फ़' है। परन्तु तुरन्त ही यह प्रश्न उठता है कि 'अपना'-शब्द में हम किसको सम्मिलित करते हैं। हमारे कुछ भाई तो यह कह देंगे कि इस प्रश्न के हल करने में दिक़्क़त ही क्या है; 'अपना'-शब्द में वे सब लोग शामिल हैं जो इस देश में रहते हैं। परन्तु मैं इस प्रश्न को इतना आसान नहीं समझता। मैं यह पूछूँगा कि अगर इँग्लेंड की गवर्नमेंट यहाँ भारत में कोई ऐसा वाइसराय भेज दे जो यहाँ आकर हमेशा के लिए आबाद हो जाय और अपने शासन के रक्षार्थ समय समय पर इँग्लेंड से अपने आदमियों को बुलाता रहे तो क्या वह राज्य हमारे लिए 'स्वराज्य' होगा या नहीं ? कुछ सज्जन कह देंगे कि

यह तो काल्पनिक बात है। मैं यह बताना चाहता हूँ कि यह बात काल्पनिक नहीं है। इस देश में मुग़लों का राज्य था। मुग़लों से पहले अन्य कई मुसलमान-वंशों की हुकूमत रही। वे शासक और उनके सिपाही जिनको वे साथ लाये थे, इस देश के निवासी बन गये। क्या उस युग के हिन्दुओं ने उस राज्य को अपना राज्य समझा या ग़ैरों का ? अगर उन्होंने उसे ग़ैरों का समझा तो क्या वे ग़लती पर थे या जिन लोगों ने उन विदेशी शासकों को अपना समझा वे सचाई पर थे ?

इस बात को स्पष्ट करने के लिए हमें समझ लेना चाहिए कि स्वराज्य लेने के दो विभिन्न तरीक़े हैं। एक तो यह कि हम राज्य की शकल को बदल दें और दूसरा यह कि हम अपनी शकल को बदल लें। इस देश पर जब मुसलमानों ने आक्रमण किये और स्थान-स्थान पर अपना शासन क़ायम करने का प्रयत्न किया तब भारत की हिन्दू-आबादी में दो प्रकार के मनुष्य पाये जाते थे। एक वे थे जिन्होंने यह समझा कि उनके लिए स्वराज्य लेना बहुत मामूली बात है। उन्होंने अपना धर्म छोड़ दिया, अपने पूर्वजों को तिलांजलि दे दी, अपनी जातीयता को त्याग दिया और इस्लामी मज़हब इख़्तियार कर लिया। मुसलमान होते ही वे इस्लामी राज्य को अपना राज्य समझने लगे। उनके लिए स्वराज्य लेने का तरीक़ा बहुत आसान था। केवल 'स्व' को बदल लेने से, बिना किसी प्रकार का बलिदान किये, बिना किसी चरित्र के, बग़ैर किसी मेहनत के उन्होंने स्वराज्य प्राप्त कर लिया। उस समय जितने लोग स्वधर्म तथा स्वजाति को छोड़कर मुसलमान बन गये वे महमूद ग़ज़नवी और तैमूर को अपना भाई समझने लगे और नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के हिन्दुओं पर किये गये अत्याचार उन्हें हर्ष एवं गर्व प्रदान करनेवाले कार्य दिखलाई पड़ने लगे। और, आज उन लोगों के वंश के जितने मुसलमान भारत में आबाद हैं उन सबके लिए इस्लामी शासन स्वराज्य हो गया है। भारत के इतिहास के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण ही बदल गया है। स्वराज्य-प्राप्ति का यह एक निहायत आसान तरीक़ा है।

एक अन्य तरीक़ा था जिससे दूसरे लोगों ने स्वराज्य प्राप्त करने का प्रयत्न किया। उसका एक उदाहरण हमें राजपूतों के इतिहास में मिलता है। उसका दूसरा उदाहरण हमें महाराज शिवाजी और मराठों के उत्कर्ष में मिलता है। उसका एक और उदाहरण हमें गुरु गोविंदसिंह, वीर वैरागी और सिक्ख-साम्राज्य में मिलता है। राजपूतों, मराठों और सिक्खों ने भी स्वराज्य प्राप्त किया। स्वराज्य-प्राप्ति का इनका तरीक़ा पहले तरीक़े से सर्वथा विरुद्ध था। इन्होंने बड़े भारी बलिदान किये, बड़ी-बड़ी यातनायें उठाईं, अपने कुटुम्बियों एवं महिलाओं तक को क़त्ल करवा दिया। इस प्रकार इन्होंने अपनी गिरी हुई जाति के अंदर सच्चरित्र उत्पन्न किया और नवजीवन संचार किया। यह उसी नये जीवन की बदौलत था कि महाराष्ट्र के मामूली देहातियों ने और पंजाब के ग्रामीणों ने अपने-अपने साम्राज्य बना लिये। परन्तु स्वराज्य-प्राप्ति का यह तरीक़ा इस लेख के विचार के बाहर की बात है।

ख़ैर, इन लोगों ने 'स्व' का अर्थ बिलकुल दूसरा समझा। इनके 'स्व' या 'सेल्फ़' और उनके 'स्व' या 'सेल्फ़' में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है। थोड़ी देर विचार करने से मालूम होगा कि वे लोग मिस्रियों और ईरानियों के समान थे जिन्होंने अपनी जातीयता का नाम मिटा दिया और अपने आपको एक विदेशी जाति के अंदर जज़्ब करवा दिया। नस्ल और ख़ून, जाति और रक्त की जो अखंडता हज़ारों सालों से उनकी रगों में चली आती थी उसे उन्होंने मिटा दिया और अपनी कायरता या पतन के कारण कुछ से कुछ बन गये। यह अखंडता जातीयता है; यही जाति का जीवन और उसकी आत्मा है। जो लोग इस अखंडता को मिटाकर दूसरे तरीक़े से स्वराज्य

प्राप्त करना चाहते हैं उनका स्वराज्य गर्हणीय है। उनके स्वराज्य की अपेक्षा मृत्यु हज़ार दर्जे बेहतर है।

वर्तमान काल में हमारे सामने स्वराज्य की वही दोनों शक्लें विद्यमान हैं। हमारे कांग्रेसी भाई हैं जो इस जातीय अखंडता को इसलिए मिटा देना चाहते हैं कि उन्हें स्वराज्य प्राप्त हो जाय। वे कहते हैं कि भारत के पुराने इतिहास को भुला दो; महाराज शिवाजी, महाराना प्रताप, गुरु गोविंदसिंह और वीर बैरागी को भूल जाओ, क्योंकि उनको जातीयता का ठीक ज्ञान न था। आज हमको जातीयता का ठीक-ठीक ज्ञान है; न हमें हिन्दूत्व की परवा है, न हिन्दू-इतिहास की; हम तो स्वराज्य लेना चाहते हैं। हमने एक नई जातीयता ढूँढ़ निकाली है, जिसमें पिछला सारा ज़माना मिट जायगा और इस देश में एक नई जातीयता उत्पन्न होगी। मैं इस 'थियरी' या कल्पना को बिलकुल ग़लत समझता हूँ। यह उन लोगों का-सा ख़याल है जिन्होंने मुग़लों के समय में बड़ी आसानी के साथ स्वराज्य लेना चाहा। उन्होंने अपना 'स्व' बदल लिया। हमारे ये भाई भी अपना 'सेल्फ़' मिटा देना चाहते हैं। मैं ऐसे स्वराज्य को धिक्कार देता हूँ। अगर हमें इसी तरीक़े से स्वराज्य लेना है तो इससे भी ज्यादा एक और आसान तरीक़ा है। हम सब अपना धर्म छोड़कर ईसाई बन जायँ। हमारा 'स्व' इँग्लेंड के लोगों का 'सेल्फ़' हो जायगा और हम स्वतन्त्र हो जायँगे। यह बात कि इससे हमें वास्तविक स्वतन्त्रता मिलेगी या नहीं, सर्वथा असंगत है। सवाल तो सिर्फ़ समझने का है। हम अपने 'स्व' को मिटाकर उसे इँग्लेंड के 'स्व' में जज़्ब करवा देंगे तो इँग्लेंड का राज्य हमारे लिए स्वराज्य का समानार्थक हो जायगा।

एक अन्य युक्ति जो मैं इस 'थियरी' या कल्पना के विरुद्ध देना चाहता हूँ वह यह है कि हम हिन्दू अपने आपको चाहे कितना ही भुला दें और नई जातीयता की ख़ातिर हिन्दू-जातीयता को मिटा दें, पर पिछला सारा अनुभव हमें यही बतलाता है कि मुसलमान लोग कांग्रेस की इस थियरी को मानने के लिए बिलकुल तैयार नहीं हैं। वे किसी भी अवस्था में न इस्लाम को भुलायँगे और न नई जातीयता को ग्रहण करेंगे। इसलिए कांग्रेस की यह थियरी जहाँ तर्क की दृष्टि से बिलकुल ग़लत है, वहाँ क्रियात्मक दृष्टि से भी सर्वथा असंभाव्य है।

ज्योतिर्धारा

लेखक, श्रीयुत आरसीप्रसादसिंह

जीवन की ज्योतिर्धारा—
कहाँ रुकेगा आज कहो तो
हिम का प्रखर स्रोत प्यारा?
महाकाश के नील नीड में
सिहरा क्यों यह विश्व-विहङ्गम?
किरणों की स्वर्णाभ शलाका
भेद चली तम का अन्तर्तम!
जीवन की ज्योतिर्धारा—
यह किसके ललाट पर चमका
प्राची का प्रभात-तारा?
जागे पद्म-मुकुल-मानस में
सुख-मधु-नैश-जागरित अलिगण;
प्रतिगुंजित पल्लव-पल्लव पर
स्फीत भावनाओं का शिंजन!
जीवन की ज्योतिर्धारा—
भर जाने दे तनिक रश्मियों
से मेरी तमसा-द्वारा!
मंगलमय यह बेला, नीरव—
वातावरण, शान्त उपवन-वन;
द्रुम-द्रुम पर, उत्पल-उत्पल पर
छाई सफल कामना उन्मन!
जीवन की ज्योतिर्धारा—
संचित कर दे नव कलियों में
अपना स्नेह-पुलक सारा!

जापान के रास्ते में



सरस्वती के विद्वान् लेखक श्रीमान् राहुल सांकृत्यायन जी इस बार जापान गये हैं। आपने संस्कृत के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का तिब्बती-अनुवाद से उद्धार किया है। उसके उपोद्घात लिखने की सामग्री प्राप्त करने के लिए ही आपने सुप्राच्य की यह लम्बी यात्रा की है। इस लेख में आपने अपने शंघाई पहुँचने का हाल लिखा है और यह भी बताया है कि चीन की राष्ट्रीय सरकार का और चीन बोल्शेविकों का कैसा संघर्ष हो रहा है।

शाङ्-घाई

अन्योमारू

२ ५-३५

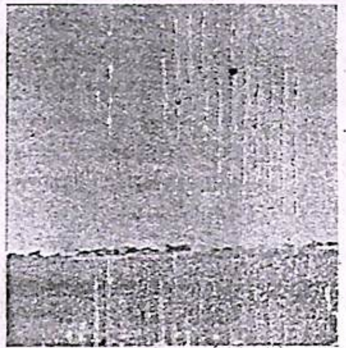
२८ अप्रेल को उठकर केबिन के छिद्र से देखा। आसमान में कुहरा छाया हुआ था। कहाँ मई का महीना और कहाँ कुहरा! प्रायः दिन भर कुहरा ही रहा। जहाज़ हर दस दस मिनट पर इसलिए भोंपू बजाता था कि अँधेरे से आकर कोई जहाज़ टकरा न जाय। आवाज़ अच्छी नहीं मालूम होती थी। मालूम होता था, जंगल में कोई भैंस अकेली पड़ गई है और चिल्ला रही है।

२९ तारीख़ को दोपहर को हम २६° अक्षांश में जा रहे थे, अर्थात् प्रायः बनारस के बराबर के। उस वक्त बनारस में कैसी गर्मी पड़ती होगी, दोपहर को घर से बाहर निकलना कितना मुश्किल होता होगा, यह तो वहाँ के रहनेवाले ही जानते होंगे। यहाँ दोपहर को भी टेम्परेचर सिर्फ़ ६३ डिग्री था। मालूम होता था, गर्मी का मौसिम है ही नहीं। मुझे तो रह रह कर भ्रम हो जाता था कि हम दक्षिणी गोलार्द्ध के २६° अक्षांश में तो नहीं जा रहे हैं।

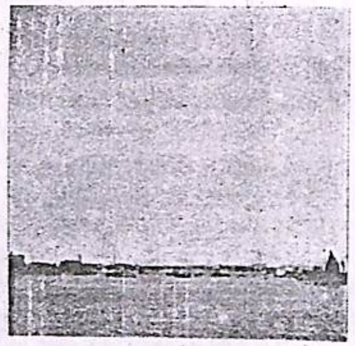
३० तारीख़ को सर्दी और अधिक बढ़ गई। डेक पर जाने पर मालूम होता था, हम बनारस के माघ-पूस में हैं। आज १२ बजे हमारा जहाज़ याङ्-सी महानद और सागर के संगम पर पहुँचा। याङ्-सी की महाजल-राशि ने समुद्र के जल को अपना रंग दे रक्खा है। आज हमें रास्ते में बहुत-से द्वीप मिले। सभी थे पहाड़ी। दाहनी ओर के द्वीप की खाड़ी में सैकड़ों मछुआ नौकायें थीं। बाईं ओर दूर, पीछे की ओर हटकर, समुद्र में एक पहाड़ दिखाई पड़ रहा था। हमारे आस्ट्रियन साथी हर हन्कल बतला रहे थे कि वह रमणीय द्वीप बौद्ध-मठों से भरा है और उसका नाम 'पोतो' है। ल्हासा में भी मैंने सुना था कि चीन में भी पोतला-नाम का एक द्वीप है, जिस पर बहुत-से मठ और मन्दिर हैं, और जो बहुत हरा-भरा है। शायद वह यही पोतो-द्वीप होगा।

पानी सभी जगह एक-सा न था। कहीं उथला पानी न आ जाय और जहाज़ वहीं फँस जाय, इसलिए अन्योमारू देर तक मार्गदर्शक स्टीमर की प्रतीक्षा करता रहा। कुछ दूर तक याङ्-सी में चलने के बाद वह बाईं ओर से आनेवाली वाङ्-पू नदी में

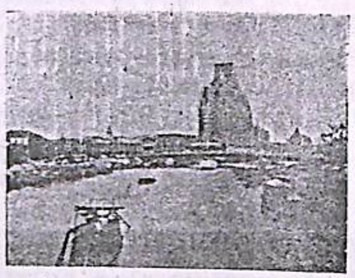
लेखक, श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन



[शाङ्-घाई जापान द्वारा ध्वस्त नगर में खेती]



[शाङ्-घाई नदी और नौकायें]



[शाङ्-घाई नदी और सासून बिल्डिङ्ग्स]

मुड़ा। यह नदी छोटी है। शाङ्-घाई इसी नदी के तट पर बसा हुआ है। यद्यपि जहाज़ अँधेरा होते ही शाङ्-घाई पहुँच गया था, तो भी उस वक़्त हम क्या देखते? और फिर यह चीन है। शाङ्-घाई के विदेशी अधिकृत भाग से भी तो डाकू आदमियों को पकड़ ले जाते हैं। हमारा प्रूफ़ देखना समाप्त हो गया था। हमने उसके और यात्रा के प्रथम खंड का पार्सल बना लिया। चिट्ठियाँ भी तैयार कर रक्खीं।

१ ली मई को बड़ा-नाश्ता साढ़े सात बजे मिल गया। एन० वाई० के० जापान की सबसे बड़ी जहाज़ी कम्पनी है। इसके जहाज़ सातों समुद्रों में बराबर घूमा करते हैं। यहाँ शाङ्-घाई में नदी के दोनों तरफ़ इसके कितने ही बड़े बड़े गोदाम हैं। उस वक़्त हमारा जहाज़ नदी के दाहने तट पर खड़ा था। इस तरफ़ भी कुछ बस्ती है, किन्तु असली शहर नदी के बायें तट पर है। यहाँ कपड़ा बुनने के कई जापानी कारखाने हैं। अन्योमारू बम्बई से हज़ारों गाँठें रुई लाया था। वह धड़-धड़ उतारी जा रही थीं। नौ बजे हमें पार जाने की मोटर-नौका मिली। नदी बहुत चौड़ी नहीं है। कलकत्ते की भागीरथी से आधी होगी। लेकिन जहाज़ों, अगिनबोटों, मोटर-नौकाओं तथा नावों और डोंगियों की भरमार है। यहाँ डालर-लाइन का पैसेंजर-जहाज़ खड़ा है और वहाँ फ्रेंच मेसाजिरी मारीतीम का विशाल जहाज़। परले पार सफ़ेद जापानी गन-बोट तोपों से सुसज्जित खड़े हैं। पार के घरों के शिखर गगन-चुम्बन कर रहे थे—विशेषकर सासून बिल्डिंग। यह बीस मंज़िला मकान इस ओर पूर्व का सबसे ऊँचा मकान समझा जाता है। यह उसी यहूदी सासून-खानदान का मकान है जिसकी कितनी ही कपड़े की मिलें बम्बई में चल रही हैं। हम लोग चुंगीवाली जेटी पर गये।

शाङ्-घाई शहर तीन भागों में बँटा है—इन्टर्नेशनल-कन्सेशन, फ्रेंच-कन्सेशन और बृहत्तर शाङ्-घाई। पहला भाग अँगरेज़ों ने १८४२ ईसवी में लिया था। उस समय शाङ्-घाई एक छोटा-सा ग्राम था। पीछे फ्रांसवालों और अमेरिकनों तथा दूसरी जातियों को भी हिस्से मिले।



[शाङ्-घाई—चीनी सर्कार का भवन]



[शाङ्-घाई की सड़क]

बाद में फ्रांसवालों को छोड़ बाक़ी ने अपने हिस्से एक में कर दिये और उसका 'इन्टर्नेशनल-कन्सेशन' नाम रक्खा। तो भी इस भाग पर अँगरेज़ों का ही सबसे अधिक प्रभाव है। इसका एक प्रमाण यह है कि हाङ्-काङ् की तरह यहाँ भी सड़कों के चौराहों पर सिक्ख कान्स्टेबुल ही रास्ते की व्यवस्था करते हैं। बृहत्तर शाङ्-घाई खास चीनी नगर है। सन् १९३२ में जापान की तोपों ने यहीं प्रलयकाण्ड मचाया था।

हमारे सामने की सड़क पर सैकड़ों मोटर और रिक्शा खड़े थे। बैजनाथ के पंडों की भाँति उन्होंने हमें घेर लिया। एक टैक्सीवाला तीन डालर घंटे के हिसाब से शहर दिखलाने के लिए तैयार था। एक डालर आजकल प्रायः अठारह आने का है। लेकिन हमें पहले डाकखाने से निपटना था। पास में ही 'नार्थ-चाइना-डेली-न्यूज़' की विशाल इमारत थी। हाङ्-काङ् के बाद समाचार-पत्र पढ़ने को नहीं मिला था और चीन के सम्बन्ध में कुछ साहित्य भी लेना था, इसलिए हम पहले वहाँ गये। इसका साप्ताहिक 'नार्थ-चाइना-हेरल्ड' के नाम से निकलता है। दो संख्यायें साप्ताहिक और एक दैनिक की लीं। चीन-संबंधी कोई अच्छा साहित्य नहीं मिला। रास्ते में एक सरदार साहब से बड़े डाकखाने का रास्ता पूछा। उन्होंने बड़ी नम्रता के साथ बतलाया। डाकखाना दो घुमावों के बाद था। यह मुहल्ला ख़ास कर बड़ी बड़ी योरपीय कम्पनियों का है। आलीशान मकानों में चीज़ें ख़ूब सजाकर रक्खी गई हैं। ख़ैर, घूम-घाम कर हम वहाँ पहुँचे। तीन पार्सल और छः चिट्ठियाँ डालीं। (हाङ्-काङ् से भी कोई चिट्ठी नहीं डाली थी)। वहीं एक सरदार साहब से भेंट हो गई। उन्होंने ३ डालर घंटे पर टैक्सी कर देने को कहा। हमने पहले समझा, शायद कोई हिन्दुस्तानी ड्राइवर होगा। लेकिन टैक्सी के अड्डे पर जाने पर मालूम हुआ, चीनी है और अँगरेज़ी के दो-एक शब्द ही जानता है। पास में ही एक हिन्दुस्तानी होटल था, जहाँ हमने खाना खाने के लिए कहला दिया।

दस बजे हम शहर देखने चले। दो घंटे में सब देख लेने का निश्चय हुआ। तीन लाख की आबादी (कलकत्ता और बम्बई दोनों मिलाकर भी उतने नहीं) का शहर क्या दो घंटे में देखा जा सकता है? पहले हमारी टैक्सी बृहत्तर शाङ्-घाई (चापइ) की ओर चली। रास्ते में जापानी अड्डा मिला। सैनिक मोटर (आर्मर्डकार) तोपों के साथ तैयार खड़े थे। कुछ ही आगे म्युनिसिपल बाग़ है। भीतर जाने के लिए कुछ सेंट देने पड़ते हैं। भीतर गये। अधिक मैदान और कुछ वृक्ष हैं। उस वक़्त बंदूक़ लिये हुए चीनी सिपाही लुकाछिपी खेल रहे थे। चीनी सिपाहियों और उनके जनरलों के बारे में बाद में

कहेंगे। यहाँ इतना ही कहना है कि यद्यपि देखने में वे मोटे-ताज़े मालूम होते थे, किन्तु कपड़ों के पहनावे और दौड़ने से तो महादेव बाबा की बरातियों से कुछ ही आगे मालूम होते थे।

थोड़ा ही आगे जाने पर खेत आ गये। हरे गेहूँ लहरा रहे थे। होला खाने के लिए मन हो आया था। यहाँ जहाँ-तहाँ जापानी तोपों का लंकाकांड दिखलाई पड़ रहा था। किसी मकान की आधी दीवार खड़ी है, किसी के जँगले और दरवाज़े टूट-फूट गये हैं, किसी के सामने से देखने से बहुत कम नुक़सान मालूम होता है, लेकिन छत गिर गई है। ध्वस्त मकानों में कहीं-कहीं जली लकड़ियों का कोना भी दीवार में लगा दिखाई दे रहा था। आगे चीन की राष्ट्रीय सरकार की कुछ इमारतें थीं। दूर हरे खपरैल की चीनी ढङ्ग की एक विशाल इमारत थी। हमारी टैक्सी वहाँ पहुँची। छत और सामने की दीवारें दोनों ही चीनी शिल्प-कला के आधुनिक नमूने हैं। कितने ही पुलिस और फ़ौजी सिपाही दिखाई पड़े। दर्शकों को भीतर जाने की इजाज़त न थी। होनी भी नहीं चाहिए। कहीं आफ़िस भी अजायबघर होते हैं! एक फ़ोटो लिया और फिर लौट पड़े। इस उजड़ी भूमि में राष्ट्रीय सरकार सड़कें बनवा रही है। एक जगह नये शहर की स्कीम का नक़शा भी देखा। बड़ा भारी आयोजन है। अब फिर हमें जले और टूटे मकान मिलने लगे। बहुत-से मकानों को लोगों ने फिर से बनवा लिया है और बहुत-से वैसे ही खड़े हैं। एक सीमेंट की दीवार-वाले ऊँचे मकान को सूना खड़ा देखा। मालूम होता है, मकान कुछ ही समय पूर्व बन कर तैयार हुआ था। गोलों के जगह जगह पर निशान थे। छत जहाँ-तहाँ टूट गई थी। मालूम होता है, मालिक के पास फिर से बनाने के लिए रुपया नहीं रह गया।

फिर घनी बस्ती मिली, 'इन्टर्नेशनल-कन्सेशन' में आये। यहाँ सिक्ख पुलिसमैन मिले। मोटरों और राह-गीरों के चलने की व्यवस्था करने के लिए यहाँ यंत्र-संचालित हरी, लाल रोशनियाँ थीं। चीनी मुहल्ले में हाङ्-काङ् की भाँति विज्ञापनों और साइनबोर्डों की रंग-विरंगी सजावट थी। शाङ्-घाई के चीनी लोगों में बिगड़े हुए पाश्चात्य फ़ैशन का ख़ूब प्रचार है, विशेषकर मध्यम श्रेणी के लोगों में। अधिकांश स्त्रियाँ बाल कटाये मिलेंगी। मक्के के भूये की भाँति रूखे एक एक बीता लम्बे उनके बाल गर्दन पर दूर तक बिखरे हुए थे, जो बहुत ही बीभत्स-सा मालूम होते थे। वे टोपी नहीं पहनतीं हैं, नहीं तो शायद वे इतना बीभत्स न मालूम पड़तीं। ऊपर से पैर तक लम्बा बिना कमरबन्द का उनका जातीय अँगरखा रही-सही कमी को पूरी कर देता है। यदि किसी ने बिना मोज़े का हाफ़पैंट पहन लिया तो फिर पूछना ही क्या? और ऐसों की संख्या यहाँ काफ़ी है (यद्यपि हाङ्-काङ् जैसी नहीं, क्योंकि शाङ्-घाई में अभी काफ़ी जाड़ा है) इसके विरुद्ध आप शाङ्-घाई की जापानी स्त्रियों को देखिए (यहाँ १८,८०० जापानी बसते हैं)। उनका सुन्दर कमर-पट्टी से बँधा कियोनो और केशों की सजा बिलकुल ही दूसरे तरह की है।

पीछे हम 'फ़्रेंच कन्सेशन' में गये। सब पास ही पास हैं। फ़्रेंच और इन्टर्नेशनल-कन्सेशनों में कोई फ़र्क़ नहीं है।

१२ बजे से कुछ पहले ही हम हिन्दुस्तानी भोजनालय में पहुँच गये। पंजाब की प्यारी माह (उड़द) की दाल, एक तरकारी, चपाती, चावल और मांस तैयार था। भोजन हुआ। एक गिलास दही की लस्सी पीने को मिली। भोजनालय के बारे में पता लगा कि इसे कई आदमी मिल कर चलाते थे। आपस में झगड़ा हो गया। मामला अदालत में जाना चाहता था। परन्तु हाल में हिन्दुस्तानियों के एक मुक़द्दमे में जज ने बड़ी कड़ी टिप्पणी की थी, इसलिए आपस में समझौता करने के लिए हिसाब-किताब तैयार हो रहा है। झगड़े से पहले, कहते हैं, डेढ़ सौ डालर तक की रोज़ बिक्री हो जाया करती थी। हिन्दुस्तानियों की संख्या शाङ्-घाई में दो हज़ार से ज़्यादा है।

छः आदमी के भोजन पर साढ़े चार डालर (५ रुपये से अधिक) खर्च हुए। फिर हम लोग जहाज़-घाट की ओर चले। चीनी चित्रों की आज-कल यहाँ एक प्रदर्शिनी हो

रही थी। हमारे पास घंटा भर का समय था। साथी लोग चित्र देखने गये, और हम जेटी पर जा अख़बार पढ़ने लगे। मोटर-नौका के आने में अभी कुछ देर थी।

राष्ट्रीय सरकार के प्रधान जनरल चाङ्-कै-शक ने साम्यवादियों के प्रति जहाद बोल रक्खी है। आज-कल अख़बारों को सबसे अधिक सामग्री उसी से मिल रही है।

१६४४ ईसवी में (अर्थात् अकबर के मरने से ३६ वर्ष बाद शाहजहाँ के समकाल में) चीन में छिन या मंचू-वंश का राज्य* स्थापित हुआ। तब से १९११ ईसवी तक मंचू-वंश का शासन चीन पर रहा। योरपियों से बार-बार हारने तथा नई शिक्षा के प्रचार से चीन के नवयुवकों में नई इच्छा और नई लहर पैदा हुई। अन्त में १९११ ईसवी में मंचूवंश का अन्त करके चीन में प्रजातन्त्र की स्थापना की गई। किन्तु साधारण जनता में न वैसा ख़याल था और न उतनी जाग्रति। अब प्रजातन्त्र की ओर से या पहले से नियुक्त गवर्नर मनमानी करने लगे। उनके लिए चीनी प्रजातन्त्र का कोई अस्तित्व न था। प्रजा का रक्त चूस-चूस कर अपनी थैली भरना तथा पल्टनों का संग्रह करके आपस में लड़ते रहना, बस इतना ही काम था। जहाँ किसी ने अपने भाग्य को पल्टा खाते देखा कि वह भाग कर शाङ्-घाई चला आया, जहाँ घर और बैङ्क में रुपये का वह पहले से ही प्रबन्ध किये रहता है। डाक्टर सुन-यात्-सेन चीनी प्रजातन्त्र के जन्मदाता कहे जाते हैं। लेकिन प्रजातन्त्र स्थापित होने पर उसकी बागडोर यु-आन शिकाई के हाथ में चली गई। यु-आन्-शिकाई ने महायुद्ध के समय अपने को सम्राट् भी उद्घोषित किया; किन्तु वह कुछ ही महीनों में मर गया। उस समय सुन-यात्-सेन् ने दक्षिण में कान्टन में अपना पैर मज़बूत किया था। लड़ाई के बाद और गृह-युद्ध के समाप्त हो जाने पर सुन्-यात्-सेन् और रूसी सोवियट सरकार की मैत्री स्थापित हो गई। रूसी विशेषज्ञ दिल खोल कर चीन को मदद देने लगे और कुछ ही समय में सुन्-यात्-सेन् के पक्ष की कू-मिङ्-ताङ् की सेना उत्तर की ओर बढ़ने लगी। चाङ्-कै-शक् डाक्टर सुन्-यात्-सेन् के साले हैं। इस रिश्ते ने उन्हें आगे बढ़ने में बहुत मदद दी। उन्होंने रूसी विशेषज्ञों से भी बहुत सीखा। फलतः सुन-यात्-सेन् के मरने के बाद चाङ्-कै-शक् ही कू-मिङ्-ताङ् के प्रभावशाली सेनापति हो गये। जब तक उन्हें ज़रूरत थी, उन्होंने कुछ नहीं किया। किन्तु जब देखा कि कू-मिङ्-ताङ्-दल में साम्यवादियों का प्रभाव बढ़ रहा है तब उनके ख़िलाफ़ जेहाद बोल दी। अकेले कान्टन में ही बीस हज़ार साम्यवादी बड़ी निर्दयता से मारे गये। यदि किसी तरुण के पास साम्यवादी साहित्य का एक पन्ना भी निकल आता था तो गोली से उड़ा देने के लिए वही प्रमाण काफ़ी समझा जाता था। यह बात १९२७ की है। उस समय कितने ही साम्यवादी चीन के भीतरी भाग क्याङ्-सी आदि में भाग गये। वहाँ उन्होंने धीरे धीरे अपना प्रभाव बढ़ाकर 'चीनी' सोवियट सरकार की स्थापना की। चाङ्-कै-शक् उनका जानी दुश्मन था। चाङ् ने दो बार उन पर हमला किया, किन्तु सफलता नहीं

* चीन का ऐतिहासिक राजवंश इस प्रकार है—

चिन	२५५ ई० पू० - २०६ ई० पू०
हान (पश्चिमी)	२०६ ई० पू० -- २५ ई०
हान (पूर्वी	२५ ई० २२१ ई०
तीन क्षुद्र राज्य	२२१ ई०—२६५ ई०
चिन (पश्चिमी)	२६५ ई० - ३१७ ई०
चिन (पूर्वी)	३१७ ई०—४२० ई०
उत्तर-दक्षिण-विभाग	४२० ई० - ५८९ "
सुई	५८९ ई०—६१८ "
थाङ्	६१८ ई०—९०७ "
पाँच वंश	९०७ ई० - ९६० "
ल्याउ	९०७ ई०—११२५ "
ल्याउ (पश्चिमी)	११५२ ई० - ११६८ "
चिन (काँचन तातार)	१११५ ई०—१२६० "
सुङ्	९६० ई०—११२७ "
सुङ् (दक्षिणी)	११२७ ई०—१२८० "
युआन् (मंगोल)	१२८० ई० १३६८ "
मिङ्	१३६८ ई० १६४४ "
छिन् (मंचू)	१६४४ ई० १९११ "

मिली। इस बीच में चीनी सोवियट ने अपना प्रभाव और अधिक बढ़ा लिया, तो भी उसके मार्ग में अनेक बाधायें थीं। कोई भी बंदरगाह हाथ में न रहने से समुद्र-द्वारा चीनी साम्यवादी बाहरी देशों से सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकते थे। स्थल-मार्ग से भी उनका रूस के साथ कोई सम्बन्ध न था। इस प्रकार अस्त्र-शस्त्र तथा दूसरी मशीनें या तेल आदि आवश्यक सामग्री वे मँगा नहीं सकते थे। उन्होंने अनेक बार समुद्र तक पहुँचने की कोशिश की, किन्तु उनके इस काम में नानकिङ्-सरकार (चीनी राष्ट्रीय सरकार, चाङ्-कै-शक् जिसके सर्वेसर्वा हैं) ही नहीं, विदेशी शक्तियाँ भी बाधक थीं। फलतः विदेशी गनबोटों के मारे उन्हें फिर पीछे हट जाना पड़ा। उस समय इन साम्यवादियों को अस्त्र-शस्त्र मिलने का एक ही रास्ता था, और वह था नानकिङ्-सरकार की बाग़ी सेना का उनकी ओर मिल जाना और यह अक्सर हुआ भी। इसी प्रकार नानकिङ्-सरकार के पाँच हवाई जहाज़ भी उनकी ओर चले गये, किन्तु एक बार का भरा पेट्रोल सदा तो नहीं चल सकता था, और न टूटे-फूटे पुर्ज़े ही वहाँ मिल सकते थे, इसलिए वर्तमान लड़ाई में उनका कोई उपयोग न हो सका। चाङ्-कै-शक् ने १९३२ वाले जापानी आक्रमण में तो ऐसी चुप्पी साधी कि उनके होने में भी सन्देह मालूम होता था। किन्तु जापान के अपना काम खत्म कर लेने पर उन्होंने फिर साम्यवादियों की ओर मुँह किया। उन्होंने पिछले अनुभवों से भले प्रकार जान लिया था कि स्थल-सेना पर वे पूरा विश्वास नहीं कर सकते। इसके लिए उन्होंने मध्यम श्रेणी के युवकों की हवाई सेना तैयार की। ५०० हवाई जहाज़ों का बेड़ा सुसज्जित कर फिर साम्यवादियों पर हल्ला बोल दिया गया। नान्किङ् की विशाल और साधनसम्पन्न स्थल-सेना तथा उससे अधिक विनाशक उसके हवाई जहाज़ों ने अब की खूब तैयार होकर चढ़ाई की। साम्यवादियों ने वीरता के साथ मुक़ाबिला किया, किन्तु कब तक। आखिर एक के बाद एक स्थान उनके हाथ से निकलता गया। नान्किङ् के कुछ सिपाही इस बार भी दूसरी ओर जा मिले; किन्तु हवाई जहाज़ों की मार और साम्यवादियों की हार उन्हें उस ओर अधिक उत्साहित नहीं कर सकी। चाङ्-कै-शक् ने पहले के युद्धों में देख लिया था कि साम्यवादियों को हराकर एक कोने से दूसरे कोने में भगा देने से कोई फल नहीं, क्योंकि वैसा करने में एक ओर तो नान-किङ् की भारी-भरकम सेना की शक्ति क्षीण हो जाती थी और साम्यवादी पीछे से लौटकर उन स्थानों को फिर अपने दखल में कर लेते थे। इसलिए चाङ् ने साम्यवादियों के छोड़े स्थानों पर जगह जगह ब्लाक्-हौस या फ़ौजी चौकियाँ टेलीफ़ोन और बेतार के साथ बैठानी शुरू कीं। यह अप्रेल का महीना चीनी साम्यवादियों के लिए बहुत हानिकारक सिद्ध हुआ। अप्रेल के पहले सप्ताह में चीनी सोवियट का प्रधान सेनापति चू-ते मारा गया। चू-ते, हो-लुङ् और सू-ची-सेन—चीनी सोवियट के ये तीन प्रधान स्तम्भ थे। चू-ते ने जर्मनी में शिक्षा पाई थी और वह साम्यवादियों का सर्वप्रिय नेता था। साम्यवादी सेना कितने ही दिनों तक अपने नेता के शव को लाल झंडे के साथ एक जगह से दूसरी जगह लेती फिरी। इसी महीने में उन्हें कई जगह हार खानी पड़ी और कितने ही और नेताओं से हाथ धोना पड़ा। अपने आदर्श के लिए प्राण की बाज़ी लगाना कितना आसान है, इसका उदाहरण है इन नेताओं में एक साम्यवादी नेता तु-चि-लुङ्। उसे विचार बदल देने के लिए बहुत प्रलोभन दिये गये, किन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। फलतः १२ अप्रेल को फू-चाव में उसे फाँसी दे दी गई।

इस वक्त नान्-किङ्-सरकार की सारी शक्ति साम्यवादियों का जड़मूल से विनाश करने पर लगी हुई है! अब वस्तुतः साम्यवादियों की अधिकृत भूमि बहुत-कुछ छिन चुकी है, और वे इधर से उधर खदेड़े जा रहे हैं। सरकार उनके साथ गोरीला युद्ध के लिए तैयार है; किन्तु यह काम उतना आसान नहीं है। इस वक्त 'चीनी सोवियट सेना' की संख्या पचास हज़ार बतलाई जाती है, जो तीन टुकड़ियों में बँटी हुई है। उसके एक बड़े भाग ने कन्-सू (तिब्बत और मंगोलिया के बीच का चीनी प्रान्त) में निकल जाने की कई बार कोशिश की, किन्तु उनका रास्ता रोक दिया गया क्योंकि

कन्-सू की सीमा बाहरी मंगोलिया से लगी हुई है, जो सोवियट शासन में है। वहाँ जाने पर उन्हें एक तो चीनी सरकार की सेनाओं से उतना भय न होता और दूसरे उन्हें सीमा के पार से लालसेना की मदद की आशा थी।

चाङ्-कै-शक् का इस वक्त चीन के धनियों और विदेशी व्यापारियों पर बहुत प्रभाव है। वे चीन के दूसरे जनरलों की भाँति अपने और अपने खानदान के लिए काफ़ी धन एकत्र कर चुके हैं। इसलिए उन्हें उसकी उतनी प्यास नहीं है। इस वक्त वे चाहते हैं कि साम्यवादी चीन से निकाल बाहर किये जायँ और चीनी राष्ट्र मज़बूत बनाया जाय। इसी लिए उन्होंने 'नवजीवन आन्दोलन' तथा 'राष्ट्रीय पुनर्रचना-आन्दोलन' चलाये हैं। चाङ्-कै-शक् के स्वभाव में गम्भीरता और स्थिरता कितनी है, यह तो इसी से सिद्ध है कि उन्होंने अपनी दूसरी शादी के लिए ईसाई बनना स्वीकार किया। यह कोई ज़्यादा दिन की बात नहीं है, सिर्फ़ एक डेढ़ वर्ष की है। और ऐसी अस्थिरता के साथ स्वार्थान्धता और अदूरदर्शिता बहुत अधिक मात्रा में उनके सहायकों में भी है। यही कारण है कि उक्त दोनों आन्दोलन तमाशा बनते जा रहे हैं। लाल-आन्दोलन के पोषक तो वस्तुतः भयंकर दरिद्रता में फँसकर ज़मींदारों-द्वारा सताये गये चीनी किसान हैं। जब तक उनकी अवस्था आर्थिक अवस्था के बेहतर बनाने का उपाय नहीं होता तब तक लाल-आन्दोलन के चीन से उठ जाने की आशा नहीं की जा सकती। चाङ्-कै-शक् की शक्ति यदि इतनी प्रबल न होती तो सारा चीन अब तक लाल हो जाता। सशस्त्र डाकुओं के बड़े-बड़े दल जो सकते हैं सैनिक गवर्नर बतला रहे हैं कि 'हनोह्'। यह वही पर्दा

...आवने पर ...ह और अन्य देश- ...के उस ओर पहुँचती ही ...चत् इस पर हमारे विचार करने का ...पत स्थान नहीं है कि जो भारतवासी ...ते हैं वह ठीक है या जो और देशवाले मानते हैं वह ठीक है। इसका वाद-विवाद निर्धारित पथ से हमें बहुत दूर हटा ले जायगा।

हम सब लोग जानते हैं कि तन्मात्राओं में 'रूप' का तृतीय स्थान है, और यह भी हम सब लोगों को मालूम है कि यह नेत्र ज्ञानेन्द्रिय का विषय है। नेत्र-द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है उसे 'रूप' कहते हैं। 'रूप' शब्द के अर्थ आकार और चिह्न इत्यादि हैं। "दर्शन-शास्त्र में रूप को चक्षु इन्द्रिय का विषय माना है। सांख्य ने इसे पञ्चतन्मात्राओं में एक माना है। बौद्ध-दर्शन में इसे पाँच स्कन्धों में पहला स्कन्ध कहा है। महाभारत में सोलह प्रकार के रूप माने गये हैं—जैसे, ह्रस्व, दीर्घ, स्थूल, चतुरस्र, वृत्त, शुक्ल, कृष्ण, नीलारुण, रक्त, पीत, कठिन, चिक्कण, श्लक्ष्ण, पिच्छिल,

...आविर्भूत होता है और जिस ...आत्मायें बन जाती हैं। 'स्पेक्ट्रम' ...-भाषा का है, जिसका अर्थ उस भाषा में आकार या प्रतिमा है। जो अब खोज करके जाना गया है या जाना जा रहा है वह हमारे विद्वान् बहुत पहले से जानते थे। यदि न जानते होते तो 'रूप' शब्द के अर्थ आकार या चिह्न के न होते। आँख उसी को तो देख सकेगी जिसका कुछ आकार होगा, और आकार ही का तो नाम रूप है।

'रूप' के देवता अग्नि हैं। इस पर भी हम लोगों पर बड़े आक्षेप होते हैं और कहा जाता है कि हिन्दुओं की हर चीज़ का एक देवता होता है। एक विद्वान् का कथन है कि किसी पर आक्षेप करना सहज है, पर उसके गुण परखना कठिन है। बात है तो ठीक। किसी पर मिथ्या दोषारोपण करने के लिए योग्यता की आवश्यकता नहीं होती, परन्तु गुणों के परखने के लिए पूर्ण पाण्डित्य की ज़रूरत होती है। भावों को प्रकट करने के लिए केवल शब्द का व्यवहार पर्याप्त नहीं है। हमें अपने मुख की आकृति से, आँखों से, और हाथों से काम लेना पड़ता है और जब-तब लक्षणा, अलङ्कार, संकेत इत्यादि की भी सहायता आवश्यक होती है। लाक्षणिक

रूप

कुँवर राजेन्द्रसिंह की दर्शन-शास्त्र से बड़ी रुचि है और आपका खयाल है कि इस दिशा में भारत अन्य देशों से आगे है। 'गंध' और 'स्पर्श' पर आप 'सरस्वती' में दो अच्छे निबन्ध लिख चुके हैं। इस लेख में आपने 'रूप' क्या है, यह बताया है। आशा है, पाठकों का आपके इन लेखों से पर्याप्त मनोरञ्जन होगा।

लेखक, कुँवर राजेन्द्रसिंह

शा... हने को चाहे जो कोई कुछ कहे, उन्हें फिर प... पर यह मानना पड़ेगा कि वादियों को अस्त्र-... दर्शन-शास्त्र के मैदान में हमसे और वह था नानकिङ्-सरकार और देशवाले कोसों पीछे ओर मिल जाना और यह अक्सर हुआ कोई अत्युक्ति नानकिङ्-सरकार के पाँच हवाई जहाज़ भी वहाँ से हमारे चले गये, किन्तु एक बार का भरा पेट्रोल सदा तो नहीं चल सकता था, और न टूटे-फूटे पुर्ज़े ही वहाँ मिल सकते थे, इसलिए वर्तमान लड़ाई में उनका कोई उपयोग न हो सका। चाङ्-कै-शक् ने १६३२ वाले जापानी आक्रमण में तो ऐसी चुप्पी साधी कि उनके होने में भी सन्देह मालूम होता था। किन्तु जापान के अपना काम खत्म कर लेने पर उन्होंने फिर साम्यवादियों की ओर मुँह किया। उन्होंने पिछले अनुभवों से भले प्रकार जान लिया था कि स्थल-सेना पर वे पूरा विश्वास नहीं कर सकते। इसके लिए उन्होंने मध्यम श्रेणी के युवकों की हवाई सेना तैयार की। ५०० हवाई जहाज़ों का बेड़ा सुसज्जित कर फिर साम्यवादियों पर हल्ला बोल दिया गया। नान्-किङ् की विशाल और साधनसम्पन्न स्थल-सेना तथा उससे अधिक विनाशक उसके हवाई जहाज़ों ने अब की खूब तैयार होकर चढ़ाई की। साम्यवादियों ने वीरता के साथ मुक़ाबिला किया, किन्तु कब तक। आखिर एक के बाद एक स्थान उनके हाथ से निकलता गया। नान्-किङ् के कुछ सिपाही इस बार भी दूसरी ओर जा मिले; किन्तु हवाई जहाज़ों की मार और साम्यवादियों की हार ने कहा है—"फिर वही कुंज कफ़स फिर वही सय्याद का घर।" भाव कितना हृदयस्पर्शी है! अस्तु, प्रोफ़ेसर मैक्समूलर की पुस्तक 'वॉट इंडिया कैन टीचअस' पढ़ने के योग्य है। उसमें उन्होंने बतलाया है कि भारतवर्ष हमें क्या सिखला सकता है। उनकी और भी पुस्तकें हैं, जिनमें उन्होंने हमारे वेदान्त और दर्शन-शास्त्र पर अच्छे लेख लिखे हैं। किसी विदेशी कई जगह हार खानी केवल सहानुभूति ही प्रकट करना हाथ धोना पड़ा। अपने आदर्श फिर कहने जा रहा हूँ लगाना कितना आसान है, इसका कभी अन्य देश-नेताओं में एक साम्यवादी नेता वु-चि-लुङ्। पर आँखें बदल देने के लिए बहुत प्रलोभन दिये गये, किन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। फलतः १२ अप्रेल को फ़ू-चाव में उसे फाँसी दे दी गई।

इस वक्त नान्-किङ्-सरकार की सारी शक्ति साम्यवादियों का जड़मूल से विनाश करने पर लगी हुई है। अब वस्तुतः साम्यवादियों की अधिकृत भूमि बहुत-कुछ छिन चुकी है, और वे इधर से उधर खदेड़े जा रहे हैं। सरकार उनके साथ गोरीला युद्ध के लिए तैयार है; किन्तु यह काम उतना आसान नहीं है। इस वक्त 'चीनी सोवियट सेना' की संख्या पचास हज़ार बतलाई जाती है, जो तीन टुकड़ियों में बँटी हुई है। उसके एक बड़े भाग ने कन्-सू (तिब्बत और मंगोलिया के बीच का चीनी प्रान्त) में निकल जाने की कई वार कोशिश की, किन्तु उनका रास्ता रोक दिया गया के

मेरा अनुमान ठीक ही था। उन लेखों में एक बार भी दर्शन-शास्त्र का नाम नहीं आया था और न उस दृष्टि से वे लेख लिखे ही गये थे। उन्हीं लेखों के आधार पर मैंने 'गन्ध' नामक लेख लिखा था, जो सितम्बर १९३३ की सरस्वती में प्रकाशित हुआ है। यदि ध्यान-पूर्वक देखा जाय तो उसमें केवल भिन्न भिन्न देशों के मनुष्यों की शारीरिक गन्ध का वर्णन है, और इसका भी वर्णन है कि किस गन्ध का कामोद्दीपन पर प्रभाव पड़ता है। अब जब 'स्पर्श' विषय के लेख देखे तब उनमें भी वही रङ्ग और वही दृष्टि-कोण पाया। मेरा 'स्पर्श' शीर्षक लेख आक्टोबर १९३४ की सरस्वती में प्रकाशित हुआ है। तुलसीदास जी ने लिखा है—"जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।" जिस दृष्टि से जो दुनिया को देखेगा, वैसे ही उसके विचार होंगे, और जैसे विचार होंगे, वैसा ही उनके प्रकट करने का ढङ्ग होगा। इस जीवन के परे जीवन पर हिन्दुओं की सदैव दृष्टि रहती है और अन्य देश-वासियों की निगाह क़ब्र के उस ओर पहुँचती ही नहीं है। कदाचित् इस पर हमारे विचार करने का यह समुचित स्थान नहीं है कि जो भारतवासी मानते हैं वह ठीक है या जो और देशवाले मानते हैं वह ठीक है। इसका वाद-विवाद निर्धारित पथ से हमें बहुत दूर हटा ले जायगा।

हम सब लोग जानते हैं कि तन्मात्राओं में 'रूप' का तृतीय स्थान है, और यह भी हम सब लोगों को मालूम है कि यह नेत्र ज्ञानेन्द्रिय का विषय है। नेत्र-द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है उसे 'रूप' कहते हैं। 'रूप' शब्द के अर्थ आकार और चिह्न इत्यादि हैं। "दर्शन-शास्त्र में रूप को चक्षु इन्द्रिय का विषय माना है। सांख्य ने इसे पञ्चतन्मात्राओं में एक माना है। बौद्ध-दर्शन में इसे पाँच स्कन्धों में पहला स्कन्ध कहा है। महाभारत में सोलह प्रकार के रूप माने गये हैं—जैसे, ह्रस्व, दीर्घ, स्थूल, चतुरस्र, वृत्त, शुक्ल, कृष्ण, नीलारुण, रक्त, पीत, कठिन, चिक्कण, श्लक्ष्ण, पिच्छिल, मृदु और दारुण" (विश्व-कोष) इन सबको उन्हें समझाना जिनकी खोज इस ओर कुछ भी नहीं है, कठिन नहीं वरन असम्भव है। विश्व-कोष में यह भी लिखा है कि "पदार्थों में एक शक्ति रहती है जिससे उनका तेज इस प्रकार विकृत होता है कि जब वह आँखों पर लगता है तब देखनेवालों को उस पदार्थ की आकृति, वर्ण आदि का ज्ञान होता है। इस शक्ति को भी रूप ही कहते हैं।" इन सबकी 'रूप' संज्ञा हमारे शास्त्र जाननेवालों ने बड़ी खोज के बाद की होगी। अभी स्पेक्ट्रास्कोप-यंत्र का आविष्कार हुए बहुत दिन नहीं हुए हैं, जिसके द्वारा आँख के उस पर्दे के नीचे का प्रकाश जाँचा जा सकता है जिसे अँगरेज़ी में 'स्पेक्ट्रम' कहते हैं। यह वही पर्दा है जिस पर प्रकाश प्रतिबिंबित होता है और जिस पर प्रकाश-द्वारा प्रतिमायें बन जाती हैं। 'स्पेक्ट्रम'-शब्द लेटिन-भाषा का है, जिसका अर्थ उस भाषा में आकार या प्रतिमा है। जो अब खोज करके जाना गया है या जाना जा रहा है वह हमारे विद्वान् बहुत पहले से जानते थे। यदि न जानते होते तो 'रूप' शब्द के अर्थ आकार या चिह्न के न होते। आँख उसी को तो देख सकेगी जिसका कुछ आकार होगा, और आकार ही का तो नाम रूप है।

'रूप' के देवता अग्नि हैं। इस पर भी हम लोगों पर बड़े आक्षेप होते हैं और कहा जाता है कि हिन्दुओं की हर चीज़ का एक देवता होता है। एक विद्वान् का कथन है कि किसी पर आक्षेप करना सहज है, पर उसके गुण परखना कठिन है। बात है तो ठीक। किसी पर मिथ्या दोषारोपण करने के लिए योग्यता की आवश्यकता नहीं होती, परन्तु गुणों के परखने के लिए पूर्ण पाण्डित्य की ज़रूरत होती है। भावों को प्रकट करने के लिए केवल शब्द का व्यवहार पर्याप्त नहीं है। हमें अपने मुख की आकृति से, आँखों से, और हाथों से काम लेना पड़ता है और जब-तब लक्षणा, अलङ्कार, संकेत इत्यादि की भी सहायता आवश्यक होती है। लाक्षणिक

भाव का अर्थ जब हम शब्दार्थ के अनुसार करेंगे या सरूपक को अरूपक समझ लेंगे तब अवश्य उलझन बढ़ जायगी। इसमें लेखक का तो कोई दोष नहीं है, दोष है समझनेवाले का। इसी कारण यह कहा जाता है कि लेखक की शैली से परिचित होना आवश्यक है। कार्लायल ने कहा है कि शैली लेखक का कोट नहीं है, यह उसका चर्म है। शैली का लेखक से ऐसा ही घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। कोई अपने भावों को बहुत सीधे-सादे ढङ्ग से प्रकट करता है, कोई उन्हीं भावों को चित्ताकर्षक भाषा के भूषणों से सुसज्जित करता है। यदि एक को व्यङ्ग्य से रुचि है तो दूसरे को परिहास से। इससे अधिक और कोई बड़ी भूल नहीं हो सकती है कि बिना भाषा पर पूर्ण ध्यान दिये हुए किसी लेखक के भावों के समझने की कोशिश की जाय। हमारे आचार्यों ने 'रूप' का देवता अग्नि को माना है, जिसकी वजह से आक्षेप किये जाते हैं। अब जरा 'देवता' शब्द पर ध्यान दीजिए। 'देव'-शब्द के अर्थ व्यावहारिक भाषा में अपने से बड़े के हैं, जैसे हे देव, गुरुदेव इत्यादि और उसी से देवता-शब्द बना है। हम उसी को अपने से बड़ा समझते हैं जिसकी योग्यता, विद्वत्ता और गुरुत्वा स्वीकार करते हैं। यदि हमारे आचार्यों ने अग्नि की गणना देवताओं में की तो क्या भूल हुई। अग्नि उन पञ्चमहाभूतों में से एक है जिनसे शरीर का निर्माण हुआ है। यदि आचार्य्यों ने कृतज्ञतावश अग्नि की झूठ ही प्रशंसा देवता मान करके की होती तो भी कुछ बुरा नहीं था जब कि आधुनिक समय में तुच्छ स्वार्थ के लिए 'गधे को दादा' कहना राजनीति-कुशलता की प्रथम पहचान समझी जाती है।

कोई भी चीज दिखलाई नहीं देगी यदि वह प्रकाशरहित है। काले को रङ्गों की क्षयराशि इसी वजह से कहते हैं कि काले में प्रकाश का अभाव होता है। जहाँ प्रकाश का प्रश्न है वहाँ अग्नि का प्रश्न पहले है। प्रकाश में उष्णता है और उष्णता में अग्नि का अंश है। इस गूढ़ विषय पर और अधिक प्रकाश डालने के लिए हमारे आचार्यों ने बहुत अधिक परिश्रम किया होगा। अग्नि और सूर्य में बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। सूर्य का एक नाम संस्कृत में उष्णरश्मि है। उष्ण-शब्द अग्नि का बोधक है, क्योंकि अग्नि का प्रथम गुण उष्णता है। और अग्नि का एक नाम संस्कृत में बृहद्भानु है। यह नाम इस बात का सूचक है कि बड़ा भानु अग्नि है। इससे यह सिद्ध होता है कि जहाँ उष्णता और प्रकाश का प्रश्न है, वहाँ अग्नि का प्रथम स्थान है। फिर यदि हमारे आचार्यों ने 'रूप' का देवता अग्नि को माना तो कोई अपराध नहीं किया। जिनमें बुद्धिविषयक शुचिता है वे तुरन्त स्वीकार कर लेंगे कि दर्शन-शास्त्र के हर एक विषय पर भारत में बहुत अधिक खोज की गई होगी।

जैसी कि अँगरेज़ी में एक कहावत है, 'तसवीर की दूसरी ओर देखिए', मैं भी यही कहूँगा कि ज़रूर देखिए, लेकिन 'दूसरी ओर' देखने से नसीम का एक मिसरा याद आ जाता है—"तब तो यक सूरत भी थी अब साफ़ वीराना किया।" वहाँ कोई देखेगा क्या? सफाचट मैदान है। अँगरेज़ी में 'रूप' का अनुवाद 'फ़ार्म' होगा। अर्थ में भी अन्तर नहीं है, और जहाँ अन्तर शुरू हुआ, वह बड़ा अन्तर है। ज्ञानेन्द्रियों के विषयवर्ग की संज्ञा तन्मात्रा है, जैसे त्वचा का विषय स्पर्श है, नासिका का गन्ध है, वैसे ही नेत्रों का विषय रूप है। हमारे शास्त्रानुसार तन्मात्रायें विषयों के नाम से प्रसिद्ध हैं, न कि ज्ञानेन्द्रियों के नाम से या उनके कर्मों के नाम से। और ठीक भी यही है। नेत्रों का विषय 'रूप' है न कि दृष्टि या देखना। यहीं से अन्तर की नींव पड़ती है। 'रूप' को नेत्रों का विषय न कहकर अँगरेज़ी लेखकों ने 'दृष्टि' 'विज़न' को तन्मात्रा मान लिया है और यही उनके लेखों का शीर्षक है। अब उनके दर्शन और सांख्य-शास्त्र का अवलोकन कीजिए। वे यों प्रारम्भ करते हैं—"दृष्टि एक मुख्य स्रोत है, जिसके द्वारा मनुष्य को ज्ञान प्राप्त होता है। एक बड़ी हद तक यह और विषयों को उल्लंघन कर गया है। इसका गोचर अतीत है। यह दूरवर्ती संसार को हमारे सामने लाता है और हमें इसके योग्य बनाता है कि अपनी रचना के सूक्ष्म से सूक्ष्म विस्तार को समझ सकें। यही कलाओं के समझने की नींव है और इसी कारण यह कोई आश्चर्य नहीं है कि संभोग की निगाह से यह और सब विषयों से अति श्रेष्ठ है, और यह कि मनुष्य के स्नेहमय विचार सुन्दरता की सदैव कल्पना करते रहे हैं।" एक का यह मत है और दूसरे का यह है—"कामप्रिय जीवन में सबसे बड़ी, महान् शक्तिशालिनी और उद्योगिनी इन्द्रिय आँख है। यह सत्य है कि हमारी आँख वही ढूँढ़ा करती है जो सुन्दरता कहलाती है।" 'सुन्दरता'-शब्द का अर्थ क्या है? लेखक स्वयं उत्तर देता है—"इसका अर्थ है बहुत-सी दृष्टिगत उत्तेजक चीज़ों का जोड़, जो एक एक करके तुच्छ हैं, पर जिनकी संयुक्तता मस्तिष्क में आनन्द की, प्रशंसा की, और उसे प्राप्त करने की भावना और इच्छा उत्पन्न कर देती है।"

हम सुन्दरता ढूँढ़ते हैं, क्योंकि हम आनन्द के इच्छुक हैं। नेत्र और सब ज्ञानेन्द्रियों की अपेक्षा कामप्रिय जीवन के अधिक सहायक हैं। हम भारतवासियों के लिए यह बतलाना कठिन है कि ऐसे लेखों का स्थान किस शास्त्र में होना चाहिए। आक्षेप हम लोगों पर चाहे जितने हों, परन्तु यह कहना ही पड़ेगा कि दर्शन या सांख्यशास्त्र यदि अन्य देशवालों का यही है तो उस साहित्य पर ईश्वर कृपा करे। यह कुछ अप्रासंगिक-सा जान पड़ता है कि "पुरुष को पराजित करने के लिए केवल थोड़ी-सी सुन्दरता, मनोहर आकार या स्त्री की आसन्नता पर्याप्त है।" यदि यह ठीक है तो यह भी वाक्य दर्शन-शास्त्र में स्थान पाने के योग्य है कि "ख़ूबसूरत चेहरे की हर जगह फ़तेह है।" इसी तरह की एक और कहावत जर्मन-भाषा में है, जिसका अनुवाद यह है—"सौन्दर्य सभी जगह अभिमत अतिथि है।" फिर इसका वर्णन है कि किस समय में कैसे कपड़े पहने जाते थे और "कपड़े पहनने का प्रायः यह अभिप्राय होता है कि पुरुष की यह इच्छा उत्पन्न हो कि स्त्री के शरीर को नग्न देखे, और इससे कामकारी इच्छायें पैदा होती हैं।" फिर "नग्नता कामकारी प्रभाव में प्रबल है, क्योंकि आँखों को अत्यन्त रुचिकर है।" नग्नता के विरुद्ध आज-कल कुछ कहना असभ्यता का टीका लगवाना है। विदेशों में इसकी बड़ी धूम है। इस विषय पर अगणित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और रोज होती जाती हैं। मामले का यहीं अन्त नहीं हुआ। उन पुस्तकों में तसवीरें भी हैं। कहा जाता है कि नग्नता में वह सौन्दर्य है जो विश्व भर में और कहीं नहीं देखने को मिलेगा और उस सौन्दर्य को वे ही पहचान सकते हैं जो प्राकृतिक सौन्दर्य पहचानने के लिए आँखें रखते हैं। यह ईश्वर की परम कृपा है कि उस सौन्दर्य के पहचानने के लिए उसने अभी तक भारतवासियों को आँखें नहीं दी हैं। फ़ैशन की तुलना एक संक्रामक रोग से की जा सकती है, और यह भारतवर्ष का अभाग्य है कि जो रोग अन्य देशों में फैला उसका आक्रमण हमारे देश पर अवश्य हुआ और जो आया वह यहीं का हो गया। बस यही डर है। एक दिन मुझे एक योरपीय महाशय से बात-चीत करने का मौक़ा पड़ा। आपको प्रयाग के मेले से लौटे हुए थोड़े ही दिन हुए थे। आपने बातें करते करते कहा कि आप चाहे जो कुछ कहें, परन्तु यह आपको मानना पड़ेगा कि हिन्दुस्तान को अभी सभ्य होने में बहुत दिनों की देर है, क्योंकि मैंने इलाहाबाद में बहुत-से नंगे साधुओं को देखा है। और यह भी कहा कि हमारे पादरियों को देखिए। मुझे बहुत बुरा मालूम हुआ। मैंने कहा कि आपके पादरी असभ्य हैं, क्योंकि जर्मन देश की सभ्यता ने जिसे आप भी मानते हैं, कपड़ों का पूर्ण बहिष्कार कर दिया है और उस सभ्यता से बहुत-से आपके यहाँ के लोग भी सहमत

हैं। सभ्य कहलाने के अभिप्राय से यदि हमारे साधुओं ने कपड़े छोड़े तो क्या बुरा किया? तब आपने कहा कि इस देश में तो बहुत पहले से साधू नग्न रहते थे। मैंने कहा, यह इस बात का चिह्न है कि हम पुराने सभ्य हैं। अस्तु। इस सम्बन्ध में मुझे केवल यही कहना है कि यहाँ हिन्दुस्तान में यदि किसी पुस्तक में एक भी अश्लील शब्द आजाय, तसवीर तो दूर रही, तो फ़ौरन पुस्तक के लिखने और छापनेवाले पर आफ़त आ जाती है, पर जो ऐसी पुस्तकें बाहर से आती हैं वे हाथों हाथ बिकती हैं और कोई रोक-टोक नहीं होती है।

एक दूसरे लेखक के भी विचार देखिए। उस लेखक का अधिकांश समय सौन्दर्य के निरीक्षण और उसका विवेचन करने में व्यय हुआ है। उसने "सौन्दर्य सुख की प्रतिज्ञा है।" यह एक वाक्य उद्धृत किया है। एक दूसरे का कहना है कि "सौन्दर्य स्वास्थ्यसूचक है।" यह अभी तक निश्चित नहीं हो पाया है और न निश्चित हो पाने की आशा है कि सौन्दर्य क्या है। एक उर्दू कवि ने कहा है—

"किसी ने जाके मजनू से
यह पूछा था कि ऐ भाई,
"हसीं इतनी नहीं लैला
कि जिसका तू है शैदाई,
वहा कर अश्क (आँसू) आँखों से
लगा कहने वह सौदाई,
तमीज़े खूब (अच्छे) व ज़िश्त (बुरे)
ऐ आशना कब इश्क़ ने पाई,
मुहब्बत में सभी यकसाँ हैं
जिससे जिसकी बन आई।"

इसी ढङ्ग का एक हिन्दी में भी दोहा है—

"रहिमन मन महराज के दृग से नहीं दिवान,
जाहि देखि रीझै नयन मन तेहि हाथ बिकान।"

एक और भी उर्दू का शेर है—

"देखा जो हुस्न यार तबीयत बदल गई,
आँखों का था क़सूर छुरी दिल पै चल गई।"

बेकन ने कहा है कि सौन्दर्य का वह अंश सबसे उत्तम है जिसे तसवीर न प्रकट कर पाये।

अब तक सौन्दर्य कविता की दृष्टि से देखा गया। अब यह देखना है कि किस देशवाले किसे सौन्दर्य कहते हैं। मलाया-देशवालों की दृष्टि में स्त्रीजातीय सौन्दर्य में यह गुण आवश्यक है कि "माथा एक रात्रिवाले चन्द्रमा का-सा हो, भ्रुकुटियाँ मुर्ग़ के नखों की तरह झुकी हुई हों, कपोल कटे हुए आम के टुकड़ों के से हों, नासिका विकसित चमेली की-सी कली हो, गर्दन पतली हो, कमर फूल के डंठल के समान हो, सिर अण्डाकृति हो, आँखें शुक्र-ग्रह की तरह चमकती हों और अधर छिद्रित दाड़िम के-से हों।" जापान के पुराने क़िस्सों में एक षोडश वर्षीया युवती के सौन्दर्य का इस प्रकार वर्णन किया गया है—"न बहुत मोटी, न बहुत दुबली, न बहुत लंबी और न बहुत ठमकी, चेहरा ख़रबूज़े के बीज के समान, रङ्ग गोरा, आँखें संकीर्ण और चमकती हुई (हिन्दुस्तान में नेत्रों की उपमा कमल से दी जाती है), दाँत छोटे और बराबर (हिन्दुस्तान में दाँत अनार के दाने के-से कहलाते हैं—दूसरी उपमा मोतियों की है) सुन्दर मुख, ख़ूबसूरत लाल अधर, भौंहें बड़ी और पतली, बड़े और काले बाल। पुराने ज़माने में जापानवाले सफ़ेद चेहरा, लम्बी गर्दन, संकीर्ण वक्षःस्थल और छोटे हाथ और छोटे ही पैर पसन्द करते थे। एक का कहना है कि सौन्दर्य की इन तीन चीज़ों से पहचान होती है—(१) सुकुमारता, (२) पीलापन और (३) तनुता। सुकुमारता और तनुता की क़द्र इस देश में भी है, पर पीलापन इस देश में रोगग्रस्त होने का सूचक है। सिंहल-देश में ऐसे लम्बे बालों की बड़ी क़द्र है जो घुटनों तक हों (अपने देश में उनसे भी बड़े बालों की तारीफ़ है—"बढ़ि केश छवान (एंड़िया) सो लागे अरुभन।" पतली कमर की भी वहाँ प्रशंसा है (हमारे यहाँ केहरि-कटि कहते ही हैं)। कामसूत्र में वात्सायन ने पद्मिनी की प्रशंसा की है—"मुख पूर्णचन्द्र का-सा हो, शरीर में मांस की कमी न हो, चर्म मुलायम और पतला हो (कदापि उसका कृष्णवर्ण न हो), आँखें सुन्दर और चमकीली हों, इत्यादि इत्यादि। अब यह सिद्ध होता है कि सब जगह सौंदर्य का एक ही आदर्श नहीं है और इस कारण सब जगह इसका एक ही भाव और दर नहीं है। प्रत्येक अङ्ग का वर्णन न करके सौन्दर्य के समूह का वर्णन हिन्दी-कविता में बहुत उत्तम है। एक कवि कहता है—

"बिहँसै दुति दामिनि-सी दरसै
तन जोति जोन्हाई उई-सी परै।
लखि पायन की अरुनाई अनूप
ललाई जपा की जुई-सी परै।
निकरै-सी निकाई निहारे नई
रति रूप लोभाई तुई-सी परे।
सुकुमारता मंजु मनोहरता मुख,
चारुता चारु चुई-सी परै"।

मतिराम ने और भी कमाल कर दिया है। उन्होंने कहा है—"ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैनन त्यों त्यों खरी निकरै सी निकाई।" कितनी बड़ी प्रशंसा की है—यह नहीं कि दूर से ही देखने में सुन्दरता दिखाई दे। यहाँ 'दूर के बोल सुहावन' वाला सिद्धान्त नहीं है। तुलसीदास जी की हथौटी में जितनी कविता थी वह सब उन्होंने ख़र्च कर दी। वे कहते हैं—

"सब उपमा कवि रहे जुठारी,
केहि पटतरिय बिदेहकुमारी।"

उपमा का काम प्रभाव को द्विगुणित कर देने का है, पर ऐसे अवसर भी होते हैं जब उपमा प्रभाव को घटा देती है। उसी से बचने के लिए गोस्वामी जी ने यह लिखा कि उपमायें सब जूठी हो गई हैं और उनसे विदेह-कुमारी का सौन्दर्य कहीं अधिक है। तब कौन-सी अनूठी उपमा का प्रयोग किया जाय? धन्य तुलसीदास जी! कविता इसे कहते हैं, कुछ नहीं कहा और सब कुछ कह गये।

अब यह पाठकों पर प्रकट हो गया होगा कि 'रूप' को और देशवाले 'दृष्टि' समझते हैं और उनके मतानुसार संसार में केवल स्त्री ही एक देखने की वस्तु है। 'दृष्टि' स्त्री में क्या देखती है, इस पर जो कुछ लिखा गया है उसका कोई भी अंश उद्धृत करना उचित नहीं प्रतीत हुआ। यही उनका दर्शन-शास्त्र है और यही उनका सांख्य-शास्त्र है।

ओढ़नी

लेखक, श्रीयुत उमेश

ओढ़ने को दी तमोगुण की मुझे क्यों ओढ़नी?

घिर गई मेरे हृदय में सघन घन की कालिमा।
छिप गई वह कनक-किरणों की प्रभामय लालिमा,
चन्द्र-तारक-रहि न नभ की यामिनी-सी मैं बनी।
दीप-लौ-सी थी कभी जो लालसा सोल्लास में,
धूम बन मँडरा रही है अब वही श्लथ-श्वास में,
सजल-स्मृतियों की दृगों पर स्वप्न जाली-सी तनी।

शून्य-जीवन में मचा दुख-वात का उत्पात-सा,
हिल रहा है गात मेरा पीत पीपल पात-सा,
मूक-प्राणों में सिमट कर सो रही पीड़ा घनी।
रात्रि के मरु-विजन-पथ-सी अंधतम आगार में,
मैं युगों से हूँ पड़ी इस रेणुमय संसार में,
प्रिय! मुझे दोगे न क्या तुम एक भी द्युति की कनी?

सुदामापुरी का कलाकार



श्रीकृष्ण नाम-करण—यह चित्र भी विलायत की प्रदर्शनी में गया था।

बम्बई की सरकारी कलाशाला जे० जे० स्कूल आफ़ आर्ट्स-की वाटिका में एक व्यक्ति चला आ रहा है। उसके चेहरे पर अभिमान की रेखा तक नहीं है। वह सौम्य है, शान्त है और गंभीर है। उसकी चाल से एक कलाकार की शान्तवृत्ति प्रतिभासित होती है। एकहरे शरीर पर पहने हुए कुर्ते, खादी के साफ़े और गले में लिपटे हुए दुपट्टे से उस व्यक्ति की सरलता निखर रही है, जिसे आप कभी नहीं भूल सकते। विद्यार्थियों का वह प्रिय है, मित्र है; शिक्षक का निर्भय भाव उसकी वाणी में मधुरिमा भर रहा है। भारतीय चित्रकला की सेवा को धुन उसके मानस में समाई हुई है। कलाशाला में प्रविष्ट होने-वाला उसकी ओर बिना आकृष्ट हुए नहीं रह सकता। ऐसी ही भाग्य-रेखायें विधाता ने उसकी हथेली पर खींची हैं। अपराह्न-काल की छुट्टी के समय भी छात्र-मंडली उस व्यक्ति को घेरे रहती है। कलाशाला के अध्यापक-वृन्द में मधुर दृष्टिवाले इस व्यक्ति—भाई जगन्नाथ अहिवासी—को पहचानने के लिए इतनी पहचान पर्याप्त है।



लेखक, श्रीयुत शंकरदेव विद्यालंकार

कुछ ही विद्यार्थी यह जानते होंगे कि इतनी सुन्दर प्रतिभा और व्यक्तित्ववाला यह व्यक्ति सुदामा-पुरी (पोरबन्दर) की ओर से भारत-माता को दिया हुआ एक अमूल्य उपहार है। आज सैंतीस वर्ष का यह नौजवान बम्बई की सरकारी कलाशाला की सबसे अन्तिम कक्षा में अनेक उदीयमान चितेरों को भारतीय चित्रकला की दीक्षा दे रहा है। कलाशाला के विशाल पाठ-भवन में मेज़-कुर्सी लगाकर रोबदार शैली में बैठने का मोह उसको नहीं है। इसी लिए वाटिका के वृक्षों की शीतल छाया में, लकड़ी के बनाये हुए दो मंडपों में, वह अपनी कक्षायें चलाता है। उसकी कक्षा में प्रविष्ट होते ही आप भारतीय ढंग से नीचे लगाई हुई बैठकों पर बैठकर शान्त-भाव से कार्य करते हुए विद्यार्थियों को देखेंगे। अहिवासी जी को अपने ही ढंग से कार्य करना पसंद है और इसी लिए कलाशाला के प्रिन्सिपल ने भी उनको सब प्रकार की सुविधा और स्वाधीनता प्रदान की है।

श्री जगन्नाथ अहिवासी के पूर्व-पुरुष तो ब्रज-वासी थे, परन्तु इनका जन्म हुआ है सुदामापुरी में, जो आज-कल पोरबंदर कहा जाता है और सौराष्ट्र (काठियावाड़) का एक अच्छा बन्दरगाह है। इसी नगरी को महात्मा गांधी की जन्मभूमि होने का भी सौभाग्य प्राप्त है। अहिवासी जी के पिता श्री मुरलीधर अहिवासी एक अच्छे कीर्तनकार थे, और भगवान् के कीर्तनकार ग़रीब होते ही हैं। उनकी आर्थिक स्थिति बहुत सामान्य थी। इनके बालपन में ही माता का स्वर्गवास हो गया। अकेले पिता ने ही इनका पालन-पोषण किया। कृष्ण-भक्ति के कीर्तनों-



[मेरे पिताजी]
चित्रकार अहिवासी के पितृदेव का चित्र—यह चित्र भी बम्बई के प्रिंस ऑफ़ वेल्स म्यूज़ियम ने खरीद लिया है।

[अभिजात कवि और कलाकार को हम सामान्यतया उसके लेखन और अंकन के द्वारा ही देखते हैं, परन्तु उसकी यथार्थ प्रतिभा उसके हाथ के उतने ही कार्य में आबद्ध नहीं होती। वह हमको उसके व्यवहार, दैनिक जीवन तथा उस जीवन की प्रात्यहिक भाषा और भावभंगियों-द्वारा ज्ञात होती है। कलाकार की अपनी निसर्ग-सिद्ध कुलीनता—आभिजात्य—का परिचय उसके जीवन और चरित्र के द्वारा ही मिलता है।]

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

द्वारा ही बालक जगन्नाथ के हृदय में भारतीय कला के गहरे संस्कार प्रविष्ट हुए। पढ़ने लायक़ उम्र होने पर ये पाठशाला में भेजे गये। वहाँ इन्होंने गुजराती की तीन कक्षायें पूरी कीं। यहीं से इनका अध्ययन समाप्त हुआ। चित्रकारी का शौक़ तो ताज़ा ही था। सात वर्ष तक इन्होंने भाव-सिंह-हाईस्कूल के चित्रकला-शिक्षक श्री मालदेव भाई राणा से चित्रकला का शिक्षण प्राप्त किया। धीरे धीरे श्री मालदेव भाई की तालीम ने इनको बम्बई की कलाशाला के द्वार तक पहुँचा दिया।

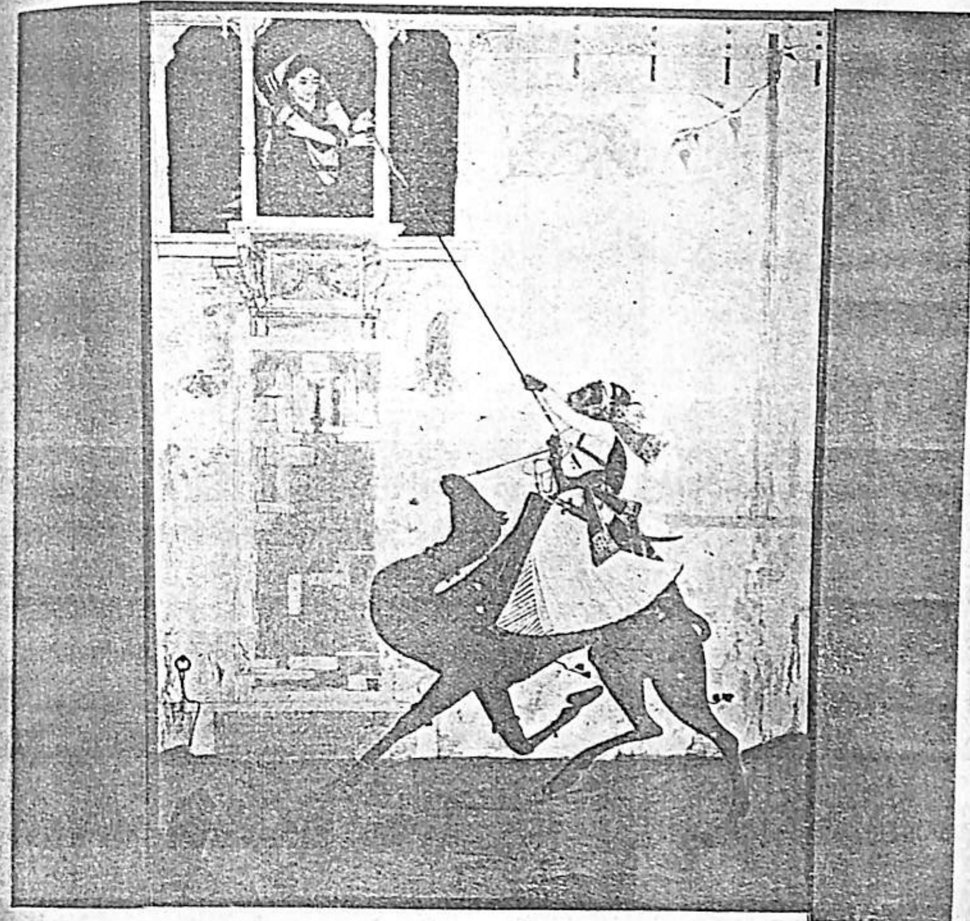
अहिवासी जी बम्बई की कलाशाला में प्रविष्ट हो जाते हैं। इनकी प्रतिभा दिनों दिन विकसित होती जाती है। प्रतिवर्ष अपनी कक्षा में प्रथम नम्बर पर पास होकर ये अध्यापकों के स्नेहभाजन बन जाते हैं। इसी समय गांधी-युग का पहला अवतरण होता है। कला-शाला के आचार्य-पद पर श्री महादेव वामन धुरंधर आसीन होते हैं। अधिकार के आसन पर आसीन होकर धुरंधर महोदय कहते हैं—"तुम्हें खादी पहननी है तो कलाशाला छोड़नी पड़ेगी।" श्री अहिवासी आर्ट स्कूल को नमस्कार करते हैं और पोरबंदर आकर पिता जी के कीर्तनकार के स्थान को स्वीकार करते हैं।

परदेशी होते हुए भी भारतीय कला के परम प्रेमी श्री ग्लेडस्टन सालोमन महोदय कलाशाला के आचार्य नियुक्त होते हैं। ये महोदय आते ही पुरानी शिक्षण-प्रणालिका को बदलना आरम्भ करते हैं। स्वतंत्र सर्जन तथा सर्जनात्मक वृत्ति को विकसित करने के प्राथमिक परन्तु मुख्य सिद्धान्त को आर्ट स्कूल के अध्ययन-क्रम में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता है। दूसरी ओर कलाशाला को छोड़कर कीर्तन के भावना-प्रधान गीतों को गाते हुए अहिवासी जी छात्रवृत्ति ढूँढ़ते फिरते हैं। "दो वर्ष और निकाल लो। आज तक के वर्ष कैसे चलाये हैं?"—इस प्रकार के उत्तर अनेक स्थानों से मिलते हैं। श्री अहिवासी विफल हो जाते हैं, पर निराश नहीं। श्री मालदेव भाई पीठ ठोकते हैं और धीरज देते हैं। पुरुषार्थी के लिए सिद्धि का द्वार खुलता है।

श्री अहिवासी को ज्ञात होता है कि बम्बई में ठाकुर जी के दो-तीन मंदिरों में कुछ विद्यार्थियों के रहने के लिए स्थान दिया जाता है। कीर्तन-द्वारा प्राप्त की हुई अपनी थोड़ी-सी पूँजी लेकर वे बम्बई जाते हैं। वहाँ मंदिर में रहने का प्रबन्ध हो जाता है। वे शाला में प्रविष्ट हो जाते हैं और जे० जे० स्कूल ऑफ़ आर्ट्स तथा केलकर-कला-मंदिर में तालीम प्राप्त करना शुरू करते हैं। प्रिन्सिपल सालोमन देखते हैं कि पतली देहयष्टी और लम्बी ग्रीवावाले इस विद्यार्थी के हृदय में कला के लिए नैसर्गिक शक्ति निहित है। सालोमन साहब उनको सम्मान-पूर्वक कलाशाला में प्रविष्ट करते हैं और इस कलाविद् आचार्य के सहवास में रह कर वे एक अच्छे कलाकार बन जाते हैं।

श्री अहिवासी को अपनी कला-साधना में आचार्य सालोमन की सहायता तथा प्रेरणा प्राप्त हुई है। इसके लिए वे उनके बहुत कृतज्ञ हैं तथा उनके लिए बहुत सम्मान का भाव रखते हैं। अहिवासी जी की कलाकृतियाँ वेम्ब्ली की विश्व-प्रदर्शनी, वाइसराय के राजप्रासाद और लंदन की पिकाडिली प्रदर्शिनी तक पहुँच चुकी हैं। हाल में ही उनके कुछ कलापूर्ण चित्र लंदन की कलाप्रदर्शिनी में भेजे गये हैं।

सन १९३४ की गर्मी की छुट्टियों में अहिवासी जी अपने कुछ छात्रों के साथ अजन्ता और एलोरा की यात्रा करने गये थे। तीन दिन के निवास के उपरान्त उन कलाधामों को छोड़ते हुए उनका हृदय रोता हुआ प्रतीत होता था। उनके मुख से अजन्ता के गुहा-चित्रों की प्रशस्ति सुनने में बहुत आनन्द आता है। कलाशाला के उपहार-गृह में बैठे हुए एक दिन वे अपनी यात्रा का वृत्तांत सुना रहे थे। एक अन्तेवासी ने पूछा—"अजन्ता की कला के विषय में आपका क्या विचार है?" अहिवासी जी ने कहा—"अजन्ता



[संदेश]

यह चित्र प्रिन्स ऑफ़ वेल्स म्यूज़ियम (बम्बई) ने ख़रीद लिया है। यह विलायत में भी भेजा गया था, वहाँ इसकी बड़ी प्रशंसा हुई थी।

की चित्रकला पर तो मैं बलि जाता हूँ। ऐसा प्रतीत होता है कि बन्धन-मुक्त साधु-सन्तों की तरह अनेक कलाकार युग-चित्र बनाने का निश्चय करके वहाँ जा बैठे थे। उन चित्रों में लोक-जीवन की बातों का विस्मरण नहीं हुआ है, वरन लोक-जीवन के प्रत्येक पहलू को अंकित करने का उन कलाकार अवधूतों ने ध्यान रक्खा है।

एक छात्र ने पुनः प्रश्न किया—"अजन्ता का वातावरण आपको कैसा प्रतीत हुआ?"



[भक्तिभेंट]
"बाम्बे क्रानिकल" के "कांग्रेस अंक" के टाइटल पेज के लिए बनाया गया।

"इस प्रश्न का मैं क्या उत्तर दूँ? कलाकारों ने कलानिर्माण के लिए स्थान भी सौन्दर्य से भरपूर ही चुना है।" इतना कहते ही श्री अहिवासी की कल्पना उस स्थान का सौन्दर्य बताने के लिए सजीव-सी हो गई। वे कहने लगे—"लोक-जीवन का श्वासोच्छ्वास उन चित्रों में भरा हुआ प्रतीत होता है. मानो कोई बौद्ध साधु हाल में ही आकर उन चित्रों का परिचय देने के लिए हमको वहाँ लिये जा रहा है।"

एक सहृदय-व्यक्ति फिर प्रश्न करता है—"भारतीय कला की विशेपता क्या है?"

"अखंड बहती हुई चित्ररेखा ही हमारी कला का विशिष्ट अंग है। पानी के अखंड प्रवाह की तरह एक परिपूर्ण रेखा प्रवाहित होकर जब चित्र-निर्माण करती है तब सुन्दर कला-कृति का जन्म होता है।" इस प्रकार उत्तर देते हुए उनकी कल्पना शत-शत संवत्सर बीत जाने पर भी अमिट रहनेवाले अजन्ता के उन भित्ति-चित्रों का सूक्ष्म विवेचन करने लगती है और मानो हमको हठात् वहीं ले जाकर खड़ा कर देती है। उनका प्रवचन अभी जारी है। वे कहते हैं—"बायसरीगल लॉज में हमने भित्तिचित्र बनाये हैं, परन्तु वे सब कॅन्वास पर बने हुए हैं, क्योंकि हमको विश्वास नहीं है कि वे चिरकाल तक दीवार पर अंकित रह सकेंगे। परन्तु यहाँ—अजन्ता के कला-मंडपों में तो मिट्टी के रंगों से बनाई हुई कृतियाँ सदियाँ बीत जाने पर भी नित्य नूतन प्रतीत होती हैं।"

एक दिन साँझ-समय श्री अहिवासी जी बम्बई के एक उपनगर की ओर भ्रमणार्थ गये। एक विशालकाय बँगले के पास से गुजरते हुए उन्होंने अपनी एक कृति खराब स्थिति में देखी। कलाकार के मन में अतिशय ग्लानि उत्पन्न होती है—"मेरी कला की यह दशा"! मन-ही-मन अहिवासी जी बोल उठते हैं कि खरीदने के लिए पैसे हों तो इस चित्र को मोल लेकर अपने कुटीर में लगाऊँ। उनके हृदय में इसी प्रकार की कला-भक्ति है। इस घटना से यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि आधुनिक अर्थयुग में कला का व्यापार करनेवाले कलाकारों में उनकी गणना नहीं है।

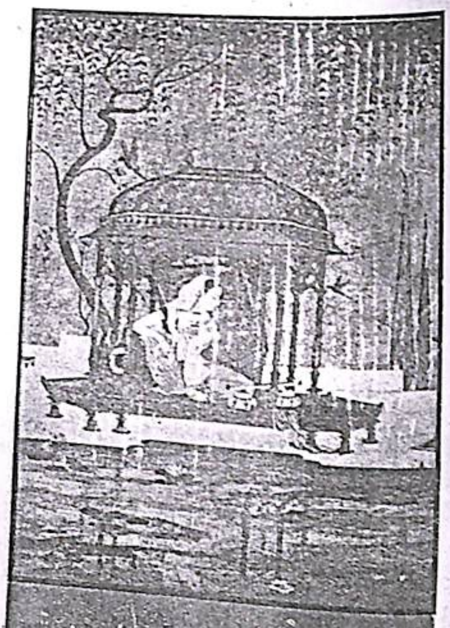
कवि-सार्वभौम श्री रवीन्द्रनाथ टाकुर के शान्ति-निकेतन के कलामंदिर के अध्यक्ष अभिजात कलाकार श्री नन्दलाल बसु श्री अहिवासी की कला पर मुग्ध हैं। उनका यह अभिप्राय है कि बंगाल-स्कूल के सामने गुजरात में कोई भी यदि भारतीय कला की मशाल लेकर खड़ा रह सकता है तो वे हैं श्री अहिवासी। नन्दलाल बाबू ने गुजरात छोड़कर बंगाल में आ जाने के लिए उनको कई बार आमंत्रित किया है, परन्तु बम्बई की कलाशाला के आचार्य और छात्रवृन्द उनको छोड़नेवाले थोड़े ही हैं!

श्री अहिवासी जी के मन में भी नन्दलाल बाबू के प्रति अपूर्व श्रद्धा है। इन पंक्तियों के लेखक को

पत्र लिखते हुए श्री अहिवासी ने अपने पत्र में नन्दलाल बाबू के प्रति अपनी श्रद्धा को बहुत सुंदर शब्दों में व्यक्त किया है। वे लिखते हैं—"यदि मुझसे पूछा जाय तो नन्द बाबू के चरणों के पास बैठकर और भी कला-उपासना करूँ, यही मेरे जीवन की अन्तिम इच्छा है।"

दुःख का विषय है कि इस सौम्य कलाकार का समुचित समादर अभी तक गुजरात ने तथा भारत के कलाप्रिय सज्जनों ने नहीं किया है। अभी तक यह कलाकार अप्रसिद्धि के आँचल से बाहर नहीं आया है! गुर्जर-भूमि के सर्वश्रेष्ठ और अभिजात कलाकार श्री रविशंकर रावल ने अपने विख्यात मासिक पत्र 'कुमार' के शतांक में श्री अहिवासी का परिचय देते हुए निम्नलिखित वचन लिखे थे—"बम्बई की सरकारी कलाशाला में भारतीय चित्रकला के शुद्ध स्वरूप में आदर करनेवालों में भाई अहिवासी जी पहले ही हैं। मूल व्रजवासी होने पर भी ये सौराष्ट्र-भूमि में पालित और परिपोषित हुए हैं। व्रज की भक्ति और सौराष्ट्र की सादगी को ये अपने जीवन में तथा कला में अनुप्राणित कर रहे हैं। सुकोमल रेखाओं और सुरम्य रंगों के द्वारा इनकी कला-साधना सफल हुई है। गुर्जरभूमि के अभिनव कलाकारों में इनका नाम अग्रगण्य है।"

श्री अहिवासी भारतीय चित्रकला के आशास्पद कलाकार हैं। इन्हें पदक तथा ख्याति प्राप्त करने का मोह नहीं है। अपनी तथा अपने छात्रों की सृजनात्मक शक्ति को विकसित करने की ही एकमात्र अभिकांक्षा इनके हृदय में है। शिष्यों से बहुत-कुछ सीखने को मिलता है, यह बात नम्रभाव से स्वीकार करते हुए इनका मुख आनन्दोल्लास से छा जाता है।



[उत्कण्ठिता]

आधुनिक युग में जब ज्ञानसाधना अनुदिन कष्टसाध्य और व्ययसाध्य बनती जा रही है, अनेक साधनहीन और असहाय विद्यार्थी श्री अहिवासी भाई के जीवन से स्वावलम्बन, सरलता, साधुता और सादगी का पाठ सीख सकते हैं।*

* 'हनुमान जर्नल' से सङ्कलित।

क़र्ज़-सम्बन्धी क़ानून

लेखक, श्रीयुत सीतलासहाय

अभी हाल में संयुक्त प्रान्त की सरकार ने ऋण-ग्रस्त किसानों तथा ज़मींदारों की रक्षा के लिए कई उपयोगी क़ानून बनाये हैं। किसानों और ज़मींदारों को उन सबका जानना ज़रूरी है। श्रीयुत सीतलासहाय जी ने इसी उद्देश से इस लेख में उन क़ानूनों का पूर्ण परिचय दिया है।



क़र्ज़ के नये क़ानूनों की चर्चा क़रीब दो वर्ष से चल रही है। संयुक्त-प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा में इन क़ानूनों के मसविदे सन् १९३३ में ही पेश हुए थे। इन मसविदों ने कौंसिल में और कौंसिल की कमिटियों में अनेक रंग बदले। साल डेढ़ साल के बहस-मुबाहिसे के बाद ये क़ानून १० अप्रेल १९३५ को व्यवस्थापक सभा से मंज़ूर होकर गवर्नर-जनरल-द्वारा स्वीकृत हो गये और ३० अप्रेल सन् १९३५ से इन क़ानूनों के अनुसार संयुक्त-प्रान्त में अमल भी होने लगा। तथापि अभी तक इनकी रूप-रेखा पूर्णतया निश्चित नहीं कही जा सकती। इन क़ानूनों से सम्बन्ध रखनेवाले अनेक क़ायदे अभी तक तय होने को बाक़ी हैं। गवर्नमेंट ने ४ मई १९३५ के गज़ट में इन क़ायदों का मसविदा प्रकाशित कर दिया है और अब उन पर लोग अपने विचार प्रकट कर रहे हैं। जुलाई के प्रथम सप्ताह में ये क़ायदे प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के सामने मंज़ूरी के लिए रक्खे जानेवाले हैं। और ये कौंसिल से स्वीकृत होने के बाद अमल में आवेंगे। तब ये क़ानून सर्वांग-सम्पूर्ण समझे जा सकेंगे।

क़र्ज़ के सिलसिले में ६ नये क़ानून जारी किये गये हैं, पहला है 'एग्रीकलचरिस्ट्स रिलीफ़ एक्ट' अर्थात् कृषि-व्यवसायियों की सहायता का क़ानून, दूसरा है 'दि इन्कम्बर्ड इस्टेट्स एक्ट' अर्थात् ऋणग्रस्त रियासतों के सम्बन्ध का क़ानून, तीसरा है 'दि रेगूलेशन आफ़ सेल्स एक्ट' अर्थात् नीलाम के नियंत्रण का क़ानून, चौथा क़ानून है 'दि टेम्पोरेरी रेगूलेशन आफ़ एकज़ीक्यूशन एक्ट' अर्थात् इजरा-नियंत्रण का अस्थायी क़ानून, पाँचवाँ है 'दि यू० पी० युज़ूरियस लोन्स एक्ट' अर्थात् संयुक्त-प्रान्त का अत्यधिक ब्याज का क़ानून, छठा है 'एग्रीकल्चरिट्स लोन्स एक्ट' अर्थात् किसानों को ऋण देने का क़ानून।

इन क़ानूनों के मसविदे क़रीब २० हज़ार शब्दों में हैं। इसलिए 'सरस्वती' के संकुचित स्तम्भों में इन क़ानूनों का केवल संक्षेप ही दिया जा सकता है। अभी तक इस सम्बन्ध में जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, ज़्यादातर अनुवाद हैं, जो क़ानूनी भाषा से अपरिचित साधारण मनुष्य के लिए बेकार हैं। अतएव इस लेख में उन क़ानूनों का आशय समझाने का ही प्रयत्न किया गया है।

पहले हम 'कृषि-व्यवसायियों की सहायता के क़ानून' पर विचार करेंगे।

(१) कृषि-व्यवसायी की सहायता का क़ानून

इस क़ानून के जारी होने से निम्नलिखित नई बातें पैदा हुई हैं। अदालत और महाजन इस बात के लिए मजबूर कर दिये गये हैं कि वे क़र्ज़दार कृषक के मामले में साधारण

क़र्ज़ की अदायगी के लिए या रहन रख कर प्राप्त किये हुए क़र्ज़ की अदायगी के लिए क़िस्त बाँध दें। दस्तावेज़ में या मुआहिदे में सूद की चाहे जो दर रक्खी गई हो, इन क़ानूनों में निश्चित की हुई दर से किसी भी हालत में अब ज़्यादा सूद नहीं दिलाया जा सकता। छोटे* किसानों के ऊपर डिगरी की मियाद १२ बरस से घटा कर केवल ४ वर्ष की कर दी गई है। महाजन इस बात के लिए मजबूर कर दिया गया है कि वह प्रत्येक क़र्ज़ का स्पष्ट और सही हिसाब रक्खे और इस हिसाब की एक नक़ल प्रतिवर्ष एक निश्चित तारीख़ के अन्दर ऋणी के पास पहुँचा दे। महाजन क़र्ज़ की वसूलयाबी का दावा उसी ज़िले में कर सकेगा जहाँ क़र्ज़दार किसान रहता है।

इस क़ानून के अनुसार कृषक शब्द की परिभाषा में निम्नलिखित श्रेणी के किसान आ जाते हैं।

(१) छोटे ज़मींदार जो एक हज़ार रुपया तक मालगुज़ारी देते हैं।

(२) ठेकेदार जिनकी ज़मीन की मालगुज़ारी १,०००) से अधिक नहीं है।

(३) जो १२०) तक सालाना अबवाब देते हैं।

(४) जो अवध में मातहतदार अर्थात् मालिक अदना हैं और जिसकी मालगुज़ारी १,०००) सालाना से अधिक नहीं है।

(५) जो ८० एकड़ तक का माफ़ीदार है।

(६) जो ५००) से अधिक लगान देनेवाले काश्तकार नहीं हैं।

(७) साधारण मजदूर, गड़रिये, ग्वाले, लोहार, बढ़ई, मछवे, मल्लाह, नाई, चमार, भङ्गी, बँसफोड़, कुम्हार, धोबी, जुलाहे आदि भी जो किसी म्युनिसिपेलिटी से बाहर रहते हैं, चाहे उनके पास खेत हो या न हो, इस क़ानून से फ़ायदा उठा सकते हैं। ८० एकड़ का माफ़ीदार अगर ५०) से अधिक इन्कमटैक्स देता है तो वह इस क़ानून से फ़ायदा न उठा सकेगा, और न १,०००) का मालगुज़ार जो १२०) सालाना इन्कमटैक्स देता है। किन्तु इस क़ानून के अनुसार हर एक कृषि करनेवाला चाहे वह तालुक़दार ही क्यों न हो, इस क़ानून की निम्नलिखित बातों का फ़ायदा उठा सकता है। जैसे वे—

(१) अदालत से अपने क़र्ज़ के मतालबे की क़िस्तबन्दी करा सकते हैं;

(२) अगले सूद की शरह में कमी करा सकते हैं;

(३) डिगरी हो जाने के बाद भी क़िस्तबन्दी करा सकते हैं;

(४) महाजन से हिसाब की नक़ल बाक़ायदा और बराबर माँग सकते हैं।

क़िस्तबन्दी—नये क़ानून के अनुसार क़र्ज़दार के दरख़्वास्त देने पर अदालत का यह कर्तव्य समझा जायगा कि डिगरी देते समय मतालबे की ऐसी क़िस्तें बाँधे जो क़र्ज़दार की हैसियत को देखते हुए मुनासिब कही जा सकें। (५) डिगरी देते समय अदालत इस क़ानून-द्वारा सूद की निश्चित दर से अधिक सूद न लगा सकेगी। इस क़ानून में 'किसान'-शब्द की परिभाषा में आनेवाले लोगों के लिए डिगरी की मियाद केवल चार बरस की कर दी गई है। (६) अगर किसी महाजन ने १ जनवरी १९३६ को किसी किसान के ऊपर डिगरी करा ली तो वह १ जनवरी सन् १९४० तक तो डिगरी इजरा करा के अपना मतालिबा वसूल कर सकता है। यदि इस बीच में मतालबा वसूल नहीं हुआ तो आयन्दा वसूल नहीं किया जा सकेगा।

इस प्रान्त में एक कुप्रथा यह भी थी कि एक ज़िले के महाजन दूसरे ज़िले के किसान को बिला ज़मानती क़र्ज़ देते और वसूल या बाक़ी के लिए अपने ज़िले में दावा करके डिगरी ले लेते थे। क़र्ज़दार किसान महाजन के ज़िले की अदालत तक अपनी आर्थिक कमज़ोरी के कारण पहुँच ही नहीं सकता था और उसकी ग़ैरहाज़िरी में उसके ऊपर एकतरफ़ा डिगरी हो जाती थी। इस क़ानून की दफ़ा ७ के मुताबिक़ अब ऐसे क़र्ज़ों का दावा उसी ज़िले की अदालत में होगा जहाँ क़र्ज़दार रहता है।

सूद की दर—गवर्नमेंट ने ३० अप्रेल १९३५ के बाद सूद की दर निम्नलिखित निश्चित की है—

* छोटा किसान वह है जो इस क़ानून में बयान किये हुए 'किसान'-शब्द की परिभाषा में आ जाता है।

	क़र्ज़ ज़मानती		क़र्ज़ बिला ज़मानत	
	सूद दरसूद सालाना हिसाब	सादा सूद सालाना	सूद दरसूद सालाना हिसाब	सादा सूद
५०० और उससे कम	६½	९	११	१४
५०१ से ५,००० तक	६	८	९½	११½
५००१ से २०००० तक	५½	७	८	१०
२०००१ से ज़्यादा	५	६	७	८½

	क़र्ज़			
	सूद दरसूद सालाना, सालाना हिसाब	सादा सूद	सूद दरसूद सालाना, सालाना हिसाब	सादा सूद
५०० या उससे कम	७	९	१०	१४
५००१ से ५,००० तक	६½	८½	९	१२
५००१ से २०,००० तक	६	७½	८	१०½
२०,००० से अधिक	५½	६½	७	९

८ मई १९३५ से निम्नलिखित दर लगाई जायगी।

५०० से कम	६	८½	९	१३
५००१ से ५००० तक	५½	७½	८	११
५००१ से २०,००० तक	५	६½	७	९½
२०,००० से ज़्यादा	४½	५½	६	८

जो क़र्ज़ ३० अप्रेल १९३५ से पहले लिये गये हैं उन पर पहली जनवरी १९३० से ८ मई १९३५ तक सूद की अग्रलिखित दर रहेगी—

सूद की यह दर उन डिगरियों पर भी लागू होगी जो अदालत से दी जा चुकी हैं। अगर किसी डिगरी का कुल मतालबा या उसका कुछ अंश अभी तक अदा नहीं हुआ है तो क़र्ज़दार जिस पर डिगरी है, अदालत में दरख्वास्त दे सकता है कि उसके ऊपर दी हुई डिगरी में नये क़ानून के मुताबिक तबदीली की जाय। अदालत दरख्वास्त पाने पर इस डिगरी के मतालबे में ऊपर लिखे हुए ब्याज की दर के अनुसार ब्याज लगा कर कमी कर देगी। नई दर के लिहाज़ से जो अधिक रक़म महाजन को सूद में मिल चुकी होगी वह सूद में न समझी जाकर असल की अदायगी में समझी जायगी। (३०)

३० अप्रेल १९३५ के बाद अगर किसी रक़म पर इतना सूद चढ़ जाय कि असल के बराबर हो जाय तो फिर उसके बाद उस रक़म पर अगर वह क़र्ज़ (बाज़मानत) है तो केवल ३½ फ़ी सदी सूद दिलाया जायगा; और दो फ़ी सदी और, अगर क़र्ज़ (बिला ज़मानत) है। (३१)

३० अप्रेल के बाद अगर किसी ने (बिला ज़मानत) क़र्ज़ लिया हो और वह अपना क़र्ज़ दो वर्ष के अन्दर दे दे तो उस क़र्ज़ पर (बाज़मानत) क़र्ज़ का सूद लगेगा। (२९)

ऊपर दिये हुए नक़्शों से बाज़मानत और बिला ज़मानत क़र्ज़ के सूद की दर में फ़र्क़ मालूम हो सकता है।

रहन-सम्बन्धी क़ानून—नये क़ानून के मुताबिक 'किसान'-शब्द की परिभाषा में आनेवाले किसान का किया हुआ रहन या क़ब्ज़ा जिसमें ज़ेरायती जायदाद का मुनाफ़ा मुरतहिन को मिलता जा रहा है, २० वर्ष से अधिक का जायज़ नहीं समझा गया है। अब अगर कोई महाजन २० वर्ष से अधिक मियाद का रहन लिखावे तो लिखा-पढ़ी होते हुए भी जायदाद २० वर्ष के बाद छूट जायगी। जो रहन ३० अप्रेल १९३५ से पहले रक्खे गये हैं उनके बारे में यह क़ानून बना है कि तमादी आरिज़ होने के पहले और मूलधन बाजबुल अदा होने पर राहिन अगर अपनी जायदाद छुड़ाना चाहे तो अदालत में अपनी जायदाद को छुड़ाने के लिए या उस पर क़ब्ज़ा हासिल करने के लिए दरख्वास्त दे सकता है। दरख्वास्त के साथ अदालत में उतनी रक़म भी जमा करनी होगी जितनी उसके खयाल में रहन छुड़ाने के लिए काफ़ी है। (१२) दरख्वास्त पाने पर और रक़म के जमा हो जाने पर अदालत मुरतहिन को तलब करेगी और अगर मुरतहिन जमा की हुई रक़म को मंज़ूर कर लेगा तो उसे उस रक़म को देकर उससे राहिन की जायदाद और उस सम्बन्ध का दस्तावेज़ वापस करा देगी। (१३-१४) अगर जमा की हुई रक़म काफ़ी नहीं है तो अदालत यह हुक्म देगी कि बाक़ी रुपया एक निश्चित मियाद के भीतर जमा कर दिया जाय। इस बाक़ी रक़म के जमा होने के बाद अदालत रहन के छोड़ देने का हुक्म दे देगी। (१६) मुरतहिन को अख़्तियार होगा कि रहन न छूटने के सम्बन्ध में अपनी उज़्रदारी पेश करे। यह प्रकट ही है कि रहन का मतालबा तय करने में अदालत केवल उतना ही ब्याज दिलायेगी जितने की नये क़ानून में इजाज़त है।

हिसाब—३० अप्रेल सन् १९३५ के बाद हर एक महाजन के लिए यह आवश्यक है कि चाहे वह छोटे किसान को क़र्ज़ दे रहा हो या बड़े ज़मींदार को, नियमपूर्वक सारे लेन-देन का बाक़ायदा हिसाब गवर्नमेंट के मुक़र्रर किये हुए फ़ारम पर लिखे और रक्खे। महाजन के लिए यह भी आवश्यक है कि वह प्रत्येक क़र्ज़ के शुद्ध और दुरुस्त हिसाब की एक नक़ल अपने या अपने मुख़्तार के दस्तख़त से क़र्ज़दार किसान के पास प्रतिवर्ष गवर्नमेंट-द्वारा निश्चित की हुई तारीख़ के अन्दर भेज दे। इस हिसाब में उस वर्ष के जितने जमा-ख़र्च हैं, सब स्पष्ट लिखे हों। महाजन इस हिसाब में सूद उस दर से ज़्यादा नहीं लगा सकता जो 'एग्रीकलचरिस्ट्स रिलीफ़ एक्ट' में मंज़ूर हुआ है। गवर्नमेंट ने यह तय किया है कि महाजन को चाहिए कि वह अपना हिसाब प्रतिवर्ष या तो दशहरा को या दिवाली को या ३० सितम्बर को या ३१ दिसम्बर को या ३१ मार्च को बन्द कर दे। हिसाब बन्द करने के एक महीने के अन्दर ही क़र्ज़दार के पास हिसाब की नक़ल जवाबी रजिस्ट्री से पहुँच जानी चाहिए, जिससे उसे यह मालूम हो जाय कि उसके ऊपर कितना बाक़ी है और उस साल उसके हिसाब में कितना जमा-ख़र्च हुआ है।

अगर किसी क़र्ज़ के मुक़द्दमे के दौरान में अदालत को यह मालूम हो कि महाजन ने किसी क़र्ज़दार को वसूल शुदा रक़म की रसीद देने से इनकार किया है या देने में बेपरवाही की है तो इस अपराध में वह महाजन से ऋणी को उस बिना रसीदवाली रक़म से दोगुना तक हरजाना दिला सकती है।

क़र्ज़दार अदालत में दरख्वास्त देकर किसी भी महाजन से अपने हिसाब की नक़ल माँग सकता है। अदालत महाजन से हिसाब तलब करेगी और मतालबे को अत्यधिक ब्याज़वाले क़ानून के मुताबिक और 'एग्रीकल-चरिस्ट्स रिलीफ़ एक्ट' की सूद-सम्बन्धी धाराओं के अनुसार जिनका ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है, तय करेगी। अगर अदालत को यह मालूम हुआ कि महाजन को इन क़ानूनों के अनुसार ब्याज में ज़्यादा रक़म मिल चुकी है तो उतनी रक़म वह वापस करा देगी। अगर अदालत को यह निश्चय हो जाय कि महाजन ने किसी क़र्ज़ के मामले में बाक़ायदा हिसाब नहीं रक्खा है तो वह सूद की पूरी रक़म या उसका कुछ अंश दिलाये या न दिलाये।

अनेक ज़िलों के महाजनों में यह क़ायदा है कि जितनी रक़म देते हैं उससे ज़्यादा का प्रोनोट लिखाते हैं या रक़म देने के पहले ही कमीशन, कटौती, रसूम, लिखाई इत्यादि के नाम से असल में से कुछ हिस्सा काट कर रुपया देते हैं। इस कुप्रथा को मिटाने के लिए दफ़ा ३५ (१) में यह कहा गया है कि अगर कोई महाजन ३० अप्रेल १६३५ के बाद अपने वही-खाते में वास्तव में दी हुई रक़म से ज़्यादा लिख लेगा या रसूम इत्यादि के नाम से कुछ अंश मूलधन से काट लेगा तो उसके ऊपर पहली बार जुर्म साबित होने पर १००) तक जुर्माना किया जायगा और दूसरी दफ़ा ५००) तक। ३० अप्रेल १६३५ के बाद बिना लिखा-पढ़ी के कोई क़र्ज़ जायज़ न समझा जायगा। (३६)

महाजन के लिए यह आवश्यक है कि वह हर क़र्ज़ की लिखा-पढ़ी करे और अलग अलग पर्चे रक्खे। इन पर्चों की एक एक नक़ल ऋणी को भी दे दिया करे। जब तक वह पर्चा ऋणी के पास न पहुँचेगा, महाजन सूद का अधिकारी नहीं समझा जायगा। इस पर्चे पर टिकट लगाने की भी ज़रूरत नहीं होगी और न नक़ल पर ही टिकट की ज़रूरत है। अनाज के रूप में दिया हुआ क़र्ज़ ऋणी चाहे अनाज के रूप में अदा करे, चाहे पैसे के रूप में (३७)। अभी तक अक्सर महाजन ऋणी किसान से अदायगी के अवसर पर पूरे मतालबे से कम रक़म लेते ही नहीं थे, न किसान कभी पूरी रक़म दे सकता था और न क़र्ज़ से छुटकारा पाता था। नये क़ानून में अब यह कर दिया गया है कि क़र्ज़दार जब चाहे बिला ज़मानती क़र्ज़ की पूरी रक़म का या बक़ाये का चौथाई हिस्सा अदालत में जमा कर दे और दरख्वास्त देकर इस रक़म को महाजन के पास अदालत के ज़रिये जमा करा दे। (३८)

(२) इजरा-नियन्त्रण का अस्थायी क़ानून

इजरा के नियंत्रण का अस्थायी क़ानून जैसा इसके नाम से ज़ाहिर है, अस्थायी है। संयुक्त-प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा से मंज़ूर होकर गवर्नर-जनरल ने इसे १० अप्रेल १६३५ को स्वीकार किया और ३० अप्रेल १६३५ से यह इस प्रान्त में लागू कर दिया गया है। इस क़ानून से फ़ायदा उठाकर किसान केवल १२ आना अदा करके पूरे रुपये की डिगरी से छुटकारा पा सकता है।

इसका आशय यह है कि अगर किसी किसान पर १००) की डिगरी है तो वह कम रुपया देकर भी उससे मुक्त हो सकता है। उसे चाहिए कि अदालत में दरख्वास्त दे और १००) में से २५) जमा करे। अर्ज़ी पाने पर क़र्ज़दार किसान से ज़्यादा से ज़्यादा ५ क़िस्तों में कुल ५०) अदालत और दिलायेगी और क़र्ज़दार को ७५) में ही १००) की डिगरी से छुटकारा मिल जायगा। महाजन का फ़ायदा यह है कि १००) की डिगरी में २५) उसे फ़ौरन मिल जाते हैं और बाक़ी ५०) दस दस रुपये की पाँच क़िस्तों में वसूल हो जाते हैं। २५) का निस्सन्देह उसे घाटा रहता है, किन्तु अनाज के भाव के घट जाने की वजह से यह घाटा घाटा नहीं समझा गया है।

यह क़ानून एक रुपया तक लगान देनेवाले छोटे काश्तकारों के लिए बनाया गया है और ३० अप्रेल सन् ३५ के पहले दी हुई १,०००) से कम की दीवानी की डिगरियों पर ही लगेगा। यह क़ानून निम्नलिखित आदमियों पर लागू नहीं होगा -

(१) जो किसान इनकम्टैक्स देता है;

(२) जो १०) से ज़्यादा मालगुज़ारी देता है;

(३) जो ठेकेदार या मुरतहिन है;

(४) जो किसान नहीं है;

(५) ३० अप्रेल १६३५ के बाद दी हुई डिगरियों पर भी नहीं लगेगा;

(६) सहयोग-समितियों की डिगरियों पर भी नहीं लगेगा;

(७) और न १०) से कम की डिगरी पर;

(८) जो डिगरियाँ कृषि-व्यवसायियों की सहायता के क़ानून के अनुसार कम कर दी गई हैं;

(९) या जो मकान के किराया इत्यादि की हैं, क़र्ज़ की नहीं है।

इस क़ानून से फ़ायदा उठाने का यह तरीक़ा है कि जिस किसान के ऊपर डिगरी हो वह ३० अप्रेल १६३६ के पहले उस अदालत में जहाँ से डिगरी निकली है या जहाँ इजरा डिगरी की कार्रवाई हो रही है, अर्ज़ी दे (दफ़ा ६)। शर्त यह है कि वही आदमी अर्ज़ी दे सकता है जो ३० अप्रेल ३५ को किसान रहा हो और अर्ज़ी देने के दिन भी किसान हो। अर्ज़ी के साथ या अर्ज़ी देने के महीने भर के अन्दर उक्त डिगरी के मतालबे का चौथाई अंश जमाकर दे। (७) अदालत इसके बाद यह देखेगी कि क़र्ज़ जिसके बारे में डिगरी दी गई है, सूद की किस दर से लिया गया था। अगर सूद की दर २४) सालाना से ज़्यादा है तो अदालत डिगरी के मतालबा का केवल ४० फ़ी सदी सैकड़ा दिलायेगी। अगर सूद की दर २४) सालाना या इसके बराबर है तो ५०) फ़ी सैकड़ा। क़िस्तें ५ से अधिक न होंगी और क़िस्तों पर कोई सूद न लगेगा। अगर क़र्ज़दार की तरफ़ से दो क़िस्तें बराबर रुक जायँगी तो डिगरीदार को हक़ है कि बाक़ी पूरी रक़म के लिए वह डिगरी इजरा करा दे।

महाजन को उज्रदारी करने का अख्तियार है। और इस क़ानून से ग्रामीण मज़दूर, ग्वाले, अहीर, लोहार, बढ़ई, मल्लाह, चमार, नाई, जुलाहे आदि सभी फ़ायदा उठा सकते हैं।

(३) नीलाम के नियन्त्रण का क़ानून

यह क़ानून भी अस्थायी है और जिन लोगों पर ऋण-ग्रस्त रियासत का क़ानून या इजरा-नियंत्रण का अस्थायी क़ानून नहीं लगता उनके लिए बनाया गया है। अर्थात् इस क़ानून से वे लोग फ़ायदा उठायेंगे जो न तो बड़े ज़मींदार या तालुक़ेदार हैं और न बिलकुल धनहीन किसान। यह क़ानून खेती की ज़मीन की बिक्री को एक नियम में बाँधना चाहता है। कारण यह है कि अनाजके भाव के कम हो जाने से ज़मीन की भी क़ीमत कम हो गई है और यदि वर्तमान आर्थिक दशा में ज़मीन को स्वतन्त्रता-पूर्वक नीलाम पर चढ़ाने या बेच देने का हक़ क़ायम रक्खा जाय तो ज़मीन बड़े सस्ते दामों में बिकेगी और ऋणी कृषक का नुक़सान होगा। इसलिए इस क़ानून-द्वारा खेती की ज़मीन की बिक्री उसी हालत में क़ानून की दृष्टि से जायज़ समझी गई है जब उसके दाम सस्ती के ज़माने के पहले के लगें। इस क़ानून में नई बात यह पैदा हुई है कि दीवानी अदालत की किसी डिगरी की अदायगी के लिए जिस समय कोई महाजन किसी खेती की ज़मीन को नीलाम पर चढ़ायेगा तब उसकी क़ीमत नीलाम की बोली पर नहीं, बल्कि कलक्टर-द्वारा निश्चित होगी। अगर दीवानी अदालत ने इस डिगरी की अदायगी के सिलसिले में क़र्ज़दार के लिए क़िस्तें मुक़र्रर कर दी हैं तो उस वक़्त कलक्टर नीलाम की कार्रवाई रोक देगा। कलक्टर ज़मीन की क़ीमत आज-कल के भाव से निश्चित न करेगा, बल्कि मंदी के पहले के और उस समय के भाव के अनुसार करेगा जब लगान और मालगुज़ारी में छूट नहीं हुई थी। क़ीमत निश्चित करने में कलक्टर की सहायता के लिए गवर्नमेंट क़ायदे बनानेवाली है।

ज़मीन की क़ीमत तय हो जाने पर महाजन के सामने तीन मार्ग खुले रहते हैं। अगर वह यह समझता है कि ज़मीन की जो क़ीमत कलक्टर ने तय की है, मुनासिब है और उस ज़मीन को उस दाम पर खरीद लेने में उसका घाटा नहीं है तो वह उस दाम पर ज़मीन को खरीद ले और डिगरी का हिसाब चुकता कर दे। अगर महाजन यह समझता है कि अभी ज़मीन की बिक्री ठीक दाम पर नहीं होगी और न वह दाम सन्तोषजनक है जो कलक्टर ने निश्चित किया है तो वह ज़मीन का नीलाम १ नवम्बर १६३६ तक मुल-तवी रक्खे। यह क़ानून १ नवम्बर १६३६ तक ही फ़िलहाल लागू किया गया है। उसके बाद सम्भव है, अनुकूल परि-स्थिति आ जाय। अगर यह बात भी महाजन को पसन्द

न हो तो ज़मीन को वह नीलाम पर चढ़ा सकता है, लेकिन नीलाम में जितने दाम आवेंगे, चाहे कम या ज़्यादा, उसी में इस क़ानून के अनुसार उसकी डिगरी का सारा मतालबा चुकता समझा जायगा। यह क़ानून ३० अप्रेल सन् १९३५ के पहले जितने क़र्ज़ लिये गये हैं सब पर लागू है। और १ नवम्बर १९३६ तक ही क़ायम रहेगा। अगर गवर्नमेंट चाहे तो गज़ट में नोटिस निकालकर इस क़ानून की मियाद बढ़ा सकती है। (दफ़ा ६)

गवर्नमेंट जो क़ायदे ज़मीन की क़ीमत तय करने के लिए बनायेगी, पहले उन्हें गज़ट में प्रकाशित करेगी, व्यवस्थापक सभा के सभासदों के पास उस मसविदे की एक एक नक़ल भेजेगी और कौंसिलों में पास होने के बाद उन क़ायदों पर अमल दरामद होगा।

(४) ऋणग्रस्त रियासतों का क़ानून

'ऋणग्रस्त रियासतों का क़ानून' भी संयुक्त-प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा से पास होकर १० अप्रेल १९३५ को गवर्नर-जनरल-द्वारा स्वीकृत हुआ और ३० अप्रेल से इस प्रान्त में उस पर अमल दरामद हो रहा है। यह क़ानून गढ़वाल, नैनीताल और अल्मोड़ा के ज़िलों में लागू नहीं है और न देहरादून-ज़िले के जौसरबावर-परगने में ही लागू है। इस क़ानून का उद्देश यह है कि क़र्ज़ से दबी हुई रियासतें बिकने और दिवालिया होने से बचाई जायँ। क़ानून बनानेवालों के मतानुसार व्यापार में मन्दी आ जाने के कारण और कृषि-उपज का भाव गिर जाने की वजह से ज़मींदारवर्ग पर क़र्ज़ का भार बहुत बढ़ गया है। अगर क़र्ज़ की अदायगी में आज ज़मींदार की ज़मीन बेची जाने लगे तो बहुत-सी रियासतों के तबाह हो जाने का डर है। इसलिए यह नया क़ानून बनाकर यह इन्तिज़ाम किया गया है कि रियासतों का क़र्ज़ रियासत की आमदनी से ही क़िस्त करके २० वर्ष के अन्दर अदा कर दिया जाय। क़िस्तों के सम्बन्ध में गवर्नमेंट भी सहायता करेगी।

इस क़ानून को अच्छी तरह समझने के लिए कुछ शब्दों का अर्थ और उनकी परिभाषा जान लेना आवश्यक है। विशेषकर उन लोगों के लिए जो वकील नहीं हैं और जिनका क़ानूनी ज्ञान परिमित है। पहला शब्द है "क़िस्ती क़ीमत"। किसी ज़मीन की क़िस्ती क़ीमत वह रक़म है जो वसूल की कमी का लिहाज़ रखते हुए उस ज़मीन के मौजूदा मुनाफ़े से ज़मींदार और उसके कुटुम्ब के ख़र्च तथा वसूलयाबी के ख़र्च को निकालने के बाद २० वर्ष के अन्दर वसूल हो सकती है। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि 'क' एक गाँव है। इसकी आज-कल की कुल निकासी २,०००) साल है पहले २,५०० थी, लेकिन ५००) छूट हो गई। मालगुज़ारी १,०००) है। ज़िलेदार या सिपाही जो इस गाँव से लगान वसूल करते हैं उनकी तनख़्वाह वग़ैरह पर २००) साल ख़र्च करना पड़ता है। किसी भी गाँव से पूरी पूरी रक़म वसूल नहीं होती। इस गाँव में १००) प्रतिवर्ष औसतन दब जाता है। ऐसी हालत में 'क' गाँव की क़िस्ती क़ीमत निम्नलिखित होगी—

२,०००) निकासी मौजूदा	मालगुज़ारी मौजूदा १,०००)
	ख़र्च वसूलयाबी २००)
	न वसूल होनेवाली रक़म १००)
	ज़मींदार का घर का ख़र्च ५००)
	मुनाफ़ा २००)
	२,०००)

इस हिसाब से प्रतिवर्ष २००) का मुनाफ़ा हुआ और २० वर्ष में ४,०००) की बचत हुई। ४½ फ़ी सदी के हिसाब से सूद लगाने पर २,०००) के क़रीब की रक़म २० वर्ष में ४,०००) हो जायगी। इसलिए २,०००) की यह रक़म 'क' गाँव की क़िस्ती क़ीमत हुई।

किसी ज़मीन की 'बिक्री की क़ीमत' वह रक़म है जो १३३८ फ़सली के पहले उस ज़मीन को बेचकर मिल सकती थी।

उदाहरण के लिए 'क' गाँव अगर आज बेचा जाय तो मान लीजिए १०,०००) का बिकेगा, क्योंकि छूट की वजह से लगान में भी कमी आ गई है और अनाज का भाव भी गिर गया है। लेकिन जब भाव मन्दा नहीं हुआ था, अर्थात् १३३८ फ़सली के पहले यह गाँव १५,०००) का बिकता। ऐसी हालत में इस क़ानून के मुताबिक 'क' गाँव की बिक्री की क़ीमत १०,०००) नहीं, बल्कि १५,०००) समझी जायगी।

'क़िस्ती क़ीमत' व 'बिक्री की क़ीमत' कलक्टर गवर्नमेंट-द्वारा बनाये हुए नियमों के अनुसार तय करेगा।

तीसरा शब्द है 'रक्षित भूमि'। इस प्रान्त में दो क़ानून हैं—एक का नाम '१९१७ का अवध सेटेल्ड स्टेट्स एक्ट' है और दूसरे का नाम '१९२० का यू० पी० सेटेल्ड स्टेट्स एक्ट' है। संयुक्त-प्रान्त में अगर कोई ज़मींदार या तालुक़ेदार चाहे तो वह अपनी रियासत इन क़ानूनों की मदद से 'रक्षित' करा सकता है। रक्षित हो जाने पर उसकी रियासत को उसके वंशज साधारणतः न तो बेच सकेंगे न रहन कर सकेंगे।

'अरक्षित भूमि' वह है जो इन ऊपर बताये हुए दोनों क़ानूनों के मुताबिक 'रक्षित' नहीं की गई है।

राहिन उसे कहते हैं जो अपनी ज़मीन दूसरे के यहाँ रहन अर्थात् बन्धक रखता है। मुरतहिन वह महाजन है जिसके यहाँ ज़मीन रहन रक्खी जाती है। इस क़ानून में दो क़िस्म के रहन जायज़ माने गये हैं। उनका मसविदा निम्नलिखित है—

रहन नं० १—इसमें रहन करनेवाला रहन की हुई ज़मीन का मालिकाना क़ब्ज़ा मुरतहिन को दे देता है और उसको अधिकार देता है कि वह ब्याज के बदले में और मूलधन के भुगतान में उस भूमि का लगान और मुनाफ़ा वसूल करता रहे। लेकिन मुरतहिन यह मुनाफ़ा एक मियाद तक ही ले सकता है और वह मियाद २० वर्ष से अधिक न होगी। इस मियाद के समाप्त होने पर राहिन का ऋण पूर्णरूप से भुगता हुआ समझा जायगा और भूमि बिना कुछ और दिये हुए वापस मिल जायगी अर्थात् महाजन बिना किसी और वसूलयाबी के उस ज़मीन को वापस कर देगा।

रहन नं० २—बिना क़ब्ज़े का रहन होगा। इसमें रहन रखनेवाला ऋण की ज़मानत में अपनी किसी ज़मीन को मकबूल करेगा, लेकिन क़ब्ज़ा न लेगा। राहिन यह वादा करेगा कि मूलधन और ब्याज के भुगतान में एक निश्चित रक़म निश्चित समय पर मुरतहिन को अदा करता रहेगा। अगर राहिन अपने वादे के अनुसार मूलधन और ब्याज का भुगतान नहीं करता तो मुरतहिन कलक्टर के यहाँ दरख़्वास्त देकर रहन की हुई भूमि पर ऐसी मियाद के लिए क़ब्ज़ा माँग सकेगा जिसे कलक्टर क़र्ज़ की अदायगी के वास्ते मुनासिब समझे। किन्तु यह मियाद २० वर्ष से ज़्यादा नहीं हो सकती। अगर कलक्टर ने मुरतहिन की दरख़्वास्त पर किसी मियाद के लिए ज़मीन पर क़ब्ज़ा दे दिया तो यह ज़मीन मुरतहिन के क़ब्ज़े में केवल निश्चित समय तक के लिए ही रहेगी। उसके बाद वह ज़मीन क़र्ज़दार को वापस मिल जायगी और राहिन का ऋण पूर्णरूप से चुकता समझा जायगा।

इस क़ानून के पास हो जाने से ऐसे ज़मींदारों को जिनकी रियासत क़र्ज़ से दबी हुई है, यह अधिकार मिल गया है कि ३० अप्रेल १९३६ से पहले अपने ज़िले के कलक्टर के यहाँ इस क़ानून के मुताबिक अपने ऋण को चुकाने के लिए दरख़्वास्त दें। दरख़्वास्त में यह ज़ाहिर करना होगा कि उनके ऊपर कितना महाजनी क़र्ज़ है और कितना सरकारी क़र्ज़ है। कितने क़र्ज़ की डिगरी हो गई है और कितना क़र्ज़ अभी तक बिना डिगरी का है। उस दरख़्वास्त पर कलक्टर 'ऋणग्रस्त ज़मींदारी क़ानून' के अनुसार उसकी रियासत का क़र्ज़ अदा करने का इन्तज़ाम करेगा। (४) कलक्टर के पास अर्ज़ी आने पर वह इस अर्ज़ी को स्पेशल जज के पास भेज देगा; जिसे गवर्नमेंट स्थान स्थान पर नियत कर चुकी होगी। स्पेशल जज दरख़्वास्त देनेवाले ऋणी को तलब करेगा। उससे तहरीरी बयान माँगेगा और निम्नलिखित बातें दरयाफ़्त करेगा—

(१) सरकारी और महाजनी ऋण का सम्पूर्ण ब्योरा, जिससे उस ज़मींदार या मालिक आराज़ी की स्थावर सम्पत्ति या सम्पत्ति का कुछ अंश दबा है।

(२) ज़मीन में मालिक आराज़ी का हक़ कितना है और किस प्रकार का है।

(३) महाजनों का नाम व पता (दफ़ा ७)

ऋणी का हल्फ़िया बयान लेकर स्पेशल जज गज़ट में उर्दू और हिन्दी में इन बातों को प्रकाशित करा देगा और जिन महाजनों का क़र्ज़ है उन्हें तलब करेगा और उनसे ३ महीने के अन्दर सारे क़र्ज़ के सम्बन्ध में चाहे उन क़र्ज़ों के बारे में डिगरी मिल चुकी हो या न मिल चुकी हो, तहरीरी बयान दाख़िल करने को कहेगा। (८)

गज़ट में नोटिस निकल जाने के बाद अगर उस ज़मींदार के ऊपर क़र्ज़ के मुताबिक कोई दावा कहीं किसी दूसरी अदालत में भी होगा तो वह रुक जायगा, और अगर डिगरी इजरा भी हो गई है तो वह भी ख़त्म हो जायगी। महाजन के अपने मतालबे के सम्बन्ध में जितने दस्तावेज़ होंगे उन्हें उसे स्पेशल जज के यहाँ दाख़िल कर देना होगा। (१०) अगर किसी महाजन ने नियत समय के अन्दर दस्तावेज़ दाख़िल न किये तो मुक़द्दमे के मौक़े पर जज उन काग़ज़ों को शहादत में ले चाहे न ले।

३० अप्रेल १९३५ के बाद और जज के यहाँ दफ़ा (४) के अनुसार दरख़्वास्त देने के बीच अगर कोई ज़मींदार अपनी ज़मीन रहन करे या बेच देगा तो वह रहन और बय मन्सूख़ समझा जायगा। (१२)

अगर कोई महाजन अपने क़र्ज़ का मतालबा स्पेशल जज के सामने इस क़ानून में बताये हुए तरीक़े से पेश नहीं करता (चाहे उस क़र्ज़ के सम्बन्ध में उसके पास डिगरी ही क्यों न हो) तो वह उस रक़म को ऋणी से वसूल न कर सकेगा और ऋणी का वह क़र्ज़ अदा समझा जायगा। (१३)

मतालबे के बारे में महाजनों को नोटिस देने के बाद पक्ष और विपक्ष के गवाहों और प्रमाणों को अच्छी तरह देख-सुन कर स्पेशल जज हर एक महाजन का मतालबा तय करेगा। (१४) डिगरी देने में स्पेशल जज अत्यधिक ब्याजी क़ानून के अनुसार चलेगा, और इस बात का ख़्याल रक्खेगा कि अर्ज़ी देने के दिन सूद की मात्रा उस दिन तक बाक़ी मूलधन से ज़्यादा न हो। अर्थात् प्रसिद्ध हिन्दू-स्मृतिकार दंडूपंत के सिद्धान्त के अनुसार काम करेगा।

इस नये क़ानून के मुताबिक ३१ दिसम्बर १९१६ तक जितना मूलधन और सूद इकजाई करके मूलधन बना दिया गया है वह तो क़ायम रहेगा, लेकिन ३१ दिसम्बर सन् १९१६ के बाद अगर किसी महाजन ने मूलधन और सूद इकजाई करके रक़म पर सूद चलाया है या किसी डिगरी में इस प्रकार चलाया गया है तो वह मूलधन नहीं माना जायगा। जोड़े हुए सूद की रक़म अलग कर दी जायगी और मूलधन बढ़ा कर ज़्यादा वसूल की हुई रक़म असल की अदायगी में समझी जायगी। इस क़ानून ने ३१ दिसम्बर १९१६ के बाद सूद की इकजाई रक़म को असल में बदल देने की प्रथा को नाजायज़ कर दिया है।

क़र्ज़ निम्नलिखित क्रम से अदा किया जायगा—

सबसे पहले लगान व मालगुज़ारी अदा की जायगी। फिर गवर्नमेंट या म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का दिया हुआ क़र्ज़। फिर क़र्ज़ या ज़मानत। उसके बाद वह क़र्ज़ जो दिये हुए सामान या की हुई सेवाओं के लिए दिया गया हो।

ब्योरा यह है कि जब स्पेशल जज किसी क़र्ज़दार रईस के क़र्ज़ के सम्बन्ध में उसकी और महाजन की सारी बातें सुन लेगा और पक्ष और विपक्ष की सारी युक्तियों पर विचार कर चुकेगा उस समय वह फ़ैसला देगा कि उक्त ज़मींदार को वास्तव में कितना रुपया देना है। उस क़र्ज़दार पर उतने रुपये की डिगरी करके स्पेशल जज डिगरी को इजराई के लिए कलक्टर के पास भेज देगा और उसे इस बात की भी सूचना दे देगा कि उक्त क़र्ज़दार रईस के पास कितनी जायदाद है जो, क़र्ज़ की अदायगी में कुर्क़, रहन या बय की जा सकती है (दफ़ा १९)। कलक्टर स्पेशल जज की डिगरी को पाकर क़र्ज़दार को दो महीने की मियाद देगा कि इसके अन्दर वह मतालबे का रुपया कलक्टर की अदालत में जमा कर दे और क़र्ज़ से छुट्टी पा जाय। स्पेशल जज के फ़ैसले के बाद एक महीने के अन्दर अगर कोई दरख़्वास्त देनेवाला अर्थात् क़र्ज़दार चाहे तो स्पेशल जज के फ़ैसले को मन्सूख़ कराने के लिए दरख़्वास्त दे सकता है। ऐसी हालत में अदालत विपक्षी का अदालती ख़र्च दिलाकर स्पेशल

जज का फ़ैसला मन्सूख़ कर देगी और उस क़र्ज़दार ज़मींदार का क़र्ज़ साधारण क़ानून के अनुसार वसूल होगा। (२०) इस क़ानून के अनुसार क़र्ज़दार रईस का क़र्ज़ संक्षेप में निम्नलिखित तरीक़े से अदा हो सकेगा—

(१) जब कलक्टर-द्वारा मियाद के अन्दर क़र्जदार रईस नक़द रुपया कलक्टर की अदालत में जमा कर दे। (दफ़ा २३)

(२) ज़मीन की मिलकियत के अलावा क़र्ज़दार की बाक़ी जायदाद को कुर्क़ और नीलाम करके क़र्ज़ अदा कर दिया जाय। (२४)

(३) जब नं० १ और नं० २ भी काफ़ी न हों तो ज़मीन रहन रख कर। (२५)

(४) जब क़र्ज़ की मात्रा से अरक्षित ज़मीन की क़िस्ती क़ीमत ज़्यादा है तब क़र्ज़ की अदायगी में स्थानीय गवर्नमेंट का २० वर्षीय बांड महाजन को मिल जायगा और क़र्ज़दार रईस को यह रक़म २० वर्ष के अन्दर गवर्नमेंट को अदा कर देना होगा (२७)

(५) अगर अरक्षित ज़मीन की क़िस्ती क़ीमत कम है और क़र्ज़ ज़्यादा है, लेकिन क़र्ज़ रक्षित ज़मीन की क़िस्ती क़ीमत और अरक्षित ज़मीन की बिक्री की क़ीमत से ज़्यादा नहीं है तो कलक्टर अरक्षित भूमि का कुछ हिस्सा बेच देगा और जो क़र्ज़ बाक़ी रह जायगा उसका बांड महाजन को दे देगा। (२८)

(६) अगर क़र्ज़ रक्षित ज़मीन की क़िस्ती क़ीमत और अरक्षित ज़मीन की बिक्री की क़ीमत से भी ज़्यादा है तो कलक्टर पूरी अरक्षित ज़मीन बेच देगा और बाक़ी क़र्ज़ के बदले में कलक्टर गवर्नमेंटी बांड महाजन को दे देगा। यह रक़म गवर्नमेंट ज़मींदार से २० वर्ष में सूद के सहित वसूल कर लेगी।

विशेष रूप से स्पष्ट करने के लिए हर एक तरीक़े को अलग अलग ब्योरा निम्नलिखित है।

पहला तरीक़ा—स्पेशल जज के यहाँ से कलक्टर के पास क़र्ज़दार रईस के ऊपर कुल जितनी डिगरियाँ हैं, आ जायँगी। कलक्टर क़र्ज़दार को नोटिस देगा कि वह अमुक रक़म उसकी अदालत में दो महीने के अन्दर जमा करे। अगर इस मियाद के अन्दर क़र्ज़दार रईस ने मतालबे की रक़म नक़द लाकर अदालत में जमा कर दी तो कलक्टर इस रक़म से उसका सब क़र्ज़ अदा करके डिगरियों को ख़त्म कर देगा। (दफ़ा २३) लेकिन अगर मियाद के ख़त्म हो जाने तक क़र्ज़दार मतालबे की पूरी रक़म कलक्टर की अदालत में न जमा कर सका तो जितनी रक़म वह जमा कर सकेगा उसी को कलक्टर क्रम से क़र्ज़ की अदायगी में लगायेगा और बाक़ी क़र्ज़ को निम्नलिखित तरीक़े से अदा करेगा—

सबसे पहले कलक्टर ज़मींदार की ज़मींदारी छोड़कर बाक़ी जितनी सम्पत्ति है और जिसके बारे में उसे स्पेशल जज ने सूचना दे दी है कि वह क़र्ज़ की अदायगी में रहन, बय या कुर्क़ हो सकती है, बेच देगा और उससे क़र्ज़ की अदायगी कर देगा। (२४) लेकिन अगर क़र्ज़दार रईस चाहे तो कलक्टर को उसके लिए उसका घर और माल-असबाब छोड़ देना होगा और सिर्फ़ बाक़ी सम्पत्ति का ही नीलाम करायेगा। कलक्टर को क़र्ज़दार की उक्त सम्पत्ति नीलाम करने के पहले उज़्रदारी सुननी होगी। अगर क़र्ज़दार रईस यह दरख़्वास्त दे कि उसका क़र्ज़ क़िस्तवार अदा कर दिया जाय और उसकी जायदाद से क़िस्त अदा हो सकती हो तो कलक्टर ज़मींदार की सम्पत्ति को नीलाम न करेगा। अगर ऐसा नहीं मुमकिन है तो कलक्टर ज़मींदारी के अलावा बाक़ी सारी जायदाद बेच कर उसका क़र्ज़ अदा कर देगा। (दफ़ा २४) अगर क़र्ज़दार ज़मींदार की ज़मींदारी के अलावा सारी सम्पत्ति बेच देने पर भी उसका क़र्ज़ अदा नहीं होता है तो कलक्टर अगर कोई मुरतहिन मिला और उपर्युक्त दोनों रहनों में किसी भी क़िस्म का रहन रखने के लिए तैयार हो गया तो वह उसकी $\frac{3}{4}$ मुनाफ़े की अरक्षित ज़मींदारी रहन रख देगा। अगर कोई मुरतहिन न मिला और न क़र्ज़दार रईस इतना काफ़ी रुपया ही जमा कर सका कि उसका क़र्ज़ अदा किया जा सके तो ऐसी हालत में अगर कलक्टर यह देखे कि क़र्ज़दार रईस का क़र्ज़ उसकी अरक्षित सम्पत्ति की क़िस्ती क़ीमत से कम है तो कलक्टर गवर्नमेंट-द्वारा बनाये हुए नियमों के अनुसार महाजनों को तो उनके मतालबे की

अदायगी में सरकारी बांड दे देगा और क़र्ज़दार रईस को हुक्म देगा कि २० बरस में इस रक़म को सूद के सहित जो ४½ प्रतिशत सालाना से ज़्यादा न होगा, सरकारी ख़ज़ाने में जमा कर दे। (दफ़ा २७)

मान लीजिए कि रईस क़र्ज़दार का ऋण इतना ज़्यादा है कि वह उसकी अरक्षित भूमि की क़िस्ती क़ीमत से अदा नहीं हो सकता, लेकिन रक्षित जायदाद की क़िस्ती क़ीमत और अरक्षित जायदाद की बिक्री की क़ीमत से अदा किया जा सकता है तो कलक्टर लोकल गवर्नमेंट के नियमों के अनुसार क़र्ज़दार रईस की अरक्षित जायदाद के कुछ अंशों को बेच देगा और उसके क़र्ज़ का जो हिस्सा बच जायगा उसे २० बरस में क़र्ज़दार रईस से मालगुज़ारी के साथ वसूल करने का हुक्म देकर महाजनों को उनके मतालबे की अदायगी के लिए २० बरस में अदा होनेवाले गवर्नमेंटी बांड दे देगा। (२८) यह भी हो सकता है कि किसी क़र्ज़दार रईस का ऋण इतना ज़्यादा है कि रक्षित सम्पत्ति की क़िस्ती क़ीमत से और अरक्षित सम्पत्ति की बिक्री की क़ीमत से भी अदा नहीं हो सकता। ऐसी हालत में कलक्टर क़र्ज़दार रईस की सम्पूर्ण अरक्षित सम्पत्ति महाजनों को दे देगा और बाक़ी रक़म २० बरस में रक्षित ज़मीन की क़िस्ती क़ीमत से वसूल कर लेगा। महाजनों को गवर्नमेंटी बांड मिल जायगा और गवर्नमेंट ज़मींदार से अपना मतालबा मय सूद के मालगुज़ारी के साथ २० बरस में वसूल करती रहेगी। (२८)

अगर क़र्ज़ पुश्तैनी है और पुश्तैनी जायदाद से ही क़ानून के मुताबिक़ वसूल हो सकता है तो इस क़ानून में कोई ऐसी बात नहीं पैदा की गई है जिससे क़र्ज़दार रईस की ग़ैर पुश्तैनी जायदाद ज़ेरबार हो जाय (४६) जिस वक़्त से कि क़र्ज़दार रईस ने इस क़ानून के अनुसार दफ़ा ४ में दरख्वास्त पेश कर दी और उस वक़्त तक कि कलक्टर इस दरख्वास्त के मुताबिक़ क़र्ज़दार रईस के ऋण की अदायगी दफ़ा २७, २८, २६ में नहीं कर लेता, क़र्ज़दार रईस न तो ख़ुद दिवालिया होने की दरख्वास्त दे सकता है और न कोई दूसरा। (४८) अगर क़र्ज़दार रईस ने अपने पूर्वजों की जायदाद का कुछ हिस्सा काम में ले लिया है उस हालत में उसकी ज़ाती जायदाद भी इस क़ानून के मुताबिक़ पैतृक ऋण अदा करने के लिए कुर्क़ कर ली जा सकती है।

अगर उक्त क़र्ज़दार को कुछ ज़ाती क़र्ज़ देना है, और जिसकी माँग स्पेशल जज के सामने पेश हो गई है, तो उस हालत में स्पेशल जज क़र्ज़दार रईस की ग़ैर पैतृक सम्पत्ति कुर्क़ कर सकता है और उससे यह कह सकता है अगर तुम यह नहीं चाहते तो—

(१) तुम अपनी दरख्वास्त वापस ले लो।

(२) अपना ज़ाती क़र्ज़ अदा कर दो।

(३) जो पैतृक सम्पत्ति से फ़ायदा उठा लिया है उसके बदले में रक़म जमा कर दो।

अगर कोई रईस दरख्वास्त देने के बाद मर जाय और कलक्टर के ज़रिये से क़र्ज़ की अदायगी न हो चुकी हो तो भी मुक़द्दमा ज्यों का त्यों चलेगा गोया रईस ज़िन्दा है और उसके वारिसों को उसी की तरह अपनी जायदाद को रहन या बय करने का हक़ न होगा।

दर्जा दो के स्पेशल जज के फ़ैसले की अपील डिस्ट्रिक्ट जज के यहाँ होगी और स्पेशल जज (दर्जा अव्वल) की अपील चीफ़ कोर्ट या हाईकोर्ट में होगी। कलक्टर के यहाँ की अपील बोर्ड आफ़ रेवेन्यू में होगी।

(५) संयुक्त-प्रांत का अत्यधिक ब्याज का क़ानून

यह क़ानून गवर्नर-जनरल द्वारा १० अप्रेल १६३५ को स्वीकृत हुआ। यह क़ानून २७ अप्रेल १६३५ के बाद जो मुक़द्दमे दायर होंगे उन्हीं पर लगेगा और हर एक क़िस्म के ऋण पर आयद होगा, चाहे वह कृषि-सम्बन्धी हो या ग़ैर कृषि-सम्बन्धी।

इस क़ानून के अनुसार अदालत को यह अख़्त्यार दिया गया है कि किसी मुक़द्दमें में जिसे महाजन ने अपना क़र्ज़ वसूल करने के लिए २७ अप्रेल १६३५ के बाद दायर किया हो या किसी क़र्ज़दार ने महाजन से अपना हिसाब माँगने के लिए चलाया हो या किसी ऐसे मुक़द्दमे में जिस पर "अत्यधिक ब्याज का क़ानून" लगता हो; अगर अदालत को प्रतीत हो कि उक्त मामले में ब्याज अत्यधिक है या

यह कि पक्षों के बीच में जो शर्तें तय पाई हैं, काफ़ी अन्यायपूर्ण हैं तो अदालत निम्नलिखित बातें कर सकती है

(१) उक्त व्यवहार का हिसाब फिर से खोल दे। दोनों पक्षों के जमा-खर्च और लेन-देन का ब्योरा देखे और अगर क़र्ज़दार से अत्यधिक ब्याज ले लिया गया है तो उससे उसे मुक्त कर दे।

(२) यदि दोनों पक्षों ने अर्थात् महाजन और क़र्ज़दार ने मुआहिदा करके या दस्तावेज़ लिखकर यह तय कर लिया है कि पुराना हिसाब-किताब बन्द कर दिया जाय और नया हिसाब नये सिरे से चले, तो भी अदालत पुराने बन्द हिसाब को फिर से खोल सकती है और क़र्ज़दार को अत्यधिक ब्याज से (अगर उससे अत्यधिक ब्याज लिया गया है) मुक्त कर देगी और अगर अत्यधिक ब्याज की सूरत से कोई रक़म हिसाब में डाली जा चुकी है या अदा की जा चुकी है तो उसे वापस करा देगी।

(३) अदालत को अख़्त्यार है कि किसी ऋण के सम्बन्ध में किसी दी हुई ज़मानत या किये हुए मुआहिदे को पूर्णतया अथवा अंशतः रद कर दे या बदल दे। यदि महाजन ने ज़मानत की वस्तु अपने पास से अलग कर दी है तो अदालत उसे यह हुक्म दे सकती है कि क़र्ज़दार की क्षति-पूर्ति करे। किन्तु अदालत 'कोई ऐसा मुआहिदा फिर से न खोलेगी जिसका तात्पर्य पहले का हिसाब-किताब बन्द करना और एक नया उत्तरदायित्व स्थापित करना होगा, जो (मुआहिदा) पक्षों ने या उन मनुष्यों ने जिनसे वे अपना अधिकार स्थापित करते हैं ऐसी तिथि में किया होगा जो मामले की तिथि से सत्रह वर्ष से अधिक हो'। इस क़ानून के मुताबिक़ प्रथम रहन-द्वारा सुरक्षित क़र्ज़ों पर अगर १२% प्रति सालाना से ज़्यादा सूद लिया गया है तो वह अत्यधिक ब्याज माना जायगा। लेकिन अगर कोई क़र्ज़ प्रथम रहन-द्वारा सुरक्षित नहीं है तो अदालत १२% प्रतिशत से अधिक भी सूद दिला देगी। असुरक्षित क़र्ज़ पर २४% से ज़्यादा ब्याज अत्यधिक है। किन्तु ६% अधिक नहीं समझा गया है। सुरक्षित क़र्ज़ पर ७% सूद ज़्यादा नहीं है, लेकिन १२% ज़्यादा माना गया है।

(६) किसानों को ऋण देने का क़ानून

असल में यह क़ानून १८७६ के तक़ावी क़ानून का संशोधित रूप है और सारे प्रान्त में लागू कर दिया गया है। इस क़ानून के अनुसार ज़मीन के "मालिक और दख़ील" ही गवर्नमेंट से क़र्ज़ पा सकेंगे। अवध के साधारण किसान जिनको ज़मीन में सिर्फ़ आजीवन ही अधिकार है या आगरा-प्रान्त के साधारण किसान इस क़ानून के अनुसार गवर्नमेंट से क़र्ज़ नहीं पा सकते। इस क़ानून के अनुसार गवर्नमेंट ज़मींदारों को जो खेती की ज़मीन के मालिक और दख़ील हैं, (१) कष्टनिवारण के लिए, (२) मौजूदा क़र्ज़ अदा करने के लिए, (३) बीज और पशु ख़रीदने के लिए या (४) खेती की ज़मीन ख़रीदने के लिए रुपया उधार देगी।

उपर्युक्त क़र्ज़ के क़ानून महाजनों की दृष्टिकोण से निम्नलिखित बातों में त्रुटिपूर्ण हैं—

(१) महाजनों को उनका मतालबा बहुत दिनों में अर्थात् क़रीब २० बरस में वसूल होता है।

(२) सूद कम कर दिया गया है।

(३) क़र्ज़दार के पास प्रतिवर्ष हिसाब भेजना पड़ता है। अगर महाजन हिसाब न भेजे तो उसे सूद और अदालती खर्च से हाथ धोना पड़ता है।

(४) सूद असल से कभी न बढ़ता।

(५) महाजन को क़र्ज़दार की ज़मीन मौजूदा भाव पर नहीं बल्कि सन् १३३८ फ़सली के पहले के भाव पर ख़रीदनी पड़ती है।

(६) क़र्ज़ के अदा न करने पर ज़मींदार को महाजन अब गिरफ़्तार नहीं करा सकता।

(७) छोटे किसानों की डिगरियाँ और क़र्ज़ में २५% से ३५% की कमी कर दी गई है।

विवाह की कुछ विचित्र प्रथायें



लेखक,
श्रीयुत मार्कण्डेय वाजपेयी
एम० ए०, एल-एल० बी०

विवाह-संस्कार संसार में सब कहीं है, पर सब जगह एक-सा नहीं है। इसकी बड़ी ही विचित्र प्रथायें प्रचलित हैं। श्रीयुत कार्नोकन ने अफ़्रीका की प्रथाओं का कुछ विवरण लिखा है। वे सात वर्ष तक वहाँ की असभ्य जातियों के बीच में रहे हैं।

यों तो प्रायः वहाँ की सभी जातियों की प्रथायें विचित्र हैं, पर 'वाकोनोंगो' नामक जाति की प्रथा विशेषतः उल्लेखनीय है। पश्चिमी टैंगानीका के प्रदेश में छोटे छोटे गाँवों में इस जाति के लोग निवास करते हैं। ये लोग स्वस्थ और अच्छे आचरणवाले होते हैं। इनके यहाँ दस वर्ष की कन्या का पन्द्रह वर्ष के लड़के के साथ विवाह होता है, जिसमें कन्या वर के हाथ बेच दी जाती है। पर शायद ही कभी उनका यह विक्रय उनकी इच्छा के विरुद्ध होता हो। साधारणतः उनका वैवाहिक जीवन सुख-पूर्ण होता है। पति अपनी पत्नी के साथ कभी बुरा व्यवहार नहीं करता और पत्नी भी पतिव्रता होती है। यदि वह दुराचारिणी हुई और दुराचार में पकड़ी गई तो तलाक़ भाले की नोक पर होता है। इसलिए जिसे अपनी जान प्यारी होती है वह सदाचारिणी ही रहती है। मगर वर्ष में एक दिन ऐसा होता है जब उस दिन रात को पत्नी जितने उपपति चाहे, कर सकती है। जब अनाज कट कर आ चुकता है तब दावतें होती हैं और शादी का बाज़ार गर्म होता है। इस त्योहार की प्रथम रात्रि में स्त्रियाँ उपपतियों को वर लेने में पूर्णतया स्वतन्त्र होती हैं। वाकोनोंगो में विवाह या तो प्रेम के कारण या अपनी सत्ता बढ़ाने के लिए होता है। इन लोगों के प्रायः बहुत-सी पत्नियाँ होती हैं, पर पहला विवाह प्रायः प्रेम के कारण ही होता है। इसलिए पहली पत्नी प्रधान पत्नी कहलाती है और वह अपनी सौतों को नौकरानियाँ समझती है। परिवार में मामा प्रधान व्यक्ति समझा जाता है। वह 'माजोम्बा' कहलाता है। वही शादियों का दलाल होता है। पत्नी का मूल्य वही तय करता है। जो पति अपनी पत्नी का जितना ही अधिक दाम देता है वह उससे उतना ही अधिक अपना गौरव मानता है। और जो पत्नियाँ कम दामों में खरीदी जाती हैं वे उस बात से लज्जित रहती हैं। २२५ रुपये सबसे ऊँचे दाम हैं, पाँच बैल मामूली दाम हैं और दस बकरे ग़रीबों के दाम हैं। यह भी हो सकता है कि दाम एक दफ़े में ही न दिये जायँ और धीरे धीरे अदा किये जायँ, पर ऐसा करने में बड़ी बेइज्ज़ती समझी जाती है। दाम तय होने के पहले दोनों ओर की वंशावलियों के नाम गिनाये जाते हैं। प्रत्येक बच्चा ५०० वर्ष के या उससे अधिक के अपने पूर्वजों के नाम जानता रहता है। यदि पूर्वजों के नाम दोनों ओर एक हुए तो विवाह नहीं होता है। दाम तय हो जाने पर ज्योतिषी बुलाये जाते हैं। यदि उनकी भी सम्मति अनुकूल हुई तो विवाह तय होता है। शादी अक्टूबर के महीने में होती है और तीन दिन उसमें लगते हैं। वर-वधू एक दूसरे को तीसरे दिन के अन्त तक नहीं देख पाते हैं। शादी की रात को उन दोनों के बीच में माता-पिता, माजोम्बा, बहन, भाई इत्यादि रहते हैं। शादियों से बहुत दिन पहले शराब बनना शुरू हो जाती

है। दावत में खाना नहीं दिया जाता, शराब ही चलती है। कार्नोकन साहब ने एक दावत में हज़ार गैलन शराब खर्च होते देखी है। दावत के पहले दिन वर के मामा वधू के दाम लेकर और युद्ध के वस्त्र पहनकर वधू के मकान पर जाते हैं। उधर वधू के मामा दरवाज़ा रोककर वर के मामा लोगों का धावा रोकने की निष्फल चेष्टा करते हैं। वर के मामा आख़िर में आँगन में घुस जाते हैं। वधू का पिता उनसे दाम वसूल करता है और फिर उन्हें शराब पिलाता है। संध्याकाल तक विश्राम करने के लिए वे लोग फिर अपने घर लौट जाते हैं। रात को दावत होती है और सुबह तक वधू जितने पुरुषों के साथ चाहती है, विहार करती है। पहली रात को पति कुछ नहीं बोल सकता चाहे उसे कितनी ही तकलीफ़ हो। सूर्योदय के कुछ घण्टों के बाद विवाहित स्त्रियाँ वधू के पास जाती हैं। उस समय वहाँ क्या होता है, किसी को नहीं मालूम होने पाता। जिन पुरुषों के जुड़वाँ बहनें होती हैं उन्हें वहाँ का हाल बताया जाता है। पर उनसे किसी और को न बताने की क़सम ले ली जाती है।

तीसरे दिन दोपहर के बाद दावत शुरू होती है। शराब के दौर चलते हैं, नाच होता है और ढोल बजते हैं। वर भी वहाँ पर होता है और अपने मामा के पास बैठता है। क़रीब चार बजे के कोई दर्जन भर औरतें कुटिया से चिल्लाती हुई निकलती हैं। उनके साथ एक लम्बी और पतली बेसिर और बेहाथ की-सी सफ़ेद कपड़े से ढँकी हुई मूर्ति होती है। उस मूर्ति के आगे पीछे औरतों की क़तार होती है। और वह मूर्ति वर के सम्मुख आकर ठहर जाती है। वधू की एक बहन वर को पकड़कर उसके सामने



अफ़्रीका के वाको तोङ्गो में दूल्हा, अपनी बहन के कंधे पर बैठी हुई खड़िया मिट्टी से रंगी एक सफ़ेद मूर्ति पर से पर्दा हटाता है। वही मूर्ति उसकी वधू होती है।



इस्कीमों में विवाह की सिर्फ़ एक रस्म है। वर-वधू भयानक रूप से आपस में लड़ते हैं।

खड़ा कर देती है और उसे धका देकर उस विचित्र लम्बी मूर्ति का उससे सामना कराती है। वर ज़रा झेंपकर उस कपड़े को हटाता है और उसके भीतर अपनी बहन के कन्धों पर बैठी हुई वधू मिलती है। वधू के बालों में रंग-बिरंगी तसवीरें होती हैं और उसका नंगा बदन सफ़ेद रँगा होता है। वर उसे नीचे उतारता है और दीवार के पास उसे ले जाकर उसका हाथ पकड़ कर बैठता है। उस समय दोस्त और रिश्तेदार गन्दा मज़ाक करते हैं। इसके बाद अँधेरा छा जाता है। अतिथि अपने अपने घर चले जाते हैं और वर वधू के घर जाता है। रात को वधू, वधू के माता-पिता, वधू के भाई, वधू के मामा और अन्त में वर इस क्रम से एक जगह सोते हैं। सूर्योदय होने पर असली संस्कार होता है। बाद में मामा लड़की के सामने खड़ा होकर बड़ी गंभीरता से वधू से पूछता है कि 'क्या वह अच्छा पति था?" वधू यदि उत्तर नहीं देती है तो मामा वर से घूमकर पूछता है कि "क्या वह अच्छी पत्नी थी?" यदि दोनों में कोई उत्तर नहीं देता तो वे पति-पत्नी हो जाते हैं और यदि दो में से किसी ने उत्तर में 'नहीं' कहा तो विवाह नहीं होता और वधू का मूल्य लौटा दिया जाता है। वधू कोई विवाह के वस्त्र नहीं पहनती है, पर उसके सिंगारदान में किलोती नाम की एक जड़ के टुकड़े रहते हैं, जिन्हें खा लेने से बदन से एक ख़ास तरह की सुगन्धि आती है।

यह तो हुआ अफ़्रीका का एक उदाहरण। अब उत्तरी ध्रुव के बर्फ़ीले प्रदेशों में रहनेवाली इस्कीमो जाति के विवाह-संस्कार की एक बानगी लीजिए। इन लोगों के सम्बन्ध में पीटर फ्रय-रवेन नामक एक महोदय ने ख़ूब लिखा है। इस जाति में विवाह-संस्कार में केवल इतना ही होता है कि वर-वधू में पहले घोर द्वन्द्व-युद्ध होता है और अन्त में वर अपनी वधू को अपने कन्धे पर लादकर बरबस अपनी बर्फ़ पर फिसल कर चलनेवाली स्लेज़-गाड़ी तक ले जाता है। उस युद्ध का वृत्तान्त श्रीयुत फ्रय-रवेन ने बड़ा रोचक दिया है। वे एक बार मायार्क नामक ग्राम-मुखिया के उसके बर्फ़ के बने हुए गोल मकान में अतिथि थे। दावत हो रही थी। बर्फ़ीले प्रदेशों में पाये जानेवाले मांस का भोजन था और मायार्क की लड़की सौनेक़ की क्रीसुक के साथ शादी थी। क्रीसुक चुपचाप आकर दावत को देख रहा था। सौनेक़ ने इतने में ही डकार ली। इन लोगों में डकार लेकर यह प्रदर्शित किया जाता है कि खानेवाला पेट भर खा चुका है। क्रीसुक ने डकार सुनकर कहा—"कोई स्त्री मेरी गाड़ी पर चलकर सवार हो जाय तो अच्छा हो।" गाड़ी पर सवार होना ही शादी की रस्म थी। देखने में बड़ी आसान मालूम होती है, पर इस रस्म का अदा करना इतना आसान न था। सौनेक़ ने ज़ोर से हँसते हुए कहा—"मुझे ऐसा मालूम होता है कि

कोई बोल रहा है।" सब लोग क्रीसुक की ओर देखने लगे। क्रीसुक ने ख़फ़ा होकर बड़े ज़ोर से चिल्ला कर कहा—"चल, चल। सुनती नहीं है?" लड़की ने चिढ़ाने के लिए उत्तर दिया—"जा भी। पहले खा तो लें, फिर सोने की देखी जायगी।" सब लोग हँसने लगे। क्रीसुक की आँखों में ख़ून उतर आया। उसने लपककर अपनी प्रेमिका को पकड़ा और उसे उठाकर अपने कन्धे पर डालने की कोशिश की। पर उसने लात-घूँसे चलाये। एक लात पेट में और एक घूँसा नाक पर पड़ते ही दूल्हा साहब नाक के बल ज़मीन पर दिखाई दिये। उठ कर बड़े धीरज से क्रीसुक ने कहा "यह औरत किसी भी आदमी के लिए तगड़ी है। कोई इसे उठाकर अपनी गाड़ी पर ले जायगा और फिर इसकी शक्ति का उपयोग अपने काम-काज में करेगा।" फिर द्वन्द्व-युद्ध बड़ा घनघोर छिड़ा। सबसे ज़्यादा मज़ा ससुर साहब को आया, क्योंकि दुनिया को उन्होंने दिखा दिया कि लड़की का विवाह एक योद्धा के साथ हुआ है। पर सास साहबा के नये कपड़े इस छीना-झपटी में ख़तरे में पड़ गये। उन्होंने चिल्लाकर अपनी लड़की से कहा—"अब बस करो। अपने कौमार्य की रक्षा के लिए बड़ा अच्छा युद्ध कर चुकी।" पर सौनेक़ जवान थी। उसने बात अनसुनी कर दी। द्वन्द्व-युद्ध में कुलाटें खाते खाते योद्धाओं ने लालटेन भी तोड़ डाली। अँधेरे में हाँफने की आवाज़ और अरदब में आ जानेवाले दर्शकों का चीत्कार ही सुन पड़ता था। एक लड़ती-झगड़ती पूरी जवान औरत को बर्फ़ीले मकान के तंग दरवाज़े से उठाकर ले जाना आसान काम नहीं था। पर क्रीसुक ने मर्दानगी की आन में आकर आखिर उसे, भी किया। बाहर पहुँचकर भी सौनेक़ ने युद्ध करना न बन्द किया। पर वह युद्ध केवल उन दर्शकों की ख़ातिर था जो भीतर न आ पाये थे। दोनों थक गये थे और दोनों लोहूलुहान हो रहे थे, पर प्रसन्न थे। एक दूसरे के युद्ध की सराहना

अरबी विवाह



कर रहे थे और वह युद्ध वास्तव में लोगों को बहुत दिनों तक याद रहा। इस तरह से विवाहित हो जाने पर वे समुद्र-तट की ओर चले गये और वहाँ से तभी लौटे जब बहुत-सा मांस और बहुत-सी भालुओं की खालें उन्हें मिल गईं। लौटकर उन्होंने एक बड़ी दावत की और अपना सुख और हर्ष दर्शाया।

जापान का हाल श्रीयुत अपटन क्लोज़ ने लिखा है। वहाँ शादियाँ दलाल तय करते हैं। वे दलाल नाकाडो कहलाते हैं। लड़की जब बड़ी हो जाती है तब लड़की के माता-पिता और पास का नाकाडो मिलकर तय करते हैं

कि अब शादी का समय आ गया है। नाकाडो लड़का बताता है और उसके बाद वर-वधू एक दूसरे को प्रथम बार देखते हैं। यदि दो में से कोई भी एक दूसरे को पसन्द न आया तो बात वहीं पर ख़त्म हो जाती है। पर ऐसा बहुत कम होता है। एक दूसरे को पसन्द कर लेने पर कपड़ों की सौगात एक दूसरे को भेजी जाती है। फिर मुहूर्त विचार कर विवाह का शुभ दिवस निश्चित किया जाता है। वधू को उस दिन खास कपड़े पहनाये जाते हैं। और उसके बाल खास तरह का जूड़ा बनाकर बाँधे जाते हैं। पहले उसके मुँह और उसकी गर्दन पर सफ़ेद चन्दन लगाया जाता है और फिर उसे सफ़ेद कपड़े पहनाये जाते हैं। वे कपड़े मृत्यु-शोक के सूचक होते हैं। और उनके पहनाने का तात्पर्य यह होता है कि उस दिन से वधू अपने पिता के घरवालों की दृष्टि में मर जाती है। पर उन सफ़ेद कपड़ों के नीचे वधू रेशमी लाल रंग के कपड़े पहनती है। लाल रंग जापान में जन्म के आनन्द का सूचक है और उसके प्रयोग का तात्पर्य यह होता है कि वधू का अपने पति के घर में जन्म हुआ है। एक स्थान में मृत्यु का शोक है तो दूसरे स्थान में जन्म का आह्लाद। संसार की यही रीति है। जापानी यही बात इतनी अच्छी तरह अपने शादी के रवाज में व्यक्त करते हैं। वस्त्र पहन चुकने पर वधू अपने पिता के गृहदेवों की मूर्तियों के सम्मुख जाती है और वहाँ अपने पूर्वजों की आत्माओं को सदा के लिए प्रणाम करती है। जैसे ही वह अपने पिता के घर से बाहर निकलती है, घर बुहारा जाता है और दरवाज़े पर नमक छिड़क दिया जाता है। वधू का जुलूस वर के घर पर पहुँचता है और उसके स्वागत के लिए वहाँ बहुत-से लोग जमा होते हैं। वधू और वर एक दूसरे का अभिवादन झुककर करते हैं और फिर दोनों एक छोटे-से नीचे टेबिल के सामने बैठते हैं। टेबिल पर शराब की तीन प्यालियाँ रक्खी होती हैं, वर और वधू उन्हीं में से एक एक घूँट एक एक करके पीते हैं। पहले वधू एक घूँट पीती है, फिर वर उसी प्याली से एक घूँट पीता है। फिर वधू पीती है और फिर वर पीता है, यहाँ तक कि प्यालियाँ ख़ाली हो जाती हैं। विवाह का संस्कार शराब का इस तरह पीना ही है। इसे सान-सान-कू-डो कहते हैं। सान-सान-कू-डो का शाब्दिक अर्थ "तीन बार तीन बार" है। इसका तात्पर्य क्या है; किसी को ठीक तरह नहीं मालूम है। इसके बाद वधू उठकर दूसरे कमरे में जाती है और वहाँ शोक-सूचक श्वेत वस्त्र उतारकर काले या गहरे लाल वस्त्र पहनती है। इसी पोशाक में वह अतिथियों के साथ दावत में शरीक होती है। वधू को दो बार वस्त्र और बदलने पड़ते हैं। पहले तो वह रंगीन कपड़े पहनती है, फिर रात्रि के वस्त्र पहनती है। उसके रात्रि के वस्त्र पहनने पर अतिथि उठकर चले जाते हैं। जापानी विवाह में कोई धार्मिक संस्कार नहीं होता है। राज्य का भी विवाह से कोई सम्बन्ध नहीं होता। केवल पुलिस को ख़बर दे दी जाती है, और वह भी इसलिए कि जापान में पुलिस को यह जानना आवश्यक है कि किसके कौन रिश्तेदार हैं और कौन रात में कहाँ सोता है। दलाल का पेशा जापान में बड़ा ऊँचा समझा जाता है और यद्यपि बड़े घरानों में उसका कोई काम नहीं होता, तो भी नाम के लिए उसकी उपस्थिति वहाँ भी अनिवार्य है। तलाक़ जापान में जायज़ है और ऊँचे घरानों के अतिरिक्त साधारण जनों में अच्छा समझा जाता है। दलाल दूसरा वर या दूसरी वधू फ़ौरन बताने को तैयार रहता है। पर तलाक़ के बाद नौ महीने तक विवाह नहीं हो सकता।

वर्तमान रूस के विवाह-संस्कार का हाल श्रीमती रूथ एपर्सन केनेल ने लिखा है। सोवियट शासन के पहले विवाह गिरजाघरों में हुआ करते थे। पर जिन लोगों के पास उन विवाहों के लिए पैसा न होता था वे बिना किसी संस्कार के ही पति-पत्नी के रूप में रहने लगते थे। अब भी लोग अक्सर यही करते हैं। रूस में (कोई भी बच्चा क़ानून से वर्णसंकर नहीं है। फिर भी रूसी सरकार ऐसे विवाहों को दबाने का प्रयत्न कर रही है। विवाह और तलाक़ को उसने इतना आसान बना दिया है कि विवाह संस्कार अब धीरे धीरे लोकप्रिय हो चला है। हर जगह सरकारी दफ़्तर मौजूद हैं। उसमें एक टेबिल विवाह दर्ज करने के लिए है और दूसरा तलाक़ के रजिस्टर के लिए होता है। श्रीमती केनेल ने आइवन आइवानोविच और मारुस्या का

विवाह स्वयं होते देखा था। जो लड़की विवाह का रजिस्टर लिये बैठी थी वह कुछ औंघाई हुई और कुछ खीजी हुई थी। आइवन की बारी आने पर उससे व्यवसाय, जन्म-तिथि, परिवार की स्थिति और स्वास्थ्य-सम्बन्धी सवाल पूछे गये। इन सबके बारे में आइवन ने दस्तावेज़ दाख़िल कर दिये। वही मारुस्या ने भी किया। नाम के लिए फ़ीस भी दाख़िल कर दी गई और आइवन और मारुस्या पति-पत्नी हो गये। उन दोनों के पास अलग कमरा लेने के लिए रुपया न था। आइवन और उसका एक साथी एक कमरे में रहते थे और मारुस्या छात्रों के एक बोर्डिंग में रहती थी। शादी के कुछ सप्ताहों के बाद श्रीमती केनेल ने मारुस्या से पूछा—तुम्हें विवाहित जीवन कैसा पसन्द आया? उत्तर में मारुस्या ने कहा—मैं कैसे बताऊँ? मैं आइवन के यहाँ जा नहीं सकती। आइवन मेरे यहाँ आ नहीं सकता। और जब मैंने एक कमरा गर्मी भर के लिए ठीक किया तब आइवन की हिम्मत न पड़ी कि वह गृहस्थों में अपना नाम लिखाये, क्योंकि ऐसा करने से उसका कमरा सरकार उससे छीन लेती। और बिना पुलिस में इस तरह की इत्तिला किये हुए आइवन मेरे साथ रात में रह नहीं सकता। इसलिए हम लोग साथ तो रह ही नहीं सकते। गाँवों में अभी गिरजाघरों में विवाह-संस्कार प्रचलित है। सरकारी दफ़्तरों में विवाह दर्ज हो जाने के बाद पुराने रंगीन कपड़ोंवाले विवाह गिरजाघरों में अब भी होते हैं। पर शहरों में अक्सर समय और परिस्थिति के अनुसार विवाह होते और टूटते हैं। कोई अपना कमरा दूसरे को किराये पर नहीं दे सकता, इसलिए अक्सर लोग मकान-मालकिन से ही विवाह कर लेते हैं। जो कुमार पूरे एक कमरे का मालिक है वह अमीर है और कुमारियाँ उससे विवाह करने को बहुत उत्सुक रहती हैं, और एक कमरे की मालकिन कुमारी को भी विवाह के इच्छुक कुमार घेरे रहते हैं। बाद में यदि परिस्थिति में अन्तर हो जाता है तो तलाक़ से विवाह टूट जाता है। फिर भी विवाह प्रायः प्रेम के कारण ही होते हैं।

अरब-लड़की के जीवन में विवाह का दिवस सबसे महत्त्वपूर्ण होता है। उसका हाल जूना बार्नेत ने लिखा है। भारतीय और अरब-विवाह में बहुत कुछ समता है, विशेषतः भारतीय मुसलमानी विवाह में और अरब-विवाह में। अरब-विवाह धार्मिक नहीं है, बरन क़ानूनी और सांमाजिक है। निकाह निकाहनामा अथवा विवाह-पत्र से होता है। महर अर्थात् दहेज़ से कन्या का विक्रय-सा होता है। छुहारों से लगाकर महल तक दहेज़ में शामिल होते हैं। इन्हें देकर कन्या ख़रीदी-सी जाती है। शादी तय हो जाने पर और निकाहनामा लिखे जाने पर वधू सजाई जाती है। चाँदी की बालियाँ और चाँदी के कड़े-छड़े उसे पहनाये जाते हैं, मुँह रँगा जाता है, आँखों में सुर्मा लगाया जाता है, हिना से बाल रँगे जाते हैं और हाथों-पैरों पर भी रंग चढ़ाया जाता है। वस्त्र श्वेत पहनाये जाते हैं। मुहूर्त देखकर जुलूस गोधूलि-वेला के समय घर से निकलता है। दिन भर मेहमानों की ख़ातिर की जाती है, पर अलग अलग। लड़की के घरवाले अपने मेहमानों को खिलाते-पिलाते हैं और लड़केवाले अपने मेहमानों को। इतर लगाया जाता है, गुलाबजल छिड़का जाता है, हर तरह की ख़ातिर होती है। जुलूस डोली के साथ साथ चलता है। चार आदमियों के कन्धों पर लदकर सजा हुआ मियाना चलता है। उसमें वधू बैठी होती है। ख़ूब बाजे बजते हैं, गाने गाये जाते हैं, आतिशबाज़ी छूटती है, मशालें जलती हैं। गरज़ यह कि वधू की वही दुर्गति होती है जो भारत में होती है। वर के दरवाज़े पर पहुँचने पर सब आदमी बाहर रह जाते हैं, वधू भीतर जाती है। भीतर औरतें एक अर्ध-चन्द्र के आकार में बैठी हुई ढोलकें पीटती हैं। एक ऊँची वेदी पर दूल्हा-मियाँ बैठे होते हैं। उनकी रिश्तेदार औरतें एक एक करके उनके सामने जाती हैं और उनका गाल चूमती हैं। फिर मा वधू का हाथ पकड़े हुए भीतर दाख़िल होती है। वधू के सिर से रेशमी बुर्क़ा हटाया जाता है। वह तीन बार अपने पति के सामने घुमाई जाती है और उसे अपनी आँखें बन्द रखनी पड़ती हैं। तीसरे चक्कर के बाद वर उठता है और वधू का हाथ पकड़कर भीतर के कमरे में चला जाता है। शादी ख़त्म हो जाती है और दरवाज़ा बन्द हो जाता है। अरबों का विवाह-संस्कार ऐसा ही होता है।

श्रीमती मार्गरिट मीड ने न्यू-गिनी की विवाह-प्रणाली का बड़ा मनोरंजक वर्णन किया है। न्यू-गिनी साउथ-सी द्वीप-समूह का एक द्वीप है। वहाँ की भूमि पथरीली और बेहद ऊँची-नीची है, इस कारण तीन मकान भी एक साथ नहीं बनाये जा सकते हैं। वहाँ पैदावार भी बहुत कम होती है और अकाल सदा सामने रहता है। जहाँ खाद्य पदार्थ बड़ी मेहनत से उत्पन्न किये जाते हैं, उसी प्रकार अरापेश-जाति में पत्नी भी बढ़ाई जाती है। लड़का जब छोटा होता है तभी से पिता को विवाह की चिन्ता सताती है। सात या आठ बरस की सुशील लड़की ढूँढ़-कर पसन्द की जाती है और लड़के और लड़की के माता-पिताओं में बहुत कुछ बातचीत होने के बाद दोनों की सगाई हो जाती है। सगाई की रस्म बड़ी विचित्र है। लड़का अपनी भावी पत्नी के सिर पर जाल का एक थैला रख देता है और सगाई पक्की हो जाती है। सगाई के बाद से लड़की अपने भावी पति के घर में रहती है। लड़के के माता-पिता उस पर बड़ी कड़ी निगाह रखते हैं। लड़का बाग़ में और जंगल में काम करके खाने का सामान लाता है, जिसे खाकर लड़की का बदन बने! जब लड़की जवान होती है तब उससे पाँच दिन का व्रत कराया जाता है और उसके बदन पर बिच्छू-घास खूब मली जाती है। लड़का बहुत ढूँढ़कर जंगल से जड़ी-बूटी लाता है और उनके साथ एक रतालू मिलाकर उस सबकी तरकारी बनती है। पाँच दिन के व्रत के बाद लड़की को वही तरकारी खिलाई जाती है। रतालू का आधा भाग लड़की को उसी समय खाना पड़ता है और आधा भाग लड़का अपने पास प्रथम सन्तान होने तक सुरक्षित रखता है। उसे वह इसलिए रखता है कि कहीं ऐसा न हो कि उसकी पत्नी जादूगरों को उसका कोई कपड़ा या बचा हुआ खाना न दे दे। न्यू-गिनीवालों का विश्वास है कि यदि जादूगर उस कपड़े को या बचे हुए खाने को तमाखू की तरह चिलम में रखकर पी लेगा तो कपड़े का मालिक टोटके से मर जायगा। इसलिए यह ज़रूरी है कि पति आधा रतालू अपने पास रक्खे, जिससे ऐसा मौक़ा आने पर वह खुद उसी रतालू से जादू कराके पत्नी को मरवा सके। पत्नी इसी डर के मारे पति के खिलाफ़ कुछ नहीं करती है। पर यह सब फ़र्ज़ी बातें ही रहा करती हैं, क्योंकि न्यू गिनी में पत्नियाँ अपने पतियों से बहुत प्रेम करती हैं। विवाह का कोई संस्कार नहीं होता है। दोनों बड़े हो जाने पर पति-पत्नी हो जाते हैं और यह बात इससे ज़ाहिर हो जाती है कि पत्नी स्वयं अपने हाथ से खाना पकाकर अपने पति को खिलाती है। जिस दिन यह हो जाता है, माता-पिता समझ जाते हैं कि विवाह हो चुका। यदि लड़की जल्दी जवान हो गई और लड़का तब तक जवान न हुआ तो लड़की दूसरे किसी रिश्तेदार को ब्याह दी जाती है। पर यह अच्छा नहीं समझा जाता, क्योंकि पत्नी वही अच्छी होती है जिसका बदन उसका पति ही बनाता है। जीवन भर पत्नी अपने बदन के लिए अपने पति की आभारी होती है और यदि उसे खाना पकाने में देर हुई तो पति कह सकता है कि "मैंने तुम्हें बनाया। मैंने रतालू बोये, मैं साबूदाना लाया, मैंने कंगारू और कैसोवरी का शिकार किया, मैंने तुम्हारा बदन बनाया। जल्दी खाना बनाओ।"

रहस्य

लेखक, श्रीयुत राजाराम खरे

उमड़-उमड़ आती है ज्यों-ज्यों
चक्षु-स्रोत में आँसू-धारा।
क्यों होता जाता क्रम-क्रम से—
त्यों-त्यों पुलकित हृदय हमारा?

ज्यों-ज्यों मिलन-मुहूर्त सदा से
निठुर! टालते ही जाते हो।
त्यों-त्यों क्यों हो रहा मुझे है—
प्रणय तुम्हारा प्रति दिन प्यारा?

एक मनोरञ्जक कहानी

ओझा

लेखक, श्रीयुत मोतीचन्द्र एम० ए०, पी० एच० डी० (लन्दन)

(१)

कुछ दिनों की बात है। उन दिनों मैं कालेज में पढ़ रहा था। ज़्यादा समय तो मेरा खेल-कूद या पठन-पाठन में व्यतीत होता, पर जो समय बचता उसमें मैं कालेज की लाइब्रेरी से आकल्ट विद्या, इन्द्रजाल तथा मेस्मरिज़्म के सम्बन्ध की किताबें लाकर पढ़ा करता। कर्नल आलकट की डायरी तथा थियोसोफ़िस्टों-द्वारा लिखी इन विषयों पर की और भी बहुत-सी किताबें मुझे बड़ी रुचिकर प्रतीत होती थीं। पर इससे यह न सोचना चाहिए कि मेरा विश्वास इन बातों पर था। केवल ज्ञानोपार्जन तथा मनबहलाव के लिए ही मैं ये किताबें पढ़ा करता था। तांत्रिक या ऐन्द्रजालिक क्रियायें पढ़कर मेरे रोंगटे खड़े हो जाया करते थे और एक जासूसी उपन्यास से कहीं ज़्यादा मज़ा मुझे आता था। बहुत दिन बीत गये हैं, फिर भी कर्नल आलकट की वह बात मैं नहीं भूला हूँ जहाँ वे कहते हैं कि अजन्ता की गुफाओं को जब वे देखने गये तब रात्रि को चित्रों के पीछे के दरवाज़े खुल गये और आलकट ने बौद्धों के स्वर्ग का मज़ा लिया। मेरा युवक मन भी उस स्वर्ग को देखने के लिए सदा लालायित रहता था। पर न तो मुझे कोई ऐसा जादूगर ही मिला जो मुझे वहाँ ले जाता, न अलाउद्दीन का चिराग़ ही मेरे पास था, जिसके द्वारा जिंन को बुलाकर मैं उस स्वर्ग में पहुँच जाता।



पर इस विषय की छान-बीन करते करते मुझे एक ऐसी घटना से वास्ता पड़ा कि मेरा जादू पर से विश्वास उठ-सा गया। घटना इस प्रकार है।

उन दिनों मेरी आदत थी कि जब कभी कालेज से एक-दो दिन की भी छुट्टी मिलती तब मैं देहात में कहीं न कहीं निकल जाता और घूम-फिरकर वापस आ जाता। देहात की स्वच्छ हवा मेरी थकावट हर लेती और मैं फिर कार्य करने के योग्य हो जाता था। मेरे सैदपुर के एक मित्र का निमंत्रण बहुत दिनों से सैदपुर आने का था। इसलिए अब की संक्रान्ति की छुट्टी वहीं बिताई। बड़ा आनन्द आया, खूब चहल-पहल रही। तीसरे दिन मैंने मित्र से विदा ली और ११॥ बजे की दिनवाली गाड़ी पकड़ ली। प्रयाग का माघ-मेला होने के सबब से गाड़ी में इतनी भीड़ थी कि तिल रखने को भी जगह न थी। मैं भी किसी तरह धक्का खाता हुआ एक डिब्बे में जा घुसा। डिब्बे में भीड़ का यह हाल था कि लोग असबाब रखनेवाले रेक पर चढ़े हुए थे और जाड़े का महीना होते हुए भी देह के निकले बफारे से कमरा भर गया था। तिस पर भी लोगों ने सर्दी के मारे किवाड़ बन्द कर रक्खे थे। मेरा तो डिब्बे में घुसते ही दम घुटने लगा। मैंने डाँट-डूँट कर किसी तरह दो-एक खिड़कियाँ खुलवाईं। इतने में गाड़ी सीटी देकर चल पड़ी। कुछ स्वस्थ होकर अब मैं बैठने के लिए जगह खोजने लगा। सीटें सब भरी थीं। पर मैंने देखा कि एक पंडित जी जिनकी उम्र चालीस वर्ष के क़रीब रही होगी, पूरी आधी बेंच पर दरी बिछाये हुए आनन्द से लेटे हैं। जो कोई पास जाता, फटकार देते। मुझे

यह देखकर बड़ा गुस्सा आया। मैंने आव देखा न ताव, झट लोगों को हटाता-बढ़ाता पंडित जी की बेंच के पास जा पहुँचा और उनकी दरी एक ओर खिसका कर आराम से बैठ गया। मेरी देखा-देखी और भी दो-एक लोग घुसकर बैठ गये। पहले तो पंडित जी ने बड़ी तेवरियाँ चढ़ाईं और धौंस गाँठने का भी प्रयत्न किया, पर मैंने ऐसे आदमी से भाषण तक करना उचित न समझा और आनन्द से एक सिगरेट निकाल कर पीने लगा। पंडित जी ने देखा, हुज्जत करना बेकार है, और वे मन मार कर बैठ रहे।

पास बैठने पर पंडित जी का आकार-प्रकार मैंने भली भाँति देखा। आपकी उम्र चालीस साल की रही होगी, क़द मँझोला और रंग पक्का था। कछाड़ा मारकर धोती, एक चुस्त बगलबंदी और सिर पर देहाती पगड़ी—यही आपके वस्त्र थे। सिर पर का भस्म जिसके मध्य में लाल बिंदी लगी हुई थी और गले में रुद्राक्ष की माला पंडित जी की धार्मिकता सूचित कर रहे थे। पास में एक झोला भी था, जिसमें सुरती-चूना से लेकर संस्कृत की पुस्तकें तक घास-भूसे की तरह भरी थीं। बीच बीच में सुरती-चूना मिलाकर हथेली पर ठोक कर खा जाते थे। एक स्टेशन बाद मेरा गुस्सा शान्त हो गया और पंडित जी भी नरम पड़ गये और हम लोगों की बात-चीत होने लगी।

पंडित जी ने कहा—कहिए कहाँ से आना होता है। कहाँ स्थान है?

मैं—सैदपुर से आ रहा हूँ। बनारस मेरा स्थान है। आप तो बतलाइए, कहाँ से आ रहे हैं और कहाँ तक जाने का इरादा है।

पंडित जी हँसकर बोले—वाह! तब हम दोनों आदमी काशी जी ही जा रहे हैं। मेरा स्थान ज़िला बलिया में है। काशी जी में कुछ दिन रहेंगे और ग्रहण नहाकर वापस आयँगे।

इसी तरह धीरे धीरे बातें होते होते हम दोनों में घनिष्ठता बढ़ी और मैंने पंडित जी से उनका व्यवसाय पूछा।

पंडित जी ने नीचे से ऊपर तक एक संशक दृष्टि से मुझे देखते हुए कहा—अरे! आपसे उसके बारे में कहना वृथा है। आप कालेज के छात्र मालूम होते हैं। आप लोगों को धर्म-कर्म में आस्था तो रहती नहीं। तब मैं अपने बारे में आपसे कुछ कहूँ तो फ़ायदा क्या? मसल है, अन्धे के आगे रोवे अपना दीदा खोवे।

इस बात से मेरी उत्सुकता और बढ़ी और मैंने उनकी खुशामद शुरू की और उनको विश्वास दिला दिया कि मेरी प्रकृति आस्तिक है। कुछ दिलजमई होते ही उन्होंने कहा—पूछकर क्या कीजिएगा? मैं ओझा हूँ। कैसी बीमारी हो, मैं मंत्र से अच्छा कर सकता हूँ। संसार में कोई ऐसा भूत-प्रेत नहीं जो मुझे देखकर न काँप जाय। मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण इत्यादि सब क्रियाओं के मंत्र जानता हूँ। आप दिल्लगी मानेंगे, पर सैकड़ों विद्यार्थी मुझसे यंत्र लेकर इम्तिहान पास कर गये और हज़ारों आदमी मुक़द्दमें जीत गये। आज-कल ज़माना नास्तिकता का है, इसलिए पढ़े-लिखे लोग विश्वास नहीं करते। नहीं तो मंत्रों में कौन-सी शक्ति नहीं है?

बस फिर क्या था? पंडित जी तो मेरे मनचाहे व्यक्ति निकले। मैंने उनको अपनी पढ़ी हुई बहुत-सी भूतों-सम्बन्धी घटनायें बतलाईं और उन्होंने अपने ऊपर बीती बहुत-सी घटनाओं का उल्लेख किया। कैसे एक आदमी को एक चुड़ैल तंग करती थी, कैसे एक दिन पंडित जी उस आदमी के पलँग के पास सो रहे और जैसे ही चुड़ैल आई उसके बदन में अभिमंत्रित सुई घुसेड़ दी, चुड़ैल भागी, पर सुई में लगा डोरा खुलता गया, वह अपने वासस्थान में जाकर एक हड्डी के टुकड़े में घुस गई और तब पंडित जी ने उसे हँडिया में बन्द करके फूँक दिया। बात-चीत के सिलसिले में यह भी मालूम हुआ कि पंडित जी कीमियागर भी हैं। सोना-चाँदी बनाना तो उनके बायें हाथ का खेल है। आप गुटिका बना सकते हैं जिसको मुँह में रखते ही आदमी अंतर्हित हो जा सकता है और मिनट के मिनट में जहाँ चाहे पहुँच सकता है।

उनकी धारा-प्रवाह बातों को काटकर मैं बोल उठा—पंडित जी आप अपनी गुटिका को पेटेंट करा लें। फिर एरोप्लेन जहाज़, मोटर, रेल इत्यादि सवारियों की कोई ज़रूरत ही न रह जायगी और आपको भी गहरी रक़म मिलेगी। पंडित जी सीधे मालूम पड़ते थे। उन्होंने यह नहीं समझा

कि मैं उनसे हँसी कर रहा हूँ। वे समझे, मैं अपनी अज्ञानता के कारण ऐसी बातें कह रहा हूँ। वे बोले—आप भला इस मार्ग के बल को क्या समझें? गुटिका एक बन सकती है। उसके लिए भी बारह वर्ष के साधन की आवश्यकता है। श्मशान जगाना पड़ता है। फिर भला सैकड़ों गुटिकायें कहाँ मिल सकती हैं?

इसके बाद जादू पर बात छिड़ी। पंडित जी ने ऐसी ऐसी बातें सुनाईं कि जी फड़क उठा। बोले, कामरूप-कमच्छा में जहाँ जागती ज्योति है, अब भी ऐसी जादूगरिनें हैं जो आदमियों को भेड़, कुत्ता, सुग्गा इत्यादि बना देती हैं और उनको घर में बन्द कर देती हैं। नोना चमारिन के जादू में यह असर है कि बात की बात में आप दुश्मन को हरा सकते हैं। दूर की बातें जाने दीजिए, अब भी आपके संयुक्तप्रान्त और बिहार में ऐसे ऐसे तांत्रिक हैं कि भूत-भविष्य-वर्तमान सब बतला देते हैं। कभी मौक़ा मिला तो कुछ क्रियायें मैं ख़ुद आपको दिखला दूँगा।

फिर मैंने पूछा—यह सब तो ठीक है, पर क्या आप पर देवी का आवेश होता है? क्या आप दूसरों पर देवी को बुला सकते हैं?

पंडित जी ने गर्व से स्वीकृतिसूचक सिर हिलाते हुए कहा—यह आप क्या कहते हैं? बिना देवी के प्रसाद के कोई क्रिया सिद्ध हो सकती है? हम लोगों को वही आदेश करती हैं। लोगों पर भी देवी का आवेश कराया जा सकता है। केवल उनमें भक्ति होनी चाहिए।

इतने में छावनी-स्टेशन आ गया और बिस्तरा बटोरते हुए पंडित जी बोले—आपसे मिलकर आनन्द हुआ। अभी तो मेरा वासस्थान ठीक नहीं है, पर ठीक होते ही आपसे मिलूँगा। पता तो आपका मालूम ही है।

मैं समझ गया कि वह मुझसे छटक रहा था और किसी गहरे मामले की तैयारी में था। उनको नमस्कार कर मैं भी चल दिया।

(२)

कुछ दिनों तक तो मैं पंडित जी के बारे में बिलकुल भूल ही गया था। इसके दो कारण थे। पहला तो यह कि इधर मैं अपनी परीक्षा की तैयारी में लगा था और दूसरे इतिहास, अर्थशास्त्र तथा साहित्य ऐसे गंभीर विषयों को पढ़ते-पढ़ते मुझे जादू-टोने की पुस्तकों से कुछ अरुचि-सी उत्पन्न होने लगी थी। फिर भी मैं यह नहीं कह सकता कि मेरा मन सम्पूर्ण रूप से उस विषय से हट गया था। तो भी कभी कभी जब मौक़ा मिलता, ऐसे ग्रन्थों को पढ़ लिया करता था।

इम्तिहान हो चुका था। मैंने निश्चय किया कि इस साल पहाड़ की सैर को न जाऊँगा। रोज़ सबेरे गंगा स्नान करता और ठीक ६ बजे घूमने निकल जाता। घूमते घूमते अक्सर मैं कच्चे महल्लों में निकल जाता। लोग प्रश्न करेंगे कि वहाँ कौन-सी साफ़ हवा मिलती है। मैं उनकी बात मानता हूँ कि ऐसे महल्लों में गन्दगी अवश्य होती है, पर जो जो अनुभव इन महल्लों में घूमने से प्राप्त हो जाते हैं वे पक्के महल्लों में ढूँढ़ने से भी नहीं मिलते। शिक्षा के बाहुल्य ने वहाँ के रहनेवालों का दृष्टिकोण संकुचित कर दिया है। अब पक्के महल्लों में कितने आदमी हैं जो बन्दरवालों का, भालूवालों का, सँपेरों का या नटों का तमाशा देखते हैं। उनकी रुचि तो सिनेमा-थियेटर या नाच-मुजरे में रहती है। पर कच्चे महल्लेवाले आबाल-वृद्ध-वनिता सभी आज भी इन तमाशों को बड़े चाव से देखते हैं। जहाँ बन्दरवाले ने खंजड़ी बजाई या नट ने ढोलक पर थपकियाँ दीं कि आप सैकड़ों की संख्या में महल्लेवालों को इकट्ठा होते देखेंगे। इन्हीं के उत्साह का फल है कि आज दिन ये पुराने आमोद-प्रमोद जीवित हैं। नहीं तो न जाने कब के ख़त्म हो जाते। मैं अक्सर घूमता-घामता इन महल्लों में पहुँच जाता और खेल-तमाशे देखता। कभी इन महल्लों में भूले-भटके जादूगर भी आ जाते। आम-सहित आम का पेड़ लगा देने की क्रिया मैंने यहीं किसी महल्ले में देखी थी।

आज का दिन विशेष सुहावना था। गर्मी भी कुछ कम थी और सबेरे की ठंडी हवा चल रही थी। गंगा जी से लौटते ही जलपान करके मैं हनुमान-फाटक को चल पड़ा। रास्ते में बच्चे गुल्ली-डंडा या गोली खेल रहे थे। एक लड़के ने गुल्ली फेंकने में बेईमानी की। फिर क्या था? दोनों मार-पीट, गाली-गलौज करने लगे। उनको

समझकर मैं आगे बढ़ा। कुछ दूर आगे चिर-परिचित देवी का मन्दिर देख पड़ा। मन्दिर बिना शिखर का था। पर खूब स्वच्छ लिपा-पुता था। एक बरगद का वृक्ष उस पर छाया किये हुए था। मन्दिर के पुश्ते पर एक लाल झंडी फहरा रही थी। कुछ दूर हटकर एक चबूतरा था, जहाँ अक्सर महल्लेवाले आकर बकवाद किया करते थे। आज मैंने इस मन्दिर में विशेष चहल-पहल देखी। लोग उत्सुकता-पूर्वक बाहर-भीतर आ-जा रहे थे और कुछ औरतें मन्दिर के दालान में सिर खोले हुए बैठी थीं। पूछने पर पता लगा कि बाहर के एक मशहूर ओझा आज अपने ऊपर तथा कुछ औरतों के ऊपर देवी का आवाहन करनेवाले हैं। फिर क्या था? मैं अपने और सब कामों को भूलकर झट मन्दिर में घुस गया और देवी को नमस्कार करके ज्योंही बाहरवाले दालान में आया, देखा कि हमारे गाड़ीवाले वही पंडित जी धोती-दुपट्टा पहने माथे पर लाल टीका लगाये तथा लाल फूलों की एक माला पहने एक कुशासन पर बैठे हैं और जो कोई आता है बड़े भक्ति-भाव से उनका चरण छूता है। मेरा मन पुलकित हो उठा। पंडित जी की रेलवाली सब बातें याद हो आईं। सोचा चलो, आज का इधर आना सुफल हुआ। पंडित जी के सब करिश्मे देखेंगे। पास जाकर मैंने कहा—पंडित जी, प्रणाम!

मालूम पड़ता था, पंडित जी मुझसे वहाँ मिलने को प्रस्तुत न थे। मुझको देखते ही उनका चेहरा फक पड़ गया, फिर भी अपने को सँभाल कर बोले—आइए बाबू साहब, बहुत दिनों के बाद मुलाकात हुई। देखिए संयोग की बात है। आज मैं आपसे मिलनेवाला ही था, पर आप खुद ही मिल गये। मैंने कहा—पंडित जी, सब आपकी कृपा है। आज आप पर भगवती की कृपा होगी। हम भी दर्शन करने के लिए आ पहुँचे।

पंडित जी ने कहा—हाँ, आज आप हम लोगों के तंत्र-शास्त्र का प्रभाव देख लेंगे। सामने बैठी स्त्रियों को आप देख रहे हैं। इनके पहले देवी मुझ पर कृपा करेंगी, फिर इन सब स्त्रियों पर। आप इधर बैठिए।

मैंने बैठते बैठते पूछा—पंडित जी, क्या मुझ पर भगवती कृपा नहीं कर सकतीं?

कान पर हाथ रखते हुए पंडित जी ने कहा—हरे राम! हरे राम! आप कैसी बातें करते हैं? देवी का आगमन केवल दर्शनियों पर होता है। भला आप पर वे कैसे आ सकती हैं? आप उनके पात्र नहीं हैं।

मैं अभी पंडित जी से कुछ और बहस करता, पर जनता में उत्सुकता बढ़ रही थी और मुझे देख-देखकर लोग आपस में बात-चीत करते थे। मैंने समझा, इस समय चुप रहना ही ठीक है।

थोड़ी देर में कार्यारंभ हुआ। सर्वप्रथम पंडित जी ने देवी की पुष्प-धूप-दीप नैवेद्य-द्वारा पूजा की। देवी के सामने एक बड़ा धार* से भरा हुआ रक्खा था। भक्तगण अपने घर से धार लाकर उस घड़े में डाल रहे थे। बाहर निकलकर पंडित जी फिर कुशासन पर बैठ गये और कुछ देर तक ध्यान करते रहे। फिर उनका शरीर काँपा और ज़ोरों से हिलने लगे। देवी उन पर सवार हो गई थीं। अब लोग दौड़ दौड़कर उनका चरण छूने लगे और भाँति भाँति के प्रश्न पूछने लगे। कोई पूछता, हमको कब लड़का होगा। देवी उसको व्रत रखने का उपदेश देतीं। कोई पूछता, हमारे ऊपर हमारा शत्रु मारण-मंत्र कर रहा है। देवी बोलतीं, ओझा से मिल। मैं उनसे सब बातें कह दूँगी। सब भला हो जायगा। एक औरत ने पूछा, मेरे पति दूसरे के प्रेम में फँसे हैं। हे देवी माई, वह कौन औरत है? देवी जी ने कहा, काले रंग की औरत है। पड़ोस में रहती है। देवी को खसी मान दे। वह तेरे पति को आप छोड़ देगी। इसी तरह के व्यर्थ प्रश्न होते जाते थे और पंडित जी नहीं, देवी जी अंड-बंड उत्तर देती जाती थीं। अब देवी जी पंडित जी के सिर से उतरने ही वाली थीं। वे उठकर बावलों की तरह नाचने लगे और लगे चिल्लाने—दे धार! दे धार! दर्शकगण तो उनकी बातें समझ गये और एक एक करके मन्दिर में घुसने

*एक तरह का शरबत जो चिरौंजी, गरी, लौंग इत्यादि मिलाकर बनाया जाता है।

लगे। पर मैं इन सब बातों में अनभिज्ञ होने से कुछ ठीक न समझ सका। मैंने समझा कि पंडित जी अपने ऊपर धार चढ़ाने को कहते हैं। पीछे से मुझे मालूम हुआ कि धार देने के माने देवी को धार चढ़ाना है। मैं झट मन्दिर से धार का घड़ा उठा लाया और एक-दम पंडित जी के सिर पर उँड़ेल दिया। बड़ा तहलका मचा। औरतें हाथ चमका चमका कर मुझे गालियाँ देने लगीं - निगोड़े को देखो, देवी-देवताओं से भी दिल्लगी। माई कचा ही खा जायँगी इत्यादि। पंडित जी लथपथ हो गये और भयंकर दृष्टि से मेरी ओर देखकर चुनिन्दे शब्दों में मुझे गालियाँ दीं। पर न जाने क्या सोचकर फिर चुप हो रहे। सोचा होगा कि आदमी कठिन है, कहीं आफ़त न मचावे। देवी के सिर पर से उतरते ही पंडित जी पूर्ववत् हो गये। लोग मुझे वहाँ से निकाल बाहर कर देना चाहते थे, पर पंडित जी ने सबको ऐसा करने से मना किया और मेरी अज्ञानता की कठोर शब्दों में विवेचना करते हुए बोले—आपने गज़ब ही कर डाला था। मैंने देवी को बहुत सँभाला, नहीं तो आपकी लाश तड़पती नज़र आती। बिना समझे-बूझे काम करना आप ऐसे पढ़े-लिखे मनुष्यों को उचित नहीं है। भविष्य में इसका ध्यान रखिएगा।

पंडित जी की ये बातें मुझे ज़रा बुरी तो लगीं, पर मन मार कर रह गया। इस समय वाद-विवाद करना अपनी फ़ज़ीहत आप बुलानी थी। एक तो आगे की कार्रवाई रुक जाती, दूसरे अगर पंडित जी चाहते तो मुझे अर्धचन्द्र दिलवा सकते थे। अपने भक्तों को शान्त करके पंडित जी अब दूसरों के सिर देवी बुलाने को उठ खड़े हुए। दर्शनियों में अधिकतर स्त्रियाँ थीं। जो खेली-खाली थीं वे तो पंडित जी के पास जाते ही अभुआने लगीं और अपने अपने भूत झाड़ने लगीं। पर उनमें एक नई भी थी। पंडित जी ने उस पर भी देवी की लकड़ी घुमाई। पर वह सिर नीचा किये रह गई। देवी को उस पर कृपा न करते देख पंडित जी ने उसको एक लकड़ी जमाई। इस पर वह बोल उठी—'हे पंडित, हमके मारा मत। अब ही तोहार देवी हमरे ऊपर नाहीं आयल बाँटी।' मुझे तो बड़ी हँसी आई, पर पंडित ने जब एक लकड़ी और जमाई तब उस औरत पर भवानी चढ़ बैठीं। मार से बचने के लिए उसने भी औरों की तरह माथा पीटना और अभुआना शुरू किया। यह कृत्य थोड़ी देर तक होता रहा और सब भूतों को ठीक करके पंडित जी ने सबको बिदा किया। मैं भी जाने ही वाला था कि पंडित जी ने मुझे रोककर कहा—ठहरिए बाबू साहब, मैं भी चलता हूँ। अभी जल्दी क्या है? रास्ते में वे मुझसे अपनी बातें करते रहे। उन्होंने कहा—जैसा मैंने आपसे कहा था, मैं बनारस में चन्द्र-ग्रहण तक ही रहनेवाला था। पर जिस महल्ले में मैं टिका हूँ वहाँ के वासियों को मेरे गुण से बड़ा लाभ पहुँचा है। कितनों का रोग अच्छा हो गया। भूत-पिशाच तो अब उस महल्ले के नज़दीक तक नहीं आते। वहाँ से अब मैं भागना चाहता हूँ, पर वहाँ के लोग मुझको जाने नहीं देते। मेरे बहुत-से मंत्र अभी सिद्ध नहीं हुए हैं। क्या करूँ? समय ही नहीं मिलता। ख़ैर, इस शरीर से जो कुछ लोगों को लाभ पहुँच जाय वही ठीक है। इस समय धूप अधिक हो गई थी। थोड़ी-थोड़ी लू भी चलने लगी थी। घर में लोग रसोई का इन्तज़ार कर रहे होंगे। यह सोचते ही झट मैं पंडित जी को नमस्कार करके डग बढ़ाता हुआ घर की ओर चल खड़ा हुआ।

(३)

इस घटना को बीते भी कई महीने हो गये। पंडित जी के उस रोज़ के रंग-ढंग से मेरी उन पर अश्रद्धा हो गई थी। मैंने समझ लिया कि वे बेवक़ूफ़ों को ठगने के लिए ही यहाँ आये हैं! पहले तो मैंने सोचा कि उनकी पोल पत्रों में खोल दूँ, पर फिर सोचा कि जब लोग जान-बूझ कर भी अपने को ठगवाना चाहते हैं तब उसमें मेरा क्या! मैं क्यों उस ब्राह्मण की जीविका छीनूँ! बरसात शुरू होते ही मेरा कच्चे महल्लों में घूमना भी बन्द हो गया। बरसात के कीचड़ तथा नलों की बदबू ने मेरा हौसला पस्त कर दिया। इन दिनों मेरी बैठक एक मित्र के यहाँ हर शाम को होती थी। आपका मकान ठीक गंगा के किनारे था और उसके पुश्ते पर से एक तरफ़ रामनगर तक का और दूसरी ओर आदिकेशव तक के दृश्य दिखलाई देते थे। बरसात की मनोरम घटा जो

मुझे यहाँ दिखलाई देती थी वह और कहीं नहीं। सामने बढ़ी हुई गंगा, उस पार के हरे-भरे पेड़ तथा रंग-बिरंगे बरसाती बादलों को देखते देखते घंटों बीत जाते थे, पर तबीअत न थकती थी। हमारे मित्र प्रसिद्ध साहित्यिक थे और उनके मुख से घंटों धारा-प्रवाह कवि और कविता-सम्बन्धी बातें सुनते रहने पर भी मेरा मन कभी नहीं घबराता था।

आज कुछ बूँदा-बाँदी थी। मैंने सोचा, चलो गंगा का आनन्द लें। मित्र के घर पर पहुँचते ही पता लगा कि ऊपर बैठक में बैठे हैं। ऊपर जाते ही उन्होंने स्वागत किया। उनके हाथ में सचित्र 'टाइम्स आफ़ इंडिया' था। मेरे पूछने पर कि वे कौन-सा लेख पढ़ रहे हैं, उन्होंने बतलाया कि लेख अफ़्रीकन जादू के सम्बन्ध में है। फिर क्या था? जादू के बारे में बहस छिड़ गई। मैंने पंडित जी की बातें सुनाईं और उनकी धूर्तता के बारे में कहा। यह बात सुनते ही उन्होंने चौंक कर कहा—हाँ, आपने उनका क्या पता बतलाया?

मैंने कहा—क्यों? मुझसे तो वह हनुमान-फाटक पर मिला था।

मेरे मित्र ने कहा—ठीक है। वही होगा।

इस 'वही' का मतलब मैं समझ न पाया और मैंने पूछा—वाह जनाब! आपने तो मुझे अजीब चक्कर में डाल दिया। क्या आप उसे जानते हैं?

मित्र ने कहा—नहीं। मैं ओझा-पंडितों के फेर में नहीं पड़ता; पर मेरे यहाँ बुद्धू नाम का एक कहार खिदमतगार है। वह हनुमान-फाटक पर रहता है। उसी के द्वारा आप पंडित जी का हाल सुन लीजिए।

बुद्धू कहीं बाहर गया था और जब तक वह वापस नहीं आया तब तक उसका हाल सुनने को मेरा दिल बेचैन हो रहा था। आते ही वह ऊपर बुलाया गया और जो कुछ उसने कहा उसका सारांश यह है—

"चार-पाँच महीने हुए कि घूमते-घामते एक पंडित जी हमारे महल्ले में आये। बेचारे थके-माँदे थे और कहीं उनको ठहरने का ठिकाना नहीं मिलता था। अपना घर उन्होंने बलिया-ज़िला बतलाया था। साधारणतः हिन्दुओं में ब्राह्मणों की ओर भक्ति होती है। दूसरे वे परदेशी ब्राह्मण थे। इसलिए दया करके हम लोगों ने पंडित जी को अपने घर में टिका लिया। बाबू जी, हमारे घर में सब प्राणी कमाते हैं, इसलिए अन्न की कमी नहीं है। पर पंडित जी ने हमारा अन्न ग्रहण करना क़बूल नहीं किया। आप ख़ुद ख़रीद कर खाते थे और दिन-रात पूजा किया करते थे। धीरे धीरे उनकी शोहरत महल्ले भर में हो गई और लोग अपने बच्चों को उनसे झाड़-फूँक करवाने को लाने लगे। पंडित जी कुछ मंत्र पढ़कर उनको झाड़-फूँक कर देते और भभूत लगा देते। अक्सर बच्चों को इससे लाभ पहुँचता। होते होते पंडित जी के इन कारनामों से महल्ले की प्रायः सब स्त्रियाँ अवगत हो गईं और दिन भर मेरे घर पर उनकी भीड़ लगी रहने लगी। पंडित जी ने झाड़-फूँक कर या मार मार कर बहुतों का भूत भगा दिया और अब वे महल्ले में ईश्वर गिने जाने लगे। ज़रा-सी बात होते ही लोग पंडित जी के पास दौड़ जाते। धीरे धीरे लोगों पर पंडित जी की यह बात भी खुली कि वे देवी का आवाहन भी करते हैं। फिर क्या था! झुंड की झुंड स्त्रियाँ और पुरुष देवी जी के स्थान पर एकत्र होते और पंडित जी देवी बुलाते। आप समझ ही सकते हैं कि इन बातों से हमारे घर की स्त्रियों पर क्या असर पड़ा होगा। वे तो उनको देवदूत या फ़रिश्ता समझने लगीं। बीमारी में भी मेरे घर दवा-दारू का आना बन्द हो गया, क्योंकि पंडित जी के रहते दवा की क्या आवश्यकता? ख़ैर, इसी बीच में ग्रहण आया। पंडित जी रात भर अपनी कोठरी में बैठे रहे। भीतर केवल एक टिमटिमाता दीप जल रहा था। और पंडित जी मिट्टी की एक मूर्त्ति पर कुछ पुष्प इत्यादि चढ़ाकर न जाने क्या पढ़ रहे थे। उनकी सख़्त ताक़ीद थी कि कोई घर के अन्दर न घुसने पावे और न कोई उनकी पूजा में विघ्न करे। इस क्रिया का प्रभाव औरतों पर इतना पड़ा कि मैं कह नहीं सकता। दूसरे दिन पंडित जी से बहुत आरज़ू के साथ पूछने पर पता चला कि उन्होंने ऐसा मंत्र सिद्ध किया है कि कोई भूत-प्रेत-पिशाच या जिन उनके सामने टिक नहीं सकता। कुछ दिनों के बाद

दुर्भाग्य से मेरी भावज बीमार पड़ी। ज्वर बड़े वेग से आया और वायु के ज़ोर से वह कुछ अंड-बंड भी बकने लगी। पंडित जी से पूछा गया। उन्होंने बतलाया, भूत-बाधा है। ज़ोर तो उसका अधिक है, पर वश में किया जा सकता है। उसका-स्थान उन्होंने घर की स्त्रियों के गहनों में बतलाया और कहा कि अगर गहनों की शुद्धि नहीं होगी तो वह घर की सब स्त्रियों को सतावेगा। बाबू जी, हम लोगों की कमाई इतनी तो नहीं है कि नित नित अपनी स्त्रियों को गहने गढ़वा सकें, फिर भी कुछ न कुछ ज़ेवर तो सब स्त्रियों के पास होते ही हैं। और मेरे घर में भी सब भाइयों की स्त्रियों के पास मिला कर क़रीब हज़ार डेढ़ हज़ार का गहना था। स्त्रियाँ गहनों को अपने प्राणों से भी बढ़कर समझती हैं, पर भूत का डर भी चाहे सो करा डाले। सब औरतों ने एक-मत होकर अपने गहनों से भूत निकलवा डालने का पक्का इरादा कर लिया। पंडित जी ने आख़िरी मंगल इस क्रिया को सम्पन्न करने के लिए रक्खा। और इस बात को महल्ले के सब लोगों में फैला दिया कि उस दिन भूत सिद्ध किया जायगा। इस बात की भी उन्होंने हिदायत कर दी कि दस बजे के बाद उस गली से कोई न गुज़रे, नहीं तो भूत हमला कर बैठेगा और फिर जान बचाना मुश्किल हो जायगा। पंडित जी का महल्ले में आतंक तो पूरा था ही। सब लोग उनकी बात सच मान गये और मंगल को दिया जलते ही मेरी गली में सन्नाटा छा गया। मारे डर के हमारे महल्ले के कुछ मनचले युवक सिनेमा तक देखने न गये। पंडित जी ने यह भी कहा कि हमारे घर की स्त्रियाँ घर के पिछले हिस्से में रहें। और उनकी एक हिदायत थी कि कैसा भी खटका किसी को मालूम हो, चूँ तक न करें। नहीं तो वे उसके प्राणों के ज़िम्मेदार नहीं। मंगल को पंडित जी ने गंगा-स्नान किया। देवी का दर्शन किया और घर आकर एक चौड़े मुँह की हँड़िया और गुग्गुल-लोबान, पुष्प, कपड़ा इत्यादि मँगाया। सबके सामने गंगाजल से गहने धोये गये और पंडित जी ने उनको हँड़िया में रखकर उसका मुँह बाँधकर अपनी कोठरी में एक गड्ढा खोदकर रख दिया, और हम लोगों को फ़ौरन चले जाने को कहा। पंडित जी की बातों ने हम पर ऐसा प्रभाव डाल रक्खा था कि कोई औरत-मर्द चूँ तक न बोला। सबके मुखों पर भय की रेखा देख पड़ती थी। इसी तरह क़रीब १२ बजे मुझको आहट मालूम हुई कि कोई गड्ढा खोदकर हँड़िया निकाल रहा है। मन में खटका हुआ। पर पंडित जी के आदेश को यादकर चुप रह गया। ज्यों-त्यों करके किसी तरह रात बीती और सवेरा होते ही हम सब पंडित जी की कोठरी की ओर दौड़े। दरवाज़ा खुला हुआ था, पर पंडित जी अपने बिस्तरे और हमारी स्त्रियों के गहनों के सहित ग़ायब थे। स्त्रियों ने बड़ा कुहराम मचाया। महल्लेवाले इकट्ठे हो गये, पर अब चिड़िया उड़ चुकी थी। हम कर ही क्या सकते थे? पुलिस में रपट लिखाई, पर सरकार, अभी तक उस बदमाश का पता नहीं है। हम लोगों की जितनी कमाई थी, लुट गई। अब हम कहीं के न रहे। इतना कह कर बुद्धू चुप हो गया। उसकी आँखों में आँसू भर आये।

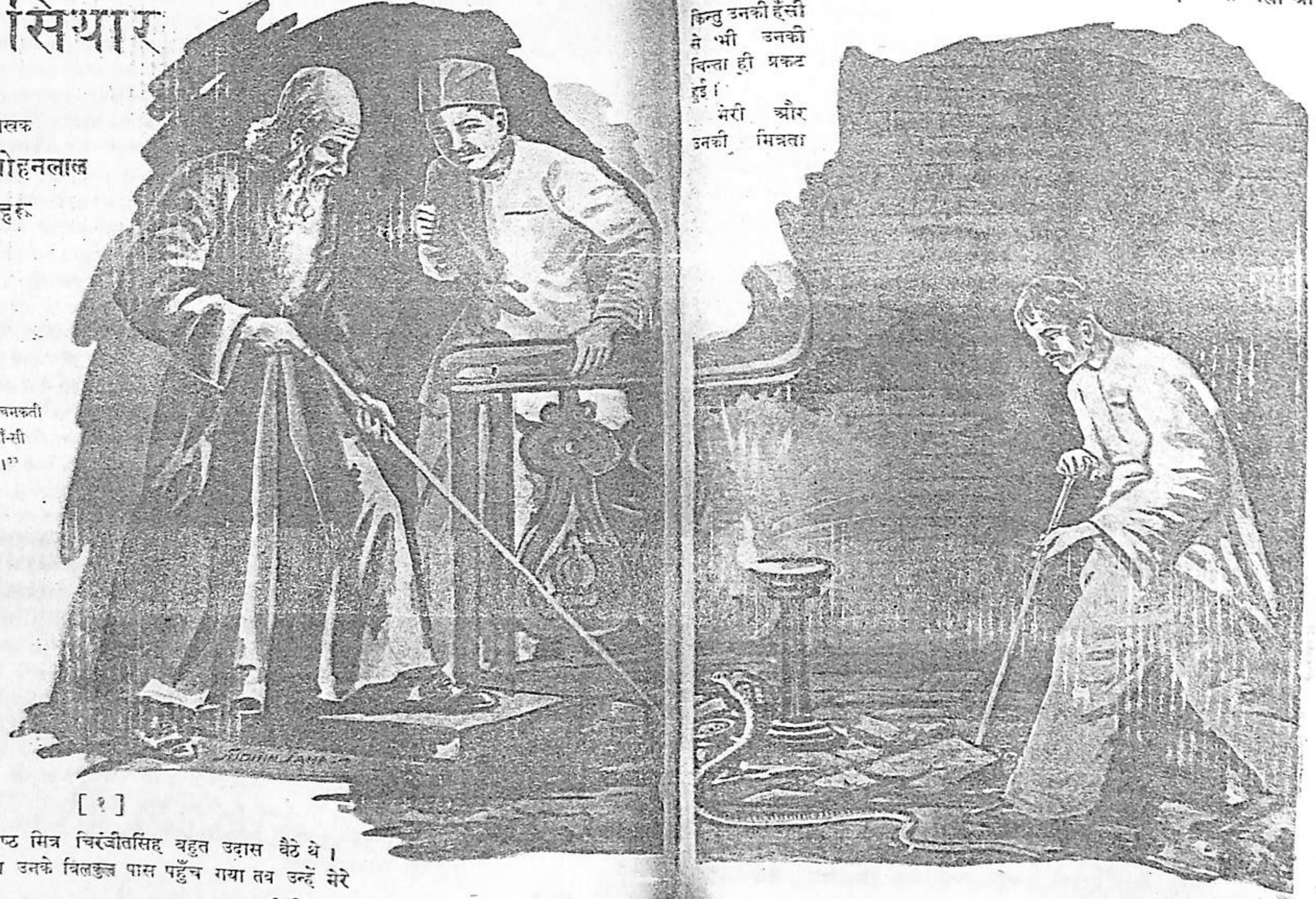
उस दिन से मेरी भूत विद्या से रही-सही श्रद्धा जाती रही और आज तक मैंने किसी ओझा को अपने पास फटकने तक न दिया। सुना कि पंडित जी किसी दूसरे शहर में इसी तरह धोखा देते हुए पकड़े गये, पर बुद्धू के गहने फिर वापस नहीं मिले।

राय साहब चिरंजीतसिंह एम० ए०, एल०-एल० बी०, ज़मींदार और आनरेरी मैजिस्ट्रेट को उल्लू बनाना आसान नहीं। मगर शाह साहब ने कोशिश की। यह कहानी पढ़िए।

रँगा सियार

लेखक

पंडित मोहनलाल नेहरू



"मुझे उसमें चमकती हुई अशर्फियाँ-सी दिखाई दीं।"

[१]

मेरे घनिष्ठ मित्र चिरंजीतसिंह बहुत उदास बैठे थे। मैं जब उनके बिलकुल पास पहुँच गया तब उन्हें मेरे

आने की खबर हुई। उन्होंने हँसने का यत्न किया, किन्तु उनकी हँसी से भी उनकी चिन्ता ही प्रकट हुई।

मेरी और उनकी मित्रता स्कूल के ज़माने से चली आ रही थी। मेरा खयाल तो यह था कि वे मुझसे कोई बात छिपा नहीं सकते थे। कम-से-कम मैंने तो उनसे कोई अपना भेद नहीं छिपाया था।

"क्यों, आज कैसे उदास बैठे हो? खैरियत तो है!" मैंने घबराकर पूछा।

"हाँ, सब कुशल-मंगल है। यों ही कुछ उदासी-सी आ गई है।" उन्होंने कहा।

मुझे कुछ शक हो गया कि कोई ऐसी बात है जो वे मुझसे बता नहीं रहे हैं। मैंने फिर कहा—"नहीं कोई बात ज़रूर है। तुम्हें बतानी होगी। मेरे और तुम्हारे बीच कभी भेद-भाव नहीं रहा। अब क्या कोई नई बात हो गई है?"

उन्होंने कुछ मुस्कराते कुछ लजाते हुए कहा—"अपनी बेवकूफ़ी का क्या बखान करूँ? जैसा किया, वैसा पाया। हाँ, रंज ज़रूर है।"

"आख़िर मैं भी तो सुनूँ। वह कौन-सी बात है? शायद कुछ सहायता कर सकूँ। कम-से-कम तुमसे सहानुभूति तो कर सकूँगा ही।" मैंने बड़े प्रेम से कहा।

"अच्छा तो फिर सुनो। तुम हँसोगे जैसे दुनिया मुझ पर हँसेगी। मगर सच तो यह है कि अपने वक़्त में सभी उल्लू बन जाते हैं।" उन्होंने कहा।

मैं ध्यान से उनकी कहानी सुनने लगा। मुझे गत मास की उनकी यह कहानी मालूम न थी। मैं महीने भर से बाहर भ्रमण कर रहा था। बाहर न जाता तो शायद उन्हें बचा लेता। कम-से-कम बचाने की कोशिश तो अवश्य करता।

(२)

उन्होंने कहना आरम्भ किया—"तुम्हें यह तो मालूम ही है कि मेरे पिता मेरे वास्ते बहुत कुछ धन छोड़ कर मरे थे। तुमसे यह भी छिपा नहीं है कि वे कई कोठियाँ भी बनवा गये हैं जो मेरे क़ब्ज़े में आज तक हैं। उनमें से एक कोठी तो बहुत पुरानी है जो कभी किराये पर नहीं उठती। वह कभी कभी मँगनी पर उठा करती है और दो-एक ग़रीब आदमी उसकी बाहर की कोठरियों में पड़े रहते हैं। मैं उनसे किराया नहीं लेता, किराये के बदले में वे उसकी चौकीदारी कर देते हैं। मेरा मुंशी अयोध्याप्रसाद कभी कभी कोठी को खुलवा कर सफ़ाई करवा दिया करता है।

"बीस-पचीस दिन की बात है कि मेरे पास अयोध्याप्रसाद ने आकर कहा—हुज़ूर, मेरी लड़की सयानी हो चुकी है, धनाभाव से मैं उसका विवाह नहीं कर सकता। बिरादरी मुझ पर थूकती है। हज़ार रुपया कहाँ से लाऊँ जो उसका ब्याह करूँ? इस वक़्त मेरी ख़ुशक़िस्मती से एक शाह साहब आ गये हैं। वे कहते हैं, सौ रुपये लाओ तो दस गुना कर दें। सौ भी मेरे पास नहीं हैं। अगर हुज़ूर इनायत कर दें तो मेरा बेड़ा पार हो सकता है। मेरी तनख़्वाह में १०) हुज़ूर हर महीने काटते जायँ। 'मैंने हँस कर कहा—अगर वे एक के दस बना सकते हैं तो रुपया ही क्यों माँगते हैं'? मुंशी ने उत्तर दिया—हुज़ूर, उन्हें किसी बात की कमी नहीं है। वे तो पहुँचे हुए फ़क़ीर हैं, परोपकार करते हैं। मगर जो लाभ उठाना चाहेगा उसे कुछ ख़र्च करना ही पड़ेगा। मैंने फिर कहा—कोई लुटेरा होगा। मुफ़्त में फँसोगे'। मगर अयोध्याप्रसाद ने न माना। वह कहने लगा—कल उन्हें हुज़ूर के पास लाऊँगा। बड़ी ख़ुशामद से वे कहीं आते-जाते हैं, मगर मैं लाऊँगा। हुज़ूर ख़ुद ही जान लेंगे।

"अपने वादे के अनुसार वह दूसरे दिन मेरे पास उन्हें लाया। उनका क़द लम्बा और सावा चौड़ा था। चाँद गंजी थी, मगर कनपटियों पर बड़े बड़े बाल थे, जो गर्दन तक लम्बे लटक रहे थे। घुटनों से नीचे तक एक कुर्ता पहने थे, टख़नों तक पायजामा था। लम्बी दाढ़ी उनकी छाती तक लटक रही थी। मगर मूँछें मुड़ी हुई थीं। सिर के बाल और दाढ़ी मेंहदी से रँगे हुए थे। हाथ में एक टेढ़ी-मेढ़ी मोटी छड़ी लिये थे। पीठ और गर्दन को ज़रा झुका कर वे अपनी बड़ी बड़ी आँखों से मुझे घूरते हुए मेरे पास आ बैठे। मैं भी उनके रोब में कुछ आ गया। उन्होंने अपनी तुर्की टोपी सिर से उतार कर मेज़ पर रख दी और अयोध्याप्रसाद की तरफ़ देखकर बोले—यही तुम्हारे मालिक हैं? अयोध्या ने मुझसे कहा—बड़ी मुश्किल से मैं शाह साहब को यहाँ तक ला सका। इनके पीछे सेठ छन्नामल पड़े थे। मगर आपने जाने से इनकार कर दिया। शाह साहब ने मुझसे कहा—किसी गृहस्थ के घर आम तौर पर मैं नहीं जाता हूँ। मगर ख़ुदावन्द करीम की इस वक़्त यही मर्ज़ी थी कि मैं आपकी दरख़्वास्त को नामंज़ूर न करूँ। इसके पश्चात् वे मुझसे इधर-उधर की बातें करते रहे। उस दिन की बातों का रंग मुझ पर बहुत जमा। जब वे उठकर जाने लगे तब मैंने उनसे सविनय प्रार्थना की कि कल फिर आवें। उन्होंने मुसकराकर स्वीकार किया, चलते समय बोले—अब आप मेरे मुरीद हैं। मैं आपको कुछ भेंट देता हूँ। इतना कह कर हाथ ऊपर उठाया। 'आव'! कह कर एक छोटा-सा अनन्नास मेरे हाथ में धर दिया। तुम्हीं सोचो, बेफ़स्ल की चीज़ मेरी आँखों के सामने कोई बैठे बैठे मँगा दे तो मैं कैसे उल्लू न बन जाऊँगा। उस वक़्त मैं उनका सचमुच पूरा मुरीद हो गया। वे दो-तीन दिन तक बराबर आये और रोज़ ही कोई न कोई चीज़ मुझे भेंट दे गये। चीज़ें मेरे सामने किसी ऐसी शक्ति से वे मँगा देते जो मैं समझ न सकता, और मुझे उन पर पूरी श्रद्धा हो गई। शायद इससे भी ज़्यादा जितनी अयोध्याप्रसाद की उन पर थी।

"एक दिन शाह जी ने कहा—मैं तुमसे बहुत ख़ुश हूँ। इससे तुम्हें यह बता देना चाहता हूँ कि तुम्हारे अमुक मकान में ख़ज़ाना गड़ा हुआ है। मगर उसके मिलने के वास्ते ख़र्च करना पड़ेगा। मैं फ़क़ीर आदमी हूँ। मुझे तुम्हारे पैसे की ज़रूरत नहीं। मगर ग़रीबों को बहुत-कुछ देना होगा। शायद कुछ गंगा जी के भी भेंट करना पड़े। "मैंने पूछा—कितना ख़र्च होगा और कितनी प्राप्ति होगी? उन्होंने कहा—यही दो-चार हज़ार ख़र्च होगा। मिलने को लाखों मिल सकते हैं। इस वक़्त तो उस ख़ज़ाने पर साँप बैठे हैं।

"मेरे मुँह में पानी आने लगा। परमेश्वर ने मुझे बहुत-कुछ दे रक्खा था, मगर जब मेरे ही घर में लाखों और गड़े पड़े हैं तब उन्हें क्यों छोड़ूँ। शाह जी ने कहा—तो कल जुमेरात है। मुझे अपने उस्ताद की क़ब्र पर हलवा चढ़ाना पड़ेगा। कंगालों को बाँटना होगा। आप अयोध्याप्रसाद को भेज दें कि वे अपने सामने बँटवा दें, ख़ुद आपको तकलीफ़ करने की ज़रूरत नहीं, जब ज़रूरत होगी, मैं बता दूँगा।

"जुमेरात और मंगल को हलवा बँटने लगा। इसमें मेरे ५००) ख़र्च हुए। मगर पाँच सौ या पाँच हज़ार की लाखों के आगे क्या हक़ीक़त है? एक दफ़ा कुछ देर को मैं भी गया। बड़ी बड़ी देगों में हलवा रक्खा था। कँगले जमा हो रहे थे। इतना मैंने भी देखा।

"तीन हफ़्ते तक वे कुछ पूजा-पाठ भी कराते रहे। मेरे पूछने पर बोले कि जो साँप उस धन के ऊपर बैठे हैं उनके भगाने को पूजा करा रहे हैं। पिछली जुमेरात को वे मुझे उसी मकान में ले गये और एक अँधेरी-सी कोठरी में ले जाकर बोले कि इसी में ख़ज़ाना है। अयोध्याप्रसाद ने उनकी आज्ञा पाकर खोदना शुरू किया। चिराग़ जल रहा था। उसके प्रकाश से कमरे का अँधेरा कम हो गया था। कुछ दूर खोद कर वह चिल्ला उठा कि एक देग तो दिख रही है। मैंने भी कोई चमकती हुई चीज़ देखी। अपनी असा शाह साहब ने मुझे दी कि ठोंक कर देखूँ। ज्यों ही मैंने उस लकड़ी से देग को ठोंका कि फुफकार मार कर एक साँप फन उठा कर खड़ा हो गया।

"शाह साहब चिल्ला उठे। बस! बस! अभी वक़्त नहीं है। गंगा जी को भेंट बाक़ी है। इतना कह कर उन्होंने मेरे हाथ से असा ले ली और साँपों का ख़याल न करते हुए देग का ढँकना थोड़ा-सा उठाया। मुझे उसमें चमकती हुई अशरफ़ियाँ-सी दिखाई दीं। वे अरबी में कुछ पढ़ते जा रहे थे। शायद साँपों को शान्त रखने का मन्त्र था।

"उस कोठरी को यों ही छोड़कर बाहर से ताला डाल मैं चला आया। शाह जी ने कहा कि ताले की कोई ज़रूरत नहीं। उसे कोई छू नहीं सकता। मगर मेरा दिल कब मानने लगा।

"दूसरे दिन अयोध्याप्रसाद ने मुझसे शाह जी के तरफ़ से कहा कि सौ तोले की सोने की गंगा जी की मूर्त्ति बीच संगम में मुझे डालनी होगी। फ़ौरन बननी चाहिए। मैंने सुनार को बुलाकर उसे मूर्त्ति बनाने की आज्ञा दी। वह हँसने लगा। मेरे ऐसे नास्तिक से उसे कभी ऐसी आशा न थी। मगर उसका क्या जाता था? वह दो-तीन दिन में बना लाया और ३,०००) के नोट लेकर चला गया।

"शाह जी ने मुझसे कहला भेजा कि मैं हर दम उनका इन्तज़ार करूँ। इन्हीं चार-छः दिन में वे किसी घड़ी मेरे पास आवेंगे और तब मुझे तुरन्त उनके साथ जाना होगा। अभी वे पूजा-पाठ में लगे हुए हैं और समय आते ही आ पहुँचेंगे।

"चार दिन, सच कहता हूँ, बड़ी ही बेचैनी से कटे। इतनी दौलत मेरे घर में और मैं छू नहीं सकता! यह कमबख्त शाह जी आता ही नहीं, मैं घर में कैदी था। न कहीं आने का, न जाने का, कमरे में इधर से उधर टहलता रहता, न बैठे चैन, न लेटे। टहलते टहलते जब टाँगें थक जातीं, लेट जाता। फिर अन्दर से हूक उठती, उठ खड़ा होता और टहलने लगता। मेरी स्त्री मेरी यह दशा देखकर घबराती, डाक्टर को बुलाने को कहती, मगर मैं डाँट-फटकार देता। असल में मैं अपने आपे में न था और वह ठीक समझती थी कि मैं पागल होनेवाला हूँ। फिर भी मैंने उससे शाह जी का हाल नहीं बतलाया। मैं यह सोचता था कि जब अशर्फ़ियों का देग वह देखेगी, मेरी ही तरह फूलकर कुप्पा हो जायगी। थोड़ी-सी फ़िक्र के बाद ख़ुशी भी अच्छी लगती है।

"परसों की बात है। रात को बड़े ज़ोर की आँधी उठी थी। शायद आठ बजे होंगे कि शाह साहब आ पहुँचे। अयोध्याप्रसाद उनके साथ था। वे बोले—चलो यही वक़्त है। जल्दी करो। सामान साथ ले लो। हम लोग पाँच मिनट के अन्दर घर से चल खड़े हुए। मैं और शाह जी तो ख़ाली हाथ थे और मुंशी के हाथों में कपड़े में लिपटी गंगा जी की मूर्त्ति थी। भाई ठाकुरसिंह! तुम मेरी उस वक़्त की ख़ुशी का अन्दाज़ नहीं कर सकते। थोड़ी-सी देर में मैं लाखों का मालिक होनेवाला था। मेरी अर्धांगिनी मना भी करती रही कि कहाँ आँधी में जाओगे, मगर मैं क्यों मानने लगा। मुझ पर तो जादू सवार था। यह मुझे पीछे मालूम हुआ कि उन्होंने ड्राइवर से चुपके से कह दिया था कि 'सरकार' का मिज़ाज ठीक नहीं है। ज़रा ख़याल रखना। वह बेचारा क्या ख़याल रख सकता था।

"गंगा जी पहुँचे तब तक आँधी में कुछ कमी हो गई थी, मगर दरिया उछल-कूद रहा था। शाह जी ने नाववाले को आवाज़ दी। एक नाव दौड़ आई। अँधेरी रात और हवा का ज़ोर! मैं तैरना जानता नहीं था। नाव पर चढ़ते ही डर मालूम हुआ। मगर शाह साहब कड़क कर बोले कि क्या तीन हफ़्ते की मेहनत खो देना चाहते हो। मुझे हिम्मत आ गई और मैं नाव पर जा बैठा। ड्राइवर को शाह जी ने नहीं चढ़ने दिया और मैं कुछ कह भी न सका।

"संगम तक जाते जाते शाह जी ने कहा, कहाँ है वह मूर्त्ति? लाओ, जल-प्रवाह के पहले आख़िरी पूजा कर लूँ। अयोध्याप्रसाद ने मूर्त्ति उन्हें दे दी। वे पूजा कर ही रहे थे कि संगम आ पहुँचा। उन्होंने मूर्त्ति मुझे दी और कहा, लो, गंगा जी का ध्यान करके उन्हीं की मूर्त्ति उन्हीं को चढ़ा दो।

"मैंने बड़ी श्रद्धा से मूर्त्ति को जल में डाल दिया। वह गड़ाप से ग़ायब हो गई। शाह साहब ने कहा, मैं कल शाम को तुम्हारे साथ चल कर ख़ज़ाने का क़ब्ज़ा तुम्हें दिला दूँगा। उस रात और दूसरे दिन किस मुश्किल से कटे, मैं तुमसे नहीं कह सकता। शाम को अयोध्याप्रसाद बहुत घबराया हुआ आया और बोला, हुज़ूर, मैं शाह साहब के घर गया था। वहाँ मालूम हुआ कि वे तो कल से ही नहीं लौटे हैं। बस, काटो तो बदन में ख़ून नहीं, मैं मुंशी को साथ लेकर ख़ज़ाने की कोठरी में पहुँचा। वह खुदी पड़ी थी। न देग थी, न साँप। उस शाह साहब ने मुझको हाँ हाँ राय साहब चिरञ्जीवसिंह एम० ए०, एल-एल० बी० ज़मींदार आनरेरी मजिस्ट्रेट को उल्लू बना दिया"।

(३)

यह हाल सुनकर मैं अपनी हँसी न रोक सका और मैं इतना हँसा कि मेरी आँखों में पानी आ गया। आख़िर में वे भी हँसने लगे, मानो दिल के फफोले फूट जाने पर उन्हें शान्ति आ गई हो। "उस बेईमान को सात साल के वास्ते जेल न भिजवाया तो सही"। वे कहने लगे—"मेरे तो दो चार हज़ार रुपये ले भागा तो ले भागा, उस बेचारे अयोध्याप्रसाद के भी सौ ले गया"।

मुझे उसकी इस सरलता पर और भी हँसी आई। मैंने कहा—"भाई साहब, आप निरे बुद्धू हैं जो यह समझते हैं कि मुंशी की साज़िश इसमें न थी। वह बिना उससे मिले आपको चरका नहीं दे सकता था"।

उसे कुछ शक होने लगा और हम दोनों इस मामले की जाँच करने निकल खड़े हुए।

उस कोठी के फाटक पर जो दो चमार रहते थे, उन्होंने बताया—मुंशी जी और शाह जी कई दफ़े साथ साथ उस कोठी में गये थे। दो-चार दफ़े एक ठेला भी आता-जाता उन्होंने देखा था, मगर कोठरी में कुछ खोदने या गाड़ने की उन्हें कोई ख़बर नहीं हुई। जिस रात को आँधी आई थी, शाह जी और मुंशी जी उस कोठरी से कोई चीज़ ले गये थे। ठेला साथ आया था।

मुंशी पुराना आदमी था। इस शहादत के आगे गर्दन झुकाये खड़ा रहा। आख़िर में बोला—"हुज़ूर, मैं ख़तावार ज़रूर हूँ, मगर अपने बच्चों की क़सम खाता हूँ कि मुझ पर उसने बड़ा ही रोब गाँठा था। मैं बिलकुल अपने आपे में नहीं था। वह जो चाहता था मुझसे करा लेता था।"

मैंने उसे कुछ धमकाया, कुछ डराया, कुछ दिलासा दिया कि सच सच हाल बता दे कि वह मूर्ति पानी में फेंकी भी गई या कोई नज़रबन्दी थी। अयोध्या ने कहा—मूर्ति फेंकी अवश्य गई, किन्तु वह नहीं। पूजा करने के बहाने जब उसने मूर्ति ली तब वही मूर्ति सरकार को नहीं दी। एक दूसरी पीतल की मूर्ति चद्दर के भीतर सीसा भरकर नाव पर रक्खी थी। वही फेंकी गई।

जिस सुनार ने वह दूसरी मूर्ति बनाई थी उसने उसका बनाना स्वीकार किया, मगर यह भी कहा कि बनवाया था अयोध्याप्रसाद ने ही।

मुझे तो [illegible] ही नहीं, चिरञ्जीवसिंह को भी अयोध्याप्रसाद के दोषी होने में अब कोई सन्देह नहीं रहा और वे उसे पुलिस में देने को तैयार हो गये। मगर मैंने ही इस ख़याल से पुलिस के सुपुर्द नहीं करने दिया कि मुफ़्त मेरा मित्र बेवक़ूफ़ बनेगा। पीछे पता चला कि शाह साहब ने मुंशी को भी चरका दिया। आधे का साझेदार उसे ठहराया था, मगर आँधीवाली रात को ही वे ग़ायब हो गये। अयोध्याप्रसाद इसी से दूसरे दिन घबराया हुआ आया था। उसकी वह घबराहट बनावटी न थी।

उछाह

लेखक, श्रीयुत शैलेन्द्र

आ सँग चल सखि! सुरसरि-तीरे :
डुबकी भर तन तपन मिटा दे।
बस न रह गया मेरा मन पर,
चलती रग रग नव उछाह भर;
क्षण में पाँव तीर त्यागें सखि!
जल छूते हों सब तन सीरे।

(२)

अमल प्रणय जलराशि बह रही,
उर की मेरे प्यास दह रही;
सुख-सँयोग अभिलाष बढ़ रही,
भीजीं पलकें अलकें जुड़कर।
उछलूँ नवजीवन ले धीरे।

साहित्य में सङ्केतवाद

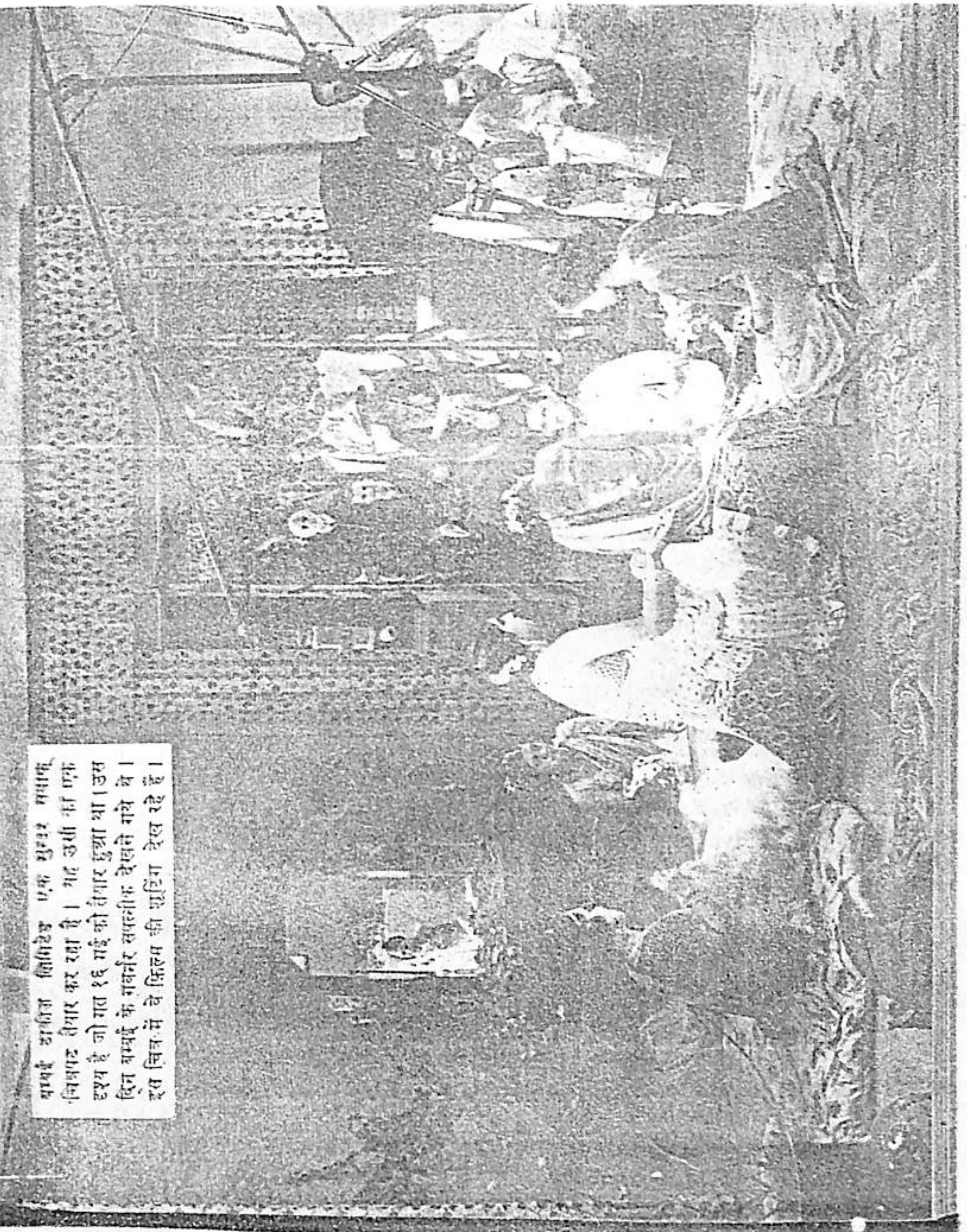
रहस्य वाद के सम्बन्ध में हिन्दी के क्षेत्र में बड़ी ग़लत फ़हमी फैली हुई है। इस लेख में लेखक महोदय ने उसी के दूर करने का सुन्दर प्रयत्न किया है।

लेखक, श्रीयुत गुलाबप्रसन्न शाखाल, बी० ए०

सङ्केत वास्तव में विश्व की प्रथम और अन्तिम सुन्दर कविता का प्राण है। मानव-जीवन के अनुसार ही कविता, रूप पर नहीं, अप्रत्यक्ष सत्य-द्वारा जीवित रहती है। सङ्केतवादी कवि कलाकार एवं दार्शनिक दोनों है। दार्शनिकता कवि के मननशील मस्तिष्क के रस में बरस पड़ती है और कला अन्तरानुभूति की चमत्कारपूर्ण भावज्ञता में रँग जाती है। कविता की सापेक्ष अमरता इन्हीं दो स्तम्भों पर स्थित रहती है। कवि सतत एवं अविरल साधना के साथ आत्मा के कार्य-कलापों का चिन्तन करता है; उत्साह के साथ सत्य का अनुसन्धान करता है और परमात्मा के प्रति आत्मा के कामनोद्गारों का वर्णन करता है। किन्तु उसकी खोज वैज्ञानिक खोज नहीं है। कलाकार कवि, सौन्दर्योपासना की मदिरा पीकर, ऐन्द्रिय जग की सुन्दरताओं का प्रेमोन्माद में अनुभव करता है; प्रत्यक्ष छवि को अनन्त सौन्दर्य में गुम्फित पाता है और मानव-जीवन की सरलताओं को निरख-निरख सहानुभूति में द्रवीभूत हो जाता है। वह अप्रत्यक्ष सत्य का मनन और प्रत्यक्ष विश्व को प्यार करता है। स्निग्ध आकाश, निर्मल सागर, प्रतीक्षा-प्रफुल्ल-पुष्प और प्रेरणाशील प्राणी उसके ऐन्द्रिय सौन्दर्य की वस्तुएँ हैं। इन्द्रिय और आत्मा का अथवा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष का यही मधुर-मिलन ही सङ्केतवाद की कविता का प्राण है।

सङ्केतवादी कवि की प्राण-मस्त प्रतिभा काव्य-विषय को केवल कविता के लिए ही प्यार करती है और इसी लिए कवि का रहस्य-लोक कला की विभूति में जगमगाने लगता है। प्रकृति की पवित्रता के महत्त्व की आनन्दपूर्ण स्वीकृति और मूर्छित सुन्दरता के प्रति तीव्र प्रेम के कारण वह सार्थक एवं प्रत्यक्ष सङ्केतों को सजाता है तथा निराकार का साकार में सफल और साधना-पूर्ण रूपान्तर करता है। इस प्रयत्न में उसकी साधना की सफलता व्यक्तिगत अनुभवों पर निर्भर रहती है और उसके चित्रण में स्वयं के जीवन-पथ के विभिन्न दृश्यों का सौन्दर्य निहित रहता है। वह अपने जीवन की प्रेरणा से संसार के अन्यतम सत्य से परिचित बनता है और टामस कार्लाइल के शब्दों में 'विश्व के दिव्य-सत्य में प्रवेश करता है'। व्यक्तिगत अनुभव ही सङ्केतवादी कलाकार की कृति की उद्भावना-शक्ति बनता है और इसी लिए उसकी कविता में स्वयं के जीवन के मनन, घटनाक्रम और अनुभूति का आधार रहता है। उसकी रचना उसके अन्तर्तम प्रदेश का विकास है। विश्व की दैविक भावना जो सङ्केतवाद का मूल है, आत्मा की अभिव्यक्ति है और वही अभिव्यक्ति वास्तव में कविता के प्रत्यक्ष सौन्दर्य का अन्तर्धान होने पर पाठक के हृदय पर अंकित-सी जान पड़ती है।

सङ्केतवादी साहित्य विशेषरूप से आधुनिक संसार की उपज है और उसका प्रत्यक्ष स्वरूप तो हमें बीसवीं शताब्दी में ही दिखा है इसके पूर्व सङ्केतवाद अपने स्वतन्त्ररूप से परिचित नहीं था। साहित्य-संसार में यत्र-तत्र रहने पर भी उसका निज का अस्तित्व नहीं था। वर्तमान जीवन की जघन्यता ने उसका आविर्भाव अनि-



बम्बई टाकीज लिमिटेड एक सुन्दर सामाजिक चित्रपट तैयार कर रहा है। यह उसी का एक दृश्य है जो गत १६ मई को तैयार हुआ था। उस दिन बम्बई के गवर्नर सपत्नीक देखने गये थे। इस चित्र में वे फ़िल्म की शूटिंग देख रहे हैं।





श्रीयुत गुरुप्रसाद टंडन (प्रोफ़ेसर विक्टोरिया कालेज, ग्वालियर) अपनी नववधू के साथ। यह विवाह हाल में हुआ है। विवाह के समय के मंत्र एवं प्रतिज्ञायें वर-वधू ने हिन्दी में ही कही थीं।



कांकेर की हर हाइनेस महारानी साहबा अपनी पुत्री श्रीमती गोविन्द कुमारी और अपने दामाद के साथ शिक्षा-सम्बन्धी उद्देश से विलायत गई हैं। बम्बई में जहाज़ पर चढ़ने के समय का यह चित्र है।



महिला-विश्वविद्यालय (पूना) की इस वर्ष की स्नातिकायें सर सी० वी० रमन और प्रोफ़ेसर कर्वे के साथ।
ऊपर भारतीय महिला-समिति, बम्बई, की सदस्यायें हैं।



कांग्रेस पार्लियामेंटरी बोर्ड के नेता श्रीयुत भूलाभाई देसाई — भूलाभाई देसाई ही भारतीय राजनीति के प्रमुख व्यक्ति हैं। अप्रिय सत्य कहने के कारण आप से साम्यवादी तथा रजवाड़ों के राजनैतिक कार्यकर्ता नाराज़ हो गये हैं। आप देशी राज्यों के नवल समर्थक हैं।



स्वर्गीय राय [illegible] जी — आप कुशल इंजीनियर, निपुण चित्रकार और अँगरेज़ी तथा फ़ारसी के विद्वान् थे। आपका यह चित्र हमें लिपि-विद्या के विशेषज्ञ पंडित गौरीशंकर भट्ट से प्राप्त हुआ है। भट्ट जी ने आपके ही निरीक्षण में हिन्दी-लिपि में विशेषता प्राप्त की थी। आप चरखारी के निवासी थे।



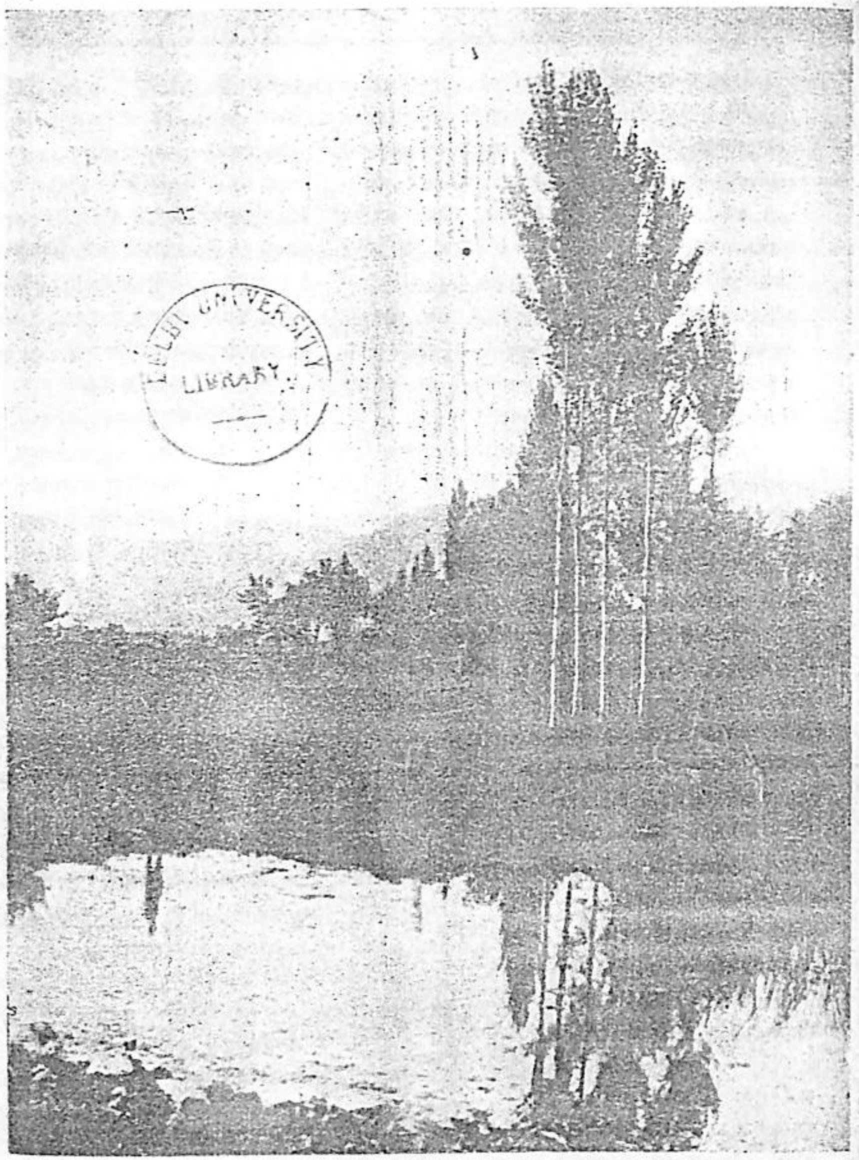
नवाब सर अकबर हैदरी निज़ाम सरकार की कार्य्य-कारिणी समिति के उपसभापति नियुक्त हुए हैं। आप हैदराबाद-राज्य के बहुत प्रसिद्ध उच्च राजकर्मचारी हैं।



महामहोपदेशक पंडित नन्दकिशोर शुक्ल शास्त्री-भूषण — आप सनातनधर्म के प्रसिद्ध उपदेशक हैं। आप किसी संस्था के संलग्न उपदेशक नहीं हैं, किन्तु स्वतन्त्र रूप से उपदेश करते हैं। आपके विचार भी राष्ट्रीय हैं।



मैसूर के श्रीयुत एन० नागाप्पा — आपने कनड़ी-भाषा-भाषी होते हुए भी इस वर्ष हिन्दू-विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम० ए० पास किया है।



डलझील (कश्मीर)

धार्य कर दिया और आज उसका स्वरूप पूर्ण प्रत्यक्ष हो गया है।

शारीरिक एवं जड़ सौन्दर्य की आवश्यकताओं की पूर्ति मानस में आध्यात्मिक सौन्दर्य की प्यास उत्पन्न करती है और फिर शृङ्गार के नख-शिख-वर्णन एवं नायक-नायिका-भेद आकर्षण-विहीन और अचेतन बन जाते हैं। उस समय आत्मा के सौन्दर्य-काव्य का निर्माण होता है और नर-हृदय विभूति-सृष्टि में निमग्न हो जाता है। उस काल का साहित्य आत्मा की अनुभूति-द्वारा प्रदत्त अप्रत्यक्ष अनुसन्धान का वर्णन करता है। आत्मा अप्रत्यक्ष है और सृजनहार सत्य भी अप्रत्यक्ष है। हम अप्रत्यक्ष की ओर केवल सङ्केत कर सकते हैं। उसे सङ्केतों के आरोप से ही व्यक्त कर सकते हैं। उसके प्रतिबिम्ब को देख सकते हैं, उसकी वाणी की प्रतिध्वनि सुन सकते हैं; किन्तु उसकी वास्तविकता को नहीं पा सकते हैं। सङ्केतवादी कवि अपने हृदय की तीव्र भावनायें अप्रत्यक्ष के क्रीड़ा-क्षेत्र में विहरित करता है और अपने चिन्तनशील रसात्मक मानस में अव्यक्त सत्य को सत्य के रूप में देखने लगता है। उसे फिर नायिका के जड़ आकर्षण में शान्ति नहीं मिलती। सारा संसार विभूतिमय हो जाता है। रूप और रंग की विभिन्नता नष्ट हो जाती है और विमल एवं चेतन आत्माओं का दिव्य संगीत मुखरित होने लगता है। सत्य की छाया ही विभूति-तादात्म्य से सत्य हो जाती है और यही सत्य-शक्ति उसकी कविता को अमरत्व प्रदान करती है। आत्मा का विकास और सौन्दर्य ही उसकी अनुभूति और काव्य के विषय होते हैं।

वर्तमान संसार जड़ एवं निर्जीव वैज्ञानिक शक्तियों-द्वारा शिथिल हो गया है। इन्द्रियों की तृप्त पिपासा जल चुकी है और जीवन की सुधा आत्मा में उतर रही है। यही कारण है कि सङ्केतवाद वर्तमान जीवन का साहित्य बन गया है। आज प्रत्यक्ष-सृष्टि अलीक प्रतीत हो रही है और अप्रत्यक्ष लोक-सम्बन्धिनी भावना का स्वप्न-स्वरूप नष्ट होकर प्रत्यक्ष हो गया है।

आधुनिक काल में सङ्केतवाद प्रत्यक्ष रूप में सबसे पहले फ्रेंच साहित्य में व्यक्त हुआ। फ्रांस क्रान्ति का देश है और अठारहवीं शताब्दी क्रान्ति का युग मानी गई है। सङ्केतवाद भी उसी युग के क्रान्ति-जनित फ्रेंच-साहित्य का स्वरूप है। फ्रेंच में उसने रोमैंटिक, कलात्मक एवं सौन्दर्य-सम्बन्धिनी पूर्णता प्राप्त की और जर्मन में उसे आध्यात्मिक एवं जीवित सत्य की नवीन शक्ति मिली। तदुपरान्त सङ्केतवाद की प्रतिष्ठा बढ़ती गई और रहस्यवाद, छायावाद, मायावाद, प्रतिबिम्बवाद आदि उसकी अनेकानेक शाखाओं-प्रशाखाओं के कलित कुञ्जों की छाया से संसार का साहित्य-उद्यान आच्छादित हो गया। सच पूछिए तो सङ्केतवाद आधुनिक युग के साहित्य के श्रेष्ठतम अङ्ग का नाम है। बंगाल के रवीन्द्रनाथ, यूनाइटेड-किंगडम के यीट्स, इटली के जेब्राइल (Gabriele d' Annunzio), पुर्तगाल के यूगेन (Eugenio de Castro), स्पेन के केम्पोमर (Campoamor) वर्तमान विश्व के सर्वोत्कृष्ट कवि सङ्केतवादी ही हैं। श्रेष्ठ साहित्य ही नहीं, साधारण कृतियों का सौन्दर्य भी आज सङ्केतवाद की व्यापकता का परिणाम बन गया है। संसार में ऐसा कोई साहित्य नहीं जिसमें इस नवीन धारा के उन्नत-पथ-गामी स्वरूप की अभिव्यक्ति न हुई हो। हिन्दी में सङ्केत की स्पष्ट व्यंजना जायसी ने की और उसे सुव्यवस्थित रूप कबीर ने दिया, किन्तु राज-वैभव के प्रासाद-कारागारों ने अनेक शताब्दियों तक साहित्य-संसार के इस उज्ज्वल एवं मौलिक स्वरूप को बन्दी कर दिया। आज पुनः वह काव्य देश और काल की गति पाकर प्रस्फुटित हुआ है।

मूल सङ्केतवाद यद्यपि अनादि और अनन्त है, तथापि उसका स्पष्ट स्वरूप क्रमागत सोपानों पर चढ़कर आता है। आधुनिक सङ्केतवाद की झलक हमें कल्पनावादी साहित्य (Romanticism) में मिलती है। वास्तव में अनुभूति-प्रदत्त कल्पना-साहित्य ही उसका आधार है। वह सङ्केतवाद को स्वरूप-दृढ़ता और स्थिरता प्रदान करता है। इस प्रकार सङ्केतवाद रोमैण्टिसिज़्म की एक शाखा का नाम है। रोमैण्टिसिज़्म कल्पना-प्रदत्त मूर्तिमत्ता के स्वाभाविक सौन्दर्य का नाम है। वह रूढ़ि-बन्धन एवं जड़ता से परे आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति है।

वह हृदय की अविरल साधना का सरल सौन्दर्य है। उसका स्वरूप सर्वदेशीय और व्यक्तिगत दोनों है। फ्रेंच-साहित्य में आर्थर रिम्बद, वर्लेन आदि का सङ्केतवाद, रोने, झोला, लेकान्त दे लिस्लि प्रभृति के रोमेंटिसिज़्म का उपपन्न है। सङ्केतवादी युग के बहुत पहले जड़-साधना-लब्ध फ्रांस में सुप्रसिद्ध औपन्यासिक फ़्लेबर्न ने प्रत्यक्ष जगत् को असत्य मानकर आत्मविकासक कल्पना-साहित्य की सृष्टि की है। प्रभाववादी (Impressionist) गनकोर्ट्स ने अपनी रचना में विश्व के उन काल्पनिक और व्यंजक चित्रों का आधार लिया जिनका अस्तित्व प्रकाश और छाया पर निर्भर रहता है। लेकांत ने जड़वादी होने पर भी पूर्वीय दर्शनशास्त्र के 'निर्वाण' उषा के वैभव का चित्रण किया। इस प्रकार कल्पनावाद के पश्चात् व्यंजनात्मक साहित्य का निर्माण हुआ और फिर सङ्केतवाद की सृष्टि हुई। अँगरेज़ी-साहित्य में भी कालरिज शेली, बाइरन, कीट्स आदि ने रोमेंटिसिज़्म की सृष्टि की। फिर ब्राउनिंग, मेरीडिथ तथा स्टेवेन्सन ने काव्य में व्यंजना (suggestive style) का विशेषत्व स्थापित किया और तत्पश्चात् यीट्स, मनरो, गोरबूद, लॉ नेकर ने सङ्केतवाद की स्पष्ट कला अंकित की। संसार के सभी साहित्यों में इसी प्रकार, रोमेंटिसिज़्म के पश्चात् क्रम से व्यंजकशैली और फिर सङ्केतवाद की सृष्टि होती है। सङ्केतवाद की भूमि पर कविता अपनी उन्नति की सीमा पर पहुँच जाती है! हिन्दी-साहित्य का विकास-क्रम निराला ही है। हिन्दी-साहित्य का पुनरुत्थान अभी-अभी हुआ है, अतएव वह शीघ्र से शीघ्र विश्व-साहित्य के सभी अंगों से परिपूर्ण हो जाना चाहता है और इसी शीघ्रता के कारण उसके किसी विशेष अंग की पूर्ति नहीं होने पाती। हिन्दी में खड़ी बोली के साथ ही रोमेंटिसिज़्म आया, किन्तु उसकी शैशवावस्था में ही छायावाद के बीच से सङ्केतवाद का जन्म हो गया। इससे हिन्दी-रोमेंटिसिज़्म का सुन्दर विकास न हो सका; उसकी धारा रुक गई। कहने का यह तात्पर्य है कि हिन्दी में रोमेंटिसिज़्म प्रगतिशील नहीं है। 'प्रसाद' जी की कला का आधार रोमेंटिसिज़्म ही है। उन्होंने तरुणावस्था में सुन्दर रोमेंटिक काव्य की रचना की है और प्रसन्नता की बात है अब हमारे कुछ नवयुवक कवियों का ध्यान फिर मूल रोमेंटिसिज़्म की ओर जा रहा है।

हिन्दी में वर्तमान सङ्केत की सृष्टि प्रधानतः तीन कारणों से हुई है। प्रथम तो अँगरेज़ी अथवा योरपीय साहित्य के प्रभाव से, दूसरे बंगाली छायावाद के आकर्षण से और तीसरे कबीर की वाणी के पुनरुत्थान से। बंगाली छायावाद अथवा कबीर के रहस्यवाद से उत्पन्न हिन्दी सङ्केतवाद परिपक्व न होते हुए भी अपनापन लिये हुए सुन्दर है; किन्तु अँगरेज़ी की भावना से उत्पन्न सङ्केत कुछ अस्वाभाविक और अपरिपक्व हो गया है। इसका कारण यह है कि बँगला का छायावाद कबीर के रहस्यवाद का रूपान्तर है और इन दोनों में एकदेशीयता तथा जातीयता है। हिन्दी के रहस्यवादी, छायावादी कहलानेवाले कवियों में अधिकांश अँगरेज़ी से प्रभावित हुए हैं। मेरी समझ में उनमें से एक भी पूर्णता अथवा परिपक्वता प्राप्त नहीं कर सका है। वह या तो कभी केवल दार्शनिक ही रह जाता है या कभी इहलौकिक सौन्दर्य के उपासक कवि के रूप में आता है। वह विशुद्ध सङ्केतवाद की सरसता को नहीं प्राप्त कर सकता, क्योंकि उसकी अनुभूति पर्यायवाची और रोमेंटिक भावनायें अपरिपक्व ही रहती हैं। साथ ही वह भारतीय सङ्केतवाद का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि वह कवि ही नहीं हो सकता। ऐसे कवियों में कुछ तो महान् कलाकार के रूप में आते हैं। श्री सुमित्रानन्दन पन्त ऐसे कवियों में प्रमुख हैं। उनकी कल्पना सङ्केतात्मक और उच्च है; उनमें काव्य-रस छलका पड़ता है, उनके शब्द-विन्यास में अनुपम सौन्दर्य और संगीत है, किन्तु उनके संकेतवाद में (जो विस्मयवाद भी कहा जाता है) रोमेंटिसिज़्म की अपरिपक्वता के कारण पूर्णता एवं आत्मिक एकीकरण नहीं है। उनमें साधना-उन्माद प्रतीत नहीं होता और साथ ही उनमें कबीर ऐसी तीव्रता भी नहीं है। उनके 'मौन-निमंत्रण' में लक्षणा-शक्ति का सुन्दर चित्रण है, किन्तु भावों की तीव्रता शब्द-सौन्दर्य में ओझल-सी हो गई है। उसमें अप्रत्यक्ष सत्य का 'साकार' स्वरूप नहीं है। परन्तु स्फुट रचनाओं के परे जहाँ तक 'ज्योत्स्ना' का सम्बन्ध है, हिन्दी सङ्केतवाद को पंत जी से बहुत आशा है। 'ज्योत्स्ना' में भारतीय मौलिकता तथा सङ्केतवाद की सजीवता है। वास्तव में हिन्दी का यही एक-मात्र सङ्केतवादी पूर्ण-ग्रन्थ है। विभूति-संसार के जीवन का यह हिन्दी में प्रथम और अनुपम काव्य है। सङ्केत के सहारे उसमें स्वर्गिक एवं मानवीय आभाओं (spirits) का सुन्दर मेल हुआ है। उसका सौन्दर्य हृदय और अलक्ष्य की क्रीड़ा में सन्निहित है। विश्व-एकीकरण का मनोरम चित्र नाटक के प्रत्येक पात्र के प्रत्येक वाक्य से व्यंजित हुआ है। एक-एक शब्द मानो कह रहा है—

> Our meddling intellect misshapes
> The beauteous form of things.

लहरें भी एक नियम में बद्ध हैं। उनका जीवन, विश्व-जीवन का एक निर्दिष्ट अंश है। वे अपना परिचय काव्यमय आध्यात्मिकता में देती हैं—

> अपने ही सुख से चिर-चंचल,
> हम खिल-खिल पड़ती हैं प्रतिपल;
> जीवन के फेनिल मोती को,
> ले-ले, चल-करतल में टलमल,
> चिर जन्म-मरण को हँस-हँस कर,
> हम आलिंगन करतीं पल-पल,
> फिर-फिर असीम में उठ-उठ कर,
> फिर-फिर उसमें हो हो ओझल।

अँगरेज़ी-साहित्य से प्रभावित कवियों में सङ्केतवाद रोमेंटिसिज़्म का एक अंग नहीं रह जाता, क्योंकि उनकी साङ्केतिक भावनाओं में सर्वरूप-दर्शन (objectivity) की अधिकता के कारण स्वरूप-दर्शन (subjectivity) का आधार नहीं रह जाता और रोमेंटिसिज़्म का वैयक्तिक मान घट जाता है।

बँगला का छायावाद चण्डीदास तथा विद्यापति के सरस रोमेंटिसिज़्म का उपपन्न है और इसी लिए वह सुसंस्कृत है। वर्तमान बँगला-छायावाद-द्वारा प्रभावित कवियों में 'प्रसाद जी' सर्वश्रेष्ठ हैं। मेरी समझ में तो हिन्दी के साम्प्रत साहित्य-संसार में एक वे ही सफल सङ्केतवादी कलाकार हैं। बौद्ध-युग के दर्प का आध्यात्मिक प्रभाव और आकर्षणमय बंगीय कला उन्हें साहित्य-संसार में सङ्केतवाद के ज्योतिर्मय संदेशवाहक के रूप में लाते हैं। उनकी रचना में भावों की तीव्रता, कला का सुन्दर परिधान पहन कर आती है और इन्द्रिय-जगत् अप्रत्यक्ष सत्य के आधार पर स्थित होकर स्थिर सौन्दर्य की वस्तु बन जाता है। उनके सङ्केत में अनुभूति की सरसता और प्रौढ़ भावना की सजीवता है। अप्रत्यक्ष सत्य को प्रत्यक्ष जगत् की वस्तु मान कर उन्होंने एक स्थल पर सङ्केत किया है—

> यौवन-वन में उजियाली है।
> किरणों की यह कोमल-धारा,
> बहती ले अनुराग तुम्हारा;
> फिर भी प्यासा हृदय हमारा,
> व्यथा घूमती मतवाली है।
> हरित-दलों के अन्तराल से
> बचता-सा उस सघन-जाल से
> यह समीर किस कुसुम-बाल से
> माँग रहा मधु की प्याली है?
> एक घूँट का प्यासा जीवन,
> निरख रहा सबको भर लोचन;
> कौन छिपाये है उसका धन?
> कहाँ सजनि, वह हरियाली है?

हिन्दी के ही सङ्केतवाद अथवा कबीर के रहस्यवाद-द्वारा प्रभावान्वित कवियों में श्री माखनलाल जी चतुर्वेदी 'भारतीय आत्मा' हैं! उनमें कबीर ही-सी तीव्रता, शक्ति और भावुकता है और यही कारण है कि उनकी कला नितान्त नग्न है। उनके अन्तर में चलनेवाला जीवन वर्तमान राजनीति की हथकड़ियों की झंकार कर कारागृह में भी उस अलक्ष्य 'सत्य' को पाने को छटपटाता रहता है। उनमें मौलिकता का दर्शन पाकर भी हम कबीर ही के समान उद्दण्डता पाते हैं। आत्मा की प्रेरणा उनके कवि को बाँध-सी देती है। प्रत्यक्ष विश्व की जघन्यता 'भारतीय आत्मा' को अप्रत्यक्ष के सुन्दर तन में छिप जाने को बाध्य करती है—

कहाँ छुपूँ ? वन में; ना सखि, वनमाली में।
काली के सर के नर्तक उस काले-काले से ख्याली में।
उड़ने दे मुझको तू उस तक
जिसने हैं अंगूर बिखेरे
सिर पर नीलम की थाली में। वन में०।
जिसको बन्दी कर लेने को
गूँथ रही बावली प्रतीक्षा
मानस, यौवन की जाली में। वन में०।
जिने खुमारी चढ़ आने को
पलकें पागलपन लाते हैं
युगल-पुतलियों की प्याली में।
जिसकी साध-सुधा पाने को
पंखिनियाँ चाहों की चहकीं,
जी-तरु की डाली-डाली में। वन में०।
जिसे मनाने को मैं आली,
गली-गली सी बना भ्रम में,
ढूँढ़ रही गाली-गाली में। वन में०।

हिन्दी में दिन-प्रति-दिन सङ्केतवाद की उन्नति हो रही है। उसका स्वरूप निश्चित करने की चेष्टा की जा रही है। उसका अस्तित्व निःशंक है, क्योंकि वह क्रान्तिकर नवीन रक्त-द्वारा उत्पन्न हुआ है। वह हिन्दी के 'लकीर के फ़क़ीर' साहित्य के क्रम-विकास का फल नहीं है, क्योंकि संसार में कोई भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन क्रम-विकास की मन्थर गति से नहीं आता। हिन्दी-साहित्य का आधुनिक स्वरूप विगत बीस-पचीस वर्षों के अदम्य साहस की सफलता है और भारत की वर्तमान राजनैतिक जाग्रति भी इतने ही थोड़े समय की क्रान्तिपूर्ण साधना है। सङ्केतवाद हिन्दी की वांछित वस्तु है। उसका विरोध समूचे भावी साहित्यिक पुरुषार्थ का विरोध है। सङ्केतवाद कवि की भावनाओं का सभ्य स्वरूप है। जिस प्रकार सामाजिक बन्धन एवं शिष्टाचार में नग्नवाद सुरुचि के प्रतिकूल है, उसी प्रकार साहित्य में भावनाओं का नग्न चित्रण कला की क्षति है। समाज में जो नग्नवाद के विरोधी हैं उन्हें रूढ़ियों की हठधर्मी को दूरकर एक न एक दिन अवश्य सङ्केतवाद को अपनाना पड़ेगा, क्योंकि वह सभ्यता के अनुरूप वस्तु है। साहित्यिक रूप में विशेषत्व के अनुसार सङ्केतवाद कुछ ही वर्षों का प्रयत्न भले ही हो, उसका आधार अमर है।

सङ्केतवाद अनन्तकाल की कविता है। सृष्टि के साथ ही उसके विकास और क्रन्द गुँथे हुए हैं। अमरत्व संसार सदैव अमिलन रहेगा और मानव-जीवन की वियोग-व्यथा सदा बनी रहेगी। इसी वियोग-भावना से उत्पन्न वर्तमान काव्य में हम करुणा का आधिक्य पाते हैं। आशावाद तो हमारे मानस के कृत्रिम संतोष की एक धारा है; वह चिरस्थायी अथवा अन्तर्भूत नहीं है। जब तक हमारा अनुसन्धान बना रहेगा, हमारी वेदना-विभूति श्रीमती महादेवी वर्मा के शब्दों में—

'जन्म ही जिसको हुआ वियोग,
तुम्हारा ही तो हूँ उच्छ्वास।'

मानव-हृदय को स्पर्श करती रहेगी। काव्य-जीवन की अनेकरूपता इसी प्रवाह में बहेगी और पूर्णता की ओर अग्रसर होगी। सङ्केतवादी कवियों को तर्कपरान्त रूढ़िवादी कुशब्दों से भले ही सम्बोधित करें, उनकी रचनाओं को 'उल्लू की वाणी' कहकर अपनी संकीर्णता का परिचय देते रहें, वास्तव में वर्तमान और भविष्य के साहित्य के निर्माता वे ही हैं।

मारिस दि कोब्रा की एक कहानी

उपहार

'सरस्वती' के पाठकों को श्रीमती शान्तादेवी ज्ञानी की यह प्रथम और अन्तिम भेंट है। 'सरस्वती' के लिए आपने बराबर ऐसी ही कृतियाँ भेजने का वादा किया था। पर खेद है कि क्वेटा के भूकम्प में आप अपनी एक मात्र पुत्री के साथ सदा के लिए सो गईं।

लेखिका, श्रीमती शान्तादेवी ज्ञानी

श्रीमती एलिस ने अपनी चाबी से होटल का दरवाज़ा खोला और अन्दर श्रीमान् ह्यूगो को आरामकुर्सी पर पैर पसारे मुस्कराते पाया।

"तुम भी गज़ब के आदमी हो? भला इस वक़्त यहाँ कैसे?"

"तुम्हारे लिए एक खुशख़बरी लाया हूँ। कुछ इनाम दो तो सुनाऊँ।"

"अच्छा! क्या इनाम चाहते हो?"

"बस, वही…………"

"मैं तुम्हारे इशारे नहीं समझती। तुम्हें अपनी खुशख़बरी सुनानी हो तो सुनाओ। इनाम-विनाम कुछ नहीं मिलेगा।"

"इनाम तो ज़रूर मिलेगा। अभी नहीं तो थोड़ी देर ठहरकर। अच्छा सुनो। तुम जानती हो कि आज से छः मास पूर्व मैंने 'सीमेण्ट वर्क्स' में नौकरी की थी। अफ़सर की कृपा से मेरा वेतन भी बढ़ा और मेरे काम से सन्तुष्ट होकर कम्पनी ने मुझे २० हज़ार के हिस्से बोनस के रूप में दिये। मेरे सौभाग्य से हिस्सों का दाम अल्प समय में ही दूना हो गया और अब मैंने उन हिस्सों को पूरे ४० हज़ार में बेच दिया है।"

"सचमुच तुम क़िस्मतवाले हो। अच्छा होता, हमारी भी ऐसी ही क़िस्मत होती!"

"एलिस! ज़रा हौसला करो। तुम्हारी क़िस्मत भी कम ज़बर्दस्त नहीं है। देखो, उस मेज़ पर काग़ज़ में क्या लिपटा हुआ है।"

एलिस ले आई। ह्यूगो ने खोला। काग़ज़ की तहों में एक छोटी मख़मली डिबिया छिपी थी।

एलिस ने उत्सुकता से पूछा—"अन्दर क्या है?"

"देखो।" ह्यूगो ने डिबिया एलिस के हाथों में दे दी। एलिस ने उसे खोला। अन्दर बढ़िया आबदार हीरे से जड़ी सोने की अँगूठी थी।

"तो क्या यह मेरे लिए है?" एलिस ने उत्सुकता से पूछा।

"हाँ प्रिये! तुम्हारे ही लिए। तुमसे बढ़कर मुझे और कौन प्रिय है?"

"पुरुषों की प्रियाओं का क्या पता चलता है? स्त्रियाँ तो उनकी खिलवाड़ की चीज़ हैं।" एलिस ने मुस्करा कर कहा।

"सम्भव है, जो तुम कहती हो ठीक हो। परन्तु सब अँगुलियाँ समान नहीं होतीं।"

ह्यूगो ने प्रेम से वह अँगूठी एलिस की अँगुली में पहना दी और पूछा—"क्यों! तुम्हें पसन्द है कि नहीं?"

एलिस ने बड़े ग़ौर से अपने हाथ को उठाकर देखा। हीरे की चौंध परखी। चेहरे पर सन्तोष की लहर दौड़ गई। परन्तु उसी क्षण एक शंका की कालिमा भी उपस्थित हुई।

"प्यारे ह्यूगो! यह अँगूठी कितने की है?"

"क्यों? पैसे दोगी?"

"नहीं। योंही पूछती हूँ।"

"केवल हीरे की क़ीमत पन्द्रह सौ रुपया है। सोना और बनवाई अलग।"

"तब मैं इसे नहीं लूँगी।"

"क्यों?"

"इतने भारी दाम की अँगूठी देखकर मेरे पति को फ़ौरन शक हो जायगा और चाहे हमारा परस्पर सम्बन्ध कितना ही पवित्र क्यों न हो, वह जरूर ही दाल में काला देखने लगेगा।"

ह्यगो ने कुछ क्षण सिर खुजलाया और फिर कहा—

"प्यारी एलिस! मुझे एक युक्ति सूझी है। मैं जिस जौहरी से इसे लाया हूँ, यद्यपि उसे पैसे तो दे चुका हूँ, फिर भी उसे समझा दूँगा कि वह कल शाम को अपने 'शो-विंडो' में इसे रक्खे। तुम अपने पति के साथ जाना, इसे देखना, पसन्द करना। जौहरी नक़ली पत्थर कहकर इसे ५०) में तुम्हें बेच देगा। इस प्रकार साँप भी मर जायगा और लाठी भी न टूटेगी।"

अगले दिन एलिस ने ऐसा ही किया। अँगूठी उसके पति को भी जँच गई। जौहरी ने भी जरा नमक-मिर्च लगाया। "जनाब! इसका असली दाम १२५) था। परन्तु जो महिला इसे पहले ले गई थी उसने आर्थिक कठिनाई के कारण इसे ५० रुपये तक बेचने की आज्ञा दी है। आप भाग्यशाली हैं जो आपको ऐसा अवसर हाथ आ रहा है। आप बनवाने जाइए। आपको १२५) से दमड़ी कम न लगेगी। है तो यह नक़ली पत्थर, मगर असली को मात करता है। खुद जौहरी भी धोखा खा जाय।"

एलिस के पति ने ४५) देने चाहे। परन्तु दूकानदार ने कहा—"५०) देने हों तो दीजिए, नहीं तो रास्ता नापिए।"

एलिस ने पति की ओर कटाक्ष से देखा। भला स्त्री के प्रेम-कटाक्ष की अवहेलना कौन पुरुष-पुंगव कर सकता है?

सौदा तय हुआ। जौहरी ने अँगूठी डिबिया में रखकर सुन्दर काग़ज़ में पैक की। एलिस के पति ने उसे जेब में सँभालकर रक्खा और उससे कहा—"तुम जरा घर चलो। मैं अभी 'इन्ग्रेवर' के पास जाकर इस पर दोनों के नाम लिखाये लाता हूँ।"

× × × ×

पूरे एक घण्टे के बाद पति देवता के आने की आवाज सुनाई दी। एलिस ने दौड़कर दरवाज़ा खोला। पति देवता बहुत प्रसन्न दिखाई देते थे। पत्नी ने पूछा—"आज क्या मामला है? इतनी खुशी का कारण?"

"कपड़े तो उतारने दो। सब बतलाये देता हूँ। आज पहली बार मेरी किस्मत खुली है।"

एलिस को शक होने लगा कि कहीं भला आदमी अँगूठी बेच तो नहीं आया। एलिस ने पूछा—"अँगूठी पर नाम खुदा या नहीं?"

"जरा सब्र करो। उसी की बात सुनाता हूँ।"

एलिस का हृदय धड़कने लगा।

"अच्छा! मैं जब इन्ग्रेवर के पास नाम खुदवाने गया, वहाँ एक व्यापारी बैठा था। उसने अँगूठी देखकर पूछा—"यह कितने में ली?"

मैंने अपनी चीज की क़द्र बढ़ाने के लिए कहा—"१००) में।"

"मैं तुम्हें दो सौ देता हूँ। मुझे बेच दो।"

मैंने समझा, आगया धोखे में। नक़ली हीरे को असली समझ रहा है। अब मैंने जरा ऐंठ कर कहा—"जनाब पाँच सौ रुपये से कम की नहीं है।"

व्यापारी ने अँगूठी को ग़ौर से देखा और पूछा—"क्यों? बेचने का विचार है?"

"ली तो अपने लिए थी। यदि आपको पसन्द ही आगई है तो ५००) में बेच भी सकता हूँ।"

"व्यापारी ने फ़ौरन १००) के पाँच नोट गिन दिये। सो ले आया हूँ, जिसमें से ५०) तुम्हारे और शेष ४५०) मेरे।

"देखा! कैसा होशियार हूँ! तुम मुझे व्यर्थ में बुद्धू बनाया करती हो।"



नई पुस्तकें

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

१—सोम-सरोवर—लेखक और प्रकाशक, श्री [illegible], एम० ए०, मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल-काँगड़ी, हरिद्वार हैं, सजिल्द पुस्तक का मूल्य १॥) है।

२—प्रदीप (कहानी-संग्रह)—लेखक, श्री [illegible], प्रकाशक, भारती-भण्डार, विक्रेता, लीडर प्रेस, इलाहाबाद हैं। मूल्य १।) है।

३—प्रवासी भारतीयों की वर्तमान समस्यायें—लेखक, श्री प्रेमनारायण अग्रवाल बी० ए०, प्रकाशक, मनोहर-साहित्य-निकेतन, राजोगली, मुरादाबाद हैं।

४—जीवन (कहानियों का संग्रह)—लेखक और प्रकाशक, श्री साधुशरण लखुटी, पो० रसोटी, ज़िला सारन (बिहार) हैं। मूल्य १) है।

५—एशिया की महिला-क्रान्ति—लेखक, श्री [illegible]प्रसाद माथुर 'दीपक', प्रकाशक, हिन्दी-साहित्य-मण्डल, बाज़ार सीताराम, देहली हैं। मूल्य १) है।

६-११—चाँद-प्रेस लिमिटेड, चन्द्रलोक इलाहाबाद की ६ पुस्तकें—

(१) मालती (उपन्यास)—लेखक, श्रीयुत [illegible] शर्मा, सजिल्द पुस्तक का मूल्य ३) है।

(२) देवी जोन लेखक, डाक्टर धनीराम प्रेम, एम० आर० ए० एस० (इँगलैंड) हैं। मूल्य १॥) है।

(३) साहित्य का सपूत (हास्यपूर्ण नाटक)—लेखक, श्री जी० पी० श्रीवास्तव बी० ए० एल-एल० बी०, मूल्य १॥) है।

(४) शरीर और व्यायाम—लेखक, पं० [illegible]दत्त शर्मा, गौड़ 'इन्द्र', मूल्य २) है।

(५) कायापलट (कहानियों का संग्रह)—लेखक, श्रीयुत शीतलासहाय बी० ए०, मूल्य १॥) है।

(६) वीराङ्गना पन्ना (ऐतिहासिक नाटक)—लेखक, डाक्टर धनीराम प्रेम, एम० आर० ए० एस०, मूल्य ।||) है।

१२—महिला-समाज—लेखक, श्री ओंकारनाथ 'दिनकर', प्रकाशक, 'परिवर्तन' प्रकाशन-विभाग अजमेर, मूल्य ।) है।

१३—श्री सिद्ध हेमचन्द्र-व्याकरणम्—प्रकाशक, सेठ आनन्द जी कल्याण' जी, ज़वेरिवाद, अहमदाबाद, सजिल्द पुस्तक का मूल्य ४॥) है।

१४-१५—सुषमा-निकुञ्ज, इलाहाबाद की दो पुस्तकें—

(१) मधुशाला (कविता)—रचयिता श्री 'बच्चन' सजिल्द पुस्तक का मूल्य १) है।

(२) खय्याम की मधुशाला (कविता)—लेखक, श्री 'बच्चन', सजिल्द पुस्तक का मूल्य ।||) है।

१६—करुण सतसई (कविता)—रचयिता, अध्यापक रामेश्वर 'करुण', प्रकाशक, श्री सहदेव जी 'भगवान', करुण-काव्य-कुटीर, कृष्णनगर, लाहौर, मूल्य २) है।

१७-२१—एस० बी० सिंह ऐण्ड को०, काशी-पुस्तक-भंडार, बनारस सिटी की ५ पुस्तकें।

(१) हमारी स्वतन्त्रता कैसी हो?—लेखक, श्री अरविन्द घोष, अनुवादक, श्री देवनारायण द्विवेदी, मूल्य १) है।

(२) क्या भारत सभ्य है?—लेखक, श्री अरविन्द घोष, अनुवादक, श्री देवनारायण द्विवेदी, मूल्य ॥) है।

(३) कन्या-शिक्षा-दर्पण—लेखिका, श्रीमती पार्वती-देवी, मूल्य ॥) है।

(४) स्त्री-संगीत गायन—संकलयिता, श्रीमती पार्वतीदेवी, मूल्य ।=) है।

(५) आश्रम-गीताञ्जलि--संकलयिता, श्री सूर्यवली-सिंह, मूल्य ।=) है।

२२-२३—नवलकिशोर प्रेस लखनऊ की २ पुस्तकें

(१) सोहाग की डिबिया (कहानी-संग्रह)—लेखक, पंडित तारादत्त उप्रेती, मूल्य सजिल्द का १।) है।

(२) माली—लेखक, डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अनुवादक, श्री सूर्य्यनारायण चतुर्वेदी, मूल्य १॥) है।

२४--बुन्देल-वैभव--लेखक, श्री गौरीशंकर द्विवेदी, 'शंकर', प्रकाशक, बुन्देल-वैभव-ग्रन्थमाला, टीकमगढ़ बुन्देलखंड, सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥) है।

२५--राजस्थानरा दूहा भाग पहलड़ो)--सम्पादक श्री नरोत्तमदास स्वामी, प्रकाशक, नवयुग-साहित्य-मंदिर, पोस्टबाक्स नं० ७८, दिल्ली, मूल्य २) है।

२६—हिन्दी-पर्य्यायवाची कोश--लेखक, पंडित श्रीकृष्ण शुक्ल 'विशारद', प्रकाशक, भार्गव-पुस्तकालय, बनारस सिटी, मूल्य सजिल्द का २॥) है।

२७--भारतीय चित्रकला--लेखक, श्री नानालाल चमनलाल मेहता आई० सी० एस०, प्रकाशक, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद और मूल्य ६) है।

२८—देव-सुधा—लेखक, श्री "मिश्र-बन्धु", प्रकाशक देव-सुकवि, सुधा-कार्यालय, कवि-कुटीर, लखनऊ और मूल्य १) है।

२९—धर्म और जातीयता--लेखक, योगिराज अरविन्द, अनुवादक, श्री देवनारायण द्विवेदी, प्रकाशक, हिन्दी-पुस्तकालय, बनारस सिटी मूल्य १) है।

३०—घर की डाह--(उपन्यास) लेखक, श्री इन्द्र बसावड़ा, बी० ए० प्रकाशक, सरस्वती प्रेस, बनारस सिटी, मूल्य १।) है।

३१--ऊर्मि--(कविता) संकलनकर्ता श्री देवधर शर्मा 'विशारद', प्रकाशक, साहित्य-परिषद्, सलेमगढ़, गोरखपुर, मूल्य ॥) है।

३२--वीर-पाठावली--लेखक, श्री कामताप्रसाद जैन, एम० आर० ए० एस०, प्रकाशक, दिगम्बर-जैन-पुस्तकालय, कपड़िया-भवन, सूरत, मूल्य ॥।) है।

३३—प्रेम-निकुंज—लेखक, श्री नगेन्द्रनारायण सिंह 'नगेन्द्र', प्रकाशक, श्री राजकृष्ण भवन, सिताब दियारा, छपरा है।

३४—सुषमा—(कविता) लेखक, श्री हरशरण शर्मा, प्रकाशक, ओझा-बन्धु-आश्रम, इलाहाबाद, मूल्य ।=) है।

३५-४०—गंगा-पुस्तक-माला-कार्यालय, लखनऊ, की ६ पुस्तकें

(१) पुरानी दुनिया--(इतिहास) लेखक, श्री रामचन्द्र वर्मा, मूल्य १॥) है।

(२) अछूत-समस्या (सामाजिक)—मूल-लेखक, महात्मा गान्धी, अनुवादक, श्री परिपूर्णानन्द वर्मा, मूल्य ॥।) है।

(३) हास्य-रस—लेखक, श्री जी० पी० श्रीवास्तव, मूल्य ।=) है।

(४) राजमुकुट--(ऐतिहासिक नाटक) लेखक, पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त, मूल्य १) है।

(५) दुखवा मैं कासे कहूँ—(कहानी-संग्रह) लेखक, श्री जवाहरलाल भार्गव, मूल्य ॥।) है।

(६) मधुवन--(कविता) लेखक, श्री आनन्दकुमार मूल्य ।) है।

४१---रस-तन्त्र-सार—(वैद्यक) लेखक, ठाकुर नाथूसिंह वर्मा, इस्तमरारदार, प्रकाशक, आयुर्वेदिक परमार्थ औषधालय, कलेड़ा, अजमेर है। मूल्य २=) है।

(४२) सूरि शतक—(पद्य) लेखक, पण्डित रामचरित उपाध्याय, प्रकाशक, श्री आत्मानन्द जैन सभा, अम्बाला शहर मूल्य ≡) है।

(४३) संकीर्तन-सुधा--(पहला भाग) प्रकाशक, संकीर्तन कार्यालय मेरठ शहर मूल्य ।) है।

४४—भूगोल एटलस -सम्पादक, श्री रामनारायण मिश्र, प्रकाशक, भूगोल-कार्यालय, प्रयाग है। मूल्य २) है।

४५—राजस्थान--सम्पादक, प्रो० रामलोचन शर्मा एम० ए०, प्रकाशक, राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता, वार्षिक मूल्य ५) है।

४६-५२—बाल-शिक्षा-समिति, बाँकीपुर, से प्रकाशित बाल-शिक्षा मासिक ग्रन्थ-माला –

(१) ईश्वर-लीला—(२) भूकम्प—

(३) हरिजन-बन्धु—लेखक, महात्मा गांधी

(४) राजा राममोहन राय—लेखक, राय साहिब बेनूनारायण

(५) तब और अब—प्रणेता श्री रामदास गौड़ एम० ए०

(६) अच्छी चाल—प्रणेता एक हिन्दी लेखक,

(७) सम्राट् पंचम जार्ज और सम्राज्ञी मेरी—(रजत जयंती-अंक) लेखक राय साहब बेचूनारायण इन पुस्तकों के सम्पादक श्री रामदहिन मिश्र हैं। वार्षिक मूल्य २॥) और प्रत्येक का ।) है।

५३—आलोक—सचित्र सिनेमा का साप्ताहिक पत्र—सम्पादक, श्री ललितकुमार 'नटवर' हैं। एक अंक का मूल्य -) और वार्षिक मूल्य ३) है। प्रकाशक, मैनेजर 'आलोक' दि स्टौन्च लिमिटेड, पटना।

५४—मतवाला—साप्ताहिक पत्र है, सम्पादक, चन्द्र शर्मा...रमाशंकर मिश्र, प्रकाशक, देवदत्त कम्पनी, चेम्बर लेन रोड, लाहौर, वार्षिक मूल्य ६) और एक प्रति का =) है।

१—दी इथिकल कन्सेप्शनस् आफ दी गाथा (The Ethical Conceptions of the Gatha)—लेखक, श्रीयुत यतीन्द्रमोहन चटर्जी, एम० ए०, प्रकाशक—जहांगीर, बी० करनीस सन्स, बम्बई है। पृष्ठ-संख्या ५६६, मूल्य २।) है।

प्रस्तुत पुस्तक अँगरेज़ी-भाषा में है। इसमें पारसियों के सुप्रसिद्ध धार्म्मिक ग्रन्थ 'गाथा' की महिमा का वर्णन है। तात्त्विक दृष्टि से विवेचन किया गया है और उस सिलसिले में यह बताया गया है कि पारसी-धर्म के सभी सिद्धान्त वैदिक हैं तथा यहूदियों, ईसाइयों और मुसलमानों के धर्म पर भी उसका महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। इसी प्रसंग में उन्होंने यह भी उल्लेख किया है कि इस समय के सिक्खमत, आर्यसमाज और ब्रह्मसमाज के सिद्धान्तों से भी पारसी-धर्म के सिद्धान्त मिलते हैं। इस प्रकार लेखक महोदय नें उपर्युक्त सभी धर्मों की एकता का प्रतिपादन किया है। और यह सब वर्णन विस्तार के साथ किया गया है तथा विषय का प्रतिपादन भी सप्रमाण किया गया है। विद्वान् लेखक का यह प्रयत्न साधु हुआ है। निस्सन्देह हिन्दू-पार्सियों के एकीकरण का विचार परम उत्तम है। स्पष्ट बात तो यह है कि ये सारे धर्म और मत एक ही वेद-वृक्ष की शाखायें हैं, जो समयान्तर में भिन्न भिन्न नामों से प्रख्यात हो गये। हाँ, इस एकीकरण का काम जितना ही अधिक महत्त्वपूर्ण है, उतना ही जटिल भी है। अतएव इस विषय की ओर प्रयत्न करनेवाले लेखकों और वक्ताओं को बहुत बुद्धिमत्ता के साथ आगे बढ़ना चाहिए। उद्दण्डता उद्देश का भूतकाल में नाशक रहा है, और आगे भी रहेगा। उपर्युक्त ग्रन्थ में ख्वाजा कमालउद्दीन की जो चर्चा कहीं-कहीं आई है वह सुरुचिपूर्ण नहीं है। इसके सिवा अनेक बार वही बातें कही गई हैं जिससे पुस्तक में शिथिलता आ गई है। तथापि यह एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है और धर्म की जिज्ञासा रखनेवालों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

—'एक धर्मप्रेमी'

२-३—दो महत्त्वपूर्ण कोश—

(१) आयुर्वेदीय कोष—इस विशाल कोष की रचना चुनार के बाबू रामजीतसिंह वैद्य तथा बाबू दलजीतसिंह वैद्य ने की है। इसमें केवल आयुर्वेदीय ओषधियों के ही नाम नहीं संग्रह किये गये हैं, किन्तु यूनानी तथा डाक्टरी ओषधियों के भी नाम दिये गये हैं। इस प्रकार इसके प्रणयन में इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि तीनों प्रणालियों के ओषधि-समूहों का इसमें समावेश हो जाय। यही नहीं, इस बात का भी पूरा प्रयत्न किया गया है कि जिन ओषधियों के गुण-दोषों के विवेचन में विस्तारपूर्वक चिकित्सा-ग्रन्थों में चर्चा की गई है उनका भी इसमें यथास्थान समावेश हो जाय, साथ ही चिकित्सा-सम्बन्धी सभी पारिभाषिक बातों का एवं रोगों के निदान तथा उनकी सम्यक चिकित्सा-प्रणाली का भी यथास्थान वर्णन आ

जाय। वास्तव में इसकी रचना 'विश्वकोष' के ढंग पर की गई है और इसमें सन्देह नहीं कि इस उपयोगी ग्रन्थ के बनाने में इसके विद्वान् लेखकों ने बड़ा परिश्रम किया है। इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का यह पहला खण्ड है और इसमें केवल अकारादि शब्दों का ही संकलन हो पाया है। इस खण्ड में १०,२५० शब्दों का संकलन किया गया है। इससे जान पड़ता है कि यह ग्रन्थ कई खण्डों में प्रकाशित होगा। इस सम्बन्ध में खेद की बात इतनी ही है कि यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ उतने सुन्दर रूप में नहीं प्रकाशित हो रहा है जैसा कि यह है। छपाई और कागज़ की बात अलग रही, यह अशुद्ध भी छपा है, जिसके लिए पुस्तकान्त में ११ पृष्ठ का शुद्धि-पत्र छापना पड़ा है। तो भी इसके प्रकाशक बरालोकपुर, इटावा, के वैद्यराज पण्डित विश्वेश्वरदयालु जी प्रशंसा के ही पात्र हैं, जो इस भारी ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए उत्साहित हुए हैं। चिकित्सकों तथा चिकित्सा-शास्त्र के प्रेमियों को इसका संग्रह कर प्रकाशक को प्रोत्साहन देना चाहिए। पुस्तक का मूल्य नहीं दिया गया है। शायद वैद्यराज जी को इटावे के पते पर लिखने से मिलती है।

(२) रूप-निघंटु— यह भी एक आयुर्वेदीय कोष है और इसकी रचना श्रीयुत रूपलाल वैश्य ने की है। इसका प्रकाशन काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा कर रही है। यह अपने विषय का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है और यह भी कई संख्याओं में निकलेगा। इसकी पहली संख्या में १,६३६ शब्द हैं और इसका मूल्य १॥) है। इसमें ओषधियों के चित्र भी दिये गये हैं। इससे इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है। परन्तु चित्र उतने स्पष्ट नहीं हैं। ओषधियों के सम्बन्ध में आवश्यकतानुसार यूनानी तथा डाक्टरी मतों का भी उल्लेख किया गया है एवं भिन्न भिन्न रोगों के सम्बन्ध में उनके उपयोगी प्रयोग भी बताये गये हैं। इसका प्रकाशन भी विशेष सावधानी से किया जा रहा है। चिकित्सकों तथा चिकित्सा-शास्त्र के प्रेमियों को इसके ग्राहक होकर इससे लाभ उठाना चाहिए।

—'रत्ननिधि'

४—चारुचरितावली—संपादक पण्डित वेंकटेश नारायण तिवारी, प्रकाशक, लीडर प्रेस, प्रयाग हैं। पृष्ठ संख्या १६२, मूल्य १) है।

प्रस्तुत पुस्तक में चुने हुए १९ चरित्र-चित्रणों का उत्कृष्ट संग्रह है। महात्मा गांधी, महामना मालवीय जी, श्रीमान नेहरूद्वय, कर्मठ पटेल बन्धु आदि १७ उच्चपदस्थ भारतीय विभूतियों के तथा दो विदेशीय किन्तु भारत-हित साधक महान् आत्माओं के चरित्र-चित्रणों का इस पुस्तक में समावेश किया गया है। ये सब चित्रण समय समय पर 'भारत' में निकल चुके हैं और सभी लोगों को खूब पसन्द आये थे। इनको इस 'चरितावली' के रूप में निकाल कर तिवारी जी ने एक उपयोगी कार्य किया है। इसकी भूमिका में उन्होंने लिखा है कि देश के कल्याण के लिए यह बहुत ज़रूरी है कि आपस का मनमुटाव किसी तरह से मिट जाय। इसका सबसे आसान तरीक़ा यही है कि लोगों में विभिन्न दलों के प्रमुख महारथियों के व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो, जिससे विचारों में मत-भेद होते हुए भी व्यक्तिगत मनोमालिन्य और खींचातानी का अन्त हो जाय। दृष्टिकोण में मत-भेद होते हुए भी हम एक दूसरे का आदर कर सकते हैं।" इसी उद्देश से विभिन्न दलों के प्रमुख महारथियों के खास खास उत्कृष्ट गुणों तथा तज्जन्य प्रभावों का विशिष्ट चित्रण जनता के सामने इस पुस्तक-द्वारा रक्खा गया है। 'चारुचरितावली' के पारायण से एक अलौकिक स्फूर्ति, कर्तव्य-परायणता, करामिट या मरमिट की सुदृढ़ भावना अनायास उदित हो जाती है। हारे हुओं को सान्त्वना और प्रोत्साहन मिलता है और आगे बढ़नेवालों के दिल दूने हो जाते हैं।

'चारुचरितावली' में संगृहीत 'चरित' कई विश्रुत विद्वानों की लेखनियों से प्रसूत हुए हैं। प्रत्येक की भाषा परिमार्जित और ओजपूर्ण तथा प्रभावोत्पादक है। शैलियाँ कुछ भिन्न होते हुए भी आकर्षक तथा प्रवाहयुक्त एवं विषय के सर्वथा अनुरूप हैं। एक बात और है। इसका प्रत्येक चित्रण विशेष अवसर पर पड़े हुए गुण-कर्म विशेष के प्रभाव को स्पष्ट रूप से व्यंजित करनेवाला है। निस्सन्देह

इस पुस्तक का अपना निजी मूल्य है। साधारण जीवनियों में ऐसे प्रभावोत्पादक स्पष्ट चित्रण कम मिलते हैं। यह 'चरितावली' इसी कारण हिन्दी में अपना एक विशेष स्थान रखती है। श्री तिवारी जी के स्वर में स्वर मिला कर यह कहना अत्युक्ति न माना जायगा कि "चारुचरितावली के चित्रण श्रद्धांजलियाँ हैं, जो श्रद्धा, स्नेह और सहानुभूति के रंगबिरंगे फूलों से सजाई गई थीं। उनमें वीर-पूजा की भावना प्रधान है।"

यों यह पुस्तक सभी हिन्दी-प्रेमियों को रुचिकर प्रतीत होगी, परन्तु 'चरित-ग्रन्थों' के पाठकों को तो इसका अवलोकन अवश्य ही करना चाहिए।

—भगवानदास अवस्थी

५—गीता का व्यवहारदर्शन—लेखक, श्रीयुत सेठ रामगोपाल जी मोहता, प्रकाशक, चाँद-प्रेस, लिमिटेड, चन्द्रलोक, इलाहाबाद। पृष्ठ-संख्या ३८३ तथा मूल्य १) है।

यह श्रीमद्भगवद्गीता की एक नई व्याख्या है। गीता की अनेक टीकायें, भाष्य तथा विवृत्तियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं और आज भी अनेक मनीषी विद्वान् इस पर अपने अपने दृष्टिकोण से अपने अपने भाष्य तथा व्याख्यायें प्रकाशित करते जा रहे हैं। भारतीय दर्शन-शास्त्र के क्षेत्र में ज्ञान, कर्म तथा 'ज्ञान-कर्म-समुच्चय'—इन तीन विचारधाराओं पर विवेचना प्राचीन काल से ही चली आई है। भगवान् शंकर ने गीता में ज्ञान की श्रेष्ठता प्रतिपादित करके उसे निवृत्ति-मार्ग की ओर ले चलनेवाला सिद्ध किया है। संसार के व्यवहारों से उदासीन जनता को कर्मयोग का उपदेश देने के लिए लोकमान्य तिलक ने एक बार फिर गीता को 'ज्ञान-कर्म-समुच्चय' का प्रतिपादक सिद्ध किया। लेखक महोदय के शब्दों में उनकी इस गीता-व्याख्या की कथा इस प्रकार है—"लोकमान्य तिलक महाराज रचित 'गीतारहस्य' को भी मैंने एकाग्र चित्त से पढ़ा और स्वामी श्री रामतीर्थ जी महाराज के व्याख्यानामृतों का भी अच्छी तरह अध्ययन किया, जिससे यह निश्चय हो गया कि वेदान्त-शास्त्र केवल निवृत्ति-मार्ग का ही प्रतिपादक नहीं है, किन्तु संसार के व्यवहारों के लिए यह परमोपयोगी एवं वाञ्छनीय है।" सांसारिक जीवन के साथ अर्थात् हमारे दैनिक कार्य-कलापों के साथ वेदान्त के अध्यात्म-ज्ञान का सामंजस्य किस प्रकार हो सकता है, इस बात को गीता के आधार पर लेखक महोदय ने प्रतिपादित किया है। पुस्तक का यह प्रथम भाग है और इसमें गीता के चार अध्यायों की विस्तृत व्याख्या है। गीता के श्लोकों की व्याख्या के अतिरिक्त लेखक महोदय ने उनका 'स्पष्टीकरण' किया है और उनको यथास्थान व्यवहारोपयोगी सिद्ध किया है।

प्रारम्भ में १६२ पृष्ठों की एक विस्तृत भूमिका है। 'उपोद्घात' एवं 'गीता का व्यवहार-दर्शन' नामक दो भागों में यह विभक्त है, जिनमें बड़ी छानबीन के साथ अनेक दार्शनिक विषयों का विवेचन किया गया है और वेदान्त की अनेक बातें स्पष्टरूप से समझाई गई हैं। लेखक महोदय जगत् और उसके व्यवहार को अविद्या का ही कार्य नहीं मानते और इस प्रकार जगत् के मिथ्यात्व को भी प्रचलित अर्थों में स्वीकार नहीं करते। वेदान्त के सिद्धान्त के अनुसार सृष्टिकर्त्ता ईश्वर और ब्रह्म दोनों एक ही पदार्थ नहीं हैं। ईश्वर को माया-विशिष्ट मानकर ही उसमें सृष्टि का कर्तृत्व, फलदातृत्व आदि सिद्ध हो सकते हैं, अन्यथा नहीं।

लेखक महोदय ने भूमिका में जहाँ आत्मा को जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण माना है (पृ० ६९), वहाँ यह स्पष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया है कि जब 'आत्मा स्वयं जगदाकार होता' है तब यह परिवर्तन क्या परिणामवाद के सिद्धान्त पर होता है या विवर्तवाद के सिद्धान्त के अनुसार। इसका स्पष्टीकरण होने से सृष्टिकर्ता और शुद्ध ब्रह्म का भेद स्पष्ट हो जाने से मायाविशिष्ट ईश्वर किस प्रकार मायाविशिष्ट होता हुआ भी 'अज्ञानी' अथवा अविद्याग्रस्त नहीं हो सकता, यह शंका स्वयं निर्मूल हो जाती।

पुस्तक की भाषा सरल है। आज-कल के समय में हमें ऐसी ही व्याख्याओं की तथा ऐसे ही दार्शनिक ग्रन्थों की आवश्यकता है जो जनता को मिथ्या निवृत्तिपरायणता के ढकोसले से हटाकर कर्मशील बनावें और आध्यात्मिक

ज्ञान से उसे उद्बुद्ध तथा सचमुच चलित कर सकें। व्यवहार के लिए अनुपयोगी 'दर्शन-शास्त्र' वास्तव में जाति के जीवन में अकर्मण्यता और आलस्य का ही प्रसार करता है। इस दृष्टि से लेखक महोदय का यह प्रयत्न स्तुत्य है। आशा है, मोहता जी गीता के अन्य शेष अध्यायों की भी व्याख्या करके अपने ग्रन्थ को पूर्ण करेंगे। गीता के प्रेमी सज्जनों को इस पुस्तक का जो लेखक महोदय के गम्भीर चिन्तन, मनन, अध्ययन और सत्संग का परिणाम है, उचित आदर करना चाहिए।

६—मनु और स्त्रियाँ—ग्रन्थकार श्रीयुत चिन्तामणि 'मणि', प्रकाशक, इंडिया बुक एजेन्सी, ६७ महाजनी टोला, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या ३८८, मूल्य १) है।

इस पुस्तक में लेखक महोदय ने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि 'मनु' की 'मनुस्मृति' में स्त्रियों के प्रति अन्यायपूर्ण तथा अनुचित नियमों का उल्लेख कहीं नहीं है। 'मनु' की दृष्टि में स्त्रियाँ आदर और सत्कार की पात्र तथा मनुष्यों के समान ही समानाधिकारों की भागिनी कही गई हैं। पुस्तक में स्त्रियाँ कौन हैं, स्त्रियों की स्वतन्त्रता, उनके अधिकार, शिक्षा का रूप, दण्ड-विधान, तलाक़-समस्या, विधवा-विवाह, अन्तर्जातीय विवाह आदि अनेक सामयिक तथा आवश्यक प्रश्नों पर विचार किया गया है। पुस्तक के रूप में इसे हम एक निबन्ध कह सकते हैं, जिसमें लेखक महोदय ने एक ओर तो यह दिखलाने का यत्न किया है कि मनु के ऊपर किये जानेवाले स्त्री-विषयक आक्षेप निराधार हैं और दूसरी ओर अनेक ऐसे विषयों का वर्णन किया है जो स्त्रियोंसम्बन्धी होते हुए भी मनु या उनकी स्मृति से कोई सम्बन्ध नहीं रखते। 'आँखों का परदा' नामक शीर्षकवाले अध्याय में स्त्रियों के प्रति किये गये अत्याचार, अपहरण तथा बलात्कार की कुछ एक घटनाओं को भी लेखक ने अख़बारों से लेकर उद्धृत कर दिया है। हमारी सम्मति में इन घटनाओं को पुस्तक में न देने से भी पुस्तक के प्रतिपाद्य विषय में कुछ न्यूनता न आती। मनुस्मृति के अनेक श्लोकों के अर्थ करने में भी खींचातानी से काम लिया गया है। 'परिशिष्ट' नामक अध्याय में ऐसे श्लोकों की ओर निर्देश किया गया है जिनसे स्त्रियों के प्रति अनादर और अविचार का भाव प्रकट होता है और लेखक महोदय जिन्हें 'प्रक्षिप्त' समझते हैं।

'शिक्षा का रूप' नामक अध्याय में कन्याओं को 'कन्या-गुरुकुलों' में शिक्षा के लिए भेजने की सम्मति दी गई है। जान पड़ता है, लेखक महोदय सहशिक्षा के विरुद्ध हैं। उन्होंने ज़ोरदार शब्दों में सह-शिक्षा से होनेवाली हानियों की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया है। पुस्तक उपयोगी है।

७-८—सीतारामीय श्री मथुरादास जी महाराज-कृत दो पुस्तकें—

(१) कल्याण कल्पद्रुम—इस ग्रन्थ में प्राप्य (ईश्वर) तथा जीव का स्वरूप, कर्म, ज्ञान तथा भक्ति-द्वारा प्राप्य तक पहुँचने के उपाय, नवधा भक्ति तथा प्रेमा भक्ति आदि विषयों का प्रतिपादन किया गया है। व्याख्याकार ने शास्त्रीय प्रमाणों तथा हिन्दी के अन्य सन्त कवियों के पदों को उद्धृत करके प्रतिपाद्य विषय को यथासंभव सरल और सुबोध बना दिया है। सर्व-धर्म-समन्वय की भावना से पुस्तक ओतप्रोत है। छपाई सुन्दर है। धर्म-जिज्ञासुओं को इसका संग्रह करना चाहिए। पृष्ठ-संख्या ३६५ तथा मूल्य १।) है।

(२) गीतागुह्यतमोपदेश—प्रस्तुत पुस्तक में लेखक महोदय ने श्रीमद् भगवद् गीता के "मन्मना भव मद्भक्तो" तथा "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" आदि श्लोकों के आधार पर यह प्रतिपादित किया है कि ज्ञान, कर्म, भक्ति आदि योगों की अपेक्षा 'शरणागति-योग' ही श्रेष्ठ है और इसी शरणागति-योग का प्रतिपादन करना गीता का मुख्य विषय है। वैष्णव-संप्रदाय का ग्रन्थ होने के कारण पुस्तक के अन्त में लेखक महोदय ने वैष्णव पंच संस्कारों, तप्त मुद्राओं से धनुष बाण आदि के चिह्न भुज-मूलों पर अंकित करना, ऊर्ध्व पुण्ड्र-धारण आदि का करना भी शरणागत के लिए आवश्यक बतलाया है। ऋग्वेद के "पवित्रं ते विततम्" इत्यादि मंत्र से भी शरीर को वैष्णव-चिह्नों से दग्ध करने का नियम सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। रामानन्दी संप्रदाय के श्रद्धालु पुरुष पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं। छपाई साधारण है। मूल्य ॥) है।

उपर्युक्त पुस्तकों के मिलने का पता—श्री सीताराम-संकीर्तन-सदन, स्वर्गद्वार, अयोध्या (फ़ैज़ाबाद)।

९—भाग्य-निर्माण—अनुवादक, ठाकुर कल्याणसिंह बी॰ ए॰, प्रकाशक, छात्र-हितकारी-पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग हैं। मूल्य १॥) है।

यह पुस्तक ओ॰ एस॰ मार्डन की 'आर्किटेक्ट्स आफ़ फ़ेट' नामक अँगरेज़ी पुस्तक के आधार पर लिखी गई है। अनुवाद की भाषा सरल और ज़ोरदार है। आज-कल हमारे शिक्षित नवयुवक बेकारी की भीषण समस्या के शिकार हो रहे हैं। इस पुस्तक से उन्हें इस अवस्था में बड़ा सहारा मिलेगा। अनुवादक महोदय ने अपने निजी अनुभवों के साथ साथ अनेक भारतीयों के ऐसे उदाहरण नवयुवकों के सामने रक्खे हैं जिन्होंने अपने अध्यवसाय, धैर्य और साहस से अपने भाग्य का निर्माण किया है। इस दृष्टि से यह पुस्तक नवयुवकों के काम की है। पुस्तक की छपाई तथा 'गेट-अप' अच्छा है।

१०—मधुवन—(कविता) लेखक, श्रीयुत आनन्द-कुमार, प्रकाशक, गंगा-ग्रन्थागार, लखनऊ हैं। मूल्य ।) है।

इसमें लेखक महोदय की खड़ी बोली और व्रजभाषा की २४ कविताओं का संग्रह है। पहले एक कविता खड़ी बोली की तब दूसरी व्रजभाषा की छापी गई है। सारी पुस्तक में यही क्रम है। कविताओं के विषय सभी तरह के हैं। गान्धी, जवाहर, दयानन्द, ऋतुराज, व्रज, केश आदि विषयों के साथ साथ ऐसी कवितायें भी इस पुस्तक में हैं जिनमें रहस्यवाद की झलक मिलती है। हमारी सम्मति में व्रजभाषा की अपेक्षा खड़ी बोली में कविता लिखने में लेखक महोदय को अधिक सफलता मिली है।

कविताओं की भाषा प्रसादगुणयुक्त है।

—कैलासचन्द्र शास्त्री, एम॰ ए॰

११—'आईने अकबरी'—इसके अनुवाद के सम्बन्ध में हम सरस्वती के किसी अंक में एक नोट छाप चुके हैं। प्रसन्नता की बात है कि वह छप कर खण्डशः निकलने भी लगा है। इसका प्रत्येक अंक प्रति तीसरे महीने निकलता है। इसका प्रत्येक अंक ६४ पृष्ठ का होगा। इसका आकार रायल आठ पेजी और काग़ज़ तथा छपाई भी साफ़ सुथरी है। स्थायी ग्राहकों से इसका वार्षिक मूल्य ४॥) है। एक अंक का मूल्य १।) है। इसका प्रकाशन इसके अनुवादक को ही करना पड़ा है। क्या ही अच्छा होता यदि यह काम किसी साहित्यिक संस्था के द्वारा होता। कदाचित् पाण्डेय जी की उन संस्थाओं तक पहुँच नहीं हो सकी, अतएव उन्हें अब प्रकाशन का भी भार अपने ऊपर लेना पड़ा है। हिन्दी के साहित्यकारों को ऐसी ही असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। हमें आशा है, पाण्डेय जी इस असुविधा को झेल ले जायँगे और इस व्यवस्था से 'आईने अकबरी' हिन्दी में हो ही न जायगी, किन्तु उन साहित्य-प्रेमियों को भी सुलभ हो जायगी जो इतनी बड़ी पुस्तक का मूल्य एक बार में देने में समर्थ नहीं हैं। इसके दो अंक अब तक निकल चुके हैं। इनको देखने से जान पड़ता है कि पाण्डेय जी ने 'आईन अकबरी' का कोरा कोरा अनुवाद ही नहीं किया है, किन्तु उस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के स्थल स्थल पर उपयुक्त टिप्पणियाँ लगाकर उसे और भी अधिक उपयोगी बना दिया है। यही नहीं, उन्होंने अपनी टिप्पणियों को आवश्यक नक़शों तथा चित्रों से अलंकृत करके सारे विषय को भले प्रकार बोधगम्य बना दिया है। इसमें सन्देह नहीं कि इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के अपने अनुवाद को तादृश महत्त्वपूर्ण बनाने में पाण्डेय जी ने अपने भरसक कुछ बाक़ी नहीं रक्खा और इसके इस तरह तैयार करने के लिए वे धन्यवाद के ही नहीं पात्र हैं, किन्तु इसके साथ यह भी आवश्यक है कि साहित्य-प्रेमी अधिक संख्या में इसके ग्राहक बनकर इस ग्रन्थ के प्रकाशन में सहायक बनें। इस सम्बन्ध में विद्या-मन्दिर, कानपुर के पते पर प्रकाशन महोदय से पत्र-व्यवहार हो सकता है।



जाग्रत महिलायें

स्त्रियों के लिए

छः अमूल्य उपदेश

दैनिक 'हिन्दी-मिलाप' में उपर्युक्त शीर्षक से एक योरपीय महिला श्रीमती ड्रेक के एक अँगरेज़ी लेख का हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित हुआ है। श्रीमती ड्रेक ने अपने अनुभव की बातें लिखी हैं। ये उपदेश इस उद्देश से तैयार किये हैं कि पति-पत्नी के झगड़ों का अन्त हो जाय और गृहस्थी स्वर्ग-सी प्रतीत होने लगे। 'सरस्वती' के पाठक-पाठिकाओं की जानकारी और प्रयोग के लिए हम ये छहों उपदेश यहाँ उद्धृत करते हैं। यदि हमारे कोई पाठक इस सम्बन्ध में अपने अनुभव लिखकर भेजेंगे तो हम उन्हें भी प्रकाशित करेंगे—

पहला उपदेश

"अपने पति पर विश्वास रक्खो। पति के दिल में यह बात जमा दो कि वही एक-मात्र मर्द है जिसे वह जानती है। इससे वह भी तुम्हें अपना समझेगा"। याद रक्खो विश्वास से विश्वास होता है। अपने दिल में यह बात मत लाओ कि सारे ही आदमी खराब हैं। मैं यह साहसपूर्वक कह सकती हूँ कि अधिकांश स्त्रियों के दिल में यही धारणा घर किये होती है। किसी कारणवश उन्हें पुरुष-समाज से घृणा होती है। स्त्रियाँ यह जानते हुए भी कि हम पुरुषों के बिना जीवित नहीं रह सकतीं, उनसे घृणा करती हैं और उनके आचरण पर सन्देह करती हैं। हर एक स्त्री अपने पति की कड़ी निगरानी करती है। ज़रा पति को बाहर से घर आने में देर हुई नहीं कि पत्नी के मिज़ाज की बारूद भड़क उठी। ऐसी दशा में वह यही समझती है कि वह कहीं किसी प्रेमिका से बातें करता रहा है। पत्नियाँ प्रायः बहुत ही ईर्ष्यालु और चौकन्नी होती हैं। यहाँ तक कि वे यह भी सहन नहीं करतीं कि उनका पति किसी युवती या किसी अन्य की स्त्री से ३-४ मिनट के लिए बातचीत करे। यह बात उनके लिए बड़ी आपत्तिजनक है। यदि किसी स्त्री को अपने पति पर ऐसा ही सन्देह है तो इसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि पति भी उस पर इसी प्रकार सन्देह करेगा। यदि आप अपने पति को इन सारी पाबन्दियों से आज़ाद कर दें, उस पर सन्देह न करें, वह चाहे जब घर आये, उसे मत टोकें तो उसका व्यवहार आपके साथ बहुत अच्छा रहेगा। हम सब प्रकार की पाबन्दियों से घृणा करते हैं, चाहे वे हमारी स्त्रियों-द्वारा ही क्यों न लगाई गई हों। आचार-भ्रष्ट व्यक्ति सभी को अपने जैसा समझते हैं। मैं कह सकती हूँ कि ऐसी स्त्रियाँ अपने कष्टों के लिए स्वयम् उत्तरदायी हैं।

दूसरा उपदेश

"अपने पति की ख़ुशामद करो। आदमी ख़ुशामद को बहुत पसन्द करते हैं।" परन्तु यहाँ यह समझना भूल है कि ख़ुशामद को आदमी ही पसन्द करता है—स्त्रियाँ नहीं। यह मनुष्य-मात्र की स्वाभाविक दुर्बलता है। घुड़की की अपेक्षा ख़ुशामद अधिक लाभदायक होती है। अधिकांश पत्नियाँ इस प्रारम्भिक तत्त्व को भूल जाती हैं। उन्हें जहाँ हँसना चाहिए, वहाँ वे चिढ़ जाती हैं। जहाँ उन्हें मृदु स्वर में बोलना चाहिए, वहाँ वे कर्कश बन बैठती हैं। स्त्रियाँ भी चाटुकार बन सकती हैं, पर वे समझे बैठी हैं कि चाटुकारिता पुरुषों का ही काम है। वे समझती हैं कि हम प्रशंसा कराने के लिए ही पैदा हुई हैं—प्रशंसा करने के लिए नहीं। यदि तुमको पति से कोई काम कराना है तो पहले उसका ढंग देखो। यदि वह अनुकूल है तो उसे इधर-उधर की बातों में लगाकर लुभाओ, इस तरह जब वह पूर्णरूप से तुम्हारी ओर आकर्षित हो जाय तो धीमे स्वर में अपनी बात कहो। तुम्हें ९० सैकड़ा सफलता होगी। इसके विपरीत यदि उतावलेपन में या ताना मार कर कोई काम कराना चाहो तो वह काम तो कभी पूरा होगा नहीं, हाँ, उसकी जगह कलह और क्लेश बिना माँगे अवश्य मिल जायँगे।

तीसरा उपदेश

"पाक-कला को प्रवीणता और पति को प्रेमपूर्वक खिलाना पति को अपना बना लेता है। यह उसे आकर्षित करने का सर्वोत्तम उपाय है।" कुशल पत्नियाँ भोजन तैयार करने में बहुत दिलचस्पी लेती हैं। सब-कुछ नौकर पर छोड़ देना भूल है। मैंने देखा है कि धनी हिन्दू-घरानों की स्त्रियाँ रसोई के काम को बहुत चाव से करती हैं। वे कम-से-कम एक चीज़ अपने हाथ से अवश्य बनाती हैं और परिणाम यह होता है कि उनका अपने पति पर काफ़ी अधिकार होता है। जब घरवालियाँ भोजन बनाना अपमान समझने लगती हैं और रसोई का सारा काम-काज नौकर की इच्छा पर छोड़ देती हैं तब भोजन स्वादिष्ट नहीं बनता। आदमी का मन उकता जाता है। धीरे धीरे उसे बाहर खाने की आदत पड़ जाती है। और इस तरह गार्हस्थ्य सुख के नाश का श्रीगणेश हो जाता है। भोजन परोसते समय पत्नी का समीप होना परमावश्यक है।

चौथा उपदेश

"प्रधान बनने की चिन्ता छोड़ दो, क्योंकि यह दर्जा पति का है। वह स्वभाव से ही अपने को घर का प्रधान व्यक्ति समझता है।" इसलिए स्त्रियों को यह बात कभी न भूलनी चाहिए कि पति गृहस्वामी है। घर का धुआँ उसी के कारण निकलता है। स्त्रियों को पति को अपनी उँगली पर नचाने की चेष्टा करना भारी भूल है और यह भूल कलह का मूल है। माना कि ऐसे दब्बू भी आदमी होते हैं जो चूँचरा किये बिना पत्नी के आदेश का नम्रतापूर्वक पालन करते हैं। वे पत्नी की हाँ में हाँ मिलाना और न में न मिलाना ही अपने लिए श्रेयस्कर और सुखकर समझते हैं। पर यह आदर्श नहीं है। सभी पति आत्मसम्मान के कारण ऐसा नहीं कर सकते। माना कि पति कहीं जान-बूझ कर दब जाय, पर यह आशा मत करो कि वह हर जगह और हर बार ऐसा ही करेगा।

पाँचवाँ उपदेश

"अपना रहन-सहन वैसा ही सरल और सादा रक्खो जैसा कि विवाह से पहले था।" यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है, और प्रायः बहुत ही कम स्त्रियाँ इस सारे उपदेश का पूर्णरूप से अनुसरण करती हैं। पर यह भी याद रखना चाहिए कि आदमी को आकर्षित करने का पहला कारण साधन शृंगार ही है। जहाँ सुन्दरता कम हुई नहीं कि आदमी का मन उचाट हुआ। वह तब सुन्दरता की खोज में इधर-उधर भटकने लगता है। यदि स्वास्थ्य का उचित ध्यान रक्खा जाय तो इस चिन्ता का कोई कारण नहीं रहता। इसका यह अर्थ नहीं कि स्त्रियों को अपनी सुन्दरता बढ़ाने के लिए पाउडर आदि चीज़ों का ख़ूब प्रयोग करना चाहिए और न मैं यह कहती हूँ कि उन्हें

इस काम पर काफ़ी धन व्यय करना चाहिए—बहु-मूल्य गहने और वस्त्र बनवाने चाहिए।

छठा उपदेश

"कटुभाषिणी मत बनो।" यह तीन शब्दों का उपदेश अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। पर इसका पालन करना भी स्त्रियों के लिए उतना ही कठिन है। ज़बान को क़ाबू में रखने के बजाय आप उनसे चाहे जो कहिए वे शायद मान लेंगी। अधिकांश स्त्रियाँ पति को कई प्रकार का उपदेश झाड़ना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझती हैं। वे पति को ऐसा झिड़कती और बुरा-भला कहा करती हैं, मानो किसी दुष्ट, शरारती बालक को झिड़क रही हों। एक भय होता है कि यदि ज़बान चलाअोगी तो पति को गवाँ बैठोगी। प्रायः स्त्री का वाक्य कोड़े की तरह लगता है और यदि आदमी गृह-कलह के दुःखदायी दृश्य से बचना चाहता हो तो उसे येन केन प्रकारेण सत्र का घूँट पीना पड़ता है। स्त्रियाँ भूल जाती हैं कि यह संक्रामक रोग है और इससे सारा जीवन दूभर बन जाता है। कठोर वचन हड्डियाँ तो नहीं तोड़ते, परन्तु उनके कारण जो चोट पड़ती है वह अपरिमित होती है और वह कहीं अधिक हानिकर सिद्ध होती है। इससे मानव-हृदय टूक टूक हो जाता है। और अभागे पति को कर्कशा नारी के वज्रतुल्य कठोर वचन के आघात की असह्य पीड़ा सहन करनी ही पड़ती है। यह घाव प्रायः जीवन भर हरा रहता है। पर कभी कभी तो पत्नी का कोप और उसको कठोर वाक्य आनन्ददायक भी होते हैं। हर समय शान्त रहना अस्वाभाविक है। कभी कभी की छेड़-छाड़ दुखदायी नहीं होती। पर हर समय की छेड़-छाड़ जीवन को दूभर बना देती है। आख़िर हर बात की कोई हद होती है। हर घड़ी का अपमान आदमी को जड़ बना देता है। यदि स्त्रियाँ अपने पतियों को अपने प्रेम-बन्धन में रखना चाहती हैं तो उन्हें कर्कश स्वभाव छोड़ देना चाहिए।

तसवीर

लेखक,

कुँवर सोमेश्वरसिंह, बी० ए०

मेरे मृदु सन्तापों को,
रहती है निशि-दिन गिनती।
तुमसे भी अधिक मुझे प्रिय,
तसवीर तुम्हारी लगती॥
सुनती सप्रेम है अविचल,
सब कुछ जो जो कहता हूँ।
इसके समीप रोने में,
संकोच नहीं करता हूँ॥
नीरव अस्फुट अधरों से,
वेदना टपकती रहती।
निस्पन्द सरस नयनों से,
सान्त्वना बरसती रहती॥
इसमें कितनी करुणा है,
इसमें कितनी आशा है।
साकार हृदय की इसमें,
मेरी मृदु अभिलाषा है॥

है चिर-संगिनि मेरी यह,
मेरे इस सूनेपन में।
भरती सामर्थ्य सदा जो,
मेरे मृदु उन्मन मन में॥
अनिमेष दृगों से प्रतिपल,
है मुझे देखती रहती।
मेरी स्वप्निल इच्छा का,
उपहास नहीं है करती॥
कल्पना मृदुल मेरी जब,
इसको सजीव कर देती।
मेरे जर्जर जीवन में,
यह नव जीवन भर देती॥
पीड़ा इसको मेरी जब,
लेती है लगा हृदय से।
रो उठती है यह भी उस,
निष्फलता के अभिनय से॥

हास-परिहास



उस दिन मैं एक इक्के पर बैठा चला जा रहा था। उस पर दो आदमी और भी बैठे थे। उन दोनों में एक साहब शराबी थे और दूसरे कांग्रेसमैन। वे दोनों नशे में थे। शराबी शराब के नशे में और कांग्रेसमैन देशभक्ति के नशे में। रास्ते में कांग्रेसमैन साहब ने शराबी को उपदेश देना शुरू किया—"तुम शराब क्यों पीते हो? पैसा क्यों नहीं बचाते?" इस पर शराबी ने उत्तर दिया—"तुम इक्के पर क्यों चलते हो? पैदल चलकर पैसा क्यों नहीं बचाते?"

× × × ×

बहस में बात बढ़ गई और झगड़ा होने की नौबत आगई। मैंने कांग्रेसमैन साहब से कहा—"आप ही चुप हो जाइए, व्यर्थ झगड़ा क्यों बढ़ाते हैं?" वे कुछ उत्तेजित हालत में थे, बोले—"कांग्रेसमैन झगड़े से नहीं डरता। जो इतनी बड़ी सरकार से मोर्चा ले सकता है उसके सामने यह शराबी क्या चीज़ है।"

× × × ×

मैं यह जानता हूँ कि कांग्रेस का उद्देश है शान्तिमय उपायों से स्वराज्य प्राप्त करना। उसका आन्दोलन अहिंसा, सत्य और संयम पर आश्रित है। मैंने यह बात कांग्रेसमैन से कही। वे बोले—"मैं कहाँ तलवार बाँधे फिर रहा हूँ? आप ही बताइए कि क्या मैं असत्य भाषण कर रहा हूँ। रही संयम की बात सो अगर मैं संयम से काम न लेता तो इस शराबी को अब तक इक्के के नीचे ढकेल दिया होता।"

× × × ×

मैं चुप हो रहा। मैंने सोचा, शायद ज़बानी युद्ध कांग्रेस की मर्यादा के अन्दर आता है। ऐसा न होता तो वार्षिक चुनाव में कांग्रेसमैन आपस में कुत्तों की तरह भों भों करके क्यों लड़ते? कदाचित् कांग्रेसमैन को मुसोलिनी की तरह सदा युद्ध चाहिए। जब सरकार सामने नहीं होगी तब वे आपस में लड़ेंगे।

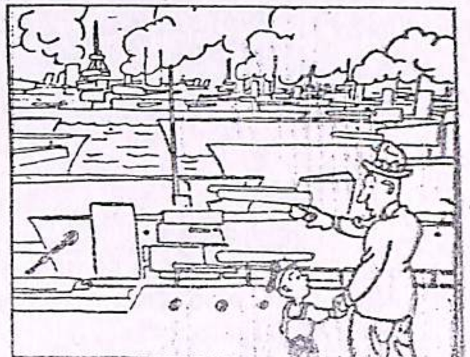
× × × ×

कांग्रेस का आगामी अधिवेशन लखनऊ में होगा। इस सूबे के कांग्रेसमैन वहाँ जमा हो कर इस मुस्तैदी के साथ आपस में लड़ रहे हैं कि उनसे लाहौर के सिक्ख और मुसलमान लड़ने का सबक़ ले सकते हैं। बहुत सम्भव है कि इस वर्ष कांग्रेस लाहौर के सिक्खों और मुसलमानों को अधिकाधिक संख्या में मेम्बर बना ले। क्योंकि जब आपस में लड़ना ही है तब लोग कांग्रेस के झंडे के नीचे आकर क्यों न लड़ें? इससे इज्ज़त भी मिलेगी और चित्त को शान्ति भी।

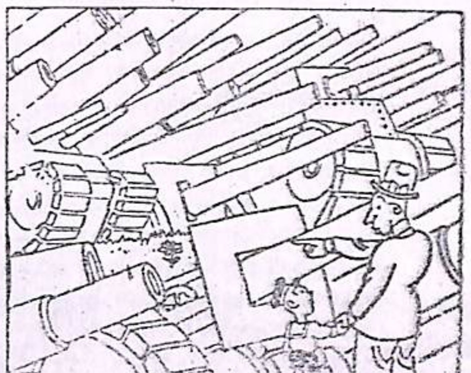
× × × ×

हिन्दू-महासभा, मुसलिम-लीग, वर्णाश्रम-स्वराज्यसंघ, आर्य्य-समाज, सिक्ख-लीग, ईसाई-संघ—ये सब व्यर्थ में साम्प्रदायिकता का अपयश मोल ले रहे हैं। जब कांग्रेस के अन्दर रहकर वे इज्ज़त के साथ दिल खोल कर लड़ सकते हैं और आपस में सिर-फुटौवल भी कर सकते हैं तब पता नहीं, वे कांग्रेस के अन्दर आकर राष्ट्रवादी कहे जाने का सम्मान क्यों नहीं प्राप्त करते? अपने राम तो आज ही कांग्रेस के मेम्बर बनने जा रहे हैं। फ़ार्म भरा और बे-लगाम हुए।

× × × ×



"बेटा, यह समुद्र है।"



"बेटा, यह ज़मीन है।"

ऊपर मुसोलिनी का ज़िक्र आया है। शाबाश! बहादुर हो तो ऐसा हो। ३०० लड़ाकू हवाई जहाज़ और लाखों अप-टु-डेट अस्त्रों से सज्जित सैनिक लिये एबीसीनिया पर चढ़ा जा रहा है। और उधर एबीसीनिया भी तलवार और बर्छा लेकर मैदान में आ डटा है। मुसोलिनी आसमान से बम गिरावेगा और एबीसीनिया ज़मीन पर से उसे तलवार दिखावेगा।

संसार के इतिहास में यह लड़ाई अभूतपूर्व होगी। तभी तो इँग्लेंड, फ़्रांस आदि इसे चुपचाप देखेंगे।

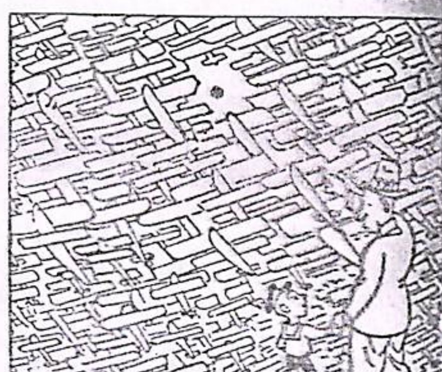
× × × ×

उधर जापान चीन को दबाये जा रहा है। जापान के पास भी युद्ध की अप-टु-डेट सामग्री मौजूद है। वह उसका अफ़ीमची चीन पर उपयोग क्यों न करे? एशिया का वह उदीयमान सूर्य है। उसका प्रकाश चीन में पहुँचना ही चाहिए।

× × × ×

इस प्रकार संसार में 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की कहावत चरितार्थ हो रही है। और जिनके पास बम-गोले हैं वे उनका उपयोग कर रहे हैं। बेचारे भारतवासियों के पास कुछ नहीं है और रक्षक ब्रिटिश सरकार है, इससे रूस या जापान के हमले का डर भी नहीं है। पर ये घायल होना चाहते हैं। कदाचित् यही कारण है कि यदि सरकार विदेशी हमलों से उन्हें बचायेगी तो वे आपस में ही सिर-फुटौवल करेंगे। जिनकी खोपड़ी उतनी मज़बूत नहीं है वे वाक्-युद्ध ही करेंगे।

—सदानन्द



"और प्यारे पुत्र, यह आसमान है।"

—'रिव्यू आफ़ रिव्यूज़' से।

प्रेमचन्द जी की रचना-चातुरी का एक नमूना

लेखक, श्रीनाथसिंह

दिसम्बर सन् १९३३ की 'सरस्वती' में मैंने 'घृणा के प्रचारक प्रेमचन्द' शीर्षक एक लेख लिखा था। उसमें मैंने यह दिखाया था कि प्रेमचन्द जी अपनी रचनाओं-द्वारा पाठकों के हृदयों में घृणा और तिरस्कार के बीज किस प्रकार बोते हैं। उस लेख में मैंने जो तर्क उपस्थित किये थे उन्हें प्रेमचन्द जी या उनके समर्थक काट नहीं सके। कुछ लोगों ने यह सिद्ध करने का असफल प्रयत्न अवश्य किया था कि प्रेमचन्द जी ने प्रेम का भी प्रसार किया है, पर जब स्वयं प्रेमचन्द जी ने 'जागरण' में यह घोषित किया कि समाज में घृणा की भी आवश्यकता है तब वे बेचारे भी चुप हो रहे। उस लेख में मैंने यह भी लिखा था—

"प्रेमचन्द जी में मौलिकता भी नहीं है। अपने उपन्यासों के प्लाट और भाव सभी वे पाश्चात्य लेखकों से लेते हैं। पर उनको भारतीय रूप देने में उन्हें इतना भद्दा बना देते हैं कि अर्थ का अनर्थ हो जाता है।"

मुझे प्रसन्नता है कि मेरे उस लेख के बाद प्रेमचन्द जी ने जो कहानियाँ लिखी हैं उनमें उन्होंने उन त्रुटियों को न आने देने का प्रयत्न किया है जिनकी ओर मैंने संकेत किया था। परन्तु बुढ़ाई उम्र में पहुँच कर स्वभाव बदलना मुश्किल होता है। पर यही क्या कम संतोष की बात है कि उन्होंने उचित दिशा की ओर प्रयत्न तो किया।

मेरे उस लेख से कदाचित् प्रेमचन्द जी के हृदय में यह बात बैठ गई कि पाश्चात्य लेखकों के प्लाटों और भावों पर कहानियाँ या उपन्यास लिखने से उनकी मौलिकता की धाक बनी नहीं रह सकती, इसलिए उन्होंने और उपाय सोचे। पर इतने दीर्घ-काल तक मौलिक ढङ्ग से सोचने और विचार करने का अभ्यास न होने के कारण उन्हें कठिनाई का अनुभव हुआ। उन्हें कोई न कोई आधार चाहिए ही, इसलिए वे भारतीय उपन्यासों की ओर झुके। और मुझे प्रसन्नता है कि सबसे पहले उन्होंने मुझे ही यह आदर प्रदान किया। उन्होंने हाल में प्रकाशित मेरे उपन्यास 'उलझन' के आधार पर एक कहानी लिखी। सम्भव है, उन्होंने अन्य कहानियों में हिन्दी के और भी उपन्यासों का सहारा लिया हो। ख़ैर।

मेरे उपन्यास के आधार पर प्रेमचन्द जी ने जो कहानी लिखी है उसका नाम है 'जीवन का शाप' और वह गत जून मास के 'हंस' में प्रकाशित हुई है। मैं ऊपर ही कह चुका हूँ कि दूसरों की चीज़ों को अपनाते समय प्रेमचन्द जी उन्हें इतना भद्दा बना देते हैं कि अर्थ का अनर्थ हो जाता है। अपनी इस कहानी में भी चोरी के अपराध से बचने के लिए उन्होंने मेरे उपन्यास के प्लाट, पात्रों, तर्कों और भावों की ऐसी छीछालेदर की है कि पढ़कर दुःख होता है। मौलिक उपन्यासकार या कहानी-लेखक कहलाने का भूत प्रेमचन्द जी पर सवार न होता और वे जिन लेखकों के आधार पर अपनी रचनायें करते हैं उन्हें छिपाने का व्यर्थ प्रयत्न न करते, तो भी उनका साहित्य में वही नाम और स्थान होता जो इस समय है। उनके पास भाषा है, बात कहने का अपना ढङ्ग भी है। किसी बात को अपने शब्दों में वे रोचक ढङ्ग से उपस्थित करने की कला में भी निपुण

हैं। यही उनकी ख़ूबी है और अपनी इस ख़ूबी के बल पर वे सदैव लोकप्रिय बने रहेंगे। पर मौलिकता का दम्भ उन्हें साहित्य की इस सच्ची सेवा से वञ्चित किये हुए है। दूसरों की चीज़ों को अपनी करके जनता के सामने उपस्थित करने और इस प्रकार वाहवाही लूटने की धुन में वे उनमें जो परिवर्तन और परिवर्धन कर देते हैं उससे उनका सारा सौन्दर्य नष्ट हो जाता है और जिस लेखक का कृति-महल ढहा कर उसी ज़मीन पर, उसी की नींव पर, उसी मसाले से वे अपना महल खड़ा करते हैं, उनके उद्देश, भाव और संदेश की हत्या हो जाती है।

मैं इस लेख में साबित करूँगा कि प्रेमचन्द जी ने मेरे उपन्यास—'उलझन' के आधार पर किस तरह अपनी इस कहानी—जीवन का शाप—की रचना की और फिर अपनी मौलिकता की धाक बनाये रखने के उद्देश से उन्होंने अपनी ओर से भी कुछ जोड़कर किस प्रकार मेरे उपन्यास के सुन्दर उद्देश को अपनी कहानी में असुन्दर बना डाला।

'उलझन' समस्या-मूलक एक दुःखान्त उपन्यास है। उसमें विवाहितों की समस्या पर मैंने वर्तमान समाज से जीवित उदाहरण लेकर कुछ विचार-सामग्री उपस्थित की है। पति-पत्नी में परस्पर आकर्षण और प्रेम कैसे बना रह सकता है, यह बतलाने का मैंने उसमें प्रयत्न किया है। पाठक उपन्यास पढ़ने पर जिस नतीजे पर पहुँचेंगे वह यह है कि विवाहित स्त्री-पुरुष एक-दूसरे को अपने अनुकूल बनाने का प्रयत्न बल-प्रयोग या क्रोध-प्रदर्शन के द्वारा न करके उदारता, सहिष्णुता, क्षमा, प्रेम और सहयोग के द्वारा करें। एक-दूसरे की त्रुटियों और भूलों के लिए जहाँ तक क्षमा कर सकते हों, करें।

'जीवन का शाप' भी समस्यामूलक एक दुःखान्त कहानी है। उसमें भी विवाहितों की समस्या पर प्रेमचन्द जी ने वर्तमान समाज से जीवित उदाहरण लेकर कुछ विचार-सामग्री उपस्थित की है। पति-पत्नी में परस्पर प्रेम और आकर्षण कैसे बना रह सकता है, यह उन्होंने भी बताने का प्रयत्न किया है परन्तु मैं पहले ही कह चुका हूँ कि उनमें प्रेम नहीं, घृणा के प्रचार की प्रवृत्ति है। इसलिए उन्होंने अपने स्वभाववश पति-पत्नी को एक दूसरे के अनुकूल बनाने के प्रयत्न में उदारता, सहिष्णुता, क्षमा, प्रेम और सहयोग की ओर पाठकों को न ले जाकर उन्हें छल और कपट की ओर ले जाने का प्रयत्न किया है। कुमार्ग पर जानेवाले पतियों की पत्नियों को उन्होंने उपदेश दिलाया है कि वे भी छिपकर कुमार्ग की ओर अग्रसर हों और 'कुढ़ना छोड़कर विलास का आनन्द लूटें।' यह अन्तिम वाक्य उन्हीं का है जो उन्होंने अत्यन्त शान्त भाव से एक भद्र महिला से कहलाया है। यह बात इस भद्र महिला ने एक सम्पादक से कही है और उसे इस शुभ सन्देश को एक दूसरी स्त्री के पास पहुँचाने का आदेश दिया है। सम्पादक ने इसका खंडन नहीं किया। इससे स्पष्ट है कि विवाहितों की समस्या प्रेमचन्द जी इसी प्रकार सुलझाना चाहते हैं। उनकी कहानी में सिर्फ़ यही बात ऐसी है जो 'उलझन' में नहीं है। शेष सारी बातें 'उलझन' की हैं। पर पाठक देखें कि अपनी तरफ़ से यह नई बात जोड़कर उन्होंने अर्थ का कैसा अनर्थ किया है और मज़ा यह है कि इतने पर भी वे आदर्शवादी लेखक कहलाना चाहते हैं।

'उलझन' के पात्र उत्तर-भारत के हैं। प्रेमचन्द जी हाल में बम्बई गये थे और वहाँ लगभग साल भर रहे थे। अपने साथ वे 'उलझन' के इन पात्रों को भी बम्बई लेते गये और उनका नाम बदल कर और पारसियों की पोशाक पहना कर उन्हें पारसी बना डाला। शायद इस ख़याल से कि जब वे उन्हें साल भर बाद उत्तर-भारत लेकर आवेंगे तब उन्हें कोई पहचान नहीं सकेगा। यहाँ मैं प्रेमचन्द जी के इन बहु-रूपियों को 'उलझन' में दिखाये गये उनके वास्तविक स्वरूप के साथ उपस्थित करता हूँ। पाठक स्वयं विचार करें कि ये वही हैं या नहीं।

प्रेमचन्द जी की कहानी के एक पात्र हैं कावस जी। ये बम्बई में संपादक हैं, बड़े मेहनती हैं, सीधे हैं, संतोषी हैं, पर ग़रीब हैं, इसलिए इनकी स्त्री गुलशन निरन्तर कटुभाषण करती है और बात बात में व्यङ्ग्य बोलती है। स्त्री के इस व्यवहार से ये मन ही मन खिन्न रहते हैं और अपने एक मित्र की मधुर-भाषिणी स्त्री की ओर आकर्षित होते हैं और कहते हैं—"गुलशन की जगह शीरीं होती तो उनका जीवन कितना गुलज़ार होता।" [हंस जून सन् १९३५ पृष्ठ ३३]

पाठक देखें कि प्रेमचन्द जी के कावस जी 'उलझन' के जगतनारायण तो नहीं हैं। क्योंकि यद्यपि ये सम्पादक नहीं हैं, स्कूल मास्टर हैं, तथापि उनकी तर्कशैली, समझ और सूझ ऐसी है कि बम्बई में जाकर बड़े मज़े में सम्पादक हो सकते हैं। उलझन के ये जगतनारायण भी बड़े मेहनती हैं, सीधे हैं, संतोषी हैं, पर ग़रीब हैं, इसलिए उनकी स्त्री मानवती निरन्तर कटुभाषण करती है और बात बात में व्यङ्ग्य बोलती है। स्त्री के व्यवहार से वे मन ही मन खिन्न रहते हैं और अपने एक मित्र की मधुरभाषिणी स्त्री की ओर आकर्षित होते हैं और सोचते हैं—"उन्हें चम्पा जैसी स्त्री मिली होती तो उनका जीवन सफल हो जाता।" (उलझन पृष्ठ ४३)

खेद है कि प्रेमचन्द जी ने 'उलझन' के इस ग़रीब पात्र को बम्बई ले जाकर भी ग़रीब ही रक्खा और वहाँ भी उसे स्त्री की कटूक्तियाँ सुनवाईं और उसके सामने वही उलझनें पेश कीं जो यहाँ उत्तर-भारत में थीं। ख़ुद तो फ़िल्म-कम्पनी में काम करने गये थे, पर इस बेचारे को किसी अमीर दोस्त के साथ किसी दिन सिनेमा भी न दिखलवाया। बम्बई में उन्होंने उसके जीवन में कोई भी ऐसी बात नहीं दिखाई जो उसके यहाँ उत्तर-भारत के जीवन से भिन्न हो। ऐसी दशा में यदि मैं कहूँ कि उन्होंने 'उलझन' के इस पात्र को चुराकर अपनी कहानी का पात्र बना लिया है तो मुझे ऐसा कहने का सर्वथा अधिकार है।

अब 'उलझन' के एक स्त्री पात्र शीला को लीजिए। यह उत्तर-भारत के एक धनी सेठ की स्त्री है। वह सुशिक्षिता, अप-टु-डेट और मधुर-भाषिणी है, पर उसे दाम्पत्य-सुख नहीं प्राप्त है, क्योंकि उसका पति अपना सारा समय धन कमाने में लगाता है और उसको बहुत कम समय देता है। साथ ही शीला को उसमें परस्त्रीगामी होने का भी सबूत मिलता है। इसलिए वह एक दिन घर से निकल पड़ती है। एक बाग़ में अपने और अपने पति के एक परिचित मित्र के साथ मिलती है और क्रोधावेश में उसके साथ कहीं भी निकल भागने को तैयार हो जाती है और कहती है—"इस समय कोई कहे तो मैं नरक में भी इसके साथ जा सकती हूँ।" (उलझन पृष्ठ ९८)

उलझन की इस शीला को भी प्रेमचन्द जी बम्बई ले गये। उसका शीला नाम बदल कर शीरीं रक्खा जो एक प्रकार से शीला का उर्दू रूपान्तर है। इस बेचारी उत्तर-भारतीय नारी को भी उन्होंने पारसी बना डाला और एक धनी पारसी के साथ उसे ब्याह दिया। यह शीरीं भी सुशिक्षिता, अप-टु-डेट और मधुरभाषिणी है। यह अवश्य है कि यहाँ इसे पति उत्तर-भारत से कुछ भिन्न मिला है। वह पारसी है, इसलिए कुछ भिन्नता होनी ही चाहिए पर प्रेमचन्द जी के साथ बम्बई जाकर पारसी हो जाने पर भी सभ्य पारसी के साथ विवाह करके भी, नाम बदल डालने पर भी इस शीरीं को अर्थात् 'उलझन' की शीला को यहाँ उसी समस्या का सामना करना पड़ा जो उसके सामने उत्तर-भारत में मौजूद थी। अर्थात् उसे दाम्पत्य-सुख प्राप्त नहीं है, क्योंकि पति उसको बहुत कम समय देता है और उसके परस्त्रीगामी होने का भी सबूत मिलता है, इसलिए वह एक दिन घर से निकल पड़ती है, एक बाग़ में अपने और अपने पति के परिचित एक मित्र से मिलती है और क्रोधावेश में उसके साथ कहीं भी निकल भागने को तैयार हो जाती है और कहती है—"मैं तुम्हारे साथ चलूँगी अभी इसी दम।" (हंस जून १९३५ पृष्ठ ४१)

पाठक मेरे उपन्यास की शीला और प्रेमचन्द जी की इस शीरीं की परीक्षा करें। उनका कैसा दाम्पत्य जीवन है और उस जीवन से किस प्रकार वे विद्रोह करने पर तुली हुई हैं, यह देखकर स्वयं सोचें कि क्या दोनों एक ही नहीं हैं। नाम और स्थान का भेद कोई भेद नहीं है।

प्रेमचन्द जी की कहानी में दो पात्र और हैं। गुलशन और शापुर जी। ये दोनों भी 'उलझन' की मानवती और धर्मदास से मिलते-जुलते हैं—गुलशन कटुभाषण में और शापुर जी धन कमाने में। एक उदाहरण लीजिए। गुलशन अपने ग़रीब पति से कहती है—"जब तुम्हारे घर में रोटियाँ न थीं तब मुझे क्यों लाये।" (हंस जून १९३५ पृष्ठ ३३) इधर मानवती अपने ग़रीब पति से कहती है—"तुमने मुझे क्या सुख दिया है, क्या गहना दिया है—" (उलझन पृष्ठ ५)

माना कि ग़रीब घरों में सर्वत्र स्त्रियाँ इसी प्रकार की बातें कर सकती हैं और करती हैं। इसलिए ऐसे पात्रों को उपस्थित करना जो सर्वत्र पाये जाते हैं, चोरी नहीं है। परन्तु जिस परिस्थिति में, जिस उद्देश से, जिस समस्या को सुलझाने के लिए ये पात्र उपस्थित किये गये हैं, वे सब एक ही हैं। इसलिए यह भी चोरी के अन्दर अवश्य ही आवेगा।

प्रेमचन्द जी की कहानी में चार पात्र हैं और उलझन में छः हैं। प्रेमचन्द जी ने जैसे कहानी को संक्षिप्त किया है वैसे ही पात्रों को भी ६ की जगह ४ कर दिया है। दोनों के पात्रों का संक्षिप्त पर तुलनात्मक परिचय मैं नीचे कोष्ठक में देता हूँ।

इस प्रकार उलझन के ६ पात्रों की जगह प्रेमचन्द जी ने ४ पात्रों से ही काम चलाया है। 'उलझन' लगभग ३०० पृष्ठों का उपन्यास है और कहानी 'हंस' के सिर्फ ७ पृष्ठों में समाप्त हुई है। संक्षिप्त करने में दो पात्रों का कम कर देना उचित ही था। 'उलझन' में एक बुढ़िया का ज़िक्र है, जो अपने घर में दूसरों को आया देख उदास हो जाती है। प्रेमचन्द जी की कहानी में भी यह बुढ़िया इसी रूप में आई है। (उलझन पृष्ठ २१७ हंस पृष्ठ ३७) इस बुढ़िया का 'उलझन' में कोई नाम नहीं रक्खा गया है, इसलिए प्रेमचन्द जी ने भी अपनी कहानी में इस बुढ़िया का कोई नाम नहीं दिया। विवाहित स्त्री-पुरुषों का वर्णन होते हुए भी 'उलझन' में किसी के बच्चे नहीं हैं। यह इसलिए कि मेरा बच्चों की समस्या पर अलग से लिखने का विचार है। पर प्रेमचन्द जी के सामने 'उलझन' ही है, इसलिए विवाहित स्त्री-पुरुषों का वर्णन आने पर भी उनकी कहानी में भी किसी के बच्चे नहीं हैं। मैं मानता हूँ कि मौलिकता मेरे हिस्से में नहीं पड़ी है। एक ही बात को, एक ही समस्या को एक ही साथ अनेक मनुष्य एक ही ढङ्ग से सुलझा सकते हैं। पर दो कहानी लेखकों को एक ही प्रश्न पर विचार करने के तरीक़ों में उतना साम्य नहीं हो

उलझन	जीवन का शाप
१—जगतनारायण—ग़रीब पर विद्वान, मेहनती और सन्तोषी।	१—कावस जी—ग़रीब पर विद्वान, मेहनती, और सन्तोषी।
२—मानवती—पति की ग़रीबी के कारण कटुभाषिणी।	२—गुलशन—पति की ग़रीबी के कारण कटुभाषिणी।
३—धर्मदास—धनी व्यापारी।	३—शापुर जी—धनी व्यापारी।
४—शीला—सभ्य महिला पर पति से असन्तुष्ट।	४—शीरीं—सभ्य महिला पर पति से असन्तुष्ट।
५—भ्रमर—कवि।	५—इस पात्र को उन्होंने कावस जी में मिला दिया है।
६—चम्पा—सरल पर समझदार स्त्री।	६—इस पात्र को उन्होंने गुलशन में मिला दिया है।

सकता जितना कि मेरे उपन्यास—'उलझन' और प्रेमचन्द जी की इस कहानी—'जीवन का शाप' में मौजूद है।

'उलझन' में क्या है ? तीन भिन्न स्वभाव के विवाहित स्त्री पुरुषों के जोड़े परस्पर मिलते हैं। स्त्रियाँ अपने पतियों को अपनी रुचि के अनुकूल नहीं पातीं और पति अपनी स्त्रियों को अपनी रुचि के अनुकूल नहीं पाते। पति सोचते हैं, उन्हें अमुक स्त्री न मिलकर अमुक मिली होती तो अच्छा होता और स्त्रियाँ सोचती हैं, उन्हें अमुक पति न मिल कर अमुक मिला होता तो अच्छा होता। उनमें कुछ की इच्छायें किसी हद तक पूर्ण भी हो जाती हैं, पर उन्हें फिर भी असन्तोष बना ही रहता है; और इसी असन्तोष के साथ उपन्यास की समाप्ति होती है।

प्रेमचन्द जी ने इसी असन्तोष का नाम 'जीवन का शाप' रक्खा और बिलकुल इसी लाट पर कहानी लिख डाली। कहानी में उन्होंने थोड़ा-सा परिवर्तन और परिवर्धन भी किया है, पर उनकी कहानी का वही अंश असुन्दर हो गया है। 'उलझन' में जो बात कई पृष्ठों में कही गई है उसका उन्होंने एक पैराग्राफ़ या एक लाइन में उल्लेख कर दिया है। ऐसा न करते तो बड़ी कहानी को इतना छोटा रूप कैसे देते ? एक उदाहरण लीजिए—"शीला ने भ्रमर को अपनी कोमल बाहों के सहारे... धीरे धीरे से लाकर पेड़ के पास बैठाया।" (उलझन पृष्ठ ११०)

"शीरीं ने उनका हाथ पकड़ कर एक बेंच पर बिठा दिया।" (प्रेमचन्द जी की कहानी हंस पृष्ठ ३६)

इस प्रकार के पचीसों उदाहरण दिये जा सकते हैं।

'उलझन' के पात्र एक दूसरे के घर पर या दिल्ली के रोशनआरा-बाग़ में मिलते हैं। प्रेमचन्द जी के ये पात्र भी एक-दूसरे के घर पर या बम्बई के एक पब्लिक पार्क में मिलते हैं। ऊपर की दोनों घटनायें एक बाग़ की ही हैं और दोनों में अपने पतियों से असन्तुष्ट स्त्रियाँ अपने पतियों के ग़रीब मित्रों के साथ निकल भागने को उद्यत हैं। इतने पर भी यदि प्रेमचन्द जी यह कहें कि उन्होंने 'उलझन' को नहीं पढ़ा, उसका दर्शन भी नहीं किया, वह कहानी उन्होंने उसके आधार पर नहीं लिखी, वह तो उनके बम्बई प्रवास का एक ताज़ा अनुभव है, तो यह उनकी 'ज़िद' के सिवा और क्या कहा जायगा।

चोरी का दोष छिपाने के लिए प्रेमचन्द जी ने अपनी कहानी में जो परिवर्तन और परिवर्द्धन किया है, अब ज़रा उस पर भी विचार कर लीजिए। ऊपर बाग़ की घटना का उल्लेख किया गया है। वहाँ अनुचित प्रेम का प्रस्ताव 'उलझन' में पुरुष की ओर से हुआ है। पर प्रेमचन्द जी की कहानी में प्रस्ताव पहले-पहल स्त्री की ओर से हुआ है, यद्यपि पुरुष बहुत पहले से आकर्षित है और सदैव अवसर की प्रतीक्षा में रहा है। मेरा ख़याल है, यह अस्वाभाविक है। ऐसे प्रस्ताव प्रायः पुरुष की ओर से ही होते हैं, स्त्री की स्वीकृति तो सदैव मौन होती है और उसके प्रस्ताव भी प्रायः संकेत के रूप में होते हैं। यहीं से प्रेमचन्द जी ने प्लाट में परिवर्तन किया है और यहीं से कहानी बिगड़नी शुरू हुई है।

अब ज़रा विचार कीजिए। जैसे 'उलझन' का भ्रमर शीला के लिए व्याकुल है, वैसे ही इस कहानी का कावस जी शीरीं के लिए व्याकुल है। वह महीनों से अवसर की ताक में है। अपनी कटुभाषिणी स्त्री को मायके भेज आया है। उसको तलाक़ देने और नया घर बसाने की बात सोच चुका है। ऐसे अवसर पर शीरीं का उससे प्रस्ताव करना कि 'अभी इसी दम तुम्हारे साथ चलूँगी' उसके लिए ख़ुशी का सबसे बड़ा दिन है। पर वह कायर हो जाता है। इधर कायरता ज़ोर पकड़ती है, उधर शीरीं का पति आ जाता है। कावस जी कहते हैं—"उसे मना लीजिए।" पर वह उपेक्षा करके चला जाता है। तब वहाँ कावस जी की स्त्री मायके से आ धमकती

है और वह कटु-भाषिणी स्त्री परमसुशीला और शिक्षिता महिला के रूप में कावस जी को उपदेश देती है—घर चलो और शीरीं को समझा दो। "ऐयाश मर्द की स्त्री अगर ऐयाश न हो तो यह उसकी कायरता है, लतखोरपन है।"

प्रेमचन्द जी की कहानी यहाँ क्लाइमेक्स पर पहुँचकर फिर थोड़ा नीचे उतर जाती है और समाप्त हो जाती है। महीनों की व्याकुलता के बाद कावस जी का कायर हो जाना, शापुर जी का वक्षःस्थल पर आकर उपेक्षा प्रदर्शित करना, कटुभाषिणी गुलशन का परम सुशीला नारी के रूप में प्रकट होना और ऐसा पतन-पूर्ण उपदेश देना, यह सब कितना अस्वाभाविक और भद्दा है, उस कहानी में यदि प्रेमचन्द जी का कुछ है तो यही अस्वाभाविकता और भद्दापन। कहानी में यह बात उन्हें इसलिए जोड़नी पड़ी कि भेद न खुले। पर खेद है कि इतने पर भी वे चोरी को छिपाने में सफल नहीं हुए।

गुलशन के बाग़ में पहुँचने की घटना भी 'उलझन' की एक घटना के ही आधार पर है। 'उलझन' में शीला एक उपन्यास पढ़ती है और उससे प्रभावित होकर घर से निकल पड़ती है। (उलझन पृष्ठ ९१) और प्रेमचन्द जी की कहानी में गुलशन एक सपना देखती है और उससे प्रभावित होकर निकल पड़ती है। (हंस पृष्ठ २८) 'उलझन' में और भी बहुत-सी बातें और घटनायें हैं जो इस कहानी में नहीं आईं, पर मुख्य मुख्य बातें प्रायः सभी आ गई हैं। और प्रेमचन्द जी ने जो अपनी तरफ़ से जोड़ा है वह अस्वाभाविक, असुन्दर और व्यर्थ है जैसा कि मैं ऊपर साबित कर चुका हूँ।

कदाचित् प्रेमचन्द जी यह समझते हों कि किसी की भी रचना को पढ़ जाने के बाद उसे अपने शब्दों में लिख डालना चोरी नहीं है। 'हंस' के उसी अङ्क में उन्होंने श्री भुवनेश्वरप्रसाद की नये ढङ्ग के नाटक लिखने के लिए खूब प्रशंसा की है। यद्यपि इन नये ढङ्ग के नाटकों में एक 'शैतान' बरनार्ड शा के एक नाटक—'दि डेविल्स डिसाइपिल' का हिन्दी अनुवाद-मात्र है। 'घृणा के प्रचारक प्रेमचन्द' शीर्षक लेख में मैं 'शा' के इस नाटक का संक्षिप्त परिचय दे चुका हूँ। यह हो सकता है कि प्रेमचन्द जी ने शा का यह नाटक न पढ़ा हो, पर मेरा लेख तो उन्होंने पढ़ा ही होगा, क्योंकि उन्होंने उसका उत्तर देने का प्रयत्न किया था। इस नवीन लेखक के इन नये नाटकों की समालोचना करते समय प्रेमचन्द जी ने इस बात का ज़िक्र क्यों नहीं किया? क्या वे चाहते हैं कि नवयुवक भी उन्हीं की भाँति 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा लेकर भानमती का कुनबा जोड़ें' या वे इस प्रकार की चोरी को चोरी ही नहीं मानते। या इसका कारण यह है कि जो दोष स्वयं अपने में मौजूद है उसे दूसरों में देखें तो किस मुँह से उसका उल्लेख करें। कुछ भी हो, अब समय आ गया है जब हम सत्य का स्वागत करें और इस प्रकार के प्रयत्नों को चाहे वे किसी भी परिस्थिति में क्यों न किये गये हों, कदापि प्रोत्साहन न मिलने दें।

प्रेमचन्द जी से मेरा कोई व्यक्तिगत द्वेष नहीं है। मैं उनका उतना ही आदर करता हूँ जितना कि कोई भी कर सकता है। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि हिन्दी में कथा-साहित्य की वृद्धि में उनका बहुत बड़ा हाथ रहा है और है। पर यह सब होते हुए भी मैं उनके दोषों की ओर से आँख नहीं फेर सकता। अब कहानी और उपन्यास का वह स्वरूप नहीं रहा जो उस समय था जब प्रेमचन्द जी ने लिखना शुरू किया था। आधुनिक कहानियों की सफलता इस बात में है कि वे मनुष्यों को उठाने में, उन्हें एक दूसरे के निकट लाने में, सब प्रकार के मनुष्यों के हृदयों में मानव मात्र के प्रति प्रेम, दया, सहानुभूति और क्षमा का भाव उदय करने में सहायक हों। वे मनुष्यों के दिल में इस बात को जमा दें कि मार डालने से माफ़ कर देना ज्यादा अच्छा है। प्राण-हरण करने से प्राण बचाना अधिक सुन्दर है। मुझे यह देखकर दुःख हुआ कि प्रेमचन्द जी ने अपनी इस



चिन्ता-मग्ना [चित्रकार—श्रीयुत वाणीकान्त दास

कहानी में भी जिसे उन्होंने मेरे उपन्यास के आधार पर लिखा है, बदला लेने का भाव भरा हुआ है। उन्होंने यह साबित किया है कि जहाँ धन है वहाँ ऐयाशी का बाजार अवश्य गरम होगा। प्रकाश की स्त्री अगर ऐयाश न हो तो यह उसकी कायरता है, लतखोरपन है। खेद है कि गांधी और टैगोर के युग में रहते हुए भी प्रेमचन्द जी घृणा का यह बीज बोते चले जा रहे हैं। चरित्र का निर्माण धन या निर्धनता पर नहीं, व्यक्तिगत इच्छा और प्रयत्न पर निर्भर है। प्रेमचन्द जी यह छोटी-सी बात क्यों नहीं समझते और साहित्य-रचना में वे उस लेखक के प्रति कृतज्ञता का भाव क्यों नहीं प्रकट करते जिनकी रचनाओं के आधार पर रचना करके वे यश और धन का अर्जन करते हैं? क्या मैं आशा करूँ कि मेरे इस निवेदन पर वे क्रोध नहीं, तिरस्कार नहीं, घृणा नहीं, बल्कि प्रेम और उदारता के साथ विचार करेंगे। इस समय मैंने इतना ही लिखना उचित समझा है, पर यदि आवश्यकता पड़ी तो अपने तर्कों को लम्बे उद्धरण देकर अधिक विस्तार के साथ भी उपस्थित करूँगा।

पीपल-पत्र

लेखक, श्रीयुत धनराजपुरी

(१)
किसलिए काँपता रहता,
वह बिना वायु के प्रतिपल।
है कौन वेदना उसको,
जिससे पड़ती न जरा कल?

(२)
क्या अत्याचार जगत का—
लख, काँप काँप उठता है?
अपनी रक्षा में प्रस्तुत—
वह भी हिलता-डुलता है!

(३)
था प्रकृति-गर्भ से निकला,
वह अमित वेदना सहकर।
क्या याद उसी की करके—
कँपता है पल पल थर थर?

(४)
या जगत-पिता का निशि-दिन—
(स्वर वीणा-तुल्य मिलाकर!)
वह गुण-गौरव गाता है—
अपना सिर हिला हिलाकर?

(५)
क्यों बार बार आ-जाकर—
भी जगत मोह में फँसता?
क्या देख नाट्य यह प्रतिपल—
वह मचल मचल है हँसता?

(६)
निज रूप मूढ़, जग झुक क्यों—
कर रहा पाप का अर्जन!
क्या इसी लिए करता है—
कर-इंगित से वह वर्जन?

(७)
आधार सुदृढ़-तम पा कर—
क्या सँभल नहीं पाता है,
जो इधर-उधर पल पल में
वह हिल-डुल-सा जाता है।

(८)
मुझ-सा ही जग-जीवन है—
पल पल हिल उठनेवाला!
क्या यही बताता है वह—
मद बेसुध हो मतवाला।

कहानी में भी जिसे उन्होंने मेरे उपन्यास के आधार पर लिखा है, बदला लेने का भाव भरा हुआ है। उन्होंने यह साबित किया है कि जहाँ धन है वहाँ ऐयाशी का बाज़ार अवश्य गरम होगा। ऐयाश की स्त्री अगर ऐयाश न हो तो यह उसकी कायरता है, लतखोरपन है? खेद है कि गांधी और टैगोर के युग में रहते हुए भी प्रेमचन्द जी घृणा का यह बीज बोते चले जा रहे हैं। चरित्र का निर्माण धन या निर्धनता पर नहीं, व्यक्तिगत इच्छा और प्रयत्न पर निर्भर है। प्रेमचन्द जी यह छोटी-सी बात क्यों नहीं समझते और साहित्य-रचना में वे उस लेखक के प्रति कृतज्ञता का भाव क्यों नहीं प्रकट करते जिनकी रचनाओं के आधार पर रचना करके वे यश और धन का अर्जन करते हैं? क्या मैं आशा करूँ कि मेरे इस निवेदन पर वे क्रोध नहीं, तिरस्कार नहीं, घृणा नहीं, बल्कि प्रेम और उदारता के साथ विचार करेंगे। इस समय मैंने इतना ही लिखना उचित समझा है, पर यदि आवश्यकता पड़ी तो अपने तर्कों को लम्बे उद्धरण देकर अधिक विस्तार के साथ भी उपस्थित करूँगा।

पीपल-पत्र

लेखक, श्रीयुत धनराजपुरी

(१)
किसलिए काँपता रहता;
वह बिना वायु के प्रतिपल।
है कौन वेदना उसको,
जिससे पड़ती न ज़रा कल?

(२)
क्या अत्याचार जगत का—
लख, काँप काँप उठता है?
अपनी रक्षा में प्रस्तुत—
वह भी हिलता-डुलता है!

(३)
था प्रकृति-गर्भ से निकला,
वह अमित वेदना सहकर।
क्या याद उसी की करके—
कँपता है पल पल थर थर?

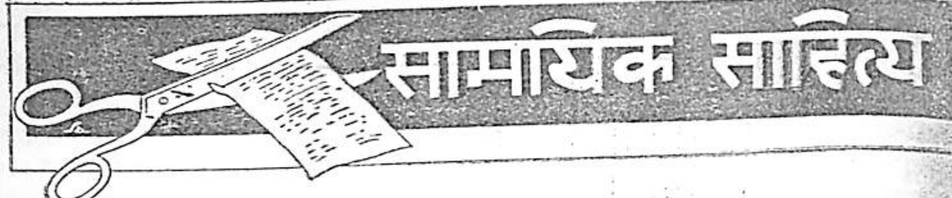
(४)
या जगत-पिता का निशि-दिन—
(स्वर वीणा-तुल्य मिलाकर!)
वह गुण-गौरव गाता है—
अपना सिर हिला हिलाकर?

(५)
क्यों बार बार आ-जाकर—
भी जगत मोह में फँसता?
क्या देख नाट्य यह प्रतिपल—
वह अचल मचल है हँसता?

(६)
निज रूप भूल, जग झुक क्यों—
कर रहा पाप का अर्जन!
क्या इसी लिए करता है—
कर-इंगित से वह वर्जन?

(७)
आधार सुमन-सम पा कर—
क्या सँभल नहीं पाता है,
जो इधर-उधर पल पल में
वह हिल-डुल-सा जाता है।

(८)
मुझ-सा ही जग-जीवन है—
पल पल हिल उठनेवाला!
क्या यही बताता है वह—
मत बेसुध हो मतवाला।



नागरी-लिपि में सुधार

नागरी-लिपि में सुधार की चर्चा इधर कई वर्षों से हो रही है। ग्वालियर, दिल्ली और इन्दौर में पिछले तीन वर्षों से सम्मेलन के जो अधिवेशन हुए हैं उनमें भी यह प्रश्न उठा है। इन्दौर में तो इसके लिए बाक़ायदा एक समिति ही स्थापित हो गई है, जिसके संयोजक श्री काका कालेलकर जी हैं। गत २५-२६ जून को इस समिति की पहली बैठक वर्धा में हुई जिसमें निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुए।

(१) यह समिति निर्णय करती है कि देवनागरी-लिपि के अक्षरों पर शिरोरेखा आवश्यक नहीं है। इसलिए लिखने में शिरोरेखा वैकल्पिक हो और छापने में प्रेसवाले उसे हटाने की कोशिश करें।

किन्तु शिरोरेखा हटाते हुए भी छपाई में उसका अंश अक्षरों के सेरिफ़ के सूक्ष्म रूप में रह जाय तो वह परिचित आँखों को अच्छा जान पड़ेगा। इसलिए समिति ने निर्णय किया है कि (शिरोरेखा-विहीन) लिपि के भिन्न भिन्न डिज़ाइन (नमूने के चित्र) विशेषज्ञों से मँगवाये जायँ। उनमें से किसी एक रूप को समिति पसन्द करेगी।

(२) बाराखड़ी में स्वरों की सब मात्रायें अक्षरों के आगे रखी जायँ, सिर पर या पाई के नीचे नहीं। ह्रस्व 'ि' के सम्बन्ध में यह निर्णय हुआ कि उच्चारण के क्रम से वह भी आगे ही लिखी जाय, किंतु उसके स्वरूप को निश्चित करने के लिए विशेषज्ञों से सूचनायें मँगवाई जायँ। तब तक वर्तमान पद्धति से—ह्रस्व 'ि' भले ही लिखी जाय।

(३) स्वरों के लिए वर्तमान इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ के रूप को छोड़कर सबके सब स्वर 'अ' की बारा़खड़ी (ककहरा) के रूप में लिखे और छापे जायँ। इस 'अ' की बारा खड़ी में बम्बई-टाइप का 'अ' काम में लाया जाय। इस प्रकार स्वीकृत वर्णमाला का स्वरूप निम्नलिखितानुसार होगा—

अ, आ, अि, अी, अु, अू, अृ, अे, अै, अो, अौ, अं, अः

(४) दक्षिण की लिपियों के स्वरों में ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'ओ' के रूप आते हैं, उनके लिए मात्रा (ॆ) इस प्रकार लगायी जाय।

(५) युक्ताक्षरों में भी सब व्यंजन और स्वर उच्चारण के क्रम से लिखे जायँ, रेफ़ भी उच्चारण के क्रम से ही अक्षरों के बीच में आ जाय। लेकिन ॐ, श्री और ऋ ये अक्षर आज जिस रूप में लिखे जाते हैं, वे ही रूप क़ायम रक्खे जायँ। अर्थात् इनमें कोई परिवर्तन न किया जाय।

(६) पूर्ण अनुस्वार के स्थान पर '॰' लगाया जाय और चन्द्रबिन्दु की जगह केवल 'ं' लगाई जाय। उस अनुस्वार के लिए वैज्ञानिक रूप से स्वर-हीन ङ्, ञ्, ण्, न्, म् भी लिखे जा सकते हैं।

(७) अक्षर के नीचे बाईं ओर यदि अनुकूल स्थान पर बिन्दी लगाई जाय तो उसका अभिप्राय यह होगा कि उस अक्षर की ध्वनि उसकी मूलध्वनि से भिन्न है। उस ध्वनि का निर्णय प्रचलन के अनुसार होगा, जैसे—

क़, ख़, ग़, च़, छ़, ज़, झ़, ड़, ढ़, फ़, ऩ, इत्यादि।

(८) विराम-चिह्न आज तक सब भाषाओं में जैसे प्रचलित हैं, वैसे ही क़ायम रक्खे जायँ। केवल पूर्ण विराम का चिह्न पाई '।' रहे।

(९) अंकों के स्वरूप इस प्रकार होंगे-

१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ०,

(१०) वर्तमान ख अक्षर बिलकुल अनुकूल नहीं है

इसलिए वह छोड़ दिया जाय। उससे तो गुजराती ख अच्छा है, अतएव 'ख' के नये स्वरूप के लिए विशेषज्ञों से सूचनायें मँगवाई जायँ।

(११) अ, झ, ख की जगह बम्बई टाइपवाले अ, झ, ख स्वीकार किये जायँ और ल, श की जगह हिन्दी के ल, श रक्खे जायँ। 'क्ष' का 'क्ष' यह रूप स्वीकार किया जाय, किन्तु बीजगणित आदि वैज्ञानिक कामों के लिए 'क्ष' लिखा जाय 'क्ष' नहीं।

(१२) दीर्घ 'ॠ' और 'ॡ' ये वर्ण प्रांतीय भाषाओं में नहीं आते, अतएव पढ़ाने में ये छोड़ दिये जायँ।

(१३) वर्तमान स्थिति में देवनागरी वर्णमाला का स्वरूप प्रेसवालों के लिए निश्चित कर देने की आवश्यकता जान पड़ती है। अर्थात् घ और ध, भ और म, थ, य तथा र, श, ङ, झ, द, ह, ट, ठ, ड, ढ, क, फ आदि अक्षरों के मान्य स्वरूपों की प्रेसवालों को आवश्यकता है। इसलिए नागरी वर्णमाला के नीचे लिखे स्वरूप की हम सिफ़ारिश करते हैं।

अ, आ, अि, अी, अु, अू, अृ, अे, अै, अो, अौ, अऽ, आऽ, अं, अः, क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, ळ, क्ष, ज्ञ, ॐ, श्री।

(१४) संयुक्ताक्षर बनाने में जिन अक्षरों में पाई है, उनकी पाई हटा दी जाय। और बिना पाईवाले अक्षरों के आगे '‑' ऐसा संयोजक चिह्न लगाने से वे अक्षर हलन्त समझे जायँ। शब्द के अन्त में या स्वतन्त्र रूप से जब किसी व्यञ्जन को हलन्त बनाना हो तब वह पुरानी पद्धति के अनुसार ही हलन्त चिह्न-द्वारा बनाया जाय। जैसे—विराट्, अर्थात् आदि।

(१५) लिपि-समिति में सदस्यों की संख्या बढ़ाने की सत्ता समिति के अध्यक्ष को दी जाती है।

(१६) काका कालेलकर से निवेदन किया जाता है कि महात्मा गाँधी जी की सूचना के अनुसार वे निरक्षर लोगों के लिए नागरी-लिपि को वैज्ञानिक रूप से अत्यन्त सुलभ बनाकर उसका प्रयोग करके देखें और तब उसे समिति के सम्मुख विचारार्थ उपस्थित करें।

विदेशों में भारतीय छात्र

इस समय इँग्लैंड में १३२५ भारतीय विद्यार्थी विभिन्न विषयों की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इनके सम्बन्ध में लन्दन के हाई कमिश्नर ने हाल में एक रिपोर्ट प्रकाशित की है, जिससे इनकी स्थिति का पता चलता है। इसी रिपोर्ट के आधार पर बनारस के 'हिन्दी-केसरी' ने एक अग्रलेख लिखा है, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है—

इस रिपोर्ट से मालूम होता है कि ब्रिटेन के विश्वविद्यालयों और कालेजों में १३२५ छात्र नियमित रूप से नाना प्रकार की विद्या पढ़ रहे हैं। इनमें से प्रायः ४०० छात्र चिकित्सा-विद्या, २६० इंजीनियरिंग और टेकनोलोजी, ३०० आर्ट-विभाग, १२० अर्थशास्त्र और बाक़ी विज्ञान की शिक्षा पा रहे हैं। इस रिपोर्ट से यह भी मालूम हुआ है कि प्रायः ७० भारतीय छात्रायें भी इँग्लैंड के विश्वविद्यालयों में शिक्षा पा चुकी हैं। यह संख्या अधिक नहीं है और छात्रों की तुलना में भी बहुत कम है, तो भी योरप की ऊँची शिक्षाओं में भारतीय महिलाओं का प्रवेश कोई तुच्छ बात नहीं है।

इँग्लैंड की डिगरियों का भारतवर्ष में विशेष आग्रह है, क्योंकि सरकारी या ग़ैर सरकारी संस्थाओं में इँग्लैंड की पढ़ी हुई विद्या का बड़ा आदर होता है। आर्थिक लाभ के साथ ही सम्मान-प्राप्ति के लोभ के कारण योरप में भारतीय विद्यार्थियों की संख्या बढ़ रही है। भारतीय विश्वविद्यालयों की शिक्षा संसार के किसी भी देश के विश्वविद्यालयों की शिक्षा से किसी भी अंश में हीन नहीं है, लेकिन भारत की शिक्षा विशेष रूप से साहित्यिक है। साहित्य को छोड़कर अन्यान्य कई उपयोगी विषयों में ऊँची शिक्षा पाने के लिए अभी विदेशों में जाना ज़रूरी है। यही कारण है जैसा कि डाक्टर टामस कोपली की रिपोर्ट से मालूम हो रहा है कि इँग्लैंड के १३२५ भारतीय छात्रों में से ३०० को छोड़कर बाक़ी सभी मेडिकल, इंजीनियरिंग, कामर्स, सायन्स या उस सम्बन्ध में गवेषणा-वृत्ति की उपयोगी शिक्षा में लगे हुए हैं। केवल भारत नहीं, पूर्वीय भूखण्ड के चीन, जापान, पर्शिया, अफ़ग़ानिस्तान आदि स्वतन्त्र

देशों के बहुसंख्यक छात्र प्रतिवर्ष योरप और अमेरिका के विश्वविद्यालयों में भर्ती होते हैं। विदेशों में शिक्षा पाकर छात्रों की बहुदर्शिता बढ़ जाती है। डाक्टर कोयली ने अपनी रिपोर्ट में भारतीय छात्रों की बड़ी प्रशंसा करते हुए कहा है—"संसार का कोई भी देश उनके लिए गर्वित हो सकता है।" इससे प्रमाणित होता है कि "ज्ञान विज्ञान के सभी विभागों में और सभी अर्थकरी और वृत्तिमूलक विद्याओं की प्रतियोगिता में भारतीय छात्र पश्चिमीय छात्रों से टक्कर ले सकते हैं।" भारतीय छात्रों के सम्बन्ध में ये प्रशंसा के वाक्य अवश्य ही उत्साहवर्द्धक हैं।

कुछ वर्ष पहले धनिकों के लड़के शौक़ से विदेशों की शिक्षा की ओर झुकते थे। लेकिन इस प्रकार की मनोवृत्ति अब हट गई है। अब अधिकांश छात्र किसी ख़ास उद्देश्य के साथ विदेश जाते हैं। परन्तु भारत की आर्थिक दुरवस्था के कारण इन विशेष शिक्षित छात्रों की अवस्था भी स्वदेश में सन्तोषजनक नहीं होती। बेकारी की भीषण चोट उन पर भी पड़ती है। इसके सिवा उनकी शिक्षा की प्रतिष्ठा भी पहले की भाँति नहीं रह गई है। लेकिन इसके लिए योरपीय शिक्षा पर दोषारोपण नहीं किया जा सकता। क्योंकि बेकारी की समस्या के लिए यहाँ की राष्ट्रीय और सामाजिक व्यवस्था ही उत्तरदायी है। भारत में यदि ऊँची शिक्षा का आदर घट गया है तो यह भारतीय राष्ट्रनायकों के लिए लज्जा की बात है। मनुष्य की जीविका के लिए जैसे शिल्प और वाणिज्य का विस्तार ज़रूरी है, उसी प्रकार उस शिल्प-वाणिज्य को भली भाँति चलाने के लिए शिक्षित व्यक्तियों की ज़रूरत है। पर आर्थिक कमज़ोरी के कारण भारतीय युवकों की देशी-विदेशी दोनों डिगरियाँ भारस्वरूप मालूम हो रही हैं। डाक्टर कोयली ने बहुसंख्यक भारतीय छात्रों को विदेशों में देखकर बेकारी की समस्या के नाम पर परोक्ष रूप से कटाक्ष किया है और अभिभावकों के हज़ारों रुपये ख़र्च हो जाने पर कुछ दुख प्रकट किया है। पर डाक्टर कोयली का यह भाव समर्थन करने योग्य नहीं है।

परन्तु इँगलैंड में शिक्षा के लिए जानेवाले भारतीय छात्रों को दो बातों पर ध्यान देकर सावधान रहना चाहिए। पहली यह कि योरप के अन्यान्य स्थानों की तुलना में किसी किसी विषय की इँग्लैंड की शिक्षा अधिक ख़र्चीली है। अतः ख़र्च का भार उठाने में अभिभावकों को कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं। डाक्टर कोयली ने बहुसंख्यक छात्रों की आर्थिक दुरवस्था का उल्लेख किया है और उनके अभिभावकों को सावधान कर दिया है। दूसरी बात यह है कि राजनैतिक कारणों से भारतीय छात्रों के साथ इँग्लैंड में समानता का बर्ताव नहीं होता। अन्य देशों के विश्वविद्यालयों और व्यावसायिक शिक्षा-संस्थाओं में भारतीय छात्र सहज में ही प्रवेश पा जाते हैं। योरप के अन्यान्य देशों में भी भारतीय छात्रों का अधिक संख्या में जाना इन दोनों कारणों से उचित है।

खाद बनाने का एक नया तरीक़ा

हमारे शहरों का बहुत-सा कूड़ा प्रतिवर्ष बेकार जाता है। यदि हमारे देश के म्युनिसिपल बोर्ड इस ओर ध्यान दें तो इस कूड़े का अच्छा उपयोग हो सकता है और उसकी अच्छी खाद बनाई जा सकती है। अन्य देशों में ऐसा होता भी है। 'कलकत्ता इंडस्ट्रियल' गज़ट लिखता है—

अन्य देशों की तुलना में भारतवर्ष की खेती बहुत पिछड़ी हुई है और इसका एक प्रधान कारण है इस देश में अच्छी और उपयोगी खाद का अभाव। वैज्ञानिकों का कहना है कि रासायनिक और खनिज पदार्थों की अपेक्षा कूड़े और मैले से कहीं अच्छी खाद बन सकती है। परन्तु हमारे देश में ये चीज़ें नष्ट कर दी जाती हैं, उनका उचित उपयोग नहीं किया जाता।

अच्छी खेती के लिए खाद की आवश्यकता होती है। आजकल हमारे देश भारत में खेतों में ठीक से खाद नहीं डाली जाती, इसलिए यहाँ की खेती की पैदावार अन्य उन्नत देशों के मुक़ाबिले बहुत कम है। ग्रेटब्रिटेन में प्रति-एकड़ ज़मीन में लगभग २५ मन और भारत में लगभग ७ मन गेहूँ उत्पन्न होता है। मिस्र में एक एकड़ ज़मीन में लगभग १२ मन चावल पैदा होता है, पर भारत में इसका आधा भी नहीं होता।

बँगलोर के डाक्टर फ़ाउलर नामक एक प्रसिद्ध कृषि-विशेषज्ञ ने एक तरीक़ा निकाला है जिसके द्वारा मैले से एक प्रकार की गन्धरहित और बहुत ही उत्तम खाद तैयार होती है। यदि उनके तरीक़े का प्रचार हो गया तो मैले से अच्छी खाद तैयार की जाया करेगी। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से भी लाभ होगा, क्योंकि मैले की गन्दगी से लोग बच जायँगे।

बहुत प्राचीन काल से मैला एक बहुत अच्छी खाद माना जाता रहा है। जापान और चीन में तो इसका खाद के तौर पर बहुत अधिक उपयोग होता है। किसान लोग स्थानों से मैले को इकट्ठा करके खेतों में डालते हैं। पर यह तरीक़ा स्वास्थ्य के लिए हानिकारक और घृणित है। बंबई की म्युनिसिपैलटी से एक ठेकेदार ने खाद के लिए मैला इकट्ठा करने का ठेका लिया है। वह म्युनिसिपैलटी को इसके लिए ६ लाख रुपये साल में देता है। भारत में मैला एक घृणित चीज़ समझा जाता है, और इसलिए खाद के तौर पर इसका प्रयोग नहीं होता। यदि चीन और जापान की स्थिति के अनुसार हिसाब लगाया जाय तो पता चलेगा कि भारतवर्ष में प्रत्येक वर्ष सात अरब रुपये की खाद मैले के रूप में नष्ट हो जाती है।

मैले से खाद बनाने का डाक्टर फ़ाउलर का तरीक़ा इस प्रकार है—मैले और शहर की अन्य गन्दी चीज़ों को एक विशेष अनुपात में मिलाकर सर्द स्थान पर रख देते हैं। कुछ समय के बाद इसको बड़ी तेज़ आग में उबालते हैं। आठ हफ़्ते बाद यह मिश्रण बिलकुल गन्धरहित बन जाता है और इसकी शक्ल फ़ारम की साधारण खाद की भाँति हो जाती है। यह खाद ईख, केला, नारियल और तरकारियों की फ़सल के लिए बहुत ही मुफ़ीद होती है। डाक्टर फ़ाउलर के तरीक़े का प्रयोग ट्रावनकोर-रियासत की कोलन म्युनिसिपैलिटी ने किया है और वह सही पाया गया है।

मैसूर-म्युनिसिपैलिटी शहर के कूड़े-कचरे से प्रतिवर्ष तीन हज़ार टन खाद तैयार करती है। यह खाद इतनी उत्तम होती है कि किसान लोग इसे बड़ी जल्दी ख़रीद लेते हैं। इस खाद की खपत इतनी होने लगी है कि म्युनिसिपैलिटी ख़रीदारों की माँग को ठीक से पूरा नहीं कर पाती। पता चला है कि इस खाद से प्रतिएकड़ ५० टन तक (१ टन लगभग २७॥ मन) ईख होती है; जब कि साधारणतया एक एकड़ में २५ टन से अधिक नहीं पैदा होती। इस खाद से तरकारियाँ भी बहुत अधिक तादाद में उत्पन्न होती हैं। वैज्ञानिक विश्लेषण करके देखा गया है कि डाक्टर फ़ाउलर के तरीक़े से बनाई गई खाद में इतना रासायनिक परिवर्तन हो जाता है कि उसमें मैले का अंश बिलकुल शेष नहीं रहता और मैले में रोगों के जो कीटाणु पाये जाते हैं, वे भी नष्ट हो जाते हैं।

म्युनिसिपैलिटियों को प्रतिवर्ष मैले की सफ़ाई में बहुत बड़ी रक़म ख़र्च करनी पड़ती है। यदि वे इस मैले से खाद बनवायें तो सफ़ाई का ख़र्च भी कम हो जाय और खाद बेंचकर वे काफ़ी धन प्रतिवर्ष प्राप्त कर सकें। इसके अतिरिक्त मैले को बाहर फेंकने से जो बीमारियाँ फैलती हैं वे भी न फैलें। इस तरीक़े को काम में लाने के लिए बड़ी बड़ी मशीनें ख़रीदने अथवा बड़ी पूँजी लगाने की ज़रूरत नहीं है। इसका प्रबन्ध बहुत कम ख़र्च पर और आसानी से हो सकता है। आशा है, म्युनिसिपल बोर्ड इस ओर ध्यान देकर राष्ट्र का उपकार करेंगे।

निराधार विधवा

महात्मा गान्धी 'हरिजन-सेवक' में लिखते हैं—

एक सज्जन ने जिनके कई स्वजन क्वेटा के भूकम्प में मर गये हैं, एक १५ वर्ष की कुमारी की दशा का वर्णन करते हुए एक बड़ा हृदयविदारक पत्र लिखा है। वह युवती अपना पति, दो महीने का एक बच्चा, ससुर और देवर, यानी ससुराल के सभी स्वजनों को क्वेटा के भूकम्प में गँवा बैठी है। पत्र-लेखक सज्जन कहते हैं कि वह लड़की किसी तरह बच गई, और जो कपड़े उस वक़्त उसके तन पर थे वही पहने हुए यहाँ आई है। यह बहन उनके चाचा की लड़की है। उन भाई की समझ में यह नहीं आता कि किस तरह उस लड़की को आश्वासन दिया जाय, और उसका क्या किया जाय। पत्र समाप्त करते हुए वे सज्जन लिखते हैं—

"मैंने उसे उसकी मा के पास लाहौर में रख दिया है। लड़की तथा दूसरे रिश्तेदारों के सामने मैंने धीरे से यह चर्चा छेड़ी कि यह कैसा होगा अगर इसका पुनर्विवाह कर दिया जाय। तब कुछ लोगों ने तो मेरी बात को सहानुभूति के साथ सुना और कुछ ने नाराज़ी प्रकट की। मुझे विश्वास है कि जो दशा मेरी इस भतीजी की हुई है, वैसी ही दशा वहाँ अनेक लड़कियों की हुई होगी। क्या आप इन अभागिनी विधवाओं के लिए प्रोत्साहन के एक-दो शब्द लिखेंगे?"

मैं नहीं जानता कि जिन चीज़ों के अन्दर हमारे वहम सदियों से जड़ जमा चुके हैं उन पर मेरी क़लम या आवाज़ का क्या असर पड़ सकता है। मैंने यह बीसों बार कहा है कि प्रत्येक विधुर को पुनर्विवाह करने का जितना अधिकार है, उतना ही अधिकार प्रत्येक विधवा को भी है। हिन्दू-धर्म में स्वेच्छा से पाला हुआ वैधव्य-व्रत जहाँ अमूल्य आभूषण-रूप है; वहाँ बल-पूर्वक पाला गया वैधव्यव्रत अभिशाप रूप है। और मुझे तो यह महसूस हो रहा है कि अनेक तरुण विधवायें यदि वे शारीरिक अंकुश के भय से नहीं किन्तु हिन्दू-समाज के लोकापवाद के भय से मुक्त हों तो बिना किसी संकोच के वे अपना पुनर्विवाह कर डालें। इसलिए क्वेटा की इस दुखिया बहन की जैसी स्थिति में जो अभागिनी तरुण विधवायें हों उन्हें पुनर्विवाह करने के लिए हर तरह से समझाना चाहिए, और उन्हें ऐसा अभयदान दे देना चाहिए कि अगर वे फिर से विवाह करना चाहती हों तो समाज में उनकी ज़रा भी निन्दा नहीं होगी। इतना ही नहीं, बल्कि उनके लिए योग्य वर खोज देने का भी पूरा प्रयत्न होना चाहिए। यह काम किसी संस्था के किये नहीं हो सकता। यह तो खुद उन सुधारकों को करना चाहिए जिनके कुटुम्ब या सम्बन्धियों में स्त्रियाँ विधवा हो गई हों।

भोवाल-संन्यासी-केस

नवम्बर सन् १९३३ से ढाका के सब-जज के इजलास में एक सनसनी-खेज मुक़द्दमा चल रहा है। एक संन्यासी का दावा है कि भोवाल-राज्य का वह वही द्वितीय राजकुमार है जिसकी मृत्यु १९०७ में हुई बताई जाती है। अभी इस मुक़द्दमे का फ़ैसला नहीं हुआ, पर 'अर्जुन' में एक लेख छपा है जिससे इसका वर्तमान स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। यहाँ हम उसे उद्धृत करते हैं—

कभी-कभी हमें उपन्यासों के 'रोमान्स' के दर्शन वास्तविक जीवन में भी मिल जाया करते हैं। भोवाल-संन्यासी-केस इसी प्रकार की एक घटना है। १९३३ के नवम्बर से ढाका के सब-जज के इजलास में एक बहुत ही सनसनी-खेज मुक़द्दमा चल रहा है, जिसमें वादी (मुद्दई) की ओर से एक हज़ार से अधिक व्यक्ति गवाही दे चुके हैं और प्रतिवादी (मुद्दालेह) के गवाहियों की संख्या भी सम्भवतः कम-से-कम इतनी ही और शायद अधिक पहुँच जायगी। इस सनसनी-पूर्ण मुक़द्दमे का वादी सिख-धर्मान्तर्गत उदासी-मत का माननेवाला एक संन्यासी है, जो अपने को ढाका-ज़िले की एक बड़ी रियासत भोवाल के राजा का द्वितीय राजकुमार बतलाता है। उसका दावा है कि अदालत उसे भोवाल-राज्य का स्वामी घोषित कर दे। प्रतिवादी भोवाल-रियासत का प्रबन्ध करनेवाला कोर्ट आफ़ वार्ड्स और द्वितीय कुमार की रानी विभावती देवी हैं, जिनका कहना है कि भोवाल के द्वितीय कुमार की मृत्यु सन् १९०७ में ही हो चुकी थी और वादी द्वितीय कुमार नहीं, बल्कि पञ्जाब का रहनेवाला एक जाट है, जो षड्यन्त्र करके भोवाल-रियासत पर क़ब्ज़ा करना चाहता है।

संन्यासी का कहना है कि मैं भोवाल-रियासत के राजा राजेन्द्रनारायण राय का दूसरा पुत्र हूँ। हम लोग तीन भाई थे। मेरी पत्नी रानी विभावती ख़राब चरित्र की स्त्री है। वह राजपरिवार के डाक्टर से अनुचित प्रेम करती थी। रानी विभावती, उसके प्रेमी डाक्टर और रानी के भाई ने मेरी हत्या करने के लिए षड्यन्त्र किया। १९०७ में मैं बीमार रहा करता था। स्थान-परिवर्तन के बहाने वे लोग मुझे दार्जिलिंग ले गये। वहाँ डाक्टर ने मुझे संखिया खिला दी, जिसके कारण मैं मृतप्राय हो गया। अन्तिम संस्कार करने के लिए जिस समय मेरा शरीर श्मशान ले जाया गया, उस समय वहाँ भीषण तूफ़ान और मूसलाधार वर्षा होने लगी। इसके कारण जो लोग मेरे शरीर के साथ थे, उन्होंने भागकर एक छायादार स्थान में शरण ली। उस समय श्मशान के निकट उदासी साधुओं का एक दल ठहरा हुआ था। साधुओं ने 'हरिबोल' की आवाज़ केवल एक ही बार सुनी। इस कारण उन्हें सन्देह हुआ और वे उस स्थान पर गये, जहाँ पर मेरा शरीर एक खटिया में बँधा हुआ लाश की भाँति रक्खा हुआ था। वर्षा का पानी शरीर पर लगातार पड़ने के कारण मेरे अन्दर चेतना का संचार हो रहा था। साधुओं को खटिया के ऊपर हल चल नज़र आई। उन्होंने रस्सियों को खोलकर मुझे बाहर निकाला। इसके बाद उन्होंने मेरी चिकित्सा की। मैं साधुओं के इस दल के साथ १६ वर्ष तक बङ्गाल से काश्मीर तक घूमता रहा। संखिया के विष के कारण मेरा मस्तिष्क ख़राब हो गया था और मुझे अपने पूर्व-इतिहास और घर-द्वार का स्मरण न था। सन् १९२३ में साधुओं की चिकित्सा के फलस्वरूप मेरी मानसिक अवस्था ठीक हो गई और मैं याद करके अपने घर भोवाल पहुँचा। पहुँचते ही मुझे मेरी वृद्धा दादी रानी सत्यभामा देवी, बहनों और भानजों ने पहचान लिया। भोवाल-रियासत के ९९ प्रतिशत निवासियों ने भी मुझे पहचान लिया है। रानी विभावती यह स्वीकार नहीं करती कि मैं ही उसका पति और भोवाल का द्वितीय कुमार हूँ, क्योंकि वह व्यभिचारिणी है और उसी ने मेरी हत्या के लिए षड्यन्त्र किया था। कोर्ट आफ़ वार्ड्स के प्रबन्धक भी यह नहीं चाहते कि भोवाल ऐसी बड़ी रियासत उनके क़ब्ज़े से निकल जाय। इसलिए वे भी मेरा विरोध कर रहे हैं और कह रहे हैं कि मैं भोवाल का द्वितीय कुमार नहीं, बल्कि एक जाली व्यक्ति हूँ। अब अदालत मुझे भोवाल का द्वितीय कुमार घोषित कर दे और मुझे मेरी रियासत दिलवाई जाय।

इस सनसनी-खेज़ मुक़द्दमे में विभिन्न प्रकार और श्रेणी के सैकड़ों व्यक्तियों की गवाहियाँ हुई हैं। हस्ताक्षर, फ़ोटो, चिकित्सा, शरीर-विज्ञान आदि विषयों के बड़े बड़े विशेषज्ञों ने इँग्लेंड से ढाका आकर अपने बयान संन्यासी के पक्ष अथवा विपक्ष में दिये हैं। अनेक पेन्शनयाफ़्ता अँगरेज़ सिविलियन विलायत से इस मुक़द्दमे में गवाही देने आये थे।

अदालत को जिन विषयों पर अपना निर्णय देना है उनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं—

(१) संन्यासी का कहना है कि उसका शरीर रात को श्मशान-घाट ले जाया गया और तूफ़ान आ जाने के कारण जलाया नहीं जा सका। रानी विभावती की ओर से कहा गया है कि मेरे पति की लाश सवेरे श्मशान ले जाई गई थी और वहाँ जला डाली गई थी।

(२) वादी की ओर से यह सिद्ध किया जा रहा है कि भोवाल के द्वितीय राजकुमार को संखिया का विष दिया गया था। प्रतिवादी का कहना है कि कुमार संखिया से नहीं, बल्कि हैज़े से मरे थे।

(३) प्रतिवादियों (रानी विभावती और कोर्ट आफ़ वार्ड्स) का कहना है कि वादी (संन्यासी) की आँखें भूरी और छोटी, चेहरा गोल, शरीर का रंग गेहुँआ तथा नाक चपटी और छोटी है, जब कि द्वितीय कुमार की आँखें नीली, चेहरा लम्बा, अँगरेज़ों का-सा रंग तथा नाक लम्बी और पतली थी। संन्यासी अँगरेज़ी नहीं जानता, जब कि द्वितीय कुमार अँगरेज़ी-भाषा में पटु थे। जिस समय संन्यासी ने आकर अपने आपको द्वितीय कुमार घोषित किया था, उस समय वह बँगला में नहीं, बल्कि हिन्दी में बातें करता था। संन्यासी ने कुमार के पूर्व-इतिहास के बारे में यह बतलाया है कि वे भारतीय वेश-भूषा में रहते थे और भारतीय ढङ्ग से भोजन करते थे, जब कि द्वितीय कुमार ज़्यादातर अँगरेज़ी पोशाक पहना करते थे और अँगरेज़ी खाना भी खाते थे।

रानी विभावती ने अपने बयान में कहा है कि वादी (संन्यासी) हर्गिज़ मेरा पति नहीं है। यह कोई जाली व्यक्ति है। मेरे पति की मृत्यु १९०७ में ही दार्जिलिंग में हो चुकी है। मेरी सास तथा ननदों ने दुश्मनी के कारण किसी जाली व्यक्ति को मेरे खिलाफ़ खड़ा कर दिया है।

उपर्युक्त मुक़द्दमे में उदासी साधु की भी गवाही हुई है, जिसने कहा है कि उदासियों के जिस दल ने १९०७ में श्मशान-घाट में ढाका के द्वितीय कुमार का उद्धार

जीवित अवस्था में बँधी हुई चारपाई से किया था, उसमें मैं भी था। एक व्यक्ति ने अपने बयान में कहा है कि मैं द्वितीय कुमार के शरीर के साथ श्मशान तक गया था, वहाँ पर तूफ़ान आ जाने के कारण हम लोग कुछ समय के लिए छाया में चले गये थे। तूफ़ान बन्द हो जाने के बाद जब हम लोग श्मशान में लौट कर गये, वहाँ लाश नहीं मिली। इस पर खाली चारपाई को जलाकर हम लोग वापस लौट आये।

वादी की ओर से सैकड़ों गवाहों ने यह बयान दिया है कि १९०७ में पहले दार्जिलिंग में भोवाल के द्वितीय कुमार के मरने की ख़बर मिली। कुछ दिन बाद यह ख़बर सुनाई पड़ी कि कुमार की लाश तूफ़ान आ जाने के कारण फूँकी नहीं जा सकी। इसके बाद यह अफ़वाह रही कि कुमार जीवित हैं और उदासी संन्यासियों के साथ इधर-उधर विचरण कर रहे हैं।

सड़कों की सफ़ाई

ग्वालियर का 'जयाजी प्रताप' अपने एक सम्पादकीय नोट में लिखता है—

हाल में कराची के कारपोरेशन (म्युनिसिपैलिटी) ने कुछ ऐसे क़ानून बनाये हैं, जिनके अमल में आने पर न सिर्फ़ वहाँ के बाज़ारों और सड़कों का शोरगुल ही बन्द हो जायगा, बल्कि सफ़ाई की हालत भी बहुत कुछ सुधर जायगी। हिन्दुस्तान के शहरों में इतना शोरगुल तो नहीं होता जितना किसी ज़माने में लन्दन के बाज़ारों में हुआ करता था, फिर भी लोगों को आराम पहुँचाने के लिए यहाँ जो शोर होता है उसे कम करने और सफ़ाई की हालत ठीक करने की बहुत ज़रूरत है। म्युनिसिपैलिटियों को अक्सर यह शिकायत रहती है कि लोग सफ़ाई के महत्त्व को नहीं समझते और आम सड़कों पर भी हर तरह की गन्दगी फैलाते हुए पाये जाते हैं। ऐसा प्रायः सभी शहरों में पाया जाता है। इसके अलावा भिखमँगों की वजह से भी अक्सर सड़क पर चलनेवालों को परेशानी रहती है। कोई उनके पीछे पीछे मीलों तक माँगते चलते हैं, कोई सड़क के किनारे बैठकर अपने बदन के घाव या कटे हुए हाथ-पाँव दिखाकर पैसा माँगने के इरादे से उनमें हमदर्दी पैदा करते हैं और कोई पहले से ही आशीर्वाद देकर अपना मतलब बनाना चाहते हैं।

इन्हीं सब आफ़तों से नागरिकों को बचाने के लिए कराची-कारपोरेशन ने क़दम बढ़ाया है। वहाँ एक तरफ़ सड़कों पर सीटी बजाने, ज़ोर ज़ोर से चिल्लाने, गाली बकने, आवाज़ लगाकर चीज़ बेचने वग़ैरह की तो मनाई की ही गई है, दूसरी तरफ़ सड़क पर गन्दगी फैलाने की भी रोक की गई है। इसके अलावा यह भी क़ानून बना है कि कोई आदमी सड़क के किनारे बैठ कर अपने ज़ख़्म या कटे हुए हाथ-पैर लोगों को दिखाकर भीख न माँगेगा। कोढ़ वग़ैरह छूत के मरीज़ों को शहर से बाहर रख देने का भी निश्चय हुआ है। कहने की ज़रूरत नहीं कि इन बातों के अमल में आने से शहरवालों को बहुत आराम पहुँचेगा।

विविध प्रकार के प्राकृतिक उपद्रव

'आज' अपने सम्पादकीय नोट में लिखता है—

चीन में कोई बात छोटी नहीं होती, सब बड़ी होती है। है भी वह बड़ा। दुनिया में सिर्फ़ चीन ही एक ऐसा देश है जिसके अधिवासियों की संख्या हम भारतवासियों से भी अधिक है, अतः यदि दैवी प्रकोप से चीनी भाई हमसे अधिक संख्या में मरें तो कोई आश्चर्य नहीं। ख़बर है कि पीली नदी की बाढ़ से १ लाख के ऊपर आदमी मरे हैं और दस लाख से ऊपर विपद्ग्रस्त हुए हैं। हम चीन के साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं। अधिक संख्या में मरने और विपद्ग्रस्त होने का दुःख हम जानते हैं, अतएव चीन के दुःख से विशेषतया दुःखित हैं। विपदाओं की तालिका हमारे घर में भी बढ़ती ही जाती है। क्वेटा का भूकम्प और उसके बाद की व्यवस्था के सम्बन्ध में कुछ न कहना ही अच्छा है। सीमाप्रांत के ज़िले जलमय हो गये हैं। आग भी लगी है। उनके सम्बन्ध में कुछ कहना और करना 'जायज़' है या नहीं, इसका ठीक पता हमें नहीं है। भूकम्प उधर अब भी आ रहे हैं। इधर हमारी ओर पानी का अकाल-सा हो रहा है। बीमारियाँ तो तरह तरह की यहाँ रहने को ही आई हैं।



इटली की महत्त्वाकांक्षा

योरप की समस्या एक बार फिर टेढ़ी हो गई है। इटली के गवर्नर मुसोलिनी को ग्रेट-ब्रिटेन का प्रस्ताव स्वीकार नहीं है और वे अबीसीनिया पर चढ़ दौड़ना चाहते हैं। ग्रेटब्रिटेन के राष्ट्र-संघ-मंत्री मिस्टर इडेन ने मुसोलिनी से भेंट की थी और उनसे प्रस्ताव किया था कि वे अबीसीनिया से इटली को उक्त विवाद-ग्रस्त भूभाग दिला देंगे और उसे अपने अधिकृत भूभाग का एक अंश देकर संतुष्ट कर लेंगे। अबीसीनिया को एक बन्दरगाह की ज़रूरत है ही, अतएव इस प्रलोभन से वह उक्त भूभाग इटली को ख़ुशी ख़ुशी दे देगा। परन्तु मुसोलिनी को ब्रिटेन के वैदेशिक विभाग के महत्त्वपूर्ण अधिकारी का यह प्रस्ताव नहीं पसन्द हुआ। वे तो अबीसीनिया को अपने अधीन करने का निश्चय-सा किये हुए बैठे हैं। इसी से उनके प्रतिनिधियों ने पिछले कमीशन का भी कार्य नहीं होने दिया। ऐसी दशा में यह स्पष्ट ही है कि ऊँट किस करवट बैठेगा। क्योंकि इस मसले में जो ग्रेट-ब्रिटेन अभी तक विशेष दिलचस्पी ले रहा था उसने भी कह दिया है कि वह इटली के मार्ग में किसी तरह की बाधा नहीं डालेगा। अतएव इटली के अबीसीनिया पर आक्रमण करने के मार्ग से सारी बाधायें दूर हो गई हैं और वह स्वेच्छानुसार कार्य करने को स्वतन्त्र है। मुसोलिनी के भाषणों से प्रतीत होता है कि वह अबीसीनिया को उसी प्रकार अपने अधिकार में कर लेना चाहता है, जैसे जापान ने मंचूरिया को कर लिया है। और इसमें सन्देह नहीं है कि ऐसा होने में ब्रिटेन की विशेष रूप से हित-हानि होगी। और यही समझ कर लोग यह अन्दाज़ करते हैं कि इस मामले में ब्रिटेन का हस्तक्षेप करना असम्भव न होगा। परन्तु ब्रिटेन के नये वैदेशिक मंत्री सर सैमुअल होर ने इधर यह कहा है कि ब्रिटेन इस मामले में अपनी ओर से कोई कार्रवाई नहीं करेगा। इसमें सन्देह नहीं कि अबीसीनिया इस झगड़े को [illegible] से तय करने को तैयार है। परन्तु इटली अकड़ता ही जाता है। उसके पास प्रबल सेना है और वह आधुनिक शस्त्रास्त्रों से भी भले प्रकार सज्जित है। इसके सिवा वह अपना साम्राज्य बढ़ाना चाहता है, और उसके लिए अबीसीनिया का राज्य सबसे अधिक सुभीते का है। फिर उसके साथ का झगड़ा भी काफ़ी तूल पकड़ गया है। तब इटली उसे सस्ता कैसे छोड़ सकता है? राष्ट्र-संघ की अगली बैठक के बाद इन दोनों राज्यों के बीच युद्ध छिड़ जाने की पूरी सम्भावना है। यह स्पष्ट है कि अबीसीनिया इटली का सामना नहीं कर सकेगा, परन्तु वहाँवाले बिना युद्ध किये हार मान लेने को तैयार नहीं हैं। चाहे जो हो, इस समस्या ने यह बात एक बार फिर प्रकट कर दी है कि राष्ट्र-संघ एक दिखाऊ चीज़ भर है, जिस मतलब के लिए उसकी स्थापना हुई थी उसे उसने एक बार भी पूरा नहीं किया है।

पराजित राष्ट्रों का अभ्युदय

वर्सेलीज़ के सन्धि-पत्र को जर्मनों ने फाड़ कर फेंक दिया है और एक स्वाधीन राष्ट्र की भाँति वह अपने राष्ट्र की रक्षा और उसके अभ्युदय की स्वेच्छानुसार व्यवस्था भी कर रहा है। उसकी इस कार्रवाई का प्रभाव दूसरे पराजित राष्ट्रों पर भी पड़ा है और वे भी अब अपनी गर्दन सीधी करते हुए दिखाई देते हैं। आस्ट्रिया और हंगरी

ने भी अपनी अपनी सेनाओं के बढ़ाने की माँग की है। यही नहीं, हाल में तो आस्ट्रिया ने यह व्यवस्था भी कर दी है कि उसके राजघराने के लोग जो अभी तक देश-निकाले का दण्ड भोग रहे हैं, आस्ट्रिया में लौट आवें और अपनी खानगी सम्पत्ति का उपभोग करें। ताज्जुब नहीं कि कुछ दिनों के बाद हैप्सबर्ग-घराने के वर्तमान उत्तराधिकारी राजकुमार ओटो आस्ट्रिया के सिंहासन पर भी बिठा दिये जायँ। जर्मनी ने भी क़ैसर के जर्मनी वापस आ जाने की सारी बाधायें हटा दी हैं और आश्चर्य नहीं, भूतपूर्व सम्राट् विलियम अपनी सुविधा के अनुसार फिर जर्मनी में आ जायँ। इन परिवर्तनों से लाभ उठाने में तुर्की के कमालपाशा कैसे उदासीन रह सकते हैं? उन्होंने भी दरे दानियाल के आस-पास के अञ्चलों में पहले की ही भाँति फिर क़िलेबन्दी करने की माँग पेश की है। इस तरह महायुद्ध के ये पराजित राष्ट्र अपनी स्वतन्त्रता पूर्ण रूप से व्यक्त कर रहे हैं और वे सन्धि-पत्रों की खुल्लम-खुल्ला उपेक्षा करते जा रहे हैं। सारांश यह कि अब योरप के बड़े बड़े राष्ट्रों में एकमत नहीं रहा और जो सन्धि-पत्र उन्हें एक सूत्र में बाँधे हुए था उसे जर्मनी ने नष्ट कर डाला है और वे अब भविष्य की चिन्ता से अपने अलग अलग दल संगठित करने में लगे हुए हैं। योरप की यह अवस्था त्रासजनक है और इससे यह भी प्रकट होता है कि उसका भविष्य जोखिम से शून्य नहीं है।

जापान का प्राबल्य

इधर एशिया में जापान की प्रभुता बढ़ती जा रही है। स्याम, अफ़ग़ानिस्तान और ईरान आदि देशों की सरकारें अब जापानी विशेषज्ञों को अपने अपने यहाँ बुलाकर उनका उपयोग करने लगी हैं। अब तक यह गौरव केवल योरपीयों को ही प्राप्त होता था। यही नहीं, जापान का व्यापार भी प्रायः सभी एशियाई तथा योरपीय देशों में जमता जा रहा है। इसके साथ ही वह बड़ी सावधानी के साथ अपने साम्राज्य का विस्तार भी करता जा रहा है। सन् १८६५ में उसके पास केवल उसके द्वीप भर थे। परन्तु अब इस समय उसके कब्ज़े में कोरिया और मंचूरिया जैसे बड़े बड़े देश हो गये हैं। जापान की आबादी में अत्यधिक वृद्धि होने से उसको भारत जैसे बड़े देश की ज़रूरत है। उसके सौभाग्य से उसके पड़ोस में चीन का बड़ा देश मौजूद ही है, जो गत २० वर्षों से वहाँ के स्वार्थी रईसों तथा शक्तिशाली व्यक्तियों के परस्पर के युद्धों का अखाड़ा बना हुआ है। चीन को अपने संरक्षण में ले आने के लिए इससे अधिक उपयुक्त समय उसे कदाचित् ही कभी प्राप्त हो सके। यह बात जापान से छिपी नहीं है और वह अपने उद्देश की सिद्धि में लगा हुआ है। अभी हाल में उसने मंचूरिया के दक्षिण के उत्तरी चीन के विशाल प्रदेश को चीनी-सेनाओं से खाली कराया है और वह वहाँ के शासन-प्रबन्ध पर कड़ी नज़र रखता है। ऐसा जान पड़ता है, चीन के उत्तरी प्रान्तों में जापान ने अपना पूरा प्रभाव स्थापित कर लिया है। रूस, ब्रिटेन तथा अमरीका के संयुक्त-राज्य को जापान की इस प्रभुतावृद्धि से हानि होने की संभावना है। परन्तु इनमें से रूस अधिक चिन्तित है। उसे डर है कि कहीं जापान बढ़कर सैबेरिया के पूर्व की ओर खाली पड़े हुए बहुत बड़े विशाल भूखण्ड पर अधिकार न कर ले। निस्सन्देह अपने राज्य की रक्षा के लिए उसने अपनी शक्ति भर पूरी व्यवस्था कर ली है, तो भी वह शंकित रहता है। ब्रिटेन और संयुक्त-राज्य अपने अधिक निकट के झमेलों में फँसे हुए हैं। उन्हें चीन की ओर ध्यान देने की फ़ुर्सत ही नहीं है। चीन के मसले को लेकर इन दो महाशक्तियों में से कोई एक या दोनों मिलकर कम-से-कम अभी कुछ समय तक जापान से युद्ध करने को नहीं तैयार हैं। रहा रूस सो उसने अपनी मंचूरियावाली रेलवे जापान के हाथ बेचकर अपने इसी मनोभाव को व्यक्त किया है कि वह भी जापान से भिड़ना नहीं चाहता। ऐसी दशा में जापान चीन में स्वेच्छानुसार अपनी सत्ता क़ायम कर सकता है और वह तदनुसार कर भी रहा है और यदि दैवदुर्विपाक से वैसी कोई विघ्न-बाधा न उपस्थित हुई तो कुछ ही वर्षों में जापान एशिया के उस भाग का शासक नहीं, तो कम से कम नियन्ता तो ज़रूर ही हो जायगा।

मुसलमानी राज्यों की प्रबलता

मुसलमानी राज्यों में तुर्की की तरह ईरान, अफ़ग़ानिस्तान और इब्न साऊद का अरब भी उन्नति के मार्ग पर अग्रसर है। इन सभी देशों को एक बड़े ज़माने के बाद शान्ति और व्यवस्था नसीब हुई है। फलतः ये दिन-प्रतिदिन उन्नति करते जा रहे हैं। पाश्चात्य देशों के अनुकरण पर इन सभी देशों में शासन-प्रणाली व्यवस्थित की गई है और देश को धनधान्य से पूर्ण करने के लिए खेती-बारी और उद्योग-धन्धों को ही प्रोत्साहन नहीं दिया जा रहा है, किन्तु जनता के सामाजिक जीवन में स्वयं सरकार की ओर से ही परिवर्तन पर परिवर्तन किये जा रहे हैं। जो पुरानी बातें राष्ट्र की उन्नति के मार्ग में बाधक प्रमाणित होती हैं उनका स्वयं वहाँ की सरकारें ही निषेध कर रही हैं। इस सम्बन्ध में तुर्की का आदर्श ईरान ने भी ग्रहण किया है। कहने का मतलब यह कि एशिया का यह भाग पहले की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील हो गया है।

परन्तु इन मुसलमानी प्रगतिशील राज्यों में भी अधिक महत्त्व पकड़ गया है अरबों का राष्ट्रीयतावाद। किसी समय अरबों का साम्राज्य बहुत विस्तृत था और प्रारम्भ के ख़लीफ़ाओं के ज़माने में संसार में अरबों का प्रभाव सबसे अधिक बढ़ गया था। मुख्य अरब की भौगोलिक-सीमाओं के बाहर पेलेस्टाइन, ईराक, सीरिया, मिस्र, ट्यूनिस, अल्जीरिया और मरक्को में आज भी अरबी सभ्यता का व्यापक रूप से अस्तित्व बना हुआ है। और वर्तमान राष्ट्रीयतावादी अरब राजनीतिज्ञों ने यह अपना ध्येय बना लिया है कि अरबों के ये देश और मुख्य अरब एक बार फिर एकता के सूत्र में बँधकर अपने ऐतिहासिक गौरव को प्राप्त करें। निस्सन्देह यह वर्तमान राजनीति का एक विकट प्रश्न है और धीरे धीरे यह भयावह रूप धारण करता जाता है। क्योंकि अरब लोग अपने उद्देश की सिद्धि के लिए व्यवस्थापूर्वक अपना संगठन कर रहे हैं। समाचारपत्रों एवं आधुनिक योरपीय साहित्य को उन्होंने अपनाकर अपने अरबी-साहित्य को पीछे नहीं रह जाने दिया है। यही कारण है कि उनके दिसम्बर १९३१ के पैक्ट तथा जेरूसलेम की उनकी महासभा का सारे अरबी-भाषी देशों में स्वागत ही नहीं हुआ है, किन्तु इस सभा की शाखा-सभायें भी संसार के सभी मुसलमानी देशों में क़ायम हो गई हैं। अरबी-भाषी देशों में तो वर्षों से व्यवस्थापूर्वक ये सभायें अपना कार्य कर रही हैं। मिस्र, सीरिया, पेलेस्टाइन और अल्जीरिया में जो राष्ट्रीयता का उग्र प्रदर्शन होता रहता है वह सब अपना कुछ विशेष अर्थ रखता है। और जिन ग्रेटब्रिटेन, फ्रांस और इटली के अधिकार में ये अरबी-देश हैं वे इसी कारण अरबों के राष्ट्रीयतावाद को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं।

बात यह है कि ये अरब लोग पहले की तरह अपने क़बीलों के युद्धों में अब नहीं लिप्त हैं। उसके स्थान में वे संसार के वर्तमान स्वाधीनता के विचारों से प्रभावित होकर उन्हें आत्मसात करते जा रहे हैं। जिन तुर्कों ने आकर उन्हें उनके ऐतिहासिक गौरव से वञ्चित किया था उनको स्थानच्युत करने में अरबों ने कुछ सोच-समझकर के ही योगदान दिया था। यह उसी प्रयत्न का परिणाम है कि आज नेज्द के सुल्तान मुख्य अरब के अधिकांश के स्वाधीन शासक हो गये हैं एवं ईराक और यमन तथा ट्रांस जारडोनिया भी एक प्रकार से स्वाधीन राज्यों के रूप में परिणत हो गये हैं। और यदि राष्ट्रसंघ की मैंडेटरी-पद्धति के क़ानून का पालन किया गया तो एक दिन पेलेस्टाइन और सीरिया भी स्वाधीन राज्य हो जायँगे। रहे उत्तरी अफ़्रीका के मुसलमानी देश सो इनमें तो मुसलमान नेता अपने कार्य में बराबर लगे ही हुए हैं। मिस्र को उन्होंने एक प्रकार से स्वाधीन बना ही लिया है। ट्रिपोली, ट्यूनिस और अल्जीरिया तथा मरक्को भी असावधान नहीं हैं और यद्यपि इन देशों के स्वामी फ्रांस, स्पेन, इटली आदि अपना कब्ज़ा उन पर से राज़ी राज़ी नहीं उठावेंगे, तो भी यह स्पष्ट है कि वे अरबी-संस्कृति को किसी तरह दबा नहीं पावेंगे। इससे यह भले प्रकार प्रकट हो जाता है कि अरब आज शब्द के सच्चे अर्थ में सचमुच अरब बन रहे हैं और यह जहाँ उनके लिए प्रोत्साहन-जनक है, वहाँ योरप की महाशक्तियों के लिए विशेष चिन्ता का कारण भी है।

सम्पादकीय नोट

भारत की राजनीति

नये शासन-विधान के क़ानून को पार्लियामेंट की दोनों सभाओं ने पास कर दिया है। अब उस पर सम्राट् के हस्ताक्षर होना भर बाक़ी है। कहने का मतलब यह है कि अगले वर्ष से भारत का शासन-प्रबन्ध नये शासन-विधान के अनुसार होने लगेगा। ऐसी दशा में राष्ट्रीय महासभा का क्या कर्तव्य होगा, इस पर देश के सजग नेता अभी से विचार करने लगे हैं। राष्ट्रीय महासभा की कार्य-समिति की जो बैठक वर्धा में होने जा रही है उसमें इस विषय पर भी विचार होगा।

इतना तो स्पष्ट ही है कि नये शासन-विधान में पहले की अपेक्षा कहीं अधिक लोगों को वोट देने का अधिकार होगा। इसके सिवा प्रान्तीय शासन पूर्ण रूप से भारतीय मंत्रियों के हाथ में आ जायगा। इस प्रकार शासन-प्रणाली में महत्त्व का परिवर्तन होगा, जिसका उपयोग यदि पिछली बार की भाँति राष्ट्रीय महासभा के नेता इस बार भी नहीं करेंगे तो इस बार भी देश का शासन-प्रबन्ध उन्हीं के जैसे लोगों के हाथ में चला जायगा जिनकी नीति का कटु अनुभव उन्हें पिछले आन्दोलन में भले प्रकार हो चुका है।

राष्ट्रीय विचार के लोगों की अनुपस्थिति में सन् १९१८ के शासन-सुधारों से जिन व्यक्तियों ने सहयोग किया था उनमें से कई-एक व्यक्तियों ने काफ़ी प्रतिपत्ति अपने अपने क्षेत्रों में क़ायम कर ली है और वे अगला चुनाव लड़ने के लिए अभी से तैयार होने लगे हैं। इस सिलसिले में मुसलमान सरकार की दी हुई सुविधाओं से पूर्ण लाभ उठाने की तैयारी कर रहे हैं। उनके सिवा बड़े बड़े रईस तथा महाजन भी अपने अपने दल का संगठन कर रहे हैं। ऐसी दशा में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि आख़िर राष्ट्रीय महासभा का आगे क्या प्रोग्राम होगा।

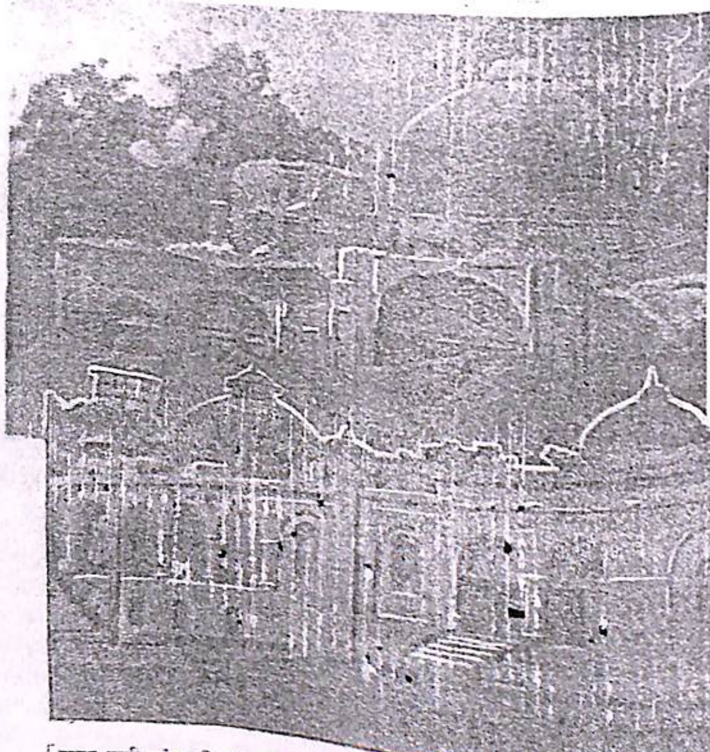
यह तो प्रत्यक्ष ही है कि राष्ट्रीय महासभा नये शासन-विधान के अगले चुनाव में अपनी पूरी शक्ति के साथ लड़ेगी और यह भी जानी हुई बात है कि उसकी कदाचित् एक-दो प्रान्तों को छोड़कर सभी जगह जीत भी होगी। परन्तु इस जीत से यदि देश का लाभ न हुआ, अर्थात् अपनी अड़ंगे की नीति के कारण राष्ट्रीय महासभावालों ने सरकारी पदों को नहीं ग्रहण किया तो अवस्था विषम हो जायगी। इसी से कुछ लोग कह रहे हैं कि राष्ट्रीय महासभा अन्य प्रगतिशील दलों को भी अपने साथ लेकर चुनाव में लड़े और तब देखे कि वह अपने बहुमत से देश के शासन-प्रबन्ध में कोई महत्त्व का परिवर्तन करा सकती है या नहीं। केवल अपने बल के भरोसे दूसरे राष्ट्रीय विचार-वाले दलों की उपेक्षा करने की उसकी नीति कारगर नहीं साबित हुई है। अतएव यह आवश्यक हो गया है कि वह अन्य प्रगतिशील दलों का सहयोग प्राप्त करने का अवश्य प्रयत्न करे। ऐसा करके वह अपने बल की ही वृद्धि करेगी। आख़िर नया शासन विधान देश में जारी ही होगा और मुसलमान एवं रईस तथा महाजन उससे सहयोग करेंगे ही, और राष्ट्रीय महासभावाले भी चुनाव लड़ेंगे ही। तब यदि वह यह कार्य अन्य राजनैतिक दलों से सहयोग करके करें तो इससे उनकी प्रतिपत्ति और अधिक बढ़ जायगी और तब सम्प्रदायवादी एवं सत्ताधारी लोग भी अपनी अल्प संख्या के कारण राष्ट्र का किसी तरह का अहित न कर सकेंगे। परन्तु यह सब तभी सम्भव हो सकेगा जब राष्ट्रीय महासभा के कार्यकर्ता अधिक विस्तृत दृष्टिकोण से इस विकट प्रश्न पर धीरता के साथ विचार करेंगे, साथ ही भले प्रकार निश्चय कर चुनाव में भी पूर्ण सहयोग के साथ भाग लेंगे।

प्रसन्नता की बात है कि राष्ट्रीय महासभा का ध्यान इस ओर है। यही नहीं, वह इस प्रश्न को भी हल कर लेना चाहती है कि कौंसिलों में जाकर उसके दल के नेता मंत्रियों के पद ग्रहण करें या न करें। आशा है कि राष्ट्रीय महासभा के कार्यकर्ता इन सभी विषयों के सम्बन्ध में महासभा की स्थिति को स्पष्ट करने की ओर ध्यान देंगे। तभी कार्य के मार्ग का निर्देश हो सकेगा और लोग पहले की भाँति देश-सेवा के कार्य में लग सकेंगे।

शहीदगंज की मस्जिद का मामला

लाहौर के शहीदगंज नाम के मुहल्ले में सिक्खों के गुरुद्वारे के भीतर एक पुरानी मस्जिद है। यह मस्जिद एक ज़माने से सिक्खों के अधिकार में है। इसके लिए मुसलमानों से उनका मुक़दमा भी हो चुका है, जिसमें सिक्खों की जीत हुई है। इसी जुलाई के आरम्भ में सिक्खों ने इस पुरानी मस्जिद को गिरा देना चाहा। इसकी ख़बर पाकर लाहौर के मुसलमान उत्तेजित हो उठे और उन्होंने उस मस्जिद के गिराने के कार्य में बाधा डालने के लिए भयकारक प्रदर्शन करना शुरू कर दिया। फलतः सरकारी अधिकारियों को क़ानून और व्यवस्था की रक्षा के लिए हस्तक्षेप करना पड़ा। इस सम्बन्ध में वहाँ के अधिकारियों ने दृढ़ता से स्थिति को क़ाबू में रक्खा, अपनी न्यायनिष्ठा का परिचय दिया, अपनी सजगता से कहीं कोई वैसी दुर्घटना घटित न होने दी जिसकी आशंका थी। इस सब के लिए वे लोग निस्सन्देह प्रशंसा के पात्र हैं।

इसमें सन्देह नहीं है कि यदि इस मसले को मुसलमान नेता धैर्य और संयम के साथ सुलझाने का प्रयत्न करते तो सिक्ख-नेता इतने नासमझ नहीं थे कि वे मुसलमान-नेताओं के मस्जिद न गिराने के आग्रह की उपेक्षा



[ऊपर शहीदगंज की मस्जिद थी जिसे सिक्खों ने ढहा दिया है। नीचे चिराग़ शाह की मस्जिद है जिसे पंजाब सरकार ने मुसलमानों को उसके एवज़ में देने का निश्चय किया है।]

ही करते। परन्तु जब मुसलमानों की भीड़ों ने बलपूर्वक सिक्खों को उस अप्रिय कार्य से विरत करना चाहा तब सिक्ख भी उत्तेजित हो उठे और उन्होंने अपने नेताओं की अवज्ञा करके मस्जिद को गिरा दिया। यह मस्जिद गत १७० वर्षों से सिक्खों के अधिकार में है और उपासनागृह के रूप में उसका कभी उपयोग नहीं हुआ। मुसलमानी समय में उसमें अदालत होती थी और कतिपय सिक्खों को वहाँ से कठोर से कठोर दण्ड दिये गये हैं। अतएव वह सिक्खों की दृष्टि में भी और न सही तो एक ऐतिहासिक मस्जिद तो अवश्य ही थी। दुःख की बात है कि मुसलमानों की उग्रता के कारण सिक्खों ने उसे अन्त में गिरा देना उचित समझा।

मस्जिद के गिराये जाने पर मुसलमानों ने और भी उग्ररूप धारण किया और कई दिनों तक लाहौर उनके कारण भयावह स्थिति को प्राप्त रहा। अन्त में जब कतिपय नेताओं ने उनके आन्दोलन की निन्दा की तब वे शान्त हुए और अब वहाँ पूर्ण शान्ति विराजमान है।

लाहौर की इस घटना ने वहाँ के मुसलमानों और सिक्खों को एक दूसरे को एक-दूसरे से जुदा कर दिया है और उनमें पहले जैसा सम्बन्ध फिर स्थापित होने में अब कुछ समय लगेगा। क्या ही अच्छा होता कि इन दोनों जातियों के नेता अब भी चेत जायँ और जो हो गया सो हो गया, ऐसा समझकर आपसी मेल-जोल बढ़ाने के लिए यत्नवान हों। इस अवसर पर सिक्खों ने शान्ति के साथ इस भयंकर परिस्थिति का सामना किया है, इसके लिए वे कम प्रशंसा के पात्र नहीं हैं। आशा है, ज्यों ज्यों समय बीतता जायगा, इन दोनों जातियों के बीच की कटुता अपने आप शान्त हो जायगी। वास्तव में यही आवश्यक भी है।

हिन्दी में इतिहास-ज्ञान की उपेक्षा

हिन्दी के एक विद्वान् लेखक ने अभी हाल में हिन्दीवालों का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट किया है कि कम-से कम स्कूली किताबों में ऐसी बातें न लिखी जाया करें जो इतिहास की दृष्टि से अशुद्ध हों। बात बहुत समुचित है। परन्तु यदि यही बात वे किसी पुस्तक का या किसी लेखक का नाम लेकर कहते तो उन्हें लेने के देने पड़ जाते। बच्चों की किताबों में क्या, यहाँ तो प्रौढ़ों तक की किताबों में इतिहास-सम्बन्धी भूलें थोड़ी नहीं, अधिक से अधिक संख्या में पाई जाती हैं।

उदाहरण के लिए ऐसी प्रसिद्ध पुस्तकों तक का नामोल्लेख किया जा सकता है जो वर्षों से स्कूलों में ही नहीं, कालेजों और यूनिवर्सिटियों तक में पाठ्य-पुस्तकों के रूप में पढ़ाई जाती हैं और उनकी इतिहास-सम्बन्धी एक-दो नहीं, अनेकों भूलों की ओर कोई ध्यान तक नहीं देता। जिन लोगों ने साहस करके उनकी भूलों का निर्देश किया है उनके सत्परामर्श की ओर आज तक किसी ने ध्यान नहीं दिया और उनके संस्करण के संस्करण निकलते जा रहे हैं। कदाचित् उनके विद्वान् रचयिता भूल-स्वीकार कर लेने में अपनी हेठी समझते हों। इससे इतना तो साफ़ ही है कि हिन्दीवाले या तो इतिहास जानते ही नहीं और यदि जानते हैं तो वे उसके विचार-क्रम को हृदयङ्गम करने से चूक जाते हैं। चाहे जो हो, यह सचमुच आवश्यक है कि ऐसी एक भी पुस्तक पाठ्य पुस्तकों में नहीं ली जानी चाहिए जिसमें इतिहास-विरुद्ध बातें लिखी हों।

ग्रामसुधार का आयोजन

भारत ग्रामीणों का देश है। यहाँ की ⅘ जन-संख्या ग्रामों में ही निवास करती है और यहाँ का प्रधान पेशा खेती है। केवल १० फ़ी सदी लोग उद्योग-धन्धों या नौकरी-चाकरी के द्वारा अपना निर्वाह करते हैं। परन्तु ८० फ़ी सदी जनता को खेती-बारी पर ही गुज़र करनी पड़ती है।

नई सभ्यता के प्रचार के पहले भारतीय ग्रामीणों की दशा बहुत कुछ सन्तोषजनक थी। उनके समाज का संगठन ही ऐसा था कि साधारण समय में उन्हें किसी भी तरह की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता था। उनकी सारी आवश्यकतायें उनके गाँवों में ही पूरी हो जाती थीं।

परन्तु महायुद्ध ने घोर संकट उपस्थित कर दिया। उसके फल-स्वरूप संसार के बड़े बड़े सम्पन्न देशों की आर्थिक दशा डाँवाडोल हो गई। तब बेचारा भारत

उसकी चपेट में आने से कैसे बच सकता था? भारत की आय का मुख्य द्वार आज भी खेती-बारी है, और अन्न आदि के बाज़ार की मंदी ने भारतीय किसानों को कहीं का न रक्खा। वे अपनी खेती की उपज को बेच कर आज न भूमि-कर दे पाते हैं, न वह उनके निर्वाह के लिए ही पर्याप्त होता है।

ऐसे ही दयनीय दशा को प्राप्त भारतीय किसानों की ओर लोक-नेताओं का तथा भारत सरकार का भी ध्यान गया है। इसी से पिछले दिनों ग्राम-सुधार की काफ़ी चर्चा रही है। परन्तु अभी तक किसी तरह की कोई योजना जनता के सामने नहीं आई है। हाँ, मदरास तथा संयुक्त-प्रान्त की सरकारों ने अपनी अपनी स्कीमें कुछ कुछ प्रकट की हैं।

मदरास की प्रान्तीय सरकार को भारत-सरकार से ग्राम-सुधार के लिए जो धन दिया गया है उसका १४·३७ लाख रुपया उसने सिंचाई की व्यापक व्यवस्था करने के काम में खर्च करने का निश्चय किया है। उसका अनुमान है कि सिंचाई की व्यवस्था कर देने से उपज बढ़ेगी और बेकारी भी घटेगी। कदाचित् इस व्यवस्था में लाभ देखकर उसने अगले वर्ष १४·८८ लाख रुपया और उसके बाद १६·७५ लाख रुपया लगाने का विचार किया है। इस प्रकार तीन वर्षों के भीतर ५० लाख रुपया सिंचाई की प्रान्तव्यापी व्यवस्था करने में लगाने का विचार किया गया है। इस रक़म में ६ लाख रुपये की जो कमी आती है उसकी पूर्ति के लिए प्रतिवर्ष २ लाख रुपये की प्रान्तीय आय से अलग व्यवस्था की गई है। इस प्रबन्ध से मदरास की सरकार अपने प्रान्त के कृषकों को सिंचाई के उपयुक्त साधन प्रस्तुत कर देना चाहती है, जिससे कृषि की एक भारी असुविधा दूर हो जाय।

इसके सिवा मदरास-सरकार ने कपड़े की बुनाई का काम भी सर्वसाधारण के लिए खोलने का प्रबन्ध किया है। इस वर्ष वह इस काम में ५६,५०० रुपया व्यय करने का निश्चय कर चुकी है। इसके लिए उसने 'प्रान्तीय बुनकर-सहयोग-समिति' की स्थापना मदरास शहर में की है। इसका प्रबन्ध ग़ैर सरकारी आदमियों के द्वारा होगा। केवल सरकारी उद्योग तथा सहयोग विभाग के अधिकारी तथा सरकारी टेक्सटाइल इंस्टिट्यूट के प्रिंसपल की आंशिक सत्ता उस समिति पर रहेगी। समिति की पूँजी ५ लाख रक्खी गई है। २५ रुपये फ़ी हिस्से के हिसाब से १० हज़ार हिस्सों-द्वारा यह समिति अपना कार्य चलाने के लिए धन एकत्र करेगी। जो पूँजी सरकार प्रदान करेगी वह बुनाई का धन्धा बढ़ाने के लिए सहायता के रूप में लगाई जायगी। इस समिति की उपसमितियाँ प्रत्येक ज़िले में खोली जायँगी। इस समिति के अधिकारी बुनकरों को कर्घों और रुई की ही व्यवस्था नहीं करेंगे, किन्तु उन्हें बुनने और रँगने की शिक्षा भी देंगे तथा उनके तैयार किये हुए माल की बिक्री का भी प्रबन्ध करेंगे। इस प्रकार अर्थ-संकट से पीड़ित किसानों के लिए बुनाई के धन्धे की जो यह व्यवस्था की गई है उससे वहाँ के किसानों का सचमुच अत्यधिक उपकार होगा।

संयुक्त-प्रान्त की सरकार भी ग्राम-सुधार के लिए एक प्रान्त-व्यापी प्रोग्राम तैयार कर रही है। वह भी सिंचाई की सुविधा कर देने के लिए सारे प्रान्त में 'ट्यूब-वेल' बनवाने का तथा देहातों में बिजली चलाने की व्यवस्था का आयोजन करना चाहती है। इस सिलसिले में ठोस कार्य करने के लिए इन प्रान्तों के शिक्षा-मंत्री ने जो नई स्कीम तैयार की है उस पर अभी विचार हो रहा है। परन्तु उसकी जो रूप-रेखा सामने आई है उससे जान पड़ता है कि मदरास की तरह यहाँ भी ग्राम-सुधार के सम्बन्ध में बहुत कुछ ठोस ही कार्य होगा।

इसमें सन्देह नहीं है कि ग्राम-सुधार के लिए सरकार जो कुछ भी कार्य करेगी उस सबसे ग्रामीणों की बिगड़ी हुई दशा का बहुत कुछ सुधार होगा। परन्तु उनकी वर्तमान अवस्था में तब तक वाञ्छनीय परिवर्तन न हो सकेगा जब तक उन्हें यह विश्वास नहीं हो जाता कि उनकी जोत की भूमि उनकी अपनी है और वह उनकी बपौती है।

एक लेखक का कटु अनुभव

काशी जी से 'सनातनधर्म' नाम का एक साप्ताहिक-पत्र प्रकाशित होता है। यह महामना पंडित मदनमोहन

मालवीय जी के संरक्षण तथा संचालन में निकलता है। यह अखिल भारतीय सनातनधर्मसभा का साप्ताहिक मुख-पत्र भी है। इसमें सनातन-धर्म-सम्बन्धी प्रति सप्ताह धुरन्धर विद्वानों के लिखे हुए गुरु-गम्भीर अच्छे अच्छे लेख छपते हैं। इसके ४ जुलाई के अंक में 'हिन्दी संसार में क्या देखा' शीर्षक एक लेख छपा है। इसे डाक्टर बनारसी-प्रसाद भोजपुरी 'रचनानिधि' ने लिखा है। यह लेख सनातनधर्म के किस सम्प्रदाय के किस सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए लिखा गया है, यह हम नहीं जान सके। यह सब बात जानी भी नहीं जा सकती, क्योंकि सनातन-धर्म के सम्प्रदाय-भेदों की गिनती ही नहीं है। फिर यह सब जानने की ज़रूरत भी नहीं है। और जो जानने की ज़रूरत है वह हम यहाँ बताये देते हैं। भोजपुरी जी ने अपने 'देखा' का समाहार लेख के अन्त में इस तरह किया है। आपने लिखा है—"तेरह वर्ष की साहित्य-सेवा के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि हिन्दी-संसार में अधिकांश में अनर्थ, धींगाधींगी और अन्धाधुन्ध ही भरा पड़ा है।" रचनानिधि जी ने यह कितना भयानक आरोप किया है! यही नहीं, उन्होंने यह भी लिखा है—"जितने हिन्दी पत्रों में लेखकों के नाम छपते हैं उनके ज़्यादातर 'हाथी के दाँत' ही रहते हैं। हिन्दी की एक लाइन लिखने नहीं आती, पर सम्पादक बन बैठते हैं। मुझे (?) ऐसे कितने सम्पादकों तथा लेखकों से भेंट हुई जो अपना नाम भी शुद्ध नहीं लिख सकते।" और भी "मुझे ऐसे ऐसे सम्पादक मिले जो केवल अपने ही जान पहचानी (?) के लेख छापने में समर्थ हो सके और उन्हें ही पुरस्कार भी दिलाया। और यह सब अपने गत १३ वर्ष के अनुभव के आधार पर लिखा है।"

और आपका यह अनुभव कितना गहरा है, सो भी सुन लीजिए—

शुरू शुरू में आप ने दैनिक 'विश्वमित्र' में लेख लिखे, उस समय आपको मालूम हुआ कि कितने ही लेखक 'रुपये की घुड़दौड़' करके लेखक और ग्रन्थकर्ता बन गये हैं हालां कि उन्हें कर्ता का चिह्न तक नहीं मालूम है। इसके बाद 'पटना' के किसी पत्र में आप प्रूफ़ रीडर हुए। बाद को उसके सहकारी सम्पादक हो गये। दो वर्ष तक वहाँ रह कर आपने यह 'देखा' कि हिन्दी-पत्रों के सम्पादक 'सम्पादकीय' नहीं लिखते हैं, साथ ही पुस्तक-प्रकाशकों का भी इसी समय कटु अनुभव हुआ। अब आपको साहित्य-सेवा से घृणा हो गई और आप राजनैतिक क्षेत्र में काम करने लगे।

तदनन्तर आप तीन पत्रिकाओं के सम्पादकीय विभागों में काम करने के लिए बुलाये गये। एक में इसलिए नहीं बैठे कि वहाँ ठीक समय पर वेतन नहीं मिलता था, दूसरी में इसलिए नहीं गये कि जिनके भरोसे पर जाते थे वे स्वयं अलग खड़े हुए; तीसरे में जाकर लौट आये, क्योंकि आप बलि का बकरा नहीं बनना चाहते थे। उसी काल में आपने एक साप्ताहिक को दो लेख भेजे थे जिनका उन्हें पुरस्कार नहीं दिया गया।

बस इतने अनुभव के बल पर होमियोपैथी के ये डाक्टर साहब यहाँ तक लिखना उचित समझते हैं कि "ज़िम्मेदार सम्पादक तथा लेखक पक्षपात के दलदल में बेतरह फँसे रहते हैं। उनकी आँखों से न्याय दूर चला गया है।" और यह सब हिन्दी के सम्पादकों एवं प्रकाशकों की भर्त्सना स्वयं मालवीय जी महाराज के 'धर्मपत्र' में छपी है, अतएव हिन्दी के सम्पादकों, लेखकों और प्रकाशकों का यह कर्तव्य है कि वे भोजपुरी जी के इस लेख को ध्यानपूर्वक पढ़ें और यदि उनके आरोप उन्हें स्वीकार हों तो उनसे तोबा करें और अगर स्वीकार न हों तो उनका विरोध करें। हम अपनी तरफ़ से केवल यही कहेंगे कि उक्त लेख के लेखक डाक्टर साहब तथा सनातनधर्म के सम्पादक महोदय दोनों ही व्यक्ति हिन्दी और उसके लेखकों तथा सम्पादकों का बहुत अल्प ज्ञान रखते हैं और यह बात उनके नामों तथा उक्त लेख से ही स्पष्ट हो जाती है, अतएव यह निन्दात्मक लेख उपेक्षा के ही योग्य है।

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.



सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

सितम्बर १९३५ } भाग ३६, खंड २ संख्या ३, पूर्ण संख्या ४२९ { भाद्रपद १९९२

श्रद्धा-गीत

लेखक, श्रीयुत जयशंकर 'प्रसाद'

तुमुल कोलाहल कलह में
मैं हृदय की वात रे मन!

× × × ×

विकल होकर नित्य चंचल
खोजती जब नींद के पल
चेतना थक-सी रही, तब
मैं मलय की वात रे मन!

चिर विषाद विलीन मन की
इस व्यथा के तिमिर वन की
मैं उषा-सी ज्योति-रेखा
कुसुम विकसित प्रात रे मन!

जहां मरु-ज्वाला धधकती
चातकी कन को तरसती
उन्हीं जीवन-घाटियों की
मैं सरस वरसात रे मन!

पवन की प्राचीर में रुक
जला जीवन जी रहा झुक
इस झुलसते विश्व दिन की
मैं कुसुम ऋतु रात रे मन!

चिर निराशा नीरधर से
प्रतिच्छायित अश्रुसर से
मधुप मुखर मरन्द मुकुलित
मैं सजल जलजात रे मन!

विजय के पथ पर



लेखक, श्रीयुत ऋद्धिकरण लखोटिया

अब भारतीय खिलाड़ी भी संसार के विभिन्न भागों में विविध खेलों में विजय प्राप्त करके भारत का मस्तक ऊँचा कर रहे हैं। भारत की हाकी टीम दो बार विश्वविजयी हो चुकी है। क्रिकेट, फुटवाल, टेनिस, पोलो आदि खेलों में भी भारत आश्चर्य्य-जनक उन्नति कर रहा है। लेखक महोदय ने इस लेख में भारतीय युवकों की इस प्रवृत्ति का बड़े सुन्दर ढङ्ग से परिचय दिया है।

"...री भारतीय टीम की शानदार विजय की खबरों से बहुत दिलचस्पी रही है। वास्तव में यह विलक्षण सफलता है कि पाँच महीने के प्रवास में भारतीय टीम ने संसार की सर्वोत्तम टीमों का मुकाबिला किया और एक बार भी पराजित नहीं हुई।"

—बम्बई के गवर्नर

विश्वविजयी भारतीय हाकी-टीम लास एंजिल्स के ओलिम्पिक गेम्स में दूसरी बार संसार-विजयी होने की पदवी प्राप्त कर बंबई आ रही है। बंबई इन विजयी वीरों के स्वागत में मस्त है। १९२८ में जब भारत की हाकी-टीम ने सुदूर अम्सटर्डम में हालैंड को फ़ाइनल में ३ गोल से हरा कर संसार-विजयी का पद प्राप्त किया था उस समय तक ओलिम्पिक गेम्स में सम्मिलित होनेवाले पाश्चात्य राष्ट्रों को यह पता न था कि सभ्यता की दौड़ में पिछड़ा हुआ भारत अपने प्रथम प्रयास में ही ऐसा अद्भुत कौशल दिखाने की क्षमता रखता होगा। ओलिम्पिक गेम्स का इतिहास बहुत प्राचीन है। ढाई हज़ार वर्ष पूर्व ग्रीक लोगों ने अपने देश के शक्तिशाली युवकों की शक्ति-परीक्षा के निमित्त इनका प्रारम्भ किया था। ईसा के ७६६ वर्ष पहले प्रथम वार ओलिम्पिक गेम्स शुरू हुए थे और तब से हर एक चौथे वर्ष ये गेम्स वहाँ होते रहे हैं।

इस भारतीय टीम ने लास एंजिल्स के उक्त खेलों में जापान को ११ गोल से हरा कर फ़ाइनल में अमेरिका को २४ गोल से हराया। इसके बाद भारतीय टीम ने योरप के प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थानों का भ्रमण किया और वहाँ कितने ही मैच खेले। प्रथम श्रेणी की ३६ टीमों से उसके मैच हुए और इनमें भारतीय टीम ने कुल ३३४ गोल किये



आल इंडिया क्रिकेट-टीम १९३२—(१) लेफ्टिनेंट के० नवले (ग्वालियर), (२) जे० ... (बम्बई)। (४) एम० डी० वार्यल (बम्बई)। (५) कैप्टन सी० के० नायडू (इन्दौर)। (६) पी० ई० पेलिया ... (८) लालसिंह (लाहौर)। (९) महम्मद निसार (लाहौर)। (१०) के० एस० घनश्यामसिंह (राजपूताना)। ... (१२) अमरसिंह (काठियावाड़)। (१३) एस० एच० एम० कोलह (बम्बई)। (१४) गुलाम महम्मद (कराची ...

विजय के पथ पर

लेखक, श्रीयुत ऋद्धिकरण लखोटिया



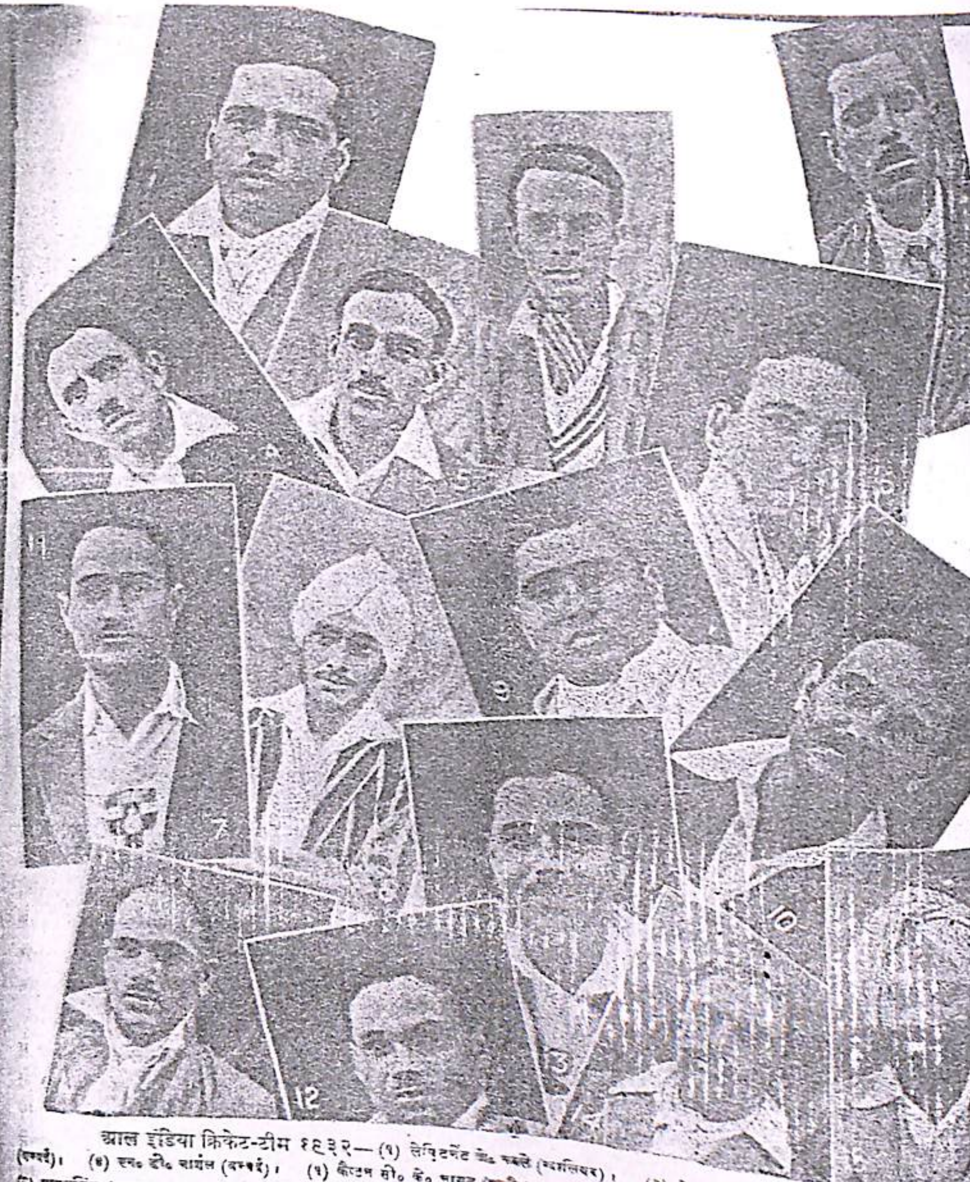
अब भारतीय खिलाड़ी भी संसार के विभिन्न भागों में विविध खेलों में विजय प्राप्त करके भारत का मस्तक ऊँचा कर रहे हैं। भारत की हाकी टीम दो बार विश्वविजयी हो चुकी है। क्रिकेट, फुटबाल, टेनिस, पोलो आदि खेलों में भी भारत आश्चर्य्य-जनक उन्नति कर रहा है। लेखक महोदय ने इस लेख में भारतीय युवकों की इस प्रवृत्ति का बड़े सुन्दर ढङ्ग से परिचय दिया है।

“...री भारतीय टीम की शानदार विजय की खबरों से बहुत दिलचस्पी रही है। वास्तव में यह विलक्षण सफलता है कि पाँच महीने के प्रवास में भारतीय टीम ने संसार की सर्वोत्तम टीमों का मुक़ाबिला किया और एक बार भी पराजित नहीं हुई।”

—बम्बई के गवर्नर

विश्वविजयी भारतीय हाकी-टीम लास एंजिल्स के ओलिम्पिक गेम्स में दूसरी बार संसार-विजयी होने की पदवी प्राप्त कर बंबई आ रही है। बंबई इन विजयी वीरों के स्वागत में मस्त है। १९२८ में जब भारत की हाकी-टीम ने सुदूर अम्स्टर्डम में हालैंड को फ़ाइनल में ३ गोल से हरा कर संसार-विजयी का पद प्राप्त किया था उस समय तक ओलिम्पिक गेम्स में सम्मिलित होनेवाले पाश्चात्य राष्ट्रों को यह पता न था कि सभ्यता की दौड़ में पिछड़ा हुआ भारत अपने प्रथम प्रयास में ही ऐसा अद्भुत कौशल दिखाने की क्षमता रखता होगा। ओलिम्पिक गेम्स का इतिहास बहुत प्राचीन है। ढाई हज़ार वर्ष पूर्व ग्रीक लोगों ने अपने देश के शक्तिशाली युवकों की शक्ति-परीक्षा के निमित्त इनका प्रारम्भ किया था। ईसा के ७६६ वर्ष पहले प्रथम बार ओलिम्पिक गेम्स शुरू हुए थे और तब से हर एक चौथे वर्ष ये गेम्स वहाँ होते रहे हैं।

इस भारतीय टीम ने लास एंजिल्स के उक्त खेलों में जापान को ११ गोल से हरा कर फ़ाइनल में अमेरिका को २४ गोल से हराया। इसके बाद भारतीय टीम ने योरप के प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थानों का भ्रमण किया और वहाँ कितने ही मैच खेले। प्रथम श्रेणी की ३६ टीमों से उसके मैच हुए और इनमें भारतीय टीम ने कुल ३३४ गोल किये



आल इंडिया क्रिकेट-टीम १९३२—(१) लेफ्टिनेंट के० नवले (ग्वालियर)। (२) जे० मीमल (करांची)। (३) एल० आर० गोदम्बे (बम्बई)। (४) एन० डी० मार्शल (बम्बई)। (५) कैप्टन सी० के० नायडू (इन्दौर)। (६) पी० ई० पेलिया (मैसूर)। (७) सैयद नज़ीर अली (पटियाला)। (८) लालसिंह (कलकत्ता)। (९) महम्मद निसार (लाहौर)। (१०) के० एस० घनश्यामसिंह (राजपूताना)। (११) लेफ्टिनेंट सैयद वज़ीरअली (भूपाल)। (१२) अमरसिंह (काठियावाड़)। (१३) एस० एच० एम० कोलह (बम्बई)। (१४) गुलाम महम्मद (करांची)। (१५) कैप्टन जोगेन्द्रसिंह (पटियाला)।



[श्री सी० एल० मेहता]

और ३३ गोल खाये। वह कहीं नहीं हारी और न कोई मैच ही अधूरा जाने दिया। कैसा गज़ब का रेकार्ड रहा! संसार के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी ध्यानचन्द ने इस दौरे में अकेले ही ११२ गोल किये और उसके भाई रूपसिंह ने ७९ गोल किये। ध्यानचन्द और रूपसिंह की जोड़ी इस खेल में अद्वितीय है। अपने इस चमत्कारपूर्ण खेल के कारण ही आज विदेश में वे शाहज़ादों का-सा सम्मान पा रहे हैं। अभी हाल में भारत से एक टीम न्यूज़ीलैंड और आस्ट्रेलिया में खेलने गई है और वह वहाँ कैसा अद्भुत कौशल दिखा रही है, यह बात खेलों से दिलचस्पी रखनेवाले समाचार-पत्र के पाठकों से छिपी नहीं है। अभी तक तीन टेस्ट मैच खेले गये हैं, और इन तीनों में भारतीय टीम की जीत हुई है। अब तक भारतीय टीम ने ३३५ गोल किये हैं, जिनमें ध्यानचन्द ने ११९ और रूपसिंह ने १०९ किये हैं।

हाकी में भारत की टीम अपना सानी नहीं रखती। क्रिकेट में संसार में जो स्थान आस्ट्रेलिया और इँग्लैंड



[श्री ध्यानचन्द]

का है वही स्थान हाकी में भारत का है। दो बार भारतीय टीम ने अपना जौहर दिखाकर संसार के खिलाड़ियों पर अपने कौशल की छाप लगा दी है। अगले साल १९३६ में बर्लिन में होनेवाले उक्त खेलों में उसे अपनी शान रखनी है। भारत के खिलाड़ी युवक हैं। उनमें विजय का उत्साह और अपने कौशल में विश्वास है। आशा है, भारतीय टीम तीसरी बार भी संसार-विजयी होने का गौरव प्राप्त करेगी।

ओलिम्पिक गेम्स में होनेवाले और और खेलों में भारत की प्रतिभा अभी उतनी नहीं चमकी है। सर्वप्रथम १९२४ में पेरिस के ओलिम्पिक खेलों में यहाँ से कुछ भारतीय खिलाड़ी भेजे गये थे, पर वहाँ के खेलों के स्टैन्डर्ड से भारतीय खिलाड़ियों का स्टैन्डर्ड बहुत नीचा रहा। इस कारण असफलता ही रही। फिर १९३२ में लास एंजिल्स



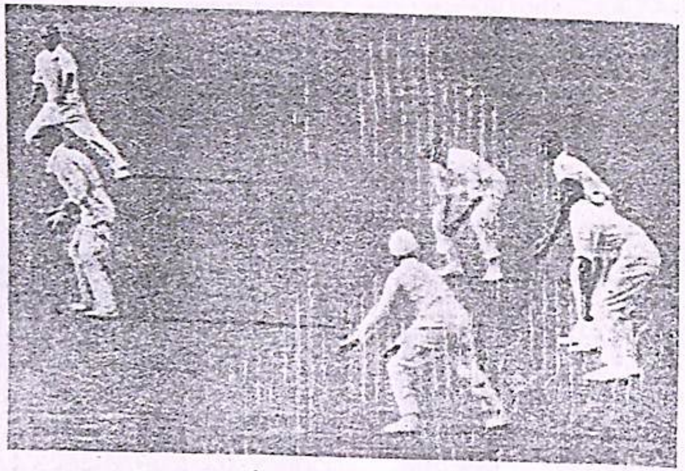
[श्री नायडू]

में भारत के चार युवक श्री नेहरचन्द (पंजाब), एम० सट्टन (बंगाल), आर० वरनीयक्स (बंगाल) तथा एन० सी० मल्लिक (बंगाल) गये थे। भारतीय ओलिम्पिक कमेटी ने यहाँ की कसौटी में इन्हीं चार को चुना। फिर भी ये वहाँ कुछ न कर सके। एम० सट्टन तो एक बार १०० गज़ की दौड़ की, दूसरी हीट (heat) में चतुर्थ हुए। मल्लिक भी ४०० गज़ तैरने की दौड़ में चतुर्थ हुए। जो कुछ भी सफलता या असफलता मिली, वही थी। बार बार की इस असफलता का कारण भी है। वह यह है कि यहाँ के युवकों में खेलों के प्रति रुचि ही कम है। वे अपनी किताबी दुनिया में ही रहना अधिक पसन्द करते हैं। और जिनके रुचि होती है उन्हें उत्साह और उचित शिक्षण नहीं मिलता। १९३० में यहाँ से कुछ युवक जापान की राजधानी टोकियो के सुदूर प्राच्य के खेलों

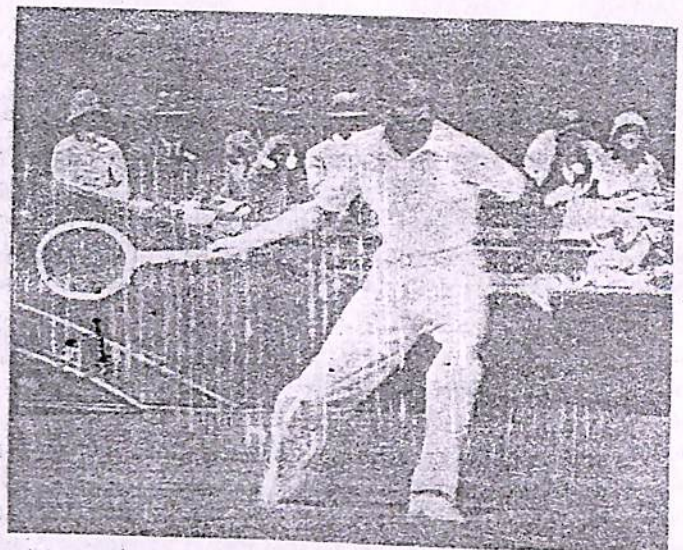


[टोकियो के ९ वें सुदूर प्राच्य के ओलिम्पिक के उद्घाटनोत्सव में भारतीय खिलाड़ी]

में भाग लेने को भेजे गये थे। पर वहाँ भी स्थिति निराशापूर्ण ही रही। जापान ने, जो कुछ वर्षों पहले खेलों में भारत जैसा ही पिछड़ा हुआ था, सिर्फ़ चार वर्षों के परिश्रम में आशातीत उन्नति कर ली है। पिछले ओलिम्पियड में तैरने में तो उसका स्थान प्रथम रहा! यह है अध्यवसाय और खेलों के प्रति प्रेम का परिणाम! हमारे यहाँ के कालेजों में पढ़नेवाले अधिकांश युवक ताज़ा से ताज़ा फ़ैशन के लिए घंटों पेरिस के फ़ैशन-सम्बन्धी पत्रों के लिए हैरान रहेंगे, पर खेलों में कुछ भी समय बिताना समय की बरबादी समझेंगे। ऐसी स्थिति में और क्या हो सकता है? अवश्य कुछ समय से खेलों के प्रति जनता की रुचि गई है। स्कूलों एवं कालेजों में भी व्यायाम-शिक्षा का प्रचार किया गया है। स्थान स्थान पर व्यायामशालायें भी खुल रही हैं। मदरास का फ़िज़िकल ट्रेनिङ्ग कालेज और अमरावती की 'हनुमान-व्यायामशाला' प्रख्यात ही हैं। मदरास के प्रोफ़े-



[१९३२ के लार्ड्स के टेस्ट मैच में भारतीय खिलाड़ी]



[विम्बलेडन के मैच में श्री मदनमोहन खेल रहे हैं]

सर के० वी० अय्यर प्रसिद्ध व्यायाम-शिक्षक हैं। आशा है, इस प्रचार का अच्छा ही फल होगा। अगले साल बर्लिन के ओलिम्पियड में भारतीय युवक अपने कौशल का विशेषता के साथ परिचय दे सकेंगे।

अधिक देर तक तैरते रहने की कला में भारत को अभिमान है कि श्री प्रफुल्ल-कुमार घोष संसार में सबसे बाज़ी मार ले गये हैं। वे ७९ घंटे तक लगातार पानी में तैरते हुए रह सके हैं। उनकी तैरने की क्षमता असाधारण है। थोड़े ही दिनों में वे इँगलिश चैनल को पार करने के विचार से इँग्लैंड जायँगे। वे अपने इस प्रयत्न में भी सफल हों, यही हमारी कामना है।

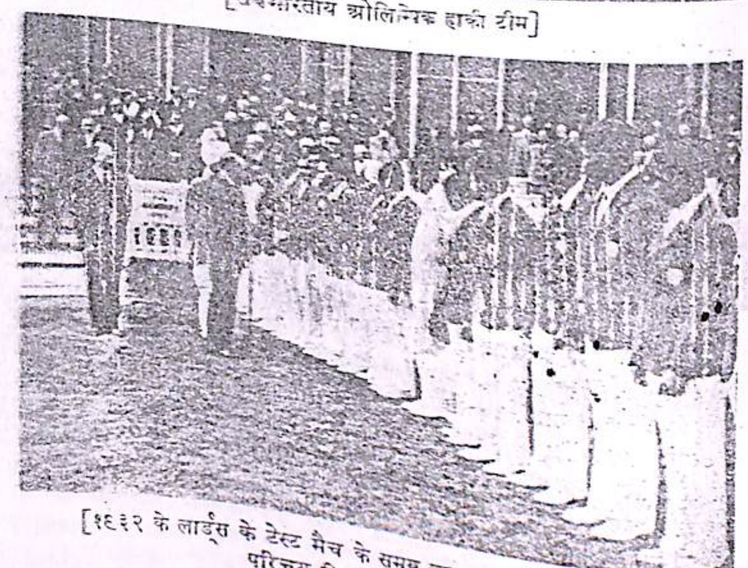
कुश्ती में तो भारत सबमें अग्रणी है ही। विश्वविजयी पहलवान गामा ने कुछ वर्षों पहले पटियाला में संसार-प्रसिद्ध पोलैण्ड के पहलवान ज़िबिस्को को केवल ३० सेकेंड में ही पछाड़ दिया था। ज़िबिस्को सात हज़ार मील चलकर कुश्ती के लिए भारत आया था। गामा की शक्ति दुर्दमनीय है। आज भी वही संसार-विजयी है। उनके भाई इमामबख़्श भी विख्यात मल्ल

हैं। दोनों पटियाला-नरेश के यहाँ रहते हैं। पटियाला के महाराज को खेलों से शौक़ है। भारत के अन्य नरेश यदि उनका अनुकरण करें तो उनकी सहायता से बहुत-कुछ हो सकता है। हिन्दुस्तान में प्रतिभा भी है, क्षमता भी है, पर उत्साह और संगठन की कमी है। जापान जैसा एक छोटा-सा राष्ट्र उत्साह और संगठन के बल पर आशातीत उन्नति कर सकता है तब भारतीय युवक क्यों नहीं कर सकते? उपयुक्त संगठन का सबसे ताज़ा उदाहरण हमारी भारतीय हाकी-टीम है। आल इंडिया हाकी फ़ेडरेशन की देख-रेख में हाकी का अच्छा संगठन हो गया है। संगठन और उत्साह का ही यह परिणाम हुआ है कि आज भारतीय हाकी-टीम संसार में सर्वश्रेष्ठ हो गई है।

क्रिकेट—१९३२ में इँग्लैंड की विख्यात 'क्रिकेट ग्राउंड लार्ड्स' की रंगभूमि में भारतीय क्रिकेट-टीम का प्रथम टेस्ट मैच इँग्लैंड के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ियों के साथ हुआ था। इस प्रकार का यह टेस्ट मैच इँग्लैंड के उस विख्यात 'ग्राउंड' में प्रथम बार ही हुआ था। इस कारण



[सर्वभारतीय ओलिम्पिक हाकी टीम]



[१९३२ के लार्ड्स के टेस्ट मैच के समय सम्राट् को भारतीय टीम का परिचय दिया जा रहा है।]



[कुमार दिलीपसिंह]



[पटौदी के नवाब इफ़्तिख़ार अली]

उस मैच की वहाँ काफ़ी धूमधाम हुई थी। खेलों के शौक़ीन ब्रिटन लाखों की संख्या में उमड़ आये थे। पाश्चात्य देश खेलों को अपने राष्ट्रीय जीवन में कितना महत्त्व देते हैं, यह बात हम भारतीयों को शायद कम मालूम है। इँग्लैंड और आस्ट्रेलिया की क्रिकेट-टीमें संसार में अपना सानी नहीं रखती हैं। क्रिकेट तो इँग्लैंड का राष्ट्रीय खेल है। इसकी विजय वहाँ किसी संग्राम की विजय से कम महत्त्व नहीं रखती है।

भारत के युवक खिलाड़ियों का कौशल देखने के लिए लाखों आँखें व्यग्र थीं। उनकी आँखों में व्यग्रता की खुमारी तो थी ही, साथ ही इँग्लैंड की निश्चित विजय की विश्वास-ज्योति भी झलक पड़ती थी। इँग्लैंड की टीम क्रिकेट में अनेक बार दूसरे राष्ट्रों से लोहा ले चुकी थी, पर भारतीय खिलाड़ियों का यह पहला ही मौक़ा था। मैच आरम्भ हुआ। भारतीय खिलाड़ियों ने खेल के मैदान में उतरते ही इँग्लैंड के तीन अन्यतम खिलाड़ियों को जिन पर इँग्लैंड विजय का गर्व कर सकता था, १९ रन में आउट कर दिया। इस प्रकार के खेल की आशा किसी को नहीं थी। इँग्लैंड का कैप्टेन हैरान था। बड़ी विषम स्थिति आ पड़ी थी। पर भारत के भाग्य में विजय न थी। जारडिन ने इँग्लैंड के उखड़े हुए पाँव फिर से जमा दिये। क्रिकेट के अन्यतम जजों के शब्दों में लार्ड्स के उस विस्तृत ग्राउंड में जारडिन 'जिब्राल्टर की चट्टान' की तरह अचल-अटल खड़ा था। सचमुच जारडिन एक विजयी जनरल की तरह था। भारतीय खिलाड़ियों के कौशल ने इस क्रिकेट के खिलाड़ी के सम्मुख सिर झुका दिया। स्वयं सम्राट् शाही परिवार के साथ इस मैच में उपस्थित थे। उन्होंने भारतीय टीम को बधाई दी, पर विजय की बधाई उनके नसीब में न थी। भारत की यह पराजय तो थी, पर यह पराजय ठीक अठारह महीने बाद जारडिन के नायकत्व में एम० सी० सी० के भारत-भ्रमण में भारतीय टीम की बनारस में होनेवाली प्रथम विजय की सूचना-मात्र थी। एम० सी० सी० ने १९३३ में इँग्लैंड के विख्यात खिलाड़ियों के साथ भारत का दौरा किया था। यहाँ पर भी वे तीन टेस्ट मैच बम्बई, कलकत्ता एवं मदरास में खेले थे। बम्बई की पराजय में अमरनाथ के ११८ रन, कलकत्ते के ड्रान मैच में दिलावर हुसेन की अपूर्व बैटिंग और मदरास की हार में अमरसिंह की बोलिंग भारतीय क्रिकेट के उज्ज्वल भविष्य की आशा-किरणें थीं। भारतीय क्रिकेट-टीम इँग्लैंड की टीम के समान विख्यात नहीं है, पर खेल में बराबरी का दावा करने योग्य अवश्य हो गई है।



[श्री सी० के० घोष]



[पटियाला के महाराज]

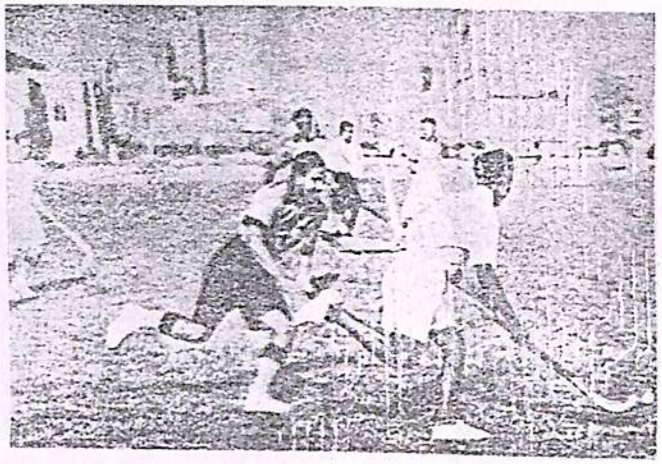
क्रिकेट के श्रेष्ठ खिलाड़ी इँग्लैंड की टीम में हैं। पर भारतवर्ष ने भी क्रिकेट के अपने ५० वर्ष के जीवन में संसार के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ियों में चार खिलाड़ी उत्पन्न किये हैं। जामनगर के स्वर्गीय महाराज रणजीतसिंह को कौन नहीं जानता? आप क्रिकेट में 'रन जी' के नाम से विख्यात थे और अपने समय के 'क्रिकेट-किंग' थे। आप प्रथम भारतीय थे जो इँग्लैंड की तरफ़ से १८९५ में मैनचेस्टर के टेस्ट मैच में खेले थे। उस मैच की पहली इनिंग्स में ६२ रन किये और दूसरी में १५४। उसी साल आपने 'ससेक्स' के लिए २,७८० रन एक सीज़न में किये। इस प्रकार आप डाक्टर डब्लू० जी० ग्रेस के १८७१ के रेकार्ड से भी आगे बढ़ गये। महाराज रणजीतसिंह का खेलने का ढंग निराला था।

दूसरे खिलाड़ी हैं महाराज रणजीतसिंह के भतीजे प्रिंस दिलीपसिंह। ये भी इँग्लैंड की टीम में कई बार खेल चुके हैं। १९३० में आस्ट्रेलिया के साथ टेस्ट मैच में १७३ रन पहली इनिंग्स में किये थे। लार्ड्स के क्रिकेट ग्राउंड में इन टेस्ट मैचों में इँग्लैंड के किसी भी खिलाड़ी ने इतने रन अब तक नहीं किये थे। यह भी एक नया रेकार्ड था।

तीसरे हैं पटौदी के नवाब साहब। आप भी इँग्लैंड की टेस्ट टीम में खेले हैं। १९३२-३३ में आस्ट्रेलिया के साथ टेस्ट मैच में १०२ रन किये थे। १९३१ में आक्सफ़ोर्ड टीम की बैटिंग में आप सर्वप्रथम आये। आपके रनों का औसत ९३ प्रति इनिंग्स से भी अधिक था।

चौथे हैं भारतीय टीम के कैप्टेन मेजर सी० के० नायडू। आप दुनिया के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ियों में गिने जाते हैं। आपने लार्ड्स में अपने पहले खेल में ही एम० सी० सी० के विरुद्ध ११८ रन किये और आउट नहीं हुए। आप एक अच्छे 'बौलर' भी हैं। लीस्टरशायर के मैच में आपने २१ रनों में ही ५ खिलाड़ियों को आउट कर दिया। फ़ील्डिंग में भी आपका स्थान बहुत ऊँचा है। जब एम० सी० सी० भारत में खेलने आई थी तब आपने ही सबसे पहले ११५ रन किये थे!

बौलिंग में मुहम्मद निसार तथा अमरसिंह संसार के सर्वश्रेष्ठ बौलरों में गिने जाते हैं। अमरसिंह को तो इँग्लैंड-वालों ने बौलिंग सिखाने के लिए अपने यहाँ बुलाया भी



[लास एंजिल्स में भारतीय हाकी-टीम के खिलाड़ी]



[श्री मसवीन खन्ना, लास एंजिल्स में]

है। लार्ड्स के टेस्ट मैच की दूसरी इनिंग्स में इनकी बौलिंग देखकर एक विख्यात वृद्ध अँगरेज़ खिलाड़ी ने कहा—"विगत महायुद्ध के बाद इससे अच्छी बौलिंग इँग्लेंड की भूमि में कभी नहीं देखी गई।"

भारतीय क्रिकेट का भविष्य उज्ज्वल है। पटियाला के महाराज की अध्यक्षता में यहाँ भी 'क्रिकेट क्लब आफ़ इंडिया' नाम की एक संस्था की स्थापना हुई है। आशा है, निकट भविष्य में इसकी भारतीय टीम भी वही प्रसिद्धि प्राप्त कर लेगी जो इँग्लेंड और आस्ट्रेलिया की टीमों को प्राप्त है। भारत की क्रिकेट-टीम के विषय में हम अपनी ओर से कुछ न कहकर इँग्लेंड के कैप्टेन डी॰ आर॰ जारडीन का ही कथन यहाँ उद्धृत करते हैं। उन्होंने उसके सम्बन्ध में कहा है—

"मुझे बड़ी ख़ुशी है कि भारतीय टीम का सर्वोत्तम खेल टेस्ट मैच में ही हुआ। यह शुभ भविष्य का एक सुन्दर आभास है। भारतीय खिलाड़ियों ने अपने को क्रिकेट में कीर्ति एवं गौरव से विभूषित करने का यथेष्ट सफल प्रयत्न किया है और ये क्रिकेट के संघर्ष में बड़ी शान के साथ

निकले। वे अपने पीछे आदर्श मित्र एवं वीर प्रतिद्वंद्वियों के सुखी परिवार की मधुर स्मृतियाँ छोड़ गये हैं।"

ये हैं एक विजयी प्रतिद्वंद्वी के उद्गार! वास्तव में प्रतिद्वंद्वी की प्रशंसा ही खिलाड़ियों के लिए सबसे बड़ा सम्मान है।

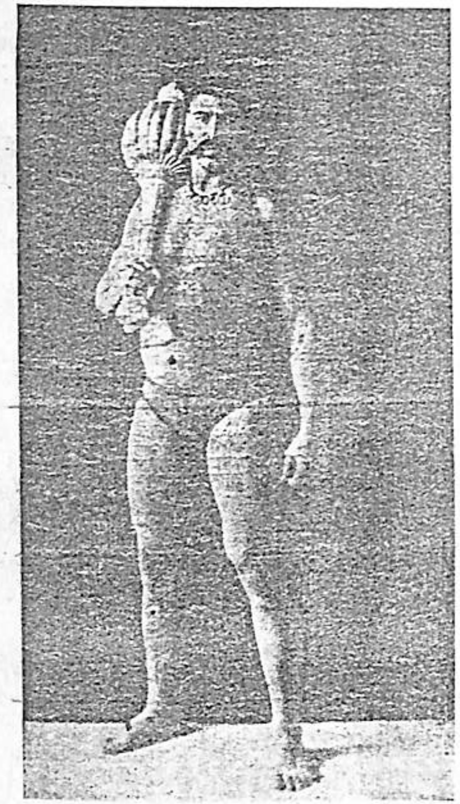


[आल इंडिया हाकी-टीम के विदेश-यात्रा से लौटने पर बम्बई के मेयर-द्वारा स्वागत]

टेनिस—टेनिस में भी भारत को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई है। संसार-प्रसिद्ध टेनिस टूर्नामेंट 'डेविस कप' में भारत के कितने ही युवक खेल चुके हैं। इसमें प्रायः सभी उन्नतिशील पाश्चात्य राष्ट्र भाग लेते हैं। परन्तु दूसरे देशों का टेनिस स्टैन्डर्ड यहाँ से काफ़ी उन्नत रहने के कारण यहाँ के खिलाड़ियों को वहाँ सफलता नहीं मिल रही है। आज से ११ वर्ष पहले हिन्दुस्तान के श्री महम्मद सलीम ने, जो अपने समय के संसार के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी समझे जाते थे, विश्वविख्यात खिलाड़ी लोरेंज़ू को हराया था। 'डेविस कप' में फ़्रांस प्रथम विजयी हुआ था। इसी साल से भारत का नाम हुआ। मुहम्मद सलीम योरप के कितने ही बड़े बड़े टूर्नामेंटों में खेल चुके हैं। उनकी खेलने की शैली बहुत सुन्दर है। वे बड़ी दृढ़ता से खेलते हैं। कितने ही खिलाड़ी जब किसी बड़े टूर्नामेन्ट में खेलते हैं तब बहुत शीघ्र घबरा जाते हैं और इस कारण बहुत बार सुन्दर खेलकर भी हार जाते हैं। पर सलीम की दृढ़ता ऐसे समय अद्भुत है। वे बुरी से बुरी स्थिति में भी उत्साहहीन नहीं होते। भारत के भूतपूर्व चैम्पियन डॉ॰ एन॰ कपूर की भी प्रणाली क़रीब क़रीब ऐसी ही है। आप कई बार सर्वभारतीय चैम्पियन हो चुके हैं। आप इटली के चैम्पियन डॉ॰ डी॰ स्टेफ़ानी के साथ जब खेले थे तब अपने चमत्कार का पूरा परिचय दिया था।



[इंडियन डेविस कप टीम—बाईं ओर से—श्री मदनमोहन, श्री हीरालाल सोनी, कर्नल बी॰ ओ॰ रो॰ (टीम से अलग), श्री चरनजीव]



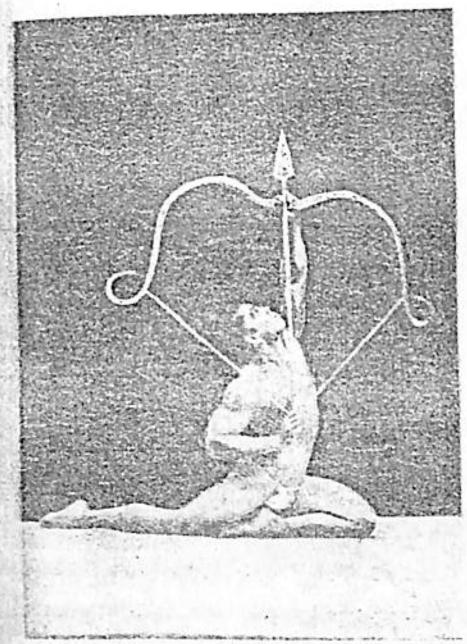
[इमामबख़्श]

सोहनलाल भी ग़ज़ब के खिलाड़ी हैं। गत वर्ष फ़्रांस के विश्वविख्यात प्रोफ़ेशनल खिलाड़ी रैमीलियन के साथ इनका मैच हुआ था। यह मैच भी दर्शकों को बहुत दिनों तक याद रहेगा। सोहनलाल सर्वभारतीय चैम्पियन भी हो चुके हैं। भारत की तरफ़ से 'डेविस-कप' में खेलनेवालों में मुहम्मद सलीम, मदनमोहन, डाक्टर फ़ीजी, कृष्णप्रसाद, जगमोहन, सोनी, चरनजीव अधिक विख्यात हैं। डाक्टर फ़ीजी तो लगातार २५ वर्ष तक विम्बलेडन के विख्यात टूर्नामेंट में खेल चुके हैं और अच्छे अच्छे खिलाड़ियों से बाज़ी मारी है। मदनमोहन भी कई बार खेले हैं। १९३० में आप किसी समय के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी जे० क्राफ़ोर्ड के साथ खेले थे। आप हारे तो सही, पर एक बार क्राफ़ोर्ड को भी हराया। जापान के श्रेष्ठ खिलाड़ी आर० मीकी भी ईस्टबोर्न चैम्पियनशिप में आप से फ़ाइनल में हार चुके हैं। १९२९ में फ़्रांस की टीम भारत में खेलने आई थी। उसमें संसार के प्रसिद्ध खिलाड़ी हेनरी कोचेट भी थे। तब आप उससे खेले थे और आपकी तभी से ख्याति हुई। उसी टीम के



[विश्वविजयी गामा]

एक खिलाड़ी लैंड्री को आपने लाहौर में हराया था। इस खेल की चर्चा बहुत दिनों तक समाचार-पत्रों में रही थी, क्योंकि लैंड्री ने पराजय के रोष में बहुत-सी अनर्गल बातें कह डाली थीं। मदनमोहन योरप के कितने ही बड़े बड़े टूर्नामेंट जीत चुके हैं। यहाँ भारत के उदीयमान खिलाड़ियों में सोहनलाल, कृष्णस्वामी, मेहताचन्द्र, सोनी, भंडारी, रणबीरसिंह, कच्छ के महाराजकुमार, बाबू रघुबरदयाल, रमण्या, बालगोपाल इत्यादि अधिक प्रसिद्ध हैं। समुचित शिक्षा मिलने से ये सभी बहुत अच्छे खिलाड़ी हो सकते हैं और यहाँ के टेनिस स्टैंडर्ड को उन्नत कर सकते हैं। प्रसन्नता की बात है कि यहाँ की लान टेनिस असोसियेशन योरप से किसी विख्यात खिलाड़ी को बुला कर शिक्षा का प्रबन्ध कर रही है। इस ओर कलकत्ते के 'साउथ क्लब' ने बहुत काम किया है। इसी क्लब के प्रबन्ध



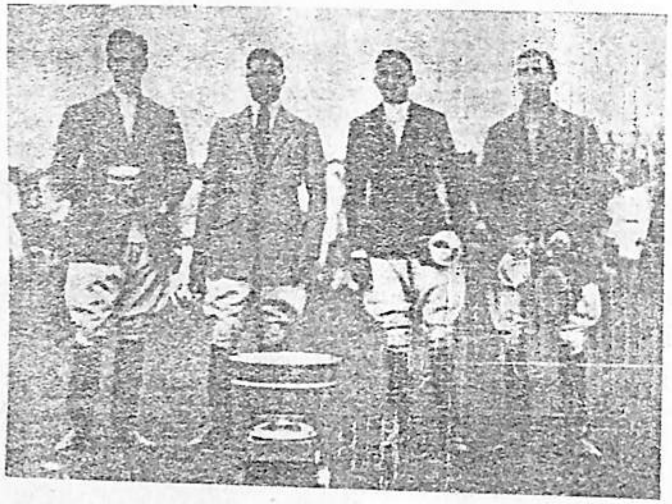
[प्रोफ़ेसर के० वी० ऐयर]



[श्री रन जी]

से हर साल एक विदेशी टीम भारतवर्ष आती है। अब तक फ़्रांस, इँग्लैंड, जापान, इटली, युगोस्लेविया तथा आस्ट्रेलिया से टीमें आ चुकी हैं। इस बार दिसम्बर में जर्मनी की टीम आनेवाली है। अन्य देशों के खिलाड़ियों की इस प्रकार की टीमों को अपने यहाँ बुलाने से बहुत लाभ होता है। उनके साथ खेलने से ही अपने खेल की क्षमता एवं त्रुटियाँ मालूम पड़ती हैं। स्त्रियों ने भी टेनिस में अच्छी उन्नति की है। मिस सैंडीसन और मिस लीला रो उनमें अधिक प्रख्यात हैं। दोनों ही विदेशों में खेलकर अच्छा नाम कमा चुकी हैं।

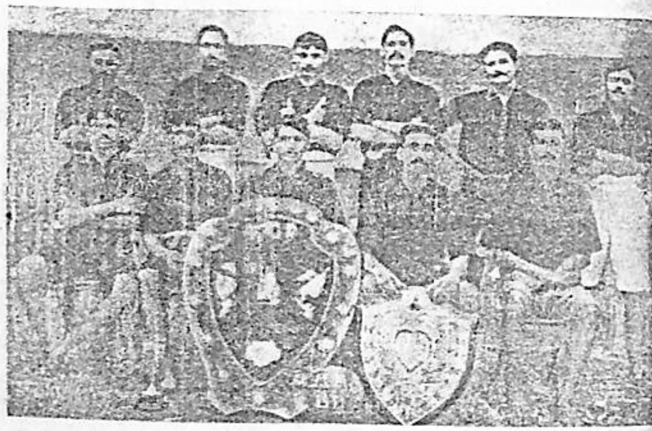
पोलो—पोलो में भी भारत अग्रणी है। पोलो शाही खेल है और इसमें लाखों का खर्च होने के कारण इसे राजे-महाराजे ही खेलते हैं। १९११ में इँग्लैंड के विख्यात रनेलीघ ग्राउंड में भारतीय टीम ने कारोनेशन कप जीता



था। उसी समय से पोलो में भारत का नाम हुआ है। बीकानेर, जोधपुर, जयपुर, कश्मीर और भोपाल की पोलो-टीमें आज विश्वविख्यात हो रही हैं। आज से वर्षों पहले जोधपुर और बीकानेर की टीमों ने योरप की बड़ी बड़ी टीमों को हराया था। जोधपुर और बीकानेर के नरेश पोलो के श्रेष्ठ खिलाड़ी हैं। अभी हाल में जयपुर की टीम योरप गई थी। वहाँ वह बड़े बड़े टूर्नामेंटों में खेली। हारी कहीं भी नहीं। उसने इँग्लेंड का रेनेलीघ हरलिंघम टूर्नामेंट जीता। यहाँ भारत में भी कई बार इंडियन

[जयपुर-पोलो-टीम]
(आई० पी० ए० चैम्पियनशिप-कप के विजेता)

चैम्पियनशिप जीती है। जयपुर-टीम अमेरिका न जा सकी। अमेरिका की टीम भी संसार की सर्वश्रेष्ठ टीमों में है। उस टीम के एक खिलाड़ी विस्टन ग्येस्ट गत वर्ष भारत में जयपुर की टीम में खेले थे। उन्होंने कहा था—"मेरी राय में जयपुर की टीम इस समय संसार की सर्वश्रेष्ठ टीम है।" इस टीम के खिलाड़ियों में जयपुर-महाराज तथा रावराजा हनूतसिंह बहुत अच्छा खेलते हैं। हनूतसिंह जी तो अपने ढंग के दुनिया में एक ही खिलाड़ी हैं। भोपाल के नवाब साहब



[खड़े हुए—आर० सेन गुप्त, एन० भट्टाचार्य, एच० मुकर्जी, एम० मुकर्जी, एस० चटर्जी, ए० सुकुल।]
बैठे हुए—जे० राय, एस० सरकार, ए० घोष, बी० भादुरी (कैप्टन)

दुनिया के चार सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ियों में गिने जाते हैं। अभी हाल में आपको ९ गोल का हैन्डिकैप मिला है।

फ़ुटबाल—फ़ुटबाल का खेल भी हिन्दुस्तान में बहुत लोकप्रिय है और वह भी खासकर बंगाल में। कलकत्ते में आई० एफ़० ए० शील्ड का सबसे बड़ा फ़ुटबाल टूर्नामेंट होता है। उन दिनों एक एक खेल में लाखों आदमियों की भीड़ हो जाती है। इस टूर्नामेंट में बाहर से हिन्दुस्तान की प्रायः उत्तम से उत्तम फ़ौजी टीमें आकर भाग लेती हैं। यह टूर्नामेंट सन् १८९३ में प्रारम्भ हुआ था। इसके ४३ वर्ष के जीवन में सिर्फ़ एक बार सन् १९११ में एक भारतीय टीम को विजय मिली। वह है भारतविख्यात 'मोहनबगान'। मोहनबगान के बाद अब तक और किसी भी अन्य भारतीय टीम को यह गौरव नहीं मिला। १९११ में जब मोहनबगान ने यह टूर्नामेंट जीता था तब फ़ाइनल में उस साल की सर्वश्रेष्ठ फ़ौजी टीम ईस्ट यार्क्स थी। उसके गोलकीपर का खेल और मोहनबगान के प्रख्यात भादुरी बन्धुओं का अद्भुत बाल-संचालन स्मरण-योग्य है। ऐसे खिलाड़ी अब तक बंगाल में नहीं हुए। इसके बाद भी मोहनबगान को यह टूर्नामेंट जीतने के अन्य अवसर मिले, परन्तु कुछ तो भाग्यदोष से और कुछ खेल के बुरे निरीक्षण से विजय नसीब नहीं हुई। भारतीय टीमों के लिए जो सबसे बड़ी बाधा उपस्थित होती है वह यह है कि यह टूर्नामेंट बरसात के बुरे दिनों में होता है। भारतीय खिलाड़ी नंगे पाँव खेलते हैं। इस कारण उनमें सूखे ग्राउंड की स्पीड नहीं रहती। उनके पाँव बूटधारी प्रतिद्वन्द्वियों के साथ नहीं टिकते और कितनी ही बार श्रेष्ठ खेल कर भी वे हार जाते हैं। बंगाल में फ़ुटबाल की टीमें बहुत हैं। सूखे ग्राउंड में वे हिन्दुस्तान की अच्छी अच्छी फ़ौजी टीमों से लोहा ले सकती हैं।

मोहनबगान की वर्तमान टीम भी बहुत विख्यात है। भारत के अन्य स्थानों में होनेवाले बड़े बड़े टूर्नामेंटों में वह खेली है और वहाँ की सर्वोत्तम टीमों पर विजय प्राप्त की है। १९२५ में वह शिमला के डूरंड-कप में सेमी-



[मोहम्मडन स्पोर्टिंग-क्लब, कलकत्ता]
खड़े हुए—रहमान, सत्तार, मासूम, हबीब, अमीर, ज़ाफ़र, नबी, मोहुद्दीन;
बैठे हुए—शेख इब्राहीम, सयद, एम० के० अब्बर, रशीद, रहमत।
ज़मीन पर—जुमाखाँ, एम० आई० शिराज़ी, अब्बास।

फ़ाइनल में खेली थी। वह पहला ही अवसर था कि एक भारतीय टीम फ़ौजी टीमों से भिड़कर इतनी दूर तक पहुँची। इस खेल में बेलजियम के स्वर्गीय सम्राट् अलबर्ट, भारत के वाइसराय, पंजाब के गवर्नर और स्वर्गीय पंडित मोतीलाल जी एवं अन्य विख्यात राष्ट्रीय नेता भी उपस्थित थे। सम्राट् अलबर्ट ने स्वयं मोहनबगान को बधाई दी और उसके खेल की बड़ी प्रशंसा की। मोहनबगान में खेलनेवालों में श्री जी० पाल जो गोस्टोपाल के नाम से

.फ़ुटबाल के क्षेत्र में विख्यात हैं, २५ वर्ष तक .फ़ुटबाल में खेल चुके हैं। इनके जैसे खिलाड़ी शताब्दियों में ही हुआ करते हैं। फ़ौजी टीमों में तो इनके नाम का बड़ा भय है। खेल में इनसे गेंद निकाल लेना बहुत ही कठिन बात समझी जाती है। .फ़ुटबाल के समालोचकों ने तो इन्हें 'चीन की दीवार' की उपाधि दे रक्खी है।

दूसरी भारतीय टीम जिसने भारतीय .फ़ुटबाल में नया रेकार्ड किया है वह है मोहम्मडन स्पोर्टिङ्ग। इसने कलकत्ते की .फ़ुटबाल लीग को २ वर्ष तक लगातार जीता है। यह सौभाग्य अभी तक अन्य किसी भी टीम को नहीं प्राप्त हुआ है। इस टीम में हिन्दुस्तान के चुने हुए खिलाड़ी हैं। ये खेलते तो इतना कलापूर्ण नहीं, परन्तु बड़ी हिम्मत और बड़े जोरों से अपने प्रतिद्वन्द्वी पर अपने खेल का असर डाल देते हैं।

हिन्दुस्तान के बाहर जाकर भी यहाँ की टीमों ने अच्छा नाम कमाया है। सर्वप्रथम १९२४ में बंगाल से कुछ खिलाड़ी सिंगापुर, पेनांग, जावा, सुमात्रा आदि स्थानों को गये थे। बाद में १९३३ में एक टीम सीलोन भेजी गई थी। वहाँ उसे बहुत सफलता मिली। पिछले साल दक्षिण-अफ़्रीका के निमंत्रण पर एक टीम वहाँ भी गई। वहाँ कितने ही मैच उसने वहाँ के अन्यान्य प्रांतों की टीमों के साथ खेले। तीन टेस्ट मैच भी हुए थे, पर कहीं भी हार नहीं खाई। अफ़्रीकावालों ने भारतीय टीम के खेल की बड़ी प्रशंसा की और वहाँ के कार्पोरेशनों ने इसका सम्मान किया। इसकी यह सफलता देखकर ही अगले साल आस्ट्रेलियावालों ने इसे बुलाया है। यहाँ के फ़ुटबाल एसोसिएशन ने यहाँ की टीम को ओलिम्पिक गेम्स में भी भेजने का विचार किया है। आशा है कि भारतीय .फ़ुटबाल-टीम हाकी-टीम की तरह ही किसी दिन भारत का गौरव बढ़ावेगी।

दूसरे खेल—अन्य खेलों में भारत का स्थान नगण्य-सा है। बिलियर्ड में अभी हाल में ही बंगाल के प्रस्तूर देव जो सर्वभारतीय चैम्पियन हैं, इँग्लैंड गये हैं। शतरंज में किसी समय सुलतानखाँ संसार में सर्वश्रेष्ठ थे। गोल्फ़ में भारतीयों में मल्लिकबन्धु प्रसिद्ध ही हैं।

भारतीय युवकों ने संसार के सभ्य राष्ट्रों की प्रतियोगिता में खेलों की दौड़ में कैसी सफलता अब तक प्राप्त की है, यही हमने इस लेख में संक्षेप में वर्णन किया है। भारत की युवकशक्ति के विकास के मार्ग में बहुत-सी अड़चनें हैं। भारतीय युवकों में प्रतिभा, क्षमता और उत्साह की कमी नहीं है, परन्तु उन्हें संगठित करके उनकी शक्ति को विकसित करने का यथेष्ट प्रयत्न नहीं होता। स्पोर्ट्स के क्षेत्र में यदि हम पाश्चात्य राष्ट्रों से बराबरी का दावा करना चाहते हैं तो हमको उनसे बहुत कुछ सीखना होगा। हमें भी अपने राष्ट्रीय जीवन में स्पोर्ट अर्थात् खेलों को वही महत्त्व देना होगा जो विदेशों में है। हमें खेलों के प्रति रुचि रखनी होगी, सक्रिय भाग लेना होगा और हर प्रकार से उन्हें लोकप्रिय बनाना होगा। हमें समझना चाहिए कि युवकशक्ति के विकास में ही राष्ट्र का उत्थान है।

गीत

लेखक, श्रीयुत रामविलास शर्मा

मधुकर, छोड़ अब मधुपान।
ढल गये सुख-स्वप्न के पल, अस्त रे दिनमान।
तिर रही जल पर मलिन-घन—
अरुणिमा, हत-छवि कमल-वन;
मूँदती आतुर किरण-दल गमन-वेला जान।
हेर, कौन विनाश-माया
खोल प्राची-द्वार, छाया—
स्तब्ध करती विश्व को; अवरुद्ध खग-कुल-गान।

मैथिल कवि श्री मँगनीराम झा

लेखक, श्रीयुत शुकदेव ठाकुर, बी० ए० (ऑनर्स)

ठाकुर महोदय ने इस लेख-द्वारा हिन्दी के प्राचीन कवि-समुदाय में एक नये श्रेष्ठ कवि की ही वृद्धि नहीं की, किन्तु यह भी प्रकट किया है कि १८ वीं सदी के अन्त में मिथिला में ब्रजभाषा का यहाँ तक प्रचार था कि वहाँ के कवि अपनी हिन्दी-कविता के कारण नेपाल के राजदरबार में आश्रय और सम्मान प्राप्त करते थे। आशा है, लेखक महोदय मँगनीराम जी की प्राप्त कविताओं को प्रकाशित कर हिन्दी के इस श्रेष्ठ अज्ञात कवि का हिन्दीवालों को पूर्ण परिचय देंगे।

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्॥

जिन दिनों वीरप्रसविनी महाराष्ट्रभूमि के गिरि-कानन-प्रांत महाकवि भूषण के शंखनाद से प्रतिध्वनित हो उठे थे, जब देव, घनानंद और पद्माकर के रमणीय रस-वैभव से भारत की राजसभायें परिप्लावित हो रही थीं, जब वीरकेशरी गुरुगोविंदसिंह जी अपनी ओजस्विनी वाणी से शक्ति की आराधना एवं पंचनद की सोई हुई आत्मा को चैतन्यपूर्ण कर रहे थे, उस समय मिथिला के एकान्त उत्तरीय अंचल में एक मार्मिक मधु-संगीत सुनाई पड़ा था। इस कोमल स्वर-लहरी ने न केवल पुण्य-सलिला बागमती के रम्य तटों को ही झंकृत किया था, किन्तु उत्तराखंड की स्वतंत्र जातियों पर भी अपनी मोहनी डाली थी। यह सुंदर स्वर-झंकार 'बागमती-तट के गायक' श्री मँगनीराम झा का था।

× × ×

सन् १९३२ ईसवी का माघ मास था। मनियारी (मुज़फ़्फ़रपुर) के सभी साहित्यानुरागी सज्जन अपनी साहित्य-परिषद् 'पद्म-समिति' की एक साधारण बैठक कर रहे थे। अपने माननीय विद्वान् मित्रों के साथ बैठा मैं भी काव्य-रस का आनन्द ले रहा था। समस्यापूर्त्तियों का पाठ हो रहा था। समिति के मंत्री ने समस्यायें रक्खी थीं—'है' और 'दामिनी'। साहित्याचार्य पंडित सुरेन्द्र झा 'सुमन' तथा पंडित शुकदेव शर्मा 'कर्मकांडी' के संवेदन-शील पद्यों के गान से समिति-भवन गूँज चुका था। अंत में चम्पारण्यनिवासी काव्यतीर्थ पंडित दिगंबर झा साहित्यालंकार स्वरचित पद्यों का पाठ समाप्त कर अपने पितामह स्वर्गीय श्री भुवन झा-द्वारा रचित कतिपय पद्य सुनाने लगे। उन पद्यों में भी उपर्युक्त समस्याओं की पूर्ति हुई थी। समिति की बैठक समाप्त होने पर सभी सदस्य अपने कर्मों में दत्तचित हुए, पर 'भुवन'-रचित कवितायें मुझे अच्छी लगीं और उन्होंने मेरे हृदय पर बड़ा प्रभाव भी डाला। वे कवितायें ये थीं—

(१)

पुरुष अनूप एक सुरती न कहि जात,
अष्टचन्द्र बिन्दुभाल मूरती विशाल है।
स्वर्ग औ पताल मर्त्यलोक हू की गति नाहिं,
चन्द न सूरज न पवन शूरपाल है।
विशु मूल सहस्रकमलदल ताहि पर,
निरखत योगीजन दीन के दयाल है।
यम दिकपाल है न भैरव कपालधर,
काल है न, मृत्यु है न, रुद्र चन्द्रभाल है॥

(२)

लोटती पर्यंक पै ऐंड़ि ऐंड़ि चारों ओर,
सुन्दरी सलोनी गात मानो शक्र-भामिनी।

विरह के नगारे उर अंतर धुकारे भये,
ताते मतवारे अँधियारी पेखि यामिनी।

झिल्ली झनकारे पिक-दादुर धुनि[क] डारे 'भुवन',
प्रियतम विदेश कैसे धीर धरै कामिनी।
मारि डारै मदन मरोरि डारै दादुर,
दबोरि डारै बादल दबाय डारै दामिनी॥

इन पंक्तियों में मुझे प्रतिभा की झलक मालूम पड़ी और मैं इन पर चिंतन करता रहा। एक दिन वार्तालाप के सिलसिले में मित्र दिगंबर जी से ज्ञात हुआ कि भुवन झा से कहीं अधिक श्रेष्ठ कवि उनके पितामह श्री मँगनीराम झा थे, जिनकी कवितायें और गीत अभी तक चम्पारन, मुज़फ़्फ़रपुर की ग्रामीण स्त्रियाँ श्रद्धा और प्रेम के साथ गाती हैं। मुझ इतिहास के अकिंचन विद्यार्थी के लिए यह पते की बात थी। एक सप्ताह के भीतर ही मँगन के सारे सरस कविता-कुसुमों को संकलित कर उनकी जीवन-घटनाओं के सूत्र में उन्हें गूँथने का सम्पूर्ण कार्यक्रम प्रस्तुत कर डाला। इस महान् कार्य के संपादन में मुझे मित्र दिगंबर जी से जो हार्दिक साहाय्य और सहयोग प्राप्त हुआ उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। आज उसी प्रयास का फल यहाँ 'सरस्वती' के पाठकों के मनोविनोद के लिए उपस्थित किया जाता है।

× × × ×

श्री मँगनीराम झा का जन्म सन्[ख] १६८७ ई० में पदुमकेर ग्राम में हुआ था। पदुमकेर (पद्मकेलि) चम्पारन-ज़िला में मोतीहारी से २० मील पूरब एवं मिथिला के पुण्यतीर्थ सीतामढ़ी से १४ मील पश्चिम है।[ग] सन् १३२३-२४ ई० में वंग-विजयी तुग़लकशाह से पराजित होकर तिहुँत-नरेश हरिसिंहदेव अपने दो कनिष्ठ भ्राताओं मोतीसिंहदेव एवं पद्मसिंहदेव के साथ अपनी राजधानी पट्टनपुरी को छोड़कर नैपाल-विपिन की ओर भाग गये थे। हरिसिंहदेव ने नैपाल-विजय कर तराई में स्थित भटगाँव में अपनी राजधानी बसाई, जहाँ उनके वंशज १७६९ ई० तक राज्य करते रहे। उनके दोनों कनिष्ठ भ्राताओं ने अपने अपने नाम पर क्रमशः मोतीहारी और पद्मकेलि नाम के ग्राम बसाये। पद्मसिंहदेव का प्राचीन वासस्थान अब भी एक उन्नत टीले के रूप में वर्तमान है। पदुमकेर के स्वर्ण-समय का वह करुण स्मारक 'डीह' अपने सुस्वादु चावलों की उत्पत्ति के लिए प्रसिद्ध है। कहते हैं, ब्राह्मण-मण्डली के साथ राजा ने वहाँ यज्ञ किया था। उसके प्रभाव से वहाँ की भूमि सिद्ध हो गई है। अब भी उस स्थान में उत्पन्न अन्न-द्रव्यों में हविष्य की सुगंध पाई जाती है। निकट ही 'जरदाहा' नाम का एक प्राचीन सरोवर है, जो लगभग ४ मील तक फैला हुआ है। यह विशाल सरोवर विद्यापति के आश्रयदाता शिवसिंह के समय का कहा जाता है। इसमें कमल बहुत उत्पन्न होते हैं।

(क) 'नाचे मोर कारे, पवन हहकारे'—दूसरा पाठ।

(ख) पदुमकेर में मुझे ज्ञात हुआ कि मँगनीराम झा ने १०८ वर्ष तक जीकर संवत् १८५२ में शरीर त्याग किया। श्रीयुत उद्दू मिश्र, पंजीकार, कोठा टोल, दरभंगा की पोथियों से भी उपर्युक्त तिथि का समर्थन होता है। कवि का जन्म-पत्र अब अप्राप्य है।

(ग) बाणाब्धिबाहुशशिसम्मितशाकवर्षे,
पौषस्य शुक्लदशमी क्षिति सूनुवारे।
त्यक्त्वा स्वपट्टनपुरीं हरिसिंहदेवो,
दुर्दैवदर्शितपथे गिरिमाविवेश।
—देखिए History of Tirhut, pp. 59—69, footnote; Brigg's Ferista Vol. I, pp. 406—7.

मँगनीराम एक कुलीन विद्यानुरागी मैथिल-ब्राह्मण-वंश के रत्न थे। इन ब्राह्मणों का पूर्व का वास-स्थान रामभद्रपुर था। मँगनीराम के प्रपितामह हरपति झा भी कवि थे, पर उनकी रचनायें अप्राप्य हैं। इनके ज्येष्ठ पुत्र स्पर्शमणि झा प्रकांड वैयाकरण थे तथा पौत्र भुवन झा भी सुकवि थे। मँगनीराम का बाल्यकाल अपनी ऐतिहासिक जन्मभूमि के प्राकृतिक सौन्दर्यपूर्ण वातावरण तथा वाग्मती के तीरस्थ वालुकाकीर्ण अरण्य प्रांतों में व्यतीत हुआ था। मँगनीराम की कवित्व-शक्ति किसी अंश में वंश-परंपरागत थी, पर उदार-प्रकृति के मधुर अंतस्पर्श ने उसका विशेष पोषण किया। ये साक्षर मात्र थे। १८ वीं शताब्दी के उस पतनोन्मुख मिथिला में भी यत्किंचित् शिक्षा उपलब्ध थी, उसे भी ये अभाग्यवश न प्राप्त कर सके थे। कल्पना-जगत् ही इनकी पाठशाला थी और जीवन की अनुभूतियाँ ही इनके गुरु। ऐसा ज्ञात होता है कि ये लड़कपन से ही कवितादेवी के एक अल्हड़, पर दृढ़ उपासक थे और इनके स्वभाव में सरसता और विनोदप्रियता कूट कूट कर भरी थी। तत्कालीन प्रथानुसार बाल्यावस्था में ही मुज़फ़्फ़रपुर के समीप पकड़ी ग्राम के 'ज्ञानी ध्यानी पाँजिवाले' एक उच्च कुल की मैथिल-कन्या से इनका पाणिग्रहण हुआ। इन्होंने विवाह-काल में ही अपनी 'विधिकरी' से यों मीठी चुटकी ली—

'घर बाभन कन्या धनुकाइन
पकड़ी गामक विधिकरी डाइन।'

इस पर विधिकरी रूठ गई तब झट पद-परिवर्तन कर उसे यों सुना दिया—

'घर बाभन कन्या सोतिआइन
पकड़ी गाम क विधिकरी गाइन।'

इससे विधिकरी प्रसन्न हुई।

मँगनीराम के जीवन-वृत्तान्त में अनेक अलौकिक बातों का सम्मिश्रण पाया जाता है। एक ऐसी आश्चर्यजनक घटना इनके १८ वें वर्ष में घटी थी। एक दिन की बात है, इनके कुटुम्बी कृषिकर्म में संलग्न थे और स्वयं ये अपने ज्वार के खेतों की रखवाली कर रहे थे। कहते हैं, मध्याह्न-काल में अचानक एक तेज़ आँधी आई और तत्क्षण ही कवि को सरस्वती का दर्शन और उनसे वर प्राप्त हुआ। उस ग्राम के निवासी उस स्थान का निर्देश आज भी करते हैं। उस स्थान पर एक पीपल का पेड़ है। कहते हैं कि वह पेड़ उनके समय का है। वह स्थान 'विरती टोले' के नाम से प्रसिद्ध है और पदुमकेर ग्राम से पश्चिम कुछ ही दूर है। कहते हैं कि सरस्वती की आज्ञा के अनुसार मँगनीराम मनुष्यों से बातचीत करना बंद कर एकान्तवास करने लगे। यह देखकर उनके पिता को संदेह हुआ कि किसी ने जादू तो नहीं कर दिया है। वे उद्विग्न हो उठे। शीघ्र ही मँगनीराम चिकित्सा के लिए अपने ननिहाल वसतपुर भेजे गये, जो बैरगनियाँ से प्रायः ४ मील उत्तर नैपाल-राज्य की सीमा के भीतर है। कहते हैं, इस रहस्यपूर्ण घटना के पश्चात् मँगनीराम की कवित्वशक्ति पूर्ण रूप से परिस्फुटित हो गई और ये उत्कृष्ट कविताओं की रचना करने लगे।

कवि के जीवन की दूसरी विचित्र घटना उनके ननिहाल-निवास-काल की है। उनके मामा नैपाल-राज्य के एक जमींदार अर्थात् कर उगाहनेवाले हाकिम थे। एक दिन प्रातःकाल अपने मामा का लोटा लेकर ये नित्यकर्मों से निवृत्त होने चले। शौच आदि से निवृत्त होकर ये वाग्मती के किनारे बैठे लोटा माँज रहे थे। अकस्मात् लोटा नदी में गिर कर बह गया। उसे पाने के लिए मँगनीराम नदी की प्रशंसा में कविता-रचना करने लगे, पर दोपहर हो गया और उन्हें लोटा न मिला। तब तक उनके मामा को इस बात की ख़बर होगई। अपने मित्रों तथा समीप की नैपाल-राज्य की कचहरी कड़िरवाना के उच्च अधिकारियों के साथ वे वहाँ गये। लोटा न मिलने पर कोपाकुल होकर कवि ने नदी की निन्दा

में कुकाव्य-रचना आरम्भ ही की थी कि लोटा लहरों पर नाचता हुआ किनारे आ लगा। सभी दर्शक कवि की इस अलौकिक शक्ति को देखकर आश्चर्य-चकित रह गये।

यदि इस घटना की अलौकिकता का अंश पृथक् कर दें तो पात्र का जलनिमग्न होकर उसका फिर मिल जाना एक साधारण घटना ही प्रतीत होती है। पर इस साधारण घटना ने मँगनीराम को प्रकाश में लाने में बड़ी सहायता की। कड़िरवाना के अधिकारियों ने शीघ्र ही नैपाल-सम्राट् का ध्यान इस होनहार नवयुवक कवि की देवोपम शक्ति एवं विलक्षण प्रतिभा की ओर आकृष्ट किया। उन दिनों नैपाल के राजसिंहासन पर सम्राट् रणबहादुरसिंह जी आसीन थे, जो सहृदयता एवं उदारता के साथ साहित्य, संगीत आदि ललित कलाओं की परख और उनका संरक्षण करते थे। उनकी महारानी भी कवियों और कलाविदों का उचित सम्मान करती थीं। शीघ्र ही नैपाल-नरेश ने मँगनीराम के मामा के नाम आज्ञा-पत्र भेजा। तदनुसार मँगनीराम नैपाल-राजसभा में उपस्थित किये गये। सम्राट् ने एक समस्या दी। सभी उपस्थित कवियों की रचनाओं में मँगनीराम की समस्यापूर्त्ति उत्कृष्ट हुई और प्रसन्न होकर सम्राट् ने समस्त राजकवियों में उनको सर्वोच्च स्थान देकर उनकी मेधाशक्ति तथा पांडित्य की प्रशंसा की। उक्त समस्या थी—'कर हाथी बुड़ी है हथेली के पानी'। इसकी जो पूर्तियाँ मँगनीराम ने की वे ये हैं—

(१)

भाग्य भगीरथ की पुड़िया महँ,
　　शम्भु दियो मन्दाकिनी आनी।
विष्णु कियो छल देखन को तहँ,
　　छूटि पड़ी गिरि खोह समानी॥
वासव सै अहिरावत लै युग
　　दन्त धसाय सुमेरहु तानी।
बहरे जल धार पहाड़न ते कर,
　　हाथी बुड़ी है हथेली के पानी॥

(२)

कञ्चन के गजराज बनाय,
　　जड़ाय जमाहिर लाल लसानी।
पावन पुच्छक शुण्डन में मणि,
　　मस्तक दन्त कहाँ लो बखानी।
इक पर्व महोदय लागि गयो,
　　तहँ दान कियो नृप की महरानी॥
गंग तरंग में स्वस्ति दई कर,
　　हाथी बुड़ी है हथेली के पानी॥

मँगन की सूझ और प्रत्युत्पन्नमति पर सभी सुधीजन मुग्ध हो गये और वाहवाही से वह समूचा राजभवन प्रतिध्वनित हो उठा। इसके कुछ समय बाद उनका नैपाल-दरबार में सिक्का जम गया और वे स्वयं सम्राट् और सम्राज्ञी के स्नेहभाजन बन गये। नैपाल-दरबार में उन्होंने कितने दिनों तक निवास किया, इसका पता नहीं लगता, पर इतना स्पष्ट है कि अपनी युवावस्था के कतिपय उत्तम वर्ष उन्होंने नैपाल-नरेश के आश्रय में ही व्यतीत किये थे। इस प्रकार नैपाल में सम्मानित होकर वे जब स्वदेश को लौटने लगे तब महाराणा ने उन्हें प्रचुर द्रव्य, एक हाथी और 'गड़रिया' तथा 'डुमरिया' नामक दो ग्राम स्थायी रूप से देकर विदा किया। इन ग्रामों की सनद भी उन्हें दे दी गई। विद्वत्प्रेमी सम्राट् उनके व्यक्तित्व के प्रबल प्रशंसक हो चुके थे। उन्हें शीघ्र ही अपने दरबार में देखने की तथा उनका काव्यरसामृत पान करने की अभिलाषा से सम्राट् ने उनसे अनुरोध किया—"जब आप पुनः नैपाल आवेंगे तब और भी जमींदारी देकर सनद में लाल मोहर कर दूँगा।" परन्तु मालूम पड़ता है कि अनेक सांसारिक झंझटों से तथा विशेषतः अपनी सुतवत्सला वयोवृद्धा जननी की मनाही के कारण मँगनीराम दूसरी बार नैपाल-यात्रा न कर सके। कुछ समय के बाद नैपाल-नरेश का बुलावा भी आया, पर उपर्युक्त कारण से वे नहीं जा सके। वस्तुतः उन्हें अब सांसारिक वैभव-सुख से तृप्ति और विरक्ति-सी हो गई थी और अपने ग्राम में ही निवास करते हुए वे तापस-जीवन व्यतीत करते थे। इसी समय कवि के वार्द्धक्य-काल में दरभंगा के महाराज ने उनकी ख्याति सुन कर उन्हें अपनी राजधानी में निमंत्रित किया। स्वाभिमानी कवि ने उत्तर में लिखा—'मैंगन के द्वार पर मँगन कहिं जात है?' निमंत्रण अस्वीकार कर दिया। सन् [illegible] ई० में १०८ वर्ष की अवस्था में उन्होंने अपना शरीर-त्याग किया।

मँगनीराम के जीवन-वृत्तान्तों से यह संभव प्रतीत होता है कि नैपालराज्य के पुस्तकालय में उनकी रचनायें अथवा स्वयं कवि के हस्तलिखित सुरक्षित हों। महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा की अनुमति के अनुसार मैंने हिज हाइनेस नैपाल-महाराज के प्राइवेट सेक्रेटरी महोदय को मँगन कवि के सम्बन्ध में कई पत्र लिखे, पर वहाँ से अब तक एक का भी उत्तर नहीं मिल सका। अतएव मैंने नैपाल जाकर मँगन के जीवन और काव्यों के सम्बन्ध में खोज करने का निश्चय किया है। इधर पता लगा है कि मधुवन-दरबार में मँगन-रचित लगभग ३० कवित्त सुरक्षित हैं और कवि के ननिहाल बसतपुर (नैपाल-राज्यांतर्गत) में उनका 'उपाहरण' नामक खंडकाव्य अब भी प्राप्त हो सकता है। श्री सोल झा[घ]-द्वारा संगृहीत 'मिथिला-गीत-संग्रह' के तृतीय भाग में भी मँगनीराम-रचित एक दुर्गा-स्तुति मिली है, जो यों है—

तोंही धरनी तोंही करनी, तोंहीं जगत क मात। हे मा०।
　दश मास माता उदर में राखल
　　　दश मास दूध पियाव।
　निरंकार निरंजनि लक्ष्मीस्वरि
　　　भवधरनि तों कहाव॥ हे मा०॥

सुरसा क रथ चढ़ि तोंहीं बैसलि
　　　दुर्गा नाम धराव।
पण्डित के तों पोथी जाँचहु
　　　सरस्वति नाम सुनाव॥ हे मा०॥

गाइनि मुख में गान भै पैसलि,
　　　सुस्वर गीत सुनाव।
'मँगनीराम' चरण पर लोटथि
　　　भक्ति मुक्तिवर पाव॥ हे मा०॥

इसके अतिरिक्त तिर्हुत प्रांत में भ्रमण और खोज करने के उपरान्त मुझे मँगनीराम की लगभग २९ कवितायें प्राप्त हुई हैं। इनमें 'श्रीकृष्ण जन्म सोहर,' 'श्री गंगास्तव' और 'द्रौपदीपुकार' शीर्षक तीन कवितायें बड़ी हैं। ये वर्णनात्मक हैं। शेष सभी विविध विषयों पर सुन्दर कवित्त एवं गीत हैं और सभी कवित्वपूर्ण हैं।

श्रीयुत वृन्दावनदास जी बी० ए०, एल-एल० बी०[ङ] ने 'हिंदी की उत्पत्ति और उसका विकास' शीर्षक अपने विद्वत्तापूर्ण निबंध में ठीक ही लिखा है—"औरंगजेब के राज्य से मुग़ल-शासन का अंत समझा जाता है। मुग़ल-शासन के अंत के साथ साथ हिंदी की उन्नति में भी बाधा पड़ गई। इसी कारण अठारहवीं शताब्दी के अंतिम काल में हिंदी के साहित्याकाश में किसी महत्त्वपूर्ण नक्षत्र का उदय नहीं हुआ।" मुझे निश्चय है कि कविवर श्री मँगनीराम झा के जीवनचरित और रचनाओं पर पूर्ण प्रकाश पड़ने पर हिंदी के इतिहास के इस रिक्तस्थान की बहुत कुछ पूर्त्ति हो सकेगी। मँगन की प्राप्त कविताओं का रसास्वादन दूसरी बार कराऊँगा।

(घ) देखिए—'श्री रमेश्वर प्रेस' से प्रकाशित 'मिथिलागीत-संग्रह', भाग ३, पृ० १.

(ङ) देखिए—'माधुरी' मार्गशीर्ष, ३०८ तुलसी-संवत् [१९८६ वि०] पृ० ५८९-५९२.

कवि के भावमय शब्दों में भारती की वंदना करके इस लेख को समाप्त करता हूँ—

कोटि कोटि सम्पति औ लाखन सिपाह खड़े
 झूमत गजराज द्वार हलका हजारों हैं।
कोठरी भरी है हेम हीरा औ जवाहरात
 अंग अंग गूँथी मणि मोतिन की हार हैं।
महल में भीतर चटकीली चन्द्रमुखी नारि
 बाहरे हजार भूप करत गोहार हैं।
'मँगनी कवि' कहै सरसुती सों सिनेह नाहिं
 (तो) धूआँ की धरोहर शृंगार सब छार है॥

(च) श्री मँगनीराम झा की कविताओं को संकलित कर मैं उन्हें शीघ्र ही पुस्तकाकार प्रकाशित करना चाहता हूँ। इनकी जन्मतिथि, जीवन-वृत्तांत तथा रचनाओं के विषय में जिन विद्वानों को विशेष बातें ज्ञात हों वे कृपया निम्नांकित पते से लिखें—C/o The Principal, Patna Training College, P.O. Bankipore. पत्र-व्यवहार इत्यादि का सम्पूर्ण व्यय मैं दूँगा और पुस्तक में कृतज्ञतापूर्वक उनका सहयोग स्वीकार करूँगा।

—लेखक

उच्छ्वास

लेखक, श्रीयुत कुँवर सोमेश्वरसिंह, बी० ए०

कहते हैं जो कहने दो,
हँसते हैं जो हँसने दो।
मेरे आकुल जीवन को,
अपनी लय में बहने दो॥

है जान नहीं सकता जग,
पहचान नहीं सकता जग।
मेरे प्राणों को अपनी,
पीड़ा ही में घुलने दो॥

है मोल कौन कर सकता,
मेरे मृदु अश्रुकणों का?
अनमोल मोतियों को इन,
बस नयनों से झरने दो॥

आँधी जो छिपी हुई है,
मेरे मृदु उच्छ्वासों में।
उसको जग समझ न सकता,
इनको अदृश्य उड़ने दो॥

मेरे नैराश्य-अनल की,
आँचों से जग घबराता।
बस एक-मात्र मुझको ही,
इस ज्वाला में जलने दो॥

सुख की निद्रा सोता जग,
जाने क्या मेरा सपना।
मेरे इन उन्मादों को,
मुझमें विलीन रहने दो॥

सब मीत हमारे जो हैं,
जानें मुझे जो रग रग।
वे भी अजान बन जाते,
एकान्त मुझे रहने दो॥

यह कसक नहीं मिट सकती,
यह हृदय नहीं फिर सकता।
पागल मुझको कहते जो,
निर्विघ्न उन्हें कहने दो॥

दुर्लभ पदार्थ

लेखक, श्रीयुत मावलीप्रसाद श्रीवास्तव

श्री मावलीप्रसाद जी हिन्दी के सुलेखकों में हैं। सरस्वती में पहले आप बहुत लिखते थे। प्रसन्नता की बात है कि आपने लिखना फिर शुरू कर दिया है। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने मानस में कतिपय दुर्लभ पदार्थों का प्रसंगवश स्थान स्थान पर उल्लेख किया है। वही सब इस लेख में श्रीवास्तव जी ने एक क्रम से संकलित किया है।

संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो दुर्लभ हो। पुरुषार्थी के लिए सभी पदार्थ सुलभ हैं अथवा हो सकते हैं। इसी लिए कहा गया है कि 'सकल पदारथ हैं जग माँही। कर्म-हीन नर पावत नाहीं।' सत्कर्म-रहित और पुरुषार्थ-हीन जीवों को बहुत-से पदार्थ कभी नहीं मिल सकते। परन्तु कुछ अधिक मूल्यवान् पदार्थ भी हैं जो सचमुच दुर्लभ ऐसे हैं जो सत्कर्मशील और पुरुषार्थ-पूर्ण व्यक्तियों को भी शीघ्र नहीं मिल सकते। मिलें कैसे? हर एक जंगल में चंदन नहीं होता, प्रत्येक हाथी में गजमुक्ता नहीं पाया जाता, प्रत्येक पत्थर में माणिक्य नहीं रहता और हर गली-कूचे में सज्जन पुरुष नहीं मिल सकते। दुर्लभ और मूल्यवान पदार्थ कहीं-कहीं, कभी-कभी, किसी-किसी अधिकारी अथवा सत्पात्र व्यक्ति को ही मिल सकते हैं। इस लेख में तुलसीकृत रामायण के आधार पर थोड़े में यह बतलाने का प्रयत्न किया जायगा कि वे अत्यन्त दुर्लभ पदार्थ कौन-कौन हैं।

(१) सबसे पहले तो यह मनुष्य-शरीर ही बहुत दुर्लभ है। यह चाहे मिट्टी का कच्चा घड़ा हो, क्षणभंगुर हो, विषय-वासनाओं और रोग-शोक का घर हो, जो कुछ भी हो, परन्तु है बहुत दुर्लभ। "बड़े भाग्य मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सद्ग्रंथन्ह गावा॥ (उत्तरकाण्ड)" ऐसा क्यों कहा गया है? यह क्षणभंगुर शरीर सुरदुर्लभ क्यों बतलाया गया है? कारण उसी चौपाई के आगे मिलता है। "साधन धाम मोक्ष कर द्वारा"—यह शरीर सभी साधनाओं का मार्ग और मुक्ति का द्वार है; इसी कारण यह सुर-दुर्लभ है। इसके ज़रिये चारों पदार्थ—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—का साधन हो सकता है। दुर्लभ नर-शरीर पाकर जिसने कुछ भी पुरुषार्थ न किया, जिसने लोक-परलोक का, किसी एक का भी साधन न किया, वह अभागी शोचनीय है। मनुष्य-शरीर बहुत दुर्लभ है, इसलिए इसका कुछ-न-कुछ सदुपयोग करना ही चाहिए।

(२) अमृत का नाम सुना जाता है, विष प्रत्यक्ष देखने को मिलता है। सुधा दुर्लभ है, विष सर्वत्र सुलभ है। हंस जल्दी नहीं मिलता। कौए, उल्लू और बगुले सभी जगह बहुतायत से पाये जाते हैं।

सुनिय सुधा देखिय गरल, सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक, उलूक, बक, मानस सकृत मराल॥

सुधा और राजहंस की तरह सच्चे संत और यथार्थ सज्जन भी संसार में बहुत कम मिलते हैं। मनुष्य-समाज में वेषधारी बगुलों, स्वाँग बनानेवाले बहुरूपियों और धूर्त कौवों की कमी नहीं। जहाँ ढूँढ़ो, वे काफ़ी तादाद में मिलेंगे। इसी लिए सज्जन के सत्संग का मिलना बहुत दुर्लभ बतलाया गया है। "सतसंगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकौ बारा॥ (उत्तरकाण्ड)" एक ही बार, एक घड़ी का एक पल भर के लिए भी सज्जनों की संगति मिलना दुर्लभ है। यदि घंटे दो घंटे के लिए भी सत्समागम हो जाय तो फिर क्या कहना

है! ध्रुव से पहले-पहल नारद जी से पाँच मिनट की ही तो मुलाक़ात हुई थी। "धन्य घड़ी सोइ जब सत्संगा।" पारस-पत्थर का ज़रा-सा स्पर्श होते ही लोहा सोना बन जाता है।

मज्जन फल देखिय तत्काला।
काक होहिं पिक बकहु मराला॥
शठ सुधरहिं सतसंगति पाई।
पारस परसि कुधातु सुहाई॥

सत्संगति क्या क्या नहीं करती! राजर्षि भर्तृहरि कहते हैं कि वह सब कुछ कर सकती है; बुद्धि की जड़ता को हरती, वाणी में सत्य को सींचती, मान को बढ़ाती, पाप को दूर करती, चित्त को प्रसन्न रखती और दिशाओं में कीर्ति को फैलाती है। जिस संगति से ये परिणाम नहीं हो सकते उसे सत्संग कैसे कहें? जिससे ये परिणाम हो सकते हैं वह मूल्यवान सत्संग सचमुच दुर्लभ है। ऐसे राजहंस-रूपी विवेकी और सुधा के समान प्राणदायक सज्जन बहुतायत से कहाँ मिल सकते हैं?

(३) प्रायः देखा जाता है कि हम कहते कुछ और हैं और करते कुछ और हैं। हाथी के दाँत दो प्रकार के होते हैं—खाने के और दिखाने के और। दूसरे की विपत्ति के समय स्वयं धीरज रखने का उपदेश देना अलग बात है और अपनी विपत्ति के समय स्वयं धीरज रखना अलग बात है। जैसा कहना वैसा करना सबसे नहीं होता। यदि ऐसा हो जाता तो संसार स्वर्ग बन जाता। हम जिन बुरी बातों (चोरी, जुआ, मद्य-पान, अत्याचार) के लिए दूसरों को मना करते हैं, उन्हीं का आचरण स्वयं करते हैं। इसी लिए दूसरों पर हमारे उपदेशों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। "पर-उपदेश-कुशल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥ (लंकाकाण्ड)" अपने वचनों और उपदेशों के अनुसार स्वयं आचरण करनेवाले आदमी संसार में बहुत कम हैं—जो हैं वे धन्य हैं। जिसमें मन, वाणी और कर्म की एकता पाई जाती हो उसे आप दुर्लभ पुरुष ही समझिए—वह चाहे बूढ़ा हो या दरिद्र, अपढ़ हो या रोगी—वह कोई महापुरुष अथवा श्रेष्ठ जीव है।

(४) बूढ़े माता-पिता और बड़े-बूढ़ों का आदर करना तथा उनके विचारों और इच्छाओं के अनुकूल चलना तो आज-कल के युग में बहुत ही कठिन होता जा रहा है। ब्याह हो गया और थोड़ी-सी जीविका का प्रबन्ध हो गया कि बड़े-बूढ़े बेकाम और माता-पिता भार-रूप मालूम होने लगते हैं। वृद्ध माता-पिता का शारीरिक पोषण तो लोकलज्जा के कारण कर भी दिया जाता है, परन्तु उन्हें मानसिक संतोष पहुँचाना तो आज-कल एक बला मानी जाती है! हिन्दू-कुटुम्ब-प्रणाली का प्राचीन आदर्श बहुत उच्च था—माता-पिता की गिनती देवताओं में की जाती थी। किसी-किसी घर में वह आदर्श अब भी दिखलाई पड़ता है। अस्तु, रामचन्द्र जी ने उस प्राचीन आदर्श का उपदेश कई प्रसंगों पर किया है। अपने आचरण से भी उन्होंने आदर्श पितृ-मातृ-भक्ति दिखलाई है। राज-तिलक के दिन सहसा वनवास की आवश्यकता देखकर वे तिल भर भी दुखी न हुए और कैकेयी से प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे—

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी।
जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा।
दुर्लभ जननि सकल संसारा।

(अयोध्याकाण्ड)

अर्थात् वही पुत्र बड़ा भाग्यवान् है जो अपने माता-पिता के वचनों का प्रेमी अथवा आज्ञाकारी हो; माता-पिता को संतोष देनेवाला पुत्र सारे संसार भर में दुर्लभ है।

जो अपने माता-पिता और पूज्यजनों की सेवा को परम धर्म माने, उनकी आज्ञा का पालन करने में अपना सौभाग्य और पूरी भलाई समझे और उनका रुख देखकर चले, वह सुपुत्र बड़े भाग्यवाले को मिलता है।

"धन्य जनम जगतीतल तासू।
पितहिं प्रमोद चरित सुनि जासू॥"

जिसके चरित्रों को देख-सुनकर पिता को आनन्द हो वह पुत्र धन्य है। ऐसा पुत्र निस्सन्देह दुर्लभ है।

(५) संसार चापलूसी की मीठी बातें पसन्द करता है। ठकुरसुहाती कहते जाइए, दुनिया चाव से सुनेगी।

अपना उल्लू सीधा करना हो तो ख़ुशामद की बातें करते जाइए—दिन को रात कहते जाइए। दुनिया में न तो चिकनी-चुपड़ी बातें करनेवालों की कमी है, न चिकनी-चुपड़ी सुननेवालों की। "प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं। ऐसे नर निकाय जग अहहीं॥ (लंकाकांड)" परन्तु संसार में ऐसे कितने आदमी हैं जो दूसरों को सच्चा लाभ पहुँचाने के इरादे से कुछ खरी और कड़ी बातें निर्भयतापूर्वक कहने का साहस रखते हैं? बहुत थोड़े। और ऐसे कितने विचारशील आदमी हैं जो ऐसी हितदायक परन्तु कठोर बातों को शान्तिपूर्वक सुनना चाहते हैं? बहुत थोड़े। रामायण की राय है कि ऐसी खरी खरी कहनेवाले भी दुर्लभ हैं और शान्तिपूर्वक सुनने वाले भी। "बचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहिं कहहिं ते नर जग थोरे। (लङ्काकाण्ड)"

(६) अपने हाथों की बनाई हुई कोई भी चीज़ बहुत अच्छी मालूम होती है। यह स्वाभाविक अवस्था है। आप एक ज़रा-सी टोपी, रूमाल, बेंच, किसी किताब की जिल्द या और कुछ बनाकर देखिए। वह बहुत सुन्दर मालूम होगी। अपनी रचना में आपको प्रायः दोष दिखलाई ही न पड़ेगा। जो हाल शिल्पियों, चित्रकारों और कलाविदों का है, वही हाल साहित्य-शिल्पियों, शब्द-चित्रकारों और काव्य-कलाधरों का है। अपनी बनाई हुई तुकबन्दी अच्छी हो या ख़राब, अच्छी ही मालूम होगी—रसिकता तो इसी में है कि दूसरों की अच्छी रचना हमें स्वभावतः अच्छी मालूम हो। परन्तु दूसरों की रचनाओं को देख-सुनकर ख़ुश होनेवाले सहृदय सज्जन दुर्लभ होते हैं। इसी लिए गुसाईं जी कहते हैं—"निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होय अथवा अति फीका॥ जे पर भनित सुनत हरषाहीं। ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं॥"

जो लोग किसी सत्-रचित ग्रन्थ या कविता की क़द्र नहीं जानते वे यदि कुछ समझे बिना यों ही उसकी प्रशंसा करने लगें तो उसके लेखक या कवि को आनन्द तो न होगा—उलटे उसका हृदय फटने लगेगा—"असमझ बार सराहिबो" की तरह "समझ बार को मौन" भी कष्टदायक है। यदि कोई कलाकार या मर्मज्ञ किसी अच्छे

साहित्य को देखकर उसके गुण न बतलावे, द्वेष, उदासीनता या अभिमान से चुप्पी साध ले, तो लेखक या कवि का हृदय फटने लगेगा। जो मर्मज्ञ समय पर किसी रचना के गुण प्रकट करता है और आनन्द प्रदर्शित करता है वह सचमुच दुर्लभ है।

(७) प्राण के रहते तक अपने प्राण और सिद्धान्तों का निर्वाह प्रत्येक परिस्थिति में करनेवाले वीर संसार में कम मिलते हैं। लड़ाई में शत्रु को कभी पीठ दिखाकर न भागनेवाले और पराई स्त्री की ओर जन्म भर कभी कुदृष्टि न करनेवाले वीर सचमुच दुर्लभ हैं। गिरिजापूजन के लिए आई हुई सीता को देखकर राम ने लक्ष्मण से ऐसा ही कहा था—"जिनके लहहिं न रिपु रण पीठी। नहिं लावहिं पर तिय* मन दीठी॥ मंगन लहहिं न जिनके नाहीं। ते नर बर थोरे जग माहीं॥ (बालकाण्ड)" और जो भिखारियों को कभी भी विमुख नहीं फेरते ऐसे उत्तम पुरुष भी संसार में बहुत थोड़े हैं। शत्रु को कभी भी पीठ न न दिखाना, व्यभिचार से—मानसिक व्यभिचार से भी—आजीवन बचे रहना और भिक्षुकों को कभी भी "नाहीं" नहीं कहना साधारण बातें नहीं हैं—इन बातों का निर्वाह करनेवाले पुरुष दुर्लभ ही हैं।

(८) तपस्या ही वह उपाय अथवा साधन है जिसके द्वारा बड़े-बड़े आश्चर्यजनक काम किये जा सकते हैं। विलास-प्रेमी प्राणी कभी तपस्या कर ही नहीं सकता। तपस्या अंत में परम सुखदायक परिणाम तो उत्पन्न करती है, परन्तु आरम्भ में वह बड़ी कष्टदायक मालूम होती है। इससे शरीर का तो पोषण नहीं होता—आत्मा का होता है। तपस्वी का शरीर प्रायः क्षीण परन्तु तेजवान होता है। तप के बल पर ब्रह्मा विश्व की रचना करते, विष्णु सृष्टि की रक्षा करते और शिव संसार का नाश करते हैं। कठिन तपस्या के द्वारा ही पार्वती ने असम्भव काम कर दिखाया

* सुग्रीव राम से कहने लगे—
नारि नयन शर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निशि जो जागा॥
लोभ पाश जेहि गर न बँधाया। सो नर तुम समान रघुराया॥
(किष्किन्धा-काण्ड)

थाग— शंकर के समान दुराराध्य पति प्राप्त कर लिया था। सारा संसार तपस्या के सहारे टिका हुआ है। भारतीय स्वतन्त्रता के आन्दोलन में आज उसी दल का प्रभाव है जिसने कुछ तप किया है। अत्यन्त दुर्लभ पदार्थ, अमर-कीर्ति बड़े-बड़े पद सब तपस्या के बल पर ही मिल सकते और मिलते हैं। इसी लिए कहा गया है कि "जनि आश्चर्य करहु मन माँही। सुत तप ते दुर्लभ कछु नाहीं॥ (बालकांड)" अतएव अविचलित तपस्वी का जीवन बहुत दुर्लभ जीवन है।

(९) मनुष्य-जीवन में ऐसे प्रसंग बार बार नहीं आते जब प्रत्येक परिस्थिति में हमारा हित ही हित हो—जीत में भी जीत हो और हार में भी जीत हो, लाभ में भी लाभ हो और हानि में भी लाभ हो। दोनों हाथों में लड्डू रहना बड़े भाग्य का चिह्न है, परन्तु ऐसा बहुत कम प्रसंगों में संभव होता है। भरत-वन-गमन के समय गुह निषाद को ऐसा ही सौभाग्यपूर्ण अवसर मिला था इसलिए उसने कहा था—

समर मरण पुनि सुरसरि तीरा। रामकाज छनभंगु शरीरा॥
भरत भाइ नृप मैं जन नीचू। बड़े भाग्य असि पाइय मीचू॥

युद्ध में शत्रु से लड़ते-लड़ते वीरगति प्राप्त करना बड़ा दुर्लभ है—इससे स्वर्ग मिलता है (गीता—दूसरा अध्याय ३७ वाँ श्लोक) गंगा जी के किनारे पर मरनेवालों की इस लोक में बड़ी सराहना की जाती है; फिर कटिया में न सड़-कर किसी रामकाज (पुण्य-कार्य अथवा परोपकार) के लिए इस नाशवान् शरीर को कोई बलिदान कर देना चाहे तो फिर क्या पूछना है! ऐसी दुर्लभ मृत्यु संसार में बड़े भाग्य से मिलती है—ऐसा स्वर्णसंयोग दुर्लभ है। इसी लिए निषादराज ने कहा था—"दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे।" 'पार गये तो पार है, अटक गये तो पार'।

(१०) पुत्र, धन, स्त्री, सुन्दर घर और परिवार बड़े मूल्यवान् पदार्थ हैं। इनमें बड़ा आकर्षण है - इनके पाश में सारा संसार बँधा है। परन्तु इनके एक बार नष्ट होने पर प्रयत्न से फिर मिलने की संभावना रहती है। ये बार बार होते और मिटते रहते हैं। सगा भाई एक बार नष्ट हुआ तो फिर नहीं मिल सकता। सगे भाई का बार बार मिल सकना दुर्लभ है। लक्ष्मण-मूर्च्छा के समय विलाप करते हुए राम जी ने यही आशय प्रकट किया था—"सुत वित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥ अस विचारि जिय जागहु ताता। मिलै न जगत सहोदर भ्राता॥ (लंकाकांड)" सगे भाई दो प्रकार के होते हैं—एक तो एक ही माँ-बाप के और दूसरे पैसे के। 'दादा बड़े न भैया। सबसे भला रुपैया।' पैसे के भाई संसार में हमेशा और सभी जगह मिल सकते हैं। रामचन्द्र जी का तात्पर्य यह है कि प्रेमपूर्ण और विश्वसनीय सहोदर भाई का मिलना दुर्लभ है।

(११) संसार में बहुत-सी चीजें दुर्लभ हैं। भक्तशिरो-मणि तुलसीदास जी ने इस विषय पर बड़ा अमूल्य विवे-चन किया है।

उत्तर-काण्ड में पार्वती के महादेव से अपनी जो शंका की थी उससे मालूम होता है कि संसार में किस-किस प्रकार के जीव कितने दुर्लभ हैं। पार्वती कहती हैं—

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ इक होइ धर्मव्रतधारी॥

हज़ार मनुष्यों में धर्मव्रतधारी कोई एकाध बिरला आदमी होता है और—

धर्मशील कोटिक महँ कोई। विषय विमुख विरागरत होई॥

विलास से दूर रहकर सीधा-सादा जीवन व्यतीत करनेवाला और विराग-प्रेमी व्यक्ति तो करोड़ धर्मशील आदमियों में कोई विरला होता है, अर्थात् ऐसा आदमी अरबों में एक-आध निकलता है। 'सौ में सती और लाखों में यती' की कहावत प्रसिद्ध ही है और—

कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई।
सम्यक ज्ञान* सकृत कोउ लहई॥

* मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥
(गीता—अध्याय ७ श्लोक ३)

और

कहहिं संत मुनि वेद पुराना। नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना।
(उत्तरकाण्ड)

वेद का कथन है कि करोड़ों विरक्तों में से यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेवाला कोई विरला एक होता है। और—

ज्ञानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ॥

करोड़ों ज्ञानियों में जीवनमुक्त तो कोई विरला ही होता है। और—

तिन्ह सहस्र महुँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्मलीन विज्ञानी॥

हज़ारों जीवनमुक्तों में सम्पूर्ण आनन्द से परिपूर्ण विज्ञानी और परमात्मा में लीन रहनेवाला पुरुष तो और भी अधिक दुर्लभ है—ऐसा आदमी संसार में बड़ी कठि-नाई और महान् सौभाग्य से ही मिल सकता है।

तात्पर्य यह है कि अरबों-खरबों आदमियों के इस संसार में धर्मशील बहुत थोड़े हैं, धर्म-शीलों में भी विरक्त और विषय-वैराग्यवान् सभी नहीं होते—कोई कोई ही होते हैं, विरक्तों में भी सब यथार्थ ज्ञानी नहीं होते और ज्ञानियों में भी ब्रह्मलीन प्राणी तो बड़े दुर्लभ हैं। "धर्मशील विरक्त अरु ज्ञानी। जीवन्मुक्त ब्रह्म पर प्राणी।" और ईश्वरानु-रागी होना तो इन सबमें भी अत्यन्त दुर्लभ है—"सब ते सो दुर्लभ सुरराया। रामभक्तिरत गत मद माया।" मोह, ममता, वासना आदि का त्याग कर निष्काम भक्ति करनेवाले तो महान् दुर्लभ हैं। देखा आपने, गुसाईं जी ने वेदों का सहारा पकड़कर और गहरी छानबीनकर किस क्रम से पहले दूध, दूध से दही और छाँछ, छाँछ से मक्खन और मक्खन से घी निकाला है। तात्पर्य यह है कि धर्मशीलता दुर्लभ है, उससे अधिक दुर्लभ है विरक्ति, विरक्ति और विषय-विमुखता से भी अधिक दुर्लभ है सम्यक् ज्ञान, ज्ञान से भी अधिक दुर्लभ अवस्था है जीवन्मुक्ति तथा जीवन्मुक्ति से भी अधिक दुर्लभ है ब्रह्मलीनता और ब्रह्मलीनता से भी अधिक दुर्लभ है ईश्वरभक्ति।

गुसाईं जी की रामायण के जो अमूल्य वचन यहाँ दिये गये हैं उनसे क्या सिद्ध होता है? किसी वचन से सिद्ध होता है कि मनुष्य-शरीर दुर्लभ है, किसी से मालूम होता है कि सत्संग अत्यंत दुर्लभ है, किसी चौपाई से पता चलता है कि मनसा-वाचा-कर्मणा आचरण की एकता दुर्लभ है, किसी से मालूम होता है कि खरी और कल्याण-कारी बातें कहने-सुननेवाले दुर्लभ हैं, किसी से मालूम

होता है कि
आशय है कि
से मालूम हो
किसी विवेचन
विमुखता, नि
भक्ति दुर्लभ
शरीर ही न र
अच्छा आचर
न रहे तब स
धर्मशीलता,
साधन किसे
में जो कहा ग
भावना सभी
निरन्तर ध्यान
से कहते हैं —
नर तनु सम न
नरक स्वर्ग अ

यह अमूल
इसके द्वारा प
साधन इच्छानु
दुर्लभ है? क
शरीर मूल्यवा
रही है? नहीं
जाग्रत और चै
आजीवन शुद्ध
ऐसा न कर
जी कहते हैं—
महापुरुषों का
मिलते हैं जब
शरीर ही न हो
सत्संग कौन करे
लिए यह अत्यन्त

* दुर्लभं त्र
मनुष्यत्वं मु

था—शंकर के समान दुराराध्य पति प्राप्त कर लिया था। सारा संसार तपस्या के सहारे टिका हुआ है। भारतीय स्वतन्त्रता के आन्दोलन में आज उसी दल का प्रभाव है जिसने कुछ तप किया है। अत्यन्त दुर्लभ पदार्थ, अमर-कीर्ति बड़े-बड़े पद सब तपस्या के बल पर ही मिल सकते और मिलते हैं। इसी लिए कहा गया है कि "जनि आश्चर्य करहु मन माँही। सुत तप ते दुर्लभ कछु नाहीं॥ (बालकांड)" अतएव अविचलित तपस्वी का जीवन बहुत दुर्लभ जीवन है।

(९) मनुष्य-जीवन में ऐसे प्रसंग बार बार नहीं आते जब प्रत्येक परिस्थिति में हमारा हित ही हित हो—जीत में भी जीत हो और हार में भी जीत हो, लाभ में भी लाभ हो और हानि में भी लाभ हो। दोनों हाथों में लड्डू रहना बड़े भाग्य का चिह्न है, परन्तु ऐसा बहुत कम प्रसंगों में संभव होता है। भरत-वन-गमन के समय गुह निषाद को ऐसा ही सौभाग्यपूर्ण अवसर मिला था इसलिए उसने कहा था—

समर मरण पुनि सुरसरि तीरा। रामकाज छनभंगु शरीरा॥
भरत भाइ नृप मैं जन नीचू। बड़े भाग्य अस पाइय मीचू॥

युद्ध में शत्रु से लड़ते-लड़ते वीरगति प्राप्त करना बड़ा दुर्लभ है—इससे स्वर्ग मिलता है (गीता—दूसरा अध्याय ३७ वाँ श्लोक) गंगा जी के किनारे पर मरनेवालों की इस लोक में बड़ी सराहना की जाती है; फिर खटिया में न सड़-कर किसी रामकाज (पुण्य-कार्य अथवा परोपकार) के लिए इस नाशवान् शरीर को कोई बलिदान कर देना चाहे तो फिर क्या पूछना है! ऐसी दुर्लभ मृत्यु संसार में बड़े भाग्य से मिलती है—ऐसा स्वर्णसंयोग दुर्लभ है। इसी लिए निषादराज ने कहा था—"दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे।" 'पार गये तो पार है, अटक गये तो पार'।

(१०) पुत्र, धन, स्त्री, सुन्दर घर और परिवार बड़े मूल्यवान् पदार्थ हैं। इनमें बड़ा आकर्षण है - इनके पाश में सारा संसार बँधा है। परन्तु इनके एक बार नष्ट होने पर प्रयत्न से फिर मिलने की संभावना रहती है। ये बार बार होते और मिटते रहते हैं। सगा भाई एक बार नष्ट हुआ तो फिर नहीं मिल सकता। सगे भाई का बार बार मिल सकना दुर्लभ है। लक्ष्मण-मूर्च्छा के समय विलाप करते हुए राम जी ने यही आशय प्रकट किया था—"सुत वित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥ अस बिचारि जिय जागहु ताता। मिलै न जगत सहोदर भ्राता॥ (लंकाकांड)" सगे भाई दो प्रकार के होते हैं—एक तो एक ही माँ-बाप के और दूसरे पैसे के। 'दादा भले न भैया। सबसे भला रुपैया।' पैसे के भाई संसार में हमेशा और सभी जगह मिल सकते हैं। रामचन्द्र जी का तात्पर्य यह है कि प्रेमपूर्ण और विश्वसनीय सहोदर भाई का मिलना दुर्लभ है।

(११) संसार में बहुत-सी चीज़ें दुर्लभ हैं। भक्तशिरो-मणि तुलसीदास जी ने इस विषय पर बड़ा अमूल्य विवे-चन किया है।

उत्तर-काण्ड में पार्वती ने महादेव से अपनी जो शंका की थी उससे मालूम होता है कि संसार में किस-किस प्रकार के जीव कितने दुर्लभ हैं। पार्वती कहती हैं—

नर सहस्र मँह सुनहु पुरारी। कोउ इक होइ धर्मव्रतधारी॥

हज़ार मनुष्यों में धर्मव्रतधारी कोई एकाध विरला आदमी होता है और—

धर्मशील कोटिक महँ कोई। विषय विमुख विरागरत होई॥

विलास से दूर रहकर सीधा-सादा जीवन व्यतीत करनेवाला और विराग-प्रेमी व्यक्ति तो करोड़ धर्मशील आदमियों में कोई विरला होता है, अर्थात् ऐसा आदमी अरबों में एक-आध निकलता है। 'सौ में सती और लाखों में यती' की कहावत प्रसिद्ध ही है और—

कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई।
सम्यक ज्ञान* सकृत कोउ लहई॥

वेद का कथन है कि करोड़ों विरक्तों में से यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेवाला कोई विरला एक होता है। और—

ज्ञानवंत कोटिक मँह कोऊ। जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ॥

करोड़ों ज्ञानियों में जीवनमुक्त तो कोई विरला ही होता है। और—

तिन सहस्र महँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्मलीन विज्ञानी॥

हज़ारों जीवनमुक्तों में सम्पूर्ण आनन्द से परिपूर्ण विज्ञानी और परमात्मा में लीन रहनेवाला पुरुष तो और भी अधिक दुर्लभ है—ऐसा आदमी संसार में बड़ी कठि-नाई और महान् सौभाग्य से ही मिल सकता है।

तात्पर्य यह है कि अरबों-खरबों आदमियों के इस संसार में धर्मशील बहुत थोड़े हैं, धर्म-शीलों में भी विरक्त और विषय-वैमनस्यपरायी सभी नहीं होते—कोई कोई ही होते हैं, विरक्तों में भी सब यथार्थ ज्ञानी नहीं होते और ज्ञानियों में भी ब्रह्मलीन प्राणी तो बड़े दुर्लभ हैं। "धर्मशील विरक्त अरु ज्ञानी। जीवन्मुक्त ब्रह्म पर प्रानी।" और ईश्वरानु-रागी होना जो इन सबमें भी अत्यन्त दुर्लभ है—"सब ते सो दुर्लभ सुरराया। रामभक्तिरत गत मद माया।" मोह, ममता, वासना आदि का त्याग कर निष्काम भक्ति करनेवाले तो महान् दुर्लभ हैं। देखा आपने, गुसाईं जी ने वेदों का सहारा पकड़कर और गहरी छानबीनकर किस क्रम से पहले दूध, दूध से दही और छाँछ, छाँछ से मक्खन और मक्खन से घी निकाला है। तात्पर्य यह है कि धर्मशीलता दुर्लभ है, उससे अधिक दुर्लभ है विरक्ति, विरक्ति और विषय-विमुखता से भी अधिक दुर्लभ है सम्यक् ज्ञान, ज्ञान से भी अधिक दुर्लभ अवस्था है जीवनमुक्ति तथा जीवन्मुक्ति से भी अधिक दुर्लभ है ब्रह्मलीनता और ब्रह्मलीनता से भी अधिक दुर्लभ है ईश्वरभक्ति।

गुसाईं जी की रामायण के जो अमूल्य वचन यहाँ दिये गये हैं उनसे क्या सिद्ध होता है? किसी वचन से सिद्ध होता है कि मनुष्य-शरीर दुर्लभ है, किसी से मालूम होता है कि सत्संग अत्यंत दुर्लभ है, किसी चौपाई से पता चलता है कि मनसा-वाचा-कर्मणा आचरण की एकता दुर्लभ है, किसी से मालूम होता है कि खरी और कल्याण-कारी बातें कहने-सुननेवाले दुर्लभ हैं, किसी से मालूम होता है कि अटल तपस्या दुर्लभ है, किसी वचन का आशय है कि श्रेष्ठ मृत्यु का स्वर्ण संयोग दुर्लभ है, किसी से मालूम होता है कि तपस्विता-पूर्ण जीवन दुर्लभ है और किसी विवेचन से पता चलता है कि धर्मशीलता, विषय-विमुखता, निर्मल ज्ञान, जीवनमुक्ति, ब्रह्मलीनता, और भक्ति दुर्लभ और मूल्यवान् हैं। परन्तु जब यह मनुष्य-शरीर ही न रहे तब सत्संग कैसे मिले, जब शरीर न हो तब अच्छा आचरण किसके द्वारा किया जाय, जब शरीर ही न रहे तब सद्गुणी पुत्र कैसे मिले, शरीर के अभाव में धर्मशीलता, तपस्या, विरक्ति, ज्ञान और भक्ति के लिए साधन किसे बनाया जाय? इसलिए उत्तरकाण्ड के अन्त में जो कहा गया है कि मनुष्य-शरीर-रूपी दुर्लभ पदार्थ की भावना सभी करते हैं, वह हमारी तुच्छ बुद्धि के अनुसार निरन्तर ध्यान में रखने योग्य है। कागभुशुंडि जी गरुड़ से कहते हैं—

नर तनु सम नहिं कवनेउ देही। जीव चराचर याचत जेही॥
नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ज्ञान विराग भक्ति सुख देनी।

यह अमूल्य शरीर स्वर्ग और अपवर्ग की सीढ़ी है—इसके द्वारा परम सुखदायक ज्ञान, विराग और भक्ति का साधन इच्छानुसार किया जा सकता है। परन्तु कैसा शरीर दुर्लभ है? क्या जड़ शरीर? क्या नरक दिलानेवाला शरीर मूल्यवान् है? क्या इसी की इतनी प्रशंसा की जा रही है? नहीं, दुर्लभ है पुरुषार्थी शरीर, जिसकी आत्मा जाग्रत और चैतन्य हो, जो अपने भीतरी शत्रुओं से आजीवन युद्ध करता रहे और जो मूर्ख की तरह काँच का सौदा न कर मणि का सौदा करे। श्रीमान् शङ्कराचार्य जी कहते हैं—"मनुष्य-जन्म, मोक्ष की इच्छा और महापुरुषों का सत्संग, ये तीनों दुर्लभ हैं—ये तभी मिलते हैं जब ईश्वर की कृपा* हो।" जब मनुष्य-शरीर ही न हो तब मुमुक्षु कौन बने और सज्जनों का सत्संग कौन करे? मूल कारण तो यह शरीर ही है। इसी लिए यह अत्यन्त दुर्लभ बतलाया गया है। परन्तु हम

---

* मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥
(गीता—अध्याय ७ श्लोक ३)

और

कहहिं संत मुनि वेद पुराना। नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना।
(उत्तरकाण्ड)

* दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रहहेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः॥

इसका कैसा उपयोग करते हैं? इसका कैसा उपयोग होना चाहिए? हमारी प्रकृति, प्रवृत्ति, परिस्थिति और शक्ति के अनुसार इसका क्या उपयोग किया जा सकता है? क्या प्रत्येक विचारवान् पाठक को इन प्रश्नों पर तुरन्त विचार नहीं करना चाहिए?

(१२) इस लेख के प्रारम्भ में कह आये हैं कि "सकल पदारथ हैं जगमाहीं। कर्महीन नर पावत नाहीं॥" उसी सिलसिले में वह भी कहा गया है कि कुछ स्थायी और मूल्यवान् पदार्थ ऐसे भी हैं जो सचमुच दुर्लभ हैं—जो सत्कर्मशील और पुरुषार्थी व्यक्तियों को भी शीघ्र नहीं मिल सकते। तब ऐसा भाग्यवान् आदमी कौन है जो इन तथा ऐसी सब दुर्लभ चीज़ों को प्राप्त करना चाहे तो अवश्य प्राप्त कर ले? इस प्रश्न का उत्तर गुसाईं जी ही देते हैं—"परहित बस जिनके मन माहीं। तिनकहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥ इस लेख में जितने दुर्लभ पदार्थ बतलाये गये हैं और जो नहीं बतलाये गये हैं वे भी परोपकारी और पुरुषार्थी प्राणी को (यदि वह प्राप्त करना चाहे तो) अवश्य मिल सकते हैं। परहित के सिक्कों से—नक़ली नहीं, असली सिक्कों से—आप संसार में किसी भी अत्यन्त दुर्लभ पदार्थ को ज़रूर खरीद सकते हैं।

विचार करने की बात है कि महात्मा तुलसीदास जी ने जिन पदार्थों को दुर्लभ बतलाया है वे यथार्थ में दुर्लभ हैं या नहीं।

अमौलिक

लेखक, श्रीयुत कपिलदेव नारायणसिंह 'सुहृद'

कोकिल की मधु काकिल से
पाता मैं गायन का स्वर;
नित कुसुम-कुलों से मिलती
मुसकान मुझे नव सुन्दर।

वासन्ती मधु कानन से
मलयानिल बहता आता;
मुझ भाग्यवान पर निशि-दिन
स्वर्गीय सुधा बरसाता।

मुझ देवलोकनायक की
मुसकान भरी उडुगण में;
मेरी सुकीर्ति छाई है
सुरतरु के भव्य सुमन में।

रत्नों की भेंट चढ़ाता
चरणों पर धड़ रत्नाकर;
मेरा शृंगार सजाता
राकापति भेज मयुख कर।

कंचन-पट के घूँघट में
हँस संध्या मुझे बुलाती;
बालार्क तिलक देने को
आती ऊषा सहसाती।

कुत्सित जग की धारा में
कविता की नाव बहाते;
लहरों पर मैं बहता हूँ
स्वर्गिक संगीत सुनाते।

मैं तिलक प्राच्य-नभ का हूँ
मैं उषा-देश की छवि हूँ;
मैं प्रकृति-परी का पागल
सुकुमार सलोना कवि हूँ॥



कोकिल!

हिन्दी कविता के वर्तमान स्वरूप का श्रेय अधिकतर श्रीयुत सुमित्रानन्दन पन्त को है। अब उन्होंने एक नई दिशा की ओर क़दम बढ़ाया है जो पहले से भी अधिक क्रान्तिकारी और सुन्दर है। आशा है इस रूप में पन्त जी का और अधिक स्वागत होगा।



(१)
गा, कोकिल! बरसा पावक-कण!
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण-पुरातन,
ध्वंस-भ्रंश जग के जड़-बन्धन;
पावक-पग धर आवे नूतन,
हो पल्लवित नवल मानवपन!

(२)
गा, कोकिल, भर स्वर में कम्पन!
झरें जाति-कुल-वर्ण-पर्ण घन,
अन्धनीड़-से रूढ़ि-रीति छन;
व्यक्ति-राष्ट्र-गत राग-द्वेष, रण
झरें, मरें विस्मृति में तत्क्षण!

(३)
गा, कोकिल, गा, कर मत चिन्तन!
नवल रुधिर से भर पल्लव-तन,
नवल स्नेह-सौरभ से यौवन;
कर मञ्जरित नव्य जग-जीवन,
गूँज उठें, पी-पी नव मधु, जन!

(४)
गा, कोकिल, नव गान कर सृजन!
रच मानव के हित नूतन मन,
वाणी, वेश, भाव नव-शोभन;
स्नेह, सुहृदता हों मानस-धन,
सीखें जन नव जीवन-यापन!

लेखक
श्रीयुत सुमित्रानन्दन पन्त

(५)
गा, कोकिल, सन्देश सनातन!
मानव दिव्य स्फुलिङ्ग चिरन्तन,
वह न देह का नश्वर रज-कण;
देश-काल हैं उसे न बन्धन,
मानव का परिचय मानवपन!
गा, कोकिल, मुकुलित हों दिशि-क्षण!

इटली और अबीसीनिया

लेखक, श्रीयुत नगेन्द्रनाथ गुप्त

इटली सभ्य है क्योंकि वह आसमान पर से बम बरसा सकता है। अबीसीनिया असभ्य है क्योंकि अभी वह सिर्फ़ बरछा और तलवार से लड़ सकता है। इटली के पास सब प्रकार के साधन हैं। अबीसीनिया के पास केवल साहस। परीक्षा का अवसर आने पर दोनों कहाँ तक जा सकते हैं यही बात श्रीयुत नगेन्द्रनाथ गुप्त ने इस लेख में बड़े सुन्दर ढङ्ग से बताई है।

१९

१४-१८ के विश्व-व्यापी महायुद्ध को हुए अभी १८ वर्ष भी नहीं हुए कि संसार की शान्ति को भङ्ग करने के लिए एक दूसरा युद्ध आ पहुँचना चाहता है। कुछ महीने पूर्व जर्मनी के साथ एक नया युद्ध अनिवार्य्य प्रतीत हो रहा था और युद्ध के बादल उमड़ रहे थे। इँग्लेंड, फ्रांस और इटली जर्मनी को भला-बुरा कह रहे थे। पर यह प्रसन्नता की बात है कि हर हिटलर की बुद्धिमानी और दृढ़ता और ब्रिटेन की सद्भावना के कारण यह अवसर टल गया। परन्तु अब जान पड़ता है, इटली अबीसीनिया के विरुद्ध बिना युद्ध की घोषणा किये न रहेगा और इसी भय से युद्ध की खुल्लम-खुल्ला तैयारियाँ भी हो रही हैं। 'लीग आफ़ नेशन्स' की स्थापना स्पष्टतया इस उद्देश से हुई थी कि संसार से युद्ध का अन्त हो जाय और जो बात युद्ध-द्वारा तय करने की है वह पंचायत-द्वारा तय की जाय। इटली लीग के ख़ास सदस्यों में से एक है। अबीसीनिया भी लीग का सदस्य है, तो भी इटली उस पर आक्रमण करने का दुराग्रह कर रहा है। लीग की कौंसिल इस प्रयत्न में है कि यह वैर-भाव स्थायी रूप न धारण करे और इसी उद्देश से उसकी कई बैठकें भी हो चुकी हैं। ब्रिटेन विशेष रूप से अपनी शक्ति भर यह प्रयत्न कर रहा है कि युद्ध न हो। परन्तु यदि इटली अबीसीनिया पर बिना आक्रमण किये न मानेगा तो योरप की कोई शक्ति या शक्तियाँ उसके मार्ग में बाधा भी उपस्थित करने न जायँगी। अभी तक तो लीग में यह साहस नहीं आया कि वह इटली को युद्ध की तय्यारी करने से रुकने के लिए कहे।

सच पूछिए तो इटली को अबीसीनिया से कोई वास्तविक शिकायत नहीं है। उसका हाल कहानी के उस भेड़िए का-सा है जो कोई न कोई बहाना ढूँढ़ कर भेड़ के बच्चे को खाना चाहता था। वह 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की कहावत को चरितार्थ करना चाहता है। सिगनोर मुसोलिनी रोम के प्राचीन गौरव का स्वप्न देख रहे हैं और सीज़रों की महत्त्वाकांक्षा को प्राप्त करना चाहते हैं। इस उद्देश की पूर्ति के लिए एक साम्राज्य का होना आवश्यक है। योरप के प्रायः सभी देशों का दूसरे महाद्वीपों में कुछ न कुछ भू-भाग है। केवल इटली ही एक ऐसा देश है जिसके अधिकार में योरप के बाहर बहुत कम प्रदेश हैं। विदेश में उनका अधिकार अफ़्रीका के पूर्वी किनारे पर सिर्फ़ इरीट्रिया और इटालियन सोमालीलैंड में है। ये मरुप्रदेश हैं और इटली को इनसे कुछ अर्थ-लाभ नहीं होता। बहुत समय से उसकी निगाह अबीसीनिया के 'हिंटरलैंड' पर थी और अब वह अपने स्वप्न को चरितार्थ करने पर उद्यत है।

इटली और प्राचीन रोम का इतिहास सबको विदित है। परन्तु अबीसीनिया का ज्ञान संसार को उतना नहीं है। यह युथोपिया का अन्तिम साम्राज्य और शेबा की रानी का राज्य है। शेबा का ज़िक्र बाइबिल में दो बार आया है। कहा गया है कि रानी ने जब सुलेमान की प्रसिद्धि सुनी तब वह उससे



[अबीसीनिया के सम्राट् हेल सिलासी]



[अबीसीनिया की सम्राज्ञी]

जेरुसलम में भेंट करने को आई। वह बहुत बड़े लाव-लश्कर के साथ आई थी और अपने साथ ऊँटों पर मसाले, सोना-चाँदी और जवाहरात लाद कर लाई थी। यह सब उसने इसराइल के महान् और बुद्धिमान् राजा को उपहार-स्वरूप भेंट किया। यह किंवदन्ती है कि दोनों में प्रेम हो गया था। एक योरपीय अन्वेषक का यह दावा है कि उसने उन गुफ़ाओं का पता लगा लिया है जिनसे शेबा को वह अपार धन मिला था। अबीसीनिया का वर्तमान सम्राट् हेल सिलासी जो सर्व-साधारण में रास तफ़ारी के नाम से प्रसिद्ध है, अपने को रानी शेबा का वंशज बताता है। वह अत्यन्त सुन्दर युवा पुरुष है। क़द में वह छोटा है, परन्तु उसका व्यक्तित्व मर्य्यादापूर्ण है और वह सादी पर आकर्षक पोशाक धारण करता है। वह सुशिक्षित है, धारा-प्रवाह अँगरेज़ी बोलता है और योरप की अन्य भाषायें भी जानता है। वह कठिन परिश्रम करता है, सबसे मिलता-जुलता है और अत्यन्त बुद्धिमान् तथा योग्य व्यक्ति है। वह काला नेपोलियन के नाम से प्रसिद्ध है।

ब्रिटेन की सद्भावना से इटली का १८८२ ईसवी में अफ़्रीका-महाद्वीप में प्रवेश हुआ। असाब की खाड़ी में लाल सागर के किनारे पर उसे कुछ प्रदेश मिला। इस सिलसिले में उसे दक्षिण की ओर बाबुलमंदेब तक और बढ़ने की इजाज़त मिली। १८८५ में उसने मसोवा पर अधिकार किया। दो वर्ष बाद उसने हिंद-महासागर के तटवर्ती एक पट्टी पर अपना आधिपत्य स्थापित किया और उसका नाम इटालियन सोमालीलैंड रक्खा। पर ये सब बड़े उजाड़ देश हैं, इसलिए गत चालीस वर्षों से इटली अबीसीनिया पर दाँत गड़ाये बैठा है। कहा जाता है कि अबीसीनिया में खनिज पदार्थों का बाहुल्य है और अन्य उपजों की भी कमी नहीं है। परन्तु इस बात को कोई निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता, क्योंकि युथोपिया में कभी किसी योरपीय को किसी प्रकार की रियायत नहीं मिली। १८८९ ईसवी में इटली



[मुसोलिनी]

और अबीसीनिया के तत्कालीन सम्राट् मेनलिक में एक सन्धि हुई। इटली ने अबीसीनिया में अपनी एक सेना घुमाकर उसके ऊपर अपना संरक्षण स्थापित करके इस सन्धि का उत्सव मनाया। अडोवा में अबीसीनिया की जङ्गली जातियों ने क़रीब क़रीब इटालियन सेना का सफ़ाया ही कर दिया था। यहाँ तक कि इटली की उस पराजय की कथा कहनेवाले भी बहुत कम बचे। इटली को उस हार की अब भी याद बनी है और इसी लिए आज इटली में 'अडोवा का बदला लो' की पुकार मची है। सम्राट् रास तफ़ारी को बहुत पहले से अपने देश के पड़ोस में योरपीय उपनिवेश स्थापित होने का भय था। अबीसीनिया 'बफ़र स्टेट' है, परन्तु इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि अफ़ग़ानिस्तान। १८८५ ईसवी में ब्रिटेन रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करनेवाला था, क्योंकि रूसी सेना ने पंजदेह में अफ़ग़ान सैनिकों पर गोली दागी थी और पार्लियामेंट ने इसके पक्ष में ही अपना मत दिया था। परन्तु अबीसीनिया की सहायता को योरप की कोई शक्ति नहीं दौड़ेगी। उसके पास एक लाख लड़ाकू पुरुष हैं। ये उन रिफ़ों से बहुत अधिक वीर समझे जाते हैं जिन्होंने पश्चिमी अफ़्रीका में फ़्रांसीसियों को बहुत तंग किया था। अडोवा में बम बरसानेवाले हवाई जहाज न थे, दूर तक मार करनेवाली तोपें भी न थीं और यद्यपि इटलीवालों के पास राइफ़लें और बन्दूक़ें थीं, तथापि उन्हें अबीसीनियनों ने दबा लिया था। इटली में युद्ध की जो पुकार मची हुई है वह इसलिए नहीं कि वह शारीरिक शक्ति में अबीसीनिया से बढ़कर है, बल्कि इसलिए कि उसके पास युद्ध के अस्त्र-शस्त्र अच्छे हैं। यदि आदमी आदमी की लड़ाई हो तो इटली अबीसीनिया के मुक़ाबिले में नहीं ठहर सकता। योरप के राष्ट्र उन शत्रुओं पर आस्मान से बम बरसाने में भी वीरता समझते हैं जिनके पास ये साधन नहीं हैं। अबीसीनिया के सम्राट् ने बेलजियम से सैनिक शिक्षक बुलाये हैं। उनके पास कुछ टैंक और तोपें हैं, परन्तु राइफ़लें काफ़ी नहीं हैं और गोला-बारूद भी कम ही है। अब बाहर से अस्त्र-शस्त्र आने का प्रत्येक मार्ग भी बन्द हो गया है। रास तफ़ारी ने अपने निश्चय की घोषणा की है कि वह सफ़ेद घोड़े पर सवार होकर अपनी सेना का संचालन स्वयं करेगा और आगे आगे रहेगा जैसा कि प्राचीन काल में होता था। इसमें संदेह है कि यह ढङ्ग कहाँ तक उचित होगा, क्योंकि यदि वह युद्ध-भूमि में मारा गया तो अबीसीनिया का मुर्चा उखड़ जायगा।

अबीसीनिया पर्वतीय प्रदेश है। उसकी राजधानी आदिसअबाबा ८००० फ़ुट की ऊँचाई पर है। उसका जलवायु शीतल और नम है। अधिकांश महत्त्वपूर्ण राज्यों के प्रतिनिधि वहाँ हैं। अमरीका ने अपने राजदूत को वहाँ से हटाने से इनकार कर दिया है और यदि इटली के हवाई जहाज उस पर बम गिरावेंगे तो इसकी जिम्मेदारी उसी पर होगी। परन्तु राजधानी चार घंटे में खाली की जा सकती है, क्योंकि घर सब मिट्टी के बने हैं और छतें लोहे की हैं। आस-पास गुफाओं का बाहुल्य है, जिनमें प्राण-रक्षा की यथेष्ट सुविधा है। इस तरह इटली को हवाई लड़ाई से बहुत लाभ न होगा। भूमि पर भी उसे दूर से मार करनेवाली तोपों और राइफ़लों पर अवलम्बित होना पड़ेगा। क़रीब की मार में भयंकर अबीसीनियों से उसको पार पाना मुश्किल है। ख़ैर, इटली को अपनी उत्तम युद्ध-सामग्री का भरोसा है और उसका यह भरोसा सकारण है।

अबीसीनिया में मैन्चेस्टर का बहुत बड़ा व्यापार होता है और यही हाल जापान का भी है। जापान की उत्तेजना और इँग्लेंड की शान्ति स्थापन की चेष्टा का यही रहस्य है। युद्ध के समय में सब प्रकार के व्यापार बन्द हो जायँगे, इससे इँग्लेंड और जापान की हानि होगी। यदि इटली वास्तव में युद्ध की घोषणा करता है तो इतिहास में अत्याचार का यह अत्यन्त भयानक उदाहरण होगा।

अभिलाषा

लेखक, श्रीयुत रुस्तम सैटिन

मानव-हिय की दुर्बलता,
यह अस्फुट-सी अभिलाषा।
इससे ही विकसित होती,
यह मृगतृष्णा-सी आशा॥

यह अभाव के पलनों की,
पोषित अभिलाषा मेरी।
जग के इस स्वार्थ-सदन में,
अब सुनती आशा लोरी॥

अभिलाषा, आशा, उलझन,
जीवन को उलझा देते।
इस निर्बल-से मानस को,
पथ-विचलित-सा कर देते॥

सुख घड़ियों की अभिलाषा,
है अपूर्णता जीवन की।
यह अस्फुट मानव-भाषा,
है दुर्बलता इस मन की॥

अभिलाषा चिन्ता अभिनव,
ये ही बस जग में होता।
जब बीहड़ कौतुक वन में,
यह लोभी मानव खोता॥

अभिलाषा तिमिर उदधि में,
साथ की नैया लेकर।
आलोक-नगर जाऊँगा,
जुगनू की आभा लेकर॥

निशा-प्रेमी जीव-जन्तु

लेखक, श्रीयुत वनमालीप्रसाद शुक्ल

भगवान् भास्कर अस्ताचल के उत्तुङ्ग शिखर पर आरूढ़ हो कर अपनी रक्तिमामय आलोक की अपूर्व छटा जैसा कि अपने आविर्भाव के समय पूर्व में प्रदर्शित कर चुके थे, अपने प्रिय दिवाचर प्राणियों को दिखाकर मुग्ध कर रहे थे कि सहसा उन पर रजनी का आक्रमण हुआ। वे काँप उठे। उनके पैर उखड़ गये और पर्वत के उत्तुङ्ग शृङ्ग से लुढ़ककर महोदधि में जा डूबे। उनका पराभव देखकर दिवाचर प्राणियों के छक्के छूट गये। सेना-नायक का निधन हो जाने से जो दशा सैनिकों की होती है वही उनकी भी हुई। वे जीवन-संग्राम के क्षेत्र से कोहराम मचाते हुए भाग निकले और अपने अपने घरों में जा छिपे। इस पराजय से उनकी बड़ी क्षति हुई। बेचारों की उत्साह-शक्ति खो गई, साहस लुट गया, आँखों की ज्योति मन्द पड़ गई, सर्वाङ्ग में श्रान्त आ विराजा। सब ओर उन्हें भय ही भय दिखने लगा। यदि इस कुअवसर पर निद्रादेवी का सहारा न होता तो भय और भ्रान्ति से त्राण पाना उन्हें कठिन हो जाता।

इस दिग्विजय से रजनी का प्रभुत्व और वैभव-जनित अहंमन्यता की गम्भीर छाया गोलार्द्ध भर में व्याप्त हो गई। दिवाकर के उत्ताप-पूर्ण शासन से त्रसित रजनीचरों को इस परिवर्तन से बड़ा सन्तोष हुआ। इतना ही नहीं, जब उन्होंने मयङ्कमुकुट और नक्षत्रहार से विभूषित रजनी महारानी को प्रत्यक्ष देखा तब हर्ष की अधिकता से गद्गद होकर स्वागत-गान गाया। कुमुदिनी तथा उसकी सहेलियाँ आनन्द से फूल उठीं। रजनी-गन्धा अपनी सहचरियों के सहित दसों दिशाओं को सुरभित करने लगीं। उनकी अमृतमयी सौरभ की धारा में असंख्य कीट-पतङ्ग प्रवाहित होकर अलौकिक आनन्द का उपभोग करने लगे जैसा कि दिवाचर कीट-पतङ्गों को नहीं नसीब होता। रजनी ने अपने साम्राज्य की कोटि कोटि प्रजा की ओर वात्सल्य-पूर्ण दृष्टि से देखते हुए प्रकृति से कहा—मा, कवियों का कथन है कि रजनी के राजत्वकाल में संसार में सन्नाटा छाया रहता है और इने-गिने पशु-पक्षी तथा फूलों के सिवा उसे कोई नहीं चाहता, कितना भ्रमात्मक है। यदि वैज्ञानिकों की तरह आँख खोलकर देखने की उनमें क्षमता होती तो वे निस्सन्देह देख सकते कि दिवाचर की अपेक्षा मेरी प्रजा का समूह कितना विशाल, भयङ्कर, साहसी और शक्ति-सम्पन्न है। इसे सुनकर प्रकृति मुसकुराई और बोली—सभी समयों में देवताओं से निशिचर संख्या में अधिक, डील-डौल में विशाल और पराक्रम में प्रबल रहे हैं। अतः दिवाचरों से निशिचरों में विशेषता का होना स्वाभाविक है। ऐसा क्यों होता है, इसका रहस्य मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। मनुष्य केवल इतना ही समझ सकता है कि प्रकृति शान्तिप्रिय नहीं है। वह संसार भर को एक साथ निद्रा में तल्लीन नहीं होने देती। रजनी, उसका इतना समझना भी कुछ कम नहीं है।

वास्तव में बहुत-से छोटे-बड़े जीव-जन्तु, कीड़े-मकोड़े और फूल रात्रि के समय ही जीवन-संग्राम में प्रविष्ट होते हैं। स्थलचारी जानवरों में हाथी सबसे बड़ा होता है। वह स्वतन्त्र अवस्था में रात्रि के समय ही जीवनोद्योग में लगता है। हाँ, बदली के कारण जब कभी दिन में अँधेरा हो जाता है तब वह दिन में भी भोजन की तलाश में निकल पड़ता है। परन्तु यह निश्चित बात है कि सभी ऋतुओं में वह

धूप से बचता और सूर्यास्त के अनन्तर ही अपने कार्य-क्षेत्र में आता है। वहाँ वह सूर्यास्त से लेकर अर्धरात्रि तक उदर-भरण के कार्य में व्यस्त रहता है। और फिर वहीं घंटे दो घंटे विश्राम करके अंधकार के अंत होने के पूर्व अपने निवासालय में दाखिल हो जाता है। भरतखण्ड, लंका, अफ्रीका आदि स्थानों में जहाँ हाथी पाये जाते हैं, हाथी के सम्बन्ध में यही बात देखने में आती है। इस धूर्त प्राणी को यह बात ज्ञात है कि जिनकी उपजाई हुई स्वादिष्ट फसलों से वह अपना जीवन-निर्वाह करता है उनसे रात्रि में सामना करने की उसे आवश्यकता नहीं पड़ती।

रजनीचरों की नामावली में डील और शक्ति के विचार से हाथी के बाद अरने भैंसे का नाम आता है। हाथी के समान वह भी रात्रि के समय उदर-भरण के उद्योग में तल्लीन होता है। पर एक शिकारी महाशय का कथन है कि व्याघ्र के भय से उसके स्वभाव में परिवर्तन आरम्भ हो गया है और वह अब अधिकतर दिन में ही काम करता नजर आता है। उनके कथन में कहाँ तक सत्यता है, यह प्राणिशास्त्री ही बता सकेंगे; परन्तु इतनी बात अवश्य है कि पशुओं के स्वभाव-परिवर्तन की बात आसानी से समझाई और मानी नहीं जा सकती। जंगली पशुओं में हाथी और भैंसे ही बाघ के दाँत खट्टे करने का हौसला रखते हैं। अतः उसके भय से वे अपना स्वभाव बदल देंगे, यह असम्भव प्रतीत होता है।

पशु-जाति के राजा सिंह और व्याघ्र तथा उनके दूर के सम्बन्धी चीता, तेंदुआ, लकड़बग्घा आदि भी पूरे निशाचर हैं। इनमें से सिंह अर्धरात्रि के समय शिकार की टोह में निकलता है और महाप्रसाद के लोभ-वश मार्ग-प्रदर्शन का कार्य करनेवाले सियार तथा लकड़बग्घा का अनुगामी होकर तृणभक्षी पशुओं से सङ्कुल किसी जलाशय या सरोवर के तट पर जा पहुँचता है। उस समय जब वह मेघ-तुल्य गम्भीर गर्जन से वन-प्रान्त को कम्पित करता

> रजनी के राजत्व काल में संसार में सन्नाटा छाया रहता है और इने-गिने पशु-पक्षियों के सिवा उसे कोई नहीं चाहता, यह कथन कितना भ्रमात्मक है यही लेखक महोदय ने इस लेख में सिद्ध किया है और दिखाया है कि इस संसार में निशा के प्रेमियों की भी संख्या कम नहीं है।

हुआ वनदेवी को भोजन के लिए आदेश देता है तब हिरण, बारहसिंघा, जेबरा आदि अनेक प्रकार के शाकभोजी प्राणियों को आँधी की गति में दौड़ की ताल से उसके गर्जन का जवाब देते हुए भागते देखकर दर्शक आश्चर्य में लीन हो जाता है। आश्चर्य उसे इस बात का होता है कि दिवाचर प्राणियों की सभी त्रुटियों से मुक्त होते हुए भी अपने जीवन को वृथा सङ्कट में डालने के लिए रजनीचर क्यों बन गये हैं? यदि उन पशुओं में बोलने की शक्ति होती तो दर्शक का समाधान करने के लिए वे इतना जरूर कहते कि रजनी से उन्हें अनुराग है और रात्रि के क्षणिक सङ्कट से त्राण पाने के लिए उनके पाँव काफी मजबूत हैं। अतः दिनेश के तापदायक छत्र के नीचे जाकर तथा दिवाचरों का सहज में शिकार बनकर वे अपने को अधिक खतरे में क्यों डालने लगे।

व्याघ्र, चीता, और तेंदुआ दिन डूबने पर बाहर निकलते हैं। व्याघ्र तो पुलिस के सिपाही के समान रात भर गश्त लगाया करता है। इसी से वह अपने इलाके की सम्पूर्ण परिस्थिति से परिचित रहता है और भूख लगने पर आसानी से भोजन प्राप्त कर सकता है। रात में दूर दूर तक की यात्रा करना, चौड़ी से चौड़ी नदी को तैर करके पार करना और

बड़ी सतर्कता एवं चातुरी से सुरक्षित स्थानों से शिकार उठा ले जाना उसके बायें हाथ का खेल है। चीता चौर-कर्म में व्याघ्र से भी अधिक निपुण होता है। वह रात्रि में भूमि और वृक्ष दोनों पर समान गति से भ्रमण करता है। वनमानुष तथा अन्य वृक्षचर जीव-जन्तु उससे सदा सशङ्कित रहते हैं। उनकी गोद से सोते हुए बच्चों को वह इस ख़ूबी से छुड़ा ले जाता है कि किसी को ख़बर तक नहीं लगती। इसी से वनमानुष रात भर वृक्ष के नीचे बैठकर वृक्ष-शिखर पर सोनेवाले अपने बच्चों की चौकसी करता है।

हमारे गृह-साम्राज्य की प्रजाओं में भी अधिकांश निशाचर हैं। यद्यपि वे हज़ारों वर्ष से हमारे साथ रह रहे हैं, तो भी रात्रि में शिकार करने की उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति परिवर्तित नहीं हुई है। बड़ी-छोटी हर क़िस्म की बिल्लियाँ रात में ही शिकार करती हैं। संसार भर के कुत्ते चाहे वे जङ्गली हों या पालतू, दिन की अपेक्षा रात्रि में ही सजग और प्रफुल्ल रहते हैं। हर आकार-प्रकार के चूहे चिराग़ गुल होने के बाद ही मनुष्य की पगड़ी ग़ायब करने में तल्लीन होते हैं। झिङ्गुरों का आमोद-प्रमोद और झिल्लियों की झनकार अँधेरे में ही देखने-सुनने को मिलती है। साँप-बिच्छू तथा ऐसे ही अन्य विषैले जीवधारी रात के समय में ही प्रसन्नतापूर्वक विचरते हैं। कहाँ तक कहें, हमारे घर-आँगन, बाग़-बग़ीचे, तालाब-पोखर, खेत-खलिहान आदि स्थानों में असंख्य कीड़े-मकोड़े रात के समय बिलों से निकल कर घूमते-फिरते हैं, जिनमें से कितनों के अस्तित्व का पता प्राणिशास्त्रियों को भी नहीं है।

बन्दर दिवाचर प्राणियों के वर्ग में आता है, पर उसका सौतेला भाई लंगूर निशाचर होता है और मनुष्य के सो जाने के बाद उसकी फ़सल पर धावा बोलता है। यही हाल शूकर और भालू का है। भेड़िया आधी रात के समय उदर-भरण की चिन्ता में विचरता है। अँधेरे में उसकी आँखों से ऐसी दीप्ति निकलती है कि मार्गभूला हुआ पथिक उसे झोपड़ी के रन्ध्रों से निकलनेवाली रोशनी समझ कर कभी कभी आपत्ति में फँस जाता है। भेड़िये में असाधारण धूर्तता होती है, जो रजनी के अँधेरे राज्य में ही चल सकती है। रात के समय वह तेज़ से तेज़ भागनेवाले जीवधारी को भी इस सिफ़त से पकड़ लेता है कि बेचारा जानवर अपनी चौकड़ी भूल जाता है। ऐसे जानवर का पीछा वह बड़ी होशियारी से करता है और उसे थकाकर खदेड़ते हुए उस ओर ले जाता है जहाँ उसकी पत्नी पति को सहायता देने के निमित्त पहले से सजग बैठी रहती है। यदि शिकार में तेज़ी बाक़ी रही और वह मादा भेड़िये को झटका देकर भाग निकला तो मादा उसका पीछा करती है और उसे घुमा-फिरा कर वहाँ ले जाती है जहाँ उसका पति घात लगाये बैठा रहता है।

चमगादड़ जैसा अद्भुत स्तनपायी प्राणी है, वैसा ही अनुपम निशाचर भी है। शाकभोजी और मांसभक्षी दोनों तरह के चमगादड़ घने से घने तम एवं मन्द प्रकाश में बड़ी तेज़ी से भ्रमण करते हैं। ऐसा कभी नहीं होता कि अन्धकार की घनता तथा कुहरा से वे उलूक के समान उल्लू बन जायँ। वे बहुधा सूरज डूबने के समय निकलते हैं और रात भर कीड़ों-मकोड़ों का नाश करके मनुष्य-जाति का उपकार और उसके बाग़-बग़ीचे के फलों का भक्षण करके उसका अपकार करने में लगे रहते हैं। शाक और मांसभक्षी चमगादड़ के अतिरिक्त रुधिर पान करनेवाला एक प्रकार का चमगादड़ और भी होता है। वह तिमिराच्छादित निस्तब्ध रात्रि में मनुष्य के शयनागार में चुपचाप प्रवेश करता है और सोनेवाले व्यक्ति के ऊपर पंखों की तीव्र गति के कारण स्थिर रह कर इस युक्ति से उसका रक्त चूस लेता है कि उसे पता ही नहीं लगता। अँधेरे में उसका ठीक ठीक देख सकना, पंखों के सहारे बड़ी देर तक वायु में स्थिर रहना, शरीर के भेदने योग्य कोमल अङ्ग की जाँच करना, मृदुता से शरीर को काट कर रक्त चूसना आदि बातों पर विचार करने से कहना पड़ता है कि प्राणि-संसार में वह अद्वितीय है और प्रकृति ने इस मायावी निशाचर को गढ़ने में कमाल किया है।

साही सूर्यास्त होने पर अपने धंधे में लगती है। उसी समय ख़रगोश और गिलहरी जंगली मार्गों में पूरी चंचलता से कूदते-फाँदते दृष्टिगोचर होते हैं। उनके जागने के बाद लोमड़ी, बिज्जू और ऊदबिलाव अँगड़ाई लेते हुए अपनी अपनी माँद से बाहर निकलते हैं और दिन भर के व्रत का पारण करते हैं। मेढक तो दिन के प्रकाश में दलदल में उछलते-कूदते नज़र आते हैं, पर उनके बड़े भाई भेक या दादुर को रात से अनुराग है। नाना रंग, वर्ण और आकार-प्रकार के पतिंगे भी हज़ारों की संख्या में रात्रि के समय ही रजनी के पुष्पों के सौरभपूर्ण रसधार का पान करने के हेतु अपने गुप्त स्थानों से जो प्राणिशास्त्रियों को भी अज्ञात हैं, निकलते हैं। चींटे भी रात्रि के समय अपने विशाल भवन को गतिमान करते हैं। इसी समय कोटि कोटि छोटे-बड़े कीड़े भी पौधों के पुष्प-पत्र पर अधिकार जमाते हैं और सूर्योदय होते तक उनका रंग-रूप विकृत करके अन्तर्धान हो जाते हैं। सूर्यास्त के बाद ही जुगनू अपना जलता हुआ लम्प लेकर अपने प्रियतम को ढूँढ़ने तथा उदर-भरण करने के लिए घर छोड़ बाहर निकलती है। सच तो यह है कि कीट-संसार का आधे से अधिक कार्य रात्रि में ही सम्पादित हो जाता है।

सर रोनाल्ड रास ने मलेरिया-ज्वर का कारण जानने के लिए कई जाति के मच्छड़ों की परीक्षा की, परन्तु दिन के समय दिखनेवाले मच्छड़ों में उस रोग के सम्बन्ध का कोई लक्षण लक्षित नहीं हुआ। अन्त में उन्हें मच्छड़ की एक जाति जिसका पहले उन्हें पता नहीं था, रात्रि के समय दिखाई दी। जब उन्होंने उसकी परीक्षा की तब ज्ञात हुआ कि उसके कारण ही मनुष्य मलेरिया-ज्वर से पीड़ित होता है। एक शताब्दी में जितने मनुष्य युद्ध में समाप्त होते हैं, लगभग उतने ही मलेरिया के कारण एक वर्ष में मरते हैं। अतः यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि मनुष्यों में मलेरिया का बीज बोनेवाला मच्छड़ जो संक्रामक रोग फैलानेवाली निशाचरी सेना का एक दल है, युद्ध से भी भयंकर होता है।

निस्सन्देह रजनीचरों का समाज अनन्त है और उसको पूर्णतः जान सकना मनुष्य की शक्ति के बाहर की बात है।

गीत

लेखक, श्रीयुत बालकृष्ण राव

गाने दे, स्मृति को गाने दे।
विगत निशा के सुख-स्वप्नों को
फिर से जग जाने दे।
गाने दे, स्मृति को गाने दे॥
यदि तम का आमन्त्रण पाकर,
पुलकित हो सखि, सौख्य-सुधाकर
मिलने जाता है, जाने दे।
गाने दे, स्मृति को गाने दे॥
कवि को कविता के कानन में,
छवि को अपने मृदु आनन में,
सजनि, शान्ति पाने दे।
गाने दे, स्मृति को गाने दे॥

गाल्ज़वर्दी और सामाजिक क्रांति

प्रोफ़ेसर इन्द्रनाथ मदन, एम० ए०



[श्रीगाल्ज़वर्दी]

जान गाल्ज़वर्दी को स्वर्गगत हुए अभी बहुत समय नहीं हुआ। साहित्य में वे नये विचारों के प्रवर्तक थे और संसार के दलित प्राणियों के साथ उनकी बड़ी सहानुभूति थी। वे अमीर ग़रीब के लिए एक ही क़ानून चाहते थे, किसी प्रकार का भेदभाव नहीं। अपने नाटकों और उपन्यासों के रूप में वे अपना यह अमर संदेश छोड़ गये हैं। इस लेख में विद्वान् लेखक ने इस महान् साहित्यकार का बड़े सुन्दर ढङ्ग से परिचय दिया है।

कोमल हृदय

गाल्ज़वर्दी ने अपनी जिस मेज पर अपने संसार-प्रसिद्ध नाटक लिखे हैं, उस पर एक सिद्धान्त-वाक्य लगा रहता था। उसका अर्थ यह है—"मुझे इस जीवन-मार्ग से एक ही बार गुजरना है; यदि किसी की भलाई कर सकता हूँ या किसी के प्रति दया का भाव दिखा सकता हूँ, तो अभी कर लूँ, कल पर कभी न छोड़ूँ, क्योंकि मुझे इस मार्ग से फिर नहीं गुजरना है।" ये पंक्तियाँ उनके जीवन का आदर्श बतलाती हैं।

उनका समस्त जीवन सचमुच इसी आदर्श के अनुसार व्यतीत हुआ है। एक बार वे मोटर में बैठ कर सैर के लिए जा रहे थे। एकाएक उन्होंने मोटर को रोक दिया, उनका मुँह पीला पड़ गया। वे धीरे से बोले—"कोई मोटर के नीचे आ गया है।" उन्हें भय हुआ कि कोई जीव कुचल गया है। शीघ्र ही नीचे उतर पड़े, देखा, जान बच गई है। तब मन शांत हुआ और वे चल पड़े। यह छोटी-सी घटना उनके जीवन और उनकी रचनाओं पर काफ़ी प्रकाश डालती है। मनुष्य का जीवन उनको सबसे अधिक प्यारा था। उसको कुचलने की जो भी कोशिश करता है, चाहे वह समाज हो, चाहे धर्म हो, उसके विरुद्ध वे अपनी क़लम उठाते थे। यही कारण है कि उनके सब उपन्यास, नाटक और निबन्ध समाज की कुरीतियों का ही दर्शन कराते हैं। उन्होंने एक सम्पन्न घर में जन्म लिया था, परन्तु वे दीन और दुखियों की आहों को ख़ूब पहचानते थे। इन सबके लिए उन्होंने समाज को ही अपराधी ठहराया है।

जिस मेज पर उक्त आदर्श-वाक्य लगा रहता था उसी के सामने बैठ कर उनकी पत्नी बड़े चाव से लोगों की चिट्ठियों का उत्तर दिया करती थी और अपने पति के हस्तलिखित ग्रन्थों को टाइप करने के बाद छपने के लिए प्रेस को भेजा करती थी। स्वयं गाल्ज़वर्दी को इन कष्टों का कभी सामना नहीं करना पड़ा। वे उन विरल लेखकों में से थे जिनको ऐसी स्त्री मिली थी, जो अपने पति के सुख-दुःख की साथिन थी। अपनी पत्नी के कारण भी उनकी साहित्य की ओर रुचि बढ़ी थी। यदि वह उनको प्रोत्साहन न देती और उनके काम में उनकी सहायता न करती तो संभव है कि वे एक साहित्यकार न होकर कोई बड़े वकील होते और शायद पार्लियामेंट के मन्त्रि-मण्डल के सभासद् के पद तक पहुँच जाते।

काम करने का ढंग

उनका काम करने का ढंग बड़ा निराला था। जब कभी विशेष घटना को देखते या ऐसे व्यक्ति से मिलते जो व्यंग्य से भरपूर होता तब उनको कहानी के रूप में वे तुरन्त लिख डालते। छोटी छोटी बातों को वे इस तरह ग्रहण करते कि वे उनके दिल में धँस जातीं और वहाँ से नया रूप लेकर निकलतीं। उनकी कल्पना एक पुरुष या एक घटना तक ही परिमित नहीं रहती थी, किन्तु वह बड़ा विस्तृत रूप धारण करती थी। वे अपनी कहानियों, नाटकों या उपन्यासों का ढाँचा पहले से नहीं तैयार करते थे। जब भावों का समुद्र उमड़ आता, उमंगें भरने लगतीं, तब वे लिखना आरम्भ कर देते। और तब उनकी क़लम नहीं रुकती थी। रात को जाग कर, सैर करते समय, यहाँ तक कि बात बनाते समय भी अपनी विचार-धारा में वे डूबे रहते। एक और बात बड़ी विचित्र है कि वे लिखने का काम प्रायः सुबह के समय ही करते थे। उनका यह विचार था कि कल्पना-शक्ति उस सुहावने समय में बड़ी गरम हो उठती है। चाय पीने के बाद वे अपना लिखा दुहराया करते थे। भोजन के बाद उन्होंने कभी काम नहीं किया।

गाल्ज़वर्दी ने लंदन में एक वकील के यहाँ १८६७ में जन्म लिया था। उस समय उनका देश साँप की तरह पुरानी केंचुल उतारकर नया रूप धारण कर रहा था। विज्ञान की उन्नति ने धर्म के सिद्धान्तों पर पानी फेरना आरम्भ कर दिया था। समाज में नये भावों की नींव पड़ने लगी थी। उस भावुक क्रांति के युग में था और गाल्ज़वर्दी ने साहित्य के क्षेत्र में आकर एक नये संसार का निर्माण किया। अपने पिता की तरह वकालत की डिगरी उन्होंने हासिल तो की, पर उस काम को रूखता के कारण छोड़ दिया। उनमें साहित्य के लिए एक अपूर्व तड़प पैदा हुई। वे कहानियाँ लिखने लगे, यहाँ तक कि उनका ताँता बाँध दिया। उनकी इन प्रारम्भिक रचनाओं में सौन्दर्य और कला का निदर्शन तो हुआ ही है, साथ ही समाज की खोखली संस्थाओं का भी ख़ासा भंडाफोड़ हुआ है।

सागा

कुछ कहानियाँ लिख चुकने के बाद उनको लिखने का काफ़ी अभ्यास हो गया। और अब उन्होंने एक उपन्यास लिखना आरम्भ किया। कौन जानता था कि यही रचना विस्तृत होकर 'सागा' का रूप धारण कर लेगी और उनको नोबेल-पुरस्कार का अधिकारी बना देगी। स्वयं उनको भी इसका ज्ञान नहीं था कि उनके उपन्यास का नायक 'सोम्स' हैमलेट की तरह संसार में एक अमर चरित्र बन जायगा।

नाटककार

कई समालोचकों का विचार है कि गाल्ज़वर्दी के उपन्यासों और नाटकों में बड़ा मेल है। उन्होंने कहानियों से अपने साहित्य-जीवन को आरम्भ किया, बीच में नाटक लिखे और अन्त में नावेलों को अपनाया। इसमें कोई संदेह नहीं कि उनके नावेलों में अनेक नाटकीय घटनायें हैं। उनकी

कला तो सदा नाटकीय ही रही है। उन्होंने बीस से अधिक नाटक लिखे हैं, परन्तु यहाँ केवल उनके तीन नाटकों के आधार पर ही उनकी नाटक-कला का परिचय दिया जायगा।

चाँदी की डिबिया

सबसे पहले उन्होंने 'चाँदी की डिबिया' नाम का नाटक लिखा। इस नाटक में जैक और जोन दोनों पात्र चोरी के अपराध में एक ही शाम को पकड़े जाते हैं। जैक एक महिला की थैली को चुराता है और जोन चाँदी की डिबिया। बहुत-सी बातों में दोनों का अपराध बराबर है। परन्तु दोनों में एक भारी अन्तर है। जैक अमीर घराने का लड़का है। उसका बाप पार्लियामेंट का सभासद है। उधर जोन एक दीन निर्धन तीन पुत्रों के बाप का पुत्र है। अभियोग चलाया जाता है। जैक बरी हो जाता है। जोन एक मास के लिए क़ैद किया जाता है। नाटककार ने उसके द्वारा एक गम्भीर सामाजिक समस्या का नग्न-चित्र सामने रक्खा है। वह यह कि अमीर के लिए एक न्याय है तो ग़रीब के लिए दूसरा है।

हड़ताल

उनका दूसरा नाटक 'हड़ताल' है। इसमें कारखाने के स्वामी और मज़दूरों के संग्राम का चित्र है। मज़दूर हड़ताल कर देते हैं। दोनों दलों के प्रतिनिधियों में समझौता कराने के लिए उनकी सभा होती है। समझौता नहीं होता है। मज़दूर भूखों मरते हैं, और स्वामियों का भारी नुक़सान होता है। दोनों दलों के लीडर अपना सम्मान क़ायम रखने के लिए डटे हुए हैं। स्त्रियों और बच्चों के कष्टों की कोई सीमा नहीं रहती। अन्त में दोनों दलों के लीडर निकाल दिये जाते हैं और वही शर्तें मानी जाती हैं जो हड़ताल के आरम्भ में पेश की गई थीं। यही तो रोने और हँसने की बात है। इस संग्राम में किसी को लाभ नहीं हुआ, परन्तु हानि की कोई सीमा नहीं रही, यहाँ तक कि कई भूख से मर गये। दोनों दल इसके लिए दोषी नहीं ठहराये जा सकते। जीवन का कुछ ढंग ही निराला है। बुद्धि से परे है। संसार में क्यों इतना नाश हो रहा है, इसका उत्तर नाटककार के लिए रहस्यमय है। असल में मनुष्य का दिल ही तंग है; दूसरे पक्ष के विचारों और भावों के समझने से वह इनकार करता है। लेखक दोनों दलों से सहानुभूति प्रकट करता है, उनका खण्डन नहीं करता।

न्याय

तीसरा नाटक 'न्याय' है। इसमें फाल्डर क्लर्क का काम करता है। वह कमज़ोर स्वभाव का आदमी है। मुँह पीला है, हृदय उदार है। एक महिला को पीड़ित देखकर उसे दया आ जाती है। ममता में आकर उसका पति बनकर भागने की ठान लेता है। नौ पौंड के एक चेक को नब्बे पौंड का बनाकर बैंक से धन ले लेता है। साथ ही पैसा कमाकर फिर लौटा देने का निश्चय करता है। वह धोखे में आ जाता है और पकड़ा जाता है। न्यायालय में उस पर अभियोग चलता है। वकील उसको मुक्त कराने की कोशिश करता है। कहता है कि यह मन का रोगी है, अपराधी नहीं है। जज उसको अपराधी ठहराकर जेल में ठूँस देता है। क़ैद से मुक्त होकर जब वह बाहर आता है तब जीवन कठोर पाता है। कमज़ोर दिल के लिए यह जीवन का संग्राम कठिन है। न्याय से फिर एक बार टक्कर होती है। उससे बचने के लिए आत्म-घात कर लेता है।

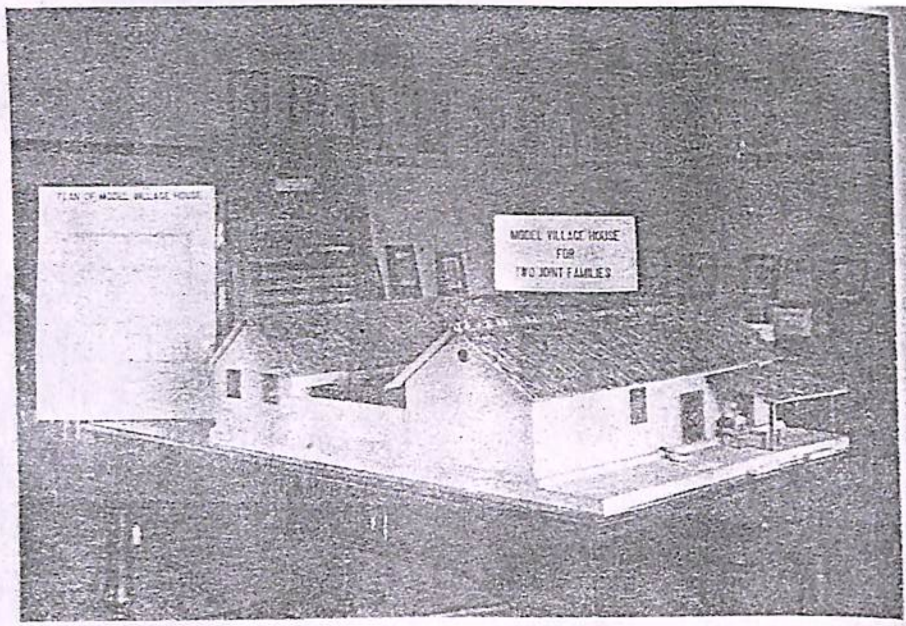
इस आत्म-घात के लिए कौन दोषी है, फाल्डर या समाज? लेखक की दृष्टि में समाज बड़ा कठोर और निर्दय है। यह एक मशीन है जिसमें कई निर्दोष पुरुष पिस जाते हैं। मनुष्य का इस पर कोई अधिकार नहीं। इसका सुधार होना असम्भव-सा है।

निराशावाद

तब क्या गाल्ज़वर्दी निराशावादी है। यदि जीवन का यही सार है तो उनके निराशावादी होने में क्या दोष है? सर्व-शक्तिमान विधाता के सामने निर्बल



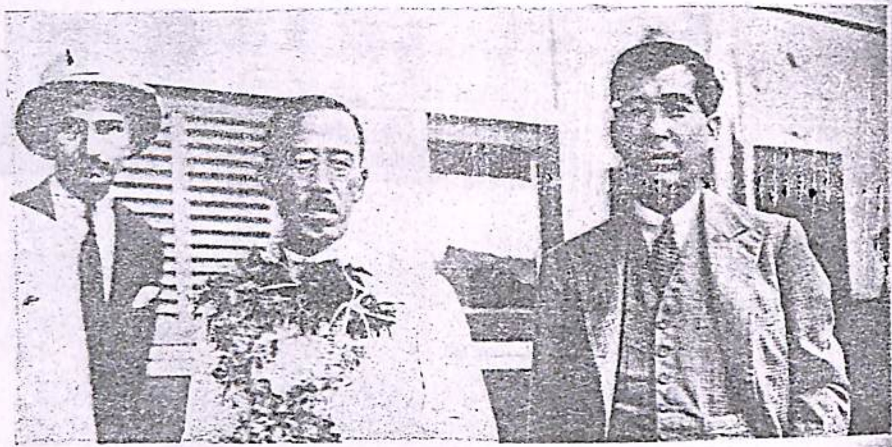
स्विट्ज़लैंड का एक ग्लेशियर



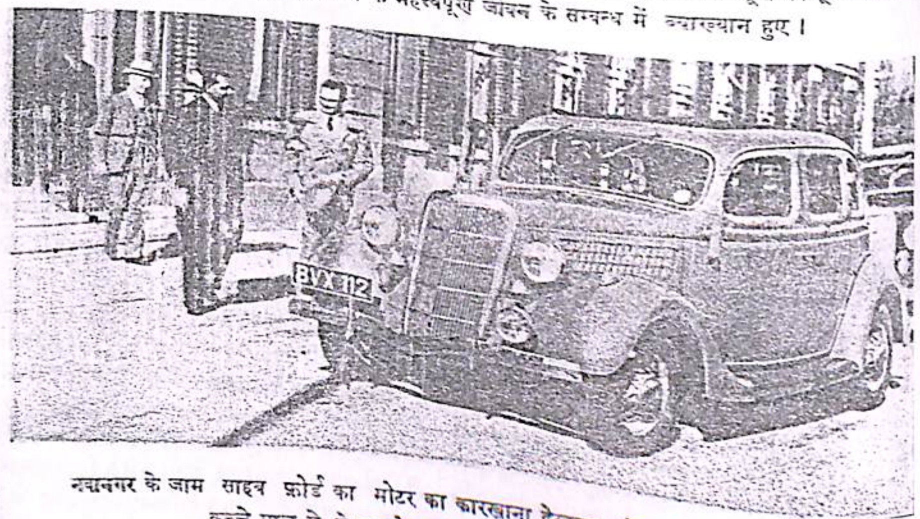
सरकारी उडवर्किंग (बढ़ईगीरी) इन्स्टीट्यूट, बरेली, के विद्यार्थियों-द्वारा बनाया गया एक देहाती घर का नमूना। संयुक्तप्रान्त के गवर्नर महोदय ने बरेली जाने पर इसका भी निरीक्षण किया था।



गत पहली अगस्त को बम्बई में तिलक-जयन्ती मनाई गई। उस दिन वहाँ बनी उनकी मूर्ति को फूलमालायें पहनाई गईं और लोकमान्य के महत्त्वपूर्ण जीवन के सम्बन्ध में व्याख्यान हुए।

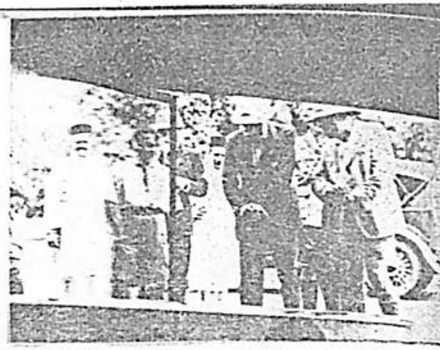


जापानी राजदूत हिज़ एक्सेलेंसी मिस्टर एच० मत्सुशिमा जो भारत-भ्रमण करने आये हैं। यह फ़ोटो बम्बई में लिया गया है।



नवानगर के जाम साहब फ़ोर्ड का मोटर का कारखाना देखकर लौट रहे हैं। इसमें आपने कच्चे माल से लेकर मोटर की आखिरी तैयारी तक देखी।

नैनी के कृषि-विद्यालय में वायसराय महोदय। आप एक नये प्रकार के पशु-खाद्य का निर्माण देख रहे हैं। डा० हिंगिम बाटम उनके बाईं ओर खड़े उसकी प्रक्रिया समझा रहे हैं





विख्यात भारतीय नर्तकी श्रीमती मीरावती देवी जो अपनी कला दिखाने विलायत गई हैं। ये मेनका की बहन हैं।



विश्व-विख्यात मोटर-निर्माता श्रीयुत हेनरी फ़ोर्ड, जिन्होंने हाल में अपनी ७२ वीं वर्षगाँठ मनाई।



अमरीका के रेड-इंडियनों का एक परिवार जो विश्वयात्रा के लिए निकला है। हाल में ये भ



मिसेज़ कृष्णदेव तिवारी, एम० ए०। आप उच्च शिक्षा प्राप्त करनेवाली प्रथम

मनुष्य की क्या मजाल है? यह तो उसके सामने खिलौना है, जिस तरह चाहे कठपुतली की तरह नचा सकता है। यह मनुष्य की भूल है, यदि वह समाज को अपने हृदय के मुताबिक ढालने का यत्न करे। जो करता है वही कुचला जाता है। हैमलेट ने ऐसा चाहा था: नैपोलियन की कहानी सबको विदित ही है। यही तो उस अपरम्पार की लीला है। यह किस तरह हो सकता है कि एक व्यक्ति सारे समाज की ताक़तों के सामने ठहर सके। इसलिए जहाँ शेक्सपियर के पात्र प्रशंसा और दया के अधिकारी हैं, वहाँ गाल्सवर्दी के पात्र केवल अनुकम्पा के अधिकारी हैं। उनकी अवस्था को देखकर रोना आता है और कठोर समाज को धिक्कारने के लिए जोश आता है। ऐसे पात्रों का निर्माण करके नाटककार ने समाज में परिवर्तन लाने का यत्न किया है। यही गाल्सवर्दी की कला की सफलता है।

पावस

लेखक, श्रीयुत नर्मदाप्रसाद खरे

[१]

रिमझिम-रिमझिम-सी बूँदें,
जग के आँगन में आईं।
अपने लघु उज्ज्वल तन में,
कितनी सुन्दरता लाईं!

[२]

मेघों ने गरज-गरजकर,
मादक संगीत सुनाया।
इस हरी-भरी सन्ध्या ने,
हमको उन्मत्त बनाया॥

[३]

सूखी सरिताओं ने फिर,
सुन्दर नव जीवन पाया।
लघु लहर-लहर पर देखो,
सौन्दर्य नाचने आया॥

[४]

वन-उपवन पनप गये सब,
कितने नव अंकुर आये!
वे पीले-पीले पल्लव,
फिर से हरियाली लाये॥

[५]

अब अपना घूँघट खोले,
कलिकायें झाँक रही हैं!
वसुधा पर मन्द हँसी से,
सुन्दरता आँक रही है॥

[६]

वन में मयूर अब नाचें,
हँस-हँस आनन्द मनायें।
उनकी छवि देख रही हैं,
नभ से घनघोर घटायें॥

[७]

प्रतिपल हम नाचें-खेलें,
जग-जीवन मधुर बनावें।
अपने छोटे-से घर में,
सुख का संसार बसावें॥

जापान में



जापान का बालसैनिक—निदुवागी

लेखक, श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन

> प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु श्री राहुल सांकृत्यायन जापान पहुँच गये। इस लेख में आपने अपने जापान पहुँचने तथा वहाँ के जगद्विख्यात बेप्पू के तप्त कुण्डों का विस्तृत वर्णन किया है। जापान के सम्बन्ध में आपके और भी कई महत्त्व-पूर्ण लेख हम क्रमशः प्रकाशित करेंगे।

तीन बजे मोटर-नौका से हम जहाज़ पर चले आये। पाँच बजे उसने समुद्र की ओर मुँह फेरा। शाङ्घाई का अक्षांश यद्यपि ३०° के आस-पास है, तो भी इस मई के महीने में इतनी सर्दी देखकर आश्चर्य हो रहा है। कल से ही कमरे गर्म रखनेवाले यन्त्र चालू कर दिये गये हैं। बेतार से पता लगा कि जापान में कई जगह बर्फ़ पड़ी है।

आज (२ मई) समुद्र कुछ अधिक चंचल है। हमारा ६,५०० टन का 'अन्योमारु' भी काफ़ी हिल रहा है, जिससे कितने ही आरोही पीड़ित हैं। प्रशान्त महासागर अपने नाम से बिलकुल उलटा है। इतने भूकम्प और ज्वालामुखी दूसरी जगह कहाँ हैं? २१ अप्रेल को फ़ारमूसा में भयङ्कर भूकम्प आया, जिससे तीन हज़ार से ऊपर आदमी मरे हैं। आज-कल की असाधारण सर्दी से लोग आशङ्कित हैं। और तो कुछ होनेवाला नहीं है!

मोजी (४-५-३५)

जहाज़ से दो पारसी दम्पति शाङ्घाई में उतर गये थे, इसलिए अब हम आठ भारतीय सेकंड क्लास के यात्री थे, जिनमें पाँच मदरासी भाइयों से हाङ्-काङ् और शाङ्घाई की सैर में अधिक घनिष्ठता हो गई थी। अभी तोकियो पहुँचने से पूर्व कोबे, क्योतो, नारा और ओसाका आदि को देखना था। साथ में रहने से मोटर के ख़र्च में भी कमी हो जाती है और साथियों की टिप्पणियों से भी लाभ होता है, इसलिए दो मई को हमने १ पौंड (१६·६८ येन) देकर अपना टिकट योकोहामा का करवा लिया। आज भी समुद्र अधिक चंचल रहा। ३ मई के बारह बजे हमें जापान का तट वैसा ही मालूम पड़ा, जैसे पोर्ट सईद से जाकर इटली का तट दिखाई पड़ता है। भूमि पहाड़ी, किन्तु सर्वत्र वृक्ष और हरियाली है। पास के समुद्र में मछुओं की बहुत-सी नावें और अग्निबोट चल रहे थे। पूछने पर मालूम हुआ, दाहने का तट क्यूशू (जापान के चार प्रधान टापुओं में एक) का है, और बायें का किसी छोटे द्वीप का। इसी वक़्त लाल काग़ज़ पर छपा हुआ अँगरेज़ी में एक नोटिस बाँटा गया। उसमें लिखा था, मोजी और शिमोनोसकी के तट-भाग क़िले-बन्द हैं, इसलिए यहाँ फ़ोटो लेने की सख़्त मनाही है। हाङ्-काङ् में भी ऐसा ही है, किन्तु मुसाफ़िरों को सजग करने के लिए वहाँ कोई नोटिस नहीं बाँटा गया, सिर्फ़ जेटी के एक कोने में कुछ लिखकर रख दिया गया है।

५ बजे जापान की ओर अधिक भूमि दिखलाई पड़ने लगी। दाहने-बायें दोनों तरफ़ हरे-भरे पर्वत देख रहे हैं। दाहनी ओर क्यूशू-द्वीप और बाईं ओर जापान का सबसे बड़ा द्वीप होन्शू है। घर दियासलाई के बक्सों से और प्रायः एकतल्ले दिखाई पड़ रहे थे। इन छोटी दीखती बस्तियों में भी जगह जगह चिमनियों से धुआँ निकल रहा था, जो बतला रहा था कि जापान कहाँ तक उद्योग-प्रधान हो चुका है। सर्दी थी, किन्तु हम दृश्य देखने के लिए डेक पर डटे हुए थे! मुझे तो दूर से वह स्वप्न की दुनिया या गंधर्वनगर मालूम हो रहा था। पाँच बजे हमें मोजी (क्यूशू) और शिमोनोसाकी (होन्शू) आमने-सामने, किन्तु हमसे आगे दिखलाई पड़ रहे थे। शिमिनोसाकी की ओर कितनी ही तेल की टंकियाँ भी थीं। इसी समय जहाज़ खड़ा हो गया।

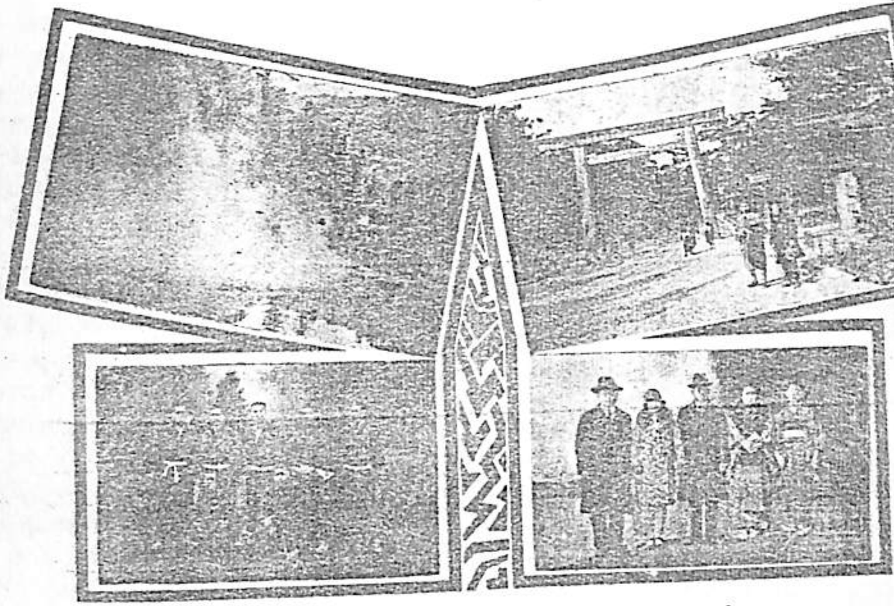
विदेश से आनेवाले सभी यात्रियों की जब पहले डाक्टरी हो जाती है तब वे जापान की भूमि पर पैर रखने पाते हैं। इसी लिए जहाज़ खड़ा हुआ था। सामने से सफ़ेद मोटर-नौका डाक्टर को लिये आ रही थी। हम लोग



[जापानी बौद्ध भिक्षु]



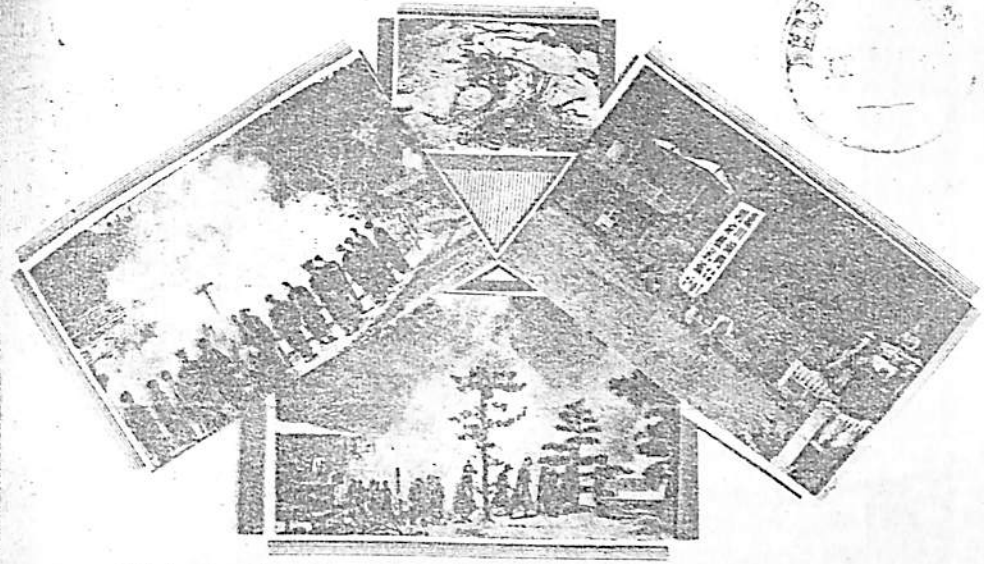
[दो जापानी कुमारियाँ—किमोनो और चाप्पल में]



[ऊपर (१) बेप्पू चीनो इजिगोकू का बाष्पपूर्ण तप्तकुण्ड (२) एक शिन्तो मन्दिर का द्वार
नीचे (१) किमोनो और खड़ाऊँ (२) पुराने और नये फ़ैशन]

धूम्रपानशाला में जमा हो गये। कुछ देर बाद डाक्टर भी आया। दरवाज़े में घुसते ही टोपी उतारकर उसने हाथ में ले ली, और ऊपरी धड़ को झुकाकर जाँघ के साथ प्रायः समकोण बनाते हुए उसने प्रणाम किया। हम लोगों की ओर से भी सिर झुकाकर उसका उत्तर दिया गया। कुर्सी पर बैठकर उसने एक बार हमारे चेहरों की ओर देखा, और "हाँ" कह कर टोपी उठा फिर उसी तरह अभिवादन कर चला गया। जहाज़ फिर लंगर उठा आधा या पौन घंटा चला और हम मोजी के सामने आ पहुँचे। किनारे पर पानी बहुत गहरा नहीं है, इसलिए हमारे 'अन्योमारु' की भाँति कितने और महा समुद्रगामी जहाज़ बीच में ही लंगर डाले खड़े थे। देखा कि एक एक स्टीमर रेलगाड़ी के माल ढोनेवाले डिब्बे लादे शिमोनोसाकी से मोजी की ओर ले जा रहा है। अनेक मोटर-नौकायें तथा स्टीमर भी दौड़ लगा रहे थे। एक दोमहला स्टीमर तो कश्मीर के हौस-बोट की तरह पूरा मकान-सा मालूम होता था। वह भी शिमोनोसाकी से मोजी की ओर जा रहा था। पता लगा, आर-पार के दोनों नगरों के यात्रियों को ले जाने और ले आने के लिए थोड़ी थोड़ी देर में यहाँ जहाज़ खुला करते हैं। मोजी की आबादी एक लाख से ऊपर है, और यहाँ बहुत-से कारख़ाने हैं।

जहाज़ के खड़े हो जाने पर पासपोर्ट देखनेवाले अफ़सरों की नौकायें आईं। पहले ही दोहरा फ़ार्म हमसे करवा लिया गया था, जिसमें वल्दियत, सकूनत, जाती यता, पासपोर्ट नंबर के साथ जापान-यात्रा का प्रयोजन लिखवा लिया गया था। मोजी में देखा चलनेवाला फ़ार्म सामने रखकर हर एक आदमी से कुछ पूछा जाता था। पासपोर्ट का चित्र और नंबर मिलाया जाता था। फिर यात्रा



[(१) बेप्पू शिन बोज़ु जिगोकू का तप्तकुण्ड (२) खौलते जल के बुलबुले (३) कामेकावादोमो की बौद्ध प्रतिमा और निवास-गृह (४) बेप्पू उमी जिगोकू तप्तकुण्ड पर छात्रायें।]

के बारे में विशेष तौर से पूछा जाता था। किसी किसी के साथ तो छोटी-सी जिरह हो जाती थी। हमारी बारी भी आई। बौद्धभिक्षु और अध्ययन-प्रयोजन पर तो विशेष नहीं पूछा, हाँ, व्यवसाय (पेशा) के ख़ाने में बौद्धभिक्षु के साथ लेखक भी लिखा था। इस सम्बन्ध में पूछा—"किस विषय पर पुस्तकें लिखी हैं ?" उत्तर दिया—"अधिकतर बौद्धधर्म पर तथा कुछ यात्रा आदि पर भी"। फिर पूछा—"कितनी ?" उत्तर दिया—"प्रायः बीस ?" पूछा—"तब तो जापान पर भी कोई पुस्तक ज़रूर लिखेंगे ?" उत्तर दिया—"हाँ, हो सकता है।" इस प्रकार इस पूछा-पेखी से छुट्टी मिली। तब तक साथी लोगों ने यह सलाह कर ली थी कि आज ही रात को मोजी जाकर वहाँ से १०० मील पर स्थित बेप्पू के तप्तकुण्डों में स्नान करने चला जाय। सेकंड क्लास के गुप्ता महाशय तथा डाक्टर सिद्दप्पा तो कोई बहाना बनाकर रह गये, किन्तु उनकी जगह पर फ़र्स्ट क्लास के दो गुजराती सज्जन मिस्टर शा और मिस्टर हज़रत साथी हो गये। साढ़े आठ बजे रात को हम एक अत्यन्त छोटी-सी काठ की मोटर-नौका पर तट की ओर चले। आदमी बहुत थे। आस-पास से गुज़रते अग्निबोटों के हिलोरे से तो मालूम होता था, नौका उलट ही जायगी। एक बार तो बाईं ओर से धड़धड़ाता हुआ एक स्टीमर सामने आ भी गया, और दोनों के टकराने में सिर्फ़ दो हाथ का फ़र्क़ रह गया था। हमारा नाविक दाँत निकालने लगा, किन्तु अब उसकी आवश्यकता क्या ? बच गये, नहीं तो कितने न तैरनेवाले तो वहीं "राम राम सत्य" हो जाते।

जेटी पर पहुँचे। कस्टम के लोगों ने हमारे हैंडबेगों को देखा, और सिगरेट के बारे में विशेष तौर से पूछा। सिगरेट अब सभ्य दुनिया की रोज़मर्रा की आवश्यक चीज़ हो गई है, और जापान में यह व्यवसाय सरकार के

हाथ में है, इसलिए सरकार नहीं चाहती कि उस व्यवसाय से विदेशी फ़ायदा उठावें।

वेप्पू के तसकुण्ड

अब हमारी जमात में आठ भारतीयों के अतिरिक्त एक जापानी श्री मियोची भी थे। मियोची अमरीका से अध्ययन समाप्त कर स्वदेश लौट रहे थे। वे अँगरेज़ी अच्छी जानते थे, इसलिए ऐसे एक आदमी की हमें आवश्यकता भी थी। पता लगाने पर ज्ञात हुआ, वेप्पू की ट्रेन रात में नौ बजकर पचपन मिनट पर छूटती है। हम लोग सेकंड क्लास के मुसाफ़िरख़ाने में गये। सेकंड और फ़र्स्ट क्लास का एक मुसाफ़िरख़ाना है, और थर्ड का दूसरा। थर्ड में भी बहुत-सी कुर्सियाँ थीं। प्लेटफ़ार्म के टिकट और मिठाइयों के बेचने की मशीनें थीं, और साथ ही ट्रेन छूटने आदि की सूचना देने के लिए शब्द-प्रसारक यंत्र लगा था। फ़र्स्ट में भी वही बात थी हाँ, इसमें कुर्सियों पर की गद्दे-गद्दियाँ अधिक मुलायम थीं। यहाँ ज़नाना-मर्दाना अलग मुसाफ़िरख़ाना नहीं है। एक ही कुर्सी पर स्त्री-पुरुष दोनों बैठते हैं। मुसाफ़िर आते-जाते रहते थे, तो भी वहाँ ६०-७० के क़रीब तक एक बार में देखे गये। पुरुष अधिकतर हैट, कोट, पतलून में थे, किन्तु स्त्रियाँ बहुधा अपनी जातीय पोशाक किमोनो पहने हुई थीं। किमोनो विशेषकर स्त्रियों का किमोनो बहुत ही सुंदर पोशाक है। उसका कलापूर्ण कमरबंद तो हद से अधिक सुंदर है। किमोनो एँड़ी तक लम्बा ढीली बाहों का चोग़ा-सा होता है। इसका कमरबंद ७-८ अंगुल चौड़ा होता है, और पीठ पर अधिक सुंदर बनाने के लिए एक चौड़ी कपड़े की परत देकर उसे चौड़ा कर देते हैं। अधिकांश स्त्रियाँ रबर के चप्पल पहने थीं, और कुछ के पैरों में पूर्वी युक्तप्रान्त में बरसात के दिनों में इस्तेमाल किये जाने-वाले बद्धीदार खड़ाऊँ थे। जापानी स्त्रियों की बालों की सजावट में अब बहुत अन्तर आ गया है, तो भी दस-बारह वर्ष की कम उम्रवाली लड़कियों को छोड़कर किसी के बाल कटे नहीं हैं। अग़ल-बग़ल, आगे-पीछे तथा चाँद पर बालों को फैलाते हुए जूड़ा बनाने का रवाज अब बहुत ही कम हो गया है। उसकी जगह आगे छोटी-सी तिर्छी माँग-बनाकर पीछे काँटों से जूड़ा बाँधा जाता है। इसमें शक नहीं कि यह केश-सज्जा पहले की अपेक्षा अधिक सुंदर मालूम होती है। सेकंड और फ़र्स्ट क्लास के यात्री अपना अपना बाक्स स्वयं हाथ से लटकाये आ रहे थे। पता लगा, जापानी लोग बाबूगिरी पसन्द नहीं करते।

बैठे बैठे देख रहे थे, हमारा पीला कपड़ा लोगों की दृष्टि को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। लेकिन उसका उपाय क्या था? हमने अगल-बग़ल की छोटी छोटी दूकानें देखीं। चीज़ों को सजाकर ख़ूब सफ़ाई के साथ रखने में तो जापान ने कमाल का ही काम किया है। एक फल और मिठाई की दूकान में देखा, नारंगी, बिस्कुट तथा पचासों तरह की मिठाइयाँ और फल थे, और सभी पतले मोमी काग़ज़ के थैलों के भीतर थे।

जेटी पर हमें एक पेसेंजर गाइडर (बाईं बाँह पर यही लिखा था) मिल गया। उससे टिकट आदि लेने में बड़ी सहायता मिली। मोजी से वेप्पू सौ मील है, उसके लिए सेकंड क्लास का टिकट ३·८६ येन है, और तीसरे दरजे का १·८० येन। जाते वक्त सेकंड क्लास से चलने की सलाह हुई। ट्रेन में पहुँचे। जापान की रेलवे लाइनें ई० आई० आर० से कम और बी० एन० डब्लू० आर० से अधिक चौड़ी हैं। फ़र्स्ट, सेकंड, थर्ड तीन दर्जे हैं। थर्ड से दूना सेकंड का किराया है। उसके ड्योढ़े से कुछ अधिक फ़र्स्ट का। थर्ड और सेकंड में कोई अधिक फ़र्क़ नहीं है। थर्ड में सिर्फ़ नीचे ही गद्दा रहता है, पीठ के पीछे नहीं। सेकंड में दोनों जगह। और थर्ड से सेकंड में पैर फैलाने की अधिक जगह रहती है। डिब्बे में बीच से रास्ता सारी ट्रेन में चला जाता है। इसी रास्ते के दोनों ओर दो आदमियों के बैठने लायक़ बैठकें हैं। योरप की ट्रेनों का ढंग इससे अच्छा है। वहाँ बरान्दा बग़ल में होता है, जिससे बेंचों पर चार आदमियों के बैठने की जगह रहती है, और पैर फैला कर सोने लायक़ जगह निकल आती है। हम लोगों को डेढ़ बजे रात तक चलना था। सोना मुश्किल था। यदि किसी ने सोने की कोशिश की तो गर्दन में दर्द लेकर उसे उठना पड़ा।

रास्ते में कई जगह ट्रेन खड़ी होती गई। हमें दूसरे दिन इसी रास्ते दिन में ही लौटना था, इसलिए मार्ग के दृश्य को देखने की कोई चिन्ता न थी। स्टेशनों के नाम—चीनी, काना और रोमन तीनों अक्षरों में लिखे थे। काना अक्षर उच्चारण के अनुसार हैं, चीनी की भाँति या हमारे हिन्दी के अङ्कों की तरह अर्थद्योतक नहीं। रोमन अक्षरों से स्टेशन का नाम हमें आसानी से मालूम हो जाता था।

ठीक समय पर गाड़ी वेप्पू पहुँची। हम लोगों ने मोजी से ही एक योकन को टेलीफ़ोन करवा दिया था। योकन जापानी ढंग के होटल को कहते हैं, जो जापान में सभी जगह बहुतायत से मिलते हैं। योरपीय ढंग के होटल सिर्फ़ बड़े बड़े शहरों में ही मिलते हैं, और उनका ख़र्च भी काफ़ी अधिक पड़ता है। तिब्बत में कनूबू के चीनी होटलों के बारे में सुना था, कैसे पथिक के गाँव में पहुँचते ही होटलवाले काग़ज़ की लालटेन ले पहुँच जाते हैं। यहाँ भी स्टेशन के बाहर कितने ही योकनवाले काग़ज़ की लालटेन लिये खड़े थे। हम लोगों को देखते ही हमारा होटलवाला पास आ गया। दो टैक्सियाँ किराये पर की गईं, और हम कुछ मिनट के रास्ते पर अवस्थित कस्बे योकन में पहुँच गये। वेप्पू के हमारे योकन का नाम मिकाशाया था। सीढ़ी पर ही पतले तल्ले के चमड़े के स्लीपर थे। हमने अपना बूट जूता खोला, और स्लीपर पहन कर ऊपर के तल्ले पर गये। एक अनेकाकृत बड़े कमरे के सामने स्लीपर खोल दिया और हम लोग भीतर दाख़िल हुए। कमरा बहुत स्वच्छ था। उसमें सफ़ेद तिनकों की बुनी शीतलपाटियाँ बिछी हुई थीं। बीच में एक फ़ुट ऊँची, दो फ़ुट चौड़ी तथा चार फ़ुट लम्बी लकड़ी की स्वच्छ चौकी रक्खी थी। वहीं बग़ल में चीनी मिट्टी की एक बड़ी अँगीठी में लकड़ी के कोयले की आग जल रही थी। मिकाशाया की नौकर युवतियों ने आकर ख़ूब झुककर प्रणाम करके बैठने के लिए छोटी छोटी गद्दियाँ दीं। हम लोग बैठ गये। ज़रा ही देर में चा-नो-यू (चाय का गर्म पानी) आ गया। काठ की छोटी छोटी तश्तरियों में खिलौने जैसे छोटे छोटे प्याले रक्खे गये। काफ़ी अर्ध दंडवत् (जापानी नौकरानियों का प्रणाम क़रीब क़रीब अर्ध दंडवत् होता है। अक्सर वह बैठकर ज़मीन पर दोनों हाथों और सिर को रख कर किया जाता है) के साथ प्यालों में चाय डाली जाती थी। एक तश्तरी में चीनी की कुछ रंग-बिरंगी मिठाई भी रक्खी गई। हमारे साथी चा-नो-यू को बीमारी का काढ़ा समझते थे। उनमें मेयोची महाशय के अतिरिक्त हमीं ऐसे थे जो प्रसन्नता से तथा एक-दो प्रशंसा के शब्दों के साथ जापानी चाय पीते थे। वह हल्का-सा चाय का पानी उबाला जाता था, उसमें न दूध, न चीनी और न नमक ही था। हमारे भन्तरामजी भी वाह वाह करनी चाहते थे, किन्तु हम तो उनके लड़कपन को अच्छी तरह से जानते हैं। दो-चार मीठे शब्द "ठहरो और प्रतीक्षा करो" कह देने पर मान जाते हैं। और पीछे जब उन चीज़ों का हफ़्तों का अभ्यास हो जाता है तब अपने ही अच्छी लगने लगती हैं। इधर हम लोगों के पलकों पर नींद सौ सौ मन का बोझ लाद रही थी, उधर होटल-वाले के साथ मिस्टर मेयोनी की कल के प्रोग्राम-सम्बन्धी बात ही ख़त्म न होती थी। अन्त में निर्णय हुआ, कल नाश्ता कर सात बजे दो टैक्सियों में हम लोग वेप्पू तसकुण्ड जायँगे और स्नान करके वहाँ से लौटकर १ बज कर ५५ मिनटवाली गाड़ी पकड़ेंगे। योकन के किराये के बारे में पूछने पर मालूम हुआ, खाने रहने के लिए एक आदमी का ५ येन (१ येन = साढ़े बारह आना) अर्थात् तीन रुपया साढ़े बारह आना। हमने समझ लिया, हम अमेरिकन यात्री समझे जा रहे हैं, किन्तु एक रात तो रहना था। अलग अलग कमरा लेने पर किराया और बढ़ जाता, इसलिए तीन तीन आदमियों के लिए हमने तीन कमरे लिये। हमें नीचे बिछाने के लिए दो रुईदार गद्दे, ऊपर ओढ़ने के लिए दो रुईभरे लिहाफ़, और सिर के नीचे रखने के लिए एक धान की भूसी भरी एक छोटा तकिया मिला। ढाई बजे के क़रीब हम सोने पाये।

सवेरे नींद सात बजे खुली। नौकरानियों ने फिर अर्ध दण्डवत् अदा की, और वे हमारा गद्दा-तकिया

समेट कर ले गईं। यह अर्ध दण्डवत् बहुत बुरी मालूम हो रही थी। यदि दोनों ओर से यही प्रणाम करने का ढङ्ग समझा जाता तो वह दूसरी बात थी, किन्तु यहाँ तो उसके पीछे दास और स्वामी का भाव छिपा हुआ है। जापान ने जैसे और बहुत-सी हानिकारक बातें छोड़ दी हैं, वैसे ही चाहता तो इसे भी छोड़ देता, किन्तु शायद इन मिथ्या विश्वासों से उसके ऊँची श्रेणी के लोग कुछ फ़ायदा समझते हैं, इसलिए उन्होंने इसे नहीं हटाया। पाखाना हिन्दुस्तानी ढङ्ग का ही खुड्डीवाला था। हाँ, पेशावख़ाने में योरपीय ढङ्ग इस्तेमाल किया गया था। मुँह धोने के लिए नल का और चीनी का अचल पात्र था। मकान सारा लकड़ी के ढाँचे का था, जिसमें बाहरी दीवारों को छोड़कर बाक़ी सभी दीवारें लकड़ी के फ्रेम पर काग़ज़ चिपका कर बनाई गई थीं। ये फ्रेम बहुत हलके तथा बग़ल में खिसकाऊ थे। जापान में बिजली गाँवों तक में पहुँच गई है, इसलिए उसका इन्तज़ाम सभी जगह है। कमरे में सफ़ाई चरम सीमा को पहुँची हुई थी, किन्तु सिर्फ़ दो तसवीरों को छोड़ कर और कोई सजावट न थी। वस्तुतः यह सूफ़ियाना सजावट ही गज़ब ढा रही थी।

सवेरे ही हमारा नहा लेने का समय था। किन्तु हमारे गुजराती साथी ने गुसलख़ाने की जो हालत बयान की उससे हमें अपना इरादा छोड़ देना पड़ा। वे कह रहे थे, स्त्री-पुरुष दोनों नंगे एक ही कोठरी में नहा रहे हैं। सात बजे फिर हमारी मंडली उसी कमरे में चौकी के किनारे बैठ गई। मेयोची और हमारे लिए जापानी भोजन था, औरों के लिए पावरोटी, दूध, सलाद तथा फल। हमने जहाज़ से ही जापानी ढंग के भोजन को अपनाना शुरू कर दिया था। यद्यपि जहाज़ का सारा भोजन योरपीय ढंग का होता है, तो भी नाश्ते में एक परकार जापानी भोजन का भी होता है। तिब्बत में दो लकड़ियों से भोजन करना सीखने में हम फ़ेल हो गये थे, किन्तु अब की चाहे जैसे हो सीखना था। इतने दिनों में अब हमें कुछ आ भी गया है। भोजन में मसाले-मिर्च का अभाव, और सभी चीज़ें चीनी-सी पड़ी मालूम होती हैं। ख़ैर, निकासाया में भात, दो तरह की तरकारी, तीन तरह की मछली, एक प्रकार का मांस, सोया का सिरका, कुछ चटनी और फल अच्छी तरह खाये।

आठ बजे हम लोग तैयार हो गये। दस दस येन पर एक बजे तक (पाँच घण्टे) के लिए दो टैक्सियाँ की गईं। छूट उठा दिये गये। अपने राम ने ड्राइवर की दाहनी बग़ल अगली सीट दख़ल में की। हमारी दोनों टैक्सियों में ड्राइवर का पहिया अगली सीट की बाईं ओर था, जैसा कि फ्रांस और जर्मनी आदि में होता है। लेकिन यहाँ वहाँ की भाँति बायें चलो की जगह दायें चलो का नियम नहीं है। बेप्पू बस्ती बहुत भारी नहीं है। बस्ती के आख़िर के अगल-बग़ल खेतों, बाग़ों, और घर के हातों में जहाँ-तहाँ गर्म पानी के सोते निकल रहे थे। कहीं कहीं तो सिर्फ़ भाफ ही निकल रही थी। बेप्पू में ट्राम भी है। कुछ दूर तक ट्राम का रास्ता रहा, फिर हम समुद्र को दायें रखते चले। फिर समुद्र छोड़कर एक जगह रेलवे लाइन पारकर हम बाईं ओर पहाड़ की ओर चले। प्रायः ५-६ मील चलने पर पहली जगह कानेकाओ दोनों आईं। कुछ गुफ़ायें भी थीं, बाहर कुछ स्त्रियाँ तसवीरें रक्खे बेच रही थीं। दस सेन् (पाँच पैसा) महसूल देकर हम गुफा के भीतर घुसे। गुफायें खोद कर बनाई गई हैं, किन्तु उनके भीतर तरह तरह के रंग की गंधक तथा दूसरे पत्थरों की बनावट है। पथदर्शिका हर एक चीज़ पर लेक्चर देती जाती थी, और श्री मेयोची हमें उसे दो शब्दों में बतलाते जाते थे। कहीं सफ़ेद गंधक थी, यह हिम-स्वर्ग है। कहीं पीली—यह कांचन-स्वर्ग है। इत्यादि। बीच बीच में भगवान् बुद्ध, अवलोकितेश्वर, बोधिसत्त्व। अवलोकितेश्वर ने चीन में अपने पुरुष रूप को छोड़ दिया है, अब वे करुणामय न रह कर करुणामयी देवी हो गये हैं, तथा और कितने ही देवता। लौटकर हमने कुछ तसवीरें ख़रीदीं, फिर आगे बढ़े। हमारे रास्ते में सैकड़ों स्कूली लड़कों और लड़कियों की पार्टी पीठ पर झोलों में सामान लादे जा रही थी। जापानी लोग प्राकृतिक दृश्यों के देखने के बड़े प्रेमी होते हैं। जापान में एक हज़ार तप्तकुंड देश के भिन्न भिन्न भागों में फैले हुए हैं। हर साल दो करोड़ आदमी इन चश्मों को देखने और नहाने आते हैं। बेप्पू के चश्मे सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं।

हम पहाड़ पर चढ़ रहे थे। हमारे आस-पास कितने ही गाँव थे। कृषकों के घरों में से कुछ खपड़ैल से छाये हुए थे, और कुछ तिनके से। भीतर देखने की बड़ी इच्छा थी, किन्तु आज उसका मौक़ा न मिला। हाँ, हम देख रहे थे कि यहाँ के किसान भी काम पर कोट-पतलून के साथ ही जाते हैं। लम्बा किमोनो दर असल है भी नहीं काम करने के वक़्त की पोशाक। भारत में भी काम करते वक़्त यदि कुर्ता जाँघिया रक्खा जाय, तो कितना अच्छा हो। दूसरा चश्मा चिनोइके है। यहाँ एक गहरा कुंड है, जिसका रंग लाल रोरी या सिंदूर जैसा है। यहाँ के चश्मों के बारे में लोगों का विश्वास है कि वे कितने ही प्रकार के रोगों को दूर करते हैं।

फिर कुछ दूर ऊपर चलने पर कबाना मिला। बीसों जगह रंगबिरंगी कीचड़ खौल रही थी। कहीं हलवा-सा पक रहा था, कहीं हथेली भर के बिलकुल अर्ध गोल बुलबुले थोड़ी थोड़ी दूर पर निकल रहे थे, कहीं कितने कुंड नीचे से भाफ निकल रही थी। पथदर्शिका ने सब जगहें बतलाईं। इन सभी स्थानों में दस से पंद्रह सेन् तक हर यात्री को देना पड़ता है, किन्तु जगहों को ख़ूब स्वच्छ और सजा देखकर पैसे के सदुपयोग से चित्त प्रसन्न हो जाता है। भारत में भी सीता-कुंड, राजगिर, सोरना जैसे कितने ही गर्मकुंड हैं, किन्तु वे कहाँ इतने आकर्षक बनाये गये हैं? यहाँ हर एक कुंड या कुंड-समुदाय के आस-पास सुंदर बग़ीचा लगा हुआ है। सस्ते जल-पान का प्रबन्ध है, फ़ोटो और पुस्तकों की दूकानें हैं, और ऊपर से पथदर्शिकाओं का हर एक कुंड की गहराई, उसके तापमान, उसके इतिहास पर लेक्चर होता है। नहाने के लिए सुन्दर जगहें हैं, ठहरने के लिए नज़दीक में भी योकन हैं।

और ऊपर चढ़ने पर हमारा मोटर हरियाली से लदे एक पहाड़ की जड़ में जा पहुँचा। सारा दृश्य जादू का-सा था। पहाड़ की जड़ में एकदम हरे पानी का एक कुंड था, जिसमें दो मिनट में अंडा उबल जाता था। इस स्थान का नाम शिन् है।

अन्त में हम हचीमन् कुंड पर पहुँचे। यहीं हमारे साथियों को स्नान करना था। हमने तो नग्न-स्नान देखकर अभी सब्र करना ही पसन्द किया। एक योकन के तीसरे तल्ले पर हमें जगह मिली। यहाँ से नीचे बेप्पू तक की भूमि ढालू चली गई थी। जगह जगह देवदार तथा दूसरे वृक्षों की शोभा निराली थी। बीच बीच में किसानों के खेत और मकान तथा क़स्बे दिखाई पड़ रहे थे। खाना खाना था। ५० सेन् (छः आने) में ऐसा और इतना खाना भारत में भी नहीं मिल सकता, और ऊपर से परिचारिकाओं की दण्डवत् मुफ़्त में।

कोबे ५-५-३५

नहाने के बाद 'इन्स्टिट्यूट आफ़ बलनेओ थेराप्यूटिक्स' देखना निश्चित हुआ। बहुत दूर न था। बेप्पू-तप्त-कुण्डों से प्रायः डेढ़ मील उत्तर-पश्चिम साढ़े चौबीस एकड़ भूमि में यह चिकित्सा-संस्था स्थापित है। प्रबन्ध इसका क्यूशू का सरकारी विश्वविद्यालय करता है, और स्थापना सरकार की सहायता से हुई है। संस्था का मुख्य उद्देश बेप्पू के तप्तकुण्डों का चिकित्सा के लिए वैज्ञानिक ढङ्ग से इस्तेमाल करना है। संस्था की भूमि के भीतर दो गर्म पानी के सोते भी हैं। एक में कार्बोलिक एसिड की प्रधानता है और दूसरे में गन्धक की। दोनों का तापमान ६० डिग्री सेंटीग्रेड के बराबर है। संस्था में ७० रोगियों के रहने की जगह है। मासिक शुल्क के अनुसार वे पहली, दूसरी, तीसरी—इन तीन श्रेणियों में रक्खे जाते हैं। पहले दर्जे में मकान और खाने का ख़र्च १३४ रुपया प्रतिमास पड़ता है, तीसरे दर्जे में ५२ रुपये के क़रीब। कितने ही डाक्टर तथा रोगी-परिचारिकायें यहाँ शुश्रूषा के लिए बराबर तैयार रहती हैं। बहुत-से स्नानागार या स्नान-स्थान बने हुए हैं, जिनमें इन तप्त-स्रोतों से ओषधि-स्नान, कार्बोनिक एसिड-स्नान, विद्युत्-जलस्नान, वायु-बुद्बुद स्नान आदि कितने ही प्रकार के स्नान कराये जाते हैं। चिकित्सागृह नये नये यन्त्रों से सुसज्जित है। द्वार पर हम लोगों को जूता खुलवाकर स्लीपर दिया गया, फिर एक

डाक्टर ने हमें कितने ही कमरों को दिखाया। देखने की बहुत-सी चीज़ें थीं, किन्तु हमें रेलगाड़ी भी पकड़नी थी, इसलिए जल्दी विदा होकर स्टेशन की ओर भागे। स्टेशन पर पहुँचने पर दस मिनट गाड़ी के आने में बाक़ी थे।

तीसरे दर्जे की गाड़ी में सवार हो हम मोजी की ओर चले। अब की रास्ते का या जापान देश का ग्राम्य दृश्य देखने का मौक़ा मिला। जगह जगह गाँव-क़स्बे हैं। गाँवों तक में बिजली का प्रबन्ध है, जिसके सहारे लोग मोजा बुनने की मशीनें तथा दूसरे छोटे छोटे यंत्रों को लेकर चीज़ें बनाते हैं।

इन चीज़ों के बेचने का सुन्दर प्रबन्ध सरकार की ओर से है। क़स्बों में जगह जगह फ़ैक्टरियाँ हैं। जंगल यहाँ नेपाल की तरह बेदर्दी से काटे नहीं गये हैं। जगह जगह बाँस, देवदार तथा दूसरे वृक्षों के वन हैं। बाँस के कई जगह बग़ीचे भी लगे हुए हैं। बाँस से जापान में कुर्सी, मेज़, टोकरी आदि सैकड़ों तरह की चीज़ें बनती हैं*, इसलिए इसकी ओर ख़ास ध्यान रक्खा जाता है। यदि जापान की तरह भारत में भी बिजली का प्रचार हो और छोटी छोटी मशीनों-द्वारा लोग चीज़ें तैयार करें तो यहाँ भी ऐसे ही कामयाबी हो सकती है।

जापान का प्राकृतिक सौंदर्य अद्भुत है और गर्मी का एक तरह से यहाँ नाम नहीं है। इसलिए आदमी काम करने में खूब मुस्तैद रहते हैं। जापान जलवायु में भूतल का स्वर्ग है। समय समय पर आनेवाले भयङ्कर भूकम्पों की इसके विरुद्ध कही जा सकती है, किन्तु उसने तो जापानी लोगों को मृत्युंजय बना दिया है। हँसते हँसते इन लोगों को मृत्यु का आलिंगन करते देख बाहर के लोग आश्चर्य करते हैं।

हम ५ बजे के क़रीब मौजी पहुँचे। जेटी पर थोड़ी देर में मोटर-नौका मिली, और हम फिर जहाज़ पर चले आये। सारी यात्रा में आदमी पीछे २० येन् या प्रायः १६) रुपये खर्च हुए।

६ बजे शाम को अन्देमारु चल पड़ा। चार बजे के क़रीब जहाज़ कोबे बंदरगाह के बाहर खड़ा हो गया।

यह बंदरगाह बहुत बड़ा है। लहरों के आघात से उसे बचाने के लिए यहाँ पत्थर की दीवारें बनाई गई हैं। बड़े से बड़ा जहाज़ भी तट तक पहुँच सकता है। हम लोगों का जहाज़ तूशान के डेक पर जाकर लगा। कुछ भारतीयों को यहीं उतर जाना था, इसलिए कोबे के कुछ भारतीय उन्हें लेने आये थे। वहीं श्री कोतक और श्री आनन्दमोहन-सहाय से भेंट हुई। आनन्दमोहन जी भागलपुर (बिहार) के रहनेवाले हैं। असहयोग में मेडिकल कालेज की पढ़ाई उन्होंने छोड़ दी थी। गया-कांग्रेस (१९२२ ई०) के बाद वे जापान चले आये। तब से जापान में ही हैं। भारतीय राष्ट्रीय महासभा की जापानी शाखा के वे सभापति भी हैं, और अपना बहुत-सा समय राष्ट्रीय कामों में ही देते हैं।

पासपोर्ट का झगड़ा समाप्त कर लेने पर हमें आनन्दमोहन जी एक बौद्ध मंदिर में ले गये। जूता उतार कर मंदिर में गये। जापान में मंदिर में घुसने से पूर्व जूते का उतार देना ज़रूरी है। खूब स्वच्छ विशाल हाल में पद्मासनासीन सुन्दर बुद्ध-मूर्ति है। फ़र्श पर साफ़-सुथरी मुलायम चटाइयाँ बिछी हुई हैं। भगवान् बुद्ध के प्रति अपनी भक्ति प्रकट कर चुकने पर हम एक कमरे में ले जाये गये। यहाँ एक एक प्याला जापानी ढंग की चाय दी गई। सामने की दीवार पर नागरी अक्षरों में 'अमितायुस' लिखा टँगा देखकर पूछा। मालूम हुआ कि ब्रह्मदेश के भिक्षु श्री उत्तम यहाँ रह चुके हैं। यह उन्हीं के हाथ का लिखा है। यहाँ से कोतक महाशय के यहाँ गये। हमारा जहाज़ कोबे में चार दिन ठहरनेवाला था, इसलिए नारा, होरियोजी, क्यूतो आदि स्थानों के देख आने का प्रोग्राम बना और ग्यारह बजे रात को हम फिर अपने जहाज़ पर लौट आये।

* बाँस के करील की तरकारी बहुत स्वादिष्ट समझी जाती है।

भारतवर्ष की वर्तमान राजनैतिक परिस्थिति

सिंहावलोकन

लेखक, श्रीयुत कृष्णमोहन, एम० ए०

इधर कुछ दिनों से देश का राजनैतिक वातावरण इतना शीघ्र शीघ्र बदल रहा है कि कोई यह नहीं कह सकता कि अगले साल हवा का क्या रुख होगा। बम्बई-कांग्रेस में यह प्रस्ताव पास हुआ था कि वर्तमान शासन-प्रणाली का विरोध अन्दर और बाहर दोनों तरफ़ से किया जाय और इसी लिए बड़े बड़े वादे करके कांग्रेसवाले लेजिस्लेटिव असेम्बली में गये भी। इसमें सन्देह नहीं कि इस बार की असेम्बली में सरकार को कई बार हार खानी पड़ी, मगर देश के शासन में उसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। सरकार अपनी दृढ़ नीति पर बराबर डटी रही। यह नहीं कहा जा सकता कि असेम्बली में सरकार की हार कांग्रेस-दल की वजह से हुई थी। सच बात तो यह थी कि सारी शक्ति श्री जिन्ना और उनके दल के हाथ में रही। जिधर वे झुक जाते, उधर को विजय मिलती थी। इसका पता साम्प्रदायिक निर्णय-सम्बन्धी प्रस्ताव के वाद-विवाद से अच्छी तरह लग जाता है। जबलपुर में कांग्रेस-कार्य-समिति के सामने जब कांग्रेस पार्लियामेंटरी बोर्ड के कार्यों का प्रशंसात्मक ब्योरा उस दिन पेश किया गया तब समिति ने उसकी कोई प्रशंसा नहीं की। इससे यह बात साबित होती है कि पार्लियामेंटरी बोर्ड के कार्यों को अन्य लोग ही नहीं, बल्कि कांग्रेस की कार्य-समिति भी कोई विशेष महत्त्व नहीं देती है। यह तो रही कांग्रेस की बात।

× × ×

उधर सरकार नये शासन-विधान को पार्लियामेंट से पास करवा कर उसे क़ानून का रूप देने में जी-जान से लगी थी। भारतवर्ष में जगह जगह हर तरह से, जहाँ तक सम्भव था, नये विधान का विरोध ही किया गया; मगर सरकार अपनी ही धुन में मस्त रही। ब्रिटिश मंत्रिमंडल में भारी परिवर्तन हुआ और सर सैमुएल होर की जगह मार्किस आफ़ ज़ेटलैंड भारत-मंत्री नियुक्त किये गये।

नये भारत-मंत्री भारत में बंगाल के गवर्नर रह चुके हैं और उन्होंने हिन्दू-कला और इतिहास का अच्छा अध्ययन भी किया है। इसके अलावा वे शुरू में साम्प्रदायिक निर्णय के विरुद्ध भी रहे हैं। इसी से कुछ हिन्दुओं को आशा हुई कि नये भारत-मंत्री हिन्दू-हितों पर उस तरह कुठाराघात न करेंगे जिस तरह सर सैमुएल होर ने किया है। इसी बीच में 'इंडिया-बिल' की ३०४ वीं धारा में कुछ सुधार किया गया। हिन्दू-नेता समझने लगे कि अब क्या—बाज़ी मार ली! साम्प्रदायिक निर्णय जैसे विषधर साँप का दाँत तोड़ दिया गया! यही नहीं, इस सिलसिले में उनके बधाई के तार तक दौड़ने लगे। यह हाल देखकर मुसलमानों के कान खड़े हो गये। उन्होंने भी समझा कि सारा खेल मिट्टी में मिल गया और इतने दिनों की मेहनत व्यर्थ गई। वे उक्त धारा के परिवर्तन का विरोध करने लगे। भारत की इस साम्प्रदायिक चहल-पहल ने लार्ड ज़ेटलैंड को कुछ न करने दिया और उन्हें अपने एक वक्तव्य में यह स्पष्टरूप से घोषित करना पड़ा कि साम्प्रदायिक निर्णय में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया गया है और बिना पार्लियामेंट की आज्ञा के उसमें कोई रद्दोबदल आगे भी नहीं होगा। यह हुई नये भारत-मंत्री की

सबसे पहली कार्रवाई। इसका अर्थ यह है कि सरकार सम्प्रदायवाद के विष को तभी विनष्ट करेगी जब यहाँवाले उसके विनाश के लिए स्वतः अग्रसर होंगे, अन्यथा वह उसे फलने-फूलने देगी। वास्तव में उक्त धारा के अनुसार देश के अन्दर साम्प्रदायिक समझौता कभी नहीं हो सकेगा और उसके अभाव में यहाँ कभी सच्ची राष्ट्रीयता भी न पनप सकेगी। यही नहीं, धीरे धीरे साम्प्रदायिकता का विष व्यवसायियों और मज़दूरों में भी फैलने लग जायगा। अभी तक यह उनमें उतना नहीं फैला है, मगर जब यह यहाँ जड़ पकड़ लेगा तब उनमें भी यह फैल जायगा। कुछ स्वार्थियों के हथकंडों के कारण देश को इस विभीषिका का अनुभव करना पड़ रहा है।

जिस इंडिया-बिल का भारत ने दृढ़ता से विरोध किया, अन्त में २ अगस्त को सम्राट् ने उस पर अपनी स्वीकृति दे दी और संशोधित 'इंडिया-बिल' अब क़ानून बन गया है। अब देश का शासन इसी के अनुसार होगा। इसमें संदेह नहीं कि भारत-मंत्री के हाथों से कुछ विभागों का प्रबन्ध लेकर भारतवासियों के हाथों में दे दिया गया है, मगर इसके साथ साथ गवर्नरों और गवर्नर-जनरल को इतने विशेषाधिकार दे दिये गये हैं कि उनके कारण प्रजा को जो अधिकार भी दिये गये हैं वे सब बेकार-सा हो गये हैं। विशेषाधिकार-द्वारा जब वे चाहेंगे और जहाँ भी वे चाहेंगे, मनमाना काम कर सकेंगे। नये शासन-विधान से सिवा इसके कि बैठे-बैठाये ग़रीब भारतवासियों पर कई करोड़ रुपये साल अधिक व्यय का भार लद गया, राष्ट्रीयता की दृष्टि से कोई विशेष लाभ होता नहीं दिखाई देता।

परन्तु इस समय प्रश्न यह है कि किया क्या जाय। ऐसा तो है नहीं कि यदि राष्ट्रीयता-वादी भारतीय नये विधान को ठुकरा देंगे तो सरकार का काम ही न चलेगा। उसे तो विधान को चालू करने के लिए पिछली बार की तरह इस बार भी काफ़ी लोग मिल जायँगे। ऐसी परिस्थिति में देश का क्या कर्तव्य है? लिबरल और नेशनलिस्ट लोगों का कहना है कि अगले चुनाव में बहुसंख्या में कौंसिलों में पहुँचकर उन पर अपना क़ब्ज़ा कर लेना चाहिए और फिर सरकार के कामों में अड़चन डालकर भारत की माँगों को स्वीकार करने के लिए उस पर दबाव डालना चाहिए। इसके लिए असेम्बली और कौंसिलों में केवल विरोध ही करने के लिए नहीं जाना चाहिए, बल्कि जहाँ सम्भव हो, मिनिस्टरी के पद भी ग्रहण करने चाहिए। इससे अपनी शक्ति संगठित रहेगी और सरकार की कड़ी आलोचना भी की जा सकेगी। इनके सिवा वे लोग भी अपनी घात में हैं जो अब तक कौंसिलों और असेम्बली में मज़े उड़ाते रहे हैं और जो यह नहीं चाहते कि ऐसे लोग कौंसिलों और असेम्बली में जायँ जो राष्ट्रीय माँगों के लिए सरकार से लड़ते हैं। ऐसी हालत में कांग्रेस की क्या नीति होगी इस पर सभी की निगाह गड़ी हुई है।

इस समय कांग्रेस में तीन मुख्य दल हैं। पहला दल साम्यवादियों का है। इनमें अधिकांश शुरू से ही इसके विरोधी थे कि कांग्रेसवाले असेम्बली में जायँ। इन लोगों को पूँजीपतियों और मज़दूरों की लड़ाई की ही फ़िक्र रहती है, इसी लिए पद ग्रहण करना या कौंसिलों में जाने आदि जैसी बातों के ये लोग ख़िलाफ़ हैं। इस दल का पहले तो काफ़ी प्रभाव था, मगर जब से इसने कांग्रेस की नीति का खुल कर विरोध करना शुरू किया है तब से यह क़रीब क़रीब कांग्रेस से अलग हो गया है और इसकी बातों का कांग्रेस की नीति पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। दूसरा दल उन कांग्रेसवादियों का है जो सरकार से मिल कर किसी तरह का समझौता करने को तैयार नहीं हैं। इस दल की भी शक्ति बम्बई-कांग्रेस में क्षीण थी, इसी लिए इसके विरोध करते हुए भी कौंसिल-प्रवेश का प्रस्ताव पास हो गया। मगर उस समय जो लोग कौंसिल-प्रवेश के पक्ष में थे उन्होंने यह साफ़ शब्दों में प्रकट कर दिया था कि उनकी नीति भी असेम्बली में वही होगी जो देशबन्धु चितरंजन दास और त्यागमूर्ति पंडित मोतीलाल नेहरू की स्थापित की हुई स्वराज्य-पार्टी की थी यानी वे कौंसिल-प्रवेश तो अवश्य करेंगे, मगर वह होगी सरकार के शासन का विरोध करने के लिए और वे कोई पद इत्यादि न ग्रहण करेंगे। किन्तु उस नीति से सरकार पर सिवा दो चार हार खाने के और कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यह देखकर नये पार्लियामेंटरी बोर्ड के सदस्यों ने यह

उचित समझा कि अगले शासन-विधान में कांग्रेसवालों को पद भी अवश्य ग्रहण करना चाहिए। इससे देश का अधिक लाभ होगा और कांग्रेस-दल भी संगठित रहेगा, जिससे सरकार की नीति पर भी असर पड़ेगा। इनका यह कहना है कि पद-ग्रहण करके सरकार के विधान का विरोध किया जाय, जिससे शासन में गड़बड़ हो और सरकार को हार मानकर भारत की राष्ट्रीय माँगों को स्वीकार करना पड़े। सबसे पहले इस बात की घोषणा श्री सत्यमूर्ति ने की कि अगले शासन-विधान में कांग्रेस-दलवाले बहुसंख्या में पहुँच कर सरकारी पदों पर क़ब्ज़ा करेंगे। शुरू में कांग्रेस-दल के पदाधिकारियों ने न इस बात का प्रतिवाद ही किया और न खुलकर स्वीकार ही किया। मगर बात छिपी कब तक रह सकती थी। धीरे धीरे यह स्पष्ट हो गया कि पार्लियामेंटरी बोर्डवाले पद ग्रहण करने की सोच रहे हैं। बस फिर क्या था! कांग्रेसवाले फिर दो दलों में विभाजित हो गये। यही मसला वर्धा की कार्य-समिति की बैठक में पेश हुआ था। परन्तु कार्य-समिति को दोनों दलों को साथ रखना था इसी लिए उसने इस सवाल को थोड़े दिनों के लिए टाल दिया है। मगर इतना गहन विषय कब तक टल सकता है? कांग्रेस को एक दिन तो अपनी नीति स्पष्ट करनी ही पड़ेगी। इसमें सन्देह नहीं कि डाक्टर अन्सारी, डाक्टर विधानचन्द्र राय, श्री आसफ़अली और चौधरी खलीकुज़्ज़मा ने अभी हाल में ही अपना एक वक्तव्य प्रकाशित किया था, जिसमें उन्होंने कहा था कि कांग्रेसवालों को सभी सरकारी पदों पर क़ब्ज़ा करना चाहिए। परन्तु यह तो तभी हो सकेगा जब कांग्रेसवाले भावी शासन-विधान में पद ग्रहण करने की नीति स्वीकार करेंगे।

इस सम्बन्ध में एक बात और है। जिस नीति को श्री भूलाभाई देसाई, श्री सत्यमूर्ति, डाक्टर अन्सारी, डाक्टर विधानचन्द्र राय तथा अन्य उनके साथी स्वीकार करने के लिए कांग्रेस को राय दे रहे हैं वही नीति इस समय लिबरलों तथा अन्य कई राष्ट्रीय विचारवाले दलों की भी है, जो कांग्रेस के सत्याग्रह-आन्दोलन के पक्ष में नहीं थे। उस दृष्टिकोण से कांग्रेसवालों और उन लोगों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। ऐसी हालत में अच्छा तो यही था कि आपस का भेद-भाव भूलकर देश-हित के लिए सब दल एक साथ मिलकर कौंसिलों में जाते। परन्तु स्वार्थी लोग अभी से अपनी अपनी फ़िक्र में हैं। वे चाहते हैं कि कांग्रेसवाले कोई पद न ग्रहण करें, तभी उनका काम बनेगा। फिर जब कौंसिलों में जाना है, चाहे वह नये विधान को तोड़ने के लिए ही क्यों न हो, पूरी शक्ति का उपयोग करना चाहिए। यदि कांग्रेसवाले लिबरलों तथा अन्य राष्ट्रीय विचारवालों से समझौता करके अगले चुनाव को लड़ेंगे तो निस्सन्देह वे लोग कामयाब होंगे और सहज में ही डाक्टर अन्सारी के कथनानुसार सभी अच्छी जगहें उन लोगों के क़ब्ज़े में आ जायँगी, जिससे प्रतिक्रियावादियों को अपने हथकंडे साफ़ करने का मौक़ा न मिलेगा। परन्तु यदि कांग्रेस ने अपनी ज़िद के कारण अन्य राष्ट्रीय दलों से समझौता न किया तो अगले चुनाव में वर्तमान असेम्बली जैसी स्थिति का होना असम्भव न होगा और उन्हें किसी अल्पसंख्यक दल के इशारों पर ही नाचना पड़ेगा।

कांग्रेसवालों का कौंसिलों में जाना और फिर कोई पद न ग्रहण करना, 'गुड़ खाना और गुलगुलों से परहेज़' वाली कहावत के अनुसार ही होगा। नये शासन-विधान की आयोजना सन् १९१९ वाले क़ानून को दृष्टि-कोण में रखते हुए की गई है। यदि इसमें मंत्रिमंडल से बाहर रह कर विरोध किया गया तो फ़िज़ूल ही आपस में लड़कर अपनी शक्ति का दुरुपयोग किया जायगा, साथ ही सरकार का भी कुछ बने या बिगड़ेगा नहीं।

अभी हाल में युक्त-प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी ने म्युनिसिपल्टी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चुनाव के लिए अपना एक कार्य-क्रम प्रकाशित किया है। उक्त कार्यक्रम का एक दसवाँ हिस्सा भी सफल नहीं हो सकता यदि कांग्रेस-वाले अगले चुनाव में अधिक संख्या में पहुँचकर कौंसिलों पर अपना क़ब्ज़ा नहीं करते और अपने जैसे विचारवालों का मंत्रिमंडल नहीं बनाते। ऐसी स्थिति में तो यदि कांग्रेसवाले कौंसिलों में जाते हैं तो उन्हें चाहिए कि वे अभी से अपना संगठन करें, साथ ही ऐसे लोगों को भी

अपने साथ ले लें जो कांग्रेस में न होते हुए भी उसके पार्लियामेंटरी बोर्ड की नीति से सहमत हैं। सन् १९०७ में सूरत-कांग्रेस के बाद गरम दलवाले अलग कर दिये गये थे और सन् १९१७ तक कांग्रेस आज-कल के लिबरलों के हाथ में रही थी। सन् १९१६ की लखनऊ-कांग्रेस में गरम दलवाले फिर शामिल हुए और सन् १९१९ तक नरम दलवाले कांग्रेस से बाहर हो गये। तब से अब तक कांग्रेस गरम दलवालों के हाथ में रही। मगर बम्बई-कांग्रेस के बाद से कांग्रेस-पार्लियामेंटरी बोर्ड का ज़ोर अधिक हो गया है। इस नई पार्टी और पुराने नरम दल-वालों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। ऐसी परिस्थिति में लिबरलों का इस नई पार्टी के साथ मिलकर एक मुख्य उद्देश के लिए कार्य करना असंभव भी नहीं प्रतीत होता।

इन सब बातों को दृष्टि में रखते हुए यह कहना पड़ता है कि देश की राजनैतिक परिस्थिति दिन दिन इतनी तीव्र गति से बदल रही है कि जब नया शासन-विधान कार्य में परिणत किया जायगा उस वक्त क्या होगा, अभी से कुछ कहना कठिन है। फिर भी इस समय भिन्न भिन्न दलों के लोग अपने विचारों में तल्लीन होते हुए भी अन्य दलों के कार्यों को बड़ी सतर्कतापूर्वक देख रहे हैं। सच-मुच किसका साथ देना चाहिए, इस निर्णय पर पहुँचने के पूर्व बड़ी सावधानी की आवश्यकता है।

× × ×

देशी राज्यों की प्रजा का प्रश्न भी ज़ोर पकड़ रहा है। बहुत-सी देशी रियासतों की प्रजा वहाँ के शासन से सुखी और संतुष्ट नहीं है। प्रजातंत्र और जनसत्ता की बढ़ती हुई लहर में वहाँ की प्रजा में भी आशा का संचार होना स्वाभाविक ही है। इसी लिए देशी राज्यों की प्रजा अक्सर कांग्रेस-कमेटी से देशी राज्यों की प्रजाओं के प्रति उसकी क्या नीति है, इसका स्पष्टीकरण करने को कहती रहती है। पहले भी एक बार श्रीमती एनीबेसेंट ने देशी राज्यों को स्वराज्य कहा था। महात्मा गांधी ने भी देशी नरेशों और उनकी प्रजाओं को रामराज्य का स्मरण दिलाया था। मगर श्रीमती बेसेंट का वह स्वराज्य या महात्मा गान्धी का कहा हुआ रामराज्य किसी भी भारतीय राजनीतिज्ञ को आज स्वीकार न होगा। अभी हाल में ही श्री भूलाभाई देसाई ने मैसूरराज्य में एक भाषण किया था, जिसमें उन्होंने देशी राज्यों की खूब प्रशंसा की और वहाँ की प्रजा को आदेश दिया कि नरेश सर्वेसर्वा हैं, राजा का वाक्य ही न्याय है, वही सब शक्ति का केन्द्र है। इसी लिए क़ानून की सूक्ष्म दृष्टि से राजा, न कि उसकी प्रजा, फ़ेडरेशन में राज्य का प्रतिनिधि बनकर जा सकता है। श्री देसाई के विचार में सारी राजशक्ति राजा के हाथों में ही रहनी चाहिए। यदि वह उसमें से कुछ हिस्सा अपनी प्रजा के सिपुर्द कर देता है तो अपनी ही रियासत में दूसरी शक्ति खड़ी करता है। और तब प्रजा को दो अधिकारियों की आज्ञा माननी पड़ेगी। उनकी राय में कांग्रेस को रियासती मामलों में पड़ने का अधिकार ही नहीं है, इसी लिए देशी रियासतों की प्रजा को आपने आदेश दिया कि अपने राजाओं के प्रति राजभक्ति का ही भाव रक्खें। श्री देसाई ने यह भी कहा कि उनके विचार से जैसे प्रजातन्त्र के माने स्वाधीनता नहीं है, उसी प्रकार राजतन्त्र में स्वाधीनता असंभव नहीं है।

श्री भूलाभाई देसाई आज-कल कांग्रेस के एक प्रमुख व्यक्ति हैं और जब तक उनके इस मैसूर में दिये हुए भाषण का कोई प्रतिवाद नहीं होता, क्या यह समझना अनुचित होगा कि यही नीति कांग्रेस की भी देशी रियासतों की प्रजा के प्रति है। श्री देसाई के भाषण का काफ़ी विरोध हुआ है। किन्तु वर्धा में कार्य-समिति की जो बैठक अभी हाल में हुई थी उसमें इस विषय पर काफ़ी बहस हुई, मगर आख़िर में निश्चय यह हुआ कि श्री भूलाभाई ने उक्त भाषण अपनी निजी हैसियत से दिया था और कांग्रेस की नीति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। इस सम्बन्ध में कांग्रेस की वही नीति है जो कलकत्ता-कांग्रेस में घोषित हुई थी और पिछले अप्रैल में जो जबलपुर की बैठक में दुहराई जा चुकी है।

× × ×

देश की राजनैतिक स्थिति पर विचार करते हुए आतंकवाद की ओर भी एक दृष्टि डालना आवश्यक है। आतंकवाद का बङ्गाल प्रान्त केन्द्र होगया है। बङ्गाल-सरकार ने भी उसे बढ़ने से रोकने में अपनी पूरी शक्ति लगा दी है। फलस्वरूप खुले आम आतंकवाद का ज़ोर अवश्य कम हो गया। मगर जैसा कि ढाका में अपने भाषण में सर जान एन्डरसन ने कहा है कि भर्ती छिपे छिपे अभी जारी है। आतंकवाद का मुख्य कारण है बंगाल में शिक्षित समाज की बेकारी। जब तक सरकार उस बढ़ती हुई बेकारी को रोकने का कोई प्रबन्ध नहीं करती और केवल दमन के ही सहारे उसे दबाना चाहती है, वह सफलीभूत पूरी तौर से नहीं हो सकती। सरकार को चाहिए कि वह जनता पर विश्वास करे। सर जान एन्डरसन ने नरम नीति की घोषणा की है और उसी के अनुसार पहले से कुछ ज़्यादा नज़रबन्द क़ैदी छोड़े भी जा रहे हैं। एसोसिएटेड प्रेस की एक सूचना-द्वारा ज्ञात होता है कि हाल में ही बंगाल-सरकार ने क़रीब ८०० नज़रबन्द क़ैदियों को गाँवों में रहने को भेज दिया है, क़रीब १७५ को घर पर रहने के लिए, २५० को कुछ शर्तें लगा कर और १०० व्यक्तियों को बिना किसी शर्त के छोड़ दिया है। श्री शरच्चन्द्र बोस भी बिना किसी शर्त के रिहा कर दिये गये हैं। मगर इतने थोड़े-से लोगों को छोड़ने से काम न चलेगा। उदार नीति का अर्थ तो यह है कि जितनी शीघ्रता से हो सके नज़रबन्द क़ैदी मुक्त कर दिये जायँ और जैसा कि पहले कहा जा चुका है, बंगाल-सरकार बंगाल की सबसे कठिन समस्या मध्यम श्रेणी के शिक्षित युवक-समाज की बेकारी दूर करने की चेष्टा करे।

× × ×

महात्मा गान्धी असहयोग-आन्दोलन को बन्द करके अपना ध्यान गाँवों की ओर ले गये हैं। भारत का असली रूप तो गाँवों में ही दिखाई देता है। ग़रीबी के कारण वहाँ की हालत दिन पर दिन सोचनीय होती जा रही है। यही सोच कर महात्मा गान्धी ने ग्राम-सेवा-संघ की स्थापना करने की घोषणा की। महात्मा गान्धी के इस निश्चय से चारों ओर तरह तरह के भाव प्रकट होने लगे और आशा हुई कि शीघ्र ही देहातियों को महात्मा जी अपने हाथ में कर लेंगे। उधर सरकार भी चुप न थी। तुरन्त ही यह सरकारी घोषणा की गई कि खेती और गाँवों की भलाई के लिए सरकार आगे से विशेष ध्यान देगी। इसके लिए बजट में एक करोड़ रुपये की स्वीकृति भी असेम्बली-द्वारा करा दी गई। सरकार के इस निश्चय से कुछ लोगों को सन्देह हुआ कि यह युक्ति केवल महात्मा गान्धी के चलाये जानेवाले ग्राम-सेवा-संघ को दबाने के लिए की गई है। कहनेवाले चाहे जो कहें, यह तो मानना ही पड़ेगा कि इस समय सरकार का एक करोड़ रुपया गाँवों की भलाई के लिए ख़र्च करना अपनी विशेषता रखता है। ग्रामीणों की भलाई के लिए इस तरह का देशव्यापी आयोजन आज तक यहाँ नहीं किया गया और यदि यह प्रयत्न सफल भी नहीं होगा, तो भी इससे ग्रामीणों का उस दशा में भी कुछ न कुछ उपकार अवश्य हो जायगा। यह सच है, इतनी छोटी रकम से विशेष सुफल नहीं प्रकट होगा। परन्तु यह अभी प्रारम्भ है। अतएव अभी इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। गाँवों की सबसे विकट समस्या है वहाँ की ग़रीबी। अतएव सरकार का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह वहाँ की बढ़ती हुई ग़रीबी को जितनी जल्दी हो सके, दूर करने का अनवरत प्रयत्न करे।

विदा

श्रीयुत नरेन्द्र, बी० ए०

आओ रानी, विदा माँग लूँ,
चूम तरुण कलियों से लोचन।
आओ सजनि, इन्हें समझा दूँ,
व्यर्थ न खोयें नेह-नीरकन।

प्रिय असह्य होंगे वे आँसू,
देखो छोड़ न देना धीरज।
विदा-समय है क्षण भर को भी,
म्लान न हों नयनों के नीरज।

प्राण, मिलन दिन के शुभ-अवसर—
के हित आँसू रखना संचित।
उस दृग के मुसकान—अश्रु के,
हर्ष—इन्द्रधनु से हों शोभित।

दिन गिनते दिन बीत जायँगे,
प्रिय, गृह में रह या प्रवास में।
हलकी होगी व्यथा-विरह की,
प्रीति प्यास विश्वास आस में।

दूर रहूँ या पास, तुम्हारे,
श्रीचरणों का दास रहूँगा
नित अमूर्त्त को मूर्त्त बनाने—
का दुर्लभ अभ्यास करूँगा।

तम के अगम मर्म लिखते जो,
रजनी के बालक नभ-तारक
स्वप्न-घनों की सघन छाँह में,
मुझे दिखायेंगे तुम तक पथ।

प्रेम-योग-बल से चित्रित कर,
मैं, प्रफुल्ल पद्मों से लोचन
श्याम-पुतलियों की सुख-निधि में
ले विश्राम हरूँगा भव-श्रम।

अभिलाषा आह्वान करेगी
स्वप्न-यान में तुम उतरोगी
सोने के घन से ऊषा-सी—
आ, नयनों में वास करोगी।

लाज नहीं अब प्रेम बनो तुम,
भक्ति बनूँ कर लूँ पद-पूजन।
उर की प्रतिमा का अर्चन कर,
सफल करूँ सब जन्म-मरण-श्रम।

पूर्ण प्रेम की थाली में भर
अक्षत पद-रज, रोली जावक
नक्षत्रों से आज सजा दो,
अस्त मूर्धन्या आनत मस्तक।

आओ करुणाकर पद-रज दो
जीवन कर दो शिवमय सुन्दर,
सुर-सरिता-सम शोभित होगा
पद-रज का अभिषेक शीश पर।

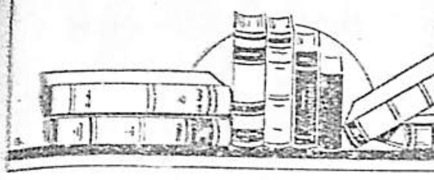
पतिव्रता वा प्रेम-व्रता के,
चरणों की अनमोल धूलि से
निकले थे ये रवि शशि तारक,
चिरप्रकाश जो पथिक विश्व के।

तुम आराधन, तुम आलिङ्गन,
तुम ही सतत साधना, रानी!
वेद तुम्हारी वाणी होगी,
सुन मन होगा ज्ञानी, ध्यानी।

सरले! अपनी गरिमा महिमा,
सोचो, स्वयं भला क्या जानो?
मेरे मन-मन्दिर के दीपक,
निज प्रकाश तुम क्या पहचानो?

स्नेह-सुरभियुत तुम पद्माकर,
मैं मधु-अभिलाषी कवि-मधुकर,
चरणाम्बुज छू, चलूँ, विदा दो,
मैं समीर-सम सौरभ भर भर।

सुमुखि, विदा दो आज विश्व में,
प्रेम-नाम की सुरभि बसेगी।
आज पास तक, कल प्रवास तक,
प्रेम-डोर कुछ और बढ़ेगी।



नई पुस्तकें

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

१—श्यामसनेसई (कविता)—लेखक, श्रीतुलसीराम शर्मा 'दिनेश', प्रकाशक, श्री गंगाराम अग्रवाल, कालबादेवी रोड, सूरजमल की चाली, बम्बई, हैं।

२—भारतीय सहकारिता-आन्दोलन—लेखक, श्री गोकुलनाथ सक्सेना, एम० ए०, प्रकाशक, एस० एस० सक्सेना, बरेली कालेज, बरेली, हैं और मूल्य २) है।

३—सम्प्रदाय-प्रदीप—अनुवादक और प्रकाशक, श्री० कण्ठमणि शास्त्री, विशारद, संचालक, विद्या-विभाग, कांकरोली और मूल्य २) है।

४—सम्प्रदाय-प्रदीप (गुर्जर-भाषानुवाद)—अनुवादक, श्रीभट्ट जटाशंकर शास्त्री, प्रकाशक, विद्या-विभाग, कांकरोली हैं।

५—हिन्दीमुहावराकोष—सम्पादक, श्री एम० वि० वेंकुटाचल, एम० ए०, बी० एस-सी०, प्रकाशक, एम० वि० रेड्डि एन्ड कम्पनी, बलेपेट, बेंगलोर सिटी हैं और मूल्य सजिल्द पुस्तक का १॥) है।

६—प्रलाप—रचयित्री, श्रीमती सुशीलादेवी सामन्त, प्रकाशक, श्री देवेन्द्रनाथ सामन्त, एम० ए०, एल-एल० बी०, एम० एस-सी०, चाईबासा हैं।

७-९—श्री महेशचन्द्रप्रसाद एम० ए०, पटना, की तीन पुस्तकें

(१) हिन्दूसभ्यता—मूल्य १) है; (२) जातकमाला अथवा ज्ञानगंगा—मूल्य ॥|) है; (३) प्रबोधचन्द्रोदय-नाटक—मूल्य ॥) है।

१०—प्रेम की देवी—लेखक, श्रीगणेशप्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक, श्री चिरंजीलाल तुलसाना, ३ दहीहट्टा स्ट्रीट, कलकत्ता हैं और मूल्य ॥) है।

११—श्रीरामानन्द-नाटक—लेखक, श्री वैष्णव, प्रकाशक, श्री रामानन्द-ग्रन्थमाला-कार्यालय, अयोध्या यू० पी० है और मूल्य ।-) है।

१२-१३—त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन लिखित, साहित्य-सेवक-संघ, छपरा, से प्रकाशित २ पुस्तकें

(१) मेरी यूरोप-यात्रा—मूल्य १॥=) है।

(२) लंका—मूल्य ॥|=) है।

१४—आयुर्वेदाङ्कः—प्रकाशकः, महामहोपाध्याय पं० श्रीगिरिधरशर्मा चतुर्वेदः राजकीयसंस्कृतविद्यालयाध्यक्षः जयपुरम्।

१-२—पण्डित जवाहरलाल चतुर्वेदी की दो पुस्तकें—

)१) भक्त और भगवान—यह पुस्तक अपने ढंग की एक ही है। इसमें भगवान् के भक्तों की मनोहर सूक्तियाँ हैं। इसकी पृष्ठ-संख्या ३०६ है। छपाई-सफ़ाई भी सुन्दर है। आरम्भ से अन्त तक कवियों के अनोखे उद्‌गारों का आनन्द मिलता है। पुस्तक अध्यायों में विभक्त नहीं है। शायद भक्ति के अनन्त प्रवाह का रोकना उचित नहीं समझा गया।

सूर, तुलसी, रहीम, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, रत्नाकर, ज़ौक़ आदि की रसवती कवितायें बड़े रोचक ढंग से इसमें संग्रह की गई हैं। सभी उद्‌धृत सूक्तियों के आगे और पीछे ऐसी टिप्पणियाँ जमाई गई हैं जो व्यंग्य और हास्य के साथ एक मीठी चुटकी लेती हैं। एक उदाहरण लीजिए—"दुख हरौ द्वारिकानाथ सरन मैं तेरी"—यह एक बहुत प्रसिद्ध लावनी है। इसमें द्रौपदी के चीरहरण की हृदयद्रावक कथा है। इसको

चतुर्वेदी जी ने प्रसंगवश उद्धृत किया है। उसी सम्बन्ध में आप लिखते हैं—

"क्यों नाथ! द्रौपदी के झपटते हुए 'सुपट' में प्रस्फुटित होते हुए प्रचुर परिश्रम पड़ा होगा! इस तंग दायरे में दुरते हुए—छिपते हुए, ओह छलिया! निहायत कष्ट हुआ होगा! और ज़रूर हुआ होगा! पर पीत पटधारी लला! आपके इस अपरिमित परिश्रम की पोल 'मोहन कवि' ने बड़ी सुन्दरता से खोली है। अस्तु सुनिए, और बतलाइए कि—

"कबै आपु गये हे बिसाहन बजार बीचि,
कबै बोलि जुलहा बुनाये दर-पट सौं।
नंद जू की कामरी न काहू बसुदेव जी की,
तीन हाथ पटुका लपेटे रहे कट सौं॥
'मोहन' भनत यामें रावरी बड़ाई कहा—
राखि लीन्हीं आन-बान ऐसे नटखट सौं।
गोपिन के लीन्हें तब चोरि चोरि चीर अब,
जोरि-जोरि दैन लागे द्रौपदी के पट सौं॥

"हाँ-हाँ बतलाइए साहब! खरीदने के लिए बाज़ार कब तशरीफ़ ले गये थे! अथवा किस जुलाहे से ऐसे सुन्दर समीचीन कपड़े बुनवाये! क्योंकि श्रीमान् तो सिर्फ़ तीन हाथ की लँगोटी लगाये और काला कम्बल सो भी न जाने "नन्दबाबा" का था या बसुदेव जी ने ही बाज़ार से लेकर भेज दिया था। ओढ़े डोलते थे, था क्या पास! अस्तु, भगवन्! इन गुनग-गल्ली गोप बालाओं के गुण गाइए, जिनकी बदौलत शान रह गई। इनके चुराये चीर आज काम आ गये, और इस तरह नटखटपने से आन-बान बनी रह गई।"

सम्पूर्ण पुस्तक में यही क्रम है। चतुर्वेदी जी ने निर्भयतापूर्वक उर्दू और फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग किया है। आप व्रजभाषा की प्राचीन शैली के पोषक और समर्थक हैं। आप कहते हैं "हम रत्नाकरी आधुनिक स्टाइल के क़ायल नहीं हैं, उसके नवीन रूप के मायल नहीं; अपितु उसी प्राचीनता के पुजारी हैं, उसी स्वरूप के अभिलाषी हैं, नूतनता के नहीं।"

पुस्तक में कहीं कहीं प्रश्नसूचक तथा आश्चर्य-सूचक चिह्नों की अनावश्यक भरमार हो गई है। इसमें सन्देह नहीं, पुस्तक रोचक और उपयोगी भी है। पता—हिन्दी-साहित्य-कुटीर, बनारस है। मूल्य १॥) है।

(२) आँख और कविगण—इस पुस्तक में आँख ही पर अनेक कवियों की कवितायें संकलित की गई हैं। ४२२ पृष्ठों में चतुर्वेदी जी ने जो नेत्र-विषयक मनोरंजक सामग्री प्रस्तुत की है उसे देखकर उनके परिश्रम की प्रशंसा करनी ही पड़ती है। उक्त पुस्तक में सबसे पहली कविता 'आलम' कवि की है। १६५ पृष्ठों तक चतुर्वेदी जी ने उद्धृत कविताओं को अपनी मसालेदार टिप्पणियों से सुशोभित किया है। शेषांश में केवल संकलन है।

पुस्तक की भूमिका में पंडित शिवरत्न शुक्ल ने तत्सम्बन्धी विषय की अच्छी विवेचना की है। पुस्तक के अन्त में २० पृष्ठों में शब्दार्थ भी दिये गये हैं। इससे पुस्तक की उपयोगिता और बढ़ गई है।

निस्सन्देह नेत्र शरीर के अत्यन्त आवश्यक अंग हैं। उनसे हृदय के गूढ़तम भावों का पता लगता है। किसी ने ठीक कहा है—

तन की नारी कर गहे, मन की नारी बैन।
जो कदापि बोलै नहीं, तुरत परखिए नैन॥

अस्तु! आँखों की सुन्दरता, सरसता, कठोरता, वीरता, नहनशीलता तथा और भी मानसिक और शारीरिक विचारदृष्टि से जितनी नेत्र-सम्बन्धी बातें हो सकती हैं उन सबका वर्णन प्रायः इस पुस्तक में आ गया है। आशा है, काव्यानुरागी और रसिक सुधीजन इसे पसन्द करेंगे।

इस पुस्तक में चतुर्वेदी जी की एक दूसरी प्रकाशित होनेवाली पुस्तक का विज्ञापन भी छपा है। आँख के विषय की इतिश्री करके चतुर्वेदी जी अब जिस दूसरे अंग-वर्णन के सम्बन्ध में अपनी काव्य-रसिकता का परिचय देना चाहते हैं, वह कहाँ तक उचित होगा, यह मतभेद की बात है। जिस पुस्तक से सर्वसाधारण जनता में स्वास्थ्यवर्धक प्रसन्नता तथा अच्छे अच्छे भावों का प्रचार हो और साथ ही साथ हिन्दी में अनुराग उत्पन्न हो उसका ज़रूर प्रचार होना चाहिए। आँख का विषय उनकी विज्ञप्त पुस्तक के विषय से सर्वथा भिन्न है। आँख में सभी भाव आ जाते हैं। किन्तु देखें चतुर्वेदी जी उस विषय को किस ढंग से आधुनिक जनता के सामने उपस्थित करते हैं। इस पुस्तक का मूल्य ३) है, और पता—साहित्य-सेवक-सदन, काशी।

—यज्ञदत्त शुक्ल, बी० ए०

३—उन्माद—लेखिका, श्रीमती कमलादेवी चौधरी, प्रकाशक, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता हैं। पृष्ठ-संख्या २०० और मूल्य १।) है।

इस पुस्तक में श्रीमती कमलादेवी चौधरी की लिखी हुई कहानियों का संग्रह है। श्रीमती जी ने, हाल में ही कहानी लिखना शुरू किया है। उनकी कहानियों में भाव का एक प्रमुख स्थान है, उसमें अनुभूति की झलक होती है। जिस किसी भी पात्र को देवी जी ने लिया है उसी के चरित्र का चित्रण बहुत ही सुन्दरता के साथ किया गया है। इसमें शक नहीं कि श्रीमती कमला जी ने जिन पात्रों का निर्माण किया है, वैसे पात्रों का निर्माण कहानी-लेखक पुरुष ज़रा कठिनता से कर पावेंगे। कहानियों के उच्च कोटि के होने के साथ ही साथ यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें भूल ही नहीं है। कहीं कहीं उनमें उलझन-सी आ जाती है जिससे पाठक अक्सर परेशान हो उठता है। कहीं कहीं लेखिका की कल्पना असंगत हो जाती है, जिससे यह धारणा हो उठती है कि नायक अपने सीमित क्षेत्र को पार कर ऐसी जगह में विचरण करने लगा है जिसका न कोई सिर है, न पैर। मैं बनारसीदास जी से सहमत हूँ जैसा कि उन्होंने अपने 'निवेदन' में कहा है, कि 'उन्माद' उस हिन्दुस्तानी रेल की तरह है, जिसमें सभी डिब्बे हैं, इसलिए सभी प्रकार के पाठक अपनी अपनी बौद्धिक हैसियत के अनुसार उसका आनन्द उठा सकते हैं। मगर इसमें केवल अन्तर यह है कि हिन्दुस्तानी रेल में अधिकांश तीसरे दर्जे के डिब्बे होते हैं, पर 'उन्माद' में इन्टरमीडियट और सेकेन्ड क्लास के डिब्बों की प्रधानता है।

श्रीमती कमला देवी जी की गल्पों में भावों की प्रधानता है, उनकी कहानियाँ दुःखान्त होते हुए भी सरस हैं। पुस्तक की छपाई-सफ़ाई सुन्दर है और गल्पों का संग्रह देखते हुए मूल्य भी उचित ही है।

कृष्णमोहन एम० ए०, बी० ए० (आनर्स)

४—अज्ञात-वास (खण्ड काव्य)—लेखक, श्रीयुत रामसहाय शर्मा 'मराल', पृष्ठ-संख्या १४३, मूल्य ।।।) है। पता—श्रीमराल-सरस्वती-सदन, विवाज़नगर, पो० सिरसी (एटा)।

यह खण्ड काव्य बोल-चाल की भाषा में लिखा गया है। इसमें पाण्डवों के 'अज्ञात-वास' के समय की कथा सरल तथा ललित शैली में वर्णित है। कीचक-वध, कर्णार्जुन-संग्राम तथा अभिमन्यु-विवाह के वर्णन विशेषरूप से सुन्दर हुए हैं। कथा का निर्वाह कवि ने बड़ी कुशलता से किया है। श्रीयुत 'मराल' जी की यह प्रथम कृति है, तो भी कवि को अपने प्रयास में अच्छी सफलता मिली है। इस 'कृति' को देखकर हमें विश्वास होता है कि मराल जी अपनी काव्य-साधना-द्वारा मातृभाषा के भाण्डार की श्रीवृद्धि करेंगे। आशा है, काव्य-रसिक कवि की इस कृति का समुचित आदर करेंगे।

५—साहित्यिक लेख—लेखक, श्रीयुत रामप्रसाद पाण्डेय, एम० ए०, हैं, प्रकाशक, श्रीरामनारायणलाल बुकसेलर, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या २०८ और मूल्य १) है।

हिन्दी में निबन्ध-ग्रन्थों का अभाव है। प्रस्तुत पुस्तक में श्रीयुत पाण्डेय जी ने अपने उन निबन्धों तथा लेखों का संग्रह किया है जो पिछले दस वर्षों में सरस्वती, सुधा, माधुरी आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। निबन्ध साहित्यिक तथा दार्शनिक विषयों पर लिखे गये हैं। कुछ निबन्धों में लेखक ने तुलसी, भिखारीदास, मीरा, आदि की कृतियों की मार्मिक विवेचना की है। निबन्धों की भाषा प्रौढ़ और विषयों का विवेचन उच्च कोटि का है।

६—चारुचरितावली—लेखक, श्रीयुत कृष्णदेव उपाध्याय, प्रकाशक, पं० शालिग्राम शर्मा, व्यवस्थापक हरिहर-मण्डल, कालभैरव, काशी हैं। पृष्ठ-संख्या-१७५ और मूल्य ।।।) है।

यह पुस्तक महापुरुषों के जीवन-चरितों का बालकोपयोगी संकलन है। इन जीवनचरितों में लेखक ने धर्म-

प्रवर्त्तक, कवि, आदर्श पुरुष, वीर, तथा देशभक्त महा-पुरुषों का वर्णन किया है। एक एक शीर्षक के नीचे पाँच पाँच प्राचीन तथा अर्वाचीन महापुरुषों के चरित्र सरल तथा सुबोध भाषा में लिखे गये हैं। लेखक की वर्णन-शैली रोचक और मनोहर है। विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है। महापुरुषों की जीवन-कथाओं से वे कुछ कुछ उपयोगी बातें और शिक्षायें इस पुस्तक से सीख सकेंगे। पुस्तक में चित्रों का यदि समावेश होता तो और भी अच्छा होता।

७—वेदान्तभानु—लेखक, संत अमीचन्द्र शर्मा हैं, पृष्ठ-संख्या १२२ और मूल्य ॥) है। पता—कार्यालय पुस्तकालय, तिलक गली, ग्वालमंडी, लाहौर।

लेखक ने इस पुस्तक में वेदान्तग्रन्थों में वर्णित (१) नित्यानित्यवस्तुविवेक, (२) इहामुत्रफलभोग विराग, (३) शमदमादि सम्पत्ति, (४) तथा मुमुक्षुत्व नामक साधन चतुष्टय की विशद व्याख्या है। योग-सम्बन्धी संत-वाणियों तथा विषयोपयुक्त कथाओं के द्वारा लेखक ने अपने विषय को सीधी-सादी भाषा द्वारा हृदयंगम कराने का प्रयत्न किया है। इस दृष्टि से पुस्तक वेदान्त के साधन चतुष्टय के जिज्ञासुओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। भाषा यद्यपि सर्वथा शुद्ध नहीं है और लेखक के स्वरचित पद्यों में छन्दोभंग-दोष स्थान स्थान पर हैं, तो भी प्रति-पाद्य विषय के समझने में कोई कठिनाई नहीं होती। द्वितीय संस्करण में इन त्रुटियों का सुधार वाञ्छनीय है।

८—श्री सौम्यकाशीशस्तोत्रम्—रचयिता पूज्यवर श्री तपोवन स्वामी, सरला नामक भाषा टीकाकार श्रीयुत वल्लभराम शर्मा वैद्यराज, पृष्ठ-संख्या ३७५ और मूल्य १) है। पता—वैद्यराज वल्लभराम शर्मा, अंजार (कच्छ) है।

इस पुस्तक में उत्तर काशीस्थ भगवान् सौम्य काशीश महादेव की स्तुति संस्कृत में नाना छन्दों में की गई है। महात्मा तपोवन स्वामी जी ने इस रचना में ईश, केन, कठ आदि सोलह उपनिषदों के भावों के आधार पर भग-वान् सौम्यकाशीश की स्तुति के साथ ही साथ अद्वैत तत्त्व का सुन्दर सामंजस्य किया है। स्वामी जी की संस्कृत प्राञ्जल तथा शैली सरल है। पुस्तक में नाना छन्दों के समावेश के कारण पुस्तक पढ़ने में जी नहीं ऊबता। अष्टादश स्तवक तो शिवस्वरूप का ही वर्णन करता है और कई भी दुर्गा सप्तशती की शैली पर। अनुष्टुप् श्लोकों के अन्तिम चरण "नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः" इन शब्दों में लिखे गये हैं। श्लोकों पर वैद्यराज जी ने हिन्दी में सरला टीका लिखी है तथा श्लोकों का गम्भीर अर्थ प्रकट करने में सहायक उपनिषद्-वाक्यों का चयन करके इस ग्रन्थ को सर्वसाधारण के लिए उपयोगी बना दिया है। हिन्दी-टीका की भाषा यद्यपि सर्वथा शुद्ध नहीं है, तथापि श्लोकों के भाव समझने में कठिनाई नहीं होती। शिवभक्तों तथा उपनिषद्-रहस्य के जिज्ञासुओं को इससे लाभ उठाना चाहिए।

९—लेखक (मासिक पत्र)—इसके सम्पादक श्रीभारती एम० ए० और श्री प्रेमनारायण अग्रवाल, बी० ए० हैं। यह प्रयाग के लेखक-संघ का मुख पत्र है। अभी लगभग ३ माह से निकलने लगा है। इसमें हिन्दी के लेखकों के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण ज्ञातव्य विषयों का संकलन रहता है। नये लेखकों की कठिनाइयों के दूर करने के उपयुक्त उपाय भी बताये जाते हैं। इस पत्र से नये और पुराने लेखकों दोनों का बड़ा उपकार हो सकता है। इसके सहारे वे हिन्दी लिखने का काफ़ी साफ़-सुथरा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इसके सभी अंक उपयोगी लेखों से युक्त निकले हैं। इस तृतीय अंक में श्री नलिनी मोहन सान्याल, एम० ए० का समालोचना-तत्त्व पर महत्त्वपूर्ण लेख निकला है। यह पत्र हिन्दी में अपने ढंग का एक अनोखा पत्र है। इसकी एक प्रति का मूल्य ।-) और वार्षिक मूल्य ३) है, किन्तु सदस्यों को २) में ही साल भर दिया जायगा।

—कैलाशचन्द्र शास्त्री, एम० ए०



जाग्रत महिलायें

कुमारी सावित्री वंशीधर, एम० ए०, का स्वर्गवास

लेखक, श्रीयुत मङ्गलप्रसाद विश्वकर्मा

अत्यन्त दुख के साथ लिखना पड़ता है कि इसी अगस्त महीने के आरम्भ में कुमारी सावित्रीदेवी का परलोक-वास हो गया। यदि मेरा अनुमान सत्य है तो यह कहना अनुचित न होगा कि हमारे अखिल भारतवर्षीय सन्ध्याचारी विश्वकर्मा-समाज में कुमारी सावित्री ही उन महिला-रत्नों में सर्वप्रथम थीं जिन्होंने एम० ए० तक सफलतापूर्वक उच्च शिक्षा पाई है। वे लगभग डेढ़ वर्ष से बीमार थीं, गत मई मास में उन्होंने अर्थशास्त्र लेकर एम० ए० में उत्तीर्ण होने का समाचार सुना था। पर जब वे अपने जीवन का अन्य कोई सर्वोच्च लक्ष्य निर्दिष्ट करना चाहती थीं तब दैव ने उनकी ऐहिक लीला ही समाप्त कर दी।

उनकी प्रतिभा आश्चर्यजनक एवं अनुपम थी। उन्होंने जितनी भी परीक्षायें दीं—सभी में सर्वप्रथम उत्तीर्ण होती रहीं। इसके बदले में उन्हें कई स्वर्ण-पदक तथा रजत-पदक भेंट में मिले थे, जो आज उनके दुखी परिवार के लिए उनकी शतशत स्मृतियों को जाग्रत कर, असीम वेदना को हरा-भरा बनाये रखने के लिए बच रहे हैं। बड़े दुःख की बात तो यह है कि कुमारी सावित्री इस समय पचीस वर्ष के लगभग थीं और अभी कुमारी ही थीं। उनके



[स्व० कुमारी सावित्री वंशीधर एम० ए०]

वयोवृद्ध पिता ने अश्रुसिक्त नयनों से तथा वेदना-कण्ट-कित हृदय से कहा कि मैं सावित्री के दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने के लिए योग्य वर की तलाश में था,

पर विधि ने कहा रहने दो, रहने दो, मैं ही इस बात का प्रबन्ध किये देता हूँ और विधि ने अपना प्रबन्ध कर दिया !

कुमारी सावित्री के पिता राय साहब वंशीधर उच्च कुलोत्पन्न तथा सम्पन्न हैं। कुमारी सावित्री के एक भाई श्रीयुत परमानन्द जी, आई० सी० एस०, दूसरे श्रीयुत कामताप्रसाद जी टण्डन, आई० एफ० एस० हैं। उनकी एक छोटी बहन और हैं, जो बनारस-यूनिवर्सिटी में एफ० ए० की शिक्षा पा रही हैं। उनकी भावज श्रीयुत परमानन्द जी आई० सी० एस० की पत्नी एक प्रतिष्ठित एवं विदुषी महिला हैं। ये बी० ए०, बी-लिट०, पी० एच० डी० (ऑक्सफोर्ड) तथा बार० एट० लॉ हैं। कुमारी सावित्री के निधन से इस शिक्षित तथा सम्पन्न परिवार को एवं इस बहुत पिछड़े हुए समाज की जो क्षति हुई है वह अनिर्वचनीय है। ईश्वर दिवङ्गत आत्मा को स्वर्ग में शान्ति तथा दुखी परिवार को यह दुख सहन करने का सामर्थ्य दे।

मदरास की स्त्रियों में हिन्दी

मदरास की स्त्रियों में भी हिन्दी का प्रचार बढ़ता जा रहा है। आगे के चित्र में बाईं ओर कुमारी ए० पद्मिनी बी० ए० हैं, जिन्होंने पहले-पहल मदरास-विश्वविद्यालय से हिन्दी लेकर बी० ए० की डिग्री पाई है। दाहनी ओर कुमारी ए० सावित्री हैं, जिन्होंने हिन्दी लेकर मदरास-विश्वविद्यालय की इंटरमीडिएट परीक्षा पास की है।

ये दोनों केरल-हिन्दी-महाविद्यालय के प्रधान अध्यापक श्री ए० चंद्रहासन, बी० ए० की बहनें हैं और गत मार्च १९३५ में एरनाकुलम के महाराजा-कालेज से उत्तीर्ण हुई हैं।

पश्चिम में साड़ी की लोकप्रियता

योरप के बड़े-बड़े शहरों और विशेषकर लंदन में साड़ी की लोकप्रियता बढ़ती ही जा रही है। लंदन की दावतों और रेसों इत्यादि में भारतीय महिलाओं के शरीर पर साड़ी की मनोहर छटा देखकर लंदन की कुछ फ़ेशनेबल अँगरेज़ लेडियाँ भी साड़ी को अपनाने के लिए उतावली हो रही हैं, यहाँ तक कि कुछ सम्मानित अँगरेज़ महिलाओं ने उसका उपयोग भी आरम्भ कर दिया है। योरप में साड़ी के भविष्य पर एक लेख श्रीमती चौधरानी जी ने 'संडे क्रानिकल' में लिखा है जिसका सारांश यहाँ हम 'भारत' से उद्धृत करते हैं—

योरप में कुछ भारतीय महिलायें जाकर जब योरपीय वस्त्र पहनती हैं तब योरपवाले उनका मज़ाक़ करते हैं। बात यह है कि योरपीय वस्त्र हिन्दुस्तानी शरीर पर अच्छे नहीं लगते और इसी तरह भारतीय साड़ी भी योरपीय महिलाओं के शरीर पर नहीं फबती। इसका कारण यह है कि भारतीय स्त्रियों के अंगों की गठन उनकी योरपीयन बहनों से भिन्न है। उनके शरीर का भेद केवल क्षीणांग अथवा स्थूलांग रहने तक ही परिमित नहीं है, किन्तु दोनों महाद्वीपों की महिलाओं के शरीर के आकार में भी बहुत-कुछ भेद होता है। यह भेद दर्शक स्पष्ट देख सकते हैं, क्योंकि इसका कारण दोनों की संस्कृति, रहन-सहन और जल-वायु में निहित रहता है।

भारतीय महिलाओं और योरपीय स्त्रियों की प्रकृति में कुछ मौलिक भेद होते हैं। भारतीय नारी जिस प्रकार के वातावरण में रक्खी जाती है उसमें उसके जीवन का उद्देश पति के द्वारा प्रेम पाने की अधिकारिणी बनना ही होता है और पति ही उसके जीवन का स्वामी भी होता है। चाहे यह बात कुछ नवशिक्षित महिलाओं को भले ही बुरी लगे, पर सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता। भारतीय महिलाओं की लहराती चाल, पैरों की मन्थर गति, गर्दन का शील से भरा सहज झुकाव और बाँहों का संचालन साड़ी के साथ मिलकर ऐसा समाँ बाँध देता है कि पश्चिम की स्त्रियाँ प्रयत्न करने पर भी वैसा नहीं कर सकेंगी।



[कुमारी पद्मिनी और कुमारी सावित्री]

योरप में 'पति' शब्द का महत्त्व बहुत दिनों से घट गया है, जिसका मतलब दूसरे शब्दों में संरक्षक और स्वामी भी होता है। योरप में आज-कल स्त्री-पुरुषों में भीषण प्रतियोगिता छाई हुई है। इसका एक कारण तो यह है कि गत महायुद्ध के अवसर पर नवयुवकों की संख्या घटने और दूसरे पैदा होने-वाली पीढ़ी में लड़कियों की अधिकता होने की वजह से योरप में स्त्रियों की संख्या पुरुषों की अपेक्षा अधिक हो गई है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि स्त्रियों—अविवाहित लड़कियों—को पुरुषों से प्रतियोगिता करने के लिए अपने सौन्दर्य को ताक में रख देना पड़ता है। यह स्वाभाविक ही है कि इसका प्रभाव स्त्रियों की पोशाक पर भी पड़े।

इसके सिवा रंग की बात भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं। गौर वर्ण, भूरी आँखें और सुनहरे बालोंवाली नोर्डिक जाति (उत्तरी योरप के लोग नोर्डिक जाति के हैं) की स्त्रियों के बदन पर हलके रंग के वस्त्र ही खिलते हैं। इसके विपरीत भारतीय स्त्रियों के गहरे रंग के मुख पर रंगीन हलके और भड़कते हुए वस्त्र शोभा देते हैं।

जिन योरपीय स्त्रियों को मैंने साड़ी पहने देखा है उन्हें इस तरह देखकर पहले तो मैं बिलकुल ही अचकचा गई। अपनी तेज़ चाल-ढाल और अधिक मर्दानगी के साथ साड़ी पहने वे ऐसी दिखलाई देती हैं मानो कोई स्वाँग बना कर आई हों।

मैं योरपीय पोशाक की बहुत अधिक प्रशंसक हूँ। योरपीय महिलाओं की खेलने की पोशाक, उनके सायंकाल के सुन्दर वस्त्र, सोने के गाउन इत्यादि उनके शरीर पर ख़ूब खिलते हैं। उनमें पश्चिमी स्त्रियों की स्वच्छन्द प्रकृति का प्रदर्शन करने का मौक़ा भी उन्हें ख़ूब मिलता है। बात यह है कि जीवन के प्रत्येक विभाग में पुरुषों के कंधे से कंधा लगाकर काम करने के लिए जो वस्त्र वे पहनती हैं उनके लिए वही उपयुक्त हैं। इसलिए मेरा ख़याल है कि योरपीय महिलायें भारतीय साड़ी को स्थायी रूप से कभी न अपना सकेंगी। हाँ, कभी कभी शौक़िया पहन लेना दूसरी बात है।

पग-ध्वनि

लेखक, श्रीयुत बच्चन

वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !
नंदन-वन में उगनेवाली,
मेंहदी जिन तलवों की लाली,
बनकर भू पर आई आली !
मैं उन तलवों से चिर-परिचित,
मैं उन तलवों का चिर-ज्ञानी।

वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !
ऊषा ले अपनी अरुणाई,
ले कर-किरणों की चतुराई,
जिनमें जावक रचने आई,
मैं उन चरणों का चिर-प्रेमी,
मैं उन चरणों का चिर-ध्यानी।

वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !
उन मृदु चरणों का चुंबन कर,
ऊसर भी हो उठता उर्वर,
तृण-कलि-कुसुमों से जाता भर,
मरुथल मधुवन बन लहराते,
पाषाण पिघल होते पानी !

वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !
उन चरणों की मंजुल उँगली,
पर नख-नक्षत्रों की अवली,
जीवन के पथ की ज्योति भली,
जिसका अवलंबन कर जग ने,
सुख-सुखमा की नगरी जानी !

वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !
उन पद-पद्मों के प्रभ रजकण,
का अंजित कर मंत्रित अंजन,
खुलते कवि के चिर-अंध नयन,
तम से आकर उर से मिलती,
स्वप्नों की दुनिया की रानी !

वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !
उन सुंदर चरणों का अर्चन,
करते आँसू से सिंधु नयन,
पग-रेखा में उच्छ्वासित पवन,
देखा करना अंकित अपनी,
सौभाग्य सुरेखा कल्याणी !

वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !
उन चल चरणों की कल छम-छम,
से ही था निकला नाद प्रथम,
गति से मादक तालों का क्रम—
संगीति जिसे सारे जग ने,
अपने सुख की भाषा मानी।

वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !
हो शांत जगत के कोलाहल !
रुक जा रे जीवन की हलचल !
मैं दूर पड़ा सुन लूँ दो पल,
संदेश नया जो लाई है यह,
चाल किसी की मस्तानी।

वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !
किसके तमपूर्ण प्रहर भागे ?
किसके चिर-सोये दिन जागे ?
सुख-स्वर्ग हुआ किसके आगे ?
होगी किसके कंपित कर से,
इन शुभ चरणों की अगवानी ?



"वह पगध्वनि मेरी पहचानी"

[चित्रकार—श्रीयुत पी० मुकर्जी

वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !
बढ़ता जाता घुँघरू का रव !
क्या यह भी हो सकता संभव ?
यह जीवन का अनुभव अभिनव !
पदचाप शीघ्र, पग-राग तीव्र,
स्वागत को उठ रे कवि मानी !

वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !
ध्वनि पास चली मेरे आती !
सब अंग शिथिल पुलकित छाती !
लो गिरतीं पलकें मदमाती !
पग को परिरंभण करने की,
पर इन भुज-पाशों ने ठानी ।

वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !
रव गूँजा भू पर, अंबर में,
सर में सरिता में, सागर में,
प्रत्येक श्वास में, प्रति स्वर में;
किस किस का आश्रय ले फैले—
मेरे हाथों की हैरानी ।

वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !
ये ढूँढ़ रहे ध्वनि का उद्गम,
मंजीर मुखरयुत पद निर्मम,
है ठौर सभी जिनकी ध्वनि सम,
इनको पाने का यत्न वृथा,
श्रम करना केवल नादानी ।

वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !
ये कर नभ-जल-थल में भटके,
आकर मेरे उर पर अटके,
जो पग-द्वय थे अंदर घट के,
थे ढूँढ रहे जिनको बाहर,
वे छुप कर मेरे कहलाती ।

वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !
उर के ही मधुर अभाव चरण
बन करते स्मृति-पट पर नर्तन,
मुखरित होता रहता बन-बन,
मैं ही इन चरणों में नूपुर,
नूपुर-ध्वनि मेरी ही वाणी !



इटली और अबीसीनिया
(रिव्यू आफ़ रिव्यूज़ से)

मानव-शरीर के अद्‌भुद कार्य्य

लेखक——डाक्टर गाडगील एस० डी०



जनसाधारण की विविध विषयों के ज्ञान की वृद्धि के लिए पाश्चात्य देशों में तरह तरह के साधन प्रस्तुत किये गये हैं। सिनेमा, रेडियो, फोटोग्राफी, संगीत, संग्रहालय, प्रदर्शिनी, पुस्तकालय आदि ऐसे ही साधन हैं और उनसे उन देशों के सार्वजनिक जीवन का कायापलट हो गया है। जिसने क़ायदे से कभी किसी स्कूल में शिक्षा नहीं पाई है उसे भी यह अवसर है कि वह उन सब बातों को जाने और समझे जिन पर उसकी और उसके राष्ट्रों की उन्नति अवलम्बित है।

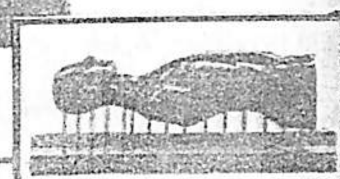
बहुत-से विषयों के अध्ययन की तो इतनी सुन्दर व्यवस्था की गई है कि राह चलता

इस यन्त्र में सुनने देखने बोलने आदि के समय दिमाग़ की स्थिति दिखाई जाती है। खोपड़ी का मस्तिष्क बिजली की भाँति हाथ पर घुमाता है।

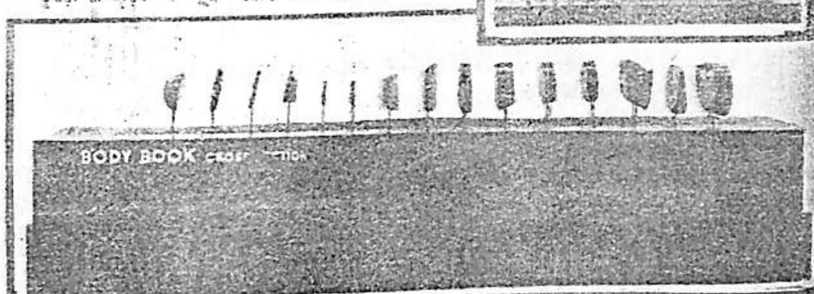


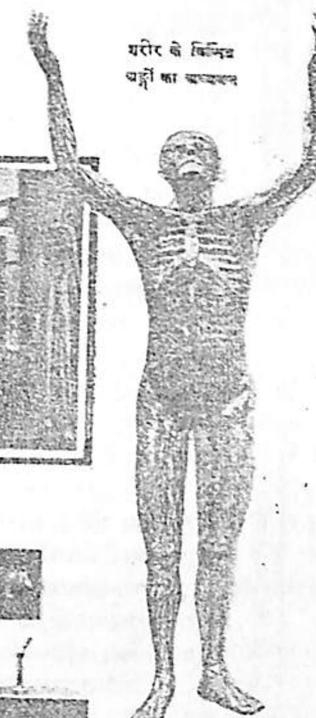


रक्त का दौरा

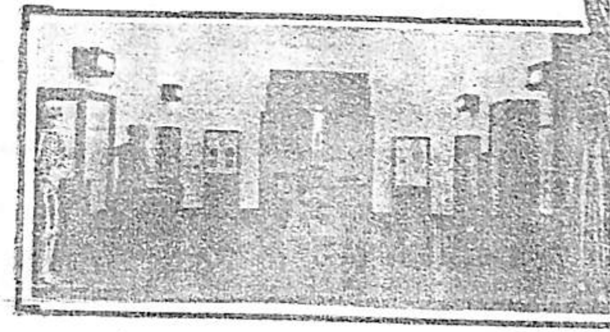


मनुष्य का शरीर टुकड़े टुकड़े करके दिखाया गया है। टुकड़ों को जोड़ने से पूरा शरीर बन जाता है।

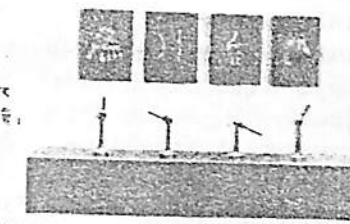




शरीर के विभिन्न अङ्गों का अध्ययन



हाल ऑफ मैन का एक दृश्य। बीच के चित्र में प्रत्येक अङ्ग पार-पार दिखाई पड़ता है।





गर्दन में चार प्रकार के जोड़ हैं।

शरीर के खड़े टुकड़े ऊपर जुड़े हुए। बगल में अलग अलग। ये टुकड़े ऐसे रंगे हुए हैं मानो जीवित शरीर के टुकड़े हों।





फेफड़ा कैसे कार्य्य करता है, यह इस यन्त्र में दिखाया गया है।

आदमी भी कुछ ही घंटों में उन सब बातों को समझ सकता है जिन्हें विद्वानों ने कई पीढ़ियों के अनुभव और प्रयोग से जाना है। सर्वसाधारण के लिए ज्ञान का मार्ग इतना सुलभ हो गया है कि वहाँ अब शिक्षित और मूर्ख का भेद ही नहीं रहा। सभी मनुष्यों को प्रत्येक विषय का कुछ न कुछ ज्ञान रहता ही है। और विद्यार्थी तथा विशेषज्ञ तो अपने जीवन का यह उद्देश ही समझते हैं कि जो कुछ नवीन ज्ञान वे प्राप्त करें उसे जनसाधारण में वितरित कर दें।

यहाँ हम संक्षेप में अमरीका के एक ऐसे ही प्रयत्न का वर्णन करेंगे। मनुष्य के लिए सबसे प्रिय वस्तु उसका शरीर है। शरीर की शक्ति और स्वास्थ्य पर ही उसके सारे कार्य और आनन्द अवलम्बित हैं। इसलिए पाश्चात्य देशों में उस ज्ञान की प्राप्ति के लिए विशेष प्रयत्न और अन्वेषण हुआ है जिस पर शरीर का स्वास्थ्य और दीर्घ-जीवन अवलम्बित है।

स्वास्थ्य-विज्ञान-विशारदों का कहना है कि किसी मनुष्य या मनुष्यों के किसी समूह की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए यही काफ़ी नहीं है कि उनके पहुँच में कोई न कोई डाक्टर अवश्य हो जो उन्हें हर वक़्त दवा पिलाता रहे। किसी राष्ट्र के स्वास्थ्य की वास्तव में तभी रक्षा हो सकती है जब उसका प्रत्येक व्यक्ति स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों से परिचित हो और उनका जीवन में उपयोग भी करता हो। पाश्चात्य देशों के स्कूलों में इस विषय की शिक्षा अनिवार्य कर दी गई है।

अभी तक विद्यार्थियों को चित्रों और मूर्तियों के द्वारा शरीर-रचना और उसकी कार्य-प्रणाली समझाई जाती थी। इस सम्बन्ध में अमरीका ने अब एक क़दम और आगे बढ़ाया है। बफ़ालो (न्यूयार्क) में हाल में ही 'हाल आफ़ मैन' नाम का एक संग्रहालय स्थापित हुआ है। 'हाल आफ़ मैन' नाम कदाचित् इसलिए रक्खा गया है कि एक विशाल भवन में मनुष्य के शरीर के सब अवयव अलग अलग एकत्र किये गये हैं जो देखने से जान पड़ते हैं कि अभी अभी जीवित मनुष्यों के शरीर से अलग किये गये हैं। उनमें गति और जीवन का वैसा ही परिचय मिलता है जैसा कि जीवित मनुष्य के शरीर में मिल सकता है। कोई अजनबी इस विशाल भवन में पहुँचे और नर-कंकालों के भिन्न भिन्न अवयवों को हिलते-डुलते और उन्हें अपना कार्य करते देखे तो उसे वह भूतों का डेरा ही समझेगा और आश्चर्य करेगा। पर अमरीका में यह आश्चर्य नहीं, एक दैनिक घटना है और सार्वजनिक शिक्षा के एक आवश्यक अङ्ग के रूप में उस संस्था का स्वागत हो रहा है। प्रतिदिन सैकड़ों स्त्री-पुरुष उसे देखने जाते हैं और वर्षों की पढ़ाई घंटों में समाप्त करके नवीन ज्ञान से ओतप्रोत होकर बाहर निकलते हैं।

यह संस्था अमरीका के बफ़ालो म्यूज़ियम आफ़ साइन्स, न्यूयार्क, के अन्तर्गत है और अपने ढङ्ग की संसार में पहली है। वहाँ जाने पर प्रकाश और बिजली की सहायता से आप उस यंत्र को देख और समझ सकेंगे जो इस संसार में मनुष्य के नाम से विख्यात है।

अच्छा थोड़ी देर के लिए अपनी कल्पना के सहारे इस म्यूज़ियम के अन्दर आइए, एक बटन दाबिए! यह लीजिए बटन दाबते ही एक इंजन धकधकाने लगा। यह क्या? एक खोपड़ी हिलने लगी, कलाई की हड्डी अपने जोड़ पर घूम गई। एक उँगली जिसमें हड्डी ही शेष है, मुड़ती है और कुछ इशारा करती है। एक नर-कङ्काल आपको अपने पास बुला रहा है और कह रहा है—आइए! मेरी परीक्षा कीजिए।

एक दूसरा बटन दाबिए। दूसरी ओर खड़े एक दूसरे मानव-शरीर में एक छोटी-सी दीप-शिखा जल उठी। यह दीपक बाईं ओर उस यंत्र में जल उठा है जिसे हृदय कहते हैं। अरे! वह दीप-शिखा चलने लगी। हृदय के बाईं ओर से चल कर तमाम शरीर में घूम कर वह हृदय में फिर आ गई और उसके दाहने हिस्से में समा गई। इधर आप यह विचित्र प्रकाश देख रहे हैं, उधर ठीक उसी समय आपके हृदय में उसी स्थान से रक्त की एक बूँद निकल कर उसी प्रकार आपके शरीर की परिक्रमा करके फिर हृदय में उसी प्रकार आकर समा गई। इस कार्य्य में कुल २२ सेकंड लगे। शरीर में रक्त का दौरा कैसे, किस गति से, कितने समय में होता है, यह बात इस क्रिया के द्वारा आपने बात की बात में देख ली।

अब और अन्दर आइए। हाल के एक कोने में एक काले गोल चबूतरे पर एक पूर्ण नर-कंकाल खड़ा है। उसमें हड्डी के अतिरिक्त मांस-पेशियाँ, नसें, स्नायु, दिमाग़ सभी कुछ है। पर ये सब वस्तुएँ आर-पार दिखती हैं, मानो काँच की बनी हों। एक बटन दाबिए। एक प्रकाश हुआ और दिमाग़ रोशन हो उठा, हृदय में चमक आ गई, फेफड़े दिखाई पड़ने लगे। मानव शरीर का प्रत्येक महत्त्व-पूर्ण अङ्ग आपके सामने है और वह रक्त-मांस से युक्त कंकाल आपको अपना सम्पूर्ण रहस्य बताने को तैयार है। उसकी वाणी मूक है, पर उसे जो कुछ कहना है वह आपको काले चबूतरे पर स्वर्णाक्षरों में लिखा मिलेगा। दिमाग़ से शरीर के प्रत्येक अङ्ग में जिस क्रम से दिमाग़ की आज्ञायें पहुँचती हैं, उसी क्रम से इस पुतले में चिराग़ जलते जायँगे और जो बात आपने कभी न देखी होगी वह आपके सामने आती जायगी।

यदि आप यह जानना चाहें कि शब्दों को हम कैसे सुनते और समझते हैं तो २ नम्बर की घुंडी ज़रा घुमा दीजिए। एक नन्हा प्रकाश कान में उत्पन्न होकर दिमाग़ के उस भाग में जाता है जो सुनने के लिए बना है। वहाँ से वह दिमाग़ के आवाज़वाले घर में और अन्त में समझवाले घर में जाता है।

एक दूसरा मशीन का आदमी देखिए। इस वक़्त वह बैठा हुआ है। उसके घुटने के नीचे एक छोटे हथौड़े की चोट पड़ती है। अब दर्शक को दिखाई पड़ेगा कि बिजली का एक धक्का किस प्रकार एक स्नायु के द्वारा ऊपर दिमाग़ की ओर और वहाँ से दूसरी स्नायु से रीढ़ की हड्डी में होता हुआ किस प्रकार पैर की मांस-पेशी में आता है और बैठा हुआ लोहे का आदमी किस प्रकार पैर झटकता है जैसे कि वास्तविक आदमी घुटने के नीचे चोट लगने से झटकता। यहाँ प्रकाश और गति के सहारे हमें पेशियों के सिकुड़ने और फैलने का रहस्य मालूम होता है।

हमारा सिर हड्डी का बना है और एक हड्डी ही के द्वारा शरीर से जुड़ा है। तब भी हम उसे चाहे जिधर घुमा सकते हैं। यह कैसे? एक शीशे की आलमारी में इस प्रश्न का उत्तर आपको बन्द मिलेगा। मानव सिर का तारों का एक ढाँचा तारों के ही एक कंकाल पर रक्खा है। बटनों को दबाइए। यह सिर उसी प्रकार घूमेगा और इशारे करेगा, जैसे वास्तविक मनुष्य का सिर घूमता और इशारे करता है।

इस 'हाल आफ़ मैन' में सबसे अद्भुत प्रदर्शन का वह ढाँचा है जो शरीर की रक्त-सञ्चालन की क्रिया को स्पष्ट करने के लिए तैयार किया गया है। इस ढाँचे में काँच का वैसा ही हृदय बनाया गया है जैसा कि जीवित मनुष्य का हृदय होता है। वैसे ही वह खुलता और बन्द होता है। इस हृदय से समस्त शरीर में नलियों का एक जाल फैलाया गया है, ठीक उसी क्रम से जैसे कि वह जीवित शरीर में फैला रहता है। हृदय में एक प्रकार का द्रव्य भर दिया जाता है जिसे आप रक्त कह सकते हैं। इसमें बाहर से पम्प लगाया गया है। इस पम्प के चलाने से हृदय से वह द्रव्य निकलकर सब नलियों में घूमता हुआ फिर हृदय में आ जाता है।

यदि आप सिर से लेकर कमर तक की शरीर की चोटियाँ देखना चाहते हैं तो 'बाडी बुक्स' (शरीर-पुस्तकें) देखिए। ये दो दो इञ्च मोटी लकड़ी पर उसी तरह रँगी हुई बनी हैं जिस तरह वास्तविक

मनुष्य के शरीर की बोटियाँ हो सकती हैं। ये बोटियाँ क्रम से रक्खी हैं। इन्हें आप अलग करके भी देख सकते हैं। सबको मिला दें तो पूरा शरीर बन जायगा।

मनुष्य मनुष्य में भेद क्यों है? बटन दाबने से यहाँ प्रकाश शरीर के अन्दर की उन गिलटियों और रहस्यमय रसायनों को दिखलायगा जो हमारे शारीरिक भागों का निर्माण करते हैं और उन्हें मजबूती से पकड़े रहते हैं।

हम बोलते कैसे हैं? यह जानना हो तो एक और बटन दाबिए। एक निर्जीव मूर्ति के होंठ, जिह्वा, जबड़ा सब सजीव हो उठेंगे और आपको बताएँगे की किस प्रकार कंठ से आवाज़ की सृष्टि होती है।

इसी प्रकार इस 'हाल आफ़ मैन' में शरीर-शास्त्र-सम्बन्धी सम्पूर्ण ज्ञान संचित किया गया है। यह न समझिए कि ये माडल और मूर्तियाँ कल्पना के सहारे बनी हैं। एक्स रे, रेडियम, और फोटोग्राफी-तीनों की सहायता से जीवित मनुष्यों के शरीर के आर-पार का फोटो लेकर ये सब निर्मित हुई हैं। जिस यंत्र से इस प्रकार के फ़ोटो लिये जाते हैं वह रेडियोग्राफ कहलाता है और वह भी इस हाल में आपको देखने को मिलेगा। इस रेडियोग्राफ के द्वारा मनुष्य के शरीर का जो फोटो लिया जाता है उससे साफ़ साफ़ मालूम हो जाता है कि शरीर के भीतर कहाँ गोली लगी है, फोड़ा है या हड्डी टूटी है।

सम्पूर्ण जीवन एक नन्हें जीवाणु से बना है, जो क्षण क्षण पर द्विगुणित होता रहता है। ये जीवाणु मनुष्य के शरीर में तीन परतों में बसे हुए हैं। एक माडल में ये जीवाणु और इनकी उपजातियाँ भी दिखाई गई हैं और यह भी बताया गया है कि किस प्रकार के जीवाणुओं से मनुष्य-शरीर का कौन-सा अङ्ग बना है।

इस प्रकार अमरीका में यह अद्भुत म्यूज़ियम वहाँ के निवासियों को शरीर-रचना की शिक्षा दे रहा है। हमारे देश में ऐसे म्यूज़ियम कब स्थापित होंगे, यह अभी कौन कहे। अभी तो यहाँ शिक्षा-सम्बन्धी एक भी संग्रहालय ऐसा नहीं है जो जन-साधारण में किसी ख़ास विषय के ज्ञान की कुछ भी वृद्धि करता।

('पापुलर सायंस' से)

विभ्रम

लेखिका
श्रीमती रामकुमारी
चौहान

किस चिर अतीत का मधुर गान—आया बनकर सुस्मृति बसन्त,
किसकी करुणा का नव विहाग—भर गया व्यथा का स्वर अनन्त॥
किस हृदय क्षितिज से गल गल कर अनगिन हिमकण पल पल झरते,
किस नेत्र कंज के विमल कोष को रजत ओस से हैं भरते॥

किसके वियोग की मूक हूक भ्रमरावलि-सी आ मँडराती,
जो हृदय सुमन का मधु पराग नयनों के द्वार लुटा जाती॥
पुलकित रसाल पल्लवित प्रेम आशाओं से मृदु खेल खेल,
कल्पना-कुसुम का कर विकास, भर जाते जग का सुख सकेल॥

दारुण वियोग की विषम पीर—मलयज समीर-सी झूम झूम,
पंकिल निर्झर-सी आँखों को मुग्धा-सी जाती चूम चूम॥
क्या है यह? स्वप्निल मधुप्रभात अथवा भूली-सी विषम-पूर्ति,
विच्छेद भरी श्यामा निशि में जो आती है बन मिलन-मूर्ति॥

ऐरोमा

लेखक,
श्रीयुत उपेन्द्रनाथ
अश्क, बी० ए०

एक मनोरञ्जक
कहानी

डाक्टर हरिकुमार मेरे मित्रों में से थे। उनकी गणना पञ्जाब के प्रसिद्ध दंदानसाज़ों में होती थी। दाँतों के उपचार में जो निपुणता उन्हें प्राप्त थी वह उनके किसी समकालीन को न होगी। वे बी० एस-सी० की परीक्षा पास करने के बाद कलकत्ते चले गये थे और जब वहाँ से दंदानसाज़ी की शिक्षा प्राप्त करके लौटे तब एक कामिल डेंटल सर्जन थे। लाहौर में निस्बत-रोड पर उनकी सर्जरी थी। पञ्जाब के दूरस्थ प्रदेशों से रोगी वहाँ आते और स्वस्थ होकर चले जाते। कलकत्ता और कराची के और भी कई डिग्री-होल्डर लाहौर में थे, किन्तु उनकी वही गति थी जो सूर्य के सामने दीपक की होती है। एक की ख्याति समस्त प्रान्त में फैली हुई थी, दूसरे को उनके बाज़ारों तक में भी मुश्किल से कोई जानता था। मैं उन डाक्टरों की बात नहीं करता जो उनसे पहले प्रसिद्ध थे। मैं तो उनके सम्बन्ध में लिखता हूँ जिन्होंने उनके साथ काम आरम्भ किया था और उन डाक्टरों में हरिकुमार चाँद बनकर ऐसे चमक उठे थे कि दूसरों की द्युति मन्द पड़ गई।

कलकत्ता से आने के बाद अल्प काल में ही यह सब कुछ हो गया। उनके साथी मुँह देखते रह गये। वे एक एक दाँत के दस दस रुपये ले लेते तो भी लोगों का ताँता बँधा रहता, और वहाँ एक एक रुपया पर भी कोई न फटकता था, बैठे सारा दिन मक्खियाँ मारा करते। सत्य बात तो यह थी कि डाक्टर हरिकुमार का चातुर्य हाथों की अपेक्षा उनकी ज़बान में अधिक था। यदि किसी का काम बिगड़ जाता, तो ऐसी बातों से उसका मन पूरा कर देते कि उपेक्षा करने के बदले उनकी सहृदयता की दाद देता हुआ वापस जाता। एक बार जो उनसे काम बनवाता, उनका जीवित विज्ञापन बन जाता, उनकी प्रशंसा करता न थकता।

प्राणनाथ डाक्टर साहब के सहकारी का नाम था। स्वामी और सेवक का नाता होने पर भी दोनों में प्रगाढ़ प्रेम था। दोनों बचपन में साथ साथ खेले थे, स्कूल और कालेज में साथ साथ पढ़े थे। दोनों इकट्ठा खाना खाते,

इकट्ठा सिनेमा देखने जाते और इकट्ठा काम करते। हरिकुमार अपने आपको मालिक न समझते थे और न प्राणनाथ अपने को नौकर। दोनों एकता के तार में बँधे हुए थे। हरिकुमार धनी-मानी मा-बाप के लड़के थे, कालेज से निकलते ही कलकत्ता चले गये। प्राणनाथ के माता-पिता निर्धन थे, इसलिए वे लाहौर के ही एक दंदानसाज़ से शिक्षा प्राप्त करने लगे। डाक्टर हरिकुमार जब कलकत्ते से वापस आये तब उन्हें प्राणनाथ की कुशलता पर आश्चर्य हुआ। उन्होंने जो वस्तु धन से प्राप्त की थी, प्राणनाथ को वही ग़रीबी ने प्रदान कर दी थी। उसने मुख्य मुख्य अँगरेज़ी और अमेरिकन डाक्टरों की पुस्तकों का अध्ययन किया था, उनके एक एक शब्द को बार बार पढ़ा था और कंठस्थ कर लिया था। प्राणनाथ को ऐसे ऐसे देशी और विदेशी नुस्खे भी याद थे जो हरिकुमार के देवताओं को भी न ज्ञात होंगे। डाक्टर साहब ने इस बात को जान लिया था और उन्होंने प्राणनाथ को अपने यहाँ उपयुक्त वेतन पर सहकारी के रूप में रख लिया। उसे और क्या चाहिए था?

डाक्टर हरिकुमार की ख्याति का एक रहस्य यह भी था।

(२)

सर्दी के दिन थे, सुबह का समय था, किन्तु डाक्टर हरिकुमार एक कमीज़ ही पहने कमरे में घूम रहे थे। उनके चेहरे से परेशानी टपक रही थी। उन्होंने उस लम्बे कमरे का अन्तिम चक्कर लगाया और सर्जरी में दाखिल हो गये। दो घंटों से वे एक पेशेण्ट की दाढ़ की किरचें निकालने का प्रयास कर रहे थे, पर उन्हें सफलता नहीं प्राप्त हो रही थी। किरचें निकालना मुश्किल था, यह बात न थी। उन्होंने प्रायः इनसे भी सूक्ष्म किरचें पलक झपकते निकाल दी थीं, परन्तु रोगिणी इंजक्शन कराने से घबराती थी, पिचकारी और सुई की सूरत देखते ही उसे बेहोशी-सी आने लग जाती। जड़ें खोखली थीं और दाढ़ जीर्ण-शीर्ण। जहाँ डाक्टर उसे जम्बूर से पकड़ते, वहीं टूट जाती। अब यह हालत हो गई थी कि औज़ार के लगते ही वह तड़फ़ उठती थी। हाथ लगाना तक कठिन हो गया था। जो साधारण इंजक्शन तक नहीं करने देती वह मैंडीकुलर कब करने देगी और बिना उसके किरचें निकल न सकती थीं। यही कारण था कि डाक्टर साहब घबरा कर बाहर निकल गये थे। रोगिणी सम्पन्न और समृद्ध घराने से सम्बन्धित थी। डाक्टर साहब इनकार भी न कर सकते थे। सुबह से बिना नहाये-धोये उसकी दाढ़ निकालने में लगे थे। उन्हें खून पसीना करके कमाई हुई अपनी ख्याति पर पानी फिरता हुआ दिखाई दिया। चिन्ता और परेशानी के कारण इस शीत में भी उनके माथे पर पसीना आगया।

सर्जरी में पुनः दाखिल होने पर डाक्टर साहब अपनी कुर्सी के समीप कुछ क्षण के लिए मूक, निस्तब्ध खड़े रहे। सामने 'नाइट्रस आक्साइड गैस' का अप्रेटस पड़ा था। किन्तु हरिकुमार उसको गैस से बेहोश करने का साहस न कर सकते थे। वह अत्यन्त दुबली-पतली और कमज़ोर दिलवाली स्त्री थी। आशंका थी कि गैस से कहीं उसका दम ही न निकल जाय। उन्होंने एक बेर कराहती हुई रोगिणी के चेहरे को देखा और अप्रेटस पर हाथ रक्खे कुर्सी के गिर्द घूमे। ख्याति को बनाये रखने के लिए वे खतरा मोल लेने को तैयार थे।

"कदाचित् यह गैस को सहन न कर सके।" रोगिणी के पति लाला युगलकिशोर ने कहा।

डाक्टर साहब का हाथ अप्रेटस से फिसल गया और वे हताश-से खड़े रह गये।

"मेरा ख़याल है, मैं इन्हें अस्पताल ले जाकर साहब को दिखलाऊँ?"

"नहीं आप इन्हें ज़रा आराम करने दें। मेरा असिस्टैंट प्रयोगशाला में है। उसके आने पर मैं एक खास प्रिपेरेशन तैयार करके किरचें निकाल दूँगा। घबराइए नहीं।" यह कहकर डाक्टर सर्जरी से बाहर निकल आये और अपने प्राइवेट कमरे में जाकर कौच पर धँस कर बैठ गये।

यदि लाला युगलकिशोर चेहरे की आकृति से हृदय की अवस्था समझने का तनिक भी ज्ञान रखते होते तो उन्हें ज्ञात हो गया होता कि डाक्टर हरिकुमार सर्वथा असत्य कह रहे हैं। न डाक्टर साहब इस तरह किरचें निकाल सकते थे और न उनके पास कोई और प्रिपेरेशन ही था। वे केवल कुछ समय चाहते थे, जिसमें वे इनको ख़ुश असलूबी से जवाब देने का बहाना ढूँढ़ सकें। इस प्रकार वे इन्हें नहीं जाने देना चाहते थे।

(३)

डाक्टर साहब कोच पर बैठे हुए, सोच रहे थे, पर कुछ सोच न पाते थे। आज उन्हें कुछ कहने के लिए शब्द तक न सूझ रहे थे। उनका अनुभव, उनकी बुद्धि, सब हवा हो गये थे। रोगिणी इंजक्शन कराने को राज़ी न थी, गैस वे ख़ुद न दे सकते थे और वैसे किरचों का निकालना सर्वथा असम्भव-सा था। किंकर्तव्य-विमूढ़-से वे चुप बैठे थे। दीवार पर टँगी हुई घड़ी ने दस बजाये। पन्द्रह मिनट उन्हें इसी असमंजस में बीत गये। उन्होंने दीर्घ निःश्वास छोड़ा और उठ खड़े हुए। उन्होंने सोचा, मौक़े पर जो सूझ पड़ेगा, कह देंगे और कर ही क्या सकते हैं? उस समय उनके हृदय में एक प्रबल आकांक्षा उठी। वह यह कि कोई ऐसी दवा होती जिससे दाँत कष्ट के बिना स्वयं ही निकल जाते।

"डाक्टर जी! डाक्टर जी!!" प्राणनाथ ने प्रसन्नता से विह्वल होकर डाक्टर हरिकुमार के कंधों को थपथपाते हुए कहा।

डाक्टर हरिकुमार ने चिन्ता के कारण झुका हुआ अपना सिर ऊपर उठाया। उनकी व्यथित आँखें उसकी मुसकराती हुई आँखों से मिलीं। प्राणनाथ के हाथ ढीले पड़ गये। दूसरे क्षण कोच पर बैठकर वह अपने डाक्टर के चिन्तित मुख का निरीक्षण करने लगा। अन्दर से रोगिणी के कराहने की आवाज़ आई।

ऐसे अवसर पर डाक्टर साहब सदैव प्राणनाथ से परामर्श किया करते थे। वे बोले—अजीब विषम समस्या उपस्थित है प्राणनाथ। अन्दर सर्जरी में लाला युगलकिशोर की पत्नी बैठी है। उसकी दाईं दाढ़ जीर्ण-शीर्ण होकर टूट गई है। वह इंजक्शन करने नहीं देती और दुर्बलता के कारण मैं गैस देने का साहस नहीं कर सकता। बड़ी उलझन में.........

"बस, बस, ख़ूब अवसर मिला।" प्राणनाथ ने बात काटते हुए कहा—"आज़माइश हो जायगी।" हर्ष और उल्लास से उसका चेहरा दुगुना हो गया।

डाक्टर साहब की समझ में कुछ न आया। वे बुत बने उसकी ओर निर्निमेष ताकते रहे।

प्राणनाथ डाक्टर साहब के सम्मुख खड़ा हो गया। उसके चेहरे से गम्भीरता टपकने लगी। उसने जेब से एक शीशी निकाली, जिसमें लाल रंग की कोई गाढ़ी चीज़ थी। उसने कहा—

"इसमें वह दवा है डाक्टर साहब—वह औषध है जिसकी आवश्यकता आज सब संसार को है, जिससे दंदानसाज़ी के क्षेत्र में हलचल मच जायगी, जिसकी एक बूँद रोगी के लिए जादू का असर रखती है। इसके होते गैस या इंजक्शन की कोई आवश्यकता न होगी। एक बूँद दाँत के ऊपर मसूड़े पर लगा दीजिए, कुछ ही क्षणों में मसूड़े स्वयं दाँत छोड़ देंगे।"

डाक्टर साहब हँस दिये। रोष से बोले—यह हँसी का समय नहीं है कि तुम मजमा लगानेवालों की भाँति भाषण दो।

प्राणनाथ मुस्कराया, फिर गम्भीर होकर बोला—हँसी कौन करता है? मेरा आज वर्षों का परिश्रम ठिकाने लगा है। आज वह दवा तैयार हो गई है जिसका आविष्कार करने के लिए न दिन को चैन और रातों की नींद तक हराम हो गई थी।

डाक्टर हरिकुमार चुपचाप प्राणनाथ के मुँह की ओर देखते रहे। वे रोगिणी का दुःख और अपनी परेशानी सब भूल गये।

प्राणनाथ ने शीशी की ओर देखते हुए कहा—"और मज़े की बात यह है कि जिस दाँत पर दवाई लगाई जायगी वहीं गिरेगा, दूसरे को तनिक भी हानि न पहुँचेगी।"

डाक्टर साहब को अपने सहकारी की बातों पर विश्वास न हुआ। उसके चेहरे की मुद्रा गम्भीर थी पर डाक्टर साहब को विश्वास न होता था कि जिस दवा को सहस्रों चेष्टाओं पर भी योरप के वैज्ञानिक न तैयार

कर सके उन्हें लाहौर के एक कोने में बैठा हुआ उनका सहकारी तैयार कर लेगा। प्राणनाथ ने उनकी इस उधेड़-बुन की ओर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया। वह उनका हाथ थामे उन्हें सर्जरी में ले गया।

प्राणनाथ ने रुई के टुकड़े को शीशी में भिगोते हुए कहा—"हाथ कंगन को आरसी क्या ?" डाक्टर हरिकुमार चुप खड़े देखते रहे। उसने उस दाढ़ के ऊपर मसूड़े पर दवा लगाई और रोगिणी को तश्तरी पर मुँह झुकाने के लिए कहा। कुछ क्षणों के बाद दाँत के बदबूदार टुकड़े स्वयं थूक के साथ तश्तरी में गिर पड़े और रोगिणी का कष्ट दूर हो गया। हरिकुमार प्राणनाथ के मुख की ओर टकटकी बाँधे देखते रहे। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वे काम करते करते ऊँघ गये हों और स्वप्न में कोई जादूगर उन्हें आश्चर्यजनक खेल दिखा रहा हो। भ्रम दूर करने के निमित्त उन्होंने आँखों को भी मला, खिड़की से बाहर को देखा, पर सब कुछ सत्य था। सामने कुर्सी पर लाला जुगलकिशोर की पत्नी बैठी थी, उसके मुँह पर शांति की झलक थी। बाहर लाला साहब का मोटर खड़ा था और शोफ़र मज़े से सिगरेट पी रहा था।

उनके असिस्टेंट ने वह काम कर दिखाया था जो योरप के बड़े बड़े रासायनिक भी न कर सके थे।

(४)

कुछ ही काल में 'एरोमा' की ख्याति सारे भारत में फैल गई। सब पत्रों में उसके विज्ञापन निकलने लगे। सम्पादकों ने उस पर अपनी सम्मतियाँ दीं, उसकी प्रशंसा के पुल बाँध दिये। डाक्टर हरिकुमार को बैठे-बिठाये एक निधि मिल गई! प्राणनाथ सारा दिन प्रयोगशाला में बन्द रहता, दवा तैयार करता। सन्ध्या को वह शीशियों में बन्द कर दी जाती और दूसरे दिन बाहर भेज दी जाती। धन पानी की नाईं बरसने लगा।

प्राणनाथ रुपया नहीं लगा सकता था। उसने डाक्टर साहब से दवा और विज्ञापनों पर धन व्यय करने के लिए कहा और उसे तैयार करने का बोझ अपने कंधों पर लिया। 'सम्मार्ट ऐंड को' के नाम से एक कम्पनी की नींव रक्खी गई। दवा का नाम 'एरोमा' रक्खा गया। कुछ ही महीनों के विज्ञापनों से विदेश तक से आर्डर आने लगे। रसायन-क्षेत्र में शोर मच गया। लोग दो रुपये की एक शीशी मँगाते और अपने तो अपने, पड़ोसियों तक के दाँत निकाल देते। दवा की ईजाद किसने की है, इस बात का ठीक ठीक पता किसी को न था, भाँति भाँति के अनुमान भिड़ाये जाते थे। कोई डाक्टर हरिकुमार को उसका आविष्कारक बताता तो कोई कहता उन्होंने जर्मनी से केमिस्ट (रासायनिक) बुलवाया है। किन्तु प्राणनाथ का कोई नाम तक न लेता। चाँदी का रुपया ताँबे के सम्मिश्रण से झंकृत होता है, किन्तु नाम रुपया का ही होता है, ताँबे को कोई नहीं पूछता।

डाक्टर हरिकुमार इन किंवदंतियों को सुनते और चाहते कैसा अच्छा होता यदि मैं इस दवा का आविष्कारक होता। एक बड़ा भारी कारख़ाना खोलता। सारे संसार में मेरी ख्याति की बिजली कौंद जाती। लोग प्रलय-पर्यन्त मेरे नाम को स्मरण रखते। उनका चित्त प्रतिदिन व्याकुलता के अथाह सागर में उतरता जाता। मन की नाव आशंका के भँवर में डगमगाया करती। उन्हें खटका लगा रहता, कहीं आज प्राणनाथ मुझसे सम्बन्ध-विच्छेद न कर ले, कहीं आज जुदा न हो जाय। सोचते—यदि प्राणनाथ मुझसे जुदा हो गया तो कहीं का न रहूँगा। सारी ख्याति मिट्टी में मिल जायगी। भविष्य का सुन्दर और सुनहरा दुर्ग एक क्षण में ढह जायगा और प्राणनाथ! वह ऐश करेगा। सिद्धि और विलास उसके पाँव चूमेंगे। संसार उसकी प्रशंसा करेगा। पत्र उसके फ़ोटो प्रकाशित करेंगे। रुपया मैंने लगाया। प्रयोग करने के लिए प्रयोगशाला मैंने दी। अब वह मुझे अलग कर देगा। दूध की मक्खी की भाँति निकाल फेंकेगा।

डाक्टर साहब को इस अल्पकाल में ही कई सहस्र रुपया मिल चुका था, पर उनका सन्देह किसी प्रकार दूर न होता था। पहले दिन उन्होंने किवाड़ के छेद से प्राणनाथ को नोट-बुक से कुछ देखकर दवा तैयार करते देखा था, परन्तु बाद को वह नोट-बुक उन्हें कभी दिखाई न दी। प्राणनाथ को दवा का नुस्खा कंठस्थ था, नोट-बुक की उसे आवश्यकता ही न थी, फिर भी डाक्टर हरिकुमार को ज्ञात था कि नोट-बुक उसकी अन्दर की जेब में रहती है। प्रयोगशाला में उसके कपड़े और होते और बाहर और, किन्तु वह उन्हें बदलते समय सावधानी से नोट-बुक भी निकाल लेता। डाक्टर साहब उस सुअवसर की ताक में थे कि वह नोट-बुक भूल जाय, पर आज तक वह अवसर न आया था।

प्रकट रूप से वे उससे हँस हँस कर बातें करते। आधे भाग की जगह उसे कुछ अधिक ही देते। हर उत्सव पर उसके घर कुछ न कुछ भेज देते। उसके माता-पिता को अपने यहाँ आमन्त्रित करते, किन्तु अन्दर से जलते रहते। उनका हृदय सदैव ईर्ष्या और स्वार्थ की अग्नि में भुना करता।

प्राणनाथ की भोली-भाली सरल सूरत उन्हें ज़हर प्रतीत होती। प्रतिक्षण उससे दवा का रहस्य पूछने में लगे रहते। कहते, यार तुमने कमाल कर दिया। आख़िर तुम्हें इसका खयाल कैसे पैदा हुआ? वही किताबें हमने पढ़ी हैं, वही तुमने। हमें तो कहीं कुछ सुझाई नहीं दिया। प्राणनाथ चुप रहता या मुसकरा देता। अपनी प्रशंसा को सुनकर चुप रहना उसने भले प्रकार सीख लिया था और सत्य तो यह है कि इसी में उसकी भलाई थी। वह उन पुरुषों में से न था जो प्रशंसा के दो शब्दों से फूलकर कुप्पा हो जाते हैं और फिर खुशामदी जो चाहे, कह देते हैं। डाक्टर हरिकुमार ने इन शस्त्र को निष्फल जाते देखकर दूसरे हथियार से काम लेने की ठानी। उन्होंने प्राणनाथ को मदिरा-पान की लत डालने का प्रयास किया, किन्तु इस प्रयत्न में भी वे निष्फल रहे। प्राणनाथ शराब तो क्या सिगरेट तक के समीप न गया, और डाक्टर हरिकुमार सब अस्त्र चला चुकने पर थक जानेवाले योद्धा की भाँति हार कर बैठ गये।

पर वे निश्चिन्त हो गये हों, यह बात न थी। उनके दिन और रातें इसी समस्या का हल सोचने में व्यतीत होतीं। उनके स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ गया था। उन्हें अपने शरीर का, अपने स्वास्थ्य का कोई ध्यान न रहा था। ज्यों ज्यों आर्डर अधिक संख्या में आने लगे, उनकी व्याकुलता में वृद्धि होती गई। वे अपने शरीर की ओर से बेपरवा हो गये थे। पहले वे प्रातः उठकर हजामत बनाते, ब्रश करते, नहाते, समय होता तो सैर करने को भी जाते। पर अब 'सवेरे' जब बिस्तर से उठते तब 'घड़ी की सुई सवा नव पर थी' का-सा हाल होता। कई कई दिन तक बाल न बनवाये जाते। कपड़े मैले हैं, पर बदलने की इच्छा नहीं होती। निजी काम भी प्रायः चौपट हुआ जा रहा था, पर उनको उसकी सुध तक न थी। यह सब कुछ था, परन्तु प्राणनाथ के साथ उनके व्यवहार में कोई अन्तर न आया था। उससे वे सदैव मुसकराते हुए मिलते। उसकी सेवा-शुश्रूषा में कोई कमी न होने पाती। क़साई जानवर को पाल रहा था, पर साथ ही छुरा भी तेज़ किये जा रहा था।

संध्या का समय था। हरिकुमार ड्राइङ्ग रूम में बैठे दवा-फ़रोशों के सूचीपत्र देख रहे थे। सहसा उनकी आँखों में एक चमक पैदा हुई। उन्होंने सूचीपत्र को साथ लिया और मोटर में सवार होकर माल-रोड की ओर चले गये। 'ऐमनीशिया!' 'ऐमनीशिया!' उन्होंने दो बार इस दवा का नाम दोहराया। इसकी एक बूँद का बीसवाँ हिस्सा उनकी मनोकामना को पूरा कर सकता था। दवा की शीशी कोट की भीतरी जेब में दबाये हुए डाक्टर साहब अपनी कोठी में दाख़िल हुए, उस सेना-नायक की भाँति जिसे दुश्मन को परास्त करने का कोई सुगम साधन हाथ आ गया हो।

प्राणनाथ प्रयोगशाला में अपने काम पर आ गया था और ड्रेसिंगरूम में कपड़े बदल रहा था। हरिकुमार ने सर्जरी से एक सुई ली, और कमरे में पड़े हुए दवा के बंडलों पर से गुज़रते हुए शीघ्रता से ड्रेसिंगरूम में आये। प्राणनाथ चीज़ों को कोट की एक जेब से दूसरे की जेब में रख रहा था। उसकी पीठ डाक्टर साहब की ओर थी। उसे एक साधारण-सी चुभन जान पड़ी और उसके हाथ की चीज़ें गिरकर बिखर गईं। डाक्टर हरिकुमार ने

जल्दी से नोट-बुक को उठाकर उसके पृष्ठों को उलटा, विविध प्रकार के नुस्खे लिखे हुए थे। एक पृष्ठ पर उन्हें लिखा हुआ नज़र आया—'ऐरोमा'। उन्होंने झट वह पृष्ठ फाड़कर नोट-बुक को फिर वहीं फेंक दिया। सब कुछ पलक झपकते हो गया।

प्राणनाथ ने गर्दन को सहलाते हुए कहा—"डाक्टर साहब, प्रतीत होता है, मेरी गर्दन पर किसी ने डंक मार दिया और कुछ क्षण के लिए मेरा सिर घूम गया और मेरी आँखें बन्द-सी हो गईं।"

"काम बहुत करते हो। सिर तो चकरायेगा ही!"

"लेकिन डंक!"

"मच्छड़ होगा, चलो बाहर चलें। आज सिनेमा चलोगे क्या? मिस भंडारी भी आ रही है।"

प्राणनाथ ने फिर गर्दन को सहलाते हुए कहा—"देखिए तो डाक्टर साहब, क्या चीज़ चुभ गई है!"

डाक्टर हरिकुमार ने धड़कते हुए दिल के साथ झुक कर देखा, एक हलका-सा लाल रङ्ग का निशान बना हुआ था। उन्होंने सुई को 'ऐमनीशिया' में भिगो कर चुभो दिया था। उनका रंग फक हो गया, परन्तु सँभल कर बोले—"राम जाने क्या चुभ गया है? वहाँ निशान-विशान तो कोई नहीं है। शीघ्र कपड़े बदल लो। आओ, तनिक बाज़ार घूम आवें। उठाओ सब चीज़ें, देखो ज़मीन पर बिखर गई हैं।"

प्राणनाथ को जैसे किसी ने नींद से जगा दिया हो। उसने जल्दी से नोट-बुक को उठाया और पतलून की जेब में ठूँस लिया। फिर कोट पहन कर बाहर निकल आया। किसी पंछी को मारने का इरादा करो। वह झट उड़ जायगा। फिर प्राणनाथ तो मनुष्य ही था। वह कैसे डाक्टर हरिकुमार के कुत्सित इरादों को न भाँप सकता? उसे कुछ कुछ आशंका अवश्य हो गई थी। प्रयोगशाला के बाहर एक अँगीठी जल रही थी। उसने नोट-बुक को उसमें फेंक दिया। अब जब उसे सब नुस्खे कंठस्थ हो चुके थे तब उसे उठाये फिरने की क्या ज़रूरत थी? परन्तु उसे क्या मालूम था कि चौकीदार रखने से पहले ही चोर अपना काम कर गया है?

रात को डाक्टर हरिकुमार सो न सके। बीसियों सुख-स्वप्न देखते रहे। उन्होंने काँटे को परे हटा कर मार्ग साफ़ करने का इरादा कर लिया था। अब उनका नाम 'ऐरोमा' के आविष्कारक की हैसियत से प्रसिद्ध होगा। उनकी ख्याति का पक्षी पर लगा कर संसार के चारों कोनों में उड़ेगा। पहले वे डाक्टर थे—केवल डाक्टर, अब वे ऐरोमा के आविष्कारक होंगे, जिसने दुनिया में तहलका मचा दिया है। अब वे प्राणनाथ को उपेक्षा-भरी दृष्टि से देखते। आत्मा पर स्वार्थ का पर्दा पड़ गया था। चिनगारी को राख ने छिपा लिया था।

(५)

दिन गुज़रते गये।

डाक्टर साहब प्राणनाथ को रोज़ खाने में 'टारकल' विष की एक ख़ूराक देते रहे। उन्होंने उसे स्थायी तौर पर अपने यहाँ खाना खाने के लिए बाध्य कर दिया था। 'टारकल' ही एक ऐसा विष था जिससे वे प्राणनाथ को बे-खटके अपने मार्ग से परे हटा सकते थे। इस विष की एक एक ख़ूराक शरीर के अन्दर इकट्ठी होती रहती है और खानेवाले को प्रतीत भी नहीं होता, किन्तु जिस दिवस उसकी दो ख़ूराकें दी जायँ उस दिन सब विष अपनी सम्मिलित शक्ति से अपने शिकार पर आक्रमण करता है और उसकी जान लिये बिना नहीं छोड़ता।

शनि का दिन था। लाहौर में 'प्रेम या कर्तव्य' नामक चित्रपट ने सनसनी पैदा कर दी थी। लाहौर में पहली बार ही यह फ़िल्म 'कैपिटल' में लगी थी। प्राणनाथ ने भी वह खेल देखने का इरादा प्रकट किया। डाक्टर साहब ने इस अवसर को उपयुक्त जाना। खाने के साथ विष की दो ख़ूराकें दे दीं। प्राणनाथ खेल देखने चला गया, डाक्टर साहब ने सिर-दर्द का बहाना करके साथ जाने से इनकार कर दिया।

आज न जाने कितनों को सिनेमाहाल से निराश लौटना पड़ा था। देखनेवाले बुत बने देख रहे थे। प्राणनाथ की निगाहें चित्रपट पर जमी हुई थीं। प्रेमिका की मुहब्बत और देश के प्रति कर्तव्य दोनों में जङ्ग छिड़ी हुई थी। ईमान और शैतान की लड़ाई थी। प्राणनाथ का दिल धड़क रहा था। विष शनैः शनैः अपना असर कर रहा था। आख़िर प्रेमिका देश-प्रेम को त्याग कर प्रेमिका के आँचल की शरण ली। ईमान पराजित हो गया, शैतान की जय हुई। प्राणनाथ ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा और इसके साथ ही उसका सिर कुर्सी पर लुढ़क गया। हाल में रोशनी हो गई। 'इंटरवेल' में लोग उठकर बाहर जाने लगे। प्राणनाथ निश्चेष्ट, निस्पन्द, निष्प्राण पड़ा रहा। उसके समीप बैठनेवालों ने इसे देखा। समझे, सो रहा है, किन्तु जब उनके वापस आने पर भी उसने कोई हरकत न की तब उन्हें खटका हुआ। इसके बाद एकाएक हाल में शोर मच गया। प्राणनाथ मर चुका था। उसका शव बाहर लाया गया। दो-तीन डाक्टर भी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने फ़तवा दे दिया, युवक की मौत दुर्बलता के कारण दिल की हरकत बन्द हो जाने से हुई है। उसकी जेब से 'सम्मार्ट ऐंड को' के काग़ज़ निकले। वह वहाँ पहुँचा दिया गया।

डाक्टर हरिकुमार ने जब प्राणनाथ के शव को देखा तब दाढ़ें मार कर रोने लगे। इन मगरमच्छ के आँसुओं को देखकर दूसरे भी रो पड़े। उसके शव का आलिंगन करते हुए उन्होंने कहा—"हाय! मेरी दाईं भुजा टूट गई।"

(६)

'सम्मार्ट ऐंड को' की ओर से ऐरोमा का विज्ञापन बदस्तूर जारी था, परन्तु बनी हुई दवा की मात्रा एक ही दिन के आर्डरों की भेंट हो चुकी थी। डाक्टर साहब बाद को आई हुई माँगों को पूरा न कर सके थे। प्राणनाथ की मृत्यु पर वे कई दिनों तक उसके घर पर रहे थे। उसके माता-पिता को सान्त्वना देते थे। कहते थे, आपका बच्चा नहीं मरा, मेरा भाई मर गया है, मेरा बच्चा मर गया है। अपने पाप पर पर्दा डालने के लिए उन्होंने प्राणनाथ के मा-बाप को अपने यहाँ बुलवा लिया था और उन्हें वहाँ ही रहने को बाध्य किया। लोग यह देखकर कहते कि डाक्टर हरिकुमार देवता हैं।

जब हर तरफ़ सुकून हो गया, तब उन्हें ऐरोमा को तैयार करने की चिन्ता हुई। उन्होंने प्राणनाथ को विष देना तब आरम्भ किया था जब उन्हें ऐरोमा में पड़नेवाली सब वस्तुएँ मिल गई थीं। एक बूटी की कमी थी सो वह भी उन्होंने एक हकीम से पूछ कर मँगा ली थी। प्राणनाथ ने ऐरोमा को तैयार करने में देशी और अँगरेज़ी दवाओं से काम लिया था।

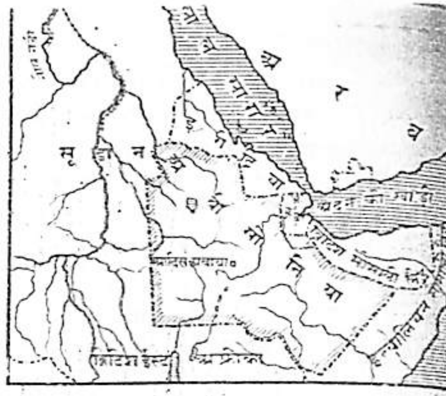
दोपहर का समय था। खिड़की से आनेवाली धूप की किरणें कम होते होते बिलकुल मिट चुकी थीं। टेबुल पर रक्खी हुई घड़ी की सुइयाँ बारह बजा रही थीं। नौकर तीन बेर खाना खाने के लिए बुलाने आ चुका था, किन्तु डाक्टर साहब प्रयोगशाला में ऐरोमा तैयार करने में तल्लीन थे। उनके कपड़े पसीने में भीग चुके थे! नोट-बुक का पृष्ठ उनके हाथ में था और वे उसी के अनुसार काम कर रहे थे। उन्होंने सब बूटियों को मिलाया था। दवाइयों को नुस्खे के अनुसार मिलाकर उन्हें आग पर चढ़ा दिया था। केवल एक दवा रह गई थी और उसे उबलते समय मिलाना था। पन्द्रह मिनट व्यतीत हो सके, दवा उबलने लगी। उन्होंने मुँह बर्तन के पास ले जाकर उबलती हुई दवा को देखा और दूसरी शीशी उसमें उड़ेल दी। उस समय ज़ोर का धड़ाका हुआ। दवा उछल कर उनके मुँह पर आ पड़ी। डाक्टर साहब का मुँह झुलस गया, आँखें जल गईं, गर्दन और हाथों पर छाले पड़ गये, उनके दाँत झड़ गये और दवा के गले में उतर जाने के कारण वे धरती पर गिर कर तड़पने लगे और इससे पहले कि कोई उनकी सहायता को आता, उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। उन्हें यह ज्ञात न था कि 'फ़ारनहीट' के कितने दर्जे तक दवा को गर्म करना है, और अधिक खौलने के कारण यह घटना घट गई।

ऐरोमा का नुस्खा उनके हाथ से गिरकर कब का आग की भेंट हो चुका था।

अबीसीनिया

लेखक,

श्रीयुत दीनदयालु शास्त्री



पाठक अबीसीनिया के बारे में बहुत कुछ जानना चाहेंगे। अफ्रीका में कालों का यही देश है जो हजारों वर्षों से स्वाधीन चला आ रहा है। इस लेख में विद्वान लेखक ने अबीसीनिया के पूर्व इतिहास और उसकी वर्तमान राजनैतिक स्थिति का सुन्दर परिचय दिया है।

अर्ध सभ्य अफ्रीका के पूर्व में अदन की खाड़ी के उस पार अबीसीनिया नाम का एक पहाड़ी तथा हरा-भरा देश है। इसका प्राचीन नाम इथोपिया है। पिछले हजारों वर्ष से यह देश स्वतंत्र चला आ रहा है। यहाँ के निवासी वीर, लड़ाके तथा मेहनती हैं। अपनी आजादी का उन्हें बड़ा नाज है। ज्यादा लोग ईसाई-मत को मानते हैं और धार्मिक विचारों में कट्टर हैं। देश का क्षेत्रफल साढ़े तीन लाख वर्गमील है और जन-संख्या सवा करोड़ से अधिक। देश के मध्य में ऊँचे ऊँचे पहाड़ों की श्रेणी है। इन पहाड़ों के चारों ओर शुष्क मैदान हैं। अतबारा, नील (ब्ल्यूनाइल), जूबा तथा शेवाली नाम की नदियाँ इन पहाड़ों से निकल कर देश को हरा-भरा रखती हैं। नील नदी का निकास ताना (Tsana) नाम की झील से है, जो देश के पश्चिम में पहाड़ों में अवस्थित है। नील नदी का प्रवाह उत्तर में सूडान और मिस्र को सरसब्ज बनाता है। दुर्गम पहाड़ी मुल्क होने के कारण देश के मध्य-भाग की आबोहवा बहुत अच्छी है। राजधानी अदिसअबाबा छोटा-सा शहर है और एक पहाड़ी मैदान में बसा है।

१९ वीं सदी में योरप के कई दुर्धर्ष राष्ट्रों की नज़र अफ्रीका पर पड़ी। धीरे धीरे ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, पुर्तगाल, बेल्जियम व इटली ने इस महाद्वीप को हड़प लिया। अबीसीनिया के पड़ोस के सोमालीलैंड को फ्रांस, ब्रिटेन व इटली ने परस्पर बाँट लिया। उत्तर के एरिट्रिया प्रदेश को भी इटली ने अपने दखल में कर लिया। अबीसीनिया के समुद्र-द्वार मसोवा पर इटली का झंडा फहराने लगा। एरिट्रिया व सोमालीलेंड दोनों ही सूखे, रेतीले तथा ऊजड़ प्रान्त हैं। इनको पाकर इटली के प्रधान मन्त्री क्रिस्पी की गृध्रदृष्टि अबीसीनिया पर पड़ी। क्रिस्पी ने अबीसीनिया को लिखा कि वह विदेश-सम्बन्धी बातों में इटली की सलाह से काम किया करे। अबीसीनिया के मनस्वी नगूसानगास्त सम्राट् को यह स्वीकार न हुआ। सन् १८९६ में इटली की प्रचण्ड सुसज्जित सेना एरिट्रिया से अबीसीनिया की ओर बढ़ी। सम्राट् मेनेलक ने अशिक्षित लेकिन बहादुर फ़ौज लेकर अडोवा के निकट इटली की सेना से लोहा लिया। पहाड़ी



[राजमहल के सामने अबीसीनिया के सैनिकों का जमाव]

मुल्क होने के कारण सम्राट् की सेना नफ़े में रही। अडोवा के निकट की पहाड़ी खाई में तीस हज़ार इटालियन खेत रहे। शेष को अंग-भंग करके अबीसीनिया की सेना ने देश से बाहर भगा दिया। अडोवा की हार से इटली में दुःख, भय व निराशा के बादल छा गये। इटली की साम्राज्यलिप्सा कुछ बरसों के लिए ठंडी पड़ गई। इसके बाद सन् १९०६ में इटली, फ्रांस व ब्रिटेन ने आपस में एक समझौता किया। इसके अनुसार तीनों ने अबीसीनिया की स्वतंत्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने का वचन दिया। तब फ्रांस को जीबूती बन्दरगाह से राजधानी अदिस-अबाबा तक रेल-लाइन बनाने की इजाजत मिली। ताना झील से निकली हुई नील नदी का प्रवाह मिस्र के लिए आवश्यक समझा गया और उस पर प्रतिबन्ध न लगाने का अबीसीनिया ने वचन दिया। वैसे सब बातों में अबीसीनिया की स्वतंत्रता क़ायम रही।

धीरे धीरे ज़माने ने पलटा खाया। योरप का महायुद्ध आँधी की तरह आया और अपने साथ बड़े बड़े सम्राटों, राष्ट्रों तथा प्रदेशों को समेटता हुआ चला गया। इटली भी इस आँधी से न बच सका। वहाँ भी अनेक उपद्रवों, हड़तालों तथा आन्दोलनों के बाद शासन-सूत्र मुसोलिनी के हाथ में आ गया। मुसोलिनी को सर्वप्रथम अपने देश की बेकारी का सामना करना पड़ा। बात यह है कि इटली छोटा-सा देश है। उसका एक लाख दस हज़ार वर्गमील रक़बा है, जिसका बहुत-सा हिस्सा पहाड़ तथा दलदल है। जीविका के साधन कम हैं, फिर भी आबादी बढ़ रही है। सन् १८७१ में देश की आबादी ढाई करोड़ के लगभग थी। सन् १९११ में वह बढ़ कर साढ़े तीन करोड़ हो गई और अब सन् १९३० में तो वह सवा चार करोड़ से भी अधिक जा पहुँची है। इस आबादी की जीविका का अपने देश में यथेष्ट प्रबन्ध न होने से योरपीय महायुद्ध से पहले प्रतिवर्ष



[एक गिर्जाघर के सामने पादरियों का नृत्य]

लाखों इटालियन विदेशों को चले जाते थे। ये लोग परदेश में जाकर उसी देश के निवासी हो जाते थे और अपनी राष्ट्रीयता तथा भाषा को खो बैठते थे। सन १९२५ में ऐसे प्रवासी इटालियनों की संख्या एक करोड़ थी। साइनर मुसोलिनी ने सर्वप्रथम इटालियनों का विदेश जाना बन्द कर दिया। इनको बसाने के लिए इटली के दलदल साफ़ किये गये और ट्रिपोली, एरिट्रिया तथा सोमालीलेंड के उपनिवेशों में जमीनें मुफ्त दी गईं। अकेले इटली में ६० लाख एकड़ नई ज़मीन खेती के लिए तैयार की गई। इटली के तीनों उपनिवेशों में भी जैतून, गन्ना तथा कपास की खेती को बड़े पैमाने में करने का प्रयत्न किया गया। किन्तु इसमें सफलता नहीं मिली, क्योंकि ये तीनों ऊसर हैं और इनकी आबोहवा गरम है। इटालियन किसान एरिट्रिया व ट्रिपोली में बसने के लिए भेजे जाते थे, लेकिन वे बीमार होकर घरों को लौट आते थे। मुसोलिनी को अपने प्रयत्न में असफलता पसन्द न थी। अन्ततो गत्वा मुसोलिनी की नजर अबीसीनिया पर पड़ी। सन १९२५ में ब्रिटेन व इटली ने एक पारस्परिक समझौते-द्वारा अबीसीनिया को बाँट लिया। पश्चिम में ताना झील के आस-पास ब्रिटेन ने मोटर की सड़क बनाने की सुविधायें प्राप्त कर लीं। पूर्व में इटली ने एरिट्रिया से सोमालीलेंड को रेल ले जाने के अधिकार प्राप्त कर लिये। यह रेलवे अबीसीनिया के मध्य में से निकलती थी। इस समझौते में फ्रांस शरीक न था। इस रेल के बन जाने से फ्रांस की रेल-लाइन को जो जिबूती बन्दरगाह से राजधानी अदिस-अबाबा को जाती है, हानि होने की संभावना थी। इसलिए फ्रांस ने अबीसीनिया की पीठ ठोंकी। अबीसीनिया ने ब्रिटिश-इटालियन समझौते के खिलाफ़ राष्ट्र-संघ में अपील कर दी। जेनेवा में उपस्थित सब राष्ट्रों ने अबीसीनिया का साथ दिया और इटली को अबीसीनिया को हड़पने की बात रह गई।

सन १९२५ के बाद सन १९२८ में इटली व अबीसीनिया में पारस्परिक समझौता हो गया, लेकिन मुसोलिनी की महत्त्वाकांक्षा का अन्त न हो पाया। उसके नेतृत्व में इटली के युवक एक वृहत् साम्राज्य की कल्पना कर रहे थे। इटली की बढ़ती हुई आबादी को स्थान देने का भी सवाल था। उसकी नजर रह रह कर अबीसीनिया के हरे-भरे ऊँचे पठार पर जाती थी। उसने इसे ही हथियाने का फ़ैसला किया। इसका



[अबीसीनिया के वीर योद्धा]

उपक्रम सन् १९३१ में ही हो गया। अबीसीनिया के सीमावर्ती इटालियन उपनिवेशों में रेल बिछाने तथा मोटर की सड़क बनाने का प्रबन्ध किया गया। एरिट्रिया में वे सड़कें मसावा बन्दरगाह से अबीसीनिया की सीमा तक तैयार की गईं। सोमालीलेंड भारतीय महासागर के किनारे पर पाँच सौ मील से अधिक लम्बा चला गया है। उसके मोगाडिशु बन्दरगाह से एक रेल-लाइन अबीसीनिया की सीमा तक बनाई गई। इसके समानान्तर पर थोड़ी थोड़ी दूर पर पक्की सड़कों का आयोजन किया गया। सीमा के निकट क़िलेबन्दी का भी प्रबन्ध किया गया। इन सड़कों के निर्माण से दो लाभ हुए। बेकार इटालियनों को काम मिला, साथ ही अपने उपनिवेशों को बसाने के लिए प्रोत्साहन मिला और परोक्ष में अबीसीनिया से होनेवाली मुठभेड़ का क्षेत्र भी तैयार हो गया।

इटली की इस महत्त्वाकांक्षा से अबीसीनिया के वर्तमान सम्राट् हेल सिलासी भी ग़ाफ़िल न थे। उन्होंने भी स्वस तथा स्वीडिश इञ्जीनियरों-द्वारा देश में सड़कों का बनवाना प्रारंभ किया। फ़ौज के शिक्षण के लिए बेलजियम से अफ़सर बुलाये गये। बारूद तथा हथियारों के लिए कल-कारखानों का निर्माण हुआ। पश्चिम की ताना झील के निकट के भाग को सींचने के लिए एक बाँध बाँधने का फ़ैसला हुआ। सन् १९०६ में इसी झील से मिस्र को निर्बाध जल आने की स्वीकृति अबीसीनिया ने ब्रिटेन को दी थी। अब सन् १९३२ में अबीसीनिया ने अपने देश के हित के लिए इस बाँध की आयोजना की। इस बाँध के पास पन्द्रह लाख एकड़ भूमि एक जापानी कम्पनी को कपास बोने के लिए दी गई। इसके बदले में जापान ने अबीसीनिया को हथियार देने का वादा किया। जापान को अन्य भी कई व्यापारिक सुविधायें दी गईं। इन सब योजनाओं में सम्राट् सिलासी ने योरप की मुख्य महाशक्तियों के स्थान



[राजमहल का बरामदा, अदिसअबाबा]

में छोटे राष्ट्रों को ही सुविधायें दीं। वे जानते थे कि उनको योरप के बड़े राष्ट्र विशेषतः फ्रांस, ब्रिटेन व इटली अबीसीनिया को स्वतंत्र न रहने देंगे। योरप के बाहर के देशों में जापान और अमेरिका ही प्रमुख हैं। इनमें से जापान को आर्थिक सुविधायें अधिक मिलीं।

सन १९३१ से सन् १९३४ तक इटली व अबीसीनिया युद्ध-सामग्री जुटाने में लगे रहे। बाहर के राष्ट्र निश्चिन्त थे। उन्हें इसका ख़याल भी न था कि अफ़्रीका के पूर्व में कोई ज्वालामुखी फटनेवाला है। सन् १९३४ में इटली के राजा विक्टर इमैनुअल एरिट्रिया व सोमालीलेंड गये। वहाँ जाकर उन्होंने फ़ौजी निरीक्षण किया। इटली के राजा की इस यात्रा ने सभ्य संसार को [illegible] दिया। उन्हीं दिनों सोमालीलेंड के इटली के गवर्नर-जनरल कैप्टन रौबर्टो किम्मरुश ने भी सीमाप्रान्त का दौरा किया और देशी फ़ौज की परेड देखकर कहा—सोमाली भाइयो! इटली के हवाई जहाज आ रहे हैं। हमारी क़िलेबन्दी पूरी हो रही है। थोड़े ही दिनों में हम बिना किसी मुठभेड़ के असभ्य अबीसीनिया पर अधिकार कर लेंगे।

यह घटना गत वर्ष के नवम्बर महीने की है। अबीसीनिया और ब्रिटिश व इटालियन सोमालीलेंड

की मध्यवर्त्ती सीमा निश्चित नहीं है। इसका निश्चय करने के लिए अँगरेज़ों और अबीसीनियावालों का एक कमीशन उलवल में बैठा हुआ था। उलवल सोमालीलेंड की पश्चिमी सीमा से पचास मील इधर छोटा-सा शाद्वल (ओसिस) है। एक दिन कुछ इटालियन उलवल में पहुँचे। उन्होंने अबीसीनिया के तम्बुओं पर फ़ायर किया। इससे १०७ अबीसीनियनों की जानें गईं और पचास से अधिक ज़ख्मी हुए। इस फ़ायर के समय स्वयं कैप्टन किम्मारुटा वारडेर में थे। यह स्थान भी अबीसीनिया में है। फ़ायर के बाद ही उलवल पर इटली के दो हवाई जहाज़ मँडराते दिखाई दिये। अँगरेज़ और अबीसीनियावाले दोनों इस घटना से विचलित हुए। दोनों ने किम्मारुटा को पत्र लिखा। कैप्टन किम्मारुटा ने उत्तर दिया कि उलवल और वारडेर दोनों स्थान इटली के हैं। यहाँ बैठकर ब्रिटिशों तथा अबीसीनियनों का मंत्रणा करना उचित नहीं है। इधर तो उसने यह पत्र लिख दिया, उधर मुसोलिनी को किम्मारुटा ने ख़बर दी कि अबीसीनिया की फ़ौज ने इटली के कुछ गाँवों पर हमला किया है, इससे दोनों ओर के आदमी आहत हुए हैं।

उलवल की इस घटना से सारे इटली में उत्तेजना फैल गई। मुसोलिनी कई वर्ष से ऐसे मौक़े की प्रतीक्षा में ही थे। उन्होंने अबीसीनिया के सम्राट् को कड़ा पत्र लिखा। इस पत्र में तीन शर्तें थीं—१—उलवल की घटना के लिए खेद प्रकाशित किया जाय। उस प्रान्त की अबीसीनियन सेना इटालियन झण्डे को सलाम करे। २—अबीसीनिया दो लाख डालर हरजाने के दे। ३—हमला करनेवाले अबीसीनियन फ़ौज से निकाल दिये जायँ। इस पत्र के अनुसार अबीसीनिया के सम्राट् ने इटालियन झण्डे की सलामी तो क़बूल कर ली, लेकिन बाक़ी शर्तों को मानने से इनकार कर दिया। इससे नाराज़ होकर मुसोलिनी ने खुले आम युद्ध की धमकी दे दी और निर्बल अबीसीनिया ने इस मामले की अपील राष्ट्र-संघ को कर दी।

उलवल की घटना को हुए आज आठ मास हो गये हैं। इस अवधि में स्थिति अधिक पेचीदा हो गई है। सन् १९२५ में इटली की अबीसीनिया को हड़पने की इच्छा में फ्रांस बाधक था। आज सन् १९३५ में वह उसका समर्थक है। योरप में जर्मनी के मुक़ाबले में फ्रांस इटली की मदद चाहता है। अफ़्रीका में उसने इटली को सुविधायें देकर योरप में अपना पक्ष प्रबल कर लिया है। इस साल के शुरू में हुए फ्रांस-इटली के समझौते का मुख्य आधार यही है। इस समझौते के अनुसार फ्रांस ने इटली को अबीसीनिया में मनमानी करने की स्वीकृति दे दी है। साथ ही अपने सोमालीलेंड का उत्तरार्द्ध भी उसने इटली को सौंप दिया है। जिबूती से आदिसअबाबावाली रेल-लाइन में भी फ्रांस ने इटली को साझीदार बना लिया है। इस प्रकार मुसोलिनी ने अपने मार्ग को निष्कण्टक कर लिया है।

इटली फ्रांस की मूक सहमति पाकर अबीसीनिया से लोहा लेने के लिए तैयार हो गया है, लेकिन ब्रिटेन, जापान व अमेरिका इस विषय में उसके साथी नहीं हैं। यह वह ख़ुद जानता है। अबीसीनिया के दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर में ब्रिटेन का साम्राज्य फैला हुआ है। इटली के प्रबल हो जाने से ब्रिटेन के स्वार्थों को भारी धक्का लगेगा। दूसरी ओर ताना झील के निकट के अमेरिकन बाँध के कारण वह अबीसीनिया से भी ख़ुश नहीं है। कारण यह है कि इस बाँध के बन जाने से ब्ल्यूनाइल का पानी सूडान व मिस्र में न जा सकेगा। नील नदी के जल पर ही मिस्र की कपास की फ़सल निर्भर है। पिछले मार्च में ब्रिटेन अपना जेला बन्दरगाह देकर अबीसीनिया को प्रसन्न करना चाहता था। उसका ख़याल था कि अबीसीनिया इसके बदले में इटली को तथा उसे आर्थिक सुविधायें दे देगा जिससे यह झगड़ा ख़तम हो जायगा, लेकिन इस शर्त को इटली ने ही नहीं माना। इटली को भय था कि जेला बन्दरगाह से अबीसीनिया को युद्धोपयोगी सामान मँगाने में सुविधा रहेगी। इटली के इस इनकार के बाद से ब्रिटेन ढीला पड़ गया है। यद्यपि अब भी वह अबीसीनिया में इटली के अधिकार या संरक्षण को स्वीकार नहीं करता, फिर भी वह इस मामले में इटली से रार मोल लेना नहीं चाहता। अमेरिका इस मामले में तटस्थ है। वह न तो इटली का साथी है और न अबीसीनिया का विरोधी। हाँ! अस्त्र-शस्त्र भेजने में वह आज भी अबीसीनिया की मदद कर रहा है। जापान स्पष्टतः अबीसीनिया का मददगार है। युद्ध होने की हालत में जापान से अबीसीनिया को बहुत आशायें हैं। इन्हीं के आधार पर पिछले कुछ वर्षों से जापान ने अबीसीनिया में पर्याप्त आर्थिक सुविधायें प्राप्त की हैं। ताना झील के निकट १५ लाख वर्ग मील भूमि में जापान कपास पैदा कर रहा है। देश के खनिजों को खोदने का ठेका भी उसे मिला है और सबसे बढ़ कर देश के कल-कारख़ानों की उन्नति के लिए जापानी पूँजी मुक्तहस्त से लगाई जा रही है। यही कारण है कि आज इटली में जापान का विरोध किया जाता है। अबीसीनिया के साथ जापान की सहानुभूति में एक और भाव भी काम कर रहा है। इटली का दावा है कि वह असभ्य तथा काले अबीसीनिया का सुधार चाहता है। दुर्भाग्य से जापान की भी गणना काले देशों में की जाती है। काले और गोरे का सवाल पैदा होने की हालत में जापान का कालों से सहानुभूति दिखलाना स्वाभाविक ही है। १९ वीं सदी के अन्त में जब योरपीय राष्ट्र अफ़्रीका व एशिया में अपना साम्राज्य बनाने में लगे थे, उस समय जापान और अबीसीनिया ही ऐसे दो काले देश थे जिन्होंने इस साम्राज्यवाद की बाढ़ को रोकने का काम किया था। जापान ने रूस को हराया था और अबीसीनिया ने इटली को। इसके बाद जापान तो उन्नत हो कर संसार के अग्रणी राष्ट्रों में आ गया, लेकिन रूस से उसका विरोध आज भी बना है। अबीसीनिया यद्यपि जापान की भाँति उन्नति तो नहीं कर सका, परन्तु स्वतंत्र बना रहा। आज मुसोलिनी के नेतृत्व में इटली अबीसीनिया की स्वतंत्रता को फिर नष्ट करना चाहता है। योरप के गोरे राष्ट्र उसके साथ नहीं हैं, यह ठीक है, लेकिन खुले शब्दों में इटली का विरोध भी नहीं करते। राष्ट्रसंघ में ६ महीने से अबीसीनिया की अपील की सुनाई नहीं होती। उसका भी यही कारण है। जापान न तो गोरा है और न राष्ट्रसंघ का सदस्य है, अतः वह भावी-युद्ध में अबीसीनिया का साथ दे दे तो इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं है।

इटली और अबीसीनिया में कब जंग छिड़ेगा, यह कौन कह सकता है? तैयारियाँ दोनों ओर से हो रही हैं। वर्षा के बाद अबीसीनिया की सीमा पर इटालियन फ़ौजें मँडराती दिखलाई देंगी, यह तो भासता ही है। यदि यह युद्ध छिड़ा तो यह केवल इन दो देशों तक ही सीमित न रहेगा। संसार के बड़े बड़े राष्ट्र इसमें दनदनाते नज़र आवेंगे। इन्हीं कारणों से आज संसार की आँखें अफ़्रीका के अर्ध-सभ्य किन्तु एकमात्र स्वतंत्र राष्ट्र अबीसीनिया की ओर लगी हुई हैं।

सामयिक साहित्य

महात्मा गांधी और श्री शिवप्रसाद गुप्त का पत्र-व्यवहार

कांग्रेस की वर्तमान नीति के सम्बन्ध में हाल में ही बाबू शिवप्रसाद गुप्त और महात्मा गांधी में एक महत्त्वपूर्ण पत्र-व्यवहार हुआ है। वे पत्र 'आज' में प्रकाशित हो चुके हैं। उनमें से आरम्भ के दो पत्र हम यहाँ उद्धृत करते हैं।

गुप्त जी का पत्र—

पूज्य बापू जी—चरणों में सादर प्रणाम।

मैं अपनी रुग्णावस्था के कारण बाहर-भीतर आने-जाने में असमर्थ अवश्य ही हूँ, पर जिस तरह की धाँधली आजकल कांग्रेस में हो रही है वह भी देखी और सही नहीं जाती। मेरी समझ में तो यही नहीं आ रहा है कि इस समय जो नीति कांग्रेस में बरती जा रही है वह आपकी है अथवा नहीं, या यों समझिए कि आप उससे सहमत हैं या नहीं, क्योंकि यदि आप कांग्रेस के मामले में इस समय तटस्थ हैं तो घड़ी घड़ी कार्यकारिणी यानी वर्किंग कमेटी जहाँ कहीं आप रहते हैं वहीं क्यों बुलाई जाती है। यदि समिति के सदस्यों को बाहर रहकर परामर्श देने में और उनके निर्णयों में सहायक होने में कोई हानि नहीं समझते तो उसके बाहर रहने की क्या आवश्यकता है और उसमें आप शामिल ही क्यों नहीं हो जाते?

आपको कदाचित् स्मरण होगा कि कुछ दिन हुए मैंने आपकी सेवा में कौंसिल-प्रवेश के सम्बन्ध में एक पत्र-द्वारा यह पूछने का साहस किया था कि जिस चीज़ को आप अपने लिए पाप अथवा अनुचित समझते हैं वह दूसरों के लिए अपाप और उचित कैसे हो गया। पर उस समय आपने मेरी रुग्णावस्था के कारण इस सम्बन्ध में कुछ न लिखना ही उचित समझा। अब सामयिक परिस्थिति और कांग्रेस-कार्यकारिणी की बैठक के कारण यह प्रश्न आवश्यक और प्रयोजनीय हो गया है। इसलिए यह पत्र मैं फिर आपकी सेवा में भेज रहा हूँ और इसकी प्रतिलिपि साथ ही अखबारों में छपने के लिए भी भेज रहा हूँ। आशा है, आप मेरी इस धृष्टता को क्षमा करेंगे।

सेवा-उपवन, काशी — विनीत
१४ श्रावण १९९२ — शिवप्रसाद

महात्मा जी का उत्तर—

भाई शिवप्रसाद,

तुम्हारा खत मिला है। रुग्णावस्था में भी तुमने कब मुझको भूला है? कांग्रेस में से मेरे निकलने के बाद कार्य्यवाहक समिति इसी वखत पहली आई; लेकिन यहाँ आवे या न आवे इससे क्या? तुम्हारा प्रश्न तो यह है कि कांग्रेस में से निकल जाने के बाद उसमें मैं क्यों रस लेता हूँ, क्यों किसी को कुछ सलाह देता हूँ? तुमको मालूम नहीं होगा कि निकलते समय मैंने कह दिया था कि यदि किसी बारे में मेरा अभिप्राय पूछा जायगा तो मैं अवश्य दूँगा। कांग्रेस में अधिकार रखना और मौका आने से किसी कांग्रेसवालों को सलाह देना इन दो वस्तु में मैं तो बड़ा भेद पाता हूँ। यहाँ समिति रही, मैंने कभी उसमें हिस्सा नहीं लिया। अभी भी उसकी सब कारवाई का मुझे पता नहीं है। लेकिन जब किसी सदस्य की इच्छा होती थी तब मुझे वे पूछ जाते थे। इसमें मैं कुछ भी अयोग्यता नहीं पाता। कांग्रेस के हित के कारण मैं बाहर निकला हूँ। कांग्रेस का सबक थोड़ा ही मिटा दूँ। यदि मैं योग्यता होते हुए भी किसी को अभिप्राय देने का इनकार करूँ तो मैं धर्मच्युत हूँगा।

रही बात कौंसिल-प्रवेश की। मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस समय यह प्रवेश सामान्यतया धर्म है। मेरे लिये नहीं है, क्योंकि मेरा मन दूसरी ओर है। मेरी साधना अहिंसक कानून भंग की है। इस वस्तु के संशोधन में मेरे लये कौंसिल-प्रवेश अयोग्य है। तुम कहाँ नहीं जानते हो कि एक ही वस्तु एक के लिए जहर होती है दूसरे के लिए अमृत, एक ही व्यक्ति के लिये एक समय वही वस्तु जहर रहती है दूसरे समय अमृत।

मेरी आशा है कि अब तुम्हारे सब प्रश्न का उत्तर मिल गया होगा और समाधान भी हुआ होगा।

मेरी बात मानो तो कौंसिल प्रवेश की बात मेरे पर छोड़ दो और ग्राम-प्रवेश का और हिंदी-प्रचार का काम पेट भर के करो। इसमें कहाँ कम सेवा है? यदि इन कामों में तन्मय होगे तो दूसरी-तीसरी बातों का ख्याल तक करने का तुमको समय नहीं रहेगा।

ईश्वर तुमको पूर्ण आरोग्य प्रदान करे।

वर्धा — बापू के
५-८-३५ — आशीर्वाद

भारत के पत्र और पत्रकार

अखिल भारतीय पत्रकार-सम्मेलन का गत १७ अगस्त को कलकत्ते में जो तीसरा अधिवेशन हुआ था, 'लीडर' के सम्पादक श्रीयुत सी० वाई० चिन्तामणि ने उसके सभापति के आसन से एक अत्यन्त सारगर्भित और सामयिक भाषण दिया है। अपने भाषण में आपने भारत के पत्रों और पत्रकारों की स्थिति के सम्बन्ध में बहुत-सी ज्ञातव्य बातें कही हैं। यहाँ हम आपके भाषण का उक्त अंश 'भारत' से उद्धृत करते हैं—

पत्रकार का पेशा एक पवित्र कार्य है। समाचार-पत्रों का जन्म जनता की शिक्षा के उद्देश से हुआ था। उनके व्यापारिक पहलू का तो हाल में ही विकास हुआ है। लोगों की यह भावना थी कि बालकों और नवयुवकों को तो विद्यालयों में शिक्षा मिल जाती है, परन्तु बड़े लोगों को भी जीवन भर शिक्षा की आवश्यकता रहती है और इस काम में समाचारों तथा विचारों को प्रकाशित करनेवाले पत्रों तथा पत्रिकाओं से बड़ी सहायता मिल सकती है। इसी भावना के कारण पत्र पत्रिकाओं का जन्म हुआ। हमारे देश की सौ वर्ष पहले की तथा आज की अवस्था की तुलना करने पर यह कहने का कौन साहस कर सकता है कि हमारे पूर्वजों का यह विचार ग़लत था? मेरे कथन का अभिप्राय यह नहीं है कि पिछले सौ वर्षों में जनता की मनोवृत्ति में जो आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ है उसका श्रेय एकमात्र पत्र-पत्रिकाओं को ही है। निःसन्देह इसका श्रेय सबसे अधिक तो विद्यालयों को है, परन्तु उनके बाद दूसरा नम्बर पत्र-पत्रिकाओं का ही है। अगर आज देश में इतनी जाग्रति हो गई है तो हमारी राजनैतिक तथा अन्य संस्थाओं को भी इसका श्रेय अवश्य मिलना चाहिए। परन्तु क्या उन्हें पत्र-पत्रिकाओं से बड़ी भारी सहायता नहीं मिली है? केवल राजनैतिक आन्दोलन में ही नहीं, वरन समाज-सुधार तथा औद्योगिक उन्नति के यत्नों में भी पत्र-पत्रिकाओं से बड़ी सहायता मिली है। जिस समय हमारे अधिकांश देशवासी पत्र-पत्रिकाओं के महत्त्व को समझ भी नहीं सकते थे, उस समय हमारे जिन पूर्वजों ने उन्हें जन्म दिया वे हम सबकी कृतज्ञता के अधिकारी हैं। उनमें राजा राममोहन राय तथा महर्षिकल्प दादा भाई नौरोजी के नाम मुख्य हैं। तब से अनेक प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने विभिन्न प्रान्तों में सम्पादक के आसन को सुशोभित किया है। जिस पेशे में हरिश्चन्द्र मुकर्जी और कृष्णदास पाल, शम्भूचन्द्र मुकर्जी और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, शिशिरकुमार घोष और मोतीलाल घोष, विश्वनाथ नारायण माण्डलिक और नारायण गणेश चन्द्रावरकर, बालगंगाधर तिलक और गोपाल कृष्ण गोखले, सुब्रह्मण्य अय्यर, करुणाकर मेनन और कस्तूरीरंग अय्यंगर, पंडित मदनमोहन मालवीय और पंडित विशननारायण दर, बाबू गंगाप्रसाद वर्मा और लाला लाजपत राय जैसे व्यक्ति कार्य कर चुके हैं, उसे लज्जित होने का कोई कारण नहीं हो सकता।

इन महान् व्यक्तियों के पथ पर चलनेवाले हम छोटे लोग भी अगर इस बात का गर्व करें कि हमारा कार्य बड़ा पवित्र है और हमारे पूर्वज बड़े महान थे तो हमारा यह गर्व अक्षम्य नहीं समझा जायगा। हम उनके चरण-चिह्नों पर चलते हैं, उनके आदर्शों का सम्मान करते हैं और उतनी योग्यता न होते हुए भी उन्हीं की भाँति उसी भाव से अपनी और उनकी मातृभूमि की सेवा करना चाहते हैं।

यहाँ मुझे यह न भूल जाना चाहिए कि भारत में काम करनेवाले कई अँगरेज़ पत्रकार भी ऐसे हुए हैं जिनका उनके समकालीन भारतवासी बड़ा सम्मान करते थे और आज भी हम उनको बड़े सम्मान के साथ स्मरण करते हैं। राबर्ट नाइट, मार्टिन वुड, विलियम डिग्बी, एस० के० रैटक्लिफ़ और ग्लीन बारलो ऐसे ही व्यक्ति थे; और श्री बी० जी० हारनीमैन भी ऐसे ही व्यक्ति हैं। स्वर्गीय श्रीमती ऐनीबीसेंट का स्थान तो इन सबसे भी ऊँचा है। यह हमारे लिए खेद की बात है कि आज भारत में जो अँगरेज़ पत्रकार कार्य कर रहे हैं वे ब्रिटेन के अस्थायी हितों का ही ध्यान रखते हैं और जिसमें वे रह रहे हैं तथा जिस देश की जनता की सहायता के आधार पर ही उनके पत्र चल रहे हैं उसकी सेवा करना वे अपना कर्तव्य नहीं समझते।

अन्तर्जातीय विवाह-बिल

सुप्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् बाबू भगवानदास असेम्बली के आगामी अधिवेशन में एक अन्तर्जातीय विवाह-बिल उपस्थित करने जा रहे हैं। इस पर सहयोगी 'नवयुग' ने एक अच्छा लेख लिख कर यह सिद्ध किया है कि देश की वर्तमान बदली हुई परिस्थिति में ऐसे क़ानून की आवश्यकता है और प्राचीन काल में ऐसे विवाह होते भी थे। लेख का एक अंश इस प्रकार है—

शास्त्रकारों ने अनुलोम और प्रतिलोम दोनों प्रकार के विवाहों की इजाज़त दी है। इतना ही नहीं, शास्त्रकार गान्धर्व, राक्षस-विवाह को भी विवाहों में गिनते आये हैं। प्राचीन काल में अन्तर्जातीय विवाह प्रचलित थे। भीम का हिडिम्बा से विवाह होना और माता कुन्ती और युधिष्ठिर का उसको शास्त्रानुमोदित बताना और भीम को इस कार्य पर उनका आशीर्वाद देना यही सूचित करता है कि अन्तर्जातीय विवाह प्राचीन काल में प्रचलित थे और समाज में वे आदर से देखे जाते थे।

आज से बीस साल पहले अन्तर्जातीय विवाह का विरोध जिस प्रकार किया जाता था आज वह भाव नहीं रहा है। आज साधारण समाज ऐसे विवाहों को यदि आदर की दृष्टि से नहीं देखता तो कम से कम उसका विरोध नहीं करता। औंध के पन्त प्रतिनिधि सदृश कट्टर सनातनधर्मी नरेश का अन्तर्जातीय विवाह का पक्षपाती होना इस बात का सूचक है कि समाज के विचारक और प्रगतिशील व्यक्ति इसकी आवश्यकता का अनुभव करते हैं।

इस समय परिस्थिति और अवस्था भी बदल गई है। बहुत-से लोग नौकरी व्यवसाय व्यापार के कारण अपने जन्म-स्थानों को छोड़कर दूसरे प्रान्तों में जाकर स्थायी रूप से बस गये हैं। उनके लिए वहाँ अपनी ही जाति, उपजाति में अपनी संतान की शादी करना सम्भव नहीं रहा है। केवल विवाह के लिए वे अपने जन्म-स्थान को जा नहीं सकते। क्योंकि बहुत-से लोगों को अपना पुराना जन्म-स्थान छोड़े हुए दो दो तीन तीन पुश्तें हो गई हैं। इस बदली परिस्थिति के कारण यह आवश्यक हो गया है कि जाति को तोड़कर किये गये विवाह क़ानूनी माने जायँ।

इस बिल की आवश्यकता एक कारण से और भी है। देश में राष्ट्रीयता की स्थापना उस समय तक सम्भव नहीं है जब तक कि मौजूदा असंख्य जाति-भेद और उपभेद विद्यमान रहेंगे। इनका अन्त अन्तर्जातीय विवाह के द्वारा ही हो सकता है। इसलिए राष्ट्र का बल बढ़ाने, युवक-युवतियों को अपना जीवन-संगी चुनने के लिए विस्तृत क्षेत्र देने और नई पीढ़ी को बलवान बनाने के वास्ते भी यह आवश्यक है कि अन्तर्जातीय विवाह क़ानून-संमत माने जायँ।

इस क्षेत्र में गौड़-एक्ट और ब्रह्मसमाज-एक्ट पहले से मौजूद हैं; मगर सर गौड़ के सिविल मैरिज एक्ट से बहुत कम लोगों ने लाभ उठाया है। उधर डाक्टर भगवानदास के बिल के पास होने के साथ ही उससे पहले और बाद में हिन्दूरीति से किये गये सब अन्तर्जातीय विवाह क़ानूनी क़रार दिये जायँगे। डाक्टर गौड़ के सिविल मैरिज एक्ट से शादी कराने के लिए विवाह की रजिस्ट्री कराना आवश्यक है। इससे बचने के ख़याल से बहुत-से लोग अन्तर्जातीय विवाह नहीं कराते। डाक्टर भगवानदास का बिल उनकी यह बाधा दूर कर देगा।

तलवार रखने का दावा

लाहौर के मुसलमानों ने माँग पेश की है कि सिक्खों कृपाण रखते हैं इसलिए उन्हें तलवार रखने की इजाज़त दी जाय। पर भारत में सिख और मुसलमान ही नहीं बसते। हिन्दू, ईसाई आदि और लोग भी बसते हैं। वे क्या करें? इन सब बातों पर विचार करते हुए सहयोगी 'आज' ने एक महत्त्वपूर्ण अग्र लेख प्रकाशित किया है। उसका कुछ अंश हम नीचे उद्धृत करते हैं—

लाहौर में मुसलमानों की सार्वजनिक सभा ने यह दावा पेश किया है कि जिस तरह सिखों को कृपाण रखने की स्वतन्त्रता दी गई है, उसी तरह मुसलमानों को भी अपनी मसजिदों की रक्षा के लिए तलवार रखने की स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। प्रश्न हँसकर उड़ा देने योग्य नहीं है। सिखों का धर्म है कृपाण रखना, अतएव कृपाण उन से छीना नहीं जा सकता। तलवार के सम्बन्ध में इस्लाम की ऐसी कोई आज्ञा नहीं है सही, पर मुसलमान कह सकते हैं कि धर्म के ही कारण से क्यों न हो, पर जब एक सम्प्रदाय को शस्त्र रखने से रोकना न सम्भव है न उचित, तो मुसलमानों को भी शस्त्र रखने की स्वतन्त्रता मिल जाय। हम इस दावे का औचित्य स्वीकार करते हैं, पर मुसलमानों को जो यह दावा कर रहे हैं, मानना पड़ेगा कि प्रश्न यहीं समाप्त नहीं हो जाता। जो हक़ मुसलमानों को है वही हिन्दू, ईसाई आदि अन्य सम्प्रदायों को भी है। सिख कृपाण इसलिए रक्खें कि वह उनके धर्म के अनुसार अत्याज्य या अविच्छेद्य है और मुसलमान इसलिए तलवार रक्खें कि सिख कृपाण रखते हैं तो इन कृपाणों और तलवारों के बीच में अन्य सम्प्रदायों की क्या गति होगी? क्या वे बेमौत मारे जाने को राज़ी हो जायँ? यदि सिखों को अपने गुरुद्वारों की और मुसलमानों को मसजिदों की रक्षा करनी है तो हिन्दुओं को मन्दिरों की और ईसाइयों को गिर्जाघरों की रक्षा करनी ही होगी।

इससे मालूम होगा कि यह प्रश्न जिस तरह केवल सिखों और मुसलमानों का नहीं है उसी तरह केवल गुरुद्वारों और मसजिदों का भी नहीं है। मन्दिरों को भी दावा करने का अधिकार है। पर भिन्न भिन्न धर्मों के अनुयायी हमें क्षमा करें, हम तो मन्दिरों और मसजिदों से—मनुष्यकृत सब उपासना स्थानों से उस मंदिर को अधिक पवित्र और रक्षणीय समझते हैं जो स्वयम् परमात्मा ने बनाया है और जो परमात्मा के अस्तित्व का उज्ज्वल प्रमाण है। हमारा मतलब मनुष्य-शरीर से है। हम यह बात क्षण भर के लिए भी मानने को तैयार नहीं हैं कि ईंट-पत्थरों से मनुष्य-द्वारा बनाये गये मन्दिरों और मसजिदों की रक्षा के लिए तो कृपाणों और तलवारों की आवश्यकता है और ईश्वर के बनाये सजीव मन्दिर जिसमें वह स्वयम् वास करता है, अरक्षित छोड़ दिये जायँ। ईंट-पत्थरों के मानवकृत उपासना-स्थानों की रक्षा के लिए भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के उपासकों को यदि शस्त्र दिये जायँगे तो ईश्वर के बनाये मन्दिरों की अवस्था और भी विपज्जनक हो जायगी। यह बात प्रत्येक समझदार को माननी ही पड़ेगी। अतएव हम इस बात पर ज़ोर देंगे कि प्रत्येक नागरिक को अपने बाल-बच्चों की और अपनी तथा अपने रहने के मन्दिर की रक्षा करने के लिए शस्त्र रखने की स्वतन्त्रता पहले मिलनी चाहिए, बाद को मसजिद और मन्दिर की रक्षा करने के लिए तलवार रखने की इजाज़त दी जानी चाहिए।

बर्नार्ड शा के स्वाधीनता-सम्बन्धी विचार

जार्ज बर्नार्ड शा का कहना है कि संसार में

वास्तविक शान्ति और स्वाधीनता की स्थापना तब हो सकती है जब समाज के धन का बँटवारा समानता के आधार पर हो। इस बात को लेकर वे वर्षों से आन्दोलन करते चले आ रहे हैं। हाल में ही अमरीका के 'नेशन' नामक समाचार-पत्र में उनका एक ऐसा ही लेख प्रकाशित हुआ है जिसका सारांश 'प्रताप' में प्रकाशित हुआ है। उसका कुछ अंश यहाँ हम उद्धृत करते हैं—

मनुष्य मनुष्य की गुलामी करे, यह क्या है? यह शरीर और आत्मा का तिरस्कार है। कवियों ने गुलामी की जी भर निन्दा की है। उन्होंने एक-स्वर से यह घोषणा की है कि एक मनुष्य चाहे जितना अच्छा क्यों न हो, दूसरे मनुष्य का स्वामी बनने के योग्य नहीं। मार्क्स ने अपने समस्त जीवन को इस बात को सिद्ध करने में बिता दिया था कि जब तक गुलामी की प्रथा क़ानून के द्वारा नहीं हटा दी जाती तब तक उसका विनाश नहीं हो सकता; क्योंकि मनुष्य के स्वार्थ और निर्दयता का कभी अन्त नहीं होता। मनुष्य के स्वार्थ और निर्दयता के कारण समाज में गृह-युद्ध चला करता है, वह मालिकों और गुलामों की श्रेणियों में विभाजित है। एक ओर मज़दूर सभायें हैं और दूसरी ओर पूँजीपतियों के संघ हैं।

पूँजीपति लोग पार्लियामेंटों, स्कूलों, समाचारपत्रों आदि के द्वारा इस बात का प्रयत्न करते हैं कि जन-साधारण अपनी गुलामी का अनुभव न कर सके। हमें शुरू से ही यह सबक़ सिखाया जाता है कि हमारा देश स्वाधीन है। जब हम वोट देने लायक़ हो जाते हैं तब हमसे कहा जाता है कि तुम्हारे लिए वेतन-संघ की स्थापना हुई है, निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध किया गया है, राष्ट्रीय औद्योगिक निर्माण-योजना कार्यरूप में परिणत की जा रही है, बेकारों को सरकारी सहायता दी जाती है आदि आदि। पर वास्तव में देखा जाय तो इतने पर भी जनसाधारण भूखा और नंगा रहता है।

स्कूलों और विश्वविद्यालयों से निकले हुए रईसों के लड़के समझते हैं कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था सबसे अच्छी है। इसका कारण यह है कि इस व्यवस्था में उनके साथ पक्षपात किया जाता है। इसी लिए वे इसकी रक्षा के लिए जी तोड़कर कोशिश करते हैं। भ्रमपूर्ण ऐतिहासिक पुस्तकों, बेईमानी से भरे हुए अर्थशास्त्र आदि को सीख कर रईस का लड़का अपने को जनसाधारण की श्रेणी से बढ़ और अधिक सुसंस्कृत समझता है। शासकगण और पूँजीपति यह ज़रूरी समझते हैं कि उन्हें सुन्दर और अच्छे कपड़े पहनना चाहिए, खास ढङ्ग से उच्चारण करना चाहिए, पहले दर्जे में सफ़र करना चाहिए, केवल घण्टी बजा देने से यदि कोई साधारण आदमी जूते साफ़ कर सकता है तो उन्हें स्वयं नहीं साफ़ करना चाहिए आदि आदि। इसके अतिरिक्त वे जनसाधारण को मूर्ख और अन्धविश्वासी बनाये रखना चाहते हैं, जिससे वह पूँजीपतियों के हुक्म को बिना आनाकानी के बजाया करे।

जनसाधारण को क़ानून-द्वारा यह करने और वह न करने के लिए बाध्य किया जाता है। यदि वे क़ानूनों को न मानें तो अदालतें उन्हें सज़ा दे देंगी। मिल-मालिक मज़दूरों का शोषण करने के लिए स्वतंत्र हैं। मज़दूरों के पास एक ही चारा रह जाता है। वह है हड़ताल। पर पुलिस उन्हें हड़ताल भी नहीं करने देती। इन सब बातों को देखते हुए यह ज़रूरी मालूम पड़ता है कि हमें वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था में परिवर्तन करना होगा।

पर केवल राजनैतिक व्यवस्था में परिवर्तन करने से काम न चलेगा। सामाजिक और आर्थिक प्रणाली में भी उलट-फेर करना होगा। इँग्लेंड का जनसाधारण जिसे आज़ादी समझता है वह दर असल आज़ादी नहीं। सच्ची आज़ादी तो तभी क़ायम होगी जब समाज के धन का बँटवारा समानता के आधार पर हुआ करेगा।

———

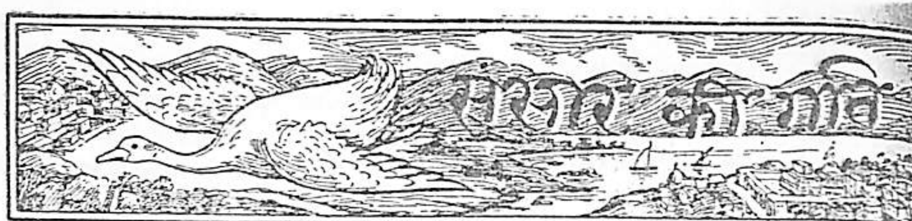
जन-संख्या का प्रश्न

श्रीयुत ज्योतिःप्रसाद 'निर्मल' द्वारा सम्पादित 'हिन्दुस्तान' में हिन्दुस्तान की गिरती हालत शीर्षक एक महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ है। उस लेख के

लेखक हैं श्रीयुत विनायक नरेश वझे बी० ए०। लेख का एक अंश इस प्रकार है —

यद्यपि हमारी जनन संख्या का परिमाण बहुत ज़्यादा है, तथापि उसकी जन-संख्या घट ही रही है। १८७५ से १६०० तक भारत में ११ करोड़ से ऊपर लोग मर गये। इससे स्पष्ट है कि हिन्दुस्तान कितना भूखा-कंगाल हो रहा है। अनावृष्टि इत्यादि आपत्तियों को दूर करने के लिए हमारी सरकार ने कोई प्रयत्न नहीं किया है। महामारी ने भी हमारे ऊपर कम गज़ब नहीं ढाया है। १६०० से लेकर १६२० तक १½ करोड़ से भी ऊपर लोग इसके शिकार बन चुके हैं। १६१६ में सिर्फ़ ६ महीनों में ८४ लाख मनुष्य मृत्यु-मुख में चले गये। हिन्दुस्तान में ४३·६ प्रति हज़ार पैदा होते हैं और ३८·५ प्रति हज़ार मरते हैं। अमेरिका में २५·१ प्रति हज़ार पैदा होते हैं और १७·४ प्रति हज़ार मरते हैं। इँग्लेंड में २२ प्रति हज़ार पैदा होते हैं और १२ प्रतिशत मरते हैं। इस प्रकार इन देशों की तुलना में हिन्दुस्तान में अकाल-मृत्यु और बाल-मृत्यु की संख्या बहुत बढ़ी-चढ़ी है।

अतएव इस प्रश्न की ओर लोगों को शीघ्र ही ध्यान देना चाहिए। लोगों के स्वास्थ्य पर और उनकी आर्थिक परिस्थिति पर विशेष ध्यान देने और उसके सुधारने की आवश्यकता है। इसके लिए जनता में जागृति होनी चाहिए। हमारा अज्ञान और हमारी ग़रीबी ही हमारे दारिद्र्य के मूल कारण हैं। हमारे आहार-विहार भी आरोग्यप्रद रीति से होने चाहिए। हम को जन संख्या की बाढ़ भी रोकनी चाहिए। १६२१ से १६३१ तक उसमें १०·५ प्रति शत की बाढ़ हुई है। अभी कुछ दिन हुए श्री हुसेन इमाम ने इस आशय का बिल कौंसिल आफ़ स्टेट में पेश किया था कि इस जन-संख्या को घटाने की कोशिश की जाय। परन्तु लोगों के औदासीन्य से वह पास नहीं हो सका। हमारे विवाह का वयमान भी बढ़ाने की आवश्यकता है। अभी हाल में श्रीनिवास शास्त्री ने अन्नामलाय-विश्वविद्यालय में इस प्रश्न पर दृष्टिक्षेप करते हुए बड़ी चुस्त टीका की थी। हमारी वर्तमान सामाजिक परिस्थिति के सुधार का कोई न कोई उपाय अवश्य ढूँढ़ निकालना चाहिए। श्रीनिवास शास्त्री ने शारदा-ऐक्ट का ज़िक्र करते हुए कहा था कि उसकी जो अवहेलना सरकार और जनता, दोनों-द्वारा की जा रही है वह किसी भी सम्मान्य देश के लिए लज्जाजनक है। शारदा-ऐक्ट केवल नाम ही के लिए है, क्योंकि धड़ाधड़ उसकी अवहेलना हो रही है। इसके लिए संतति-नियमन को भी व्यवहार में लाने की ज़रूरत है, क्योंकि वर्तमान परिस्थिति में दो-तीन से ज़्यादा बच्चे पैदा होना माँ बाप, दोनों, के लिए हानिकारक है। इस वक्त दरिद्रता भी इतना भयानक रूप धारण किये हुए है कि उसके निवारणार्थ उपाय निकालना नितांत आवश्यक है। हिन्दुस्तान में प्रत्येक मनुष्य जो कृषि करता है, वर्ष में सिर्फ़ ८८) पैदा करता है, जहाँ जापान का ८५), ग्रेटब्रिटेन का ६२), कनाडा का ३४४), और अमेरिका का १७५) पैदा करता है। उद्योग-धन्धों की स्थिति तो एकदम निराशा-जनक है। उसमें हिन्दुस्तान का एक मनुष्य वर्ष भर में सिर्फ़ १२) कमाता है। जहाँ जापान का मनुष्य १८५), ग्रेटब्रिटेन का ४६५), और कनाडा का ५४५), अमेरिका का ६६३) कमाता है। ऐसी परिस्थिति में अगर शीघ्र ही कोई उपाय न किया गया तो हमारे देश की क्या दशा होगी, कहा नहीं जा सकता। यहाँ के व्यवसाय और उद्योग-धंधों के बढ़ाने की बड़ी ज़रूरत है। यहाँ ६६·४ प्रतिशत लोग कृषि में हैं और सिर्फ़ १० प्रतिशत लोग उद्योग-धंधों में लगे हैं। इन बातों को ध्यान में रखते हुए चारों ओर से भारत की प्रगति का होना अत्यन्त आवश्यक है। भलाई इसी में है कि हम समय पर चेतें।



योरप का संकट

पिछले महायुद्ध के बाद से योरप की राजनीति के मुख्य सूत्रधार ग्रेटब्रिटेन और फ़्रांस यही दो राष्ट्र रहे हैं और इन्होंने बराबर यही प्रयत्न किया है कि योरप में तथा उसके बाहर भी कहीं कोई युद्ध न छिड़ने पावे। यह काम वे अब तक राष्ट्र-संघ की आड़ लेकर सफलतापूर्वक करते आये हैं। कम-से-कम योरप में अवसर आ जाने पर भी युद्ध नहीं छिड़ने पाया। परन्तु राजनीति की गति बड़ी चञ्चल होती है, अतएव वह अधिक समय तक स्थिर नहीं रह सकी। राष्ट्रों में एक दूसरे के प्रति जैसा चाहिए वैसा विश्वास नहीं स्थापित हो सका। फल यह हुआ कि जर्मनी के भय के कारण अथवा अपनी प्रतिपत्ति बढ़ाने के लिए फ़्रांस ने धीरे धीरे अपना एक गुट अलग बना लिया। यही नहीं, उसने रूस और इटली से भी समझौता कर लिया। इस समय उसके पक्ष में योरप के रूस, इटली, रूमानिया, युगोस्लाविया, ज़ेचोस्लोवेकिया, बेल्जियम और इटली के कारण आस्ट्रिया तथा हंगेरी भी सम्मिलित हैं। योरप में इस समय ऐसी ही दलबन्दी है, और इस दशा में इटली अबीसीनिया के हड़प बैठने का उपक्रम कर रहा है। ऐसी दशा में राष्ट्र-संघ अकेले ब्रिटेन की दृढ़ता से परिस्थिति को क्योंकर सँभाल सकता है, यह एक प्रकट बात है। फिर राष्ट्र-संघ ने जापान और चीन के मामले में ज़बानी जमाखर्च करने के सिवा कुछ नहीं किया था। तब इस अवसर पर जब उसका एक मुख्य पोषक फ़्रांस अपनी हाल की एक सन्धि के कारण इटली से दबा हुआ है तब अकेले ब्रिटेन के बल पर राष्ट्र-संघ कोई वैसा जोखिम क्यों मोल लेने लगा। इटली को यह सब मालूम है। इसी से वह जापान का एक दूसरा उदाहरण सभ्यता के प्रचार के नाम पर संसार के सामने उपस्थित करना चाहता है। उसको इस इरादे से विरत करने का ग्रेट-ब्रिटेन ने अपने भरसक बहुत प्रयत्न किया, यहाँ तक कि अबीसीनिया की सरकार की सहमति के बिना ही उसने अबीसीनिया का सारा पुलिस-प्रबन्ध तथा आवागमन के साधनों के नियन्त्रण का अधिकार जैसी महत्त्व की बातें तक इटली को सौंप देने का प्रस्ताव किया था। परन्तु मुसोलिनी सारा अबीसीनिया चाहते हैं। उनको एक ऐसे देश की बड़ी ज़रूरत है जहाँ इटली की दिन-प्रति-दिन बढ़ती हुई आबादी खप सके तथा आर्थिक लाभ उठाने के साधन भी सुलभ तथा अधिक हों। संसार में इसके लिए यदि कोई भाग उन्हें मिल सकता है तो वह अबीसीनिया ही है, अतएव मुसोलिनी अब उसे अपने अधीन करने को तुल गये हैं।

महायुद्ध में इटली ने अपने मित्रों का साथ छोड़कर फ़्रांस और ब्रिटेन का साथ विशेष प्रलोभन पाकर ही दिया था। परन्तु इटली से उन्हें उतनी सहायता नहीं मिली, अतएव उसकी महत्त्वाकांक्षा की भी पूर्ति उसी परिमाण में की गई। और इटली को इस व्यवहार से सन्तोष नहीं हुआ। वह कर भी कुछ नहीं सकता था। परन्तु जर्मनी तथा आस्ट्रिया के सैनिक बल के विनष्ट हो जाने से ब्रिटेन और फ़्रांस के बाद इटली तीसरे नम्बर पर पहुँच गया। यह उसके लिए गर्व की बात हुई, जिससे उसकी महत्त्वाकांक्षा बढ़ गई और अब वह प्राचीन रोमन साम्राज्य का स्वप्न देखने लगा है। अबीसीनिया पर अकारण ही अधिकार कर लेना उसी स्वप्न की पूर्ति का श्रीगणेश है। वह आज युद्ध के सभी आधुनिक उपकरणों से पर्याप्त रूप से सज्जित है, साथ ही उसको इस काम से जो दो राष्ट्र रोक सकते हैं उनमें एक उसके साथ है और दूसरा भी अकेले पड़ जाने के कारण क़ानूनी वाद-विवाद के सिवा और कोई कार्रवाई करने को न तो तैयार है, न उसके लिए तैयार हो सकेगा। यह सब सोच-समझ कर ही मुसोलिनी आज अबीसीनिया को पददलित करने को उद्यत हुए हैं।

परन्तु यह प्रश्न यहीं समाप्त नहीं हो जाता। अबीसीनिया में ब्रिटेन और जापान के अपने अपने स्वार्थ हैं। उस पर इटली का अधिकार हो जाने पर क्या उनके हितों की रक्षा हो सकेगी? इसके सिवा इटली की भूमध्यसागर में गति-विधि अधिक दिखाई पड़ने लगेगी। और उस दशा में अँगरेज़ों के जलमार्ग के एक महत्त्वपूर्ण अंश पर इटली का दबदबा दिन दिन बढ़ता जायगा। यह बात ब्रिटेन को कहाँ तक रुचिकर होगी, यह भी एक जटिल प्रश्न है। परन्तु इन प्रश्नों की मीमांसा की ओर इटली का ध्यान नहीं है और न उसे इस बात का ही ध्यान है कि उसके इस अन्यायपूर्ण कार्य का पास के अरब तथा तुर्की एवं ईरान की सरकारों पर क्या प्रभाव पड़ेगा। मुसोलिनी को तो इस समय एक यही धुन है कि अबीसीनिया पर अधिकार कर इटली का साम्राज्य निर्मित किया जाय। इसके लिए विश्वव्यापी युद्ध ही क्यों न ठन जाय। परन्तु जान पड़ता है कि उनका मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकेगा। इस समय जेनेवा में राष्ट्र-संघ की जो बैठक हो रही है उसमें ब्रिटेन के परराष्ट्र-सचिव सर सेमुअल होर ने इस मामले के सम्बन्ध में जो शानदार भाषण किया है उससे तो यही प्रकट होता है कि ब्रिटेन इटली को अबीसीनिया यों ही नहीं लेने देगा। देखना है कि योरप के राजनीतिज्ञ इस संकट से कैसे बच निकलते हैं।

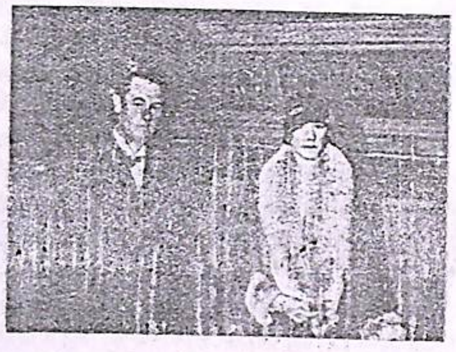
असीरिया के मूल-निवासियों का दुर्भाग्य

असीरिया और बैबिलन संसार के प्राचीनतम सभ्य देशों में हैं। वर्तमान ईराक-राज्य के ही अन्तर्गत इन दोनों देशों के भूखण्ड अवस्थित हैं। इनमें प्राचीन बैबिलनवालों का तो नाम ही नाम भर रह गया है, पर असीरियावालों के वंशधर अभी तक अपने मूलस्थान में बस रहे हैं। परन्तु उनके दुर्भाग्य से अब उन्हें अपने ही 'असीरिया' में रहने को स्थान नहीं मिल रहा है। पिछले महायुद्ध में इन लोगों ने अँगरेज़ों की ओर से अपने स्वामियों के विरुद्ध इस आशा से अस्त्र ग्रहण किया था कि उनके पक्ष की जीत होने पर उनकी पराधीनता की बेड़ियाँ कट जावेंगी और उनको स्वाधीनता प्राप्त होगी। परन्तु अरबों की महत्त्वाकांक्षा के कारण उनका यह सुख-स्वप्न चरितार्थ नहीं होने पाया और उन्हें तुर्कों ने, साथ ही अरबों ने भी बेतरह सताया। तुर्कों ने तो उन्हें अपने देश से ही निकाल दिया। इधर जो ईराक की सीमा के भीतर बसते थे उन पर भी बड़ा अत्याचार हुआ। अन्त में अँगरेज़-सरकार ने यह निश्चय किया कि वे लोग अपने मूल-स्थान से ले जाकर अँगरेज़ी गायना में बसा दिये जायँ। उनमें से ३,५०० लोग अभी तक मोसल में डेरे लगाये पड़े थे। इन्हें फ़्रेंच-सरकार ने सीरिया में बसने को जगह दे दी है। इनको वहाँ बसने में मदद देने के लिए इराक की अरब-सरकार ने भी सवा लाख पौंड खर्च किये हैं। परन्तु अभी तो निकाले जाने को वहाँ २५ हज़ार और बैठे हैं। और इनको ईराक से हटाने का खर्च ८ लाख पौंड कूता गया है। अतएव राष्ट्र-संघ की कमिटी ने चन्दा की अपील की है। स्थान ठीक हो जाने और रुपया मिल जाने पर ये लोग भी अपनी मातृभूमि से निकाल बाहर किये जायँगे। इस प्रकार संसार की एक प्राचीन जाति के ये वंशधर अब अपनी उस भूमि से निकाल बाहर किये जायँगे जो पूर्व-ऐतिहासिक काल से अब तक उनकी लीला-भूमि रही है। इस प्राचीन अल्पसंख्यक जाति के साथ जो यह व्यवहार किया गया है उससे यह भी प्रकट होता है कि वर्तमान काल की सभ्यता कितनी ऊँची स्थिति प्राप्त कर गई है।

सम्पादकीय नोट

भारत के भावी वायसराय

भारत के वायसराय लार्ड विलिंगडन का कार्य-काल अगले वर्ष अप्रैल में समाप्त होगा, परन्तु उनके उत्तराधिकारी के नाम की घोषणा इस बार आठ महीना पहले से ही कर दी गई है। यह पूर्ण रूप से तय हो गया है कि भारत के भावी वायसराय लार्ड लिनलिथगो होंगे। आप ब्रिटेन के राजनैतिक क्षेत्र के प्रमुख व्यक्ति हैं। आपके घराने का साम्राज्य की सरकार से पुराना सम्बन्ध रहा है। आप ज्वाइंट पार्लियामेंटरी कमिटी के प्रेसीडेंट रहे हैं। इस कारण भारत के शासन-सम्बन्धी सुधारों की एक एक बात से परिचित हैं। १९२६ में आप भारत की कृषि की दशा की जाँच करने आये थे और भारत



[भारत के भावी वायसराय]

में भी दो वर्ष तक उस सम्बन्ध में रह चुके हैं। कहने का मतलब यह है कि आपको भारत की माली हालत का काफ़ी ज्ञान है और आप नये शासन-सुधारों से भी पूर्ण रूप से परिचित हैं। आपके निरीक्षण और तत्त्वावधान में शासन-सुधार अपने वास्तविक रूप में कार्य का रूप ग्रहण करेगा। इसमें सन्देह नहीं कि आप प्रतिभाशाली तथा कार्यकुशल राज-कर्मचारी प्रमाणित हुए हैं। आशा है, भारत आपके कार्य-काल में शान्ति और व्यवस्था का उपभोग करेगा। यह सच है कि आपको सुधारों के देशव्यापी विरोध के बीच में रहकर कार्य करना पड़ेगा, परन्तु यह तो सर्वविदित बात है और यह सब जानबूझ कर ही आपको यह गौरव-पूर्ण पद प्रदान किया गया है।

निर्वाचन-विधान

नये शासन-विधान को अगले साल से कार्य में परिणत करने के विचार से भारत-सरकार ने भिन्न भिन्न प्रान्तों के निर्वाचन-क्षेत्रों के निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर दिया है। वोटरों की संख्या नये सुधारों के अनुसार पहले की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ जाने के कारण नये निर्वाचन-क्षेत्रों का निर्माण करना आवश्यक हो गया। फलतः भिन्न भिन्न प्रान्तों की सरकारों ने अपने अपने यहाँ विशेषज्ञों की ऐसी कमिटियाँ बना दी हैं जो निर्वाचन-क्षेत्रों के पुनर्निर्माण में मुस्तैदी के साथ दत्तचित्त हैं। सरकार ने उनसे सहयोग करने के लिए कुछ ग़ैर सरकारी व्यक्तियों को भी आमन्त्रित किया है, साथ ही उस सम्बन्ध में अपने निश्चय भी जनता के जानने के लिए पत्रों में छपवा दिये हैं। परन्तु राजनैतिक संस्थायें तथा लोकनेता सरकार की यह सारी कार्यवाही उदासीनभाव से देख रहे हैं, यद्यपि उन निर्वाचन-क्षेत्रों से अगले चुनाव में खड़े होने से उनके उम्मेदवार विमुख नहीं होंगे। इस सिलसिले में मुसलमान लोग अधिक तत्पर दिखाई दे रहे हैं। कौंसिलों का चुनाव लड़ने के लिए वे अपना प्रान्तीय संगठन करने में लग भी गये हैं। परन्तु अन्य लोग अभी चुप हैं। कांग्रेस तो एक-दम चुप है। हाँ, नरमदल कुछ कुनमुनाया है और उसके नेता कहने लगे हैं कि वे

भी देशभक्त हैं और स्वाधीनता की लड़ाई लड़ने में किसी से पीछे नहीं हैं। इन दो दलों के सिवा तीन दल और हैं। और ये पाँचों दल एक प्रकार से हिन्दुओं के ही दल हैं और इन पाँचों में पाँच के स्थान में दस मत हैं। ऐसी दशा में अगले चुनाव में हिन्दू-सदस्य कई दलों में विभक्त होकर कौंसिलों में जायँगे, पर मुसलमानों का अपना एक ठोस ही दल रहेगा। अपनी बहुसंख्या के कारण यद्यपि हिन्दू कई प्रान्तों की कौंसिलों में बहुसंख्या में रहेंगे, तथापि आपसी फूट के कारण वे अपनी बहुसंख्या के कारण कहीं भी उपयुक्त लाभ नहीं उठा सकेंगे। हाँ, मुसलमान अपने दृढ़ संगठन के कारण कौंसिलों से पूरा पूरा लाभ उठा लेने में समर्थ होंगे। और मज़ा यह है कि यह सारी अवस्था सबको विदित है। परन्तु यहाँ के राष्ट्रीयतावादियों को राजनीतिज्ञता का रोग हो गया है, अतएव वे यह नहीं सुनना चाहते कि उनके किसी काम से उनको कोई अराष्ट्रीयतावादी बतावे। ऐसी दशा में आनेवाले नये शासन-विधान से देश को क्या लाभ होगा, यह तो नहीं कहा जा सकता, पर इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि उसके फल-स्वरूप इस ग़रीब देश का शासन-व्यय कई करोड़ रुपया बढ़ अवश्य जायगा।

पाकस्तान की योजना

मुसलमानों की पाकस्तान की योजना अब अख़बारों की टीका-टिप्पणी की ही बात नहीं रह गई। वह धीरे धीरे वास्तविकता का रूप भी धारण करने लगी है। इस योजना का मतलब यह है कि कश्मीर, पञ्जाब, पश्चिमोत्तर-सीमाप्रान्त, सिन्ध और बलूचिस्तान को मिलाकर मुसलमानों का पाकस्तान नाम का एक अलग प्रान्त बना दिया जाय। दूसरे शब्दों में इसका मतलब यह है कि भारत के रक़बे का छठा भाग, उसकी आबादी का दसवाँ भाग, और दो तिहाई उसका सैन्य-बल मुसलमानों के लिए पाकस्तान के नाम से अलग कर दिया जाय।

इसमें सन्देह नहीं कि भारत में जितने मुसलमान बसते हैं उनका एक तिहाई हिस्सा उपर्युक्त प्रान्तों में बसता है। उन प्रान्तों में ७० फ़ी सदी मुसलमान निवास करते हैं और अपनी अधिक संख्या के कारण उनका वहाँ पूरा दबदबा भी है। इस योजना की उपयुक्तता के सम्बन्ध में तरह तरह के प्रमाण दिये जा रहे हैं और यह भी कहा जाता है कि इसके अनुसार पाकस्तान का निर्माण हो जाने पर शेष भारत के साम्प्रदायिक दंगों में भी बहुत कुछ कमी आ जायगी। परन्तु इस सम्बन्ध में सबसे मज़े की बात तो यह कही जाती है कि उन प्रान्तों के मुसलमान भारत के शेष भाग के निवासियों से अपने को भिन्न जाति का समझते हैं। इसके सिवा एक यह भी कि बंगाल के मुसलमानों की इस योजना में उपेक्षा की गई है, यद्यपि पाकस्तान के मुसलमानों से वहाँ के मुसलमान कम संख्या में नहीं हैं।

हिन्दू बेचारे साम्प्रदायिक बँटवारे से ही पीड़ित थे, अब यह दूसरी बला उनके सिर आना चाहती है और उनके देश का एक बेढब अंश जान पड़ता है, कुछ दिनों में उनके देश से निकल जायगा।

पत्रकार-सम्मेलन

अखिल भारतीय पत्रकार-सम्मेलन का तीसरा एक बड़ा अधिवेशन पिछले दिनों कलकत्ते में धूमधाम से हो गया। अब इस संस्था का स्थायी रूप से संगठन हो गया है और जान पड़ता है, इसके प्रति-वर्ष वार्षिक अधिवेशन हुआ करेंगे। कलकत्ते के अधिवेशन के सभापति 'लीडर' के प्रख्यात सम्पादक श्री सी० वाई० चिन्तामणि बनाये गये थे। इस सभा का आयोजन अमृतबाज़ार-पत्रिका के प्रसिद्ध सम्पादक श्री तुषार कान्ति घोष ने किया था और वही उसके स्वागताध्यक्ष हुए थे। भारतीय पत्रों को क़ानूनी अड़ंगों के कारण कैसी असुविधायें झेलनी पड़ती हैं तथा प्रेस-क़ानून की कठोरता के कारण भारत के पत्रों की उन्नति के मार्ग में कितनी बाधायें आड़े आ गई हैं, इन सब बातों की ओर उक्त सभा ने अपने महत्त्वपूर्ण प्रस्तावों के द्वारा सरकार का ध्यान आकृष्ट किया है। सभा के इस अधिवेशन में प्रायः सभी अँगरेज़ी पत्रों के सम्पादक या उनके प्रतिनिधि उपस्थित हुए थे तथा उसकी कार्यवाही में समुचित भाग

लिया था। प्रान्तिक भाषाओं के पत्रों के सम्पादकों को भी इस सभा से सहयोग कर अपने अभावों तथा अभियोगों की चर्चा इस सभा के द्वारा करनी चाहिए। इस बार के अधिवेशन में जिन सम्पादकों या पत्रों के प्रतिनिधियों के नाम छापे गये हैं, वाइसरायों में प्रान्तीय भाषाओं के पत्रों में केवल उर्दू के एक पत्र-सम्पादक का नाम लिया गया है। इससे जान पड़ता है कि देशी भाषाओं के पत्र-सम्पादकों ने इस सभा से जैसा चाहिए, वैसा सहयोग नहीं किया। ऐसा नहीं होना चाहिए था। आशा है, भविष्य में देशी भाषाओं के सम्पादक भी इस संस्था में अधिक संख्या में शामिल होकर इससे लाभ उठाने का यत्न करेंगे।

बम्बई में अछूतोद्धार

अछूतोद्धार के काम में बम्बई की सरकार बड़ी सरगर्मी दिखा रही है। उसने यह आदेश किया था कि स्कूलों में सभी जातियों के लड़के एक साथ बैठकर शिक्षा ग्रहण करें, अर्थात् अछूतों को अलग बैठाकर शिक्षा देने का क्रम उठा दिया जाय। परन्तु सरकार के इस हुक्म का जैसा चाहिए, पालन नहीं किया गया। तथापि अधिकारी लोग इससे उदासीन नहीं हैं, और वे बराबर इस बात का प्रयत्न कर रहे हैं कि सरकार के आदेश का पूर्ण रूप से पालन हो।

बम्बई-सरकार की अछूतोद्धार-विभाग की जो रिपोर्ट हाल में (१९३३-३४) प्रकाशित हुई है उससे प्रकट होता है कि प्रायमरी स्कूलों में अछूत बालकों को मासिक वृत्तियों में ३२८) दिये गये। इसी प्रकार माध्यमिक स्कूलों में पढ़नेवाले अछूत बालकों को वृत्ति के रूप में १०९३) खर्च किये गये। और टेक्निकल शिक्षा पानेवाले अछूत बालकों को ८५३) वृत्ति में दिये गये। इस प्रकार प्रान्तीय शिक्षा-विभाग अछूतों को सार्वजनिक स्कूलों में समानता का दर्जा देने में ही यत्नवान् नहीं है, किन्तु उनमें से असमर्थ योग्य बालकों को छात्रवृत्तियाँ दे देकर उन्हें शिक्षा प्राप्त करने के लिए उपयुक्त प्रोत्साहन भी दे रहा है।

इसी प्रकार वहाँ की सरकार अछूतों को सरकारी नौकरियाँ देने की भी व्यवस्था कर रही है। सरकारी दफ़्तरों के चपरासियों आदि में उनके लिए १० फ़ी सदी जगहें सुरक्षित कर दी गई हैं। अब रहे क्लार्क, सो इनमें उन्हें कितनी फ़ी सदी जगहें दी जायँ, इस पर अभी विचार हो रहा है। सरकारी अछूतोद्धार-विभाग रिपोर्ट के साल ९३ अछूत उम्मेदवारों को सरकारी नौकरियाँ दिलवाने में समर्थ हुआ है। इनमें २५ मेट्रिक दर्जा पास थे, २७ वर्नाक्यूलर स्कूल फ़ाइनल पास थे, शेष ४१ ऐसा कोई दर्जा नहीं पास थे। अछूत उम्मेदवारों को दफ़्तर के कामों का ज्ञान न होने के कारण विशेष कठिनाई होती है। इसके लिए प्रतिवर्ष ६ उम्मेदवारों को आफ़िस का काम-काज सिखलाने का निश्चय किया गया है। ऐसे प्रत्येक उम्मेदवार को १२) मासिक वेतन देने की भी व्यवस्था की गई है।

बम्बई-सरकार की यह सारी व्यवस्था अन्य प्रान्तों की सरकारों के लिए अनुकरणीय है।

गुप्त जी के दो पुत्रों का स्वर्गवास

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि बाबू मैथिलीशरण गुप्त पर उनकी ढलती उम्र में बड़ी भारी विपत्ति पड़ गई है। उनके सुमन्त तथा सुदर्शन नाम के जो दो पुत्र थे उन दोनों की पिछले दिनों कुछ ही दिनों के अन्तर में मृत्यु हो गई। पुत्रशोक कितना भारी होता है, यह एक अकथ्य बात है। श्रीमान् गुप्त जी के इस घोर दुःख के समय हमारी सहानुभूति है। ईश्वर करे, गुप्त जी को यह दारुण दुःख सहन करने को समुचित बल प्राप्त हो।

देशी चिकित्सा-प्रणाली की अवैज्ञानिकता

उस दिन काशी के एक अस्पताल की निरीक्षक-पुस्तक में इन प्रान्तों के सिविल अस्पतालों के इन्स्पेक्टर जनरल कर्नल एच० सी० बकले ने लिख दिया है कि आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली अवैज्ञानिक है। उनके ऐसा लिखने का पत्रों में खासा विरोध किया गया है। इस विरोध का एक कारण यह भी बताया गया है कि बकले साहब उसी प्रान्तीय सरकार के एक उच्चाधिकारी हैं जो आयुर्वेदिक तथा यूनानी चिकित्सा-प्रणाली को सरकारी तौर से स्वीकार कर चुकी है, अतएव उन्हें इस प्रकार किसी देशी चिकित्सा-प्रणाली की निन्दा नहीं करना चाहिए। परन्तु भारतीय संस्कृति की या किसी और अयोरपीय संस्कृति की बातों के बारे में जब उनके अन्य सजातीय ऐसी ही सम्मति देते रहते हैं और हम लोगों के कानों में जूँ तक नहीं रेंगती तब उक्त साहब बहादुर की इस उक्ति को भी हमें सुनी-अनसुनी कर देना चाहिए। अब रही बात देशी चिकित्सा की अवैज्ञानिकता की, सो उन भारतीयों को इस बात की ज़रा भी परवा नहीं है जिनको पाश्चात्यों की वैज्ञानिक चिकित्सा-प्रणाली गूलर के फूल के समान है तथा जो पीढ़ियों से अपनी देशी चिकित्सा से बराबर लाभ ही लाभ उठाते चले आ रहे हैं। हमें इन जैसे महानुभावों की ऐसी उक्तियों की ओर उतना ध्यान नहीं देना चाहिए, जितना इस बात की ओर कि हमारी देशी चिकित्सा-प्रणाली की शिक्षा की ऐसी व्यवस्था हो कि हमारे प्रत्येक गाँव के लिए कम से कम दो दो वैद्य तो ज़रूर तैयार हो जायँ। और तब उक्त डाक्टर साहब की तरह के लोगों को अपने आप ही ज्ञात हो जायगा कि भारत की देशी चिकित्सा-प्रणालियाँ कहाँ तक वैज्ञानिक तथा लोक-प्रिय हैं।

श्रीमती कमला नेहरू



[श्रीमती कमला नेहरू]

श्रीमती कमला नेहरू इधर महीनों से बीमार रहीं और जब यहाँ उनकी अवस्था में कोई सुधार होता न दिखाई दिया तब चिकित्सार्थ योरप भेजी गईं। परन्तु वहाँ भी उनका स्वास्थ्य नहीं ही सुधरा। हाल में जर्मनी से उनकी चिन्ताजनक स्थिति के तार आये।

यह प्रसन्नता की बात है कि सरकार ने पंडित जवाहरलाल नेहरू को बिना किसी शर्त के जेल से छोड़ दिया है ताकि वे अपनी पत्नी श्रीमती कमला नेहरू से जर्मनी जाकर मिल सकें। नेहरू जी जिस दिन छूट कर प्रयाग पहुँचे उसी दिन शाम को हवाई जहाज़ से जर्मनी के लिए रवाना हो गये। श्रीमती कमला नेहरू शीघ्र आरोग्य लाभ करें, और यह आदर्श दम्पति सकुशल भारत लौटें, यही हमारी कामना है।

स्वामी दयानन्द महाराज का स्वर्गवास

भारतधर्म-महामण्डल के मंत्री तथा उसके प्रमुख कार्यकर्ता स्वामी दयानन्द जी महाराज की गत ३० जुलाई को काशी में मृत्यु हो गई। आप इधर बहुत दिनों से हृद्रोग से पीड़ित थे। आपकी इस असामयिक मृत्यु से भारतधर्म-महामण्डल का भविष्य तो अन्धकार-पूर्ण हो ही गया है, सनातनधर्म की भी अपार क्षति हुई है। स्वामी जी सनातनधर्म के एक अप्रतिम वक्ता तथा व्याख्याता ही नहीं थे, किन्तु नैष्ठिक बाल-ब्रह्मचारी, तपस्वी तथा विद्वान् भी

थे। वास्तव में आपके न रह जाने से हिन्दू-जाति का एक बड़ा भारी नेता उठ गया है।

स्वामी दयानन्द का जन्म बंग-देश में एक कुलीन बंगाली ब्राह्मण-कुल में हुआ था। आपने कलकत्ता-यूनिवर्सिटी से बी० ए० की डिगरी भी प्राप्त की थी। छात्रावस्था से ही आपमें विराग का भाव जाग्रत हुआ था। समय आने पर आप सनातनधर्म की सेवा करने के विचार से महामण्डल के सर्वप्रधान स्वामी ज्ञानानन्द के शिष्य हो गये। उनके तत्त्वावधान में रहकर आपने हिन्दू-शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया और शीघ्र ही अपनी प्रतिभा के बल से सनातनधर्म के वक्ताओं तथा नेताओं की अग्र पंक्ति में पहुँच गये। आप रत ३०-३२ वर्ष से अपने भाषणों के द्वारा समग्र उत्तरी भारत में भ्रमण कर धर्म का प्रचार करते और वहाँ के सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलनों में सदा प्रमुख भाग लेते रहे हैं। कानपुर में सनातनधर्म-कालेज की स्थापना आपके ही प्रयत्नों से हुई थी। आप हिन्दी के भी बड़े प्रेमी थे। आपने अपने प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हिन्दी में ही लिखे हैं, जिनसे हिन्दी के धार्मिक साहित्य के एक बड़े अभाव की सुन्दर ढंग से पूर्ति हुई है। ऐसे तपस्वी हिन्दी-प्रेमी विद्वान् साधु के निधन से देश की वास्तव में बहुत बड़ी हानि हुई है।

नैपाल में गुलामी का अन्त

संसार में हिन्दुओं का एक-मात्र स्वाधीन राज्य नैपाल है। यहाँ का शासन आज भी वहाँ के स्वाधीन हिन्दू-शासक के ही हाथों में है, और वहाँ आज भी हिन्दू-शास्त्रों के अनुसार ही शासन आदि का सारा कार्य होता है। यह प्रसन्नता की बात है कि वहाँ के शासक बीसवीं सदी के महत्त्व को जानते हैं और आधुनिक युग की उन्नतिशील बातों को धीरे धीरे ग्रहण करते जा रहे हैं। उदाहरण के लिए नैपाल की गुलामी-प्रथा को लीजिए। स्वर्गीय तीन सरकार महाराज चन्द्र शम्शेरजंग ने सन् १९२४ में उसके उठा देने की घोषणा की थी और यह नियम बना दिया था कि नैपाल से गुलामी की प्रथा अमुक समय के भीतर एकदम उठ जाय। यही नहीं, उन्होंने इसके लिए पाँच लाख पौंड अलग कर दिये थे कि जो लोग अपने गुलामों को गुलामी से मुक्त करना चाहें उनको इस धन से मुआविज़ा दिया जाय। उनकी घोषणा का यह फल निकला कि ४,६५१ गुलाम तुरन्त मुक्त कर दिये गये और उनके लिए महाराज को मुआविज़ा भी नहीं देना पड़ा। उस समय सारे देश में ६० हज़ार गुलाम और १५ हज़ार गुलाम रखनेवाले थे। उपर्युक्त राजाज्ञा का लोगों पर अच्छा प्रभाव पड़ा, जिससे गुलामों को स्वाधीन नागरिक बनाने में सरकार को उस रक़म में अब तक कुल २,७४,२५० पौंड ही खर्च करने पड़े हैं। अनेक लोगों ने गुलामों को बिना मुआविज़ा लिये ही गुलामी से मुक्त कर दिया है। फलतः आज नैपाल-राज्य में एक भी गुलाम नहीं है। यह बात वहाँ की गुलाम-विरोधी सभा के वार्षिक जलसे में स्पष्ट रूप से कही गई है।

सोने की निकासी

इँग्लैंड से 'गोल्ड स्टैंडर्ड' जब से उठ गया है तब से २,३७,२६,६३,१२२) का सोना भारत से बाहर जा चुका है। इतने मूल्य का सोना निकल जाने का यह अर्थ हुआ कि भारतवर्ष इतने धन से खाली हो गया। सोने की इस बढ़ती हुई निकासी को रोकने के लिए असेम्बली के कांग्रेस-सदस्य श्री ए० ऐयंगर ने एक प्रस्ताव पेश किया था। मगर लार्ड विलिंगडन ने उस प्रस्ताव को असेम्बली में पेश होने के लिए अपनी स्वीकृति नहीं दी। अतएव भारत से सोना के बाहर जाने पर रोक न लग सकी। वास्तव में इस आर्थिक संकट के समय में देश से सोने का बाहर जाने देना देश में ग़रीबी बुलाना है।

कृष्णमोहन

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

नवम्बर १९३५ } भाग ३६, खंड २, संख्या ५, पूर्ण संख्या ४३१ { कार्तिक १९९२

बढ़ो !

लेखक, श्रीयुत सुमित्रानन्दन पन्त

बढ़ो अभय, विश्वास-चरण धर !
सोचो वृथा न भव-भय-कातर :
ज्वाला के विश्वास के चरण,
जीवन-मरण समुद्र सन्तरण,
सुख-दुख की लहरों के सिर पर,
पग धर पार करो भव-सागर।
बढ़ो, बढ़ो, विश्वास-चरण धर !
क्या जीवन ? क्यों ? क्या जग-कारण ?
पाप-पुण्य, सुख-दुख का वारण ?
व्यर्थ तर्क !—यह भव लोकोत्तर;
बढ़ती लहर, बुद्धि से दुस्तर;
पार करो विश्वास-चरण धर !
जीवन-पथ तमिस्रमय, निर्जन,
हरती भव-तम एक लघु-किरण,
यदि विश्वास हृदय में अस्थिर,
देंगे पथ तुमको गिरि-सागर !
बढ़ो अमर विश्वास-चरण धर !

युद्धों की अनिवार्यता

इटली ने अबीसीनिया पर आक्रमण करके यह सिद्ध कर दिया है कि विश्व-शान्ति का प्रबल दार्शनिकों का स्वप्न-मात्र था। यह संसार युद्धों के ही लिए बना है। लेखक महोदय राजनीति-शास्त्र के पंडित हैं और यद्यपि आपने संसार की वर्तमान निराशाजनक स्थिति से प्रभावित होकर यह लेख लिखा है तथापि आपकी बातें महत्त्वपूर्ण हैं।

लेखक,
प्रोफ़ेसर इन्द्र वेदालङ्कार,
एम० ए०

युद्ध कब बन्द हो सकते हैं? मनुष्य का स्वभाव है लड़ना। संसार के इतिहास में कौन-सा ऐसा काल है जब युद्ध न हुए हों, लड़ाइयाँ न हुई हों? सत्ययुग में भी देवासुर-संग्राम हुए, त्रेता में मर्यादापुरुषोत्तम श्री राम को युद्ध करना पड़ा, द्वापर में प्रलयकारी महाभारत-समर हुआ। कब युद्ध नहीं हुए? मानवीय प्रकृति में लड़ना कूट कूट कर भरा हुआ है। मनुष्य का शरीर स्वयं निरन्तर लड़ाई का अवशेष-मात्र है। प्राणि-संसार में बुद्धि-शील होने के कारण—परमात्मा की उत्कृष्ट सृष्टि होने के कारण—मनुष्य, सत्ता के संघर्ष में, विजयी होकर जीवित है। मनुष्यों में भी बलवान् का निर्बल के साथ संघर्ष है—संग्राम है, और प्रत्येक अपने जीवित रहने के लिए युद्ध कर रहा है। वस्तुतः विश्व में सर्वत्र युद्ध का कोलाहल है। कहीं परिवारों का कलह है, कहीं भिन्न भिन्न समाज-श्रेणियों में विक्षोभ है, कहीं अन्तर्जातीय वैमनस्य है और कहीं राष्ट्रों का पारस्परिक विरोध है।

रोमन रोलाँ के सदृश महान् आत्मायें तथा लेखक जैसी सहस्रों क्षुद्र आत्मायें विश्व की शान्ति के लिए कितनी ही मूक प्रार्थनायें करें, परन्तु युद्ध कब रुक सकते हैं? संसार की सब आध्यात्मिक चेष्टायें, सब नैतिक प्रयत्न, सब धार्मिक उपदेश विफल हैं, व्यर्थ हैं। युद्ध नहीं रुक सकते, न कभी रुके और न कभी रुकेंगे। मनुष्य में छिपा हुआ पशु अपनी पाशविकता को नहीं छोड़ सकता। पशु-जगत् में सदाचार का कोई नियम नहीं, अन्तर्राष्ट्रीयता का कोई प्रयोग नहीं, धार्मिकता का कोई भाव नहीं। उसमें बुद्धिशीलता की आशा करना मूर्खता है, नैतिक आचार की कल्पना करना अनभिज्ञता है। उस जगत् का केवल एक नियम है, एक ही क़ानून है, एक ही कोड और एक ही आचार-परिमाण है। वह है जंगल का नियम—अथवा प्राच्य राजनैतिक परिभाषा में वह है मात्स्य न्याय। जैसे एक तालाब में या नदी में बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है, हड़प जाती है, उसी तरह पशुओं में भी बलवान् निर्बल को अपना ग्रास बना लेता है। पशु-जगत् में प्रत्येक कमजोर प्राणी अपने से बली प्राणी का शिकार है, इसमें निर्बल की कोई रक्षा नहीं। सचमुच निर्बल के जीने का अधिकार ही नहीं।

मनुष्य भी तो एक पशु है—चौपाया नहीं तो दोपाया ही सही। धर्म, सभ्यता, सदाचार, नीति आदि तो केवल पागल दार्शनिकों के आविष्कार हैं। किसी एक के सम्बन्ध में कोई अन्तिम निर्णय नहीं, कोई एकमत नहीं। भिन्न भिन्न रुचि के अनुसार भिन्न भिन्न परिभाषाओं के कारण धर्म आदि का कोई स्वरूप निश्चित नहीं। सभ्यता तथा सदाचार की कोई सर्वमान्य पद्धति नहीं। मनमानी नीति का लक्षण, धर्म का अनियमित आडम्बर मानवीय बुद्धि पर कलङ्क है। क्या हुआ यदि मनुष्य ने वैज्ञानिक आविष्कारों से स्थल, जल और वायु पर विजय प्राप्त कर लिया? क्या हुआ यदि अनोखे भौतिक चमत्कारों से मानवीय प्रतिभा ने शायद ईश्वर को भी आश्चर्य-चकित कर दिया? क्या हुआ यदि दार्शनिक जगत् में उत्कृष्ट आध्यात्मिक कल्पनाओं की सृष्टि की जा सकी? मनुष्य ने अब तक संसार के निःश्रेयस के लिए, विश्व के कल्याण के लिए कौन-सा आविष्कार किया है? उसने आज तक अपने सुदीर्घ इतिहास-काल में ऐसा कौन-सा चमत्कार किया है जिससे संसार में होनेवाले रक्तपातों, ध्वंस-कारी संहारों की समाप्ति हो सके?

संसार के सत्यान्वेषकों, शास्त्रकारों, धर्म-संस्थापकों ने अपने बुद्धिबल से कितनी ही सुन्दर रचनायें की हैं। किसी ने उदात्त अदृश्य सृष्टि की रचना की, किसी ने समाज-संगठन का निर्माण किया और किसी ने अपने ही धर्मस्वरूप को सर्वोत्कृष्ट बतला-कर अपने अनुयायियों में संघ-शक्ति का अद्भुत चमत्कार दिखलाया। परन्तु किसी ने विश्व के सर्वाङ्गीण अभ्युदय का मार्ग नहीं बतलाया। यदि बतलाया भी तो उसका प्रभाव इतना थोड़ा हुआ कि वस्तु-स्थिति यह है कि आज हम एकदेशीय धर्म, ऐकान्तिक जातीयता आदि के लिए लड़ मरते हैं और विश्व-धर्म की तरफ़ किसी का ध्यान भी नहीं जाता। यदि कोई विश्व-धर्म का नाम तक लेता है तो वह आदर्शवादी, स्वप्नदर्शी आदि कह कर हास्य का पात्र बनाया जाता है।

तब यही सत्य है कि मनुष्य युद्ध-प्रिय है, स्वार्थ-परायण है, अल्प-दृष्टि है, आत्मैकनिष्ठ है और आचारहीन है। स्वभावतः घृणा करना, दूसरे की उन्नति से जलना, अपने ही कल्याण में तन्मय रहना मानवीय धर्म है। एक समय था जब मनुष्य अपने परिवार, अपने देश तथा अपनी जाति तक परोपकार करना अपना कर्तव्य समझता था, परन्तु आज पाश्चात्य सभ्यता के कारण यह भावना भी प्रतिदिन ह्रास को प्राप्त हो रही है। हाँ, राजनैतिक उद्देश से एक हो जाना, अपनी स्वाधीनता-रक्षा अथवा सम्मान-रक्षा के लिए संगठित हो जाना अब तक भी स्वतंत्र देशों में अवशिष्ट है—यहाँ तक एक बन्धुत्व का अंश अब तक बचा हुआ है। इतना भी अवश्यमेव प्रशंसा के योग्य है। मनुष्य का इतना महत्त्व तो अवश्य स्वीकार करना चाहिए कि कुछ सीमा तक उसने पाशविकता को दबाया है और मानवीय भ्रातृत्व की कल्पना को सर्वथा विलुप्त होने से बचाया है।

परन्तु किसी राजनीति-शास्त्र अथवा मनोविज्ञान के विद्यार्थी को मनुष्य-स्वभाव की दुर्बलता तथा असमता के कारण युद्धों की अनिवार्यता समझ में आ सकती है, मनुष्य की अदूरदर्शिता—संकीर्ण-हृदयता के कारण विश्व-प्रेम की असम्भवनीयता बुद्धिगम्य हो सकती है। जो बात बिलकुल समझ में नहीं आती वह युद्ध-पोषकों की विचित्र तर्कशीलता है। वे अच्छे-बुरे सब उपायों से युद्धों की उत्कृष्टता के गीत गाते हैं। उनकी सम्मति में युद्ध न केवल एक अनिवार्य परन्तु अन्तर्जातीय व्यवस्था के लिए आवश्यक तत्त्व है।

विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार युद्ध एक बिलकुल प्राकृतिक घटना है। डार्विन की दृष्टि में मनुष्य का मनुष्य को मार देना सर्वथा स्वाभाविक है। यह प्रकृति का नियम है कि निर्बल संसार से विनष्ट हो जायँ। इसके अनुसार बलवान जातियों का निर्बल जातियों पर आक्रमण करना नितरां अनिवार्य है। इस क़ानून से सृष्टि के किसी भाग का संहार हो जाना सर्वथा उपेक्षणीय है और संग्रामों की सत्ता संसार के तारतम्य को व्यवस्थित रखने के लिए आवश्यक है। यदि युद्ध न हो तो मनुष्यसृष्टि का स्वरूप अति भयानक तथा व्यवस्थाशून्य हो जाय।

अर्थशास्त्री भी माल्थस की आबादी-सम्बन्धी प्रसिद्ध कल्पना का समर्थन करते हुए युद्धों की अनिवार्यता पर विश्वास करते हैं। उनका कथन है कि संसार में खाद्यपदार्थों की उत्पत्ति परिमित होने के कारण भारी मनुष्य-संख्या को भूखों मरना पड़ेगा, अतः युद्धों-द्वारा इस संख्या में कमी आ जाने से आबादी और उत्पत्ति के अनुपात का समतुलित रहना आवश्यक है। यदि युद्ध न होंगे तो महामारी और बीमारी के कारण जन-संहार होना निश्चित है। इसलिए युद्धों-द्वारा ऐसा विनाश हो जाना मनुष्य-जाति के अन्तिम कल्याण के लिए है। ये अर्थशास्त्री अन्तर्राष्ट्रीय संग्रामों का एक आर्थिक हेतु भी मानते हैं। वस्तुतः एक राष्ट्र आधुनिक युग में दूसरे देश पर केवल इसी लिए आक्रमण करता है कि वह अपने व्यवसाय के कच्चे माल को प्राप्त करने की भूमि प्राप्त कर सके तथा अपने तैयार किये हुए माल के लिए मार्केट निर्माण कर सके। केवल साम्राज्य-वाद की लिप्सा जो कभी सिकन्दर, जूलियस सीज़र और नेपोलियन में थी, आज-कल के राष्ट्रों में प्रेरक हेतु नहीं। यदि योरपीय शक्तियाँ अपने अपने उप-निवेशों को अपने हाथ में रखना चाहती हैं और नये उपनिवेशों को विजय करना चाहती हैं तो उनका एक-मात्र उद्देश अपनी आर्थिक अवस्था को उन्नत करना है। जब से व्यावसायिक क्रान्ति का प्रारम्भ हुआ है और अनल्पमान पर उत्पत्ति का प्रारम्भ हुआ है तब से उत्पन्न वस्तुओं के लिए मार्केट प्राप्त करने का सतत संघर्ष प्रत्येक शक्तिशाली राष्ट्र करता रहा है। इसी कारण आज सारे संसार में हाहाकार मचा हुआ है। इसी आर्थिक विप्लव के परिणाम-स्वरूप युद्धों की बीभत्सता अपने नग्नरूप में प्रत्येक तत्त्ववेत्ता के सम्मुख नृत्य कर रही है। अर्थशास्त्रियों का तो निश्चित मत है कि संसार में संग्रामों का मूलोच्छेद न हो सकता है, न होना ही उचित है।

ऐतिहासिक सम्प्रदाय के विचारक भी युद्ध की अनिवार्यता का पोषण करते हैं। उनके मतानुसार जहाँ कहीं जन-समाज है, वहीं संघर्ष का उत्पन्न होना प्राकृतिक है। प्रागैतिहासिक काल में वन्य जातियाँ परस्पर लड़ती रहती थीं। कुटुम्ब-प्रथा के विकसित होने के बाद भी स्त्रियों के लिए पारस्परिक कलह बने रहते थे। नगर एवं राज्यों की स्थापना के अनन्तर भी युद्ध क़ायम ही रहे, जिनका साक्षी ग्रीस, रोम और भारत के मध्यकालीन संग्राम हैं। राष्ट्र के साम्राज्य-संस्था में परिणत होने के बाद साम्राज्य-लिप्सा के कारण ये युद्ध जारी रहे और उन्नीसवीं शताब्दी से जाति-राष्ट्रों में व्यावसायिक विस्तार के कारण ये अन्तर्देशीय कलह बड़े परिमाण में दृष्टि-गोचर होने लगे। १९१४-१८ का योरपीय महा-समर इस ऐतिहासिक श्रृंखला का एक अन्तिम नमूना था। परन्तु इन युद्धों की समाप्ति यहीं पर नहीं हो जाती है। ऐसे अनेक युद्ध भविष्य में होंगे और इतिहास अनेक बार अपने को दोहरायेगा। यद्यपि राष्ट्र-संघ की स्थापना हो चुकी है, तथापि ऐतिहासिक दूर दृष्टि से युद्धों की समाप्ति की कल्पना करना अपने को धोखे में डालना है।

सबसे विचित्र तो मनोविज्ञानियों का तर्क है। देश-भक्ति के भाव से भरे राष्ट्रवादी लोग स्वराष्ट्र को ही अपना परम ध्येय समझते हैं। उसके लिए किसी भी साधन या कार्य को वे अनुचित नहीं मानते। अपने देश की रक्षा अथवा उन्नति के लिए वे सब प्रकार

के वैध-अवैध, नैतिक-अनैतिक मार्ग का आश्रय लेना आवश्यक ही नहीं उचित समझते हैं। ऐसे देशभक्त मतवाले लोग धर्म, शिष्टाचार, सभ्यता, नीति आदि किसी वस्तु के बन्धन को स्वीकार नहीं करते। वे सब सम्भव उपायों से अपने देशहित का सम्पादन करना चाहते हैं। युद्ध की अनैतिकता तो उनकी समझ में ही नहीं आ सकती। युद्ध से भी बढ़कर किसी जघन्य पाप को वे करने के लिए उद्यत रहते हैं, यदि उसके द्वारा उनके देश का कोई कार्य सिद्ध होता हो। सचमुच ऐसी संकीर्ण जातीयता और स्वराष्ट्र-प्रियता की कल्पना ने ही युद्धों को संसार में बद्धमूल कर दिया है।

ऐसे राष्ट्रवादियों का तर्क भी कुछ समझने लायक़ है। उनका कथन है कि राष्ट्र-संस्था का जन्म शक्ति या ताक़त से हुआ है। उसकी स्थापना भी शक्ति पर है और उसका विस्तार भी शक्ति-द्वारा है। उसका नाश भी यदि होगा—तो किसी ताक़त की टक्कर से ही होगा। संक्षेपतः शक्ति ही राष्ट्र का एक-मात्र तत्त्व है—शक्ति ही इसका आधार तथा प्राण है। इस तरह जिस संस्था का शक्ति ही सर्वस्व हो वह कब युद्ध से पराङ्मुख हो सकती है। युद्ध तो शक्ति-परिचय एवं शक्ति-सञ्चय का एक अनुपम अवसर है। एक 'यदृच्छा-अपावृत स्वर्ग-द्वार' है। कौन स्वाभिमानी देश ऐसे दुर्लभ मौक़े को अपने हाथ से जाने देगा? कौन उन्नतिशाली राष्ट्र ऐसे सुवर्णावसर की उपेक्षा करेगा?

इन राष्ट्रवादियों में जर्मन विचारकों का स्थान उच्चतम है। वे अपने देश को मातृभूमि ही नहीं, पितृभूमि भी मानते हैं। उनके मतानुसार जर्मनी का एक एक बच्चा देश के लिए है—और उसके जन्म, पालन, शिक्षण का एकमात्र उद्देश स्वदेश की सम्मान-रक्षा तथा अभ्युदय है। इन विचारकों का मूलमन्त्र है—माइ कंट्री, राइट आर रांग अर्थात् मेरा देश, भला या बुरा उनके उपदेशों का सार यही है—एक-मात्र संक्षेप यही है।

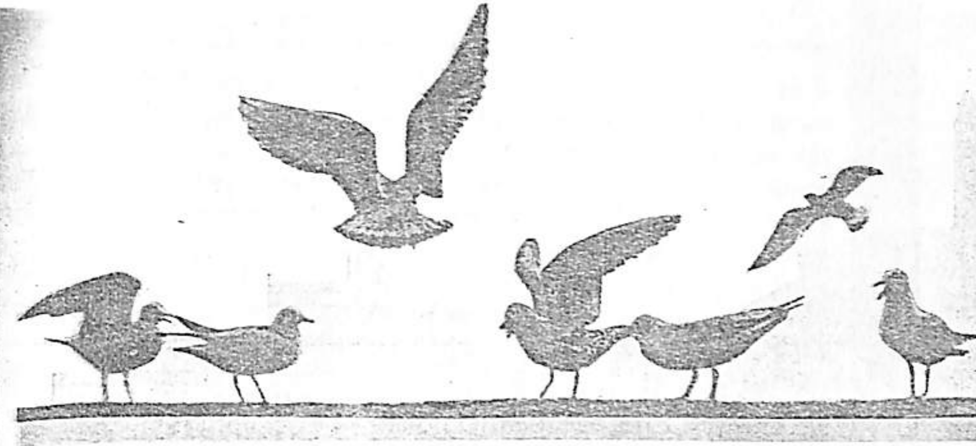
सुप्रसिद्ध दार्शनिक हेगल तो 'शान्ति' से घृणा करता है। उसके विचारानुसार शान्ति से देश में पतन और पाप बढ़ता है। किसी जाति को आलस्य में गिर जाने से बचाने के लिए समय समय पर युद्ध दुन्दुभि का तुमुल नाद करना न केवल उपयोगी, अपितु आवश्यक है। नीश्टे, हेकल, ट्रीटस्के प्रभृति अन्य जर्मन विचारक भी इन्हीं सिद्धान्तों का पोषण करते हैं। उनके कथनानुसार जातीय जागृति के लिए युद्ध अत्यन्त प्रभावशाली साधन हैं। मानवीय उन्नति में युद्धों का होते रहना एक आवश्यक तत्त्व है। इनके द्वारा प्रसुप्त आत्माओं में प्रबोध एवं कर्तव्यनिष्ठा के भाव उत्पन्न होते हैं। इन्हीं युद्धों से राष्ट्रीय आचार का उत्कर्ष होता है। जातीय अभि-मान के अतिरिक्त युद्धों-द्वारा एकता, संगठन, संघ-शक्ति का अद्भुत पाठ प्राप्त होता है। राष्ट्र के नव-युवकों में देश-भक्ति की भावना भरने का युद्ध एक सुवर्णीय अवसर होता है। ऐसे ही अवसरों में जातियों के भविष्य का निर्माण होता है। प्रिंस बिस्मार्क ने ऐसे अवसर का लाभ उठाकर जर्मन-राष्ट्र का निर्माण किया। हिटलर इन्हीं भावनाओं को आज पुनः जागृत कर जर्मनी के शक्ति-भांडार का संग्रह कर रहा है।

वस्तुतः योरप के सामरिक वातावरण का हेतु जर्मन विचारकों के उपर्युक्त लेख और विचार हैं। आज पाश्चात्य देशों में परस्पर स्पर्धा है—ईर्ष्या है—वैमनस्य है केवल अपने सैनिक बल-संगठन करने के लिए। प्रत्येक शक्ति अपने जलयानों और वायु-यानों की संख्या बढ़ाने में तत्पर है। जितना व्यय अस्त्र-शस्त्र तथा अन्य युद्ध-सामग्री के संग्रह में किया जा रहा है, उतना जातीय शिक्षा, स्वास्थ्य आदि पर नहीं किया जाता। कितनी दुःखप्रद स्थिति है कि संसार के धन का अधिक भाग विनाशक गैसयन्त्रों, विध्वंसक हवाई जहाजों और प्रलयकारी संहारक तत्त्वों के एकत्रीकरण में ही खर्च किया जा रहा है? क्या यह सब मनुष्य-जाति का कलङ्क नहीं? क्या

पाश्चात्य सभ्यता पर यह लाञ्छन नहीं ? मनुष्य मनुष्य के खून का प्यासा हो, यह कैसा वीभत्स विचार है ? इटली अपने सैनिक बल के उन्माद में निरीह बालकों, स्त्रियों, धात्रियों और चिकित्सकों की एक क्षण में हत्या कर देता है। यह भी कोई सभ्यता है ! प्राचीन समय के युद्धों में ऐसी तबाही की कल्पना भी नहीं हो सकती। युद्धों के भी नियम थे, बन्धन थे जिनसे सीमित होकर पदाति पदाति से, अश्वारोही अश्वारोही से तथा रथारोही रथारोही से ही संग्राम कर सकते थे। इन युद्धों में सर्व-संहार का जघन्य पाप कुत्सित कृत्य तथा हृदय-हीन पाशविक व्यवहार कदापि दृष्टिगोचर नहीं होता था।

इस छोटे लेख में प्राचीन आर्य-युद्ध-मर्यादाओं की विवेचना नहीं की जा सकती। इसका तो विचारणीय विषय केवल युद्धों की अनिवार्यता है। हमने भिन्न भिन्न विचारशैलियों के आधार पर यह निदर्शन करने का प्रयत्न किया है कि किस तरह युद्धसंस्था की उपयोगिता तथा आवश्यकता पर आज तक विश्वास किया गया है। न केवल अर्ध-शिक्षित व्यक्ति अपितु शिक्षित अग्रगण्य संसार के विचारक भी युद्धों की अनिवार्यता को स्वीकार करते हैं। स्वयं भारतीय नीतिशास्त्रवेत्ता आचार्य चाणक्य ने युद्धों की अनुपयोगिता के एकदेशीय मत का (जित्वाऽपि क्षीणदण्डकोषः स्वाजितो भवतीत्याचार्याः) निराकरण करके सुहृत्ताऽपि व्ययेन शत्रुनाशोऽभ्युपगन्तव्यः इन शब्दों-द्वारा युद्धों की उपादेयता का दृढ़ समर्थन किया है।

इन सब अवस्थाओं में लेखक के ये निराशामय वचन किसी सहृदय के हृदय को व्यथित न करेंगे कि संसार में युद्धों की कदापि समाप्ति न होगी तथा मनुष्यस्थित पशु अपनी पाशविक नग्न लीलाओं, कुत्सित चेष्टाओं एवं घृणित ताण्डवों का कभी अन्त न करेगा। विश्व में शान्ति की कल्पना शताब्दियों तक केवल कल्पना-मात्र रहेगी—आदर्शवादियों का जगद्बन्धुत्व का आदर्श केवल एक आदर्शमात्र ही रहेगा। संसार के सब राष्ट्र, स्वार्थ के एकमात्र उद्देश से अपने देश, भूमि, व्यवसाय को उन्नत करने में अग्रसर होंगे और इस अन्धी दौड़ में मनुष्यत्व के एकत्व तथा भ्रातृत्व का विचार एक स्वप्नमात्र ही रहेगा। अनेक क्षुब्ध आत्मायें अपनी अन्तर्वेदनाओं के मूक आवेग में अन्तस्तल से एक साथ प्रार्थनायें करेंगी और भविष्य में होनेवाले संहारकारी महायुद्ध का अवसान चाहेंगी—परन्तु यह महायुद्ध रोकने से भी न रुकेगा। क्या यह संभव है कि सैनिक बल से उन्मत्त संसार की महाशक्तियाँ अपने अपने उन्माद में एक दूसरे पर प्रहार किये बिना रह सकेंगी ? और फिर इस महाप्रलय का जो भयानक परिणाम होगा उसे वर्षों बाद आनेवाली मनुष्यसन्तति ही समझेगी। कौन इस अवश्यम्भावी आते हुए महासंहार को रोक सकता है ?



पक्षियों का अद्भुत सहज ज्ञान

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०

श्रीयुत सन्तराम जी ने वैज्ञानिक अनुसन्धानों के आधार पर इस लेख में पक्षियों की कुछ जन्मजात अद्भुत बातों का प्रामाणिक वर्णन किया है जो रोचक होने के साथ साथ ज्ञानवर्द्धक भी है।

मनुष्य का बच्चा जब संसार में आता है तब बहुत अपूर्ण अवस्था में होता है। उसे खाना-पीना, उठना-बैठना, चलना-फिरना, बोलना-तैरना, सोचना आदि सभी क्रियायें सिखानी पड़ती हैं। बिना सिखाये वह कुछ भी नहीं जान सकता। परन्तु पशु-पक्षियों के सम्बन्ध में यह बात नहीं। मुर्गी का बच्चा अंडे से निकलते ही चुगने लगता है, मुर्गाबी का बच्चा जन्म लेते ही तैरने लगता है। उन सबको सिखाने की ज़रूरत नहीं होती। जीवन के सोपान में जो प्राणी जितना नीचे है, उतना ही अधिक उसका बच्चा जीवन-संग्राम के योग्य क्षमता लेकर संसार में आता है। जीवन-संग्राम के योग्य जिस तैयारी के साथ पक्षी का बच्चा अंडे से निकलता है, यदि वही तैयारी मनुष्य के बच्चे को भी मिली होती तो वह पालने से छलाँग मारकर निकलते ही रोकड़ का हिसाब लिखने और हवाई जहाज़ बनाने लगता। इस दृष्टि से पक्षी मनुष्य की अपेक्षा अधिक भाग्यवान् है।

उदाहरण के लिए पक्षियों के घोंसलों को ही ले लीजिए। कोई उनको घोंसला बनाना नहीं सिखाता। फिर भी बया, धोबी, दर्जिन आदि पक्षी ऐसे सुन्दर नीड़ बनाते हैं कि देखकर आश्चर्य होने लगता है। आस्ट्रेलिया में एक प्रकार का पेरू पक्षी होता है। वह झाड़ियों में रहता है। उसे 'तापमापक पक्षी' भी कहते हैं। उसको जब घोंसला बनाना होता है तब पहले नर और मादा मिलकर पोली रेतीली भूमि में जहाँ धूप नहीं लगती होती, एक फुट गहरा गड्ढा खोदते हैं। उसमें वे मुर्झाये हुए पत्तों और पौधों का फ़र्श बिछाते हैं। उसे धूप और वर्षा में खुला पड़ा रहने देते हैं। उसके पत्ते और पौधे सड़ने लगते

हैं तब उस सड़ी-गली घास में एक मजबूत घोंसला बनाया जाता है। इसकी दीवारें कोमल कोमल टहनियों को बुनकर बनाई जाती हैं। इस प्रकार एक गज ऊँचा और चार फ़ुट व्यास का एक टीला खड़ा हो जाता है। छः या नौ दिन बाद पक्षी वापस आकर टीले को खोलता है और मादा उसमें एक अंडा दे देती है। फिर वह तीन तीन दिन बाद आकर एक एक अंडा देती जाती है। सब मिलाकर वह १४ अंडे देती है। हर बार टीले को खोलकर अंडा देने के बाद फिर बन्द कर दिया जाता है। सूर्य के ताप से गड्ढे की फफूँदी में खमीर उठने लगता है। इससे कोई ९० दर्जे का स्थिर तापमान पैदा हो जाता है और पेरू के अंडे पककर बच्चे निकल आते हैं। यदि मौसम बहुत अधिक गरम हो जाता है तो पेरू टीले के इर्द-गिर्द की रेत को पोला कर देते हैं ताकि अंडों को ठंडी हवा लगती रहे। ४५ दिन में चूज़े निकल आते हैं और भूमि में से ऊपर चढ़कर चंपत हो जाते हैं। पहले लोगों की धारणा थी कि यह सब क्रिया पेरू विचार-पूर्वक करता है। परन्तु अब मालूम हुआ है कि ऐसी बात नहीं।

विद्वानों की शताब्दियों तक यही धारणा रही है कि पक्षियों में बहुत बड़ी बुद्धि होती है। परन्तु प्राणि-शास्त्रियों का अध्ययन दिन पर दिन बढ़ रहा है। पक्षियों के स्वभाव के सम्बन्ध में अब उनका ज्ञान पहले से कहीं अधिक बढ़ गया है। अब उन्हें इसका ज्ञान हो गया है कि पक्षियों में विचार-शक्ति बिलकुल नहीं। उनको इसकी आवश्यकता भी नहीं। उनके सभी चातुर्यपूर्ण जटिल कार्यों में सहज ज्ञान ही उनका पथ-प्रदर्शन करता है।

न्यूयार्क में जीव-विद्या के अजायबघर के डाक्टर राबर्ट कुशमन मर्फी का मत है कि "तोते, कौए और गवैये पक्षियों जैसे उच्च कोटि के पक्षियों में भी विचार करने का यन्त्र बहुत कम होता है। उनका मानसिक यंत्र मनुष्य की अपेक्षा कीड़े के यन्त्र से अधिक मिलता है। पक्षियों में सहज ज्ञान का यन्त्र रहता है, और वे इस बात को न जानते हुए कि हम अमुक काम क्यों करते हैं, उस काम को करते हैं: उनका जीवन उत्तेजनाओं और प्रत्युत्तरों की एक शृङ्खला-सी होती है। हमें उनकी मूर्खता का पता तभी लगता है जब किसी दुर्योग से वह शृङ्खला टूट जाती है।"

वर्ष की विशेष ऋतुओं में मादा पक्षी को मातृत्व की भावना आ दबाती है। वह बैठने की प्रबल लालसा को रोक नहीं सकती। यदि घोंसले में कोई भी अंडा नहीं होता तो वह किवाड़ के लट्टू पर ही बैठने लगती है। बच्चों को छोड़ कर मा को चारा लाने के लिए कई कई मील जाना पड़ता है, और वह ठीक वहीं वापिस आ जाती है जहाँ से गई थी। इसमें उससे कभी भूल नहीं होती। परन्तु तनिक घोंसले को उठाकर एक गज इधर या एक गज उधर रख दीजिए। अब मादा उसे नहीं ढूँढ़ सकेगी। वह उड़कर परे चली जाती है, फिर उसी स्थान पर लौट आती है, और फिर उड़ जाती है। इस प्रकार उसे कई बार घण्टों लग जाते हैं। तब कहीं वह अपनी आदत की बेड़ियों से छुटकारा पाकर घोंसले को ढूँढ़ पाती है। वह बार बार भूल से ग़लत जगह पर चली जाती है और जब वहाँ घोंसला नहीं मिलता तब फिर दूसरे स्थान पर खोजने का यत्न करती है।

डाक्टर मर्फी बताते हैं कि "बहुत-से पक्षी घर को ख़ूब सँभालते हैं और घोंसले को बहुत साफ़-सुथरा रखते हैं। घोंसले में जो बीट आदि गिरती है उसे उठाकर वे दूर फेंक आते हैं। इससे घोंसले का निशान बतानेवाली कोई चीज़ वहाँ पड़ी नहीं रहती और घोंसला छिपा भी रहता है। इससे कई लोग विश्वास करने लगे हैं कि इनकी सफ़ाई उच्च कोटि की बुद्धि का परिणाम है। परन्तु कैम्ब्रिज-विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के एक समूह ने २० साधारण पक्षियों के घोंसलों की निगरानी की। जो भी रोएँ या बीट घोंसले में गिरती थी वे उसे चिमटों से उठा लेते थे। इससे घोंसले निरन्तर साफ़

रहते थे। हर बार जब मा बच्चों के लिए कोई कीड़ा लाती थी तब घोंसले से जाते समय वह कुछ न कुछ साथ ले जाती थी। परन्तु वहाँ कोई बीट या रोएँ तो गिरा नहीं होता था। इसलिए वह घोंसले में से एक टहनी ही निकाल कर ले जाती थी। उसका यह काम—कुछ न कुछ लाना और कुछ न कुछ ले जाना—एक यंत्र की तरह होता था। कुछ ही काल में उसने सारे घोंसले को नष्ट कर दिया।"

अफ़्रीका में एक प्रकार का बया होता है। वह अपना घोंसला बनाने के लिए कोमल टहनियों को बड़ी जटिल गाँठें देकर बाँधता है। एक समय ऐसा मान लिया गया था कि यह बया टहनियों को इस प्रकार बुनने की विद्या अपने बड़े बूढ़ों से सीखता है, और इसमें बहुत उच्च कोटि की बुद्धि होती है। तब इसका एक अंडा चिड़िया-घर में लाया गया और कृत्रिम रीति से उसे सेकर बच्चा निकाला गया। इस बच्चे ने अपनी जाति का दूसरा पक्षी कभी देखा ही न था। परन्तु उचित आयु को पहुँच कर यह उसी प्रकार टहनियों में जटिल गाँठें लगा कर उनको बाँधने लग गया।

इतना ही नहीं कि पक्षियों को प्रकृति देवी ने सहज ज्ञान का दान देते समय बहुत उदारता से काम लिया है, वरन जितना उनकी इन्द्रियाँ तीक्ष्ण होती हैं, उतना दूसरे किसी भी जीव की नहीं होतीं। उनकी श्रवण-शक्ति के सर्वोत्तम होने के उदाहरण तो अनेक हैं। समस्त भूमण्डल की जङ्गली जातियाँ अपनी झोपड़ियों की रक्षा के लिए बत्तखें या दूसरे मुर्ग पालती हैं। शत्रु अभी बहुत दूर ही होता है कि ये पक्षी सबसे पहले उसके आने की आवाज़ सुन लेते हैं। बत्तखों के बोलने की आवाज़ सुनकर कुत्ते भी ऊँघ से जाग कर भोंकने लगते हैं। गत योरपीय महायुद्ध में फ़्रांसीसी क़िलों में और ईफ़ल टावर में तोते रक्खे गये थे। वे हवाई जहाज़ों के दिखाई देने के बहुत पहले ही उनके आने की सूचना दे देते थे। यह बात एक ऐतिहासिक सत्य है कि सन् १९१५ में डोगर बैंक की समुद्री लड़ाई में तीतरों और दूसरे छोटे पक्षियों ने २१३ मील की दूरी से तोपों के चलने की आवाज़ सुन ली थी। दूसरे पास बैठे हुए लोगों को कुछ सुनाई नहीं देता था, परन्तु ये पक्षी भय से चिल्ला रहे थे।

सुनने की शक्ति के समान ही पक्षियों में देखने की शक्ति भी असाधारण होती है। उनकी आँखें सिर के दोनों ओर होती हैं और एक केन्द्र पर इकट्ठी नहीं होतीं, इसलिए उनकी दृष्टि के दो क्षेत्र होते हैं—जब एक काम करता है तब दूसरा दबा रहता है। परन्तु इससे भी बढ़कर महत्त्व की बात यह है कि इनकी आँखें बदलकर अपने को अवस्था के अनुकूल बना सकती हैं। विलियम बीब नामक विद्वान् का कथन है कि पक्षी की आँख "एक क्षण में बदल कर अपने को दूरदर्शक से सूक्ष्मदर्शक बना सकती है।" मुर्ग़ी एक तरफ़ तो आकाश में दूर पर उड़ती हुई चील को देख लेती है और दूसरे ही क्षण धूल में पड़े कीड़ों के महीन अंडों को चुगने लगती है। अबाबील ८० मील प्रतिघण्टा के वेग से उड़ती हुई सुई के नोक के बराबर छोटे कीटों को पकड़ लेती है।

एक देश को छोड़कर दूसरे देश में चले जाना पक्षियों की एक बड़ी ही आश्चर्य-जनक बात है। उनके इस कर्म से लोगों में अनन्त कल्पनायें उठती हैं। पर वैज्ञानिकों का मत है कि जब पक्षियों के देशान्तर-गमन की ऋतु आती है तब खुद उनमें कुछ रासायनिक संक्षोभ पैदा हो जाते हैं—पिंजरे में बन्द पक्षी भी उस काल में अशान्त और असन्तुष्ट दीखने लगता है।

देशान्तर-गमन के समय पक्षियों के उड़ने के वेगों की मनोरञ्जक सूचियाँ तैयार की गई हैं। डॉटरल नाम की चिड़िया बन्दूक के गोले की तरह योरप को पार करती है। वह सवेरे की बियारी उत्तरी अफ़्रीका में कर दूसरे दिन कलेवा स्कण्डीनेविया में जाकर करती है। मटियाले गालोंवाली थ्रश

नामक चिड़िया दक्षिणी यूनाइटेड स्टेट्स में एप्रिल में पहुँचती है और एक मास बाद अलास्का-द्वीप में जा उतरती है। इस प्रकार वह १२० मील प्रतिदिन के औसत से यात्रा करती है।

कौन दिङ्-निर्णायक यंत्र (कम्पास) इन पखेरुओं को मार्ग दिखाता है? इनके पास दिशा का बोध करानेवाली जो अचूक चीज़ है उसकी बराबरी मनुष्य-निर्मित कोई भी यंत्र नहीं कर सकता। पश्चिम की सुनहरे रङ्ग की प्लोवर नामक चिड़िया अलास्का से दक्षिण-पश्चिम दिशा में उड़कर एल्यूशियन-द्वीपों में जाती है, वहाँ से शून्य प्रशान्त महासागर के अन्तर्गत नन्हें से हवाई-द्वीप की ओर दौड़ती है। एटलांटिक महासागर के किनारे की सुनहरी प्लोवर नोवास्कोशिया से उड़कर सीधी दक्षिण-अमेरिका में पहुँचती है। वह रास्ते में किसी स्थान पर भी स्थल का स्पर्श नहीं करती। फिर वसन्त में वह दूसरे मार्ग से—मिसिसिपी-घाटी के ऊपर से स्थल को पार करती हुई—सागर-तट को वापस आ जाती है। सुमेरु-प्रदेश में रहनेवाली टर्न नामक चिड़िया के घोंसले उत्तर-ध्रुव से केवल ४५० मील की दूरी पर मिले हैं। यह चिड़िया शरद्-ऋतु बिताने के लिए ११,००० मील उड़कर दक्षिण-ध्रुव के बर्फ़ानी समुद्रों को जाती है। यह इतनी यात्रा कैसे करती है? आप चाहें तो इसे लोकोत्तर-क्रिया कह सकते हैं। परन्तु वैज्ञानिक लोग तो केवल इतना ही कह सकते हैं कि पक्षियों में यह अद्भुत शक्ति जन्म-सिद्ध है।

जीवन के काँटे

लेखक, श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

जीवन के काँटे सुलझाओ।
रक्त-लसित, अति दुखित पड़ा मैं, प्रेयसि, अब तुम अपनाओ॥
निकला था मैं शान्ति खोजने, ऊषा की लाली की ओर।
चलते चलते बैठा थककर, कहीं नहीं था दुख का छोर॥
प्रकृति-रूप की सुखमा देखी, उडगण-युत अंबर देखा।
सागर की तरल तरङ्गों का, क्रीड़ामय कलरव देखा॥
देखा ज्ञान-कुंड का गौरव, विद्या की शुचि कली खिली।
किन्तु शान्ति की झलक कहीं भी, प्रेयसि! मुझको नहीं मिली॥
शूलों से है हृदय-विद्धि प्रिय, अब तो तुम ही अपनाओ।
मनुज-प्रीति के सुखद मन्त्र से, इन काँटों को सुलझाओ॥

जेमी

लेखक, श्रीयुत धर्मवीर, एम० ए०

“अच्छा, तो आज जनाब सैर को जा रहे हैं?”

मैं कुरते के बटन बन्द कर रहा था कि ये शब्द डाक्टर साहब ने मुझसे कहे। छड़ी उठाते हुए मैंने जवाब दिया—“हाँ जनाब, जा तो रहा हूँ अगर आप लोग इजाज़त दें।”

“ज़रूर जाइए।” भाई साहब कहने लगे—“सैर होनी अच्छी होती है अगचें हमसे नहीं किये बनती। इससे शायद तुम्हारा क़ब्ज़ भी जाता रहेगा।”

मैं बोला—“सर्दियों की सैर का मेरा यह पहला दिन है। मैंने फ़ैसला किया है कि आज से बाक़ायदा सैर को जाया करूँगा। लेकिन अब तो डाक्टरी मशविरा भी मिल रहा है, इसलिए.........।”

“नहीं नहीं, बतौर डाक्टर नहीं कह रहा था।” अँगड़ाई लेते हुए उन्होंने कहा। कुछ क्षण ठहरकर वे फिर बोले—“अरे भाई, चौबुर्जी तो तुम्हें जाना ही है। आज ज़रा-सा आगे चले जाना। सरकारी क्वार्टर वहाँ से दूर तो है नहीं.........।”

“‘आज’ का क्या मतलब?” मैंने उनकी बात काट कर कहा—“क्या मैं रोज़ जाता हूँ? भाई साहब, यह तो मेरा पहला दिन है। ख़ैर, चला जाऊँगा। कहिए।”

“दो-चार दिन के बाद सोहाग-भाग का व्रत है, इसलिए मा जी ने छोटी भौजाई के लिए मिठाई और रुपये भेजे हैं। ये वहाँ उसे देते आना।”

“भई, चौबुर्जी के आगे तो उस सड़क पर बहुत गर्द है। अच्छा, देता आऊँगा।”

घन्नू ने उन चीज़ों को रूमाल में बाँध दिया। मैं उसे लेकर नीचे उतर गया। अभी आधी ही सीढ़ियाँ उतरा हूँगा कि ऊपर से डाक्टर साहब की आवाज़ पड़ी—“कुमार जी, ज़रा जेमी को भी साथ लेते जाना।”

मैं वहीं खड़ा हो गया। कुछ क्रोध-सा भी आ गया। क्रोध में ही उलटे पाँव ऊपर चढ़ आया और बाहर से ही मज़ाक़ में कहा—“तो क्या मुझे अब जेमी जैसों को भी अपने साथ घसीटना पड़ेगा? भई, मुझसे यह न होगा; मैं इस सैर से बाज़ आया।”

भाई साहब ने समझा कि मैं ग़ुस्से में हूँ। वे अपनी चारपाई से उठे, गरम चादर ओढ़ी और ऊपर चल दिये। जानते थे कि अब इसको कुछ कहना भिड़ों के छत्ते में हाथ देना है। मैं कुर्सी पर बैठा था। जेमी साहब मेरे सामने विराजमान थे। मुझे शायद ग़ुस्सा आया हुआ था, लेकिन उसकी तो मानहानि हुई थी, इसलिए ऐसा मालूम देता था कि वह ग़ुस्से से सूजा बैठा है। मैंने कहा—“भई, माफ़ करना। मैं तुम्हारे खिलाफ़ कुछ नहीं कह रहा हूँ। मैं तो.........।”

जेमी ने मेरी बात पूरी न होने दी और नाक से फूँ करके मुँह दूसरी तरफ़ फेर लिया। मैंने समझा मुझसे ग़लती हुई है। मन में आया—अगर तुम एक बार ऊपर आ गये तो इसमें तुम्हारा हर्ज ही क्या हो गया। जेमी की तरफ़ देखा तो वह ज्यों का त्यों रूठा बैठा था। अपनी ठोड़ी वह अजीब ढंग से रक्खे था। मुझे अपने आपसे कुछ घृणा-सी हुई। मैं धीरे से उठा और दरवाज़े के बाहर निकलते हुए जेमी की तरफ़ इशारा किया। कोई और होता तो शायद न मानता, लेकिन जेमी में यह बात नहीं है। वह ग़ुस्से के कारण बहुत जल्द रूठ जाता है, परन्तु फिर ख़ुशी के कारण जल्द मान भी जाता है। इशारा पाते ही वह मेरे साथ हो लिया।

कई व्यक्तियों की आदत होती है कि वे लड़ाई मोल लेते हैं। जेमी का शुमार उनमें नहीं है। वह जान-बूझकर

किसी से लड़ने की इच्छा नहीं करता। हाँ, अगर दूसरा लड़ाई करने पर उतारू बैठा हो तो फिर वह भी पीछे नहीं हटता। लेकिन अगर स्वयं जेमी में लड़ाई करने की इच्छा होती तो मैं उसे अच्छा शकुन ही समझता। छुटपन में ही अगर बच्चे में शांतिप्रियता की इच्छा ज़ोरों पर हो तो बड़ा होने पर वह किसी के आक्रमण का उत्तर नहीं दे सकता। बल्कि तब वह आक्रमण से बचने की कोशिश करता है जो कायरता में शामिल है।

अनारकली को पार करने के बाद हम पुरानी अनार-कली में दाखिल हुए। यहाँ भंगी झाड़ू दे रहा था। सारी सड़क पर गर्द उड़ रही थी। मैं तो रूमाल से नाक बंद कर इस इन्तिज़ार में एक तरफ़ हो गया कि कब गर्द ज़रा थमे और मैं परली तरफ़ जाऊँ। लेकिन जेमी ने इसकी कुछ परवा न की। वह मेरी अपेक्षा तेज़ भी ज़्यादा है। इसलिए नाक सिकोड़ कर झट पार हो गया। कुछ दूर जाकर वह मेरे लिए खड़ा हो गया। जब मैं पास पहुँचा तब वह फिर तेज़ हो गया।

मेरे मन में पता नहीं क्या विचार आया—या तो साथी की तेज़-रफ़्तारी से मेरे अंदर ईर्ष्या पैदा हुई या छुट-पन का कोई पुराना संस्कार जाग उठा—मैंने दौड़ना शुरू कर दिया। चौबुर्जी तक दौड़ता ही चला गया। पाँव और टाँगें कुछ तो खुलीं। जेमी भी अब बहुत खुश मालूम देता था। लाहौर में आये अभी उसे कुल एक हफ़्ता ही हुआ था। इस अरसे में उसे घर का कोई भी आदमी मकान की चहारदीवारी के बाहर न लेकर गया था। जाता भी कौन? डॉक्टर साहब अपनी किताबों और अस्पताल के अलावा तीसरी बात जानते नहीं। पाल और किड बच्चे ठहरे। जेमी को साथ लेकर वे बाहर जायँ तो डर है कि उसे नई चीज़ें दिखाते-दिखाते कहीं खुद भी न भूल जायँ। बाक़ी रहा मैं। मुझे अख़बार में दिन के अलावा रात को भी ड्यूटी देनी पड़ती थी। अब मुश्किल से एक महीने के लिए रात की ड्यूटी से जान छूटी है। यही कारण है कि सुबह को सैर की ठानी।

चौबुर्जी से कुछ पहले ही मैंने दौड़ना बन्द कर दिया था—वहाँ जहाँ यूनिवर्सिटी ग्राउंड खतम होता है। इस कारण कि गन्दे नाले के पुल से पहले ही साँस अपनी स्वाभाविक गति पर आ जाय। क्यों पुल को अगर दौड़ते-दौड़ते पार किया तो सारा दिमाग़ लाहौर की गन्दगी से तर हो जायगा। सैर के बाद अगर दो घंटे तक दर्द के मारे सिर बाँधना पड़ा तो ऐसी सैर शायद महँगा सौदा ही कहलायेगी।

इस समय तरह तरह के ख़याल आये। चौबुर्जी के पास इस वक़्त जो खेत हैं यहाँ एक समय रावी नदी बहती थी। चौबुर्जी के बनानेवालों के दिल में कला से कितना प्रेम था। इतने में हम गवर्नमेंट क्वार्टरों के नज़दीक आ पहुँचे।

अब एक अन्य विचार-धारा मन में उठी। गवर्नमेंट ने अच्छा ही किया जो बेचारे दफ़्तरों के बाबुओं को ऐसी खुली जगह मकान बनवा दिये हैं। नहीं तो लाहौर की तंग गलियों में रहनेवाले इन ग़रीबों के बाल-बच्चे कहाँ और खुले आकाश के अधिक सूर्य और वायुदेव के दर्शन कहाँ? लेकिन इस खुली हवा का फ़ायदा ही क्या? हर समय हवा के चलने के साथ गंदे नाले की बदबू भी बहती चली आये? क्वार्टरों में रहनेवाले उस समय चाहे कहीं छिप जायँ, लेकिन वह बदबू फिर भी उनका पीछा नहीं छोड़ती। शहर के कई लोगों को शिकायत है कि जब से ये क्वार्टर बने हमारे मकानों को किसी किरायेदार ने पूछा तक नहीं। जहाँ पहले लाहौर में मकान का होना आय का एक साधन था, वहाँ अब उसकी देख-रेख पर गिरह से खर्च करना पड़ता है। बाबू लोग मौज में रहे। दस फ़ी सदी काट कटवाई और इन बँगला-नुमा क्वार्टरों में जा टिके। लेकिन इसके साथ ही उनको एक शिकायत भी है। अगर कहीं घर में मेम साहब या कोई बच्चा बीमार हो जाता है तो शहर से डाक्टर बुलाते बुलाते टाँगों का कचूमर निकल जाता है, सिर पर जो क़र्ज़ हो जाता है वह अलग।

इन्हीं विचारों में मारकेट गुज़र गया, ग्राउंड भी गुज़र गया, ग़ैर-सरकारी दूकानें निकल गईं और मंदिर भी निकल गया। मोड़ मुड़कर हमने अपने आपको भाई साहब के दरवाज़े के सामने खड़ा पाया। दरवाज़ा खटखटाया।

नौकर ने साँकल खोली। उसने प्रणाम किया। मैंने पूछा—"कहो जी बलंदीराम, क्या हाल है?"

मेरे सवाल का जवाब वह अभी न दे पाया था कि उधर से बरामदे में खड़ी भौजाई आँगन में आ गईं। मुझे देखकर वे बलंदी को गालियाँ देने लगीं—"अरे अंधे, कुछ बताया भी तो कर कि कौन आया है। गधे, पहले तुझको दरवाज़े पर तेल चुआना था। फिर इन्हें दाखिल होने देता। अब झटपट वहाँ जा। बैठक के दरवाज़े पर ही तेल चुआ दे यदि ये अन्दर जावें।"

ये बातें भौजाई ने इतनी गंभीरता से कही थीं कि मैं हैरान हो गया। आश्चर्य हुआ कि वे तेल क्यों चुआना चाहती हैं। अक्सर ब्याह-शादियों में तेल चुआया जाता है, यह सुन रक्खा था। लेकिन यहाँ तो अपने राम क्वारे हैं। इसी हैरानी में मैंने प्रणाम किया। अब भौजाई ने हँसकर जवाब दिया—"भई, प्रणाम का जवाब पीछे दूँगी, पहले ज़रा तेल डलवा लो।"

"तेल डलवा लो! कहाँ डलवाऊँ?"

"जहाँ तुम्हारी मर्ज़ी हो।"

अब समझा कि भौजाई मखौल कर रही हैं। कहने भी लगीं—"भई, क्या किया जाय। हमारे यहाँ तो तुम बरसों के बाद आये हो, इसलिए तेल ही चुआना ठहरा।"

इसके बाद वे खिलखिला कर हँसने लगीं।

इधर हम इस प्रकार बातें कर रहे थे, उधर बलंदी जो आम तौर पर समझदारी की बातें किया करता है, रसोईघर से तेल की कुप्पी लेकर बैठक की तरफ़ गया। दरवाज़े की एक तरफ़ उसने तेल गिराना शुरू किया। मैंने जब देखा कि यह कमबख्त सचमुच ही तेल चुआ रहा है तब ज़ोर से चिल्लाया—"अरे, यह क्या कर रहा है?"

ऐसा मालूम होता है कि मेरी ऊँची आवाज़ के कारण वह घबरा-सा गया। पहले कुप्पी का मुँह थोड़ा-सा औंधा हुआ था। अब जब आवाज़ पड़ी तब वह उलट ही गई। बैठक में काश्मीरी क़ालीन बिछा हुआ था। दरवाज़े की चौखट से हटकर तेल क़ालीन पर जा पड़ा। पहले उस तरफ़ भौजाई की पीठ थी। लेकिन जब मैंने आवाज़ दी तब उन्होंने मुड़कर देखा कि बलंदी तो सचमुच ही कुप्पी लेकर दरवाज़े में तेल डाल रहा है।

"खसम नूँ खाणियाँ* !" कहकर वे उस तरफ़ दौड़ीं। छोकरे के मुँह पर उन्होंने दो थप्पड़ जमाये। वह बेचारा कुछ तो पहले ही घबराया हुआ था, अब थप्पड़ लगे तब उसके हाथ से कुप्पी छूट गई। पटाक-से वह नीचे जा गिरी। तेल का फ़व्वारा छूटा। बहुत-से छींटे भौजाई के कपड़ों पर गिरे, और तेल तमाम फ़र्श पर फैल गया। दीवार से टँगी तसवीरें खराब हो गईं। खुद दीवार पर कई चटाख पड़ गये।

मैंने यह दृश्य देखा तब हँसी आ गई। दौड़कर पास पहुँचा। बलंदी को पकड़कर एक तरफ़ हटा दिया (डर था कि कहीं उसे और भी प्रसाद न मिल जाय)। पूछा—"क्यों जी, इसने क़ुसूर ही क्या किया है? तेल ही तो चुआया है न? यही इससे कहा गया था।"

"हाँ, यही कहा गया था! भई, तुम भी अजीब आदमी हो। देख रहे हो कि क़ालीन पर तेल का दरिया बहा दिया है और मना नहीं करते। वाह-वाह!"

"अरे भई, मैं कैसे मना करूँ? जब घर की मालकिन नौकर को एक बात का हुक्म दे तब भला मैं उसे कैसे रोकूँ!" इतना कहने के बाद मुझे हँसी आ गई।

इससे भौजाई को थोड़ा गुस्सा आ गया। उन्होंने गुस्से को हँसी में लपेट कर कहा—"बस, अब हँसते ही जाओगे या थमोगे भी?"

इस समय बाहर से अश्विन आ गया। मुझे देखकर वह दौड़ा और आते ही टाँगों से लिपट गया। मैंने पूछा—"क्यों जी, आज 'घाँगे' पर चलोगे?"

उसने अपनी मा की तरफ़ देखा कि वह किसी दूसरे काम में लगी है इसलिए सिर को नीचे-ऊपर हिलाते हुए बोला—"चलूँगा।"

"तो पहनो कपड़े। तुम्हारे बूट कहाँ हैं?"

मैंने यह कहा तो वह मेरी टाँगें छोड़कर मा के पास चला गया। बोला—"भाभी जी, बूट पहनाओ। चाचा जी........।"

* पंजाबी गाली—मालिक को खानेवाला।

अभी वह अपनी बात ख़त्म न कर पाया था कि भाभी साहबा बिजली की तरह कड़ककर बोलीं—"दम भी लोगे या नहीं। बूट पहनाओ! चाचा जी तो बस.........।"

यह झिड़की खाकर अश्विन रोने लगा। उसी कारण मैं भौजाई की बात न सुन पाया। मैंने अश्विन से कहा—"अरे सुनो, तुम्हारे बूट कहाँ हैं? लाओ, मैं पहना दूँ।"

आँखें मलते मलते अश्विन मुझे शू-रैक के पास ले गया। उसके जूते उठाकर पहना दिये। हम आँगन में आ गये। जेमी एक कोने में बैठा था। धूप का वह यों भी बहुत शौक़ीन है। लेकिन इस कोने में तो किसी तरफ़ से तेज़ हवा भी न आती थी; इसलिए यह जगह उसे बहुत पसंद आई। जेमी के बालों के साथ सूर्य की किरणें खेल रही थीं। हम दोनों के पास आने पर उस पर छाया हो गई। अब मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे हमें देखकर किरणें छिप गई हैं और उन्होंने आँख-मिचौनी बन्द कर दी है। जेमी की पीठ पर मैंने हाथ फेरना शुरू किया। इसका जवाब उसने पूँछ से दिया; वह हिलने लगी। मुझे ऐसा करते देखकर अश्विन ने डरते-डरते अपना हाथ आगे बढ़ाया और बालों को छुआ। जेमी बदस्तूर पड़ा रहा। अब तो अश्विन का हौसला बढ़ गया। उसने पहले जेमी के पाँव को छुआ, फिर पूँछ को और अंत में आहिस्ता से सिर को।

"तुमको यह कुछ न कहेगा।" मैंने कहा—"इसका नाम जानते हो? इसका नाम है जेमी साहब। बस, जेमी साहब कहकर पुकारा करोगे तो यह कुछ न कहेगा। दूसरों को तो यह काटा करता है, लेकिन तुमसे यह प्यार करेगा।"

साहब-शब्द सुनकर अश्विन को कुछ हैरानी हुई। उसने कहा—"चाचा जी, यह साहब है?"

"हाँ, यह जेमी साहब है।"

"यह साहब है तो फिर इसका टोप कहाँ है?"

"टोप? टोप घर पर है।"

अब अश्विन को विश्वास हो गया कि यह सचमुच साहब है, क्योंकि इसका टोप भी है। वह झट दौड़कर अपनी मा के पास गया। बोला—"भाभी जी, चाचा जी का जेमी! इधर देखो, वह बैठा है, वह साहब है।"

"हाँ बेटा, तुम्हारे चाचा जी भी साहब हैं और जेमी भी साहब है। दोनों एक-जैसे साहब हैं।"

अब भौजाई का पारा नीचे उतर आया था। इसलिए उन्हें मख़ौल सूझा।

अश्विन पर इस मख़ौल का तो क्या असर होना था, हाँ, उसे यह ख़याल ज़रूर हो गया कि जेमी साहब ही है। चुनांचे यह बात उसने दलंदी से भी जाकर कही।

वक़्त काफ़ी हो गया था, इसलिए लौटने की ठानी। भौजाई से इजाज़त माँगी। लेकिन इजाज़त का शब्द सुनते ही वे तो तैश में आ गईं—"तुम्हारे मिज़ाज अब बिगड़ गये हैं। शहर में क्या रक्खा है जो इतनी जल्दी जाने की पड़ गई है! क्या यह भौजाई बहुत ख़ातिर करती है? भाई, हमसे जैसी होगी वैसी रोटी खिला देंगे।"

"तो क्या जनाब रोटी के लिए इतनी नाराज़ हो रही हैं? अगर यही बात है तो लाइए मैं कच्ची रसद लेता जाऊँगा।"

"कच्ची रसद क्या?"

"सीधा, सीधा! जैसे साधु दाल, चावल, आटा—कच्ची रसद लिया करते हैं वैसे मैं लेता जाऊँगा ताकि जनाब को तसल्ली हो जाय?"

अब भाई साहब भी सैर से लौटकर आ पहुँचे। राम राम के बाद उन्होंने पूछा—"क्यों हज़रत, आज इधर कहाँ?"

"आपके दर्शनों के लिए।" मैंने कहा।

"ख़ाली दर्शन या कुछ और भी?"

"कुछ और भी।"

"क्या?"

"कल मैंने इरादा किया था कि हर रोज़ सुबह सैर को जाया करूँगा। मुल्ला की दौड़ मसजिद तक; हमारी सैर चौबुर्जी तक। लेकिन चलते वक़्त डाक्टर साहब ने कहा कि मा जी का मेवा हुआ यह मिठाई वग़ैरह का पैकट भी लेते जाओ। बस, इसी लिए चला आया।"

"तब दर्शन की बात तो यों ही ग़प हुई न!"

"नहीं ग़प नहीं, 'बाई-प्राडक्ट'।"

"अच्छा, मिठाई कहाँ है?"

"दीवान साहब, यह आपके लिए नहीं है।"

"तब क्या कुत्ते-बिल्लियों के लिए है?"

"नहीं नहीं," मैंने हँसकर कहा—"यह उनके लिए है जो सोहाग-भाग का व्रत रख रही हैं। यह उन्हीं को मिलेगी। ठीक है न!"

"अच्छा तो जनाब हम इसे नहीं खाते। (दो मिनट रुक कर) आज मेरा एक काम तो करना।"

"क्या? कहिए।"

"करना ज़रूर है।"

"लेकिन आप कहिए तो सही।"

"अपनी भौजाई को आज अपने साथ लेते जाओ। मुझसे ये कई बार कह चुकी हैं कि जब से डाक्टर साहब आये हैं, उनके बच्चों वग़ैरह को नहीं देखा। मैं ख़ुद भी जाना चाहता हूँ, लेकिन मुश्किल यह है कि शाम को दफ़्तर से उठता हूँ तब देर हो जाती है। और सुबह ले जाना तो मुमकिन ही नहीं। इसलिए अगर जनाब को कोई तकलीफ़ न हो तो इन लोगों को भी धकेल ले जाओ।"

भाई साहब ने अपना केस इतनी अच्छी तरह और ऐसे अन्दाज़ में पेश किया कि मेरे लिए न कहने की गुंजाइश ही न थी। हाँ के सिवा दूसरा कोई रास्ता ही न था। मैंने धीरे से कह दिया—"बहुत अच्छा! लेकिन एक अर्ज़ है।"

"फ़रमाइए जनाब।"

"मुझे वापस जाकर थोड़ा काम करना है, इसलिए नौ बजे तक लौटना चाहता हूँ।"

"भई, खाना बन रहा है। बस, खाने के बाद तुम इन्हें घसीट कर ले जाओ।"

इधर भौजाई रसोई से बोली—"हाँ हाँ, मंज़ूर है!"

खाना खाते साढ़े नौ बज गये। भाई साहब तो साइकिल पर बैठकर दफ़्तर चले गये। पीछे मैं रह गया। जल्दी करने के लिए जितना ज़्यादा कहता, उतनी ही ज़्यादा देर होती। ग़ुस्सा आ गया कि देखो ये हिन्दुस्तानी औरतें भी क्या चीज़ हैं। वक़्त की इन्हें कोई क़द्र ही नहीं। ये तो बस एक ही बात जानती हैं कि इसे किस तरह ज़ाया किया जाय। मैं ग़ुस्सा से आग-बबूला होकर बरामदे में बैठा था कि अन्दर से आवाज़ आई "भई, ज़रा तकलीफ़ करके ताँगा तो ले आओ।"

मैंने शुक्र किया। दरवाज़े के पास गया तब उसे खुला पाया। फिर अन्दर लौटा। देखा, जेमी नदारद। आवाज़ें दीं, मुँह से सीटियाँ बजाईं। लेकिन अगर वह वहाँ हो तो जवाब दे। दिल में कहा—'यह एक और मुसीबत आई।' इस ख़याल से कि कहीं वह क्वार्टर के पीछे या इधर-उधर न हो, मैं पिछली तरफ़ गया। बहुत तलाश की, आवाज़ें भी ख़ूब दीं और सीटियाँ भी बजाईं, लेकिन उसका पता कुछ न चला।

एक और ख़याल आया—कहीं शहर की दूसरी तरफ़ उलटा नये कोट को न चला गया हो। उधर हो लिया। चलो, वहाँ से कोई ताँगा भी लेते आयेंगे। मील भर फ़ासला तय किया, पर वहाँ कोई ताँगा न खड़ा था, न कहीं जेमी ही नज़र आया। इधर-उधर जाट-ज़मींदारों और दूकानदारों से दर्याफ़्त किया, परन्तु कुछ न पता चला। एक जगह गाँव के लड़के गुल्ली-डंडा खेल रहे थे। लड़के प्रायः ऐसी बातों का ध्यान रखते हैं, यह सोच कर मैंने एक लड़के को पास बुलाया, पूछा—"क्या तुमने नस्वाक़ी रंग का कोई कुत्ता देखा है?"

वह अभी जवाब न दे पाया था कि बाक़ी लड़के भी मेरे गिर्द जमा हो गये। उनमें से एक ने जो मेरे नज़दीक खड़ा था, मेरा सवाल सुन लिया था। उसने कहा—"मैंने एक कुत्ते को देखा है। सफ़ेद है न! थूथन पर काला दाग़ है न?......"

"नहीं नहीं," मैंने उसकी बात काटते हुए कहा—"उसका रंग सफ़ेद नहीं है, नस्वाकी है, भूरा!"

एक और लड़के ने जो कुछ बहुत अधिक चंचल मालूम देता था, आँखें और सिर कई बार दायें से बायें हिलाने के बाद कहा—"नत्थू के खच्चर का-सा रंग है। उसे मैंने यहाँ तो नहीं देखा। हाँ, कुछ देर हुई चुंगी-घर के पास देखा था। आ तो इधर ही रहा था। धोती

बाँधे एक शख्स के साथ-साथ चला आ रहा था। मैं भी उधर से आ रहा था कि ...”

एक बड़े-से लड़के ने ईर्ष्या-वश उसे टोक कर कहा—“तू तो आज उधर गया ही नहीं!”

“हूँ, गया नहीं! तुम्हें यह कैसे मालूम हुआ कि मैं गया नहीं? मैं तो पिछली रात अपनी मौसी के यहाँ सोया था। उसका संदेश लेकर मैं अभी वहाँ से लौट रहा हूँ।”

उस बड़े लड़के ने फिर सवाल किया—“अरे, दो घण्टे तो तुम्हें हमारे साथ गुल्ली-डंडा खेलते हो गये हैं और तू कहता है कि मैं संदेश लाया हूँ, अभी आया हूँ!”

इस दिलचस्प विवाद के लिए मैं कुछ देर और खड़ा रहता अगर मुझे जेमी की याद न आ जाती। मैंने समझ लिया कि इस लड़के ने जेमी को मेरे साथ आते देखा है। उसके बाद इनमें से किसी ने नहीं देखा। लड़कों को आपस में झगड़ते छोड़कर मैं वापस क्वार्टर को आया। मंदिर से परे दूकानदारों से पूछा कि शहर को जाता हुआ कोई कुत्ता तो नहीं देखा। किसी ने सिर हिला दिया, किसी ने 'नहीं, बाबू जी' कह दिया। लेकिन एक मियाँ ने तो शायद सहानुभूति से बाक़ायदा हुलिया पूछी—“किस रंग का था? कितना बड़ा था? मोटा था कि पतला? लंबा था कि छोटा? गले में पट्टा था कि नहीं? जिस्म पर कोई दाग़ या निशान तो नहीं था?

मैंने सभी सवालों का जवाब दिया। इसके बाद मियाँ साहब ने थोड़ी देर सोचते हुए आहिस्ता-आहिस्ता कहा—“बाबू, यहाँ नूर-इलाही का कुत्ता तो हमने कई बार देखा है, पर उसका रंग तो काला है।”

अब तो मुझे कुछ क्रोध आया, कुछ हँसी भी। दोनों का नियमन करके मैंने उनको धन्यवाद दिया और एक तरफ़ हो गया। इतने में नये कोट की तरफ़ से एक ताँगा आ पहुँचा। उसमें बैठकर हम अपने क्वार्टर के सामने आ खड़े हुए।

मुझे गुस्से में देखकर भौजाई ने बड़ी नरम-सी आवाज़ में पूछा—“क्यों भई, कुत्ता नहीं मिला?”

“जब आप लोगों ने उसे खो दिया है तब वह क्या कहीं मिल सकता है?”

“लेकिन भाई, हमारा इसमें क्या क़ुसूर है? तुम खुद ही तो आँगन में बैठे थे और वह तुम्हारे सामने लेटा हुआ था।”

“मैं आँगन में तो बैठा था, लेकिन दरवाज़े की रखवाली थोड़े ही कर रहा था।”

भौजाई ने समझा और तो कुछ हो नहीं सकता इसलिए बलंदी को दो-चार गालियाँ देने के बाद कहा—“यह है ही गधा। अक़्ल तो इसके नज़दीक भी नहीं फटकी। जानते हो कि जानवर है। दरवाज़ा खुला रहेगा तो वह बाहर चला जायगा। ज़रा उठकर बंद ही कर देता। लेकिन यह इससे थोड़ा ही होगा।”

बलंदी ने झटपट कहा—“बीबी जी, मैंने क्या किया है? अभी मैं आपको खाना खिला रहा था। बाबू जी दफ़्तर गये। जाते वक़्त वे मुझे हमेशा आवाज़ देकर जाते हैं कि दरवाज़ा बंद कर लो। आज उन्होंने कोई आवाज़ ही नहीं दी। भला इसमें मेरा क्या क़ुसूर?”

“चुप रहो!” भौजाई बोली—“सब काम बिगाड़ कर बकबक किये जा रहा है।”

उधर ताँगेवाले ने आवाज़ दी—“बाबू जी, आओ भी। आपकी कानफ़रेंस खतम भी होगी या नहीं? मुझे तो देर हो रही है।”

मैं बाहर जाकर ताँगेवाले पर बरस पड़ा—“अरे! यह कानफ़रेंस क्या कह रहा है? तुम्हें देर हो रही है तो चले जाओ; हम और ताँगा ले आयेंगे।”

“बाबू साहब, मैंने कुछ बुरा तो नहीं कहा। आख़िर हो क्या गया है? कुत्ता ही तो गुम हुआ है न? आप तो इस तरह गुस्से में हैं जिस तरह किसी के जवाहरात खो गये हों। कुत्ता है। मिल जायगा। किसी को उसे रखकर करना ही क्या है?”

उसकी नरम आवाज़ सुनकर मैंने अगली सीट पर बैठते हुए कहा—“मियाँ, तुम नहीं जानते कि यह माल कितनी क़ीमत का है। एक लेडी ने इसको लेने के लिए कितनी बार दरख़्वास्तें कीं और करवाईं। लेकिन डाक्टर साहब न माने। तुम कहते हो, कोई इसे लेकर क्या करेगा। मैं कहता हूँ जो कोई इसे देखता है यही चाहता है कि बस इसे अपने पास ही रख लूँ।”

भौजाई की तरफ़ पीछे मुँह करके मैं बोला—“लेकिन सबसे बड़ी मुसीबत तो यह है कि बड़ी भौजाई इसका बहुत प्यार करती हैं। डाक्टरनी साहबा को जब यह मालूम होगा कि मैंने कुत्ता गुम कर दिया है तो मुझे कभी न छोड़ेंगी। बस, हर वक़्त इसी का क़िस्सा लिये बैठी रहेंगी। डाक्टर साहब तो खैर चुप रहेंगे, लेकिन डाक्टरनी साहबा मेरे कानों के गिर्द हो जायँगी। आप जनाब तो वहाँ दो घंटे ठहरेंगी, पीछे मेरी जान बवाल में पड़ जायगी।”

कुछ देर में हम फुएछ-हाउस के सामने जा पहुँचे। मैं बड़े ध्यान से सामने की तरफ़ देख रहा था। कुछ दूर एक कुत्ता नज़र आया। वहीं ताँगा खड़ा करवा दिया। लेकिन जब पास पहुँचे तब एक मरियल-सा कुत्ता पाया। इसको देखकर खयाल आया कि म्युनिसिपल कमेटीवाले कहीं हलवे में ज़हर की गोलियाँ न दे रहे हों।

बड़ा अफ़सोस हुआ। सिर्फ़ इसलिए नहीं कि जेमी न मिला बल्कि इसलिए भी कि ताँगे को बार-बार खड़ा करना पड़ा। ताँगेवाला इस तरह तंग ही नहीं होता है वरन उसका समय भी नष्ट होता है। अब फ़ैसला किया कि सोच-समझ कर खड़ा करूँगा। चौबुर्जी का पुल और यूनिवर्सिटी-ग्राउंड भी गुज़र गये। शुरू हो गई पुरानी अनारकली। चौक में ट्रेफ़िक पुलिस का सिपाही खड़ा था। शायद इसने देखा हो, ताँगा खड़ा करके पूछा—“जमादार साहब, आपने कोई नस्ली कुत्ता तो नहीं देखा?”

पंजाब-पुलिस से आदमी जो चाहे उम्मीद करे, लेकिन पता नहीं इस सिपाही को क्या खयाल आया। शायद मुझे इसने बहुत शरीफ़ समझा। कहने लगा—“नहीं साहब, मैंने किसी कुत्ते की तरफ़ ध्यान नहीं दिया। आप जानते हैं, मैं ऐसा कर भी नहीं सकता; ये ताँगे और छकड़ेवाले ही मेरे लिए काफ़ी होते हैं।”

सिपाही को धन्यवाद दिया। ताँगा फिर चलने लगा। ज्यों-ज्यों हम शहर के ज़्यादा नज़दीक होते जा रहे थे, त्यों-त्यों मेरे दिल में डर बढ़ रहा था। कई तरह के

खयाल आने लगे। डाक्टर साहब क्या कहेंगे—'अच्छे हो, पहले दिन ही सैर को ले गये थे।' ये शायद चुप भी हो जायँगे। मानेंगी नहीं डाक्टरनी साहबा! उन्हें इतनी हिम्मत तो होगी नहीं कि मुझे ऊँचा-नीचा कहें, पर बातें बनाने से न रहेंगी। मेरी पीठ पर तो भर-पेट सुनायेंगी, कहेंगी—

अपनी लापरवाही से इतने मजबूर हैं ये तो उसे घर पर ही छोड़ जाते। अच्छी सैर करवाई! एक दिन में ही खो आये। इसके पीछे तो मुकेरर में सब-डिवीज़न के अफ़सर की मेम पड़ी हुई थी। कई बार कहलवाया, लेकिन न दिया। खुद साहब ने एक बार मुँह चढ़ कर चिट्ठी के द्वारा कहलवा भेजा। लेकिन फिर भी न दिया। देखो कैसे! जिस जानवर को दूध देकर पाला-पोसा और इतना बड़ा किया वह क्या दूसरों के सुपुर्द किया जा सकता है! अब पता नहीं किसके हाथ चढ़ा है। कहीं किसी निर्दय के हाथ लग गया तो वह उसे मार ही देगा। उसे यह डर भी तो रहेगा कि अगर कुछ दिन के बाद यह पकड़ा गया तो वह चोर ठहराया जायगा।......

“पता नहीं बेचारा मर गया है या ज़िन्दा। अगर ज़िन्दा है तो उसे सारा दिन बाँधे रखते हैं या कभी खोलते भी हैं? किड और पाल तो उसको सारा दिन खिलाते थे; अब नये घर में कोई उससे बात भी करता है कि नहीं। यहाँ तो मैं उसे बाक़ायदा तीन बार दूध-रोटी अपने हाथों से देती। जब तक वह खा न लेता तब तक मुझे चैन न पड़ता। अब क्या मालूम उसे कोई पूछता भी है या नहीं।.....

“एक दिक़्क़त और भी है। यहाँ हमने उसे शुरू से दूध पर रक्खा था। अब क्या मालूम, वे उसे क्या गंदा-मंदा खिला देंगे। लोग डाक्टर साहब का मखौल उड़ाया करते थे कि आप खुद तो कालेज-पार्टी के मेम्बर हैं, लेकिन आपका जेमी घास-पार्टी का मेम्बर है। अब बेचारे को, पता नहीं, वे मांस भी खिला दें। है तो बड़ा पक्का। मेरे हाथों से उसने दूध पिया। लेकिन क्या मालूम; दूसरे के हाथों की कौन कह सकता है। फिर जानवर ठहरा। अच्छे भले इन्सान के मुँह में कई बार पानी आ जाता है। वह बेचारा तो हैवान ठहरा।......

"मैं कहती हूँ, यह अंधेर हो कैसे गया है। आज सुबह से देखा तक नहीं। बदमाश मिलकर भी नहीं गया। इनको भी मालूम नहीं क्या सूझी।' कुमार सीढ़ियों से उतरकर नीचे जा पहुँचा था कि इन्होंने ऊपर से आवाज़ दे मारी, इसे भी साथ ले जाओ। कोई पूछे, भला यह भी कोई तरीक़ा है। इसे सैर करवानी है तो बाक़ायदा करवाइए। पाँच-सात रुपये का एक आदमी रखिए। कौन-सी बड़ी बात है। आख़िर इसकी सेहत का भी तो ख़याल रखना चाहिए। एक दिन सैर के लिए भेज देने से क्या हो जायगा? हर रोज़ सुबह-शाम भेजा जाय तो कुछ बने भी......

"मेरे लिए तो एक और मुश्किल भी है। सारे दिन भर जेमी से खेला करती थी। इसने दूध पिया, उसने भी पिया और लगे दोनों खेलने। तीन-चार घंटे के बाद यह उस वक़्त मेरे पास आती जब भूख लगती। आज ही जेमी घर पर नहीं है और यह मेरी गोद से नहीं उतरती। कोई काम कैसे करे। वह धन्नू तो नीचे से ऊपर पाँच-सात गागर पानी लाता है। या फिर कमरों में झाड़ू देता है। वह भी इस तरह कि आधा कचरा इधर-उधर रह जाता है। लेकिन बस इन्हीं दो कामों को करता है। रसोई के तो नज़दीक नहीं आता। अन्दर से कोई बर्तन लाना हो तो उसे भी आप ही लाओ। परोसी हुई थाली भी तो उनके सामने नहीं रखता। अगर कहो तो आगे से जवाब देता है—बीबी जी, दो ही हाथ तो हैं। एक वक़्त में एक काम ही तो होगा। भला कोई ऐसे नौकर को क्या करे......।

"एक आफ़त होती तो भी ख़ैर चुप हो जाती। लेकिन यहाँ पर तो आफ़तों की भरमार है। जेमी के बग़ैर घर कितना सूना मालूम देता है। एक वक़्त यहाँ चूहों ने नाक में दम कर रक्खा था। जिधर जाओ उधर ही चूहे। खाने की कोई चीज़ उन्होंने न छोड़ी। पहनने का कोई कपड़ा उन्होंने न छोड़ा। जहाँ-तहाँ उनकी बीट। आटा है तो उस में। दालें हैं तो उनमें। कनस्तर से घी निकालो तो उसमें। मरतबान से अचार निकालो तो उसमें। बाल्टी के पानी को मुँह लगाते उन्हें कई बार देखा। क्या पता कि वे उसमें कुछ और भी कर देते हों। आख़िर तंग आकर एक दिन पाल से कहा कि दरवाज़े बन्द कर जेमी को छोड़ दो। उस दिन उसने सामान तो सारा उथल-पुथल कर दिया, लेकिन चूहे चार मार दिये। जब दरवाज़े खोले तो दो भाग गये। अब उस दिन से शान्ति है। हर एक चीज़ को अपनी-अपनी जगह पर देखती हूँ तो चूहे याद आ जाते हैं, और चूहों के साथ जेमी। भुलाये भूलता भी तो नहीं। कई बार दिल को समझाती हूँ, लेकिन यह नहीं मानता। घड़ी-घड़ी वह याद आ जाता है।......

"कमबख़्त को ख़ुद अपने हाथों से नहलाया करती थी। एक बार जूएँ पड़ गईं। पता नहीं, किसी बाज़ारी कुत्ते के साथ फिरा-फिराया जो जूएँ चढ़ गईं। मंगल से कहा—'निरंजनी, ज़रा इसके बाल देखना। शाम को रेवड़ियाँ भी लेते जाना।' लेकिन उसने एक न सुनी। अंत में आप ही गरम पानी और नीम के साबुन से इसके बाल साफ़ किये, तेल लगाया और कँघी की। वरना ख़ारिश से बेहाल हो गया था।"

"बाबू जी, कहाँ उतरना है आपको? लोहारी दरवाज़े के अन्दर तो ताँगा जायगा नहीं।" ताँगेवाले के ये शब्द मेरे कानों में इतने ज़ोर से पड़े कि मैं चौंक पड़ा। उसी तरह जिस तरह कोई आदमी गहरी नींद में सोया पड़ा हो और एकाएक धमाके की आवाज़ से उठ पड़े। मैंने देखा कि ताँगा लोहारी के चौक में फलों की दूकानों के सामने खड़ा है। कहाँ बाँस-मंडी और कहाँ लोहारी का चौक। ताँगेवाले से अब क्या कहूँ कि तुम आगे निकल आये हो, हमें तो पीछे बाँस-मंडी में उतरना था। ऐसा कहूँगा तो क्या वह मुझे अक़्लमंद कहेगा? सभी लोग यह समझेंगे कि हज़रत सो रहे थे जो बाँस-मंडी से आगे निकल आये। लेकिन ताँगेवाले को ठहरने के लिए कहा नहीं। इस बेइज़्ज़ती से बचने के लिए मैंने सबको उतरने के लिए कहा। ताँगेवाले को पैसे दिये और उलटे चल पड़े। आध मील फ़ासले का जुर्माना दिया।

अनारकली में भीड़ थी। मोटरें और ताँगे बेशुमार थे। डर था कि कहीं अश्विन किसी के नीचे ही न आ जाय। गोद में उठाकर चलना पड़ा। बाँस-मंडी में पहुँच गये। ज्यों-ज्यों मकान नज़दीक होता जाता, त्यों-त्यों मुसीबत की सजीव मूर्त्ति अधिक भयप्रद मालूम देने लगी। दिल चाहता था कि अश्विन का बोझ उठाये हुए घंटों फिरता रहूँ, लेकिन मकान न आवे। इतने ही में अपने आपको पीले मकान के सामने पाया। बस प्राण सूख ही तो गये; काटो तो लहू नहीं। अब ऊपर कौन चढ़े? हिम्मत किसमें? भौजाई को आगे किया। पहले तो उन्होंने न की और कहा, देखो मर्द को आगे जाना चाहिए। पर मेरी ज़िद के सामने वे बहुत देर न ठहर सकीं। इसके बाद मैंने अश्विन को नीचे उतार उसकी मा के पीछे किया।

अब एक ख़याल आया कि नीचे से ही दफ़्तर को चल दूँ; शाम को लौटने पर जो होगा, देखा जायगा। फिर ख़याल आया कि नहीं, जेमी बेचारे की इन लोगों को ख़बर तो देनी चाहिए ताकि डाक्टर साहब किसी को इधर-उधर भेज सकें या और नहीं तो कम-से-कम थाने में रिपोर्ट तो कर सकें। सारी हिम्मत समेट कर सीढ़ी पर पाँव रक्खा। पैरों के साथ जैसे मनों भारी चक्की के पाट बँधे थे। फिर भी किसी तरह ऊपर पहुँच ही गया। आगे देखा तो जेमी साहब बैठक के सामने लेटे पड़े हैं। मुझे देखकर वह उठ बैठा और दुम हिलाने लगा। उधर से भौजाई ने सवाल किया—"जेमी तो बहुत देर का आया हुआ है। आप इतनी देर कहाँ रहे?"

मैं चुप। कुर्सी पर बैठ कर सोचने लगा। इतने में जेमी भी मेरे पास आ गया।

जीवन

लेखक, श्रीयुत व्यथितहृदय

पूछ रही हो जीवन क्या है, क्या मैं तुम्हें बताऊँ।
जान सका प्रिय, नहीं जिसे उसको कैसे समझाऊँ?॥
पूछ रही है प्रकृति, पूछते निशि में नभ के तारे।
पूछ रहे हैं जीवन क्या है, सरिता-कूल-किनारे॥
कंपित लहरें दौड़ रही हैं, किरणें थक-थक जातीं।
निशा-दिवा जागृति के रथ पर पथ पर आतीं-जातीं॥
अरुण रागवाली वह ऊषा नभ-खिड़की पर आती।
किंतु देखती नहीं वही क्या, संध्या बन सो जाती॥

× × ×

मत पूछो प्रिय जीवन क्या है, यह है गूढ़ कहानी।
प्रेम दया, करुणा जीवन की केवल स्वर्ण निशानी॥

इंग्लंड में विद्यार्थियों के छुट्टी के खेल और विनोद





[ईस्टबोर्न में समुद्र के किनारे बैंड का स्थान]





[गाँव का एक दूसरा दृश्य]

लेखक, श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

परीक्षा के समाप्त होते ही लन्दन से बाहर भागने की पड़ी। वाई० एम० सी० ए० के मंत्री मिस्टर पोन्सफ़ोर्ड ने ईस्टबोर्न के पास एक गाँव में कैम्प का प्रबन्ध किया था। दूसरे ही दिन सुबह हम लोग कैम्प के लिए रवाना हुए। ईस्टबोर्न इँग्लैंड के दक्षिण में समुद्र के किनारे एक बड़ा सुन्दर स्थान है। समुद्र के नहाने के लिए यहाँ हज़ारों लोग आते हैं। स्वास्थ्य के लिए भी यह जगह बहुत अच्छी समझी जाती है। हम लोग शहर में नहीं रहना चाहते थे, इसलिए पास ही एक सुन्दर गाँव में अपने डेरे खड़े किये। हमारा कैम्प एक ऊँचे स्थान पर था, जहाँ से दूर तक खेतों का दृश्य और समुद्र भी दिखलाई देता था। ऊँची-नीची भूमि पर हरी हरी घास और पेड़ बहुत ही सुहावने लगते थे।

इँग्लैंड में लोग अपना अवकाश का समय किस तरह विनोदपूर्वक व्यतीत करते हैं। इसका एक उदाहरण पाठकों को इस लेख में मिलेगा।

थोड़ा आराम करके हम लोगों ने समुद्र में स्नान करने का विचार किया। अपने अपने नहाने के कपड़े लेकर पैदल चल दिये। धूप काफ़ी तेज़ थी और दूर से समुद्र का पानी खूब चमक रहा था। यद्यपि हमारा स्थान ईस्टबोर्न से दूर था, तो भी यहाँ समुद्र-स्नान के प्रेमियों की भीड़ थी। सागर की लहरें किनारे के कंकड़ों पर ज़ोर ज़ोर से गिर रही थीं। कुछ दूर पर छोटे छोटे जहाज़ इधर-उधर जा रहे थे। किनारे पर बहुत-से स्त्री और पुरुष अपनी नहाने की पोशाक पहने सूर्य-स्नान कर रहे थे। कोई छाती के बल लेटा था, कोई पीठ के बल। स्त्रियाँ अपने पतले छातों के नीचे पड़ी थीं। पहले-पहल यह दृश्य बड़ा विचित्र लगा। स्त्री और पुरुष जिनकी देह का अधिकांश खुला था, बिलकुल पास पास लेटे हुए थे। लन्दन में तो बिना मोज़े पहने निकलना पाप समझा जाता है। घरों में भी ड्रेसिङ्ग गाउन पहनना बहुत ज़रूरी होता है। बिना टाई के खुले कालर की कमीज़ पहनना तक अनुचित समझा जाता है। लेकिन ये सब बातें समुद्र के किनारे लागू नहीं हैं। शरीर का जितना अधिक भाग खुला रहे, उतना ही अच्छा है। लोगों की खुली देह को देखकर बड़ा मनोरंजन होता है। कोई तो मोटे और बड़े पेटवाले, कोई पतले-दुबले और कोई सुगठित देहवाले—सभी प्रकार के लोग दिखलाई देते हैं। स्त्रियों की मोटी मोटी खुली टाँगें बड़ी विचित्र लगती हैं। नहाने के लिए बालों के ऊपर तंग टोपी बाँधकर तो उनकी सुन्दरता नाम के लिए भी नहीं रहती। स्त्री और पुरुष लगभग एक-से ही दिखलाई पड़ते हैं।

किनारे पर थोड़ी देर तक घूमने के बाद हम लोगों ने भी अपने कपड़े उतारकर नहाने की



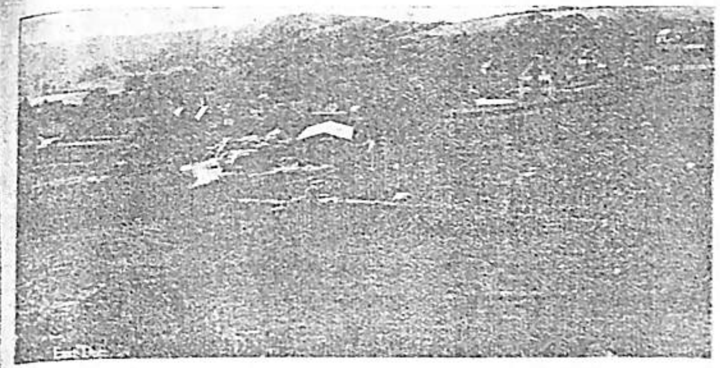
पोशाक पहनी और पानी में प्रवेश करना शुरू किया। पानी बहुत ही ठंडा था, और लहरें जोर जोर से चली आ रही थीं। समुद्र में नहाने का मेरा यह पहला अवसर था, कुछ भय मालूम हुआ। लेकिन सचमुच किसी नदी में नहाने की अपेक्षा समुद्र में नहाना कम खतरनाक है। किनारे पर डूबने की कोई आशंका नहीं होती, और लहरों के कारण देह ऊपर ही उठी रहती है। कुछ देर तैरने के बाद देह में गर्मी आगई, और ठंड का लगना कम हुआ। रबड़ के एक गेंद से आपस में खेलना शुरू किया। लेकिन जब मुँह में समुद्र का खारा पानी चला जाता तब सारा मजा बिगड़ जाता था।



[कैम्प में खाने की स्वतन्त्रता]

लगभग बीस मिनट के बाद हम लोग पानी के बाहर निकले। देह पोंछ कर धूप में लेटने की ठहरी। मैं भी सब लोगों की तरह छाती के बल लेटकर सूर्य-स्नान का मज़ा लेने लगा। लेकिन कुछ देर बाद तो मेरा सारा बदन जलने लगा। मैंने उठकर अपने कपड़े पहने और चट्टान के पास साया में जाकर बैठ गया। साथ के हिन्दुस्तानियों ने भी यही किया। लेकिन कुछ लोग तो बहुत देर तक पड़े ही रहे। और भी लोग समुद्र के किनारे बहुत दूर तक लेटे थे। कुछ लोगों की तो देह बिलकुल लाल होगई थी। न जाने ये लोग किस प्रकार इतनी देर तक सूर्य-स्नान या कहिए सूर्य-ताप का उपभोग करते रहते हैं? माना कि धूप स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होती है, लेकिन आखिर इसकी कुछ हद भी तो है। सच तो यह है कि यहाँ अगर एक बार कोई फ़ैशन चल जाता है तो उसको क़ाबू में रखना बहुत ही कठिन हो जाता है। फ़ैशन के पीछे ये लोग सब कुछ करने को तैयार हैं। जब धूप में पड़े पड़े इनकी देह लाल हो जाती है तब तेल और क्रीम लगाते हैं और पाउडर का व्यवहार करते हैं। यह सब भी फ़ैशन में शामिल है। यहाँ के लोगों में समुद्र-स्नान और सूर्य-स्नान की एक प्रकार की बीमारी-सी हो गई है। अखबारों और पत्रिकाओं में भाँति भाँति के मनोरंजक कार्टून इस विषय पर निकला करते हैं, लोगों का मज़ाक बनाया जाता है, लेकिन फ़ैशन में किसी प्रकार की कमी नज़र नहीं आती।

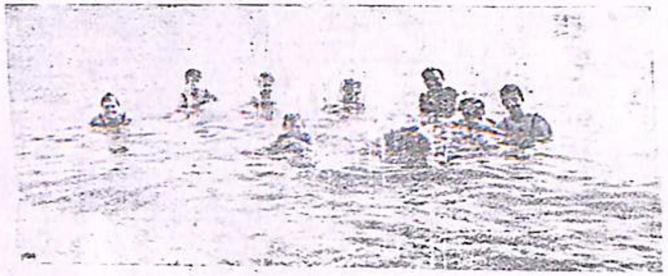
समुद्र से वापस आकर हम लोगों ने खुले में खाना खाया। अब कुछ बदली-सी होगई थी और ठंडी हवा बह रही थी। इँग्लैंड में पहली बार खुले मैदान में खाने का अवसर मिला। कुछ लोगों का विचार है कि यहाँ मांस खाये बिना काम नहीं चल सकता। लेकिन व्यक्तिगत अनुभव से मैं कह सकता हूँ कि लन्दन को छोड़कर बाहर गाँवों में भी आराम से निरामिष भोजन प्राप्त हो सकता है। रोटी, फल, दूध, आलू और कुछ हरी तरकारी सब जगह मिल सकती है। अगर कोई अंडा खाता हो तब तो किसी प्रकार की भी कठिनाई नहीं हो सकती। और लन्दन में तो अब इतने हिन्दुस्तानी रेस्टोरेन्ट हो गये हैं कि किसी भी प्रकार का भोजन मिल सकता है। पूड़ी, तरकारी, रोटी, दाल इत्यादि सब चीजें मिलती हैं। अँगरेज़ी घरों में भी रोटी, दाल, चावल, फल, आलू और कुछ तरकारी आसानी से प्राप्त हो सकती है। इसलिए जो लोग मांस नहीं खाना चाहते उनको इँग्लैंड में आने से डरने की कोई आवश्यकता नहीं है।



[ईस्ट डीन के गाँव का एक दृश्य]

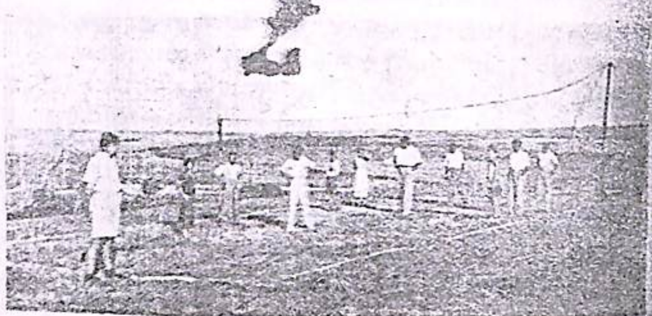
शाम को सब लोग गाँव की ओर चल पड़े। ईस्ट डीन नामक यह छोटा-सा गाँव था। कुल एक अच्छी दूकान थी जिसमें सब प्रकार की चीजें मिलती हैं। चाकलेट, शक्कर की रंगबिरंगी मिठाई और सिगरेटों के बिना तो यहाँ के लोगों का काम ही नहीं चल सकता। जो चीजें दूकान में नहीं होतीं वे शहर से मँगवा दी जाती हैं। इसी दूकान में एक तरफ़ डाकघर और टेलीफ़ोन भी था। गाँव में नल-द्वारा पानी का इन्तिज़ाम था, लेकिन बिजली की रोशनी न थी। लोग गैस से ही काम निकालते हैं। गाँव के पास से पक्की सड़क शहर की ओर जाती है, जिस पर बराबर मोटर-बसें आती-जाती रहती हैं। इसलिए गाँववालों को सवारी की किसी प्रकार की कठिनाई नहीं है। जैसा लगभग सभी गाँवों में होता है, यहाँ भी एक बहुत पुराना गिर्जा है। सभी मकान पक्के हैं, लेकिन कुछ घरों की छतें फूस की बनी हुई हैं। प्रत्येक मकान के सामने एक छोटा-सा बग़ीचा या केवल कुछ फूलों के पेड़ लगे हुए हैं। कुल गाँव बहुत साफ़ और सुन्दर है। यहाँ के ग़रीब से ग़रीब गाँववाले भी भारत के ग्रामीणों की अपेक्षा बहुत अमीर हैं। सबके पास कोट, पतलून, टोप और अन्य आवश्यक वस्तुएँ होती हैं। खाने के लिए भी अच्छा भोजन प्राप्त होता है। यदि किसी के पास केवल रोटी और मक्खन ही खाने को रह जाय, तो वह अपने को मरा हुआ ही समझता है। यहाँ के गाँवों में ग्रामोफ़ोन के सिवा कुछ रेडियो के सेट भी रहते हैं। इस गाँव में एक सुन्दर गेस्ट हाउस है, जहाँ बेतार के तार का समुचित प्रबन्ध है। टेनिस खेलने के लिए भी अच्छा इन्तिज़ाम है। इसी स्थान पर हम लोगों ने शाम को खाना खाया।

यहाँ के लोग ऊपर से तो सब चीज़ों को बड़ी सफ़ाई से रखते हैं—साफ़ कपड़े, साफ़ घर और सुन्दर बग़ीचा, सब जगह दिखलाई देते हैं, लेकिन शरीर की सफ़ाई में ये लोग बहुत पीछे हैं। शहर में गर्मी के दिनों में भी जब पसीना आ जाता है, लोग आम तौर पर हफ़्ते में एक ही बार नहाते हैं। गाँवों में तो शायद और भी कम नहाते होंगे। इनके नहाने का प्रबन्ध भी अच्छा नहीं है। टब को एक बार पानी से भर के उसी में साबुन लगाकर देह धोते हैं। मुँह, पैर इत्यादि सब उसी साबुन से मिले


[हम लोग समुद्र-स्नान कर रहे हैं]

पानी में धोये जाते हैं। टब से निकलते समय सतह पर तैरता हुआ साबुन बदन में लग जाता है और नहाना एक प्रकार से मिट्टी में मिल जाता है। हमारे देश में कम से कम नहाने का तरीक़ा तो इन लोगों से कहीं अच्छा है। संडास में पानी का व्यवहार न करने से भी इन लोगों में गन्दगी रहती है। हफ़्ते भर की मल की सफ़ाई उसी साबुन मिले हुए टब के पानी में होती है। पता नहीं, ये लोग इस प्रकार की गन्दगी कैसे सहते हैं! दाँत की सफ़ाई तो यहाँ कोई जानता ही नहीं। खाने के बाद कुल्ला करने की प्रथा ही नहीं है। भारत की तरह दातून का व्यवहार भी नहीं किया जाता। बहुत ही कम लोग पेस्ट और ब्रश का इस्तेमाल करते हैं! इसी लिए यहाँ के लोगों को दाँत की बीमारी बहुत हुआ करती है। बच्चों के दाँत शुरू से ही गन्दे और कमज़ोर हो जाते हैं। मुँह में बुरी बदबू आने लगती है। हिन्दुस्तानियों के सफ़ेद चमकते हुए दाँत देखकर इन लोगों को बड़ा आश्चर्य होता है। शायद ये लोग सोचते हैं कि सफ़ेद चमड़ेवाले मनुष्य ही साफ़ रह सकते हैं। गाँव के खेतों की ज़मीन बड़ी कँकड़ीली है, तो भी उसमें गेहूँ की खेती की जाती है। भारतवर्ष में तो ऐसी भूमि में किसी प्रकार की भी खेती नहीं की जाती। यहाँ लोगों के पास अच्छे हल हैं और ट्रेक्टर का व्यवहार करते हैं, अतएव पथरीली भूमि भी खेती के काम में लाई जा सकती है। घास के मैदानों में गायें और भेड़ें चर रही थीं। यहाँ की गायें यद्यपि भारत की गायों जैसी सुन्दर नहीं होतीं, तो भी दूध देने में पक्की होती हैं। उनका पिछला हिस्सा बहुत मोटा और मुँह बहुत पतला और छोटा होता है। गाँव में मकान एक-दूसरे से दूर दूर होते हैं। भारत की तरह पास पास घर न होने से सामाजिक जीवन का मज़ा यहाँ नहीं है। हाँ, जब कोई फ़ुटबाल या क्रिकेट का मैच होता है तब सब लोग अवश्य एकत्र होते हैं।

दूसरे दिन हम लोग ईस्टबोर्न शहर गये। यहाँ का विशेष सौन्दर्य समुद्र के किनारे ही है। दूर तक किनारा पक्का बना हुआ है और लोगों के नहाने और बैठने का समुचित प्रबन्ध है। शाम को यहाँ


[हम लोग वोली-बॉल खेल रहे हैं]

बड़ी रौनक़ रहती है। जनता के मनोरंजन के लिए एक बड़े अच्छे बैंड का भी इन्तिज़ाम है। लेकिन सबसे अच्छा स्थान पियर के ऊपर है, जहाँ ठंडी ठंडी हवा बराबर चलती रहती है। समुद्र के ऊपर कुछ दूर तक एक पुल बाँधा गया है और जनता के विनोद के लिए उस पर भिन्न भिन्न प्रकार की मशीनें लगाई गई हैं। शाम को बहुत-से लोग इस पियर के ऊपर घूमते हैं और मशीनों-द्वारा अपना भाग्य आज़माते हैं। एक मशीन में एक पेनी डालने से हाथ की रेखाओं का अर्थ मिलता था, दूसरी मशीन में चरित्र बतलाया जाता था। मेरे एक मित्र ने एक पेनी डाली और उनके चरित्र का एक कार्ड उसमें से निकला। उनका पहला वाक्य था—"तुम बड़े ही बदमाश हो!" यह देखकर हम सब लोग ख़ूब ही हँसे। और लोगों ने भी एक एक पेनी डाली। सबके भिन्न भिन्न चरित्र-वर्णन निकले। अन्त में मैंने भी एक पेनी डाल ही दी। भाग्य से कार्ड में कोई विशेष बुरी बात नहीं निकली। इसी प्रकार की मशीनें बहुत-सी थीं। सचमुच बड़ा विनोद और मनोरंजन होता है।

हमारा कैम्प एक हफ़्ते तक रहा। इम्तिहान के बाद मैंने तो ख़ूब ही मज़ा किया। चिन्ता रहित होकर ख़ूब खेला, नहाया, खाया और घूमा। सब लोग वोली-बॉल खेलकर हर रोज़ समुद्र-स्नान के लिए जाते और फिर शाम को घूमने चलते थे। एक दिन पास ही एक नदी में नौका-खेवाई की। नदी छोटी ही थी, किन्तु दोनों ओर बड़ा सुहावना था। पास ही गाँव में चढ़ने के घोड़े भी किराये पर मिलते थे। कुछ लोगों ने एक दिन घोड़-सवारी का भी आनन्द लिया। भारतवर्ष में भी यदि इस प्रकार के कैम्प विद्यार्थी लोग किया करें तो बड़ा ही अच्छा हो। कुछ अधिक ख़र्च भी नहीं होता और समय अच्छी तरह बीतता है। छुट्टियों में घर पर पड़े पड़े सोने से तो कैम्प-जीवन कहीं अच्छा है।

मूर्ति में अमूर्त

लेखक, श्रीयुत हरिकृष्ण 'प्रेमी'

सीमा का घूँघट कर आती,
अयि असीम, ज्यों घन में [illegible]
अखिल विश्व का मन [illegible]
यह गोपन का गोरखधंधा [illegible]

तिल की ओट, तरुणि, तुम अपनी
क्यों 'विराटता' ढक लेती हो।
काया के कारागृह की तुम
आँखें बंदिनि कर देती हो;

प्रिये, 'रूप' की धूप छाँह का
मत 'अरूप' पर पर्दा डालो।
कहो मूर्ति, "मुझमें अमूर्त है,
आँखें हों तो दर्शन पा लो"।

हदीस

लेखक, श्रीयुत महेशप्रसाद मौलवी आलिम फ़ाज़िल



कोई ऐसी बात जिसका कभी कभी, हज़रत मुहम्मद से सीधा सम्बन्ध रहा हो इस्लाम में हदीस के नाम से पुकारी जायगी। हदीसों की गिनती नहीं है फिर भी उनके कई संग्रह मिलते हैं। इस लेख में विद्वान् लेखक ने हदीसों के बारे में बहुत-सी ज्ञातव्य बातें बतलाई हैं।

(१)

इस्लाम में क़ुरान के पश्चात धार्मिक दृष्टि से हदीस को उच्च पद प्राप्त है। हदीस अरबी का शब्द है और इसका साधारण अर्थ है 'बात' अथवा 'नई बात'। परन्तु इसकी विशेष परिभाषा यह है—'वह बात जो हज़रत मुहम्मद ने की हो, कही हो अथवा वह कथन या कार्य जिसको हज़रत ने सुना या देखा हो और उसको अनुचित न बतलाया हो या यह कि उसको अच्छा ही समझा हो।'

वह बात जिसको हज़रत ने स्वयं कार्यरूप में किया है' 'हदीस फ़ेली' कहलाती है। जो बात उन्होंने कही है उसे 'हदीस क़ौली' कहते हैं और 'हदीस तक़रीरी' अर्थात 'निर्धारित बात' ऐसे कथन या कार्य को कहते हैं जिसको हज़रत ने केवल सुना या देखा था, किन्तु जिसको अनुचित नहीं ठहराया था।

अरबी में हदीस के पर्यायरूप में 'ख़बर', 'असर' और 'सुन्नत' शब्दों का प्रयोग हुआ है, किन्तु कुछ विद्वानों के मतानुसार इन समस्त शब्दों के अर्थ में थोड़ा थोड़ा मतभेद है। हदीस-शब्द का बहुवचन—अहादीस है। मुसलमान लोग मानते हैं कि जिस समय हज़रत मुहम्मद रसूल अर्थात ईश्वरीय दूत बनाये गये थे उस समय उनकी आयु ४० वर्ष की थी। इस घटना के पश्चात ये लगभग २३ वर्ष तक जीवित रहे थे। इस काल में नाना प्रकार की बातों का सम्बन्ध उनके जीवन के साथ था, इस कारण इस इतने बड़े काल की 'बातें' (हदीसें) संख्या में बहुत ज्यादा हैं।

(२)

समस्त हदीसों का सम्पादन तथा संग्रह बहुत लोगों ने किया है, जिनमें से प्रसिद्ध लोग ये हैं—

(१) क़ाज़ी अबूबकर बिन ख़रम मदीना नगर में गवर्नर थे। इन्होंने ही पहले-पहल बहुत-सी हदीसों* को एकत्र किया था, किन्तु इनकी कीर्ति इस विषय में इतनी अधिक नहीं है जितनी बाद के लोगों की है। इसका मूल-कारण शायद यह हो कि जैसी छान-बीन बाद के लोगों ने हदीसों के विषय में की थी, वैसी छान-बीन इन्होंने नहीं की थी। इनका देहान्त सन १०० हिजरी (सन ७१८ ई०) में हुआ था।

(२) इमाम मालिक-द्वारा जमा की हुई हदीसें एक हज़ार सत्ताईस हैं। इनके ग्रन्थ का नाम 'मोअत्ता' (सुसज्जित किया हुआ) है। ये सन् ९५ हिजरी (सन ७११ ई०) में मदीना नगर में पैदा हुए थे और ८४ वर्ष की आयु पाकर सन् १७९ हिजरी (सन ७९५ ई०) में स्वर्ग-लोक सिधारे थे।

(३) अबू मुहम्मद अब्दुल्ला बिन अब्दुर्रहमान समरक़न्दी की पुस्तक का नाम 'दारमी' है। ये सन् १८३ हिजरी (सन ७९९ ई०) में पैदा हुए थे और सन ८६८ ईसवी में मरे थे।

(४) अबू अब्दुल्ला मुहम्मद बिन इस्माईल प्रायः इमाम बोख़ारी के नाम से विख्यात हैं। ये सन ८०९ ईसवी में बोख़ारा में पैदा हुए थे। इन्होंने १६ वर्ष परिश्रम करके छः लाख हदीसें एकत्र की थीं, जिनमें से लगभग चार हज़ार हदीसों को इन्होंने ठीक समझा और उनको विषयानुसार क्रम से अपने ग्रन्थ में जमा किया, जो 'सहीह बोख़ारी' के नाम से प्रसिद्ध है। हदीस के समस्त ग्रन्थों में इनका यह ग्रन्थ सबसे अधिक माननीय है। इनका देहान्त सन ८६९ ईसवी में हुआ है।

(५) अबुल हुसैन मुस्लिम बिन हज्जाज प्रायः 'इमाम मुस्लिम' के नाम से विख्यात हैं। ये सन ८१९ ईसवी में नीशापुर (ईरान) में पैदा हुए थे, इन्होंने तीन लाख हदीसें एकत्र की थीं, जिनमें से बारह हज़ार को ठीक समझकर अपने ग्रन्थ में लिखा था जो 'सहीह मुस्लिम' के नाम से विख्यात है और जिसका पद 'सहीह बोख़ारी' के बाद है। इन दोनों को ही सुन्नी मुसलमान अधिक शुद्ध मानते हैं। इस कारण दोनों का एक संयुक्त नाम 'सहीहैन' है। इमाम मुस्लिम का देहान्त सन ८७४ ईसवी में हुआ था।

(६) इमाम अबू दाऊद सुलेमान बिन अशअस सन ८१७ ईसवी में सीस्तान (ईरान) में पैदा हुए थे। इन्होंने पाँच लाख हदीसें एकत्र की थीं, जिनमें से केवल चार हज़ार आठ सौ हदीसों का एक संग्रह तैयार किया था, जो 'सुनन अबू दाऊद' के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ लोगों का मत है कि 'सहीह मुस्लिम' के पश्चात इसी ग्रन्थ का पद है। इसके सम्पादक का देहान्त सन ८८८ ईसवी में हुआ था।

(७) अबू ईसा मुहम्मद बिन ईसा का जन्म तिर्मिज़ नामी स्थान* में सन् ८२४ ईसवी में हुआ था। ये इमाम बोख़ारी के शिष्य थे। इनका ग्रन्थ 'जामे तिर्मिज़ी' के नाम से विख्यात है। इनका देहान्त सन ८२४ ईसवी में हुआ था। कुछ लोगों का मत है कि 'सहीह मुस्लिम' के पश्चात 'सुनन अबू दाऊद' का नहीं, बल्कि 'जामे तिर्मिज़ी' का पद है।

(८) इमाम अबू अब्दुर्रहमान अहमद बिन शुऐब का जन्म नसा नामक स्थान (ईरान) में सन् ८२९ ईसवी में हुआ था। इनके ग्रन्थ का नाम 'सुनन अब्दुर्रहमान नसाई' है। इनकी मृत्यु ९१५ ईसवी में हुई थी।

(९) इमाम अबू अब्दुल्ला मुहम्मद बिन यज़ीद इब्न माजा का जन्मस्थान क़ज़वीन (ईरान) है। इनके ग्रन्थ में चार हज़ार हदीसें हैं। इनके जन्म का समय सन ८२४ ईसवी और मृत्यु का सन् ८८६ ईसवी है। उक्त समस्त ग्रन्थकारों के ग्रन्थों में से केवल छः को 'सेहाह सित्तः' अर्थात 'विशुद्ध छः' कहते हैं और ज़्यादातर उन्हीं को लोग मानते हैं। इनमें से नंबर ४, ५, ६, ७ और ८ अर्थात् इन पाँचों को सभी लोग उत्तम समझते हैं, किन्तु कुछ लोगों की दृष्टि में विशुद्ध छठा ग्रन्थ नं० ९ है और कुछ लोगों के विचार से नं० ३ है।

(३)

इन समस्त ग्रन्थों में अनेक हदीसें ऐसी हैं जो कई ग्रन्थों में पाई जाती हैं, यद्यपि प्रत्येक ग्रन्थ के सम्पादक ने स्वतंत्रता के साथ एक-दूसरे से पृथक् रहकर काम किया है। समस्त लेखकों के जन्म-स्थान, जन्मकाल तथा मृत्युकाल से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनेक लेखक अरब के बाहर के थे और सब लोगों का जन्म हज़रत मुहम्मद की मृत्यु (सन् ६३२ ई०) के समय से बहुत दिन बाद हुआ

* इन्होंने कितनी हदीसें एकत्र की थीं, इसका पता ठीक ठीक नहीं लग सका।

*यह स्थान जेहूँ नदी के निकट पूर्वीय तुर्किस्तान में है।

था। अनेक लोगों ने अपना बड़प्पन प्रकट करने के विचार से बहुत-सी बातें झूठ-मूठ गढ़ ली थीं और उनका सम्बन्ध हज़रत के साथ बतलाया था। ऐसी हालत में दूध का दूध और पानी का पानी करना कठिन काम था। यही कारण है कि कुछ लोगों ने लाखों हदीसें एकत्र कीं, परन्तु उनमें से बहुत कम को ही ठीक माना और उन सभों का विषयानुसार सम्पादन किया।

यहाँ एक हदीस का अर्थ दिया जा रहा है—

"हमको* बतलाया मुहम्मद के पुत्र अब्दुल्ला ने और उस (अब्दुल्ला) ने कहा कि हमको क़ासिम के पुत्र हाशिम ने बतलाया और उस (हाशिम) ने कहा कि हमको शैबान अबू मोआविया ने बतलाया और उससे कहा अलाक़ा के पुत्र ज़याद ने और उनसे कहा शोबा के पुत्र मुग़ीरा ने कि हज़रत मुहम्मद के समय में सूर्य्य-ग्रहण लगा और उन्हीं दिन हज़रत के पुत्र इब्राहीम का देहान्त हो चुका था। इस पर लोगों ने कहा कि इब्राहीम की मृत्यु के कारण सूर्य्य-ग्रहण लगा है। इस पर हज़रत ने कहा कि वास्तव में सूर्य्य व चन्द्र-ग्रहण किसी के मरने व जीने के कारण नहीं लगा करते सो जब तुम ग्रहण देखा करो तो नमाज़ पढ़ा करो और प्रार्थना किया करो।"

इस अनुवाद से स्पष्ट है कि असल हदीसें किस किसके पास से होकर लेखक तक पहुँची हैं और इनमें से प्रत्येक वर्णनकर्ता का हाल अर्थात् उसकी सचाई-झुठाई की छान-बीन के हेतु लेखक को कितना कष्ट उठाना पड़ा होगा। निदान ज्ञात रहे कि जिस हदीस के वर्णनकर्ता सत्यवादी तथा आचार-विचार के ठीक थे और जो हदीस भी क़ुरान के बतलाये हुए धर्म के अनुकूल थी वही ठीक मानी गई है। यदि वह ठीक बात नहीं है अथवा उसके वर्णनकर्ता में कुछ त्रुटि पाई गई तो वह हदीस कमज़ोर अथवा अविश्वसनीय मानी गई है।

प्रत्येक वर्णनकर्ता के नाम से प्रत्येक हदीस बहुत बढ़ जाती है, इसलिए वर्णनकर्ताओं का नाम उड़ाकर अर्थात् केवल असल हदीस को सम्मुख कर कुछ लोगों ने हदीसों का संक्षेप किया है अथवा यह कि उनको छाँट छाँट कर नये ग्रन्थ रच दिये हैं। परन्तु साथ ही साथ यह भी ज्ञात रहे कि हदीस के बड़े बड़े ग्रन्थों की बड़ी बड़ी टीकायें भी लिखी गई हैं और उनके पठन-पाठन की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है।

जो हदीसें क़ौली हैं अर्थात् जो मुहम्मद साहब के कथन हैं वे सर्वथा अथवा प्रायः उन्हीं शब्दों में हैं जिन शब्दों में हज़रत ने उन्हें कहा है, किन्तु जो अन्य श्रेणियों की हदीसें हैं उनके शब्द अवश्य दूसरों के हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि हज़रत मुहम्मद के वचन धार्मिक दृष्टि से बहुत आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं, किन्तु ये वचन साहित्यिक दृष्टि से भी कुछ कम उच्च पद नहीं रखते। इसके सिवा यह भी ज्ञात रहे कि हदीसों से क़ुरान की टीका तथा टिप्पणी करने में बहुत मदद ली जाती है, मुहम्मद साहब के जीवन पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है और अन्य अनेक घटनाओं के सम्बन्ध में बहुत-सा ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

हदीसों के विषय में ऊपर जो कुछ लिखा गया है वह सुन्नी मुसलमानों के मत के अनुसार है। शिया मुसलमान हदीस के उन ग्रन्थों को पूर्णतया ठीक नहीं मानते जिनको सुन्नी मानते हैं। शिया लोग केवल थोड़े से विशेष लोगों की बतलाई हुई हदीसों को ही ठीक मानते हैं और ऐसी हदीसों को मानते हैं जो क़ुरान में आई हुई बातों के अनुकूल हैं।

---

* यह संकेत हदीस के लेखक इमाम बोख़ारी की ओर है। देखो 'सहीह बोख़ारी' मिस्र का संस्करण, भाग प्रथम, पृष्ठ १२०।



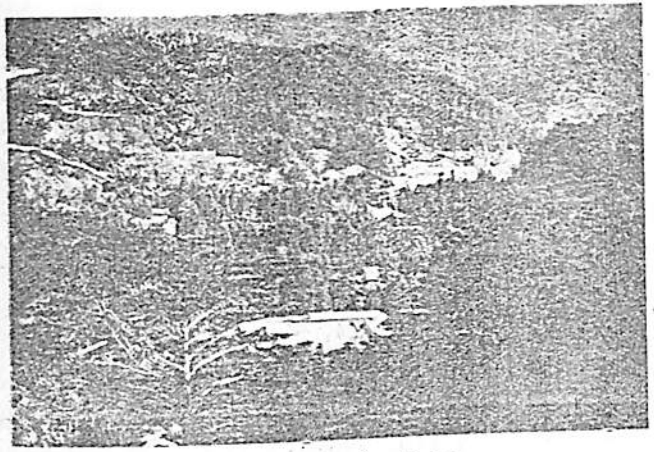
[तीर्थ-यात्री]

लेखक, श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन

कोयासान् जापान में बौद्धों के शिङ्-गोन-सम्प्रदाय का एक बहुत बड़ा विहार है। इसके अन्तर्गत १२ हज़ार से अधिक मंदिर हैं। इस लेख में श्रीयुत राहुल जी ने इसी विहार का वर्णन किया है।

४ अगस्त को क्योतो की यात्रा समाप्त कर एक बजे स्टेशन पर पहुँचे। हमारे चिर-सहचर श्री शकाकिबारा का यहीं से साथ छूटनेवाला था। ट्रेन के बारे में पूछताँछ करने पर मालूम हुआ, तोक्यो के लिए टिकट के रास्ते से जाने पर गाड़ी को कई जगह बदलना होगा और हमारे जैसे सौ जापानी शब्दों के पंडित के लिए यह छोटी समस्या न थी। अन्त में शकाकिबारा की सलाह हुई, ओसाका होते चलें, वहाँ तक साथ रहेगा। हम टिकट के आफ़िस में गये और एक मिनट के भीतर हमारा टिकट लौटाकर नक़द पैसे मिल गये। (मुक़ाबिला कीजिए भारतीय रेलों से)। तोक्यो से मंचोली (सोवियट-मंचूरिया-सीमा) तक का टिकट लिया। स्टेशन से टेक्सी करके हम बिजली की रेल से नम्बा-स्टेशन पर पहुँचे। रिटर्न टिकट ले लिया। शकाकिबारा ने ट्रेन पर बैठा दिया और कहा, यही ट्रेन सीधी कोयासान्—केबलकार स्टेशन तक जायगी। फिर १५ मिनट केबलकार से सीधी चढ़ाई चढ़नी होगी और तब बाहर सवारी लेकर मित्र्यो हेन्-मठ में मोतुहारा सान् के पास चले जाइएगा।

गाड़ी पर बैठ जाने के बाद मैंने देखा कि शकाकिबारा का चेहरा उतर गया है। मेरे हृदय में भी कुछ एकान्तपन का अनुभव होता था। शकाकिबारा का परिचय ३ वर्ष पूर्व जर्मनी में हुआ था और इधर जापान पहुँचने पर पहले एक मास तक उनका ही अतिथि रहा। बाद भी रहने का आग्रह कर रहे थे, किन्तु दूसरे मित्र को संस्कृत के एक अनुवाद में सहायता देने के लिए मुझे गाँव में रहना पड़ा। अब इधर फिर दो सप्ताह साथ रहा। शकाकिबारा के विषय में इतना ही कहना चाहता हूँ कि यदि एक सौ जापानी पुरुषों ने भी मेरे साथ अभद्रता का



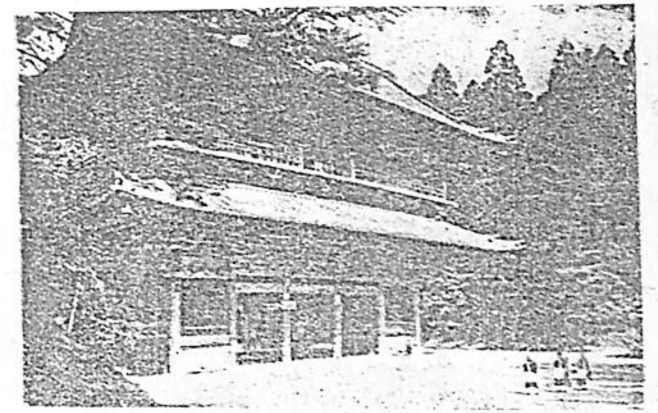
[प्राकृतिक दृश्य (गर्मी)]

बर्ताव किया होता और मुझे सिर्फ़ एक शकाकिबारा के साथ कुछ समय रहना पड़ता तो मेरी जापान के प्रति सारी बुरी धारणा लुप्त हो जाती। शकाकिबारा की उम्र ३३-३४ वर्ष की है। प्राइमरी शिक्षा के बाद वे बौद्ध पुरोहित बनने की तैयारी करने लगे। वह शिक्षा पा ही रहे थे कि १९२३ का भूकम्प आया। उनकी कार्यतत्परता को देखकर भूकम्प-सहायता का काम करने के लिए उनके सम्प्रदाय के प्रधान केन्द्र (कोशो जी, क्योतो) ने उन्हें तोक्यो भेजा। उनके कार्य से लोग इतना सन्तुष्ट हुए कि उनसे तोक्यो में एक मन्दिर बनाकर रहने का आग्रह करने लगे। उन्होंने नका-ओकाची माची में दस हज़ार येन् (उस समय के तेरह हज़ार रुपये) की ज़मीन ख़रीदी, और क़रीब उतना ही और लगाकर मन्दिर बनवाया। जापान में दिन में कालेज या हाई स्कूल में न पढ़ सकनेवालों के लिए रात में पढ़ने का सुन्दर प्रबन्ध है। शकाकिबारा ने रात्रि-कालेज में ही शिक्षा प्राप्त की थी। मंदिर का काम समाप्त कर १९३२ में विशेष अध्ययन के लिए वे जर्मनी चले गये थे। वहाँ से दो वर्ष बाद स्वदेश लौटे हैं। इस संक्षिप्त कथा से मालूम होगा कि शकाकिबारा कठिनाइयों का सामना करते हुए आगे बढ़े हैं, अतएव ऐसे आदमी में विशेषता होनी ही चाहिए।

आख़िर हमारी गाड़ी ने सीटी दी। 'सायोनारा' (विदाई का अभिवादन) कर हम एक-दूसरे से अलग हुए। बिजली की रेल के स्टेशन क़रीब क़रीब होते हैं। दो-तीन स्टेशनों के बाद गाँव आ गये। जहाँ-तहाँ बरेंदि-से छोटे छोटे खपरैलवाले मकान, दूर तक फैले हरे-भरे धान के खेत। खेतों में पानी की नहरें भी हैं, और कहीं कहीं पानी को ऊपर उठाने के लिए हवा से चलनेवाले रहट लगे हैं। सड़क के किनारेवाले खेतों में मोटे मोटे अक्षरों में कितने ही साइनबोर्ड लगे हैं। विज्ञापनबाज़ी से किसानों के झोपड़ों की छतें तक नहीं बची हैं। प्रायः पौन घंटा चलने पर हम पहाड़ में घुसे, किन्तु यहाँ बड़े पहाड़ नहीं हैं। हाँ, रेल की सुरंगें काफ़ी हैं। इतनी सुरंगोंवाली रेलवे लाइन कैसे कोई प्राइवेट कम्पनी एक वाणिज्यरहित स्थान के लिए निकालेगी, हम तो इसी विचार में पड़े थे। हाशीमोतो-जंक्शन से अब हम बड़े पहाड़ की ओर चले। यहाँ का पार्वत्य दृश्य देखने से मालूम होता था कि हम कलिम्पोङ् के आस-पास हिमालय में चल रहे हैं। फूसवाले घरों की छतें तो बिलकुल नैपाल-सी मालूम होती थीं। धानों के खेत नीचे से ऊपर सीढ़ी की भाँति वैसे ही चले गये थे। किन्तु एक ख़ास बात थी! हर जगह बिजली के तार के खम्भे थे। कहीं कहीं तो तारों का पिंजड़ा-सा बन गया था। कई दिनों से वर्षा न होने के कारण आज बहुत गर्मी थी। गर्मी के दिनों में छड़ी-छाता भले ही भूल जायँ, किन्तु कोई जापानी मुड़नेवाली पंखी नहीं भूल सकता। इन पंखियों में भी ज़नाना-मर्दाना भेद रहता है। आज ही नम्बा-स्टेशन पर शकाकिबारा के मित्र की स्त्री ने अपनी पंखी भेंट करनी चाही, और इस गर्मी में हम भी इनकार करने के लिए तैयार न थे, किन्तु मालूम हुआ, इस भेंट को हम बक्स में रख भर सकते हैं, इस्तेमाल नहीं कर सकते। ख़ैर, शकाकिबारा ने अपनी पंखी दी, और उसने बहुत सहायता पहुँचाई।

आजकल गर्मी का दिन है, बहुत-से स्कूल के लड़के तथा दूसरे यात्री जापान के दार्जिलिंग और बदरीनाथ—कोयासान् की यात्रा कर रहे हैं। वसन्त में कोयासान् फूलों से ढँक जाता है। उस वक़्त इस पर्वत-स्थली के दर्शनार्थ और भी अधिक यात्री आते हैं। प्रतिवर्ष दस लाख तीर्थाटक कोयासान् पहुँचते हैं। यद्यपि यह पर्वत समुद्रतल से २,८५८ फ़ुट ही ऊँचा है, तथापि भूमध्यरेखा से ३४ डिग्री से अधिक उत्तर होने से वह हिमालय के छः हज़ार फ़ुट के बराबर ठंडा है। इसकी हरियाली को देखकर मुझे बार बार शिकम के पहाड़ याद आते थे।

पाँच बजे हम अपनी ट्रेन के अन्त पर पहुँचे। दस क़दम चढ़कर केबलकार का स्टेशन आया। केबलकार और दूसरी रेलों में इतना ही फ़र्क़ है कि इसके खींचने में लाइन के दोनों लोहों के बीच में लोहे का मोटा रस्सा (केबल) लगा रहता है, जो बिजली के ज़ोर से चक्के पर होकर ऊपर की ओर खींचा जाता है। चढ़ाई इतनी सीधी थी, जिसे हमारे लड़कपन के अध्यापक बाबू पत्तरसिंह के शब्दों में कह सकते हैं कि 'ऊपर ताकने पर टोपी गिर जाय'। यहाँ अब न कोई गाँव दिखाई पड़ता था और न अधिक घर। अपनी गाड़ी और लाइन का खयाल छोड़ देने पर मालूम होता था, हम जापान में नहीं, हिमालय में आ गये हैं। चारों ओर जिधर देखिए, उधर सदा हरित विशाल-देवदार किसी विशाल शिवालय के शिखर की तरह खड़े हैं। यदि कहीं थोड़ी-सी भी भूमि वनस्पति-शून्य है तो वह पर्वत के सौंदर्य को बढ़ाने के लिए।



[दाई-मोन (महान् द्वार)]

पक्षियों के कलरव और कीट-भृङ्ग की गुनगुनाहट बहुत मधुर मालूम होती थी।

ट्रेन से उतरकर बाहर जाते ही दो-तीन मोटर-बसें खड़ी मिलीं। १० सेन् (पाँच पैसे) दे हम एक बस पर बैठ गये, और चन्द मिनटों में न्योनिन्-दो (महिला-द्वार) पहुँच गये। १८७२ ईसवी से पहले स्त्रियाँ यहीं तक आ सकती थीं। यहीं से उन्हें देवालयों के शिखरों के दर्शन होते थे, आगे उनका जाना निषिद्ध था। इसी लिए इस द्वार का महिला-द्वार नाम पड़ा। फाटक पर एक लेखक रहता है, जो यात्री का नाम-धाम लिखता है। कोयासान् की आबादी ३५०० (८०० साधु) है। किन्तु यहाँ कोई ठहरने का होटल नहीं है; ठहरने का प्रबन्ध मठों की ओर से अच्छे होटल से भी बढ़कर है। फाटक का आदमी आपको साथी देगा, जो ले जाकर आपको आपके ठहरने की जगह पर पहुँचा देगा। हमारे पास शिन्-नो-इन विहार के अधिपति भिक्षु मीज़ूहारा के लिए चिट्ठी थी, इसलिए हमें वहाँ पहुँचाने के लिए आदमी मिल गया।

तार पहले से ही पहुँच चुका था, इसलिए पहुँचते ही स्वच्छ सीतलपाटियाँ बिछे तथा तीन सौ वर्ष पुराने सुन्दर चित्रफलकों से अलंकृत कमरे में जगह दी गई।



[कोबोदाइशी (७७४-८३५ ई०)]

बैठने के साथ पानी में उबला अर्थात् गर्म तौलिया मुँह हाथ पोंछने के लिए आ गया और थोड़ी ही देर में पीत वस्त्र-धारी भिक्षु मीज़ूहारा साहब भी आ गये। आप कोयासान् के आठ सौ भिक्षुओं में बड़े प्रतिष्ठित साधु हैं। भिक्षु-नियमों के पालन का भी आपको बहुत ध्यान रहता है, इसलिए घर के भीतर प्रायः भिक्षुओं के पुराने पीले वेष में ही रहा करते हैं। हमारे मेज़बान को जापानी के अतिरिक्त किसी दूसरी भाषा का कोई एक शब्द नहीं मालूम था, इसलिए हमने अपने जापानी और शब्दों के कोष से काम चलाया। रात को यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि यहाँ क्योतो जैसी मच्छरों की आफ़त नहीं।

कोयासान् का माहात्म्य भारतीयों को समझाने के लिए कुछ विशेष लिखने की आवश्यकता है। कोयासान्-विहार के संस्थापक कोबोदाइशी का जन्म ७७४ ईसवी में एक संभ्रान्त वंश में हुआ था। बचपन से ही वे बड़े मेधावी थे। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। वे अच्छे दार्शनिक, सुन्दर लेखक, दक्ष चित्रकार तथा मूर्तिकार और पक्के साधक थे। वैसी सर्वतोमुखी प्रतिभा के पुरुष जापान में कम हुए हैं। ८०४ ईसवी में वे अध्ययनार्थ चीन गये। वहाँ से लौटने पर राजधानी क्योतो में उनका बड़ा सम्मान हुआ। जब उन्हें अपने मठ के बनाने की आवश्यकता हुई तब क्योतो राजधानी के आस-पास की जगह न पसंद कर उन्होंने अपने लिए अनुकूल स्थान खोजना शुरू किया। कहते हैं, जब वे कोयासान् की जड़ में आये तब पास के देवता ने शिकारी का रूप धारण कर काले और सफ़ेद दो कुत्तों के साथ उन्हें रास्ता बतलाया। पहाड़ के ऊपर अपेक्षाकृत चौरस तथा देवदार से हरी-भरी उपत्यका को देख वहीं उनका मन लग गया और उन्होंने वहाँ अपने मठ की स्थापना की। ८३५ ईसवी में देहान्त होने पर उनका शरीर भी वहीं ओकुनो-इन् में



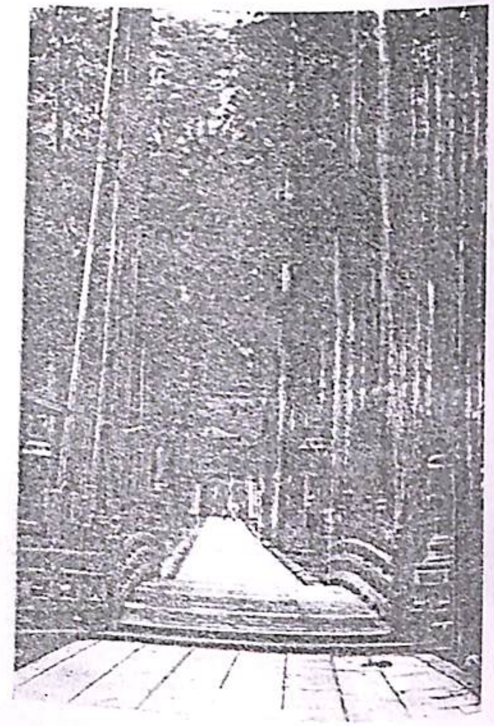
[बाबू आनन्दमोहन जी]

रक्खा गया। तब से कोयासान् उनके शिङ्-योन्-सम्प्रदाय का केन्द्र बन गया। आजकल भी कोबोदाइशी के अनुयायियों की संख्या नवासी लाख के क़रीब है, और उनके मंदिर बारह हज़ार से अधिक हैं। मंत्र और पूजा का मान्य करने से जापान के इस सम्प्रदाय के भिक्षुओं को कुछ संस्कृत-मंत्र तथा सातवीं शताब्दी में प्रचलित उत्तरी भारत की लिपि को ज़रूर सीखना पड़ता है।

५ अगस्त को जल-पान के बाद श्री मीज़ूहारा के साथ हम दर्शनार्थ निकले। दो मील से अधिक दूर तक फैले इस संघाराम में सौ से ऊपर मठ हैं। हर एक मठ में कितने ही पुराने कलाकारों के चित्र या मूर्तियाँ हैं। कितने ही पुरानी स्मृतियों से युक्त आवास हैं, किन्तु उनको देखने के लिए महीनों चाहिए। इसलिए हमें प्रधान प्रधान स्थानों को देखकर ही संतोष करना था। पहाड़ पर देवदार वृक्षों के नीचे स्थापित लाल स्तूप को देखते हुए हम दाइतो (महास्तूप) के पास गये। इस स्तूप को पहले-पहल कोबोदाइशी ने बनाया था, किन्तु काठ का होने से इसमें कई बार आग लगी, और कई बार इसका पुनर्निर्माण हुआ। ११४९ ईसवी में शोगुन (ताइरानो) कियोमोरी ने इसका पुनर्निर्माण कराया और अपने रक्त से लिखित मंडल-चित्र को इसमें स्थापित किया। वह चित्र आज भी वहाँ के म्यूज़ियम में सुरक्षित है। १६० फुट ऊँचा यह स्तूप कोयासान् की अत्यन्त भव्य इमारतों में है। कुछ वर्ष पूर्व यह आग से जल गया था, अभी पुनर्निर्माण का काम समाप्त नहीं हुआ।

पास में ही मिएइदो है। इसमें राजकुमार शिन्न्यो-द्वारा अंकित कोबोदाइशी का चित्र है। राजकुमार कोबोदाइशी के दस प्रधान शिष्यों में थे। इस चित्र को उन्होंने अपने गुरु की मृत्यु से ६ दिन पूर्व समाप्त किया था। कहावत है कि इस चित्र की आँखों पर कोबोदाइशी ने स्वयं तूलिका फेरी थी।

कुछ दूर पर इसी हाते में कुन्दो विहार है। इसे भी कोबोदाइशी ने बनाया था, किन्तु मूल-विहार कई बार आग से जला और नया बना है। पिछले वर्ष संस्थापक के निर्वाण की एकादश शताब्दी मनाई गई

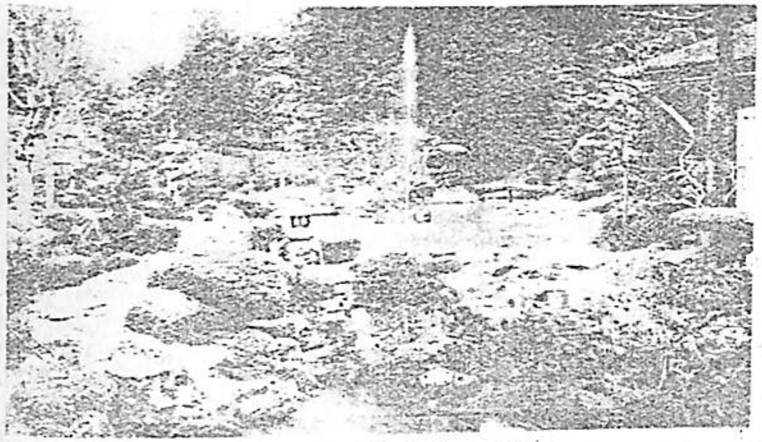


[ओकुनो-इन्]

थी, उसी समय सीमेंट निर्मित नई इमारत तैयार हुई।

हाते से बाहर किन्तु थोड़ी ही दूर पर रेइहोकान् (संग्रहालय) है। इसमें पाँच हज़ार मूर्तियाँ, चित्रपट तथा दूसरी चीज़ें संगृहीत हैं। इन वस्तुओं में कितनी ही राष्ट्रीय निधि मानी गई हैं। जापान भर के मठों और मंदिरों में जहाँ कहीं भी कला, इतिहास या दूसरी दृष्टि से कोई अधिक महत्त्वपूर्ण मूर्ति चित्र आदि हैं, उन्हें सरकार ने राष्ट्रीय निधि के तौर पर दर्ज कर लिया है। और ऐसी राष्ट्रीय निधि की सुरक्षा आदि के लिए विशेष नियम और प्रबन्ध किये गये हैं। कोयासान् के विहारों में ऐसी राष्ट्रीय निधियाँ कई सौ हैं।

वहाँ से कोयासान् कालेज में गये। कोयासान के



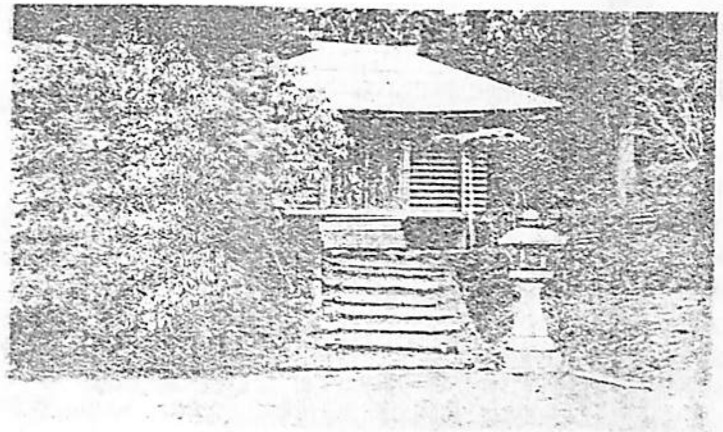
[एक क्रीडा-उपवन (शोजो शिन्-इन्)]

विहार ने अपने भिक्षुओं की शिक्षा के लिए एक हाई स्कूल और एक कालेज (या विश्वविद्यालय) स्थापित किया है। हाई स्कूल के ४०० विद्यार्थियों में ३०० भिक्षु हैं। कालेज के २६० लड़कों में ५-७ ही बाहरी हैं, बाक़ी सभी भिक्षु हैं। हाई स्कूल पास करने में ग्यारह वर्ष लगते हैं, और कालेज पास करने में ५ वर्ष। कालेज को डिग्री देने का सरकार से चार्टर प्राप्त है, इसलिए इसे यूनिवर्सिटी भी कहते हैं। कालेज की पढ़ाई में बौद्ध-धर्म और दर्शन के अतिरिक्त संस्कृत भी सम्मिलित है। संस्कृत के प्रधान अध्यापक प्रोफ़ेसर फ़ुजिदा जर्मनी के पी० एच-डी० हैं। वे भारत में भी तीर्थाटन कर चुके हैं। हम भारतीयों को गर्व तो होता है कि दूर दूर से लोग हमारी मातृ-भूमि की वंदना करने पहुँचते हैं, किन्तु हमारा ख़याल इस ओर नहीं जाता कि इन प्रतिष्ठित मेहमानों के साथ हमारा बर्ताव कैसा होता है। संसार-प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् जब डाक्टर तकाकुसू भारत तीर्थाटन करने गये थे, उस समय प्यास लगने पर उन्हें म्लेच्छ समझकर रास्ते में किसी ने पानी देने से इनकार कर दिया था। एक दूसरे वृद्ध बौद्ध नकाजीमा कितने ही वर्षों तक संयम और ब्रह्मचर्य रखकर अपनी पूज्य माता की अस्थियाँ लेकर बोध-गया गये थे (धर्म-भूमि भारत में अपनी हड्डियों के पहुँच जाने की हर एक बौद्ध के हृदय में बड़ी लालसा होती है), उस समय उनको भी इसी प्रकार का कुछ अनुभव हुआ था। उन्होंने साफ़ से नहीं कहा, किन्तु एक बार लोटा-पानी का ज़िक्र आने पर जब मैंने कहा कि अब चौका-चूल्हा बहुत ढीला हो गया है तब उन्होंने आश्चर्य और प्रसन्नता प्रकट की थी। ख़याल कीजिए, जब भारत से कोई विद्वान आवे तब तो उसका जापान के तोक्यो, क्योतो, कोयासान् तथा दूसरे स्थानों में बौद्ध-शिक्षित समुदाय विशेष प्रकार से स्वागत तथा अभ्यर्थना करें, किन्तु जब कोई बाहर से संभ्रान्त बौद्ध विद्वान् या नेता भारत जाय तब न गया में, न बनारस में उसका स्वागत या स्वागत हो। क्या इसी पर हिन्दू चाहते हैं, सारे भारत के धर्मियों का बन्धुत्व और सहानुभूति प्राप्त करना? तोक्यो, क्योतो आदि की तरह यहाँ के अध्यापकों ने भी आज शाम को 'राहुल सांकृत्यायन' के स्वागतोपलक्ष में चायपार्टी की, और उसकी कृतज्ञता में अपने देशवासियों से यहाँ के दो शब्द कह देना ज़रूरी समझा।

कालेज के पुस्तकालय में सत्तर हज़ार पुस्तकें हैं। इमारत तिमहला और चौमहला है। इस पर तीन चार लाख से कम ख़र्च न हुआ होगा।

दोपहर के भोजनोपरान्त एक बजे हम फिर दर्शनार्थ निकले। पहले कोङ्-गो-बुजी गये। यह शिङ्गोन् संप्रदाय का केन्द्रीय विहार है। सम्प्रदाय के प्रधान या सङ्घ यहीं रहते हैं। प्रधान देवालय २१० फ़ुट लम्बा और १८० फ़ुट चौड़ा है। इस सारे विहार को दसवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक के अनेक चोटी के चित्रकारों की चित्र-प्रदर्शनी समझें। मोतोनोबु, तन्साई, तोएकी जैसे अमर चित्रकारों की अमर कृतियाँ यहाँ चल-भित्ति-फलकों पर अंकित हैं। और मंदिरों की भाँति इस मंदिर में भी कई बार आग लगी है, किन्तु चित्र खिसकनेवाले पट फलकों पर होने से बचाये जा सके हैं। एक कोने में वह कमरा है, जिसमें तरुण हिदेत्सुगु ने शत्रुओं के हाथ में जीते पड़ने से बचने के लिए हराकिरी की थी। हिदेत्सुगु तत्कालीन जापान के शासक हिदेयोशी का पोष्य पुत्र था, किन्तु पीछे विमाता की ईर्ष्या के कारण हिदेयोशी (१५३६-९८ ई०) के कोप का भाजन बना।

मंदिर के एक बग़ल में वह कमरा भी है जिसमें जापान के कितने ही पुराने सम्राट् आकर रह चुके हैं। एक बग़ल में और कितने ही कमरे हैं जिनमें पिछली एकादश शताब्दी-महोत्सव के अवसर पर कितने ही प्रिंस, कौंट और बैरन आकर रहे थे। इन कमरों में जापान के कितने ही आधुनिक चित्रकारों के चित्र-फलक हैं।



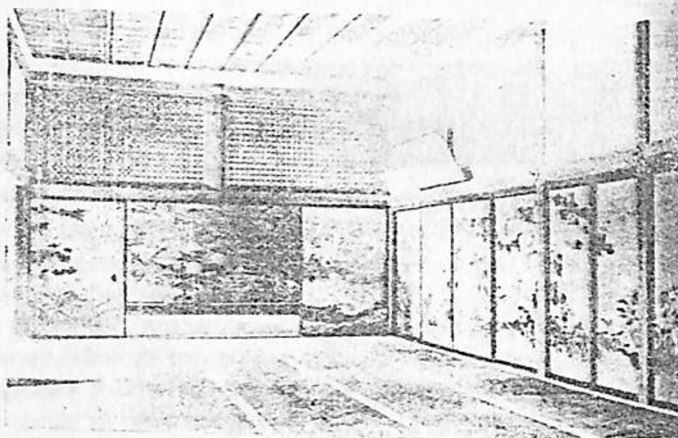
[गोत्तामइ-इन् (पर्णकुटी)]

अब पीले कपड़ों-द्वारा बाज़ारवालों का मनोरंजन करते हम शोजोशिन् विहार में पहुँचे। यह कोयासान् के मठों में सर्वसुंदर समझा जाता है। पुराने चित्रों और मूर्तियों का यहाँ भी अच्छा संग्रह है। पीछे की ओर पहाड़ की जड़ में इसका क्रीडा-उपवन तो लाजवाब है। इस विहार से दो प्रेमियों की कथा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। तार्कागुची एक संभ्रान्त सामुराई (राजपूत) था। इस सुन्दर तरुण का घर की परिचारिका योकोबुए से प्रेम हो गया। दोनों ब्याह कर लेना चाहते थे। किन्तु राजपूत पिता अपने पुत्र की शादी नीच कन्या से क्योंकर होने देता। आख़िर निराश हो ताकिगुची एक मठ में जा साधु हो गया। किन्तु क्योतो के उस मठ में भी जब-तब उसकी प्रेमिका पहुँचने लगी। तब वह भाग कर कोयासान् के इसी मठ में रहने लगा। प्रेमिका वन वन की ख़ाक छानती फाटक पर पहुँची, किन्तु फाटक के भीतर स्त्री का प्रवेश तो निषिद्ध था। प्रेमिका कितने ही समय तक अपने प्रेमी की झाँकी के लिए न्योनिन्-दो के बाहर बैठी रही। आख़िर निराश हो उसने नदी में कूद कर आत्महत्या कर ली। मरने के बाद वह बुलबुल हुई। अब भला किसकी मजाल थी, जो कोई योकोबुए को भीतर आने से रोकता। वह नित आकर अपने प्रेमभाजन की कुटिया के सामनेवाले वृक्ष पर बैठ कर शब्द किया करती थी। किन्तु उसके प्रेमी को इसकी ख़बर न थी। आख़िर बुलबुल चिन्ता से कृश होते होते एक दिन क्रीड़ा-पुष्करिणी में डूब कर मर गई। भिक्षु ने अपने हाथ से उठा कर दाह-कर्म किया। कालान्तर में भिक्षु ने भी शरीर छोड़ दिया। कहते हैं, उसके बाद दोनों उस लोक में गये, जहाँ उनके प्रेम में न पिता बाधा दे सकता है, न माता, न जाति रुकावट पैदा कर सकती है, न सम्बन्धी। जहाँ नित्य निरन्तर मिलन के ही दिन और मिलन की ही रातें हैं।



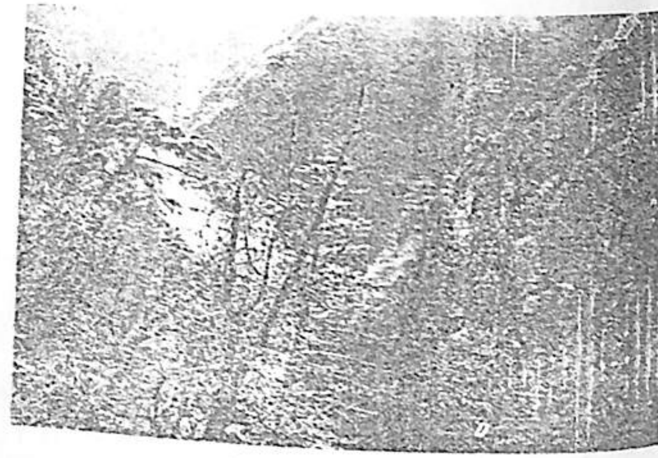
[गोसामइ-इन्]

एक प्रसिद्ध चित्रकार के चित्र-फलक को दिखला कर जब मुझे यह कथा सुनाई गई तब मैंने कहा शिन्-ज़ू के प्रचार का यह एक उत्तम साधन है। हिन्दी-पाठकों ने शिन्-ज़ू के बारे में नहीं सुना होगा। जापान में आज-कल इसकी भरमार है। दो तरुण-तरुणी आपस में प्रेम करते हैं। दोनों ब्याह करना चाहते हैं। मा-बाप की ओर से विरोध होता है। आर्थिक, सामाजिक या दूसरी कठिनाई बाधक होती है। तरुण-तरुणी सोचते हैं, इस जन्म में हमारा सुखमय मिलन नहीं हो सकता। चलो उस लोक को चले चलें। दोनों रेल के नीचे लेट जाते हैं, ज़हर खा लेते हैं या गैस का पाइप नाक पर लगा लेते हैं या सबसे अधिक प्रचलित ढंग है मीहारयामा का टिकट कटा लेना। मीहारयामा तोक्यो से अति दूर अवस्थित टापू में एक सजीव ज्वालामुखी है। रोज़ उस टापू के लिए जहाज़ जाया करता है। प्रेमी युगल जाकर मीहार के अग्नि-मुख में कूद पड़ते हैं। शिन् ज़ू के मारे सरकार ने मीहार पर कड़ा पहरा बैठा रक्खा है। रात को खुले कुत्ते पहरा देते हैं। तब भी कुत्तों को मांस का टुकड़ा डाल कर कितने ही पहुँच जाते हैं। मैंने अपने जापानी मित्र से पूछा—ज्वालामुखी के पेट से लाश तो मिलेगी नहीं, फिर पता कैसे लगता है कि मीहार में रोज़ दो एक शिन्-ज़ू होते हैं। उत्तर मिला—जहाज़ के मुसाफ़िरों की गिनती करने से। पहली बार जब जापान में रोज़ाना १२-१३ शिन्-ज़ू की बात मुझसे कही गई तब मैंने उसको इतना अविश्वसनीय समझा कि उस पर आश्चर्य भी नहीं

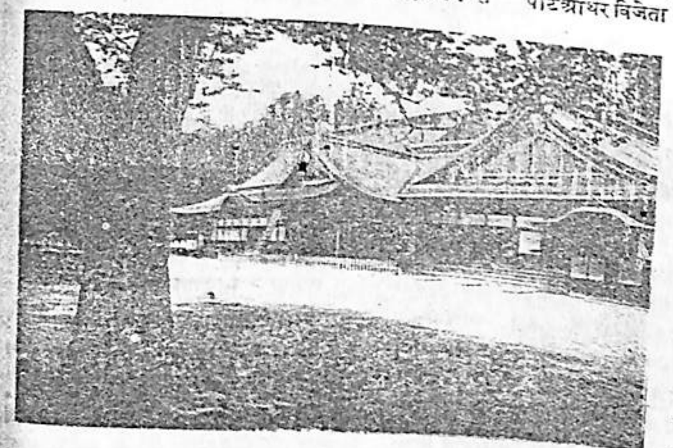


[शोजो शिन्-इन् (चित्रफलक)]

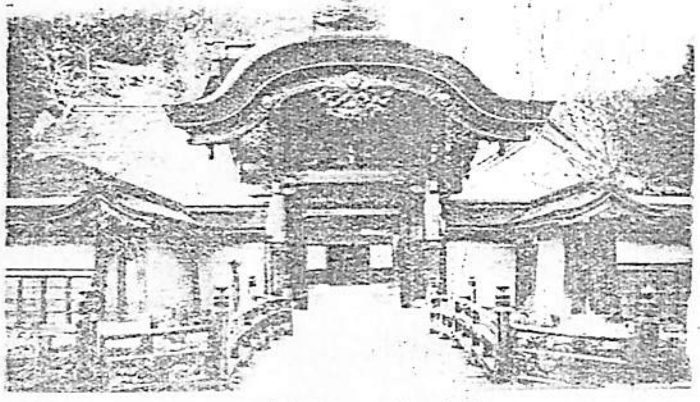
प्रकट किया। दूसरी बार भी मेरा वही भाव रहा। तीसरी बार जब मैंने गम्भीरता से पूछ-ताछ की—क्या बारह तेरह रोज़ाना या सालाना? उत्तर मिला—रोज़ाना, रोज़ाना! बात यह है, हम लोग मृत्यु को बहुत महत्त्व देते हैं, उससे बहुत डरते हैं। जापानी उसको उस तरह नहीं लेते। उनके ख़याल से मरनेवाले के लिए अन्तिम निश्चय के बाद बस कुछ समय की मानसिक वेदना है। यदि मीहार जैसा सामान हो, तो मृत्यु की पीड़ा होती ही नहीं। और बचे लोगों के लिए—'आह! हमारा मित्र चला गया। हमारा सम्बन्धी चला गया। अच्छा कर्म को कौन टाल सकता है?' यदि कहा जाय जापानी-जाति मृत्युंजय है तो इसमें अतिशयोक्ति बहुत कम होगी। अपने आदर्श, अपने भाव के सामने एक जापानी अपने जीवन का मूल्य तुच्छ समझता है। उसने लड़कपन से निप्पोन् (जापान) की भक्ति, अपने सम्राट् के देव-तुल्य सम्मान का पाठ पढ़ा है। उसने स्वामिभक्त ४७ रोनिनों की क़ुर्बानियाँ पढ़ी हैं और शायद उनकी समाधियों को जाकर देखा है, अथवा उनके फ़िल्म देखे हैं। उसने पोर्टआर्थर विजेता नोगी को सपत्नीक अपने सम्राट् (मेइजी) के वियोग में हराकिरी करते पढ़ा है। वह समझता है, जीवन का मूल्य किसी समय बहुत भी हो सकता है, किन्तु कुछ ऐसे अवसर, कुछ ऐसी जगहें हैं जिनके बदले में जीवन दे देना सबसे सस्ता सौदा है। जापानियों में ये भाव इतने भीतर तक घुस गये हैं कि उसका अनुमान करना भी हमारे लिए मुश्किल है। मृत्यु के साथ खेलने में वे बड़े दक्ष हैं। यदि कोई बड़ा युद्ध हो जाय, जिससे दस लाख आदमी मर जायँ, जानते हैं, जापानी क्या कहेगा—भवितव्यता के साथ किसका वश? अच्छा वह तो हो गया। मृत्यु का घाटा देखकर हमारी



[प्राकृतिक दृश्य (जापान)]



[कोङ्गो-बुजी]



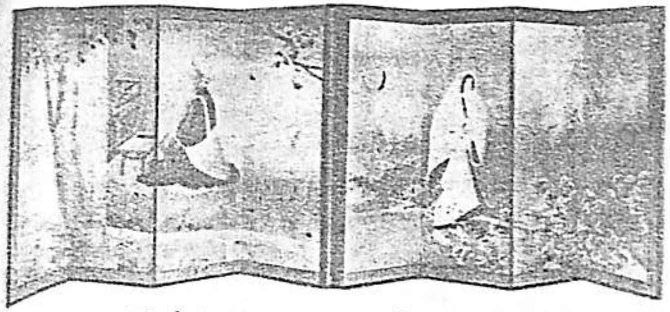
[शोजो शिन्-इन (द्वार)]

मिट्टी के स्तूपों को [illegible] ये सम्राटों और सम्राज्ञियों की समाधियाँ हैं। इन सबकी यही अन्तिम [illegible] थी कि मरने के बाद अपने उपदेशक—अपने गुरु की समाधि के पास उनको जगह मिले। कहीं चार तीन हाथ लम्बे खम्भे-जैसे चिकने पत्थरों को एक ओर खुले मुँहवाले आसन क्षेत्र के रूप में देखेंगे। ये हैं क्योतो या तोक्यो, ओसाका या योकोहामा की नर्तकियाँ (गेईशा)। जीवन-काल में भी उन्होंने इसी तरह पंक्तिबद्ध हो नृत्य किया था। मरने के बाद भी आज वे उसी प्रकार पंक्तिबद्ध खड़ी हैं। बीच बीच में आपको कोबोदाइशी की पीतल या पत्थर की बाल्य, तारुण्य या वार्धक्य की मूर्तियाँ दिखाई पड़ेंगी। और दो दो सौ फुट ऊँचे देवदार! उनका तो कहना ही क्या। सुन्दर पुल, स्वच्छ पत्थर बिछे हुए रास्ते के छोर पर पहुँचिए। यहाँ कितने ही चिराग़ अहर्निश जल रहे हैं। किन्तु समाधि यह नहीं है। परिक्रमा करते हुए पीछे चलिए। चहारदीवारी से घिरे देवदार के वृक्षों के बीच देखिए वह छोटा झोंपड़ा-सा मकान। यही है उस महान् दार्शनिक, महान् कलाकार, महान् पर्यटक, महान् सिद्ध का समाधि-गेह। दो पैसा खर्च कर धूप-बत्ती लीजिए। धूपदान पर रखकर जलाइए। ऐसे अद्भुतकर्मा पुरुष के प्रति अपना सत्कार प्रदर्शन करना हमारा कर्तव्य है।

जाति हर साल दस लाख प्राणियों के नक़्के में रहती है। चलो समझेंगे एक साल नफ़ा नहीं हुआ। वस्तुतः इतने भीषण जन-विनाश का जापानी दिल पर उतना ही असर होगा, जितना काई से आवृत तालाब पर फेंके हुए ढेले का। संसार की किसी जाति और उसके योद्धाओं में यह दृढ़ अधिष्ठान नहीं है। अधिष्ठान-बल, संख्या-बल, सेना-विज्ञान-बल—ये चीज़ें हैं जिनके कारण आज जापान संसार की बड़ी बड़ी शक्तियों को मुँहफट-सा जवाब दे रहा है। योरप या अमेरिका चीन को आर्थिक सहायता करना चाहते हैं, जापान कहता है—ख़बरदार! यह तुम्हारी अनधिकार चेष्टा है।

सब देखकर हम कोबोदाइशी की समाधि ओकुनो-इन् की ओर चले। पहला पुल पार करते ही दोनों ओर समाधि-पाषाण दिखलाई देने लगते हैं। हर एक पत्थर पर उस व्यक्ति का नाम खुदा हुआ है जिसकी राख उसके नीचे दबी हुई है। यदि आप चीनी अक्षर पढ़ सकते हैं तो एक एक पत्थर को पढ़ते जाइए। अथवा इन लाखों पत्थरों का पढ़ना असंभव समझते हों तो बड़े बड़े स्तूपाकार पत्थरों को पढ़िए। इनमें आप पुराने जापान के कितने ही सेनापतियों और सामन्त राजाओं को पायेंगे। या

लौटकर हम करुकावादो तथा कोङ्-गो-सामइ-दो में गये। हर जगह का वर्णन एक-दो लेख में नहीं किया जा सकता। उनके लिए पोथा चाहिए। संक्षेप में तो कह ही दिया, ये विहार मूर्ति और चित्रकला के अपूर्व संग्रहालय हैं।



[शोजो शिन्-इन् ताकी गुची और योकोबुए)]

गोकुराकुजी बौद्ध-मन्दिर में डेरा पड़ा। तीन दिन ठहर कर जापान से प्रस्थान करने की सलाह ठहरी।

७ तारीख को इंडिया लाज देखने गये। कोबे में भारतीय छात्रों तथा अपरिचित व्यक्तियों के रहने के लिए किसी अच्छे स्थान की आवश्यकता थी। आनन्द-मोहन बाबू आज दस साल से जापान में हैं। असहयोग में मेडिकल कालेज के अन्तिम वर्ष से उन्होंने असहयोग किया था। पीछे राजेन्द्र बाबू के प्राइवेट सेक्रेटरी हुए। यहाँ आने के बाद से भारत के राष्ट्रीय कार्य में संलग्न हैं। वे जापानी-भाषा बहुत अच्छी तरह बोलते हैं। उनके जापानी-भाषा के व्याख्यान कई बार रेडियो पर भी ब्राड-कास्ट हुए हैं। उनकी योग्यता और संलग्नता के कारण जापान के प्रधान पुरुषों में उनका बहुत मान है। भारतीयों के तो वे सर्वमान्य नेता हैं। भारतीय व्यवसायी पहले से भी जापान में आते हैं, किन्तु आनन्दमोहन बाबू के प्रयत्न से जापानियों की दृष्टि में उनका मान अधिक बढ़ा है। भारतीय विद्यार्थियों की वे हर तरह से मदद करते हैं। कितने ही कामों के सीखने के लिए अधिक प्रभावशाली व्यक्ति की सिफ़ारिश चाहिए, और वैसे कामों में आनन्दमोहन के जापानी मित्रों का प्रभाव काम देता है। भारतीय विद्यार्थियों तथा यात्रियों के लिए कोबे में ठहरने की कोई सस्ती जगह न थी। उन्होंने स्थानीय भारतीयों से चंदा करके हाल में ही ७,५०० येन् में एक जगह खरीदी है। श्री आनन्दमोहन और उनके मित्र इस पुरानी इमारत को गिराकर वहाँ पर एक अच्छा भारतीय आवास बनाना चाहते हैं। इस पर पचास हज़ार येन् खर्च होंगे। कुछ सहायता जापानी सज्जन भी देंगे। किन्तु आवश्यकता है कि भारतीय उनके इस काम में मदद करें।

———

पता लगा था, मंचूरिया के तीन मंगोल भिक्षु यहाँ पढ़ रहे हैं। सोचा उनमें कोई तिब्बती-भाषा का जानकार होगा और उससे मंचूको और मंगोलिया के बारे में विशेष हाल मालूम होगा। भेंट होने पर सच्चे मंगोल की भाँति वे खुले दिल से मिले। तिब्बती-भाषा का उनका ज्ञान अत्यन्त अल्प था। पढ़ कर वे देश में जा कर धार्मिक सुधार करना चाहते हैं। सात बजने का समय नज़दीक था, इसलिए कालेज की लाइब्रेरी में गया। कितने ही अध्यापक और कुछ छात्र जमा थे। चाय और फल का भोज दिया गया। संस्कृत के सहायक अध्यापक उएदा ने स्वागत किया। दूसरों ने भी कुछ कहा। हमसे भारत में बौद्ध-धर्म के बारे में पूछा गया। हमने जापानी बंधुओं को भारत में बौद्ध-धर्म के पुनरुज्जीवित करने के बारे में कहा। उन्होंने इच्छा प्रकट की, यदि भारतीय बालक धार्मिक विद्याध्ययन के लिए आयें तो उन्हें हम अपने मठों में भिक्षु बनाकर रख सकते हैं।

६ अगस्त को सबेरे सात बजे ही हम चल पड़े। आकाश मेघाच्छन्न था, और बूँदा-बाँदी हो रही थी। फाटक पर प्रोफ़ेसर फुजिदा मिले। वे केबलकार के स्टेशन तक पहुँचाने आये।

इस सुन्दरतम पार्वत्य दृश्य को देखते हुए हमारी कार उतरने लगी। हाशीमोतो होते हुए साढ़े दस बजे ओसाका पहुँचे और गाड़ी बदल कर ११॥ बजे कोबे। श्री आनन्द-मोहनसहाय को पहले सूचित कर रक्खा था। हिगाशी

संसार

लेखक, श्रीयुत कुवर हरिश्चन्द्रदेव वर्मा 'चातक' कविरत्न

शीतल सुखद विमल-वायु निज मधुर मधुर सर सर रव से—
कहता है "गतिशील जगत यह" द्वार द्वार चलकर सबसे।
सौरभ ने मिलकर के उससे कहा "ठीक है ठीक सखे!
आज यहाँ कल कहाँ न जाने डोल रहा हूँ मैं कब से"!

"सदा सुगन्ध-भरे फूलों का दिव्य जगत है यह सुन्दर"
भन भन कर कहते फिरते हैं ललित लताओं से मधुकर।
लतिकायें भी शीश हिलाकर मानो कहती हैं उनसे—
"एक फूल ही नहीं किन्तु हैं साथ साथ में शूल प्रखर"।

हेमाञ्चलधारिणी उषा है, और अरुण रक्तांशुकधर—
"नित्य मिलनमय जगत अमर यह" कहते हैं दोनों मिलकर।
तभी धूल में मिल जाते तरल ओस के लघु मोती—
"अपनी तो क्षण भर की दुनिया हम क्या जानें जगत अमर।

पल्लव अवगुण्ठन सरकाकर कलियाँ ताक रही हैं राह—
वे कहतीं "जग एक प्रतीक्षामय है छवि-दर्शन की चाह"।
पर फूलों ने कहा "न भूलो यहाँ किसी का कब कोई—
अपना रूप-रङ्ग ही होता जब फिर अपना घातक आह?"।

सान्ध्य-अरुणिमा के कुङ्कुम से वधू प्रतीची रँग निज चीर—
कहती है बस यही कि 'दुनिया है सुन्दरता की तसवीर'।
किंतु उसी क्षण तम की चादर बुनता कहता काल कुविन्द—
"सुन्दरता की क्षीण प्रभा को घेर रहा तम का प्राचीर"।

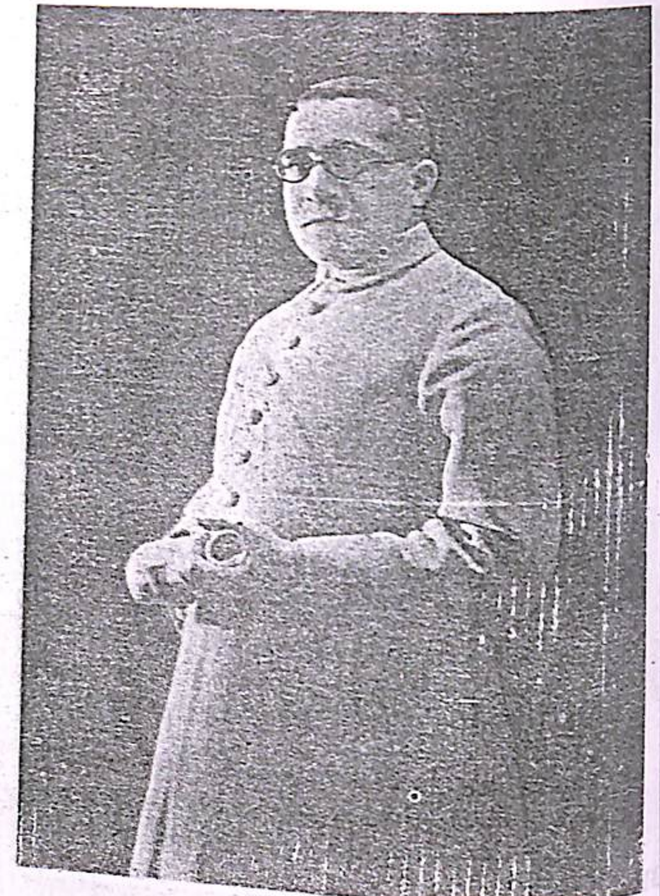
पावन दूर्वादलास्तरण पर सुख से सोई विधु-बाला—
कहती है "जग एक मनोहर शिशु-सा है भोलाभाला"।
"नहीं! नहीं!! जग मधु-मन्दिर है", विभावरी रानी बोली—
"अरुण कपोल हुए पाटल के पीते ही जिसकी हाला"।

इस प्रकार से जग क्या है? जैसा जिसके जी में आया—
अपने दृष्टि-कोण से उसने उसको वैसा बतलाया।
शेफालिका-कुञ्ज में बैठा कवि सुनता था सबके भाव—
और गुनगुनाता था "जग है एक रहस्य-पूर्ण माया"।

माननीय सर सीताराम

लेखक, श्रीयुत रूपकिशोर अग्रवाल, बजाज़

माननीय सर सीताराम इन प्रान्तों के प्रमुख व्यक्तियों में हैं। पिछले दस वर्षों से प्रान्तीय कौंसिल के प्रेसीडेंट होते आ रहे हैं और उस पद के सम्मान की आपने बराबर रक्षा की है। इस लेख में लेखक महोदय ने 'सरस्वती' के पाठकों की जानकारी के लिए आपका संक्षिप्त परिचय दिया है।



[माननीय सर सीताराम]

युक्त प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिल के अध्यक्ष माननीय 'सर सीताराम जी' का भी जीवन एक आदर्श जीवन है। इन्होंने जो समाजोन्नति और लोक-हित आदि सार्वजनिक सेवायें की हैं वे सर्वथा अनुकरणीय हैं। विद्या-सम्पन्न और वैभव-युक्त होकर अपने अविराम उद्योग और सद्भावना के द्वारा जो ख्याति इन्होंने प्राप्त की है वह वास्तव में प्रशंसनीय है। इनमें कितना शिष्टाचार और वाणी का माधुर्य्य एवं शील-संयम है, एक बार साक्षात् होने पर इसका सबका पूर्ण परिचय मिल जाता है। ऐसे महानुभाव का संक्षिप्त जीवन-परिचय भी अवश्य लाभदायक और शिक्षाप्रद होगा। इसी उद्देश से ये पंक्तियाँ यहाँ लिखी गई हैं।

जन्म और वंश-परिचय—सर सीताराम जी का जन्म सन् १८८५ ई० में मेरठ के प्रसिद्ध अग्रवाल-परिवार पत्थर-वालों के यहाँ हुआ था। पत्थरवाले प्रख्यात होने से



[सर सीताराम कार्ल्सबाद (योरप) में अपनी मित्रमंडली के सहित]

पूर्व इनके पूर्वज मुग़ल-शासन-काल में क़ानूनगो थे। उस समय क़ानूनगो की पदवी महत्त्व-पूर्ण समझी जाती थी। सम्राट् का शाही फ़रमान भी इनके एक वंशज के पास है। इनका कुटुम्ब 'क़ानूनगोयान' कहलाता था। क़ानूनगो-वंशवाले मेरठ के समीप 'मलियाना' ग्राम में रहते थे। विवाह आदि संस्कारों में इनके घर के लोग अब भी पूर्वजों के देवता पूजने के लिए वहाँ जाते हैं। कहते हैं कि इनके पूर्वज बड़े धर्मज्ञ और सत्य-प्रतिज्ञ थे, जिनकी बात पत्थर की लकीर के समान अचल और दृढ़ होती थी। यह भी कहा जाता है कि वे पत्थर का व्यवसाय करते थे। इन्हीं कारणों से इनके पूर्वज 'पत्थरवाले' विख्यात हुए। इनके पूज्य पितामह लाला हरसहायमल मेरठ में अपने समय के बड़े साहसी, निर्भीक और हिन्दू-जाति के स्तंभ माने जाते थे। उनके सुयश की अनेक बातें अब तक लोगों में प्रचलित हैं।

शिक्षा—प्रारम्भिक शिक्षा इनको मेरठ में ही दी गई। उसके बाद ये इलाहाबाद भेजे गये और १९ वर्ष की आयु में सफलतापूर्वक इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी से बी० ए० की परीक्षा में सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुए। सन् १९०६ में एम० ए० तथा एल-एल० बी० में भी कृतकार्यता प्राप्त की। इनकी दूसरी भाषा संस्कृत थी। संस्कृत की विशेष योग्यता के कारण ये 'पंडित' शब्द से संबोधित किये गये, इसी लिए ये लाला सीताराम की अपेक्षा पंडित सीताराम के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं।

जातीय सुधार और सार्वजनिक सेवा—शिक्षा-समाप्ति के पश्चात् इन्होंने कुछ समय तक मेरठ में वकालत की, परन्तु इनके परोपकारी हृदय में सेवाभाव के उदय होने से वकालत को स्थगित करना पड़ा। सन् १९०८ में 'आल इंडिया वैश्य कान्फ़रेंस' का वार्षिक महोत्सव था। ये वैश्य-महासभा के स्वयंसेवक-दल के अध्यक्ष थे। उन्हीं दिनों स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी मंडाले-जेल से मुक्त होकर वैश्य-कान्फ़रेंस में पधारे थे। उस समय इन्होंने लाला जी तथा प्रतिनिधियों के स्वागत और आतिथ्य-सत्कार में बड़ा उद्योग किया था। इसी प्रकार माननीय गोखले के मेरठ आने पर इन्हीं ने उनका उपयुक्त स्वागत-सत्कार किया था। सन् १९११ में महामना मालवीय जी हिन्दू-विश्वविद्यालय का झंडा लेकर मेरठ पधारे तब इनके प्रबन्ध को देखकर वे भी बहुत सन्तुष्ट हुए थे।

सन् १९११ के दिसंबर में वैश्य-महासभा के प्रमुख संचालक माननीय रायबहादुर लाला रामानुजदयालु जी के स्वर्गवासी होने पर उनके रिक्त स्थान पर इनका निर्वाचन हुआ। इनके प्रयत्न और सुप्रबंध से अखिल भारतीय वैश्य महासभा की बड़ी उन्नति हुई। कितने ही दिनों तक ये महासभा के सहायक मंत्री और प्रधान मंत्री रहे और अब भी उसके उपसभापति हैं।

सन् १९१५ में इनके उत्साह और परिश्रम से मेरठ में 'सेवक-मंडल' की स्थापना हुई। 'सेवक-मंडल' की महत्त्व-पूर्ण सेवाओं-द्वारा गढ़मुक्तेश्वर आदि गंगा-स्नान के मेलों पर जहाँ लाखों मनुष्यों का जन-समूह एकत्र होता है, यात्रियों को अनेक प्रकार की सहायता और सुख पहुँचाया जाने लगा। ये मंडल के प्रमुख कार्यकर्ता थे। मेरठ की समस्त सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं में विशेषरूप से इनका सहयोग रहा है। मेरठ के वैश्य यंगमैन एसोसियेशन के भी ये एक उच्च पदाधिकारी थे।

सन् १९१७ में मेरठ में मोहर्रम और दशहरा (रामलीला) एक ही साथ होने के कारण मेरठ के हिन्दू-मुसलमानों में दंगा हो जाने की घोर आशंका थी। सरकारी कर्मचारी भी इसके लिए विशेष चिंतित थे, परन्तु इनकी कार्यदक्षता से वह संकट की घड़ी अनायास ही टल गई।

सहारनपुर, मेरठ और मुज़फ़्फ़रनगर-ज़िला के धारीवाल ग्राम में हिन्दू-मुसलमानों के भीषण उत्पात हुए। उस समय इन्होंने पीड़ितों और दुखी परिवारों की बड़ी सहायता की तथा अत्याचारियों को दंड दिलाया।

सन् १९२४ में गंगा-यमुना की भयंकर बाढ़ से हज़ारों मनुष्यों और पशुओं को अपार क्षति पहुँची थी। इनका हृदय दुखी-जनों के आर्तनाद से अत्यन्त द्रवित हुआ और इनके ही प्रयत्न से उस वर्ष यू० पी० कौंसिल में मालगुज़ारी छोड़ने और तक़ावी देने का प्रस्ताव पास हुआ।

इनकी ज़मींदारी की ग्रामीण प्रजा इनके सद्व्यवहार से अत्यंत संतुष्ट और प्रसन्न रहती है। जनता के हितार्थ कुएँ, नालियाँ, सड़कें, पाठशालायें और मंदिर आदि अनेक प्रकार की सुव्यवस्था और सुविधायें कर दी गई हैं। इसके सिवा इनकी रियासत में बेदख़ली और इज़ाफ़े के मुक़द्दमे बहुत कम चलते हैं।

जनवरी सन् १९२४ में इनके सभापतित्व में मेरठ-निवासी वैश्यों में प्रचलित कुप्रथाओं के संशोधनार्थ 'व्यवहार-रीति-पत्र' (दस्तूरुल अमल) का निर्माण हुआ। वास्तव में इनके हृदय में जातीय सुधार की प्रबल आकांक्षा है और ये सदैव जातीयोन्नति का ध्यान रखते हैं।

राज-नीति—परन्तु इनकी केवल सामाजिक ही नहीं, बल्कि शिक्षा-सम्बन्धी और राजनैतिक सेवायें भी कम महत्त्व नहीं रखती हैं। ये राजनैतिक क्षेत्र में सन् १९०७ से ही सम्मिलित हुए हैं। महात्मा गांधी ने सन् १९१९ में जब असहयोग का शंख-नाद किया था तब इन्होंने भी उसमें निर्भयता से भाग लिया था। सन् १९२० में ये मेरठ में ज़िला राजनैतिक कान्फ़रेंस के अध्यक्ष हुए थे, और उसी साल अमृतसर-कांग्रेस की विषय-निर्वाचिनी समिति के सदस्य हुए थे। इसके बाद ये प्रायः कांग्रेस के अधिवेशनों में सम्मिलित होते रहे।

६ अप्रेल सन् १९१९ को देशव्यापी हड़ताल हुई थी। वह मेरठ के प्रसिद्ध नौचंदी मेले का अंतिम दिन था। इस दिन दूकानदारों की मेले में अधिक बिक्री होती है। परन्तु इनके असीम उद्योग से नौचंदी के मेले में भी पूर्ण हड़ताल रही! इस क्षति-पूर्ति के लिए इन्होंने मेला एक दिन और बढ़ा दिया। सरकारी कर्मचारियों ने रुष्ट होकर अपना समस्त प्रबन्ध—पुलिस, रोशनी आदि उठा लिया था, अतएव इन्होंने नगर-निवासियों की सहायता से ऐसा उत्तम प्रबन्ध किया कि दूकानदार इस अतिरिक्त दिन की बिक्री से परम संतुष्ट और प्रसन्न हो गये। इसी भाँति ११ तारीख़ को महात्मा गांधी जी के पकड़े जाने पर पुनः हड़ताल हुई। उस समय सूर्य-कुंड

पर पचीस सहस्र जनता की उपस्थिति में इनका अत्यन्त प्रभावशाली भाषण हुआ। इनके प्रयत्न से ये दोनों हड़तालें शान्तिपूर्वक बीत गईं, अन्य स्थानों की भाँति किसी प्रकार का झगड़ा-टंटा नहीं होने पाया।

म्यूनिसिपल बोर्ड—सन् १९२० में ये मेरठ-म्यूनिसिपलटी के सदस्य चुने गये। उक्त बोर्ड के ये पहले हिन्दू वायस-चेयरमैन तथा शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। बोर्ड में इनका कार्य विशेषरूप से प्रशंसनीय रहा। हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही इन पर पूर्ण विश्वास रखते थे।

साहित्य-सेवा और राज्य-सम्मान—मेरठ के देवनागरी स्कूल में ही इन्हें प्रारम्भिक शिक्षा मिली थी। इस स्कूल को साधारण स्थिति से इन्होंने हाई स्कूल बना दिया और उसके लिए एक विशाल भवन भी बनवाया। मेरठ कालेज को आर्थिक संकटों से मुक्त कराना, उसमें बोर्डिंग हाउस की स्थापना कराना तथा ऐतिहासिक और दार्शनिक वर्ग खुलवाना भी इनका ही काम है। 'वैश्य-नाइट-स्कूल' को भी इन्होंने ही 'वैश्य-स्कूल' बनाकर पूर्ण उन्नतावस्था में पहुँचा दिया है। इनका शिक्षा-प्रेम यहाँ तक बढ़ा हुआ है कि इस स्कूल में रात्रि के समय ये स्वयं विद्यार्थियों को अँगरेज़ी तथा संस्कृत पढ़ाया करते थे।

इनकी सार्वजनिक सेवाओं पर मुग्ध होकर प्रान्तीय सरकार ने इनको 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' बनाया और 'राय साहब' की उपाधि प्रदान की। सन् १९२० में ये 'राय बहादुर' बनाये गये। इसके बाद सन् १९३० में 'नाइट हुड' अर्थात् 'सर' का उच्च पद इन्हें प्रदान किया गया।

सर सीताराम बनारस के 'हिन्दू-विश्वविद्यालय' के सदस्य हैं।

सन् १९३२ में इलाहाबाद और सन् १९३३ में आगरा की यूनिवर्सिटी तथा वृन्दावन गुरुकुल के वार्षिक अधिवेशनों पर दीक्षांत भाषण किये। इनके भाषणों की प्रशंसा अनेक सामयिक प्रमुख पत्रों ने मुक्तकंठ से की है। ज्वालापुर के गुरुकुल-महाविद्यालय ने भी इनके साहित्य-प्रेम से प्रभावित होकर इनको मानपत्र समर्पित किया।

कौंसिल-कार्य्य—सन् १९२० में ये प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिल के मेम्बर चुने गये। वहाँ जनता के हित के अनेक कार्य्य किये, जिससे इनके प्रति जन-साधारण का और भी अधिक विश्वास बढ़ गया। इनके ही प्रयत्न से आगरा-यूनीवर्सिटी का क़ानून स्वीकृत हुआ और उक्त यूनिवर्सिटी की स्थापना हुई। ये बहुत बड़े ज़मींदार हैं, फिर भी कृषकों का पक्ष लेने और उनकी भलाई करने में तनिक भी नहीं हिचकते। ये अवध के कृषक-क़ानून की सेलेक्ट कमेटी के भी सदस्य थे। नक़लों तथा नालिशों पर जो स्टाम्प बढ़ा दिया गया था, इनके प्रयत्न से फिर पूर्ववत् हो गया। इन्होंने सट्टे को संशोधन-द्वारा जुवे के क़ानून में सम्मिलित कराया, प्राइवेट प्रैक्टिस करनेवाले डाक्टरों को सिविल सर्जन बनाने, राजनैतिक क़ैदियों को छुड़ाने तथा उनको सुख पहुँचाने, और फ़ौजदारी के नये क़ानून को इस प्रांत से हटा लेने इत्यादि के लिए इन्होंने भरसक परिश्रम किया। ये यू० पी० कौंसिल की प्रायः सभी उपसमितियों के सदस्य रहे। इनकी अकाट्य युक्तियों और प्रभावशाली भाषणों से कौंसिल का इतिहास परिपूर्ण है।

प्रान्तीय सरकार ने काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय को एक लाख बीस हज़ार रुपये वार्षिक सहायता देना स्वीकार किया था, इस स्वीकृति के प्राप्त करने में इन्होंने भी सहायता पहुँचाई थी।

सन् १९२३ में ये यू० पी० कौंसिल के फिर बिना प्रतिद्वन्द्विता के दूसरी बार सदस्य चुने गये तथा सहुम्मत से यू० पी० कौंसिल के प्रेसीडेंट निर्वाचित किये गये। इनके न्याययुक्त तर्क और कार्य-कुशलता की कौंसिल में बड़ी प्रशंसा हुई। इनका अध्यक्ष-पद का कार्य बहुत ही संतोषप्रद रहा। सरकारी, ग़ैर-सरकारी और अन्य सभी दल के नेताओं के हृदय पर इनकी कार्य-पटुता का प्रभाव अंकित हो गया।

इनके अध्यक्ष होने से पहले जो सदस्य हिन्दी या उर्दू में भाषण करते थे उनके भाषणों की रिपोर्ट नहीं ली जाती थी और न छपती थी। इनका पहला कार्य यह हुआ कि उर्दू और हिन्दी की स्पीचों के लिए एक शार्ट हैंड राइटर नियत किया गया। इनका कास्टिंग वोट, इनकी रूलिंग और इनका निर्णय सदैव निष्पक्ष और न्यायानुकूल होता है। अपनी ऐसी ही विशेषताओं के कारण ये अलीगढ़ और मेरठ से तीसरी बार निर्विरोध यू० पी० कौंसिल के सदस्य चुने गये और १० जनवरी सन् १९२७ को कौंसिल-अधिवेशन में सर्वसम्मति से पुनः अध्यक्ष-पद पर आसीन किये गये।

जेलों की परिस्थिति सुधारने के विषय में ये प्रायः जेलों की दशा का अध्ययन करते रहे हैं। बरेली, बदायूँ तथा मेरठ आदि के जेलों का निरीक्षण करने के पश्चात् जो रिमार्क दिये हैं वे बड़े प्रशस्त और अधिकारियों के प्रति पर्याप्त चेतावनी देनेवाले प्रमाणित हुए हैं।

सन् १९२३ में श्रीयुत चिन्तामणि के पद-त्याग करने पर तथा सन् १९२८ में भी इनको शिक्षा-विभाग का मिनिस्टर (मंत्री) बनाने के लिए गवर्नमेंट ने चेष्टा की थी, परन्तु दोनों अवसरों पर इस पद को ग्रहण करने से इन्होंने अनिच्छा ही प्रकट की। यदि उस समय ये यह पद स्वीकार कर लेते तो अब गृह-सदस्य (होम मेम्बर) का अधिकार इनको ही प्राप्त होता।

सन् १९३० में बरेली शहर से चौथी बार अविरोध इनका चुनाव हुआ, और अध्यक्ष-पद के लिए केवल ३ वोट विपक्ष में और १०७ पक्ष में आये। इस प्रकार बहुमत से ये अध्यक्ष-पद पर फिर सुशोभित हुए, और आज पर्यन्त राजा और प्रजा का समान रूप से हित-साधन करते हुए अपने अधिकृत कार्य्य को बड़ी चतुरता और सुन्दरता से सम्पादन कर रहे हैं।

इस तृतीय बार के अध्यक्ष-पद पर आरूढ़ होने के उपलक्ष्य में सरकारी और ग़ैर-सरकारी समस्त सदस्य महानुभावों ने इनको एक प्रीति-भोज (पार्टी) दिया और इनके कौंसिल-कार्य्य से संतोष और प्रसन्नता प्रकट करते हुए इनको एक बहुमूल्य घड़ी पुरस्कार-स्वरूप भेंट की।

कौंसिल में इनके स्वाभिमान, प्रतिष्ठा और योग्यता के साथ अपना कर्तव्य-पालन करते हुए लगभग दस वर्ष बीत गये हैं। इनकी सुजनता और सहृदयता आदि शुभ गुणों से इनके प्रति आक्षेप और विरोध करने का किसी व्यक्तिविशेष को अवसर नहीं मिला। वास्तव में इनकी नीति-निपुणता श्लाघनीय है।

विदेश-यात्रा—सन् १९३१ में ये योरप गये। इटली, स्विटज़रलैंड, फ्रांस, इँग्लैंड, आयर्लैंड, स्काटलैंड, बेलजियम, जर्मनी, चेकोस्लोवेकिया, हंगरी आदि देशों का भ्रमण किया। ये इस यात्रा में अपने धर्म (नित्य-कर्मादि) में दृढ़ रहे, और इनकी समस्त वेश-भूषा भारतीय रही; देशी अचकन, पाजामा, और किश्तीनुमा टोपी के अतिरिक्त कोट-पतलून कभी नहीं पहना, भोजन सदैव की भाँति निरामिष रहा। स्थान स्थान पर इनका विशेष रूप से आतिथ्य और स्वागत हुआ। इँग्लैंड में प्रधान मन्त्री से लेकर सभी श्रेणी के अनेक सज्जनों से इनकी भेंट हुई। छः मास इस पर्यटन में लगे और लगभग चालीस सहस्र रुपया व्यय हुआ। इस यात्रा से लौटने पर मेरठ-कालेज में छात्रों को उपदेश देते हुए इन्होंने अपनी यात्रा का विस्तृत वृत्तांत और उसके अनुभवों का वर्णन किया था। योरप में एक स्थान 'कार्ल्सबाद' है। वहाँ इनका मित्र-मंडली-सहित फ़ोटो लिया गया था। साथ में इनके बड़े पुत्र चिरंजीव चन्द्रशेखर जी हैं। यह चित्र अन्यत्र दिया गया है।

तीर्थ-पर्यटन—सन् १९३४ में इन्होंने श्री बदरीनाथ जी तथा केदारनाथ जी के दर्शनार्थ यात्रा की। मार्ग में अनेक स्थानों पर इनका स्वागत हुआ, विशेषकर 'गढ़वाल' में तो आतिथ्य-सत्कार की अपूर्व धूम-धाम रही, और इनके साथ बड़ी सुजनता का व्यवहार हुआ। साथ डाँडी-यान के होते हुए भी इन्होंने २५० मील से अधिक पैदल यात्रा की। इससे पूर्व ये काशी, अयोध्या, हरिद्वार, ऋषिकेश, मथुरा, वृन्दावन, गोकुल, गोवर्धन, प्रयाग, चित्रकूट और श्री जगन्नाथपुरी की यात्रा कर चुके हैं।

सन् १९३५ के मई मास में इन्होंने 'पिंडारी ग्लेशियर' को यात्रार्थ प्रस्थान किया। रानीखेत, सोमेश्वर, श्रीनगर आदि जितने भी स्थान मार्ग में पड़े, सभी में इनका स्वागत-सत्कार होता गया। इसी प्रकार लौटते समय भी कटारमल नायक स्कूल आदि संस्थाओं ने इनको मानपत्र दिये।

जहाँ ये जाते हैं, वहाँ के स्थानीय क्षेत्र, अनाथालय, विद्यालय, देवालय तथा बालक-बालिकाओं को दान देते रहते हैं। इस प्रकार के दान में इनका पुष्कल धन व्यय हो जाता है।

धार्मिक विश्वास—ये सनातन-धर्मावलम्बी हैं, किन्तु लकीर के फ़क़ीर नहीं हैं। इनके धार्मिक विचार बड़े समुन्नत और गहन हैं। 'विधवा-विवाह', 'अछूतोद्धार' और 'शुद्धि' के समर्थक हैं और दीर्घकाल से इन कृत्यों से इनकी सहानुभूति रही है। लगभग बीस वर्ष हुए, मेरठ में इन्होंने हरिजनों के लिए स्कूल खुलवाये थे। विद्या-प्रचार, ब्रह्मचर्य-साधन, कला-कौशल आदि उद्योग-धन्धे और पंचायत-प्रथा के पोषक, एवं बाल-वृद्ध-विवाह, कन्या-पुत्र-क्रय-विक्रय, व्यर्थ आडम्बर आदि सामाजिक रूढ़ियों के बहिष्कारक हैं।

संतति—ईश्वर की कृपा से इनके तीन पुत्र और कई पुत्रियाँ हैं। सबसे ज्येष्ठ पुत्र श्री चन्द्रशेखर जी उच्च शिक्षा-प्राप्त हैं। ये धन-जन-शिक्षा आदि सभी सांसारिक वैभवों से युक्त हैं।

इतने महान् पद पर होते हुए भी ये बड़े सरल-प्रकृति, अभिमान-रहित तथा दयालु हैं। साधारण से साधारण पुरुष भी इनसे मिलकर अत्यन्त प्रसन्न और हर्षित हो जाता है। परमात्मा इनकी दिन-प्रति-दिन उन्नति और वृद्धि करे, जिससे देश और समाज का अधिकाधिक श्रेय और कल्याण हो।

अभिशापित प्रेमी

लेखक, श्रीयुत भगवतीचरन वर्मा

हाँ प्रेम किया है प्रेम किया है मैंने।
वरदान समझ अभिशाप लिया है मैंने।
अपनी ममता को स्वयं डुबाकर उसमें।
वर्जित मदिरा को देवि पिया है मैंने॥
मैं दीवाना तो भूल चुका अपने को।
मैं ढूँढ़ रहा हूँ उस खोये सपने को॥
छाया को छाया बन कर मैंने देखा।
खिंच गई हृदय पर वहीं कसक की रेखा।
मैं मिटा मिटा कर स्वयं मिटा जाता हूँ।
पर अमिट बन गया वह विधिना का लेखा॥
देकर मैं अपनी चाह आह लाया हूँ।
प्राणों की बाजी हाय हार आया हूँ॥
हैं कसक रहीं अब उर में बीती बातें।
घिर आती हैं पीड़ा बन खोई रातें।
मेरे जीवन में धुँधला-सा सूनापन।
है उमड़ पड़ा बन आँसू की बरसातें॥

दिन जलता है, रजनी आहें भरती है।
मुझसे मेरी लघुता खेला करती है॥

वे दिन बीते जब मैं भी अभिमानी।
भूपालों में उठता था आँधी पानी।
अब तो मेरा धन स्मृतियों का बन्धन है।
प्रत्येक साँस है मेरी करुण-कहानी॥

असमर्थ बन गया लो सहसा अधिकारी।
देनेवाला बन गया नितान्त भिखारी॥

लेकर मस्तक पर अपनी हीन पराजय।
मैं करता हूँ असफलताओं का संचय।
तुम एक बार तो मुझे देखकर हँस लो।
तब था पाने का अब खोने का अभिनय॥

मिटने ही को तो मैं बन कर आया हूँ।
मैं लुटा रहा हूँ जो कुछ मैं लाया हूँ॥

गीत



[हिन्दी के आधुनिक कवियों में श्रीयुत सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का अपना एक विशेष स्थान है। वे कवि ही नहीं काव्य-मर्मज्ञ और वेदान्ती भी हैं। हिन्दी में वे गीतों के प्रवर्तक माने जाते हैं। 'सरस्वती' के लिए उन्होंने दो गीत भेजे हैं। पाठक उनका आनन्द लें।]

(१)

निशिदिन तन धूलि में मलिन;
क्षीण हुआ मन छन छन, छिन छिन।
ज्योति में न लगती रे रेणु;
श्रुति-कटु स्वर नहीं वहाँ,
वह अछिद्र वेणु;
चाहता, बनूँ उस पग-पायल की रिन रिन।
व्यर्थ हुआ जीवन यह भार;
देखा संसार, वस्तु
वस्तुतः असार;
भ्रम में जो दिया, ज्ञान में लो तुम गिन गिन!

लेखक, श्रीयुत सूर्यकान्त त्रिपाठी
"निराला"

(२)

घन, गर्जन से भर दो वन,
तरु-तरु पादप-पादप तन।
अब तक गुञ्जन-गुञ्जन पर
नाचीं कलियाँ, छवि निर्भर;
भौंरों ने मधु पी पीकर
माना, स्थिर मधु-ऋतु कानन।
गरजो, हे मन्द्र, वज्र-स्वर,
थर्राये भूधर-भूधर,
झरझर-झरझर धारा झर
पल्लव-पल्लव पर जीवन।
दुर्दम वर्षा-वर्षण पर
जीवित हो हर्ष वर्ष भर,
जन-जन को कोमल-तन कर
दो हे विप्लव के सावन!

धन की शोभा

लेखक, श्रीयुत आत्माराम देवकर

श्रीयुत आत्माराम देवकर महाराष्ट्र हैं। परन्तु आप का हिन्दी से विशेष प्रेम है। सामाजिक जीवन की छोटी छोटी और सरल कहानियाँ लिखने में आप सिद्ध-हस्त हैं। इस कहानी में आपने भातृ-प्रेम का सुन्दर ढङ्ग से चित्रण किया है।

(१)

ठेकेदार किशनचन्द बुद्धिमान और दूरदर्शी थे। मुक्त-हस्तता भी उनमें पर्याप्त थी। जब देने के लिए हाथ उठाते तब किसी प्रकार की कसर न रखते थे। पर उनमें एक बड़ा दुर्गुण यह था कि वे जिस बात की हठ पकड़ लेते उसे पूर्ण करके ही रहते थे। इसी से शील और नम्र होने पर भी लोग उन्हें कठोर समझते थे। मुनीम-गुमाश्ते सदा चौकन्ने रहते थे। उनके मुख से निकले हुए शब्द 'ब्रह्म-वाक्य' थे। नौकर-चाकर सबसे पहले उनकी मौखिक आज्ञा का पालन करने में सदा सतर्क रहते थे। उनके आसामी उनसे बहुत कम मिलते-जुलते थे। यों तो वे कभी किसी से तक़ाज़ा नहीं करते थे, पर जिसके लिए मुँह से निकल आया कि हिसाब चुकता कर दो उसे तत्काल रुपयों का प्रबन्ध करना पड़ता था। घर के लोग भी उनसे सशंक रहते थे। जिस दिन उन्हें इच्छित वस्तु भोजन के थाल में नहीं दीखती थी, उस दिन सब पर मानो शनिदेव की कुदृष्टि आ जाती थी। उस दिन ठेकेदार साहब की एकादशी हो जाती थी। सृष्टि की रचना ही ऐसी है। जिसमें चार गुण रहते हैं उसमें उन गुणों को छिपानेवाला कोई न कोई अवगुण भी पाया जाता है। लक्ष्मी के प्रताप से वह भले ही छिपा रहे, पर कसौटी पर घिसने से उसकी झलक स्पष्ट दिख जाती है।

(२)

देवकी किशनचंद की छोटी बहन थी। वह उसी नगर में व्याही गई थी। उसके पति का नाम चंपालाल था। चंपालाल एक छोटी-सी दूकान करते थे और उसकी आय से अपनी जीविका चलाते थे। चार-पाँच वर्ष तक उन्हें किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। किन्तु इसके बाद गृहस्थी का खर्च बढ़ जाने से उनकी दशा चिन्तनीय हो उठी। एक दिन उनसे स्त्री ने कहा—"इस थोड़ी-सी आय से कितने दिन काम चलेगा ? आप दूकान के बढ़ाने की चेष्टा क्यों नहीं करते ?"

चंपालाल ने कहा—"द्रव्य के बिना कुछ नहीं हो सकता। मैं उसे अब तक अपने बुद्धि-बल और अनुभव के सहारे चलाता रहा हूँ। पर उथले कुएँ की पेंदी कब तक ढँकी रह सकती है ?"

उत्तर सुनकर देवकी का मुख निष्प्रभ हो गया। उसने रुक कर कहा—"तब भैया से क्यों नहीं कहते ? वे क्या आपकी सहायता नहीं करेंगे ?"

चंपालाल ने तीव्र दृष्टि से देवकी की ओर देख कर कहा—"ऐसी बात फिर मुँह से न निकालना।"



कुमारी अमलानन्दी—सन् १९३१ में आपने पेरिस इंटरनेशनल कलोनियल एग्ज़िबीशन में प्राचीन भारतीय नृत्य का प्रदर्शन करके समस्त योरप में ख्याति प्राप्त की है। बाद में उदयशंकर के साथ आपने योरप के दो सौ शहरों में नृत्य का अभिनय किया था।



कुमारी प्रभावती शालग्राम और मास्टर नरेन्द्र जिन्होंने हाल में अपने संगीत से प्रयाग-निवासियों को मुग्ध किया।



बम्बई में नवरात्र के उत्सव में गुजराती लड़कियों का गर्बा-नृत्य।



(बाईं ओर)। ये चित्र बम्बई में आपके हाल में विलायत से वापस आने पर जहाज़ से उतरने के बाद का है। दाहनी ओर सर सिकन्दर हयातखाँ (रिज़र्व बैङ्क आफ़ इंडिया के स्थानापन्न गवर्नर) हैं।



कुमारी आशा ओझा जिनके आश्चर्यजनक नृत्यों के कारण प्रयाग का गत संगीत-सम्मेलन बहुत सफल समझा गया।



लेफ़्टिनेंट कर्नल राव बहादुर ठाकुर कोकसिंह इन्स्पेक्टर जेनरल पुलिस, ग्वालियर, जिनका हाल में ही स्वर्गवास हो गया।



कराची की कुमारी विश्वनी जगासिया जिन्होंने कवीन्द्र रवीन्द्र की ७४ वीं वर्ष-गाँठ के अवसर पर कराची-संगीत-सम्मेलन में भाग लिया। संगीत में आपने दो बार ट्राफ़ी जीती है।



...र स्पेन्डर (बाईं ओर) और डाक्टर सी० वारेन—...रेस्ट पर्वत पर चढ़ाई करनेवाले दल के दो सदस्य। ये हाल में स्वदेश वापस गये हैं।



कुमारी लीला रेड्डी (दाहनी ओर) और कुमारी मोहिनी रे... हैदराबाद की दो सुन्दरी युवतियाँ। उनमें प्रथम डाक्टरी और दूसरी क़ानून पढ़ने विलायत गई हैं।



एवरेस्ट पर चढ़नेवाले दल के नेता मिस्टर सिफ़्टन दाहनी ओर और डाक्टर विग्राम। ये भी अपने देश को लौट रहे हैं, पर सन् १९३६ की चढ़ाई में फिर भाग लेंगे।



भारत-सरकार के नये शिक्षा-मंत्री सर जगदीशप्रसाद और लेडी जगदीशप्रसाद, जो हाल में विलायत गये हैं। इसके पूर्व आप संयुक्त-प्रान्त के होममेम्बर थे। आपका यह चित्र बम्बई में जहाज़ पर चढ़ते समय लिया गया था।



सर चिमनलाल सीतलवाद (मध्य में) हाल में अपनी विलायत की यात्रा समाप्त करके लौटे हैं।

देवकी ने विस्मित होकर कहा—"क्यों, आपने उन्हें कभी परोपकार से पश्चात्पद होते हुए देखा है?"

चंपालाल ने इतस्ततः करते हुए कहा—"मैं यह बात नहीं कहता। परमात्मा ने उन्हें हृदय अवश्य दिया है, और वह उनके लिए भूषणीय है। पर वे धुन के पक्के हैं। जो जी में आया, कर बैठते हैं।"

देवकी ने आश्वस्त स्वर से कहा—"कर बैठते हैं, पर मेरे स्नेह-बन्धन को तो एकदम तोड़ नहीं सकते। ऐसा दुस्साहस उन्होंने कभी नहीं किया।"

चंपालाल हँसकर बोले—"तब तुम्हीं क्यों न इसका बीड़ा उठाओ? तुम्हें किस बात का संकोच है?"

देवकी ने नीचा सिर करके उत्तर दिया—"संकोच तो नहीं है। पर आप जाते तो और ही बात होती। वे अपना मन भी भर लेते। समझे?"

चंपालाल ने कुछ सोचकर कहा—"अच्छा, ऐसा ही करूँगा।"

देवकी की कल्पना के चित्र-पट पर आशादेवी की धुँधली मूर्त्ति दिख गई।

(३)

किशनचंद बैठकखाने में बैठे हुए थे।

चंपालाल ने जाकर अन्य पुरुष के रूप में देवकी की प्रार्थना उन्हें सुना दी। वे सुनकर चुप हो गये। चंपालाल को कुछ और कहने का साहस न हुआ। मुनीम-गुमाश्ते भी मौनावलम्बनपूर्वक उनके मुख से निकलनेवाले चुने हुए शब्दों की प्रतीक्षा करने लगे।

थोड़ी देर में निस्तब्धता को भंग करते हुए किशनचंद ने कहा—"आप जानते ही हैं कि रुपया-पैसा मन में मैल डाल देता है। उससे चिरकाल के अर्जित स्नेह और संकोच की मर्यादा क्षण भर में टूट जाती है।"

चंपालाल ने उत्तर दिया—"भगवान की दया से यह नौबत न आने पायेगी।"

किशनचंद अँगड़ाई लेकर गम्भीर स्वर से बोले—"इसका कोई निश्चय नहीं। अच्छा, आपको कितना रुपया चाहिए?"

चंपालाल ने शीघ्रता से कहा—"दो हज़ार।"

किशनचंद ने पूछा—"आप कितने समय में चुका देंगे?"

चंपालाल ने उत्तर दिया—"दो वर्ष में कुल रुपया चुका दूँगा।"

ठेकेदार साहब ने मुस्कराकर कहा—"दूर तक सोच लीजिए। आगे की बात कौन जानता है? यदि समय पर आप रुपयों का प्रबंध न कर सके तो?"

चंपालाल ने दृढ़ता से कहा—"तब दूकान आपकी हो जायगी। मैं आपका मन भरने के लिए पक्की लिखा-पढ़ी कर दूँगा।"

ठेकेदार साहब ने उपदेश के रूप में कहा—"देखिए, फिर भी आपसे कहता हूँ कि इस झगड़े में न पड़ें। मेरी तो यही राय है कि आप अपनी वही छोटी-सी दूकान चलाये चलें। थोड़ी-बहुत सहायता जो मुझसे बन पड़ेगी, समय समय पर करता रहूँगा।"

चंपालाल ने शान्त भाव से कहा—"आप चिन्ता न करें मैं सब बातें पहले से ही सोचकर यहाँ आया हूँ।"

किशनचंद ने उच्च स्वर से कहा—"इसके लिए मैं आपसे तकाजा नहीं करूँगा।"

चंपालाल ने मस्तक हिलाकर कहा—"आपका कहना ठीक है। मैं समझ गया।"

किशनचंद बोले—"तब आपकी इच्छा। मुनीम जी, इन्हें रुपये देकर लिखा-पढ़ी करा लीजिए।"

(४)

लोग कहते हैं कि लक्ष्मी के पास लक्ष्मी आती है। पर मुझे उनका यह कथन ठीक नहीं जँचता। लक्ष्मी उद्योग की दासी है, सम्पत्ति की नहीं। ऐसा ही होता तो सम्पत्तिवानों को कभी दरिद्रता का सामना ही न करना पड़ता। सौभाग्य उद्योग का ही प्रतिफल है। जन्मान्तरवाद से भी यही बात सिद्ध होती है।

चंपालाल प्रतिष्ठा और प्रभुत्व के इच्छुक थे। वे चाहते थे कि नौकरों से काम लें और आप तकिया लगा कर बैठें। सुख किसे बुरा लगता है! मेहनत

से कमाना-खाना बहुत कम मनुष्यों को पसन्द है। 'सहे वेध बन्धन सुमन तव गुण संयुत होय'—इस सुन्दर नीति के अनुयायी इने-गिने ही होते हैं। अस्तु, चंपालाल के पहले के वे सब विचार बदल गये। पास में पैसा आने से उन्हें हरा ही हरा सूझने लगा। देवकी ने किशनचंद की प्रकृति का स्मरण दिलाकर उन्हें सचेत करना चाहा, पर कुछ फल न हुआ। वे समझते थे कि यदि रुपया समय पर न भी चुका सका तो ठेकेदार साहब अवधि बढ़ा देंगे। कम से कम देवकी के लिए तो उन्हें ऐसा करना ही पड़ेगा। यह उनकी स्वार्थान्धता थी। ठेकेदार साहब बहन-बहनोई से बराबर मिलते-जुलते थे। पर कभी रुपयों के लिए मुँह से एक शब्द भी नहीं निकालते थे। निदान जिस बात की आशंका थी वही हुई! चंपालाल निर्धारित समय पर रुपया न चुका सके। लज्जा के मारे उन्होंने किशनचंद के यहाँ का आना-जाना बन्द कर दिया। देवकी भी संकोच करने लगी।

मियाद के खत्म होने के एक माह के बाद ठेकेदार साहब ने नालिश करके दूकान कुर्क करवा ली। देवकी का मोह-बन्धन भी तोड़ दिया। दोनों से उन्हें आन्तरिक घृणा हो गई। वे उनके नाम से नाक सिकोड़ते थे। सच है, मीठे फल में ही कीड़े पड़ते हैं।

चंपालाल के पास जीविका का कोई अब ठाँव न रहा। गहना बेचकर उन्होंने कुछ दिन बिताये। पर जब कुछ न रहा तब दूसरे की नौकरी करने लगे। जठर-ज्वाला तो किसी प्रकार शान्त करनी ही पड़ती है।

(५)

श्रावण की पूर्णिमा थी। पास-पड़ोस की सभी बहनें, भाइयों को राखी बाँध रही थीं। देवकी का हृदय शून्य था। वह किसे राखी बाँधती? किशनचंद के सिवा उसके पीहर में कोई नहीं था। संसार का यह माया-बन्धन टूट ही चुका था। इसी से उसे आज का यह प्रेम-पर्व प्रतारणा-पूर्ण प्रतीत हो रहा था। वह मन ही मन सोचती थी—क्या इस वर्ष मैं भाई के राखी न बाँध सकूँगी? उनके पास जाने से मुझे अपमानित और लांछित होना पड़ेगा। पर इससे मेरा क्या घट जायगा? वे भले ही राखी न बाँधने दें, पर मैं उनके पास अवश्य जाऊँगी। मैं उनसे कुछ न लूँगी, खाली राखी बाँध दूँगी। न बँधवायेंगे तो रखकर चली आऊँगी। मेरा दस्तूर हो जायगा। लोग हँसेंगे तो हँस लेंगे। वे हठी अवश्य हैं, पर हृदय-हीन नहीं हैं। मैं उनके स्वभाव को जानती हूँ। पत्थर-सा कठोर और मोम-सा कोमल।

ऐसा विचार मन में आते ही उसके हृदय में साहस का संचार हुआ। वह ठंडी साँस लेकर उठ खड़ी हुई और राखी को कपड़े में छिपा लोगों की दृष्टि बचाती हुई किशनचंद के पास पहुँची। वे आरामकुर्सी पर बैठे हुए समाचार-पत्र पढ़ रहे थे।

देवकी के अंग पर कुछ न था। आभूषण के नाम से दोनों हाथों में काँच की दो दो चूड़ियाँ थीं। काँपते हुए नंगे हाथों में भ्रातृ-स्नेह के निदर्शक दिव्य रक्षा-सूत्र को देखकर किशनचंद का हृदय पिघल उठा। प्रेम के अजस्र स्रोत ने उनके संकल्प एवं हठ-धर्म्म के प्रबल बाँध को तिनके की नाईं तोड़कर फेंक दिया। वे उसी क्षण उठकर बहन के गले से लिपट गये और बच्चे की नाईं रोने लगे।

देवकी ने कहा—"भैया, मैं तुम्हारी अपराधिनी हूँ। मुझे क्षमा करो। तुम मेरे पिता के समान हो। तुम्हें छोड़कर कहाँ जाऊँगी?"

किशनचंद ने बहन के पैरों पर गिर कर कहा—"परमात्मा के लिए क्षमा करो। मुझे ऐसी बातों के सुनने का अभ्यास नहीं है। मैंने दो हज़ार के लिए दूकान कुर्क करवाकर तुम्हें निराधार कर दिया था। आज उसके बदले चार हज़ार देकर मैं अपनी भूल का संशोधन करता हूँ।"

देवकी के नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग गई। उसने हिचकियाँ लेते हुए कहा—"भगवान् तुम्हारा भला करें। भैया, धन की शोभा धर्म्म से ही है।"

—

विवाह की कुछ और विचित्र प्रथायें

लेखक, श्रीयुत मार्कण्डेय वाजपेयी, एम० ए०, एल-एल० बी०

भारत के उत्तर में हिमालय के परे तिब्बत का देश है। वह देश बौद्ध-धर्म का केन्द्र है। वहाँ के दलाई लामा विश्व-विख्यात हैं। भारत की ही भाँति तिब्बत भी धर्मान्धता और रूढ़ियों का दास है. पग पग पर धर्म है। पर एक बड़ी विचित्र बात यह है कि वहाँ विवाह का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। विवाह न तो धार्मिक संस्कार है और न पुरोहितों का उसमें कोई दख़ल है। विवाह की जो प्रथा प्रचलित है वह बड़ी आसान है। जो भी व्यक्ति विवाह करना चाहता है वह अपने मित्रों के साथ अपनी प्रेमिका के तम्बू में घुस जाता है और उसे उठाकर घोड़े पर बिठा लेता है और वहाँ से चल पड़ता है। लड़कीवाले बड़ा शोर मचाते हैं और बन्दूकें दागते हुए उसका पीछा करते हैं। फिर दोनों दल साथ बैठकर खाते हैं और शराब पीते हैं। बस, इतने से ही वर-वधू का विवाह हो जाता है, और कुछ टीम-टाम की ज़रूरत नहीं होती। तीन दिन तक वर-वधू साथ साथ रहते हैं। यदि वधू को अपना पति नहीं पसंद होता तो वह चौथे दिन अपने पिता के तंबू को लौट जाती है और विवाह-सम्बन्ध टूट जाता है। लड़की का मोल वहाँ के लोगों की निगाह में इससे घटता नहीं, वरन बढ़ जाता है। अमरीका में तो अब प्रस्ताव हो रहे हैं कि शादी से पहले थोड़े दिन वर और वधू को साथ रहना चाहिए और अगर इस बीच में दोनों में निभ जाय तो शादी होनी चाहिए। पर तिब्बत में तो तीन दिन हमेशा इस काम के लिए मिलते आये हैं। तलाक़ भी तिब्बत में बड़ा सीधा-सादा है। पत्नी अपने पिता के घर चली गई और वहाँ से नहीं लौटी। बस तलाक़ हो गया। श्रीयुत हेरिसन फ़ार्मन बरसों तिब्बत में रहे हैं और उन्होंने बड़े ग़ौर से वहाँ के रवाजों को देखा है। उनका कथन है कि तलाक़ के इतना आसान होते हुए भी वह वहाँ बहुत ही कम देखने में आता है। तिब्बत में संतान पिता के नाम से नहीं पुकारी जाती है, बल्कि वह माता की संतान कही जाती है। तिब्बत की विशेषता यह है कि वहाँ हर तरह के विवाह प्रचलित हैं और सब जायज़ माने जाते हैं। एक पति और एक पत्नी, एक पति और कई पत्नियाँ, एक पत्नी और कई पति, कई पति और कई पत्नियाँ ये सब जायज़ हैं। और इसके साथ थोड़े दिनों के लिए भी शादी होती है, जैसे शिया मुसलमानों में मुताह होता है। तीन दिन यह देखने को मिलते ही हैं कि मियाँ-बीबी में पटती है या नहीं। शादी के इतने तरीक़े एक साथ ही संसार के और किसी भी देश में न मिलेंगे।

तिब्बत में बहुतेरे रईस कई पत्नियों से विवाह कर लेते हैं। यह भी बहुत प्रचलित है कि एक पत्नी दो या तीन भाइयों के बीच में हो, जैसे द्रौपदी के पाँच पति भारत में थे। इसका कारण तिब्बत की हीन आर्थिक अवस्था है। दो या तीन भाइयों के एक ही पत्नी होने से लड़के जितने भी होते हैं, पत्नी के कहलाते हैं और संपत्ति का बँटवारा नहीं होता। एक कारण यह भी है कि उतनी ऊँचाई पर लड़के कम होते हैं, और औरतों का यह विश्वास है कि कई पति होने से लड़के ज़रूर होंगे। फिर तिब्बत में याक और भेड़ों के झुण्ड चराने के लिए लड़कों की बड़ी आवश्यकता रहती है। एक और कारण इस तरह के विवाह का यह है कि तिब्बत के पुरुषों को व्यवसाय के लिए बड़ी लंबी यात्रायें करनी पड़ती हैं। उनमें अक्सर महीनों लग जाते हैं। एक भाई यदि ऐसी ही यात्रा पर जाता है तो



[एशियाई यहूदी विवाह के बाद मछली के ऊपर से कूदते हैं]

दूसरा भाई घर सँभालता है और जब उसकी भौजाई उसकी पत्नी भी होती है तब वह जी लगाकर काम भी करता है। उधर जो भाई यात्रा पर गया होता है उसे अक्सर महीनों बाहर रहना पड़ता है। तिब्बत में रेल नहीं है और सड़कें भी बहुत कम हैं। यदि बर्फ़ पड़ने लगी तो चलना असंभव हो जाता है। इसलिए परदेश में यात्री को स्त्री की आवश्यकता पड़ती है। थोड़े दिनों के लिए वह परदेश में ही ब्याह कर लेता है। तिब्बत-निवासी ऐसे विवाहों को बुरी निगाह से नहीं देखते हैं। यदि परिवार की आर्थिक स्थिति इस बीच में अच्छी हो गई तो एक पत्नी के स्थान पर दो अथवा तीन पत्नियाँ ब्याह ली जाती हैं। पर प्रत्येक भाई की प्रत्येक पत्नी एक समान ही पत्नी होती है। यह नहीं होता कि एक भाई की एक ही पत्नी हो। इस भाँति कई पति और कई पत्नियाँ हो जाती हैं। संतान पारिवारिक संतान होती है, व्यक्तिगत संतान नहीं। इस तरह का परिवार भारतीयों के परिवार से कहीं अधिक शक्तिशाली होता है और बँटवारे की शायद ही कभी आवश्यकता पड़ती हो।

तिब्बत में विवाह एक आर्थिक अथवा व्यावसायिक संस्था है, धार्मिक संस्कार नहीं। तिब्बत की स्त्रियाँ कई पति वरण करने को बाध्य नहीं की जाती हैं। वे इस प्रणाली को स्वयं पसंद करती हैं। उनकी समझ में यही नहीं आता है कि जिस स्त्री के एक ही पति होता है वह अपने पति के लंबी यात्रा पर चले जाने पर निर्वाह कैसे करती है। हम लोगों को तिब्बत का इस प्रकार का विवाह अजीब मालूम हो सकता है, पर तिब्बतवाले उसी में बड़े सुखी हैं और ऐसा विवाह उनकी आर्थिक दशा के बहुत अनुकूल है। उन्हें पाप या भ्रष्टाचार का इस विषय में अनुबोध नहीं होता, और ठीक भी है। आचार-विचार और प्रथायें समय और परिस्थिति पर निर्भर हैं। भारतवासियों की तरह यह विश्वास करना कि जो हम करते हैं या कहते हैं वही ठीक है और बाक़ी सब ग़लत है, केवल मूर्खता और कूपमंडूकता है।

विवाह की कोई एक प्रथा सर्वव्यापी नहीं कही जा सकती। देश, काल और जाति के अनुसार प्रथायें बनती और बिगड़ती चली जाती हैं। अक्सर यह होता है कि सिद्धान्त एक ही होता है, पर भिन्न भिन्न देशों में वह भिन्न भिन्न प्रकारों से चित्रित किया जाता है। उदाहरण के लिए एक सिद्धांत यह है कि शुभ कार्य में अनिष्ट से बचाने का प्रयत्न किया जाय। सब देशों में यह समझा जाता है कि विवाह के समय अशुभ शक्तियाँ अपना कारोबार ख़ास तौर से जारी रखती हैं और उनसे बचने के लिए हज़ारों टोटके किये जाते हैं। वधू का भूमि पर पैर

रखना विशेषतया अशुभ समझा जाता है, क्योंकि लोगों का ख़याल है कि उसका पैर ज़मीन पर पड़ते ही पाताल से दानव उसके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। मुसलमानों में तो आज भी यह धारणा प्रचलित है कि ऐसी वधू के बच्चे दानव होते हैं। मोरक्को में वर वधू को गोद में उठाकर मकान के भीतर घुसता है। चीन, पेलेस्टाइन, मिस्र, प्राचीन रोम और ब्रिटेन तथा बहुत-से अन्य आधुनिक योरपीय देशों में इसी प्रथा का साम्राज्य है अथवा रहा है। वेल्स में गिरजाघर से विवाह के उपरांत लौटने पर वधू बहुत सँभाल कर मकान की देहरी के ऊपर से उठाकर मकान के भीतर ले जाई जाती है, क्योंकि वधू के लिए देहरी पर या उसके आस-पास पैर रखना बहुत ही अशुभ और अनिष्टकारी समझा जाता है। स्काटलैंड में भी अभी हाल तक नववधू देहरी या पहली सीढ़ी के ऊपर से उठाकर ले जाई जाती थी, जिसमें उसे किसी की नज़र न लगे और उस पर किसी का जादू न चले। बहुत-से देशों में वधू को उठाकर ले जाने के बजाय उसे देहरी पर पैर न रखने का आदेश दिया जाता था। भारत में भी वधू को यही आदेश मिलता था, और यह वधू तक ही सीमित नहीं है। बहुत-से देशों में वर को भी इसी तरह गठरी बनाकर वधू के घर के भीतर ले जाते हैं। भारत में ही वधू का मामा वर को गोद में उठाकर भीतर ले जाता है। नज़र लगना बचाने के लिए भारत में भी वर को कजरविलौटा बना कर घर से निकालते हैं। इन सब प्रथाओं का जन्म असभ्य काल में हुआ था। बाहर के उजेले से एकदम घर के अँधेरे में पहुँचते ही आदमी एक बार सहम उठता था। भूत, प्रेत, दानव, जिन्न इन सबका भय उसे पग पग पर सताता था, जादू टोना उसके जीवन का त्रास था। मकान उस ज़माने में ठीक तरह सूर्य के दर्शन भी न करते थे। ऐसी दशा में वह घर के भीतर पैर रखते कैसे न सहम जाता? कुटियों के काल में यह भी भय था कि भीतर कोई



[मोरक्को में]

जंगली जानवर न घुस आया हो कि घर में घुसते ही आदमी पर दौड़ पड़े। इसी लिए इन सब भयानक बातों से बचने के लिए यह अधिक अच्छा था कि वर-वधू भीतर उठा कर ले जाये जायँ। धीरे धीरे मनुष्य सभ्य हो चला, गृह उसका गढ़ बन चला, पर रूढ़ियाँ और कूट कूट कर भरे हुए विचार उसे विवश किये रहे और कारण न समझ में आने पर भी ये कार्य बराबर होते रहे। आज भी हज़ारों पढ़े-लिखे आदमियों के मुँह से मुझे स्वयं सुनने को मिलता है कि "अमुक घर मुझे फला है", "अमुक घर अशुभ है, उसे छोड़ दो" इत्यादि। तब विवाह में इस तरह की नासमझी की बातें क्यों न की जावें? धर्म-संस्कार तो बड़ी ही कठिनाई से परिव-

र्तित हुआ करते हैं। मोरक्को में वधू और वर की दाहनी चट्टी में सुई अथवा थोड़ा-सा नमक भूतों से बचाव के लिए रख दिया जाता है। नार्वे, स्वीडन और अन्य अनेक देशों में जूतों में सिक्के इसी लिए रख दिये जाते हैं कि वर-वधू जादू-टोने से सुरक्षित रहें।

इंग्लेंड, स्काटलेंड, डेनमार्क, राइन नदी के किनारे (जर्मनी इत्यादि), ट्रांसिलवानिया के जिप्सियों और प्राचीन यूनानियों में यह प्रथा प्रचलित पाई जाती है कि वर-वधू पर पुराने जूते फेंके जाते हैं। अधिकांश देशों में नवदंपति पर यह विचित्र बौछार गिरजाघर से शादी के बाद निकलने पर या शादी की दावत से उठने पर होती है, पर कहीं कहीं वर और वधू पर अलग अलग भी यह बौछार होती है जैसा कि आइल आफ़ मैन नामक टापू में इसका रवाज था। इस प्रथा के कई कारण बताये गये हैं। कहा जाता है कि इससे भाग्योदय की कामना प्रदर्शित होती है अथवा मातृत्व में यह प्रथा सहायक होती है अथवा ऐसा करने से जादू-टोने से बचाव होता है। यह भी कहा गया है कि यह प्रथा उस जमाने की है जब वर वधू को उठाकर ले जाया करता था और वधू के सम्बन्धी लड़ाई की नक़ल करते हुए वर पर जूते फेंका करते थे। यह भी सम्भव है कि ये जूते पहने हुए जूतों के अलावा जादू से राह चलने में पद-त्राण बनते समझे गये हों, जो जमीन छूने से वर-वधू को बचायें। मोरक्को में वर-वधू इसका बड़ा खयाल रखते हैं कि उनकी चट्टियाँ कहीं खिसक कर गिर न पड़ें और चीनी वधू ज़मीन से स्पर्श बचाने के लिए अपने पिता के जूते पहना करती हैं। पृथ्वी के स्पर्श होते ही भूतों के अंग में घुस आने का डर रहता है!

इसी भाँति को जादू-टोने की एक प्रथा का मंशा वधू को फलवती (माता) बनाना है। हिन्दुओं में नव-दंपति के ऊपर मंडप के नीचे अनाज फेंका जाता है। अनाज, मिठाई, फल इत्यादि इस भाँति बरसाने की प्रथा बहुत प्रचलित है। भारत के अलावा, हिन्द-चीन, मलयद्वीप-समूह से लगाकर अटलांटिक महासागर तक यह प्रथा पाई जाती है। सभी योरपीय देशों में चावल और मिठाई वर-वधू पर बरसाई जाती है। प्राचीन ग्रीस में वर के घर में घुसते ही वधू चूल्हे के सामने ले जाई जाती थी और उस पर खजूर, अंजीर, मेवा, छोटे छोटे सिक्के इत्यादि बरसाये जाते थे। स्लैवोनिक देशों में अनाज इत्यादि वर-वधू के जुलूस पर फेंका जाता है। फ्रांस में गेहूँ बरसाया जाता है और वधू का स्वागत तीन रोटियों से किया जाता है। इँग्लेंड में चावल के अलावा गेहूँ भी वधू पर फेंका जाता था। ब्रिटेन में बहुत-सी जगहों में रोटियाँ वधू के सिर के ऊपर तोड़ कर गिराई जाती हैं और उनके नीचे गिरते ही लोग उन पर टूट पड़ते हैं, क्योंकि उन टुकड़ों का खाना बड़ा शुभ समझा जाता है। रोम में वर मेवा बिखराता हुआ चलता है। यह सब इसलिए किया जाता है कि वधू फलवती हो। जैसे अनाज और फलों के बीजों से और अनाज और फल उत्पन्न होते हैं, इसी भाँति स्त्री से पुत्र और पुत्रियाँ उत्पन्न होती हैं। इसी लिए ये चीज़ें नव दंपति पर फेंकने से वधू जादू से फलवती बनती हुई समझी जाती है। मोरक्को में यह कहा जाता है कि जो खजूर, अंजीर और किशमिश इत्यादि वधू पर फेंका जाता है वह उसे अपने पति के लिए मीठी बनाता है। मछली और अंडों का भी व्यवहार इसी काम के लिए किया जाता है। एशियाई यहूदियों में नव दंपति धर्म-संस्कार के अनन्तर तुरन्त ही मछलियों से भरी हुई एक बड़ी तश्तरी के ऊपर से तीन बार कूदते हैं। बहुत-सी मछलियाँ न हों तो एक जीवित मछली के ऊपर तीन छलाँगें मारी जाती हैं अथवा मछली के ऊपर सात बार आगे और पीछे चला जाता है। और यह प्रथा सन्तान-प्राप्ति के लिए प्रार्थना समझी जाती है। मोरक्को के यहूदियों में विवाह के दिन वर एक कच्चा अंडा वधू पर फेंकता

है और उसका अर्थ यह होता है कि संतान बहुत-सी और आसानी के साथ हो! पश्चिमी रूस के यहूदियों में वर अपनी वधू के सम्मुख एक अंडा रखता है और उसका यह अर्थ समझा जाता है कि जैसे मुर्गी आसानी से अंडा देती है, वैसे ही वधू के भी सरलता से संतान हो। स्वीडन देश के कुछ भागों में वधू अपने जूते के फीते खुले छोड़ देती है और उसका अर्थ यह लगाया जाता है कि जैसे खुले हुए जूते से पैर आसानी से निकल आता है, वैसे ही संतानोत्पत्ति में वधू को कोई कष्ट न हो। वहाँ यह भी होता है कि गिर्जाघर से लौटकर वधू घोड़े से तुरन्त ही उतरती है, घोड़े की बाग फ़ौरन निकाल लेती है, घोड़े को नाक पर मारती है और उसका साज ढीला करती है। इससे भी यह समझा जाता है कि वधू फलवती होगी और संतानोत्पत्ति में उसे कोई कष्ट न होगा।

ये सारी प्रथायें जादू-टोने के काल की हैं। हम लोग जादू-टोने से तो अब हटते चले जाते हैं, विज्ञान ने उसका स्थान ही अब मनुष्य-जीवन में नहीं छोड़ रक्खा है, पर अभी रूढ़ियाँ पुरानी ही चली जा रही हैं।

[नोट—मुझे इस लेख के और इससे पहलेवाले लेख के लिखने में, Nash Magazine तथा London Life से बहुत सहायता मिली है। इसलिए उन दोनों पत्रों के प्रति कृतज्ञता प्रकाश कर देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।—लेखक]

जीवन

लेखक, कुंवर सोमेश्वरसिंह, बी० ए०

है बँधा परिस्थितियों से,
जग की मेरा यह जीवन।
चलने है कभी न पाता,
वाञ्छित पथ पर उन्मन मन॥१॥

हैं निठुर सत्य से टकरा,
मिटतीं मंजुल आशायें।
उल्लास-सुमन को मुरझा,
जाती हैं विपुल व्यथायें॥२॥

हँसने है मुझे न देता,
जीवन का अविरल क्रन्दन।
सोने निर्विघ्न न देता,
बर्रों का मधुमय गुंजन॥३॥

मन को मृदु कहीं जगत का,
परिहास टोक जाता है।
सीमा का अकरुण शासन,
फिर मुझे रोक जाता है॥४॥

सुख का प्रवाह अनियंत्रित,
उर में जब बह जाता है।
कर्तव्य तभी कुछ मुझसे,
चुपके से कह जाता है॥५॥

है मुझे डुबो देता जब,
मेरा सुखमय पागलपन।
है चुटकी-सी ले जाती,
चेतना निपट निष्ठुर बन॥६॥

मेरी श्री बदरीनाथजी की यात्रा

लेखक, श्रीयुत रायबहादुर पण्डित राजनारायण मिश्र पी० सी० एस०

श्री बदरी धाम की यात्रा एक प्राचीन धार्मिक यात्रा है। यह यात्रा पाण्डवों के समय से अधिक प्रसिद्ध हुई है। वास्तव में हिन्दुओं के जीवन में यह एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। श्रीमान् मिश्र जी ने इस लेख में उसका ब्योरेवार वर्णन बड़े सुन्दर ढङ्ग से किया है।



सन् १९०१ में मैंने बी० ए० की परीक्षा दी थी। उस समय परीक्षा प्रयाग में ही होती थी। मेरे बड़े भाई पण्डित श्रीनारायण जी ने अपने मित्र पण्डित परमेश्वर जी शुक्ल के यहाँ मेरे ठहरने का प्रबंध किया था। पर अभाग्यवश शुक्ल जी किसी मामले में फँस गये थे और मुझे इलाहाबाद-स्टेशन पर नहीं मिल सके। मैं अपरिचित जगह में अपने साथियों की तलाश कर कटरे में ठहर गया। रोटी अच्छी तरह बनानी नहीं आती थी और कट्टरपन भी नहीं छोड़ना चाहता था। कच्ची-पक्की जैसी रसोई तैयार करता था, खा लेता था। परन्तु उसका असर तो होना ही था। मेरा पेट ख़राब हो गया और मुझे बुख़ार आ गया। दर्शन-शास्त्र का पर्चा मैंने घोर ज्वर में किया। मुझे यह भी न मालूम हुआ कि मैंने क्या लिखा है। इस कारण मुझे बड़ी चिन्ता रहती थी। मैं किसी परीक्षा में कभी फ़ेल नहीं हुआ था, इसलिए और भी फ़िक्र थी कि कहीं फ़ेल न हो जाऊँ। चिन्ता के कारण घर पर नहीं बैठ सकता था। भाई साहब ने हरद्वार जाने का प्रबन्ध कर दिया। स्वर्गीय चचा अवधनारायण जी भी मेरे साथ चले। हरद्वार में कई रोज़ रहकर कनखल, चंडीदेवी, भीमगोडा आदि स्थानों में देवताओं के दर्शन किये। फिर पैदल ऋषीकेश को चल दिया। राह में सत्यनारायण जी का मन्दिर पड़ा। वहाँ दर्शन करने में बड़ा आनन्द आया। मूर्ति बड़ी सुन्दर और चित्त को आकर्षित करनेवाली थी। ऋषीकेश में पहुँचकर नाथ जी के धर्मशाला में ठहरा। उस समय वहाँ केवल एक ही धर्मशाला और एक ही दूकान थी।

ऋषीकेश से एक रोज़ लक्ष्मणझूला गया। गंगा-स्नान करके जब झूला पर पहुँचा तब बड़ा डर मालूम हुआ। झूला बहुत ऊँचा था और हिलता भी था। मैं तो किसी तरह उसको पार कर गया, पर हमारे चचा अवधनारायण जी बग़ैर एक आदमी के सहारे उसके पार न जा सके। उस पार जाकर मैंने श्री बदरी विशाल की एक मूर्ति के दर्शन किये और दर्शन करते समय यह प्रण किया कि यदि मैं बी० ए० पास हो जाऊँगा तो श्री बदरीनाथ जी के दर्शन ज़रूर करूँगा।

१९०२ से अब तक बराबर दर्शन करने की इच्छा करता रहा, परन्तु कतिपय कारणों से मेरी इच्छा नहीं पूरी हुई। इस साल भी कुछ ऐसे काम आ पड़े थे कि यात्रा के होने की सम्भावना न थी, इसलिए चलने में देर हो गई।

मैं यात्रा-लाइन को अर्थात् हरिद्वार से केदारनाथ जी होते हुए बदरीनाथ जी नहीं गया। मैं नैनीताल से चला। वहाँ से रानीखेत पहुँचा। रानीखेत से चमोली जाने के दो रास्ते थे—एक द्वाराहाट होकर कर्ण-प्रयाग को जाता था, दूसरा गरुड़ होकर नन्द-प्रयाग को।

गरुड़ तक मोटर होने के कारण दूसरे रास्ते से जाने में २५ मील पैदल कम चलना पड़ता था। लेकिन गरुड़ से ग्वालदम तक तो कुछ सीधा रास्ता था। आगे बहुत

चढ़ाई और उतार था और रास्ते में ठहरने का भी कोई अच्छा प्रबन्ध न था, इसलिए मैंने सीधा दूर का रास्ता लिया। सवारी के लिए डाँडी और असबाब ले जाने को कुली किये। रानीखेत में सरकारी एजंसी है। लाला काशी-प्रसाद एजेंट हैं। वे सब प्रबन्ध कर देते हैं—कोई विशेष कष्ट नहीं होता।

मैं १-६-३५ को चला और द्वाराहाट में पहला पड़ाव हुआ। यह एक प्राचीन स्थान मालूम होता है। यहाँ बहुत-से पुराने मन्दिर हैं, जिनमें कुछ तो टूट-फूट गये हैं और कुछ अभी अच्छी दशा में हैं।

कहा जाता है, इस जगह को द्वारका बनाने का विचार किया गया था और रामगंगा, कोसी और गगास— ये तीनों नदियाँ यहाँ मिलनेवाली थीं। परन्तु कोसी की असावधानी के कारण ऐसा न हो सका। तब उन दोनों नदियों ने शाप दिया कि कोसी का जल नष्ट हो जाय और समुद्र तक न पहुँच सके। इस कारण कोसी रामनगर के खेतों में फैल कर वहीं समाप्त हो जाती है।

५½ बजे शाम को गाँव की सैर करने निकला। बँगले के बाहर ही ईसाइयों के बँगले थे। उनका एक अस्पताल और एक अँगरेज़ी मदरसा भी है। यहाँ ईसाई अच्छी तादाद में मिलते हैं।

गाँव में घुसते ही एक क़तार मन्दिरों की मिली। इन मन्दिरों में कोई मूर्ति नहीं है। पर ये मन्दिर सरकार की तरफ़ से सुरक्षित हैं। उनकी देख-भाल के लिए १०) माहवार पर एक आदमी नौकर है। इसके बाद मैं 'धज' देखने गया। 'धज' का अर्थ २ संख रुपया है। यह धज एक टूटा-फूटा मन्दिर है। इस मन्दिर की कारीगरी और मन्दिरों से कहीं ज़्यादा अच्छी है। इसकी कुर्सी बहुत ऊँची है और दरवाज़े पर एक बेल बनी है, जिसमें इधर-उधर दो शंख बने हुए हैं। यह मन्दिर मुझे हिन्दुओं का नहीं मालूम हुआ। यदि इसमें एक जगह गणेश जी की मूर्ति न होती तो मैं इसको जैन-मन्दिर मानता। कहा जाता है कि सरकार को किसी तरह यह ख़बर लगी कि इस मन्दिर में दो संख रुपया गड़ा हुआ है। सरकार ने मन्दिर के अन्दर चार-छः हाथ खोदवाया। खोदने पर बड़े बड़े साँप निकलने लगे तब उसको बन्द कर दिया और चारों तरफ़ ज़मीन साफ़ करके उसे घेर दिया। यह भी अब सुरक्षित यादगार है। बदरीनारायण जी का एक मन्दिर यहाँ भी है।

बाज़ार तो मामूली और पहाड़ी बाज़ारों की तरह है। कोई सब्ज़ी या फल नहीं मिल सका। लौटते समय मुझे द्रोणागिरि पर्वत दिखलाया गया। यह द्वाराहाट से लगा हुआ है और वहाँ की देवी जी की आरती के घंटे का शब्द मैं डाकबँगले से सुन सकता था। परन्तु वह पर्वत इतना ऊँचा था कि ६ या ७ मील चले बिना वहाँ पहुँचना सम्भव नहीं था। यह वही पर्वत है, जहाँ से हनुमान् जी लक्ष्मण जी के बचाने के लिए अपने उड़न-खटोला पर संजीविनी आदि बूटियाँ ले गये थे। यह पर्वत बहुत सुन्दर और हरा-भरा है। खेद है, मैं इसको देखने नहीं जा सका।

द्वाराहाट से चलकर दूसरे दिन मैं गनाई पहुँचा। इसको चौखुटिया भी कहते हैं। यह स्थान रामगंगा के किनारे है और रमणीक है। परन्तु यहाँ गरमी बहुत थी और ३ बजे तो लू चलती थी! यहीं से कुछ यात्री सीधा रामनगर चले जाते हैं और वहाँ से आर० के० आर० लाइन पर सवार हो जाते हैं और कुछ रानीखेत चले जाते हैं और वहाँ मोटर पर चढ़ काठगोदाम-स्टेशन पर पहुँच जाते हैं। रानीखेत जाने में यात्रियों को ३० मील कम पैदल चलना पड़ता है, परन्तु गगास नदी से रानीखेत तक ५½ मील की चढ़ाई थके हुए यात्री को मार डालती है। गगास में घोड़े और डाँडियाँ मिल सकती हैं।

तीसरे दिन का पड़ाव लम्बा था। १५ मील चलकर लोहबा मिला। द्वाराहाट से गनाई तक रास्ता क़रीब क़रीब चौरस था। ऐसा ही रास्ता ६ मील और मिला। उसके बाद चढ़ाई शुरू हुई। सबसे ऊँची जगह पर पहुँचते ही एक कुली के कंधे से डाँडी का डंडा सरक गया और डाँडी धम से गिर पड़ी। पर कोई चोट नहीं आई। यहाँ से उतार शुरू हुआ और एक मील नीचे मेलचौरी मिला।

मेलचौरी ही तक बहुधा हरिद्वार या देवप्रयाग के

लिये हुए कुली आते हैं। यहाँ से रानीखेत या रामनगर को दूसरे कुली और डाँडी लेनी पड़ती है।

रास्ते में बहुत-से यात्री मिले। उनमें अधिकतर स्त्रियाँ थीं। वे बहुत थकी हुई थीं। मुकाम पर पहुँचने के लिए फिर चढ़ाई मिली। ३ या ४ ही फ़र्लांग में धूप के समय मेरे आदमियों की सब गति हो गई। पर मुकाम ठंडा था। वहाँ जाकर आराम मिला।

शाम को मैं चट्टियाँ देखने गया। यहाँ चट्टी बनिये की दूकान को कहते हैं। यह कहीं दो मंज़िला होती है, कहीं एक मंज़िला। रास्ते भर में एक-एक, दो-दो मील पर बराबर चट्टियाँ मिलती जाती हैं। कोई चट्टी साफ़-सुथरी, कोई गंदी होती है। यात्री लोग यहीं खाना पकाते हैं और नज़दीक ही पाखाना-पेशाब भी करते हैं। इस कारण यात्रा-मार्ग में मक्खियाँ बहुत ज़्यादा हो गई हैं। इसी लिए गढ़वाल-ज़िले के सरकारी अफ़सर जहाँ तक बन पड़ता है, यात्रा-मार्ग को छोड़कर चलते हैं। यात्रा-मार्ग में खाने-पीने का सामान भी महँगा मिलता है, चीज़ें भी अच्छी नहीं मिलतीं। जो यात्री अपने साथ खाने-पीने का सामान ले जाना चाहते हैं उनको कुली-भाड़ा तो देना ही पड़ता और ठहरने को जगह भी नहीं मिलती, क्योंकि बनिया उन्हीं को ठहरने देते हैं जो उनके यहाँ सामान खरीदते हैं, इसी लिए यात्री लोग अपने साथ सामान नहीं ले जाते हैं।

४-६-३५ को लोहबा से आदिबदरी आया। ११ मील का पड़ाव था। ३ मील से ज़्यादा चढ़ाई पर पैदल चला। रास्ते में ५ मील चढ़ाई और ५ मील उतार था। ज्यों ज्यों बदरीनाथ जी निकट आते जाते थे, लौटनेवाले यात्रियों की संख्या बढ़ती जाती थी। मुझे अजमेर, जोधपुर, जयपुर, आगरा, ग्वालियर, बुंदेलखंड, लखनऊ, खीरी, सीतापुर और रायबरेली के यात्री मिले। कोई कोई यात्री अपने साथ छोटे छोटे बच्चे भी लाये थे। घोड़ा, देशी झप्पान, कंडी और डाँडी की सवारियों पर कमज़ोर स्त्री और मर्द जा रहे थे। सवारी के घोड़े कम थे। लद्दू घोड़ों पर ही असबाब लाद कर उसी पर औरतें और मर्द बैठे थे। झप्पान तो मामूली लकड़ियों का बना था और उसमें मचिया की तरह बैठने की जगह थी। यह कंडी से ज़्यादा आराम देनेवाला है और इसको भी चार आदमी लेकर चलते हैं। कंडी एक बड़ा झाबा-सा लम्बा लम्बा होता है, जिसमें पैर बाँधकर बैठना होता है और उसे एक आदमी अपनी पीठ पर लाद लेता है। इस आदमी के हाथ में एक नोकदार लकड़ी चलने में सहारा देने के लिए और एक टेकनी होती है। टेकनी (T का आकार) पर वह सहारा लेकर खड़ा हो जाता है।

मैं आदिबदरी १० बजे से पहले पहुँच गया। यह एक छोटी जगह है। यहाँ सत्यनारायण व बदरीनाथ जी के मंदिर हैं। शाम को आरती के समय दर्शन किये। यह स्थान 'पंच बदरी' में नहीं है। मंदिर पुराने ज़रूर हैं और सरकार की तरफ़ से संरक्षित भी हैं। यहाँ के एक आदमी से मालूम हुआ कि उस स्थान के निकट ही टेहरी के पुराने राजाओं की राजधानी थी और इसी मंदिर में उन्होंने अपने कुल-देवता श्री बदरीनाथ को स्थापित किया था। भूकंप में सब स्थान नष्ट हो गया है। केवल बदरीनाथ का मंदिर कुछ टेढ़ा होकर बच गया है।

पहाड़ पर मैंने खाने-पीने की बड़ी एहतियात की। पानी गरम करके पिया और ज़्यादातर दलिया ही खाया। तिस पर भी पेट ठीक नहीं रहा, चूरन का प्रबंध करना पड़ा।

५-६-३५ को कर्णप्रयाग पहुँच गया। यह मुक़ाम १२ मील पर था। जो उतार कल शुरू हुआ था वही आज शिमली तक रहा। शिमली से कर्णप्रयाग ४ मील है। शिमली में पिंडरगंगा के दर्शन हुए। यह नदी पिंडारी ग्लेशियर से निकली है और कर्णप्रयाग में अलकनंदा से मिल गई है। जहाँ दो नदियाँ मिलती हैं उसी को यहाँ 'प्रयाग' कहते हैं। सुबह को चलते वक़्त संगम में स्नान किया।

६-६-३५ को सोनला में ठहरा था, परन्तु डाक-बँगला बिलकुल सुनसान जगह में था। कोई दूकान भी नज़दीक न थी। मेरे पास कुछ काम भी न था। इसलिए ३ मील आगे नन्दप्रयाग चला गया। नन्दप्रयाग में नन्दाकिनी और अलकनन्दा का संगम हुआ है। नन्दाकिनी का जल हरा है और वह पिंडर से छोटी नदी है। नन्दप्रयाग में कोई डाक-बँगला न होते हुए भी ठहरने की तकलीफ़ नहीं हुई। ठाकुर रामसिंह जी का नया कमरा मेरे लिए पंडित अनुसूयाप्रसाद जी, चेयरमैन डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड, की कृपा से खाली हो गया। नन्दप्रयाग के नज़दीक मुझे पहले-पहल एक बरगद का छोटा वृक्ष देखने में आया। आम के पेड़ तो यहाँ बहुत हैं, पर नीम का पेड़ यहाँ नाम को भी नहीं है। उसकी शकल का एक पेड़ 'वितर्ण' मिला। पीपल की कमी नहीं है। नन्दप्रयाग में कुछ शहरियत है। यहाँ से श्री बदरीनाथ का सम्बन्ध बहुत रहता है।

बहुत दिनों के बाद आज लीडर व हिन्दुस्तान टाइम्स अख़बार देखने को मिले। पर ये दोनों २ जून के थे। क्वेटा की बरबादी पढ़कर सहसा आँसू आ गये। कई घंटे इन्हीं दोनों अख़बारों के पढ़ने में लग गये।

७-६-३५ को चमोली पहुँच गया। इसको लोग लालसाँगा भी कहते हैं। डाँडी और कुलियों को जवाब दे दिया। बँगला ऊँचे पर था। जो गर्मी की शिकायत बाज़ार में ठहरनेवालों की थी वह मुझको नहीं थी। यह तहसील का मुक़ाम है और हाकिम परगना का इजलास भी यहाँ है। इसलिए यहाँ ७ या ८ वकील भी हैं और तलाश करने से कुछ सब्ज़ी भी मिल जाती है। यहाँ अस्पताल, डाकघर और पुलिस की चौकी भी है। चमोली से तीन कुली मेरा असबाब लेकर चले और मैं पैदल चला। ११ बजे दिन के क़रीब मैं पीपलकोटी के बँगले पर पहुँचा और कुली १२ बजे पहुँचे। रास्ते में बिरहीगंगा नाम की एक नदी मिली। यह नदी गोहना झील (डुमरी ताल) से निकली है। कहा जाता है कि यह नदी दूर से आई थी। गोहने में एक पहाड़ गिर गया और उसका रास्ता बंद हो गया और एक बड़ी भारी झील बन गई। कुछ समय बाद (सं० १८६४-६५ में) इस पहाड़ का ऊपरी भाग टूटकर झील में गिर पड़ा, रुका हुआ पानी उछल पड़ा और इतने ज़ोर से बहा कि रास्ते में जितनी नदियाँ पड़ीं उनमें बढ़िया आ गया। अभाग्यवश एक पहाड़ आगे चलकर अलकनन्दा में गिर पड़ा। अब इस नदी का वेग रुक गया और पानी पीछे को लौट पड़ा। सारे गाँव व पुल जो इस नदी के किनारे थे, बह गये। २ या ३ दिन बाद इस नये पहाड़ की मिट्टी बह निकली और पानी को रास्ता मिला। उससे सब नदियों में बाढ़ आ गई। अब उस झील का फ़ाज़िल पानी बराबर बहा करता है जो 'बिरही नदी' के नाम से पुकारा जाता है।

चमोली में नायब तहसीलदार से यह मालूम हुआ कि यहाँ नज़दीक एक सोने की खदान है। सरकारी तौर से पहले उसमें काम लगा था। आमदनी से ज़्यादा ख़र्च होने की वजह से वह काम बन्द कर दिया गया। उन्होंने यह भी बतलाया कि शिमली के ऊपर पिंडरगंगा की बालू से लोग सोना अब भी निकाला करते हैं और कुछ न कुछ रोज़ पा ही जाते हैं। इसी से यहाँ यह कहावत मशहूर है कि गढ़वाल में कुबेर का ख़ज़ाना है।

पैदल चलने में कुछ थकावट तो ज़रूर आई, परन्तु तबीअत अच्छी रही। पीपलकोटी का बाज़ार बड़ा है। यहाँ भोट देश की चीज़ें मिल जाती हैं। इस मार्ग में अभी तक इतना बड़ा बाज़ार मुझे नहीं मिला था। नन्दप्रयाग से यह अच्छा है। यहाँ तिब्बत की चीज़ें जैसे चमर, बकरी व हिरन की खालें, कस्तूरी इत्यादि बिकती थीं। शिलाजीत, ब्राह्मी, ज़हरमोहरा आदि भी बिक रहे थे। हमारे दफ़्तर के एक बाबू बनवारीलाल मिले। चित्त प्रसन्न हुआ।

९-६-३५ को सुबह ५½ बजे चलकर ४ मील पर गरुड़गंगा पहुँचा। यह 'तीर्थ' माना जाता है। यहाँ स्नान किया। रास्ते में दूध पिया और क़रीब ९ बजे दिन में पातालगंगा पहुँच गया। गुलाबकोटी पर १०½ बजे पहुँच गया। रास्ते में एक पहाड़ टूट गया था। उसके ऊपर मामूली रास्ता बना दिया गया था। उस पर चलते हुए कुछ डर मालूम होता था। यहाँ ।-) सेर आटा व मामूली चावल मिलता है और =)॥ बोतल मिट्टी का तेल मिलता है। जगह रमणीक नहीं है। कहीं घूमने जाने की जगह नहीं है।

१०-६-३५ को सुबह ५ बजे चला। रास्ते में बहुत

चढ़ाव-उतार नहीं था और कुछ बादल भी थे। १० बजे के पहले ही ९ मील चलकर जोशीमठ पहुँच गया। रास्ते में लखनऊ के वैद्य पंडित चिदानन्द से मुलाक़ात हुई। चित्त प्रसन्न हुआ। जोशीमठ एक अच्छी जगह है। यहाँ की चट्टियाँ बहुत साफ़-सुथरी हैं। यहाँ अस्पताल, डाकख़ाना और पुस्तकालय हैं। यहाँ नरसिंह बदरी जी के मंदिर हैं। जोशीमठ में उस समय यात्री लोग नहीं ठहरते थे। किसी ने यह ख़बर उड़ा दी थी कि यहाँ फ़सली बीमारी फैली हुई है। मुझे बँगले में ठहरना था, जो गाँव से दूर और ऊँचे पर बना है। इसलिए मैं तो चला आया। डाक्टर साहब के यहाँ से ७-६-३५ का लीडर मँगा कर देखा। यहाँ से नीती दर्रा को एक सड़क गई है। यह दर्रा तिब्बत से भारत को मिलाता है। जोशीमठ से ६० मील पर तिब्बत की सीमा मिलती है। इस ज़िले के रहनेवाले वहाँ से ऊन और नमक लाते हैं। पहाड़ पर नमक पानी से भी तैयार होता है, और उसकी खदान भी है। यह नमक भोट में होता है, हमारे बँगले के इर्द-गिर्द दो पहाड़ हैं, जिन पर उस समय तक कुछ कुछ बर्फ़ जमी थी।

११-६-३५ को एकादशी का दिन था। मुझे इस बात का संतोष था कि उस दिन का पड़ाव पांडुकेसर तक ८ मील का ही होना अच्छा था। परन्तु ये ८ मील कल के ९ मील से ख़राब थे। जोशीमठ से चलते ही २ मील का उतार विष्णुप्रयाग तक मिला। विष्णुप्रयाग में संगम सड़क से क़रीब १०० फ़ुट नीचे था। वहाँ जाकर स्नान करना भी मामूली काम न था। ऊँचाई पर तो कोई नहा ही नहीं सकता है! अलकनन्दा में नहाया और धवली-गंगा में मार्जन किया। यही संगम-स्नान हो गया। पानी बहुत ही ठंडा था। हाथ-पैर सब गल गये। फिर जंज़ीर के सहारे ऊपर आ गया। वहाँ से चढ़ाई शुरू हुई। रास्ते में पहाड़ की सीधी चट्टान की चट्टानें मिलीं। यहाँ रास्ता बनाने में बड़ी कठिनाई पड़ी होगी। इसी लिए बहुत-सी जगहों में सिर्फ़ २ या २½ फ़ुट की सड़क चौड़ी थी। इतनी तंग सड़क पर से पाताल में गंगा जी को बहती हुई देखकर किसका दिल नहीं दहल जाता है! परन्तु झुंड के झुंड यात्री चले जा रहे थे और कोई नीचे देखता भी नहीं था। पांडुकेसर में दूध ।≋) सेर और बाक़ी सब चीज़ें ।-) सेर बिकती हैं। बँगला बहुत अच्छी जगह पर है। नज़दीक ही गंगा जी बह रही हैं और एक बर्फ़ीला पहाड़ सामने है।

यहाँ एक मंदिर श्री वासुदेव जी का है और दूसरा श्री योगी बदरी का। ये मंदिर पाण्डवों के बनाये हुए कहे जाते हैं। श्री योगी बदरी के मंदिर में लोहे की ४ पाटियाँ रक्खी हैं। उनकी पुट्ठियों पर नन्दी (नादिया) की मूर्ति बनी है और बाक़ी पट्टियों में कुछ लिखा है। यहाँ का पुजारी तो यह कहता है कि इन पट्टियों के लेखों को कोई पढ़ नहीं सकता। परन्तु वे लेख पढ़ लिये गये हैं। उनमें आठवीं और नवीं सदी में जो दान राजाओं ने इन मंदिरों को दिये थे उनका ज़िक्र है। गरुड़ जी की मूर्ति यहाँ क़रीब क़रीब हर मंदिर के सामने है और मंदिर विष्णु जी के नाम पर ही हैं। जोशीमठ में ज़रूर एक नौ दुर्गा जी का मंदिर है।

१२-६-३५ को रास्ता हर रोज़ से ज़्यादा लम्बा और ख़राब मिला। हनूमान-चट्टी के बाद ३,००० फ़ुट से ज़्यादा ऊँचाई चढ़नी पड़ी। रास्ते में बर्फ़ पर भी ३ या ४ जगह चलना पड़ा। एक जगह तो पैर फिसलते फिसलते बचा। इस कष्टप्रद मार्ग में भी बर्फ़ के पुल और बर्फ़ की सुफ़ेद चट्टानें जो संगमरमर से भी सुन्दर मालूम होती थीं, हृदय को आकर्षित करती थीं। बड़ी कठिनाई के साथ १२ बजे दोपहर को श्री बदरीनाथ-धाम पहुँचा।

७½ बजे शाम को भगवान् बदरीनाथ जी के दर्शन को आरती के समय गया। दर्शन पाकर जो भाव मेरे चित्त में उत्पन्न हुआ वह मैं ही जानता हूँ। मुझे मंदिर के कर्मचारियों ने दरवाज़े पर बग़ल में बिठला दिया। मैंने ख़ूब दर्शन पाये और अपने को धन्य समझा। जिस प्रेम से यात्री लोग दर्शन करने आते हैं वह दृश्य देखने योग्य था। कुछ औरतें तो बाहर भजन गातीं और मग्न होकर कूदती थीं। अन्दर पुजारी लोग विष्णुसहस्रनाम आदि का पाठ करते थे। एक स्त्री मुझे दिखलाई गई जो कहती है कि उसने १४ वर्ष से खाना-पीना छोड़ रक्खा है। न

वह पेशाब करती है और न पाख़ाने जाती है। उसके बहुत भक्त चेले हैं। मुझे इस बात पर विश्वास नहीं आया। यहाँ के रावल जी भी उसके कथन पर संदेह करते हैं। पर उन्होंने एक स्त्री का हाल सुनाया, जो पारसाल यहाँ अकेली ६ महीना जाड़े के दिनों में रह गई थी। उसके पास केवल एक कम्बल और एक चादर थी। उसके भोजन के लिए कुछ सत्तू उसके पास छोड़ दिया गया था। उसी पर उसने छः महीने तक गुज़र की। उसने छः महीने तक आग नहीं जलाई। यह औरत २५ साल की है। बड़ी तपस्विनी कही जाती है। इसको एक रोज़ जब वह बर्फ़ पर पड़ी थी, स्वप्न में एक साधु ने कुछ हलवा दिया। वह जाग पड़ी, देखा तो हलवा उसके हाथ में है। उसने हलवा को तप्तकुंड पर जाकर खाया। एक दिन उसने तप्तकुंड पर कई आदमियों को स्नान करते देखा। उनकी बोली न समझी।

जिस रोज़ बदरीनाथ जी पहुँचा उसके दूसरे दिन (१३-६-३५) सुबह उठते ही तप्तकुंड में स्नान को गया। तप्तकुंड का पानी इतना गर्म था कि उसके अंदर घुसने की हिम्मत न पड़ी। सूर्य-कुंड पर गया। वहाँ गर्म पानी की धारा से लोटे से स्नान किया। वहाँ भी शरीर पर पानी पड़ते ही मालूम हुआ कि सारा शरीर जल गया। वहाँ से स्नान कर गौरी-कुंड पर जहाँ गर्म धारा गंगा जी से मिलती है, मार्जन किया। गंगा जी में स्नान करना मेरे लिए संभव न था। थोड़ी ही दूर पर हिमाच्छादित बर्फ़ से सदा ढँके रहनेवाले पहाड़ से गंगा जी आई हैं। उसका जल बहुत ही ठंडा था। ऊपर आकर संध्या-तर्पण करके देव-दर्शन को चला गया। अभिषेक (अर्थात् विशेष पूजा) का दिन था। एक बाई ने १०१) देकर पूजा कराई थी। रावल जी महाराज ने बड़े परिश्रम से क़रीब ३ घंटे पूजा की। मुझे रावल जी की कृपा से एक अच्छा स्थान बैठने को मिल गया था। वैसे तो यात्री ५ मिनट से ज़्यादा मंदिर में ठहरने नहीं पाते हैं। और ठहर भी किस तरह सकते हैं जब कि ६०० व ७०० यात्री रोज़ आते हैं और कम से कम ३ रोज़ ठहरते हैं! २,००० आदमियों को दर्शन भी तो कराना था। भगवान की मूर्ति बैठी हुई बौद्ध की मूर्ति-सी मालूम होती है। चेहरे में कोई आकृति नहीं है। कहा जाता है कि श्री शंकराचार्य्य ने उसे नारद-कुंड से निकाला था। शृंगार बड़ा सुन्दर होता है। हज़ारों आदमियों की भक्ति के कारण वहाँ साक्षात् भगवान् का उपस्थित्व का भास होता है! भगवान् की मूर्ति के पास कुबेर जी, गरुड़ जी, उद्धव जी व नर-नारायण की मूर्तियाँ हैं। नर-नारायण की मूर्ति के पास देवियों की ४ मूर्तियाँ हैं। उनमें एक उर्वशी भी है। क़रीब १० बजे आरती लेकर चरणामृत पान कर वापस आया।

बदरीनारायण-धाम में बहुत-से बँगले गंगा के बायें किनारे पर बन गये हैं। परन्तु गंगा का बायाँ किनारा ठहरने के लिए पुनीत स्थान नहीं माना जाता। गंगा के दाहने तरफ़ जो पानी की धारायें गिरती हैं या जो पहाड़ हैं वे सब पवित्र और तीर्थ माने जाते हैं। वहाँ नर-नारायण नाम के पहाड़ हैं। इन्हीं पहाड़ों पर नर (अर्जुन) और नारायण (श्रीकृष्ण जी) ने तपस्या की है। एक पहाड़ का नाम नीलकाँठा है। उसके नीचे एक स्थान है जिसको ब्रह्मकपाली कहते हैं। यहाँ पितरों का श्राद्ध किया जाता है। यहाँ श्राद्ध करने का माहात्म्य गया से भी अधिक है। कहते हैं कि कुम्भ के अवसर पर भक्तों को भगवान् के दर्शन इस पहाड़ पर मिलते हैं। बदरीनारायण से ७ मील चलकर स्वर्गारोहण का रास्ता है, जहाँ चार पांडवों ने अपना शरीर त्याग किया था और युधिष्ठिर महाराज स्वर्ग को गये थे। इस जगह कोई वृक्ष नहीं है। साल में छः महीने यह स्थान बर्फ़ से ढका रहता है और एक तरह की हवा वेग से चला करती है।

अभी तक हनूमान्-चट्टी और बदरीनाथ के बीच में दो जगह गंगा जी पर पुल नहीं बन सके हैं। पुराने ज़माने की तरह झूले ही हैं। ये झूले चलने पर हिलते हैं और इन पर एक साथ तीन या चार आदमी से ज़्यादा नहीं जाते।

लौटते समय मैं फिर जोशीमठ में नरसिंह-बदरी के मन्दिर को गया। मूर्ति बड़ी विशाल चिकने काले पत्थर की है। एक हाथ बाल की बराबर किसी चीज़ से जुड़ा है। कहा जाता है कि जब यह हाथ किसी कारण टूट

जायगा तब कोई बड़ी दुर्घटना होगी। मन्दिर में बैठ गया। लोगों से वहाँ के मन्दिरों का हाल पूछने लगा। मालूम हुआ कि वासुदेव नामक एक राजा जोशीमठ के जंगल में अपनी रानी-सहित तपस्या को गया था। एक रोज़ उसकी कुटी में एक बाघ घुस गया। रानी घबराकर बाहर आगई। राजा उस समय वहाँ नहीं था। जब वह कुटी पर आया तब रानी ने सब हाल बतलाया। साधु राजा तलवार लेकर कुटी में घुस गया और बाघ के एक तलवार मारी। तलवार उसके हाथ पर पड़ी जो भूल गया, पर ख़ून के बजाय उससे दूध बह निकला। बाघ चला गया। रात को राजा को स्वप्न हुआ कि बदरीनारायण जी ही बाघ की शक्ल में दर्शन देने आये थे। उसी घटना की यादगार में नरसिंह-बदरी का मन्दिर राजा वासुदेव ने बनवाया और राजा की याद में वासुदेव जी का मन्दिर बनाया गया।

वहाँ बैठकर पाँच बदरी का नाम व स्थान पूछा। मालूम हुआ कि आदिबदरी इनमें नहीं है। पाँच बदरी ये हैं—(१) श्री बदरीनाथ जी, (२) योगेश्वर बदरी जो पांडुकेसर में हैं, (३) नरसिंह बदरी जो जोशीमठ में हैं, (४) वृद्ध बदरी जो जोशीमठ से ४½ मील पर चमोली की तरफ़ हैं, (५) ध्यान बदरी जो उर्ग गाँव में गंगा के उस पार कुमारचट्टी के सामने है। यहाँ बहुत मन्दिर हैं, परन्तु गंगा जी को पार करने के लिए २ लट्ठों ही पर चलना पड़ता है। इसलिए यात्रियों की हिम्मत नहीं पड़ती। यह भी बतलाया गया कि भविष्य बदरी का स्थान पुराणों में लिखा है। यह स्थान नीती की तरफ़ 'तपोवन' से ३ मील आगे धौलीगंगा के नज़दीक जोशीमठ से ६ मील पर है। तपोवन में भी एक गर्म चश्मा है। एक स्वयम्भू-मूर्ति भी वहाँ बन रही है। कहा जाता है कि एक पहाड़ की चट्टान पर चेहरे की आकृति बन चुकी है! स्थान बड़ा रमणीक बतलाया जाता है।

२३-६-३५ को नये रास्ते से चला और १० मील पर नगरासू आया। पहले दो मील तो पथरीला पहाड़ और तंग रास्ता मिला। बाद को कच्चा पहाड़ मिला। वहाँ कुछ मैदान भी मिला। वहाँ ६ मील पर वह मैदान भी मिला जो गौओं के चराने के लिए (गोचर) किसी रानी ने ख़रीद कर पुण्य कर दिया है। इस मैदान के दरख़्त काटकर और पत्थर हटाकर हवाई जहाज़ के उतरने के लिए जगह बनाई गई है। एक बहुत बड़ा बरगद का पेड़ और एक चट्टान का टुकड़ा रह गया है। इसी चट्टान से लड़कर एक बार एक हवाई जहाज़ टूट पड़ा था। मेरे सामने जहाज़ आया था और एक हिन्दुस्तानी साहब उसे चला रहे थे। इसमें टूटे हुए जहाज़ को बनाने के लिए एक इंजीनियर आया था। वह उसी वक़्त एक मारवाड़ी और उसकी स्त्री को लेकर उड़ गया। २ आदमियों को लेने के लिए फिर आने का वादा किया। (१) एक आदमी का १२२ मील के लिए किराया और आने-जाने का किराया ७५) रक्खा गया है। हवाई जहाज़ यहाँ से ४५ मिनट में हरिद्वार पहुँचा देता है।

यह घाटी गरम है। यहाँ पीपल, बरगद, आम के पेड़ दिखाई दिये। इनके पास ही चीड़ वग़ैरह के पेड़ भी पहाड़ पर मिले। आम यहाँ बहुत हैं, परन्तु आँवला से बड़ा कोई आम नहीं देखा। आम अभी कच्चे थे। जब ८ मील चल चुका तब कोटेश्वर महादेव जी के दर्शन गंगा के इस पार से किये। महादेव जी का स्वयंभू लिंग एक पथरीले पहाड़ में एक क़ुदरती गुफा में गंगा जी के पास है। उस पर पानी बराबर चुआ करता है। यहाँ एक साधु रहते हैं। एक धर्मशाला भी बन गई है। रुद्रप्रयाग पहुँच कर पहले मंदाकिनी गंगा और अलकनन्दा के संगम पर स्नान किया। मंदाकिनी केदारनाथ जी से आकर यहाँ मिली है। काली कमलीवाले बाबा ने यहाँ एक पक्का घाट बनवा दिया है और १२० सीढ़ी उतर कर संगम मिलता है। वहाँ भी जंज़ीर पकड़कर स्नान हुआ।

कर्णप्रयाग से रुद्रप्रयाग तक यात्रा-मार्ग नहीं है। इसलिए रास्ते में बहुत कम भीड़ मिली। परन्तु रुद्रप्रयाग से निकलते ही सैकड़ों यात्री मिले। इनमें बहुत-से रुद्रप्रयाग से केदारनाथ जी होकर श्री बदरीनाथ जी जा रहे थे। रुद्रप्रयाग से केदारनाथ जी ४८ मील है। बदरीनाथ जी से लौटकर यात्री कर्णप्रयाग से रानीखेत अथवा रामनगर को जाते हैं।

२६-६-३५ को श्रीनगर पहुँच गया। जगह अच्छी है, पर पंखे की हवा में काम करना पड़ता है। शाम को कमलेश्वर महादेव के दर्शन किये। कहा जाता है कि महादेव जी का नाम कमलेश्वर इसलिए पड़ा कि एक समय भगवान् ने हज़ार कमलों से इनका पूजन किया था। एक कमल घट जाने पर अपनी आँख निकाल कर चढ़ाने को तैयार हो गये थे तब शिव जी ने प्रसन्न होकर दर्शन दिये।

श्रीनगर में विरहीगंगा ने जो हानि पहुँचाई थी वह स्पष्ट देख पड़ती है। पुरानी बस्ती में सिवा २ या ३ मंदिरों के कुछ भी नहीं रह गया है। नई बस्ती चौकोर जयपुर के नमूने पर बनाई गई है। यहाँ टौन एरिया और स्पेशल मजिस्ट्रेट की कचहरी भी है। इसके उस पार टेहरी-रियासत है। श्रीनगर किसी समय टेहरी-रियासत की राजधानी थी। अब वह उजाड़-सा देख पड़ता है।

इस प्रकार हमारी यह यात्रा कुशलपूर्वक समाप्त हुई और हम पौड़ी सरकारी काम करने चले गये। वहाँ जाकर मैंने वज़न लिया। वह ५ सेर बढ़ गया था।

अभिलाषा

लेखक, श्रीयुत उपेन्द्र

दिल के धोरे आ बैठो तुम, बनो प्रेम की प्यास,
आँखों पर छा जाओ जैसे अवनी पर आकाश।
रे, आशा का दीप जलाकर,
बुझी हुई वह प्यास जगाकर,
मत झिझको अब आग लगाकर।
मुझे बहकता देख करो तुम मत मेरा उपहास,
दिल के धोरे आ बैठो तुम बनो प्रेम की प्यास॥
भला न हँसने दो प्राणों को लेकिन ऐ सरकार,
रोको नहीं अश्रुओं का तुम पागल पारावार॥
नयनों की नदियों का पानी,
बहती जिसमें व्यथा-कहानी,
जिसमें दिल रोता है मानी।
इसे बिगाड़ो नहीं, न होने दो तुम इसका ह्रास,
दिल के धोरे आ बैठो तुम बनो प्रेम की प्यास॥
तुम हो रूह अगर ऐ प्यारे! मैं हूँ जीर्ण शरीर,
मैं हूँ जो सूखी-सी नदिया तुम हो शीतल नीर।
बिना तुम्हारे मेरा जीवन,
एक मरुस्थल-सा है निर्जन,
ताल-हीन हो जैसे नर्तन,
मैं हूँ बुझते दिल की धड़कन तुम हो उसकी आस,
दिल के धोरे आ बैठो तुम बनो प्रेम की प्यास॥
सिर से पैरों तक जादू तुम, मैं मोहा अनजान,
तुम हो रूप छली औ' मैं हूँ सरल प्रेम नादान।
तुम हो दीपक मैं परवाना,
मैं तन्मयता तुम हो गाना,
तुम पागलपन मैं दीवाना,
बिना तुम्हारे जीवन नीरस सुमन-हीन मधुमास,
दिल के धोरे आ बैठो तुम बनो प्रेम की प्यास॥
जगत आँख है मैं हूँ आँसू, तुम धरती हो प्राण,
इससे पलकों के छोरों पर मैं बैठा हूँ आन।
अपना हृदय उदार बिछा लो,
अपने में अब मुझे मिला लो,
'मुझे' मिटा दो, 'मुझे' बना लो,
यह अभिलाप करो पूर्ण या कर दो सत्यानाश,
दिल के धोरे आ बैठो तुम बनो प्रेम की प्यास॥

चिट्ठी-पत्री

(१)

सुदामापुरी का कलाकार

श्री दाऊदत्त उपाध्याय, बम्बई, से लिखते हैं—

अगस्त की 'सरस्वती' में 'सुदामापुरी का कलाकार' के शीर्षक से श्री जगन्नाथ अहिवासी का परिचय छपा है। उस लेख से एक बात का भ्रम फैल सकता है। श्री अहिवासी जी सुदामापुरी के कलाकार नहीं हैं, किंतु वे व्रज-निवासी हैं। उनका जन्म संयुक्त प्रान्त में मथुरा ज़िले के 'बलदेव' नामक स्थान में हुआ है। अहिवासी उपाधि भी वहीं के ब्राह्मणों की है। पर वे तीन महीने के अल्पवय में ही सौराष्ट्र चले आये थे, पोरबंदर में उनके पिता जीविकावश निवास करते थे। उनका पालन-पोषण पोरबन्दर में ही हुआ; और कला भी वहीं सीखी, अतएव इसका श्रेय काठियावाड़ और बम्बई को ही है। परन्तु जन्म-स्थान के बारे में जो भ्रम फैलाया जाता है, ठीक नहीं है। उनका सम्बन्ध अपनी जन्म-भूमि से अद्यावधि बना हुआ है और उनके समस्त पारिवारिक कार्य अभी तक वहीं सम्पन्न होते हैं, और वे प्रतिवर्ष वहाँ जाते हैं। घरबार भी वहीं है, जगह-ज़मीन भी। वास्तव में अहिवासी जी भारत के अन्तर्राष्ट्रीय कलाकार हैं। उनका शिष्य-समुदाय बहुत बड़ा है और वह उच्च श्रेणी का है। इसके बारे में लिखने का विचार था, सामग्री भी जुटाई, परन्तु एक परिचय प्रकाशित हो चुका है तब वही काफ़ी है।

---

(२)

लेखकों और कवियों से नम्र निवेदन

लहेरियासराय (विहार) के पुस्तक-भंडार-प्रबन्धक लिखते हैं—

हम लोग एक ऐसा ग्रंथ प्रकाशित कर रहे हैं जिसमें वर्त्तमान हिन्दी-लेखकों, हिन्दी-कवियों और हिन्दी-साहित्य-पोषकों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इसके लिए आवश्यक सामग्री का संकलन बहुत-कुछ किया जा चुका है। इसके पहले भी पत्रों में सूचना प्रकाशित कराई गई थी, जिसके फल-स्वरूप अनेक सज्जनों ने सामग्री भेजने की कृपा की। अब ग्रंथ तैयार हो चला है। अति शीघ्र प्रेस में दे दिया जायगा। जिन सज्जनों ने अपना संक्षिप्त परिचय अब तक न भेजा हो, वे शीघ्र ही भेज देने की कृपा करें। यह ग्रंथ सचित्र होगा और प्रतिवर्ष इसका नवीन संस्करण निकला करेगा। आशा है, हिन्दी में ऐसे ग्रंथ की आवश्यकता समझकर समस्त साहित्य-सेवी हमारी सहायता करेंगे।

---

(३)

हिन्दी-लेखक-संघ

उपर्युक्त संघ के मंत्री श्री प्रेमनारायणजी अग्रवाल ने हिन्दी के लेखकों आदि के नाम एक अपील निकाली है। उसमें वे इस प्रकार लिखते हैं—

हिन्दी-लेखक-संघ की ओर से 'हिन्दी-जगत्' नामक साहित्यिक विवरण-पुस्तक के प्रकाशन का आयोजन किया जा रहा है। इस ग्रन्थ में साहित्य-सम्बन्धी आवश्यक तथा उपयोगी सामग्री एकत्र करने का विचार है। इस हेतु हमें हिन्दी-जगत् की समस्त ज्ञातव्य बातें एकत्र करनी हैं। हमने विवरण-पुस्तक में अन्य बातों के अतिरिक्त हिन्दी-लेखकों, प्रकाशकों, पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तक-विक्रेताओं, साहित्यिक संस्थाओं आदि का पूरा परिचय भी समाविष्ट करने का निश्चय किया है। इस प्रकार जनता को इन

सबके विषय में पूरी जानकारी प्राप्त हो सकेगी। इसमें दोनों का लाभ होगा और हम भी अपने मनोरथ और उद्देश में सफल होंगे।

हम आशा करते हैं कि आप इस पुस्तक के आयोजन में हमारी सहायता करेंगे तथा अपना पूरा परिचय शीघ्र भेजेंगे। हमें पूर्ण विश्वास है कि आप हमारे इस आयोजन को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग प्रदान करेंगे तथा अपने मित्रों को भी इसकी सूचना देंगे।

---

(४)

चक्रधर-पुरस्कार

साहित्य-समिति, रायगढ़, के मंत्री पण्डित आनन्द-मोहन वाजपेयी एम० ए० लिखते हैं—

समस्त हिन्दी-भाषा-भाषी समाज को यह सुनकर अपार आनंद होगा कि हमारे साहित्य-मर्मज्ञ महाराज चक्रधर सिंहजू देव (रायगढ़-नरेश) ने श्रीगणेशोत्सव के उपलक्ष में प्रतिवर्ष २००) रुपये का एक साहित्यिक-प्रतियोगिता-पुरस्कार देने का निश्चय किया है।

सौभाग्यवश, आज दिन, हिन्दी में अखिल भारत-वर्षीय प्रतियोगितायें कई एक प्रचलित हो चुकी हैं; परन्तु प्रान्तीय प्रतियोगिताओं का अभी अभाव-सा ही है। शिक्षा की कमी के कारण मध्य-प्रान्त के निवासियों के लिए अभी कुछ वर्षों तक अखिल भारतवर्षीय प्रतियोगिताओं में सफलता पाना साधारणतः कठिन-सा दिखाई देता है। इस प्रकार इस प्रान्त के साहित्य-सेवियों के लिए अब तक कोई साधन प्रस्तुत नहीं किया गया। इसी अभाव की पूर्ति के लिए श्रीमान् राजा साहब ने इस पुरस्कार की घोषणा की है। अतएव इस प्रतियोगिता का क्षेत्र मध्य-प्रान्त और 'ईस्टर्न स्टेट्स एजेन्सी' तक ही परिसीमित रहेगा।

रायगढ़-नरेश का यह कार्य प्रशंसनीय ही नहीं, अनुकरणीय भी है।

---

(५)

एक अपील

दीनबन्धु सी० एफ़० ऐन्ड्रयूज़ ने गत ३० जुलाई को शान्ति-निकेतन से लेखकों, पत्र-संचालकों और पुस्तक-प्रकाशन-संस्थाओं के नाम निम्नलिखित अपील प्रकाशित की है—

प्रिय महोदय,

आपको यह जानकर खुशी होगी कि शान्ति-निकेतन में हिन्दी-भाषी प्रान्तों से आनेवाले विद्यार्थियों की संख्या बड़ी शीघ्रता से बढ़ रही है। स्कूल-विभाग के अतिरिक्त कालेज-विभाग में ही इस समय पन्द्रह विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं। आशा है, यह संख्या और भी अधिक बढ़ेगी। विद्यार्थियों की यह बढ़ती हुई संख्या देश के बँगला और हिन्दी-भाषी दलों के मध्य सांस्कृतिक एकता का द्योतक है। मध्यकालीन हिन्दी-साहित्य के मर्मज्ञ श्री क्षितिमोहन सेन के महत्कार्य्य के फलस्वरूप अनेक प्राचीन हिन्दी-कवि गुरुदेव के आश्रम में परिचित हो चुके हैं। दादू की कविता पर उनकी महत्त्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है और मैं आशा करता हूँ कि उसका अँगरेज़ी संस्करण भी शीघ्र ही प्रकाशित हो जायगा।

हिन्दी के मध्यकालीन प्रेमियों के सम्बन्ध में उनके व्याख्यानों का अँगरेज़ी संस्करण मैंने स्वयं पढ़ा है। इसके द्वारा जो ज्ञान-राशि पाश्चात्य जनता के सम्मुख उपस्थित होने जा रही है उसे देखकर मुझे आश्चर्य-चकित रह जाना पड़ा है। मैं आशा करता हूँ कि यह ग्रन्थ भविष्य में आनेवाले उन कितने ही प्रकाशनों में प्रथम होगा जो हिन्दी-भाषी सन्तों और कवियों की वाणी का पश्चिम के पंडितों में प्रसार करेंगे। मध्यकालीन मौलिक ग्रन्थों के अनुवाद-कार्य्य का मैं भी हर प्रकार से अपनी शक्ति भर प्रोत्साहन दे रहा हूँ।

आश्रम में हम लोगों की सहायता करने के लिए क्या मैं आपसे इस बात की प्रार्थना करूँ कि आप अपने यहाँ से मंत्री 'हिन्दी-समाज' शान्ति-निकेतन के नाम नवीन पुस्तकें और पत्र-पत्रिकायें भेजने की कृपा करें, जिनके द्वारा विश्व-भारती में हिन्दी के गहरे अध्ययन की सुविधाओं में वृद्धि हो सके।

योरप–जैसा कि मैंने उसे देखा

२—फ़ैराओ का देश

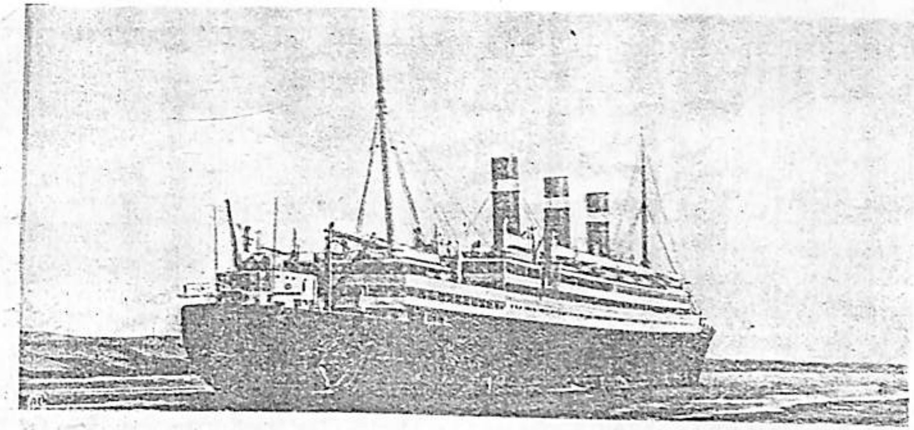
लेखक, श्रीयुत हरिकेशव घोष



टामस कुक के प्रबन्ध के अनुसार कैरो की यह संक्षिप्त यात्रा अत्यन्त मनोरम होती है। कुल मिलाकर वे ५३ पौंड लेते हैं। इसी में मोटर, भोजन और सन्ध्या को स्टीमर तक वापस पहुँचने का व्यय भी सम्मिलित रहता है। यदि कोई चार मित्रों की मंडली बना सके तो उसे जो व्यय करना पड़ेगा, उसका प्रायः दूना व्यय इसमें बैठता है। ख़ैर, हम सोचते हैं कि यह मूल्य चुकाने के योग्य है क्योंकि इस प्रकार सम्पूर्ण भ्रमण एक दिन में समाप्त हो जाता है और इस यात्रा का सस्ता प्रबन्ध केवल वे ही, या कम-से-कम उनमें एक व्यक्ति, जो उस स्थान को भली भाँति जानता है, कर सकता है। दिन बहुत गर्म नहीं था, कम-से-कम यह हमें, जो भारत में अत्यन्त उग्र जल-वायु के आदी हैं, ऐसा प्रतीत नहीं हुआ। भारतवर्ष में इन दिनों मई में जो गर्मी पड़ती है उसके मुक़ाबिले में यहाँ १० डिगरी गर्मी कम थी।

यह ५० व्यक्तियों का अत्यन्त रमणीय दल था जिसमें सब देशों के लोग सम्मिलित थे। 'कुक' के एक कर्मचारी की सलाह के अनुसार सईद बन्दर में हम मोटरों में सवार होने के लिए चार चार की टोलियों में विभक्त हो गये। दो अमरीकन महिलायें, मैं और दिल्ली के एक प्रसिद्ध व्यापारी की पुत्री ने एक साथ जाने का निश्चय किया। मेरे मित्र मिस्टर भिलानी और मेरे बम्बई के एक दूसरे मित्र भी इस यात्रा में हमारे साथ थे।

जिन्हें दस दिन तक कोई देश देखने का अवसर न मिला हो उन्हें जब जहाज़ सईद बन्दर के निकट पहुँचने लगता है तब बड़ा सुहावना मालूम होता है। महान् अफ़्रीका के दूरस्थ प्रदेश को जो सर्वथा नग्न और निर्जन पड़ा था, ऊबड़-खाबड़ समुद्री किनारे को जो नीचे की नील जल-राशि के सम्मुख विशाल दीवारों के समान खड़ा था, देखना हम सबको बहुत भला प्रतीत हुआ। इतने दिनों के बाद फिर से मनुष्य की बस्ती देखने की आशा से समस्त यात्री सतृष्ण नेत्रों के साथ डेक पर आ जमा हुए।



[स्वेज़ नहर में (पोर्ट सईद के क़रीब)]

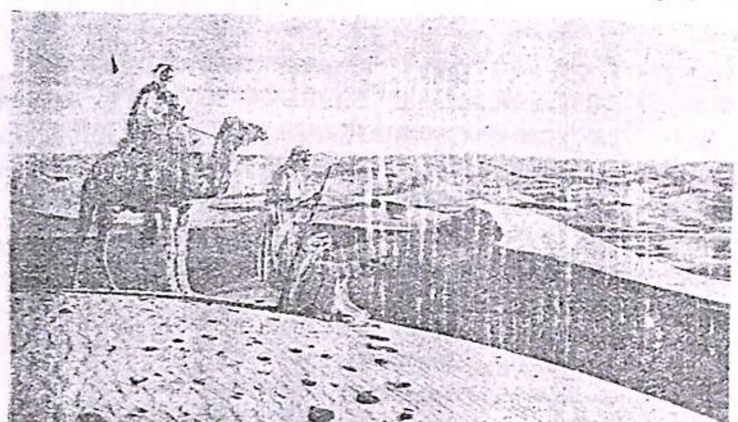
पाठक जानते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि-कोण से यह नहर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। स्वेज़ कैनाल कम्पनी, जिसका कि इस नहर पर अधिकार है, एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है। परन्तु अधिक हिस्से अब ब्रिटिश गवर्नमेंट के हाथ में हैं, यद्यपि इसके कर्मचारी प्रायः फ़्रांसीसी हैं। इसलिए स्वभावतः यह कहा जा सकता है कि नहर की कुञ्जी ब्रिटेन के हाथ में है जो कि राजनैतिक दृष्टि-कोण से उसके लिए एक महान् जय-हर्ष का विषय है। स्वेज-शहर काफ़ी बड़ा है और उसका विकास मुख्यतः कम्पनी की बहुसंख्यक इमारतों और उसके अफ़सरों के बँगलों से हुआ है। शहर का नवीन विकास सर्वथा आधुनिक है और जो लोग वहाँ रहते हैं उनकी माँगों की पूर्ति के लिए वहाँ बहुत-सी बड़ी बड़ी दूकानें खुल गई हैं। स्थानीय निवासियों की बस्ती ज़रा गन्दी है। साधारण शिष्टाचार के बाद हम 'कुक' के लाञ्च से किनारे पर गये और सीधे मोटर-कार में सवार हो गये। हम द्रुत गति से कैरो की ओर, जो बन्दर से लगभग ७१ मील की दूरी पर है, बढ़े। हमारा मार्ग मुख्यतः रेगिस्तान से होकर गया था। सड़क के दोनों ओर नग्न पर्वत के सर्वथा उदासीन दृश्य के अतिरिक्त और कुछ न था। सौभाग्य से प्रातःकाल शीतल था इसलिए हमें बहुत बेचैनी का अनुभव नहीं हुआ। 'कार' का ड्राइवर एक नवयुवक यूनानी था जो मिस्र देश में छुटपन में ही आया था और तभी से वहाँ रह रहा है। उसकी अरबी निर्दोष और अँगरेज़ी साधारण थी। हमें ज्ञात हुआ कि यूनान

'सरस्वती' में अपने यात्रा-सम्बन्धी लेखों का मासिक क्रम जारी न रख सकने के लिए मैं अपने पाठकों से क्षमा-प्रार्थी हूँ। इस यात्रा में लेखनी के लिए मुझे बहुत कम अवकाश मिला। साढ़े चार महीने से कुछ अधिक प्रवास के पश्चात् मैं अक्टोबर के आरम्भ में स्वदेश लौट आया। मुझे आशा है कि मेरे संस्मरणों के मासिक वर्णन का क्रम अब भङ्ग नहीं होगा और जो पाठक योरप नहीं गये हैं, उन्हें ये लेख रुचिकर प्रतीत होंगे।—लेखक



[स्फिंक्स के निकट नमाज़ का एक दृश्य (कैरो)]

में भीषण बेकारी के कारण यूनानियों की एक यथेष्ट संख्या समुद्र-पार करके मिस्र में आ बसी है। उसने कैरो की एक लड़की के साथ शादी कर ली है। उसने हमसे मिस्त्रियों की हास्यपूर्ण कहानियाँ कहीं कि वे किस प्रकार उसकी स्त्री के यूनानी गिर्जे में दीक्षित हो जाने के कारण रुष्ट हैं। हमें बालू की बड़ी बड़ी पहाड़ियाँ दिखाई पड़ीं। ये सब हिमाच्छादित पर्वत के समान श्वेत थीं और उस महान् मरुभूमि के ऊपर उठ रही थीं। कभी कभी हमें हरियाली का एकाध छोटा टुकड़ा मिल जाता था परन्तु मनुष्य की कोई बस्ती वहाँ नहीं थी। कहीं कहीं सड़क की मरम्मत हो रही थी और बलिष्ठ सुडानी वहाँ काम कर रहे थे। वे प्रायः ऊँचे क़द के लोग थे और उनका स्वास्थ्य अच्छा था। परन्तु उनके शरीर पर कपड़े बहुत कम थे। यह भूमि सर्वथा शून्य है और कहीं कहीं कृषि के लिए जो कुछ प्रयत्न हुए भी हैं वे सिंचाई का प्रबन्ध



[रेगिस्तान का एक दृश्य]

न होने के कारण असफल सिद्ध हुए हैं। वर्षा यहाँ बहुत ही कम होती है। सड़क की मरम्मत हो रही थी परन्तु यह आशा की जाती है कि जब यह बन जायगी तब कैरो के लिए मोटर की बहुत अच्छी सड़क होगी।

लगभग ११ बजे सर्वथा लस्त हालत में हम कैरो पहुँचे। इस नगर के बाहर का दृश्य अच्छा नहीं लगता। कैरो दो भागों में विभक्त है। सरकारी शहर में बहुत-सी आधुनिक इमारतें और आधुनिक दूकानें सुव्यवस्थित ढङ्ग से बनाई गई हैं। इन इमारतों की बनावट फ्रांसीसी ढङ्ग की है। कैरो हमें दो लाख से कुछ अधिक आबादी का एक बड़ा शहर प्रतीत हुआ। नये शहर में मुख्यतः योरपियनों की बस्ती है। वहाँ बहुत-से बड़े बड़े होटल हैं जो यात्रियों द्वारा बहुत अच्छी तरह संरक्षित जान पड़ते हैं। 'कुक' के कार्यालय के सामने हम रुके, वहाँ हमारे साथ स्थानीय गाइड जो बहुत अच्छी तरह अँगरेज़ी बोल सकते थे, कर दिये गये। उनके साथ हम सीधे कैरो के संग्रहालय में पहुँचे। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि यह मिस्री पुरातत्त्वों के अति प्रसिद्ध संग्रहालयों में है। हमने तूतनखामन की क़ब्र से निकाली हुई वस्तुओं का निकट से निरीक्षण किया और प्राचीन



[कैरो—पिरमिड के निकट का एक दृश्य]



[कैरो]

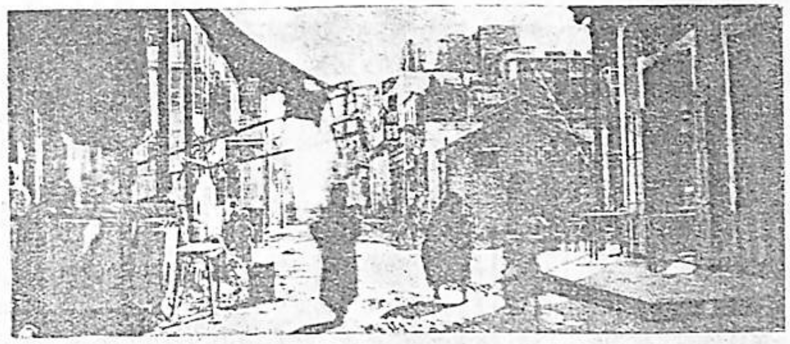


[अरबी कहवा (पोर्ट सईद)]

राजसी महल की विभिन्न वस्तुओं के रूप-रङ्ग को, जो बिलकुल नये-से जान पड़ते थे, देखकर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। क़ब्र में रक्खी गई शृङ्गार की विभिन्न वस्तुओं की कारीगरी और उन पर किये गये सुनहले काम का सविस्तर वर्णन करना असम्भव है। प्रदर्शन की वस्तुओं से ३,५०० वर्ष पूर्व की मिस्री संस्कृति का अनुमान किया जा सकता है। इन अवशेषों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन दिनों के मिस्र-निवासी किस प्रकार का जीवन व्यतीत करते थे। हमारी चार पहिये की गाड़ियों की तरह उनके रथ होते थे। उनके रथों में मील बतानेवाले यंत्र भी थे। हमारे पाठक मिस्र देश की ममियों और मिस्री पुरातत्त्व के महान् ज्ञाता मिस्टर हॉवर्ड कार्टर-द्वारा खोजे गये अन्य अवशेषों के सम्बन्ध में पढ़ चुके हैं। इसलिए मैं पुरातत्त्व-सम्बन्धी खोजों का यहाँ वर्णन न करूँगा। इस संग्रहालय में रोमन-काल की, जो पुरातत्त्ववेत्ताओं को अध्ययन की यथेष्ट सामग्री प्रदान करता है, कुछ आश्चर्यजनक मूर्तियाँ भी हैं।

संग्रहालय देखने के पश्चात् हम देशी बाज़ार में गये। वहाँ यहूदियों, इटालियनों और यूनानियों की बड़ी बड़ी दूकानें थीं। उनमें से अधिकांश ठग थे और जब तक आप उनसे खूब दृढ़तापूर्वक सौदा न करें, आपका ठगाया जाना अवश्यम्भावी है। हमने कुछ वस्तुएँ खरीदीं और होटल में गये। भोजन के बाद हम पिरमिड देखने निकले। पिरमिडों को जो सड़क जाती है वह कैरो की अत्यन्त सुन्दर सड़कों में से एक है। सड़क के दोनों ओर मिस्र के श्रीमन्तों के बँगले हैं। पहाड़ी के नीचे उपत्यका में एक मील जाकर सड़क समाप्त हो जाती है। यहाँ से पिरमिडों तक जाने के लिए ऊँट मिलते हैं। ये ऊँट बड़े ही सीधे होते हैं। यद्यपि आरम्भ में यह सवारी बड़ी खतरनाक जान पड़ी तथापि हमें इससे बहुत आनन्द मिला। प्राचीन पिरमिड, जिनके विषय में मिस्री पुरातत्त्व के विशारदों ने आश्चर्यजनक बातें बतलाई हैं वास्तव में दर्शनीय हैं और जो स्वेज नहर से गुजरते हैं उन्हें यह अवसर न चूकना चाहिए। हम पिरमिडों के आन्तरिक भाग में गये और प्राचीन मिस्रियों ने उन विशाल स्तूपों की कैसे रचना की है यह देखकर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। प्रत्येक पत्थर समान पूर्ण घनाकार वजन में लगभग १५ टन के होगा। पिरमिड नम्बर १ की ऊँचाई लगभग ५०० फ़ीट है और इसकी बनावट ककचायत के समान है। अन्दर के भाग में शिखर तक जाने के लिए सीढ़ियाँ हैं। मैं और मेरे चीनी मित्र मिस्टर ह्व चोटी तक गये। परन्तु जब हम नीचे उतरे तब सर्वथा थक गये थे।

पिरमिड देखने के बाद टामस कुक का मार्ग-दर्शक हमें नील नदी में एक नाव पर ले गया। वहाँ एक अत्यन्त रमणीक दृश्य के बीच में हमने चाय पी। सुन्दर नील के दोनों किनारों पर कैरो के बड़े



[स्थानीय लोगों की बस्ती (पोर्ट सईद)]

पाशाओं के सुन्दर बँगले हैं। नदी भरी हुई थी और सम्पूर्ण पास-पड़ोस दुर्लभ सौंदर्य से व्याप्त था। योरपियन ढङ्ग से बिछाये गये उन उद्यानों के मध्य में भी पूर्वीय वैभव का अभाव नहीं था। नील नदी में इस नौका-भ्रमण का यात्री बड़ा आनन्द लेते हैं। बहुत-से लोग जो योरप से कैरो में छुट्टी का दिन बिताने आते हैं, वे नदी-मार्ग में स्वास्थ्यप्रद वायु का आनन्द लेते लक्सर तक जाते हैं। सन्ध्या की ठण्ढक बड़ी सुहावनी थी। उसमें हमने नदी के किनारे शान्तिपूर्वक आध घंटा बिताया। हमारे देश में बहुत-सी सुन्दर नदियाँ हैं परन्तु आर्थिक अभावों के कारण हम उनका उपयोग करने से वञ्चित रह जाते हैं।

सन्ध्या को हम पोर्ट सईद की गाड़ी पकड़ने के लिए रेलवे स्टेशन को द्रुत गति से लौटे। गाड़ी काफ़ी भरी थी। इस यात्रा में लगभग ४ घंटे लगते हैं और रेल नील नदी के उपजाऊ बेसिन से होकर गुजरती है। सौभाग्य से सन्ध्या निर्मल थी इसलिए हमें नील की उपजाऊ घाटी की भी एक झलक देखने को मिल गई। वहाँ के निवासी स्पष्टरूप से खुशहाल प्रतीत होते थे। साधारण किसान भी यथेष्टरूप से प्रसन्न थे और स्त्रियों की पोशाकें अच्छी थीं। एक स्थान पर एक बड़ा मेला लगा था वहाँ हमने बहुत-सी चल्लियाँ देखीं जो सुन्दर पोशाकों से युक्त बच्चों को लिये आनन्द से घूम रही थीं। हम कई क़स्बों से भी गुजरे जिनमें आधुनिक इमारतें दिखाई पड़ीं। अधिकांश क़स्बों में बिजली की रोशनी हो रही थी। उपहार-गृहों में लोगों की भीड़ दिखाई पड़ी। एक नवयुवक मिस्री हमारे साथ रेलगाड़ी में सवार था। वह मामूली अँगरेज़ी बोल लेता था और वह हमें बहुत सुखदायक साथी प्रतीत हुआ। उसने हमसे बताया कि गत महायुद्ध के बाद से देश काफ़ी सँभल गया है और रहन-सहन के औसत दर्जे में उन्नति हुई है। उसका सम्बन्ध प्रगतिशील दल से है और कट्टर धारणायें उसमें नहीं हैं। उस ऋतु की मुख्य फ़सल कपास थी। पौधे नये थे और उनमें ओज था। कपास की इन हरी हरी घनी झाड़ियों का देखना बड़ा रुचिकर प्रतीत होता था।

आठ बजे शाम के लगभग हम सईद बन्दर के निकट एक स्टेशन पर पहुँचे। यहाँ एक दुर्घटना हो गई और सौभाग्य से भीषण काण्ड होते होते बच गया। दो डिब्बे जो एक दूसरे से स्प्रिंगदार कड़ियों से जुड़े हुए थे टूट गये और दूर जा पड़े। चूँकि गाड़ी अभी छूटी ही थी और उसकी चाल में तेज़ी



[मिस्री स्त्रियाँ (कैरो)]

नहीं आई थी इसलिए वह उलटने से बच गई।' यह दुर्घटना इञ्जीनियरिङ्ग विभाग की सुविधित निगरानी न होने के कारण हुई थी।' इस व्यवस्था-पद्धति को कोसते हुए इस स्टेशन पर हमें लगभग दो घंटे प्रतीक्षा में बिताने पड़े। अधिकारी इस दुर्घटना के लिए बड़ा खेद प्रकट कर रहे थे। यदि रेल की चाल ३० घंटा प्रतिमील के हिसाब से होती तो इनका अन्त भयानक होता। दो घंटे के पश्चात् हम सईद बन्दर के स्टेशन पर किसी प्रकार पहुँचे।

बन्दरगाह में तेज़ प्रकाश हो रहा था और समुद्री हिस्से में ऐसा जान पड़ता था मानो दिवाली हो रही हो। बन्दरगाह में १५ से अधिक जहाज़ थे और उन सबमें तेज़ रोशनी हो रही थी। हममें से कुछ लोग बन्दरगाह देखना चाहते थे। इसलिए माँझी से कहा कि वह हमें एक घंटे बाद जहाज़ पर ले जाने के लिए आवे। हम बाज़ार में टहलते हुए गये और याददाश्त के लिए कुछ चीज़ें ख़रीदीं कुछ मुहल्ले बहुत गन्दे थे और वेश्या-गृहों से भरे हुए थे। मार्ग-दर्शक ने समय पर हमें उधर न जाने के लिए सावधान कर दिया था।

मिस्र में शिक्षा का औसत प्रचार बहुत कम है और यद्यपि वहाँ अब बहुत-से आधुनिक स्कूल खुल गये हैं तथापि जन-साधारण में शिक्षा का प्राबल्य होने में अभी पीढ़ियाँ लग जायँगी। तो भी जन-साधारण में शिक्षा के प्रचार की समस्या वहाँ इतनी दारुण नहीं है जितनी कि हमारे देश में है। उपजाऊ हिस्से के लोगों की आय का औसत हमारे देश के किसानों की आय के औसत से अधिक है और उनका स्वास्थ्य भी अधिक अच्छा है।

नई पुस्तकें

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

१—गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर—(अँगरेज़ी) लेखक, श्री के० एम० मुंशी, प्रकाशक, लांग्मैन्स ग्रीन एण्ड कं० लिमिटेड, ५३ निकल रोड, बम्बई हैं।

२—गुप्त-गायन—(संगीत) संग्रहकर्त्ता, श्री फूलचन्दमल बच्ची जैन, प्रकाशक, गुप्त संगीतालय, ३६।११ अपर-चितपुर रोड, कलकत्ता हैं और मूल्य ।=) है।

३—उद्गार—लेखक, श्री 'कनक' अग्रवाल, प्रकाशक, भारतीय विद्वत्परिषत्-कार्यालय अजमेर है।

४—प्रण-पालन—लेखक, श्री बाबूलाल उपाध्याय, प्रकाशक, राजस्थान-साहित्य-मंडल अजमेर हैं और मूल्य ।=) है।

५—साहित्य-सुषमा—(गद्य-साहित्य) सम्पादक, श्री दुलारे वाजपेयी और लक्ष्मीनारायण मिश्र, प्रकाशक तरुण-भारत-ग्रन्थावली-कार्यालय, दारागंज, प्रयाग हैं और मूल्य १॥) है।

६—फलों की खेती और व्यवसाय—लेखक, श्री नारायण दुलीचन्द व्यास एल० एजी०, इम्पीरियल इन्स्टीट्यूट आफ एग्रीकल्चरल रिसर्च, पूसा। मूल्य १॥=) है।

७—हृदय-निकुंज—(कविता) रचयिता, श्री गयाप्रसाद द्विवेदी, 'प्रसाद', प्रकाशक, साहित्य-सदन राजप्रसाद श्री रामनगर, अमेठी राज्य हैं। मूल्य ॥।) है।

८—यास्क-युग—लेखक, श्री चमूपति, एम० ए०, प्रकाशक आर्य-प्रतिनिधि-सभा पंजाब, लाहौर है। मूल्य ॥) है।

९—गोरा-बादल की कथा—संपादक, पं० अयोध्याप्रसाद शर्मा "विशारद", प्रकाशक, तरुण-भारत-ग्रंथावली, दारागंज, प्रयाग है। मूल्य ।=) है।

१०—संख्याशास्त्रांशतक—लेखक और प्रकाशक, प्रोफ़ेसर कृष्णराय नारायण भानू, फ्रीगंज उज्जैन (C. I.) हैं। मूल्य ॥) है।

११—लन्दन में भारतीय विद्यार्थी—लेखक, श्री राजकुमार मानसिंह जी, प्रकाशक, राजस्थान-साहित्य-मंडल, अजमेर हैं। मूल्य १।) है।

१२-१४—सस्ता-साहित्य-मंडल, दिल्ली से प्रकाशित ३ पुस्तकें—

(१) भारत के स्त्री-रत्न (तीसरा भाग)—लेखक, श्री मुकुटबिहारी वर्मा, मूल्य १।) है।

(२) बुद्धि-वाणी—लेखक, श्री वियोगी हरि और मूल्य ॥=) है।

(३) आगे बढ़ो—लेखक, पंडित नाथूराम शुक्ल और मूल्य ॥) है।

१५—दर्दे-दिल—(कविता) सम्पादक, श्री सुखदेवप्रसाद सिनहा बिस्मिल, प्रकाशक, सरस्वती-सदन, दारागंज प्रयाग हैं और सजिल्द पुस्तक का मूल्य २) है।

१६—जैन-बौद्ध-तत्त्वज्ञान—लेखक व प्रकाशक ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद, व्यवस्थापक, आत्मधर्म-संरक्षक चंदावाड़ी, सूरत हैं और मूल्य ॥।) है।

१७-१९—मेहरचन्द लक्ष्मणदास, सैदमिट्ठा बाज़ार लाहौर की प्रकाशित तीन पुस्तकें—

(१) कृष्णचन्द्रिका—(कविता) सम्पादक, श्री उदयशंकर भट्ट, और मूल्य २॥) है।

(२) शार्ङ्गधर-संहिता—(हिन्दी अनुवाद-सहित) टीकाकार, आयुर्वेदाचार्य प्रोफ़ेसर हरदयाल गुप्त और सजिल्द पुस्तक का मूल्य ४) है।

(३) जैनतत्त्वकलिकाविकास—(धार्मिक) लेखक

जैनमुनि उपाध्याय आत्माराम जी पंजाबी, और मूल्य २) है।

२०-२७—गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित आठ पुस्तकें—

(१) मुमुक्षु सर्वस्वसार (हिन्दी अनुवाद-सहित,—अनुवादक, श्री मुनिलाल और मूल्य ।।।-) है।

(२) प्रेम-दर्शन (भक्ति-सूत्र)—टीकाकार, श्री हनुमान-प्रसाद पोद्दार, और मूल्य ।-) है।

(३) केनोपनिषद्—मूल्य ।।) है।

(४) काठोपनिषद्—मूल्य ।।-) है।

(५) मुण्डकोपनिषद्—मूल्य ।≡) है।

(६) प्रश्नोपनिषद्—मूल्य ।≡) है।

(७) ईशावास्योपनिषद्—मूल्य ≡) है।

(८) श्री गोविन्ददामोदरस्तोत्र—टीकाकार पंडित प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, और मूल्य -)।। है।

२८—कर्त्तव्य-शिक्षण (हिन्दू-लॉ)—प्रकाशक, पंडित विश्वेश्वरदयालु जी वैद्यराज, बरालोकपुर, इटावा और मूल्य ।।।) है।

२९—जीवन (कविता)—लेखक, श्री राजाराम शुक्ल (राष्ट्रीय आत्मा), प्रकाशक, मित्र-मंडल-कार्यालय, आनन्द-बाग़, कानपुर हैं और मूल्य १।) है।

३०-३१—श्री अम्बिकादत्त त्रिपाठीलिखित, साहित्यसागर कार्यालय सुइथा कलाँ, जौनपुर से प्रकाशित दो पुस्तकें—

(१) कृष्णा-कुमारी (कविता)—मूल्य ।) है।

(२) भंग में रंग—मूल्य ।) है।

३२—श्रीमद्भगवद्गीता—सम्पादक, पंडित श्री माधव शर्मा, 'श्रीगीतार्थप्रकाश' कार्यालय, ३५।१३, जंगमबाड़ी, काशी (यू० पी०) है और वार्षिक मूल्य ४) है।

३३—अमी (गुजराती)—लेखक, श्री जयेन्द्र राय भगवानलाल दुर्काल एम० ए०, अहमदाबाद और मूल्य १।।) है।

१—योग-दृष्टि—लेखक, श्री परमहंस स्वामी स्वरूपानन्द तीर्थ हैं। पृष्ठ-संख्या ६६, मूल्य ।।।-)।। है। पता—व्यवस्थापक, नित्याश्रम, पो० लोहाघाट (अलमोड़ा) है।

इस पुस्तक के आवरण-पृष्ठ पर लिखा है—"मंत्र-योग, हठ-योग, लय-योग, राजयोग तथा वर्णाश्रम-धर्म, आचार, अछूतोद्धार इत्यादि विविध विषयों पर प्रकाश डालते हुए ब्रह्मनिर्वाण का मार्ग दिखलानेवाला अत्युत्तम अनुभूत ग्रन्थ"। परन्तु पुस्तक पढ़ने पर हमें बड़ी निराशा हुई।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखे जाने का मुख्य कारण, प्रकाशक महोदय ने अपने प्रारम्भिक वक्तव्य पृष्ठ (च) में लिखा है, सनातनधर्म का ह्रास और सुधारकों-द्वारा किया गया अछूतोद्धार का होना सुनकर स्वामी जी के करुण हृदय (?) का द्रवीभूत होना। इस पुस्तक के पढ़ने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि लेखक और प्रकाशक दोनों ने वर्तमान हरिजन-आन्दोलन तथा मन्दिर-प्रवेश आदि विषयों का समुचित अध्ययन नहीं किया है। केवल सुनी-सुनाई बातों के आधार पर उन्हें यह भ्रम हो गया है कि अछूतोद्धार अथवा हरिजन-आन्दोलन के प्रवर्त्तक नेता इस आन्दोलन की ओट में देश से हिन्दू-वर्ण-व्यवस्था को उठा देना और पारस्परिक अन्तर्जातीय विवाह तथा सहभोज का प्रचार करना चाहते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि पुस्तक में सभी वर्णित विषयों का इसी आन्दोलन के निराकरण तथा विरोध में पर्यवसान हुआ है।

प्रकाशक तथा लेखक दोनों ही अछूतोद्धार के आन्दोलन को "प्रज्ञाविहीन प्रकृतिगत केवल प्रेम और करुणा" से चलाया हुआ और देश को पतन की ओर ले जानेवाला समझते हैं। प्रकाशक महोदय का तो कहना है कि "अछूत-व्यवस्था निर्धारित करके ऋषियों ने भारत का महान् कल्याण किया है।" वे अछूतपन को वैज्ञानिक आधार पर स्थित और सनातन-धर्म का "एक अपरिहार्य अंग समझते हैं।" लेखक महोदय ने भी सत्त्व, रज, तम की त्रिगुणात्मक सृष्टि-प्रक्रिया में गुणों के तारतम्य से वर्ण-व्यवस्था को माना है।

यद्यपि स्वामी जी स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि "वर्णाश्रम-धर्म की सुव्यवस्था इस समय नहीं है, क्योंकि ब्राह्मण ब्राह्मणत्व में नहीं, क्षत्रिय क्षत्रियत्व में नहीं, वैश्य वैश्यत्व में नहीं और शूद्र शूद्रत्व में नहीं (पृष्ठ २६)" तथापि आप इस निर्जीव "वर्णाश्रमधर्म को तोड़ कर, जातिपाँति मिटाकर खिचड़ी" बनाने के पक्षपाती नहीं हैं।

"मन्दिर-प्रवेश तथा हरिजन" नामक अध्याय में स्वामी जी कहते हैं कि "किसी मनुष्य को यानी ब्राह्मण से लगाकर (लगायत ?) अछूत डोम, मेहतर, चमार तक को आत्मोन्नति के विकास के लिए (?) मन्दिर की कोई आवश्यकता नहीं होती है। हाँ, धर्म का एक गौण अङ्ग मन्दिर है।" परन्तु स्वामी जी को यह जानकर आश्चर्य होगा कि आप जिसे आत्मोन्नति के विकास के लिए अनावश्यक और धर्म का गौण अंग बतलाते हैं उसी मन्दिर का द्वार कुछ स्वार्थी लोग रोके खड़े हैं और सर्वसाधारण की समान सम्पत्ति, इन मन्दिरों, को उन्होंने अपनी बपौती समझ रक्खा है। स्वामी जी, सुधारकों को इस विषय में जो उपदेश देते हैं वह भी सुनिए—"यदि सुधारक महाशयगण हरिजनों को अपने अपने हृदय-मन्दिर का कपाट खुलवा देते, हरिप्रेमसरोवर में बहा देते, हरिज्ञान प्रदीप प्रज्वलित करा देते, हरिभक्ति की आदर्श शिक्षा देते, चित्तरूपी तालाब में हरि-प्रेम-तरंग उठा देते, तब हरिजन मन्दिर के पत्थर के हरि की अपेक्षा, अपने हृदय मन्दिर की (?) चेतन देवता प्रत्यक्ष हरि का दर्शन कर कई कोटि गुण अधिक कृतार्थ होते।" निःसन्देह स्वामी जी के इन उदार विचारों की हम हृदय से प्रशंसा करते हैं। परन्तु महाराज परमहंस जी से हमारा नम्र निवेदन इस विषय में इतना ही है कि आत्म-स्वरूप परमात्मतत्त्व के दर्शन कराने की बात से हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश का निषेध नहीं होता, प्रत्युत उन्हें आत्मदर्शन का अधिकारी सिद्ध करके आप स्वतः ही उन्हें 'धर्म के गौण अङ्ग' तथा 'आत्मोन्नति के विकास के लिए अनावश्यक' इन मन्दिरों में प्रवेश का स्वतंत्र अधिकार प्रदान कर रहे हैं। जो नेता इस उच्च पद तक हरिजनों को पहुँचाने में किसी भी कारण से असमर्थ हैं वे आपके जैसे विचारशील उदारचेता योगिराट् की सहायता यदि पाते तो कितने प्रसन्न होते! हमें आशा है, स्वामी जी अपनी वैयक्तिक मुक्ति की साधना को छोड़कर इस विशाल देश की मुक्ति के लिए, ब्राह्मण से लेकर अछूतपर्यन्त, सबको अपने विचारों के अनुसार सच्चे आत्मरूप हरि का दर्शन कराकर कल्याण-पथ की ओर ले चलेंगे। स्वामी जी हरिजनों को श्री कलि-सन्तरणोपनिषद् के तारक ब्रह्म महामंत्र 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण इत्यादि का सप्रेम कीर्तन करने का भी अधिकार देते हैं।' परन्तु उन्हें शायद मालूम नहीं कि विश्वनाथपुरी काशी में इसी महामंत्र की दीक्षा का प्रयत्न करने पर महामना मालवीय जी को सनातनधर्मियों के हाथों ही कैसी लांछना उठानी पड़ी थी।

आध्यात्मिक योग की ओर वर्तमान भारत की जनता की दृष्टि आकर्षित करना, वर्णाश्रमधर्म की अव्यवस्था को व्यवस्थित करने की चेष्टा, तथा ब्राह्मणों के उद्बोधन के लिए ज़ोरदार अपील, ये इस पुस्तक के गुण हैं।

अछूत-आन्दोलन पर हमें विस्तार से कुछ कहना पड़ा अन्यथा पुस्तक के इस अंश से भ्रान्ति फैल सकती थी। अछूत आन्दोलन के मूल तथा न्याय्य कारणों को यहाँ दिखाने की आवश्यकता हम नहीं समझते।

पुस्तक की भाषा सर्वथा शुद्ध नहीं है, तथा वाक्यों का विन्यास भी स्थान स्थान पर शिथिल और विचित्र बेढंगा-सा हो गया है। पुस्तक की विषय-सूची में केवल हिन्दी का प्रयोग होना चाहिए था। हिन्दी और अँगरेजी की खिचड़ी अच्छी नहीं प्रतीत होती।

—कैलासचन्द्र शास्त्री, एम० ए०

२—अनुराग-वाटिका—लेखक, श्रीयुत वियोगी हरि, प्रकाशक, गोपालदास सेवक, साहित्य-सेवा-सदन, काशी हैं। पृष्ठ-संख्या ५८ और मूल्य ।-) है।

यह पुस्तक का दूसरा संस्करण है। श्री वियोगी हरि जी ब्रज-भाषा के सुकवि हैं। उनकी शैली और उनके विषय ऐसे हैं कि उनके पदों में सूर की वाणी की प्रति-ध्वनि-सी जान पड़ती है। पुस्तक में कुछ दोहे और शेष पद हैं। सभी पद कृष्ण-भक्तिपरक हैं। ऐसा जान पड़ता

है कि समय के परिवर्तन के साथ भक्त-हृदय परिवर्तित नहीं हुआ करता और अब भी वह अपने को उसी प्रकार व्यक्त करता है जिस प्रकार उसने आज से चार सौ वर्ष पूर्व किया था। कृष्ण-भक्तों और व्रज-भाषा-प्रेमियों के लिए यह पुस्तक संग्रहणीय है।

३—दुबवलियाँ की याद में—लेखक, श्रीयुत विश्वनाथसिंह, एल० बी० पी० हैं। पता - सरस्वती-साहित्य-सदन, भोजूबीर, बनारस कैंट है। पृष्ठ-संख्या ४० और मूल्य ६ आने हैं।

दुबवलियाँ एक उजड़े हुए गाँव का नाम है। यह काव्य-पुस्तक इसी गाँव की स्मृति में लिखी गई है। अँगरेज़ी के प्रसिद्ध कवि गोल्डस्मिथ की लिखी हुई, डिज़र्टेड विलेज' नामक कविता प्रसिद्ध है। इसका अनुवाद कविवर श्रीधर पाठक ने 'ऊजड़ ग्राम' के नाम से किया है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने एक मौलिक ऊजड़ ग्राम लिखने का प्रयत्न किया है। अपने प्रयत्न में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। उजड़ी दुबवलियाँ को देखकर उसकी पुरानी स्मृतियाँ जाग पड़ती हैं। जो कुछ शेष बचा हुआ है, वह कितनी वेदना, कितनी विवशता, कितनी असमर्थता व्यक्त करता है, देखिए—

"बेलपत्र का वृक्ष पुराना, कुछ मिंहदी की डार,
सूखी ऐक तलैया जिसके उर में अमित दरारें।
छोटे छोटे उजड़े घर की हैं दो-चार कतारें,
बाक़ी एक पेड़ पीपल का है उस ताल किनारे।"

दुबवलियों की वर्तमान दशा का वर्णन कर कवि उसके अतीत का दृश्य दिखाता है और क्षण-मात्र में ऐसा मालूम होता है कि उजड़ी दुबवलियाँ फिर बस गईं। प्रातः संध्या के कार्य-क्रम, गाँव के विशेष व्यक्तियों, अलाव, अखाड़ा, कोल्हू, बरात इत्यादि का बड़ा सजीव वर्णन है।

गाँव की एक विधवा की दशा का वर्णन करते हुए भारत की विधवा-समस्या को उठाना और अंत की आध्यात्मिकता हमें रुचिकर नहीं प्रतीत हुई। कहीं कहीं भाषा-सम्बन्धी त्रुटियाँ भी हैं। यदि विश्वनाथसिंह जी प्रयत्न करेंगे तो आशा है, ग्रामों के सम्बन्ध में आगे वे इससे अच्छी रचना कर सकेंगे।

४—कल्याण-भावना—लेखक, श्रीयुत ताराचन्द्र पाँड्या, प्रकाशक, गीता-प्रेस, गोरखपुर हैं। पृष्ठ-संख्या १४ और मूल्य ।) है।

यह एक पद्य-पुस्तिका है। इसमें दो रचनायें हैं। एक संस्कृत वृत्त में ईश्वर की प्रार्थना है और दूसरी का शीर्षक 'सच्चा वीर' है, जिसमें सच्चे वीर के लक्षण बताये गये हैं।

५—मनप्रबोधमाला—रचयिता श्री सीतारामीय श्री मथुरादास जी महाराज, प्रकाशक श्री अवधकिशोरदास 'श्रीवैष्णव' अयोध्या हैं। मूल्य ।।) । पृष्ठ-संख्या १६ है। पुस्तक-रचयिता ने लिखा है—

"कविता के गुण-दोष कछु, नहिं जानौं मतिमंद,
उस प्रेरक की प्रेरणा (तें) प्रगट भये ये छन्द।"

'उस प्रेरक की प्रेरणा' से लिखे गये नीति, वैराग्य, ईश्वर-भक्ति-सम्बन्धी दोहों का यह एक संग्रह है। साधु-सन्तों के काम का है।

६—श्रीनैमिषारण्य—रचयिता और प्रकाशक श्री कृष्णदत्त त्रिवेदी, बरम्हौली, सीतापुर हैं। पृष्ठ-संख्या १४ है। मूल्य नहीं दिया है।

त्रिवेदी जी ने अपने इस 'प्रथम प्रयास' में सीतापुर-स्थित नैमिषारण्य तीर्थ का गुण-गान किया है। तीर्थ-यात्री पुस्तक से लाभान्वित होंगे।

७—पत्र-पुष्प—लेखक, कुमार उदयवरसिंह, प्रकाशक, बाबू रामानुग्रहनारायणसिंह, मीरगञ्ज, गया हैं। मूल्य ~) और पृष्ठ-संख्या ३२ है।

यह एक कविता-पुस्तक है। आरम्भ में श्री मोहनलाल जी महतो वियोगी ने कवि की बाल-सुलभ प्रतिभा, उत्साह और लगन की ओर संकेत किया है। हमें भी इसमें संदेह नहीं। कवि के हृदय में भावना के अंकुर हैं। उन्हें शब्दों में व्यक्त करने के लिए अध्ययन और अभ्यास की आवश्यकता है।

८—प्रकृति-पूजा (काव्य)—लेखक पंडित बालकराम शास्त्री 'बालक', प्रकाशक हिन्दी-प्रचारिणी सभा, बलिया हैं। पृष्ठ-संख्या ३६, मूल्य ।) है।

शास्त्री जी ने इस पुस्तक में षड्ऋतुओं, प्रभात और सन्ध्या के दृश्य, वस्तु और व्यापारों के वर्णन के द्वारा प्रकृति देवी के चरणों में अपनी काव्यकुसुमाञ्जलि अर्पित की है। संस्कृत-छन्द द्रुतविलम्बित में सम्पूर्ण पुस्तक लिखी गई है। पुस्तक की भाषा सरल और प्रायः अपने स्वाभाविक चलते रूप में ही दृष्टिगोचर होती है। संस्कृत-वृत्त में ऐसी भाषा एवं ऐसी सरल शैली का निर्वाह करना आसान नहीं है। पुस्तक की कविता सरस और सुन्दर हुई है। लेखक की कृति में संस्कृत-काव्यों के भावों की झलक होते हुए भी नूतन उद्भावनाओं की कमी नहीं है। एक उदाहरण देखिए जो 'संध्या-सत्य' नामक शीर्षक से लिया गया है—

"मुकुल पद्म कमण्डलधारिणी,
विधु-विभूति-विभूति-विभूषिता।
अजिन-ध्वान्त दबा कर यामिनी,
लग रही वह आज समाधि में।"

हमें आशा है, शास्त्री जी निकट भविष्य में अपनी अधिक उत्तम कविताओं से हिन्दी-साहित्य को विभूषित करेंगे। पुस्तक काव्य-रसिकों के लिए दर्शनीय है।

९—मायावाद (अद्वैतसिद्धान्त विद्योतन) (प्रथम भाग)—लेखक श्री साधु शान्तिनाथ हैं। पृष्ठ-संख्या ६८ है। मूल्य पुस्तक पर नहीं लिखा है। पता—साधु शान्तिनाथ, मंगलभुवन, पंचवटी, नासिक।

यह उच्च कोटि का एक दार्शनिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में मायावाद का प्रतिपादन किया गया है। पुस्तक की 'प्रस्तावना' में लेखक ने प्रौढ़ तर्क के आधार पर यह सिद्ध किया है कि "तर्काप्रतिष्ठानात्" वचन असंगत है। इसी प्रस्तावना में लेखक ने दर्शनशास्त्र-द्वारा मोक्षविषयक अशेष कल्पना को "अनुभवविवर्जित, विचारविगर्हित तथा श्रद्धजडताविजृम्भित" सिद्ध करने के लिए अपने आगे प्रकाशित होनेवाले 'धर्म-विमर्श' नामक ग्रन्थ की ओर संकेत किया है।

दर्शनशास्त्र के विचार का फल क्या है? इस प्रश्न का उत्तर लेखक ने इस प्रकार दिया है—"उससे तत्त्व-विषयक नाना प्रकार के सिद्धान्तों का परिचय होता है। दर्शनशास्त्र के मनन से अवगत होता है कि व्यक्तिगत सामर्थ्य और रुचि के अनुसार दृष्टि-भेद का अवलम्बन करके, विचार-भेद कैसे होता है और उससे सिद्धान्त-भेद कैसे होता है। इसलिए विचारवानों के लिए इस विद्या का अनुशीलन कुतूहलप्रद है। प्रकृत सिद्धान्त या चरम सिद्धान्त क्या है, इस विषय में कोई सर्वसम्मत उत्तर नहीं दिया जा सकता।"

प्रस्तावना के अनन्तर विषयों की सूची तथा उसके बाद प्रथम भाग में आनेवाले नव्यन्याय के कठिन पारिभाषिक शब्दों की विशद व्याख्या दी गई है। इन पारिभाषिक शब्दों को बिना ठीक ठीक समझे भारतीय दर्शनशास्त्र में प्रवेश करना असम्भव है, यह बात तो दर्शनशास्त्र पढ़नेवाला प्रत्येक विद्यार्थी जानता ही है। इस दृष्टि से विशद व्याख्या-सहित पारिभाषिक शब्दों की यह सूची परम आवश्यक और दर्शन-ग्रन्थों के समझने के लिए परमोपयोगी है।

ग्रन्थ में (१) आकस्मिकवाद, (२) असत्कार्यवाद, (३) सत्कार्यवाद, (४) सदसत्कार्यवाद तथा (५) अनिर्वचनीयवाद का विशेष विवेचन हुआ है। न्याय, वैशेषिक, प्राभाकर, सांख्यादि मतों का पूर्वपक्ष, उनकी शंकायें तथा उनका खण्डन करके सिद्धान्त-पक्ष का स्थापन प्रबल युक्तियों-द्वारा किया गया है। प्रत्येक अनुच्छेद पूर्वपक्षी, सिद्धान्ती, शंका तथा समाधान नामक शीर्षकों में बँटे होने के कारण प्रतिपाद्य विषय के समझने में बड़ी सरलता हो गई है। इस शैली का दार्शनिक ग्रन्थों में समावेश होने से पाठक को कौन पूर्व-पक्ष है और कौन सिद्धान्त पक्ष, यह समझने में ज़रा भी अड़चन नहीं हो सकती।

इन दुरूह युक्तियों के सहारे भिन्न भिन्न सिद्धान्तों का पहले स्थापन और फिर उनका खण्डन करके मायावाद का प्रतिपादन लेखक ने इस ग्रन्थ में बड़े परिश्रम, खोज तथा कुशलता से किया है।

लेखक की शैली दार्शनिक विषयों के सर्वथा उपयुक्त है। भाषा भी सरल तथा शुद्ध है। प्रखर प्रक्रिया ग्रन्थों से और गुरुचरणों में बैठकर जो बातें जानी जाती हैं, उनमें से अनेक बातें इस ग्रन्थ में हिन्दी-भाषा-द्वारा लेखक ने दर्शनशास्त्र के प्रेमियों के लिए सुलभ कर

दी हैं। 'मायावाद' का यह प्रथम भाग है। हमें पूर्ण विश्वास है कि सम्पूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो जाने पर हिन्दी के दार्शनिक साहित्य में वह ग्रन्थ उच्च स्थान प्राप्त करेगा। इसके लेखक बंगाली हैं, राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति उनका यह प्रेम प्रशंसनीय है। दर्शनशास्त्र के प्रेमियों को इस ग्रन्थ का समुचित आदर करके लेखक को उत्साहित करना चाहिए।

१०—दिगम्बरत्व और दिगम्बर-मुनि—लेखक, श्रीयुत कामताप्रसाद जैन, एम० आर० ए० एस०, प्रकाशक, पंडित मंगलसेन जैन, चम्पावती जैन पुस्तकमाला-प्रकाशन-विभाग, अम्बाला छावनी हैं। पृष्ठ-संख्या ३१६, और मूल्य १) है।

नग्न साधुओं का जनता में विचरण करना उचित है या अनुचित, ऐसी प्रथा पहले थी या नहीं, इन्हीं विषयों पर लेखक ने इस पुस्तक में भली भाँति प्रकाश डाला है। प्राचीन काल से आधुनिक काल तक उनकी इस धार्मिक प्रथा में शासकों-द्वारा कभी हस्तक्षेप न होना आदि विषयों को लेखक ने ऐतिहासिक प्रमाणों, साक्षियों तथा धार्मिक ग्रन्थों के उद्धरणों-द्वारा प्रमाणित किया है। सम्पूर्ण पुस्तक विस्तृत अध्ययन का परिणाम है। पाश्चात्य देशों में दिगम्बरत्व के पक्ष में विद्वानों और डाक्टरों की सम्मतियों का भी इसमें खोज खोज कर समावेश किया गया है। पुस्तक में दिगम्बरावस्था में स्थित जैन तीर्थंकरों तथा जैन मुनियों के आठ-नौ चित्र भी दिये गये हैं। इस विषय के जिज्ञासुओं के लिए इसमें अनेक ज्ञातव्य बातें मिलेंगी। लेखक ने कुछ वेदमंत्रों से भी, यथा—"आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः" इत्यादि यजुर्वेद-मंत्र से स्वामी महावीर तथा उनका नग्नत्व सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। यह न केवल विवादास्पद है अपितु उपहासास्पद भी है। वेदों का समय पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में भी महावीर स्वामी से पूर्व का है। फिर जिस मंत्र का उद्धरण दिया गया है उसका 'देवता' तो सर्वानुक्रमणिका में 'सोम' कहा गया है न कि स्वामी महावीर। महावीर स्वामी बुद्ध के समसामयिक थे, यह बात आज इतिहास से बहुत-कुछ निश्चित हो चुकी है। अस्तु, इन विवादग्रस्त विषयों को छोड़ देने पर भी, ग्रन्थकार का प्रतिपाद्य विषय—दिगम्बरत्व तथा उसका प्राचीनत्व—अक्षुण्ण रहता है।

११—गोपीचन्द्रोदयम् (संस्कृत नाटक)—श्री पण्डित मणिराम शास्त्रिकृत, पृष्ठ-संख्या ११८; मूल्य ।।।) है। पता—पण्डित दुर्गादत्त शर्मा, दयालबाग, आगरा।

इस नाटक की कथा-वस्तु सुप्रसिद्ध है। राजा गोपीचन्द्र अपनी माता मैनावती के उपदेश से राज-पाट छोड़ कर अपने मामा योगी भर्तृहरि और योगी जालन्धर के पास चले जाते हैं। वहाँ गुरु गोरखनाथ से योग-युक्ति जानकर वे उनके साथ कामाक्षा जाते हैं। वहाँ मत्स्येन्द्रनाथ विषय-वासना में फँसे हुए थे। गोरख ने वेष बदल कर उनका उद्धार किया और राजा गोपीचन्द्र ने अपने पराक्रम से सैन्य को परास्त किया और मच्छन्दरनाथ तथा गोरखनाथ को अपने तपोवन तक पहुँचने में इस प्रकार सहायता दी। अन्त में गोपीनाथ लौट कर गुरु के पास आये। गुरु ने अपने ही रनवास में जाकर भिक्षा लाने के लिए गोपीचन्द्र को कहा। इस परीक्षा में वे उत्तीर्ण हुए। वहाँ से वे गौडदेश (बंगाल) को गये, जहाँ की रानी चम्पावती ने जब अपने भाई को योगी के वेश में देखा तब वह शोक से मूर्छित होकर गिर पड़ी और मर गई। इस पर योगी गोपीचन्द्र बड़े चिन्तित हुए और उन्होंने अपने गुरु गोरखनाथ जी का स्मरण किया। गोरख जी ने शिष्य को दुःखी देख दयार्द्र-चित्त होकर चम्पावती को पुनरुज्जीवित कर दिया। इसके बाद शिष्य-सहित गोरखनाथ जी अपने आश्रम में चले आये। लेखक ने इस नाटक को प्राचीन शैली पर ही लिखा है। भाषा प्राञ्जल, और रचना प्रौढ़ है। नाटक में कथा का निर्वाह बड़ी कुशलता से हुआ है। नाटक में शान्तरस है। स्त्री-पात्रों की भाषा प्राकृत है। इस प्रकार प्राचीन शैली का पूर्ण निर्वाह हुआ है। संस्कृत-रसिकों को इसका अवलोकन अवश्य करना चाहिए। नाटक के अन्त में लेखक की कुछ हिन्दी-कवितायें भी हैं जो साधारण हैं। नाटक की कथा हिन्दी में भी परिशिष्ट में दे दी गई है।

१२—वैदिक भूगोल—लेखक, बाबू नारायणप्रसाद मोहनिया हैं। पृष्ठ-संख्या १४, मूल्य चार आने है। पता—हिन्दू-शुद्धि-सभा, राजा की मंडी, आगरा।

विष्णु पुराण के भौगोलिक वर्णनों का आज-कल के देशों, पर्वतों, नदियों तथा भूमिखण्डों के नामों के साथ सङ्गति-स्थापन की चेष्टा लेखक ने इस पुस्तक में की है। सप्तद्वीपा वसुमती के पौराणिक भूमिखण्डों का विभाजन, नदियों के समूहों का वट, कदम्ब, पीपल तथा जम्बु वृक्षों का नाम देना आदि कई एक बातों पर लेखक ने एक नवीन दृष्टिकोण से विचार किया है। लेखक ने जिन प्राचीन नामों की आज-कल के द्वीपों या देशखण्ड आदि के नामों से सङ्गति बैठाई है वह एक विवाद-ग्रस्त विषय है। इसी विषय पर अन्य विद्वानों की पुस्तकों से अपने मतभेद के कारण तथा पुष्टि के लिए लेखक ने प्रमाण नहीं दिये हैं। पुस्तक में कई एक बातें बड़े मार्के की कही गई हैं। गजप्रमाण जम्बुओं का गिरना और उनके रस से नदियों के निकलने के वर्णन को लेखक ने बड़ी कुशलता से तुषार के बड़े बड़े खण्डों या ग्लेशियरों का पतन कह कर समझाया है। उनकी उद्भावनायें हमें बुद्धिसंगत प्रतीत होती हैं। कृष्ण के बाल्यकाल, गोवर्धनधारण, चीरहरण आदि को भी लेखक ने भौगोलिक चित्रों का रूप दिया है। इन चित्रों की स्पष्ट व्याख्या करने की आवश्यकता है। पुस्तक में अनेक मान-चित्र दिये गये हैं। परन्तु पुस्तक का काग़ज़ और छपाई दोनों ही रद्दी हैं। यदि लेखक महोदय अपनी इन खोजों को उचित रूप में प्रकाशित करें तथा इस विषय पर अन्य लेखकों की गवेषणाओं की तुलनात्मक समीक्षा करके अपने विचारों की पुष्टि में दृढ़ प्रमाण उपस्थित कर सकें तो यह पुस्तक बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी।

२३—कविवर रत्नाकर—लेखक, पण्डित कृष्णशंकर शुक्ल, एम० ए०, प्रकाशक, विद्याभास्कर बुकडिपो, बनारस हैं। मूल्य २।) है।

स्वर्गीय श्री बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' आधुनिक काल के एक प्रसिद्ध महाकवि थे। उन्होंने सदैव (आजीवन) व्रजभाषा देवी की उपासना तन-मन-धन से की।

प्रस्तुत पुस्तक में पंडित कृष्णशंकर जी ने रत्नाकर के काव्य-कौशल पर बड़े ही सुन्दर रूप से मार्मिक प्रकाश डाला है और बड़ी ही चारुता से उसकी आलोचना की है। हिन्दी-साहित्य में इस प्रकार की आलोचनात्मक पुस्तकों की बड़ी कमी है। प्रकाशक महोदय का भी कार्य सर्वथा स्तुत्य है। ऐसा प्रकाशन वस्तुतः हिन्दी-साहित्य का श्रीवर्धक ही है। पुस्तक छपाई-सफ़ाई तथा आकार प्रकारादि में भी बड़ी ही रुचिर-रोचक है। आशा है पुस्तक का पूर्णतया समादर होगा।

—रामशंकर शुक्ल, 'रसाल', एम० ए०

२४—पटना के दो साप्ताहिक—गत दो वर्षों से पटना से योगी और नवशक्ति नामक दो सुन्दर सचित्र साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हो रहे हैं। योगी के सम्पादक श्रीयुत रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी बिहार के नवयुवक और अनुभवी पत्रकार हैं। आपका ख़याल है कि अन्य प्रान्तवाले बिहारवालों का समुचित आदर नहीं करते, इसलिए इस सम्बन्ध में भी 'योगी' के पृष्ठों में बराबर आन्दोलन करते रहते हैं। 'नवशक्ति' के सम्पादक श्रीयुत देवव्रत जी भी बिहार के नवयुवक और अनुभवी पत्रकार हैं। आपका प्रयत्न यह है कि 'बिहार का अपना एक पत्र हो जो स्थायी रूप से समस्त राष्ट्र और ख़ास कर बिहार की सेवा करता रहे'। आप अपने इस प्रयत्न में बहुत कुछ सफल हुए हैं। राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रप्रसाद जैसे बिहार के लोकनेताओं का आपको सहयोग प्राप्त है। नवशक्ति कांग्रेस की नीति का समर्थक है। 'योगी' की नीति इससे कुछ भिन्न है। वह कांग्रेस के अन्तर्गत जो नवीन साम्यवादी दल क़ायम हो रहा है उसका पोषक प्रतीत होता है। इस भेद के अतिरिक्त दोनों पत्रों में बहुत कुछ साम्य है। दोनों की छपाई-सफ़ाई एक-सी है और दोनों का वार्षिक मूल्य भी एक ही अर्थात् ३) है। हम पटना के इन दोनों सहयोगियों की हृदय से उन्नति चाहते हैं।

भारत में औद्योगिक उन्नति का प्रश्न

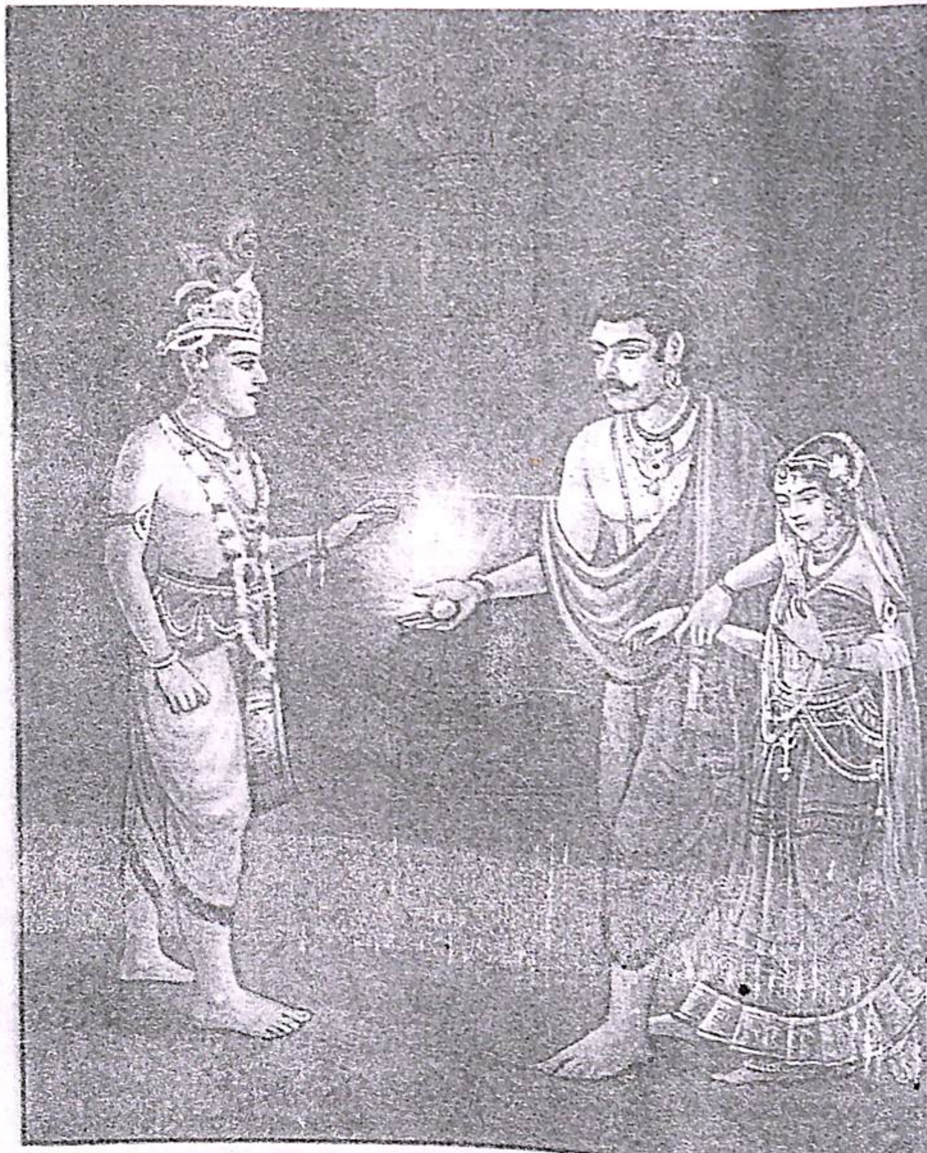
लेखक, प्रोफ़ेसर शंकरसहाय सक्सेना, एम० ए० (इकान), एम० ए० (काम), विशारद

हमारे देश की आर्थिक स्थिति बहुत डावाँडोल है वह किस प्रकार सँभल सकती है और देश की ७५ प्रतिशत भूखी जनता की रोटी का प्रश्न कैसे हल किया जा सकता है ये ऐसे प्रश्न हैं जिन पर प्रत्येक भारतीय को विचार करने की आवश्यकता है। इस लेख में विद्वान् लेखक ने कुछ ऐसी ही विचार-सामग्री अत्यन्त रोचक और मौलिक ढङ्ग से उपस्थित की है।

हमारा देश संसार के देशों में सबसे निर्धन और निर्बल है, यह बात प्रत्येक भारतवासी को खटकती है। जिस समय हमारी दृष्टि जीर्ण वस्त्रों में से दिखलाई देनेवाले निर्बल शरीर तथा २५ वर्ष की आयु में ही चेहरे पर बुढ़ापे के चिह्न धारण किये हुए देश-वासियों पर पड़ती है, उस समय किस देशप्रेमी का हृदय सिहर नहीं उठता? आज देश के सामने रोटी का प्रश्न भयंकर रूप में उपस्थित है। देश का शिक्षित समुदाय इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने के उपरान्त इस निश्चय पर पहुँचा है कि भारतवर्ष को भी ग्रेटब्रिटेन, जर्मनी, जापान तथा संयुक्तराज्य की ही भाँति औद्योगिक देश बनना होगा तभी हमारी कल्पनातीत निर्धनता का अन्त हो सकेगा। बात भी ठीक जान पड़ती है, औद्योगिक देशों के वैभव और ऐश्वर्य को देखकर हम निर्धन भारत-वासी चकित होकर यह सोचते हैं कि वैभव के स्रोत के खोलने का मुख्य साधन मिल और कारखाने खोलना है। किन्तु जो लोग देश को मिलों और कारखानों से भर कर उसे समृद्धिशाली बनाने का स्वप्न देख रहे हैं, सम्भवतः उन्होंने इँग्लैंड तथा अन्य औद्योगिक देशों के औद्योगिक संगठन का अध्ययन नहीं किया है।

सम्पत्ति की उत्पत्ति से जन-संख्या का घनिष्ट सम्बन्ध है। यदि कोई देश अधिक सम्पत्ति उत्पन्न करता है और वहाँ की धन-वितरण-प्रणाली दूषित नहीं है तो वह देश अधिक जन-संख्या का भरण-पोषण भले प्रकार कर सकता है, नहीं तो देश निर्धन रहेगा। सम्पत्ति के उत्पादन में चार चीज़ों की आवश्यकता है, प्रकृति की देन, श्रमजीवी, पूँजी तथा औद्योगिक संगठन। इन चारों साधनों में से पिछले तीन साधन बढ़ाये जा सकते हैं, अर्थात् जन-संख्या बढ़ने से श्रमजीवी बढ़ सकते हैं, सम्पत्ति को बचा कर पूँजी अधिक बढ़ाई जा सकती है और ऐसे व्यवसायी भी उत्पन्न हो सकते हैं जो धंधे की जोखिम उठाकर उसका संगठन करें, किन्तु प्रकृति की देन किसी भी देश में बढ़ाई नहीं जा सकती। अभी तक मनुष्य भूमि, जलवायु, खनिज पदार्थ, वन-प्रदेश तथा पर्वत और नदियाँ नहीं बना सका है। अस्तु प्रकृति की देन बढ़ाई जानेवाली चीज़ नहीं है।

यही कारण है कि जिन देशों में जन-संख्या अधिक है, वहाँ सम्पत्ति का उत्पादन इस प्रकार किया जाता है कि प्रकृति की देन का कम से कम खर्च हो और जहाँ जन-संख्या कम होती है, वहाँ प्रकृति की देन का अपव्यय होता है। उदाहरण के लिए जंगली जातियों को ही लीजिए। इन जातियों के मनुष्य वनों के कंद-मूल तथा जन्तुओं पर निर्वाह करते हैं, अर्थात् ये लोग अपने भरण-पोषण के लिए केवल प्रकृति पर ही अवलंबित रहते हैं। यही कारण है कि इनकी जन-संख्या प्रतिवर्गमील बहुत कम होती है। ढोरों को चरानेवाली जातियाँ प्रकृति की देन का अपव्यय कम करती हैं, इस कारण प्रतिवर्गमील उनकी संख्या कुछ अधिक होती है। खेतिहर जातियाँ प्रकृति की देन पर निर्भर तो रहती हैं, किन्तु श्रम और पूँजी के द्वारा थोड़ी-सी भूमि पर अधिक सम्पत्ति उत्पन्न करती हैं, इस कारण वे प्रतिवर्गमील अधिक मनुष्यों का भरण-पोषण



श्रीकृष्ण और स्यमन्तक मणि

सत्राजितः स्वतनयां कृष्णाय कृतकिल्बिषः। स्यमन्तकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान ॥

श्रीमद्भागवत १०-५६-१

[चित्रकार—श्रीयुत उपेन्द्रकुमार मित्र

कर सकती हैं। यही नहीं, जो देश गहरी खेती—(Intensive cultivation) श्रम-पूँजी-प्रधान खेती—करते हैं, वहाँ जन-संख्या और भी घनी होती है। किन्तु सबसे अधिक घनी जन-संख्या औद्योगिक देशों की होती है, क्योंकि औद्योगिक पदार्थों के उत्पन्न करने में प्रकृति का व्यय अपेक्षाकृत बहुत कम होता है। किन्तु औद्योगिक देशों को भी कच्चा माल उत्पन्न करने और अपनी जन-संख्या के लिए भोज्य पदार्थ प्राप्त करने के लिए कोई न कोई उपाय करना ही पड़ता है। यदि वे स्वयं कच्चा माल उत्पन्न करें तो उन्हें बहुत अधिक भूमि की आवश्यकता होगी। एक कारखाना सैकड़ों वर्गमील भूमि पर उत्पन्न किये हुए कच्चे माल को पक्के माल में परिणत कर देता है।

यही कारण है कि इँग्लैंड, जर्मनी और जापान इत्यादि को इस बात की आवश्यकता प्रतीत होती है कि उनके कारखानों के लिए कच्चा माल उत्पन्न करने का कार्य दूसरे देश करते रहें और उनको कच्चा माल अपनी भूमि पर उत्पन्न न करना पड़े। यदि इँग्लैंड अपनी भूमि पर उत्पन्न किये हुए कच्चे माल पर ही अवलम्बित रहे तो उसे ६० प्रतिशत कारखाने बंद करना पड़ेंगे और लगभग तीन-चौथाई जन-संख्या को बाहर भेजना पड़ेगा या फिर इस ऐश्वर्य को तिलांजलि देकर निर्धनता से गुज़ारा करना पड़ेगा।

इँग्लैंड का आधुनिक संगठन दो बातों पर निर्भर है। एक तो उसने कच्चा माल और भोज्य पदार्थ उत्पन्न करने का भार अन्य देशों पर लाद रक्खा है, दूसरे उसके पास कारखानों के तैयार किये हुए माल को बेचने के लिए सुरक्षित बाज़ार हैं। इसके लिए इँग्लैंड को अन्य देशों पर राजनैतिक प्रभुत्व बनाये रखना आवश्यक है! किसी भी देश का आर्थिक शोषण किये बिना राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित नहीं हो सकता। अस्तु, ऐसे देश का औद्योगिक संगठन अप्राकृतिक है। जब तक इँग्लैंड भारतवर्ष, बर्मा, अफ़्रीका के उपनिवेशों, मिस्र, सूदान तथा आस्ट्रेलिया इत्यादि प्रकृति-देन से भरे हुए देशों को कच्चा माल उत्पन्न करने तथा इँग्लैंड के कारखानों में तैयार किये हुए माल को खरीदने के लिए बाधित कर सकता है तभी तक उसकी इतनी अधिक जन-संख्या का भरण-पोषण भली भाँति किया जा सकता है। इँग्लैंड को आज भी भयंकर कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। प्रत्येक आश्रित देश अपनी स्वतंत्रता की माँग कर रहा है। स्वतन्त्र होते ही प्रत्येक देश अपने धंधों की उन्नति करेगा और इँग्लैंड के माल पर आयात-कर लगाकर उसके माल का आना बंद कर देगा। उस समय समृद्धिशाली इँग्लैंड का औद्योगिक संगठन नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा और रोटी का सवाल वहाँ वालों के सामने भी भयंकर रूप में उपस्थित होगा। आज हम संसार के राजनैतिक रंग-मंच पर जापान को कोरिया पर अत्याचार करते और चीन को हड़प जाने का प्रयत्न करते पाते हैं, इटली स्वतन्त्र अबीसीनिया को पराधीन बनाने पर तुला हुआ है, जर्मनी ने पिछले योरपीय युद्ध में अपना सर्वस्व स्वाहा कर दिया और संयुक्तराज्य (अमरीका) दक्षिण-अमरीका में योरपीय देशों को घुसने नहीं देना चाहता, इस सबका भेद केवल यही है कि ये देश अपने अप्राकृतिक औद्योगिक संगठन को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए उन देशों को हथियाकर उनका आर्थिक शोषण करना चाहते हैं। जिस दिन यह आर्थिक शोषण बंद होगा वही दिन इन देशों की आर्थिक मृत्यु का दिन होगा।

क्या भारतवर्ष कभी स्वप्न में भी इन देशों के समान ही कारखानों का देश हो सकता है? जब चार करोड़ मनुष्यों की आबादीवाला देश जिसकी दो-तिहाई जन-संख्या कारखानों में काम करती है, अपने तैयार माल की खपत के लिए संसार की एक तिहाई जन-संख्यावाले देशों को अपने राजनैतिक प्रभुत्व में रखना आवश्यक समझता है तब यदि भारतवर्ष की आधी जन-संख्या भी किसी दिन कारखानों में काम करने लगी तो भारतवर्ष को संसार-विजय करके संसार के सब देशों को अपना तैयार माल खरीदने के लिए बाधित करना होगा। ध्यान रहे अब वह आर्थिक युग आ रहा है जब हर एक देश अपने धंधों की उन्नति में लग जायगा और संसार के पिछड़े हुए देश भी बाहर का वह तैयार माल मँगवाना

बन्द कर देंगे जो उस देश में बन सकता है। अब औद्योगिक उन्नति देश की माँग पर ही निर्भर होगी। देश में जितने पक्के तैयार माल की माँग होगी उतने की पूर्ति के लिए कारखाने खोले जा सकते हैं। इससे अधिक के लिए प्रयत्न करना भयंकर आर्थिक भूल होगी, जिसका कुफल देश को अवश्य भोगना होगा।

प्रश्न हो सकता है कि भारतवर्ष जैसे विशाल देश में जहाँ समस्त संसार की जन-संख्या का पाँचवाँ भाग निवास करता है, कारखानों के तैयार माल की इतनी माँग होगी कि हमारे कारखाने देश की ही माँग पर निर्भर रह कर चल सकेंगे। उस दशा में हमारा देश इँग्लेंड, जापान तथा जर्मनी के समान कारखानों का देश नहीं बन सकेगा, यह तो निर्विवाद है, हाँ, देश की माँग पर रह कर बहुत-से धंधे चलाये जा सकते हैं और विदेशों से आनेवाला तैयार माल रोका जा सकता है।

देखना यह है कि क्या इतने कारखानों के खुलने से देश की आर्थिक समस्या हल हो सकेगी। १९३१ की मनुष्य-गणना के अनुसार भारतवर्ष की जन-संख्या पैंतीस करोड़ से कुछ अधिक है। इसमें से लगभग ७५ प्रतिशत खेती-बारी में लगी हुई है, तथा गाँवों में रहनेवाली शेष १५ प्रतिशत जन-संख्या अप्रत्यक्ष रूप से खेती-बारी पर अपने भरण-पोषण के लिए निर्भर है। आर्थिक दृष्टि से देश की यही निर्बलता है। भारतवर्ष में जन-संख्या अधिक है और वह क्रमशः बढ़ती जा रही है, किन्तु खेती-बारी के योग्य भूमि तो परिमित ही है, वह बढ़ाई नहीं जा सकती। इसका फल यह हो रहा है कि प्रतिकिसान भूमि बहुत कम पड़ती है, जिस पर खेती बारी करके वह अपने कुटुम्ब के भरण-पोषण के लिए यथेष्ट सम्पत्ति उत्पन्न नहीं कर सकता। यही नहीं, खेती-बारी अत्यन्त अनिश्चित धंधा है। जो धंधा प्रकृति पर इतना अधिक निर्भर हो उसका अनिश्चित होना अनिवार्य भी है। वर्षा, वायु, धूप तथा अन्य किसी जलवायु-सम्बन्धी गड़बड़ से खेती-बारी नष्ट हो जाती है और उस भाग की ग्रामीण जनता के सामने अकाल भयंकर रूप में उपस्थित हो जाता है। अस्तु, किसान का केवल खेती-बारी में लगा रहना भयंकर आर्थिक भूल है, जिसका फल उसे आये दिन भुगतना पड़ता है। विशेषज्ञों का मत है कि यदि भारतवर्ष में वैज्ञानिक ढंग से खेती-बारी की जाय तो लगभग पचास प्रतिशत किसान ही सारी भूमि पर खेती-बारी कर सकते हैं। किन्तु इन पचास प्रतिशत किसानों को भी खेती-बारी के साथ साथ अवकाश के समय कोई न कोई ग्रामीण धंधा करना ही होगा। तभी वे अकाल तथा आर्थिक संकट से छुटकारा पा सकेंगे।

यदि ऊपर लिखे हुए विवरण में तनिक अतिशयोक्ति की सम्भावना को भी मान लें तो भी यह बात सर्व-मान्य है कि खेती में लगी हुई जन-संख्या अत्यधिक है, जिसका पालन केवल खेती की भूमि के द्वारा नहीं हो सकता है। अब प्रश्न यह है कि यह अधिक जन-संख्या किस कार्य में लगाई जाय जिससे यह अपना भरण-पोषण भले प्रकार कर सके, साथ ही बचे हुए किसानों को भी अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने का अवसर दे। संक्षेप में भारतवर्ष की मुख्य आर्थिक समस्या यह है कि भूमि पर जन-संख्या का अत्यधिक भार है।

भारतवर्ष के पास निज के उपनिवेश नहीं हैं, जहाँ भारतीयों को प्रवास कर जाने के लिए कहा जाय। अन्य देश जहाँ की आबादी बहुत कम है, पाश्चात्यों की अधीनता में हैं और उनमें एशियाई लोगों के लिए द्वार बन्द है। अस्तु, प्रवास हमारी समस्या को हल नहीं कर सकता। अब उद्योग-धंधों के अतिरिक्त दूसरा उपाय ही क्या है?

देखना यह है कि मिल और कारखाने खोलकर हम इस समस्या को कहाँ तक हल कर सकते हैं। आधुनिक ढंग के पुतलीघर और कारखानों की स्थापना इस देश में सन् १८५० के उपरान्त हुई है, तब से उत्तरोत्तर फ़ैक्टरियों की संख्या यहाँ बढ़ती जा रही है। १९३३ की फ़ैक्टरी-रिपोर्ट के अनुसार भारतवर्ष में ८,४५२ फ़ैक्टरियाँ कार्य कर रहीं थीं, जिनमें १४,०३,२१२ श्रमजीवी कार्य कर रहे थे। ध्यान रहे, भारतवर्ष में एक्ट के अनुसार फ़ैक्टरी वह स्थान है, जहाँ कम से कम १० मनुष्य कार्य करते हैं और जिसमें शक्ति (बिजली, भाफ इत्यादि) का उपयोग होता है। फ़ैक्टरियाँ दो प्रकार की होती हैं—एक तो वे जो वर्ष भर कार्य करती हैं, जैसे सूत कातने तथा कपड़ा बुनने के कारखाने; दूसरी मौसमी फ़ैक्टरियाँ जो वर्ष में केवल कुछ ही महीने कार्य करती हैं। उदाहरण के लिए शक्कर के कारखाने तथा कपास के पेंच। ऊपर लिखे आँकड़ों में दोनों प्रकार की फ़ैक्टरियों में काम करनेवाले मज़दूरों की संख्या दे दी गई है। भारतवर्ष की सब खानों में लगभग ३,५०,००० मज़दूर कार्य करते हैं। फ़ैक्टरियों और खानों के अतिरिक्त चाय, क़हवा तथा रबर के बाग़ों में लगभग दस लाख पचास हज़ार मज़दूर कार्य करते हैं।

ऊपर लिखे हुए आँकड़ों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि लगभग ८५ वर्षों की औद्योगिक उन्नति के उपरान्त हमारे देश के सब प्रकार के कारखाने, खानें और प्लांटेशनस (बाग़) केवल २६ लाख मज़दूरों को काम दे सके हैं। दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिए कि देश की समस्त जन-संख्या की एक प्रतिशत जन-संख्या भी इनमें काम नहीं पा सकी। भविष्य में चाय और क़हवे के बाग़ों और खानों के बढ़ने की कोई सम्भावना नहीं है। हाँ, फ़ैक्टरियों की संख्या अवश्य बढ़ाई जा सकती है। कोई भी बुद्धिमान् मनुष्य ऊपर के आँकड़ों को देखकर यह कहने का दावा नहीं कर सकता कि फ़ैक्टरियाँ कभी देश की समस्त जन-संख्या की पाँच प्रतिशत जन-संख्या को भी काम दे सकेंगी। वास्तव में भारत की आर्थिक समस्या बड़े बड़े कारखानों के खोलने से हल नहीं हो सकती। हमें तो बेकारों को काम देना है और वह फ़ैक्टरियाँ नहीं दे सकतीं।

बड़े बड़े कारखानों और फ़ैक्टरियों से कुछ पूँजीपति तो धनवान् हो सकते हैं, किन्तु निर्धन जनता को कोई विशेष लाभ नहीं होगा। यही नहीं कि फ़ैक्टरियाँ हमारी बेकार जन-संख्या को काम नहीं दे सकेंगी, वरन हमें उनके द्वारा तैयार किये हुए माल का मूल्य भी अधिक देना पड़ता है। देश की औद्योगिक उन्नति के लिए संरक्षण की नीति स्वीकार की गई है। हमारे व्यवसायी और पूँजीपति विदेशी माल पर आयात-कर लगाने के लिए घोर आन्दोलन करते हैं। उनके पास पत्र और प्लेटफ़ार्म हैं, साथ ही राष्ट्रीय भावना भी उनके पक्ष में है। संरक्षण इसलिए दिया जाता है कि विदेशी माल देश के नये धंधों को नष्ट न कर दे। अस्तु, अप्रत्यक्ष रूप से जनता वस्तुओं का अधिक मूल्य देकर पूँजीपतियों की थैली भरती है। प्रारम्भ में प्रत्येक धंधों को संरक्षण की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु एक बार संरक्षण मिल जाने पर बहुधा वह स्थायी हो जाता है। क्योंकि जब संरक्षण हटाये जाने का प्रश्न आता है तभी पूँजीपति यह कहकर कि ऐसा करने से यह जातीय धंधा नष्ट हो जायगा, उसका विरोध करते हैं।

यहाँ बड़े बड़े कारखानों के विषय में कुछ विचार कर लेना आवश्यक है। मैं यहाँ इन कारखानों की गंदगी, स्वास्थ्य को हानि पहुँचने की बात, मज़दूरों से एक यन्त्र के समान काम कराने की बात, औद्योगिक केन्द्रों में नरक के समान गंदे तथा स्वास्थ्य और चरित्र का नाश करनेवाले स्थानों पर श्रमजीवियों के रहने तथा दुर्व्यसनों में पड़ने आदि के विषय में कुछ नहीं कहूँगा। ये तो प्रत्यक्ष हैं और इन कारखानों में कार्य करने का अवश्यम्भावी परिणाम हैं। हम पाठकों का ध्यान उस समस्या की ओर आकर्षित करना चाहते हैं जो आधुनिक औद्योगिक उन्नति के कारण उपस्थित होती है। वह है एकाधिकार और ट्रस्ट की समस्या।

बात यह है कि यन्त्रों और शक्ति का उपयोग पूरी तरह तभी हो सकता है जब बड़ी मात्रा में उत्पादन-कार्य किया जाय। यही कारण है कि फ़ैक्टरियाँ हाथ से काम करनेवाले कारीगरों की अपेक्षा सस्ते दामों पर माल तैयार कर सकती हैं। यही नहीं, बड़ी फ़ैक्टरियाँ छोटी फ़ैक्टरियों की अपेक्षा सस्ते दामों पर माल तैयार कर सकती हैं। फल यह होता है कि औद्योगिक उन्नत देशों ने बड़े-बड़े कारखानों में माल को सस्ते दामों पर बेचना आरम्भ करते हैं और उनकी प्रतिद्वन्द्विता में छोटे कारखाने बन्द हो जाते हैं। जब देश में थोड़े-से बहुत बड़े कारखाने बच जाते हैं तब वे भीमकाय कारखाने एक संघ बना लेते हैं और उस वस्तु पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लेते हैं। देश में एक ही कारखाना उस वस्तु को तैयार करता है। अस्तु, वे जो मूल्य भी चाहें ग्राहकों से वसूल कर सकते हैं। यही नहीं, इनके द्वारा कतिपय पूँजीपतियों के हाथ

में इतनी अधिक शक्ति आ जाती है जिसका हम स्वप्न में भी ध्यान नहीं कर सकते।

संयुक्त-राज्य (अमरीका), जर्मनी और इँग्लेंड में यह समस्या भयंकर रूप धारण कर रही है। यहाँ केवल स्टैंडर्ड आयल ट्रस्ट का संक्षिप्त परिचय दिया जायगा जिससे इस समस्या की भयंकरता का अनुमान हो सके। स्टैंडर्ड आयल ट्रस्ट का वार्षिक लाभ लगभग पाँच करोड़ डालर है और यह सब लाभ कतिपय पूँजीपतियों की जेब में जाता है। ट्रस्ट ने लगभग ९ या १० रेलवे लाइनें तथा २५ बैंक ख़रीद लिये हैं। संयुक्त-राज्य की लगभग सब तेल की खानें इस ट्रस्ट के हाथ में हैं। यदि तेल की कोई नई खान निकलती है और कोई दूसरी कम्पनी उसको ले लेती है तो ट्रस्ट उस क्षेत्र में एक फ़र्ज़ी कम्पनी खड़ी कर देता है, जो नाममात्र के मूल्य पर तेल बेचती है और कुछ ही समय में नई कम्पनी को अपना कारबार बन्द करना पड़ता है और खान ट्रस्ट को बेच देनी पड़ती है। यद्यपि ट्रस्ट को भी इस प्रतिद्वन्द्विता में लाखों डालर की हानि उठानी पड़ती है, तथापि यह उसके लिए एक खिलवाड़-मात्र है। ट्रस्ट अपनी रेलों को आज्ञा देता है कि उसके प्रतिद्वन्द्वी का तेल बीच में ही नष्ट कर दिया जाय और क्षतिपूर्ति कर दी जाय। फल यह होता है कि नई कम्पनियों के ग्राहकों को कभी तेल प्राप्त ही नहीं होता। यही नहीं जो रेलवे लाइनें ट्रस्ट की नहीं हैं उन्हें भी ट्रस्ट की आज्ञा माननी पड़ती है, क्योंकि ट्रस्ट उनका सबसे बड़ा ग्राहक है। इस प्रकार ट्रस्ट अपने प्रतिद्वन्द्वियों को थोड़ी-सी हानि उठा कर सर्वदा के लिए नष्ट कर देता है।

ट्रस्ट का राजनैतिक प्रभाव भी कुछ कम नहीं है। ट्रस्ट अपने कर्मचारियों को संयुक्त-राज्य की व्यवस्थापिका सभा के लिए खड़ा करता है और जो भी राजनैतिक दल प्रबल होता है उसी को आर्थिक सहायता देकर मोल ले लेता है। संयुक्त-राज्य में केवल यही एक ट्रस्ट नहीं है। स्टील-ट्रस्ट, तम्बाकू-ट्रस्ट, तथा शक्कर-ट्रस्ट इत्यादि सभी बलवान् हैं। ये सब ट्रस्ट कुछ इने-गिने पूँजीपतियों के हाथ में हैं। अस्तु, ये ही पूँजीपति वास्तव में देश के शासक हैं, प्रजातंत्र तो नाम-मात्र को है। वास्तव में जो भी देश औद्योगिक देश हैं, वहाँ पूँजीपतियों का ही शासन है, प्रजातंत्र तो देखने भर को है। दक्षिण-अफ़्रीका में जवाहरात की खानों का ट्रस्ट (डी बियर्स कम्पनी) अपने कर्मचारियों को व्यवस्थापिका सभा के लिए खड़ा करता है, धन व्यय करके वोट ख़रीदे जाते हैं और वहाँ का शासन उस कम्पनी के स्वामियों के हाथ में है। यही नहीं, ये प्रबल पूँजीपति अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भी बहुत बड़ा प्रभाव रखते हैं। स्टैंडर्ड आयल ट्रस्ट ने मैक्सिकन विद्रोह को प्रोत्साहन दिया, मेसोपोटैमिया, टर्की, फ़ारस की राजनैतिक हलचलों में भाग लिया केवल वहाँ की तेल की खानों को हथिया लेने के अभिप्राय से।

आधुनिक पूँजीवाद से उत्पन्न हुई दूसरी समस्या से तो आज प्रत्येक मनुष्य अवगत है। वह है समाज में आर्थिक विषमता। कुछ पूँजीपतियों के पास अनन्त धन-राशि इकट्ठी हो गई है और अधिकांश जनता दरिद्र-जीवन व्यतीत कर रही है। यही कारण है कि आज संसार के प्रत्येक देश में श्रमजीवी और कृषक-समुदाय क्षुब्ध हो उठा है। साम्यवाद तथा कम्यूनिज़्म इसी क्षुब्धता के चिह्न हैं। यदि हम चाहते हैं कि हमारे देश में भी वर्ग-युद्ध न छिड़े तो हमें अपना औद्योगिक संगठन दूसरे प्रकार से करना होगा।

इससे पाठक यह न समझ लें कि भारतवर्ष को औद्योगिक देश न बनाये जाने का परामर्श दिया जा रहा है। वास्तव में हमारे देश को जितनी आवश्यकता उद्योग-धंधों की है, उतनी किसी भी देश को नहीं है। औद्योगिक संगठन किस प्रकार का हो, इसी में मतभेद है। कुछ धंधे तो बड़े बड़े कारख़ानों के बिना चल ही नहीं सकते। उदाहरण के लिए लोहे, स्टील तथा अन्य धातुओं के कारख़ाने, इंजिनियरिंग वर्क्स, यन्त्र बनाने के कारख़ाने, रेलवे सम्बन्धी सामान बनाने के कारख़ाने, जल-प्रपात-द्वारा बिजली बनाने के कारख़ाने, माइनिंग (खानों को खोदना) इत्यादि। ये धंधे तो बड़ी मात्रा में बड़े बड़े कारख़ाने खोल कर ही खड़ा किये जा सकते हैं। बिना इन धंधों की उन्नति किये देश औद्योगिक उन्नति

कर ही नहीं सकता। इस श्रेणी के और भी धंधे हो सकते हैं। इन धंधों पर राज्य का विशेष नियन्त्रण होना चाहिए, जिससे पूँजीपति इन पर एकाधिपत्य स्थापित न कर लें।

ऊपर लिखे हुए धंधों के अतिरिक्त अन्य धंधों के लिए यह आवश्यकता नहीं है कि हम योरपीय देशों की ही भाँति बड़े बड़े कारख़ाने खोलें। गृह-उद्योग-धंधों और ग्राम्य उद्योग-धंधों के द्वारा हमारी आवश्यकतायें भली भाँति पूरी हो सकती हैं और हमारी बेकार जनता को कार्य मिल सकता है। ग्राम्य उद्योग-धंधों के बिना तो हमारे किसानों को जीवित रहना ही कठिन हो रहा है।

खेती-बारी मौसमी धंधा है। उसमें लगा हुआ किसान वर्ष में चार से छः महीने तक बेकार रहता है। अस्तु, यह स्वाभाविक है कि वह वर्ष में केवल छः महीने कार्य करके बारह महीने का भोजन नहीं पा सकता। साथ ही यह धंधा अत्यन्त अनिश्चित है, इस कारण किसान का केवल खेती-बारी पर ही अवलम्बित रहना आर्थिक दृष्टि से ख़तरे से ख़ाली नहीं है। किन्तु किसान गाँव छोड़कर बाहर कार्य करने नहीं जा सकता, क्योंकि वह लगातार चार महीने तक बेकार नहीं रहता, इस कारण हमें उसकी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए गाँव में ही कुछ कार्य देना होगा। संसार के किसी देश का भी किसान केवल खेती-बारी पर ही निर्भर नहीं रहता। श्रीयुत कैलवर्ट महोदय के शब्दों में "वह अपनी कमान में दो डोरे लगाता है।" जापान का किसान रेशम के कीड़े पालता है, फ़्रांस का किसान अंगूर की बेल और रेशम का धंधा करता है, तो डेन्मार्क का किसान दूध का धंधा करता है। भारतीय किसान के लिए फल, तरकारी, दूध, घी, मुर्ग़ी के अंडे, शहद की मक्खी पालने, गुड़, शक्कर, सूत कातना, ऊन कातना, रेशम के कीड़े पालना, रस्सी, चटाई, डलिया तथा बान इत्यादि वस्तुएँ बनाना आदि उपयोगी धंधे होंगे। भारतीय किसान के लिए केवल वे ही धंधे उपयोगी सिद्ध होंगे जिनमें अधिक पूँजी तथा कारीगरी की आवश्यकता न हो, जिनके लिए कच्चा माल वह स्वयं उत्पन्न करता हो, जिनके तैयार माल की या तो उसे स्वयं आवश्यकता हो अथवा गाँव के आस-पास ही जो बेचे जा सकें। इस कार्य के लिए एक संस्था की आवश्यकता है जो इनके विषय में खोज करती रहे और इन धंधों का संगठन करे।

किन्तु इतने से ही देश की आर्थिक समस्या हल नहीं हो जायगी। हमें गृह-उद्योग-धंधों की भी उन्नति करनी होगी। जिस अव्यवस्थित दशा में हमारे गृह-उद्योग-धंधे इस समय चल रहे हैं उसे देखकर तो यह आश्चर्य होता है कि ये क्योंकर अभी तक जीवित रह सके। सूती, ऊनी और रेशमी कपड़े बुनने का धंधा; दरी, कालीन, कम्बल तथा शाल के धंधे; पीतल, काँसे तथा ताँबे के बर्तन और मूर्तियाँ बनाने का धंधा; खिलौने, तथा लकड़ी और मिट्टी के बर्तनों का धंधा आज भी किसी प्रकार जीवित है। इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इनमें जीवन-शक्ति है और वैज्ञानिक ढंग से चलाये जाने पर ये पनप सकते हैं। भारतीय गृह-उद्योग-धंधों की उन्नति करने के लिए निम्नलिखित बातों की आवश्यकता है—कारीगरों की शिक्षा, पूँजी का प्रबन्ध, कच्चे माल का उचित मूल्य पर पाने का आयोजन, हल्के, सस्ते किन्तु अच्छे यन्त्रों का आविष्कार, तैयार माल को बाज़ार में बेचने की सुविधा और बिजली की शक्ति का उपयोग। कारीगरों को व्यापारियों से पूँजी उधार लेनी पड़ती है और उस पर भयंकर सूद देना पड़ता है। धंधे के लिए कच्चा माल प्राप्त करने में भी कारीगर लूटा जाता है, क्योंकि उसे अपने महाजन से ही कच्चा माल लेना पड़ता है। कारीगर के क़र्ज़दार होने के कारण उसी व्यापारी को तैयार माल बहुत सस्ते दामों पर बेचना पड़ता है। कारीगर को इस लूट से बचाने के लिए हमें उत्पादक सहकारी समितियाँ स्थापित करनी होंगी। समितियों में संगठित होकर कारीगर उचित मूल्य पर पूँजी और कच्चा माल प्राप्त कर सकेंगे और साथ ही ये सहकारी समितियाँ तैयार माल को अच्छे दामों पर बाज़ार में बेचने का प्रबंध करेंगी। प्रत्येक धंधे के लिए सहकारी समितियाँ पृथक् होंगी। हर एक प्रान्त की समितियाँ एक यूनियन का संगठन करें। यूनियन विज्ञापन, एजेंट, कनवेसर तथा प्रदर्शनियों के द्वारा अपने से संबंधित समितियों के सदस्यों के उत्पन्न किये हुए माल की खपत बाज़ारों में करें। साथ ही

यूनियन बाज़ार का अध्ययन करके समितियों को बतलावें कि कौन-सी डिज़ाइन बाज़ार में अधिक चलती है इत्यादि। अच्छे किन्तु सस्ते यन्त्रों के आविष्कार की बहुत बड़ी आवश्यकता है, जिससे कारीगर थोड़े समय में अधिक माल तैयार कर सकें। यह कार्य सरकार का औद्योगिक इंजीनियरिंग विभाग करे। यन्त्र और औज़ारों का आविष्कार हो जाने पर उनको अधिक मात्रा में उत्पन्न करने के लिए बड़े बड़े कारखाने खोले जायँ जो उन यन्त्रों को तैयार करें। यदि भारत-सरकार तथा प्रान्तीय सरकार जल के द्वारा बिजली उत्पन्न करके बिजली को सस्ते दामों पर कारीगरों को दे सकें तो हमारे गृह-उद्योग-धंधे सहज में बड़े बड़े कारखानों की प्रतिस्पर्धा में खड़े हो सकते हैं। छोटे छोटे कारीगर सहकारी समितियों के द्वारा बड़े बड़े कारखानों की सब सुविधायें प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु शक्ति की सुविधा उन्हें प्राप्त नहीं हो सकती। जल-द्वारा उत्पन्न की हुई बिजली ने यह समस्या भी हल कर दी है। यदि भारतवर्ष भर में बिजली का उपयोग किया जाय तो देश में औद्योगिक क्रान्ति हो जाय। कारीगर को स्टीम एंजिन की आवश्यकता न रहे (जिसे वह खरीद ही नहीं सकता), केवल बिजली का तार लेकर वह बड़े से बड़े कारखाने का मुक़ाबिला कर सकेगा।

भारतवर्ष की औद्योगिक उन्नति तीन प्रकार के धंधों के सम्मिश्रण से होगी। बड़े बड़े कारखाने उन धंधों के खोले जायँ जिनके बिना काम नहीं चल सकता। उनके अतिरिक्त गृह-उद्योग-धंधों और ग्रामीण उद्योग-धंधों के संगठन की भी आवश्यकता होगी। देश की आर्थिक समस्या तभी हल होगी जब कृषि की वैज्ञानिक ढंग से उन्नति करने के साथ साथ ऊपर लिखे अनुसार औद्योगिक उन्नति की जाय। केवल देश को कारखानों से ही भर देने से काम नहीं चलेगा। यदि हमने पाश्चात्य देशों का अंध अनुकरण किया तो हमारी आर्थिक समस्या और भी जटिल हो जायगी।

रजकण

लेखक, श्रीयुत रुस्तम सैटिन

इक रजकण में प्रतिबिम्बित,
इस अखिल विश्व को देखा।
संसृति के शून्य गगन में,
रवि को रजकण सा देखा॥

इन कण, कण की उलझन में,
जग-जीवन उठता गिरता।
पल पल के परिवर्तन में,
जग-जीवन बनता मिटता॥

इन लघु, लघु रज के कण में,
माया की मूरत देखो।
इसके सीमित बन्धन में,
जग का अस्थापन देखो॥

मलयानिल ले उड़ता है,
इस छोटे-से रज-कण को।
उनकी स्मृति—आँधी जैसे,
ले उड़ती मेरे मन को॥

इस माया के पर्वत में,
आशा की ज्वाला सोती।
इसके नीरव जीवन में,
मेरी संज्ञायें सोती॥

सामयिक साहित्य

हिन्दू-समाज का कलंक

अभी हाल में डाक्टर अम्बेडकर ने घोषणा की है कि हिन्दू-धर्म में उन्हें आत्म-विकास का पर्याप्त क्षेत्र नहीं मिलता, अतएव वे उसे छोड़ देंगे और नवीन धर्म ग्रहण करेंगे। इस पर ईसाई, मुसलमान और आर्य-समाज आदि के अनुयायियों ने उन्हें अपने अपने धर्म में आने के लिए आह्वान किया है। उधर कुछ हिन्दुओं ने उन पर रोष भी प्रकट किया है। यद्यपि हमारा यह विश्वास है कि हिन्दू-धर्म किसी के आत्मविकास में बाधक नहीं सिद्ध हो सकता, तथापि हमें उन कारणों पर भी विचार करने की आवश्यकता है जिनसे डाक्टर अम्बेडकर जैसे लोग हिन्दू-धर्म से असन्तुष्ट हैं। इस सम्बन्ध में उपर्युक्त शीर्षक के अन्दर 'नवयुग' ने एक विचार-पूर्ण अग्रलेख लिखा है, जिसका एक अंश हम नीचे उद्धृत करते हैं—

डाक्टर अम्बेडकर का धर्म-परिवर्तन का निश्चय हिन्दू-समाज-व्यवस्था और धर्म पर कलंक का एक अमिट धब्बा है। डाक्टर अम्बेडकर एक उच्च शिक्षित व सम्भ्रान्त व्यक्ति हैं। वे क़ानून और अर्थशास्त्र के एक महान् पंडित हैं। जब ऐसा व्यक्ति यह अनुभव करता है कि मेरे पूर्ण विकास के लिए हिन्दू-समाज में अवसर और क्षेत्र नहीं है तब हर एक विचार-शील व्यक्ति को मानना होगा कि हिन्दू-जाति की सामाजिक व्यवस्था में कोई मौलिक दोष है और इस दोष के कारण ही डाक्टर अम्बेडकर-सदृश पुरुष अनुभव करते हैं कि उनकी योग्यता, शक्ति और क्षमता के अनुरूप समाज में उनका आदर नहीं होता, इसलिए धर्मान्तर करना चाहिए। यह बात नहीं है कि ऐसा केवल डाक्टर अम्बेडकर ही अनुभव करते हों। प्रसिद्ध ऐतिहासिक और पुरातत्त्ववेत्ता श्री काशीप्रसाद जायसवाल भी सुना जाता है कि कहा करते थे क्योंकि मैं हिन्दू के घर में पैदा हुआ हूँ इसलिए कभी भी समाज में वह उच्च स्थान नहीं प्राप्त कर सकता जो और किसी देश में अपनी योग्यता और क्षमता से प्राप्त कर सकता था। ऐसे न जाने कितने ही योग्य व्यक्ति अपने जन्म के कारण समाज में हीन और तुच्छ दृष्टि से देखे जाते होंगे। इनके कारण तथा कतिपय निम्न श्रेणी में अन्दर ही अन्दर सुलग रही असन्तोष की अग्नि ही आज डाक्टर अम्बेडकर के धर्म-परिवर्तन के निश्चय में प्रकट हुई है। इसलिए डाक्टर अम्बेडकर की आलोचना करने के बजाय यदि हम आत्म-निरीक्षण करें तो अधिक उपयुक्त होगा।

डाक्टर अम्बेडकर के धर्मान्तर के निश्चय से ज़माने पर कोई असर होगा, इसकी भी हमें कोई आशा नहीं है। जिस समाज में असमानता के भाव और विषम व्यवहार के कारण एक व्यक्ति यह अनुभव करता है कि वह अपनी योग्यता, क्षमता से इतना ऊँचा जिस समाज में नहीं उठ सकता उस समाज को यदि कोई व्यक्ति छोड़ दे तो इसमें दोष छोड़नेवाले व्यक्ति का नहीं है, बल्कि सामाजिक रचना और सामाजिक व्यवस्था का है। जब तक व्यवस्था क़ायम है तब तक डाक्टर अम्बेडकर-सदृश व्यक्ति उस समाज से निकलते ही रहेंगे। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दू-जाति अपने को टटोले और उन छिद्रों को बन्द कर दे जिनके कारण डाक्टर अम्बेडकर-सरीखे प्रतिभाशाली, विचारक और विद्वान् इस समाज को छोड़ने के लिए लाचार हो रहे हैं।

हमारा अपना विचार है कि जब तक वर्तमान

जाति-व्यवस्था व वर्णाश्रम-व्यवस्था क़ायम है तब तक हिन्दू-जाति प्रगति-पथ पर अन्य जातियों के समकक्ष आगे चलने योग्य नहीं हो सकती। हम इस बात में बिलकुल विश्वास नहीं करते कि इसी सामाजिक व्यवस्था ने हिन्दू-जाति को अब तक बचाये रक्खा है। सम्भव है, इस विचारवालों का कहना ही सत्य हो। मगर आज यह व्यवस्था वर्तमान समय के लिए सर्वथा अनुपयुक्त और अनुपयोगी सिद्ध हो चुकी है। आज तो इसका जड़-मूल से नाश ही इष्ट है। जब तक हिन्दू-समाज में सामाजिक स्थिति की दृष्टि से मालवीय जी और डाक्टर अम्बेडकर एक पाये पर नहीं समझे जायँगे, जब तक हिन्दू-धर्म-व्यवस्था मनुष्य और मनुष्य के बीच भेद देखती है और उसे अपने धार्मिक नियमों से स्थिर करती है तब तक हिन्दू-जाति के उद्धार की आशा करना व्यर्थ है।

डिक्टेटरों की रक्षा का प्रबन्ध

योरप में आज-कल डिक्टेटरों का बोल-बाला है। जितने वे लोकप्रिय हैं, उतनी ही उनकी जान का जोखिम भी है। उनकी रक्षा का कहाँ क्या प्रबन्ध है, इस सम्बन्ध में 'स्टेट्स मैन' में एक ज्ञातव्य लेख प्रकाशित हुआ है। यहाँ हम 'भारत' से उसका अनुवाद उद्धृत करते हैं—

संसार में डिक्टेटरों की रक्षा के लिए जितना प्रबन्ध करना पड़ता है उतना बादशाहों और सम्राटों की रक्षा के लिए भी नहीं। बात यह है कि डिक्टेटर शासनाधिकार अपने आतंक के कारण पाते हैं और आतंक के बल पर ही उनका शासन भी चलता है। डिक्टेटरों को बराबर अपने मारे जाने का भय लगा रहता है। सैनिक प्रदर्शन, क़वायद का निरीक्षण और जुलूसों के समय अकसर षड्यंत्रकारी कुछ ही गज़ की दूरी पर उन्हें मारने के घात में फिरा करते हैं। यदि गुप्तचर पुलिस डिक्टेटरों की रक्षा न करती तो शायद वे अधिक दिन तक कभी जीवित न रह सकते। ब्रिटिश राजकुल की रक्षा के लिए बहुत ही कम प्रबन्ध की आवश्यकता होती है। मैं स्वयं प्रिंस आफ़ वेल्स तथा ड्यूक आफ़ ग्लाउस्टर के साथ ट्रेन में सफ़र कर चुका हूँ। वहाँ मुझे सादे कपड़ों में एक गुप्तचर के सिवा और कोई भी शरीर-रक्षक दिखलाई नहीं दिया। मुझे ज्ञात हुआ कि प्रिंस आफ़ वेल्स तो किसी तरह जब इस गुप्तचर की नज़र से भी अपने को अलग कर पाते हैं तब उन्हें बड़ी खुशी होती है।

परन्तु मुसोलिनी, हिटलर, स्टेलिन और मुस्तफ़ा कमाल पाशा के लिए बहुत-से सशस्त्र पहरेदारों की आवश्यकता होती है। इसका एक कारण और भी है—डिक्टेटर और उनके अनुयायी राज्य का शासन चलाने के लिए अपने आपको इतना आवश्यक समझते हैं कि उनके सामने सदा यह समस्या खिंची रहती है कि उनकी मृत्यु के बाद स्थान ग्रहण करने के लिए कौन बचेगा।

हिटलर

जर्मनों का विश्वास है कि हिटलर के रूप में उन्हें ऐसा व्यक्ति मिला है जो—और केवल वही—उनके राष्ट्र को योरप में सबसे अधिक शक्तिशाली बना सकता है। इसलिए जिन देशों में तानाशाही है उनमें डिक्टेटर को मारना या उसे मारने का प्रयत्न करना सबसे भारी जुर्म माना जाता है।

फिर भी मुझे बर्लिन में ऐसे लोग मिले हैं जिनका कहना है कि उन्होंने हिटलर को सड़क पर अकेले जाते देखा है। इस बात की सम्भावना तो अवश्य है, पर ऐसा शायद साल भर पूर्व हुआ होगा जब तक कि हिटलर ने विद्रोहियों की हत्या करके अपने दल की सफ़ाई नहीं की थी। इसके बाद से तो हिटलर जब कभी सार्वजनिक रूप में प्रकट होते हैं तब वे चारों तरफ़ से सशस्त्र पहरेदारों से घिरे रहते हैं।

अभी कुछ दिन हुए मैं हिटलर से मिलने गया था। हर हिटलर केसरहोफ़ होटल में रहते हैं। हमने देखा कि जिस कमरे में वे बैठते हैं उसके द्वार पर ६ सशस्त्र पहरेदार आटोमेटिक पिस्तौल लिये हुए तैनात थे। ये लोग हिटलर के टेबिल से कुछ ही क़दम दूर थे। जब कोई व्यक्ति हिटलर से मिलने के लिए कमरे में घुसता है तब ये लोग बड़ी सतर्कता से उस व्यक्ति की जाँच करते हैं।

प्रधान-मंत्री के कार्यालय में भी हिटलर की रक्षा का बड़ा प्रबन्ध है। वहाँ १०० सशस्त्र सिपाही उनकी रक्षार्थ रहते हैं। इन लोगों के हाथों में राइफ़लें रहती हैं और वे सिर पर लोहे के हेलमेट पहने रहते हैं। जिस कमरे में डिक्टेटर महोदय आगन्तुकों से मिलते हैं उसमें भी इन लोगों का एक दल मौजूद रहता है। इसके सिवा हिटलर के दफ़्तरों की इमारतों के बरामदे भी इन पहरेदारों से भरे रहते हैं।

डिक्टेटरों को देश भर में समय समय पर दौरा करने की आवश्यकता रहा करती है। इसके लिए हिटलर और मुसोलिनी दोनों ही हवाई जहाज़ का उपयोग करते हैं। भारत के वायसराय को भी यही सवारी अधिक पसन्द आई है, क्योंकि उनको भी आक्रमण का खतरा काफ़ी रहता है। हिटलर के हवाई जहाज़ में एक कमी अवश्य रहती है। उसमें अन्य डिक्टेटरों के हवाई जहाज़ों की तरह मशीनगनें नहीं लगी रहतीं।

हिटलर का मोटरकार चारों तरफ़ से बन्द और शक्तिशाली इंजनवाली गाड़ी होता है। हिटलर जब कभी सार्वजनिक उत्सव में भाग लेने के लिए जाते हैं तब ड्राइवर और शोफ़र के बग़ल में बैठनेवाले दोनों सज्जन उच्च पदाधिकारी होते हैं। पिछलीवाली पाँच सीटों में ५ तेज़ गोली चलानेवाले सैनिक घुटनों के बीच बन्दूक दाबे बैठे रहते हैं और उनकी कमर में पिस्तौल लटकी रहती है। ये लोग भीड़ में दोनों तरफ़ बड़ी सतर्कता से अपनी नज़र डालते चलते हैं। सैनिक अफ़सर भी हथियारों से लैस रहते हैं। इस परिस्थिति में यदि कोई भीड़ में से मोटर की ओर आगे बढ़ने का प्रयत्न करे तो गज़ भर आगे आने के पहले ही उसकी मृत्यु हो जायगी।

असामयिक क्यों?

नवीन शासन-विधान के कार्य्यरूप में परिणत होने पर कांग्रेसवाले उसमें पद-ग्रहण करें या न करें इस प्रश्न पर, मदरास में कांग्रेस की जो कार्य्यसमिति बैठी थी उसने कोई अन्तिम निर्णय नहीं किया। सम्भवतः कांग्रेस में दोनों प्रकार के विचार रखनेवाले लोग हैं। और इस प्रश्न पर राय देने से किसी एक दल के असन्तुष्ट हो जाने का भय था, इससे समिति ने इस प्रश्न को 'लखनऊ-कांग्रेस' तक के लिए टाल दिया है। इस पर 'आज' ने एक अग्रलेख प्रकाशित किया है, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है—

१५ अक्तूबर को मदरास में कांग्रेस-कार्यसमिति ने पुनः यही निश्चय किया कि कांग्रेसवालों के नये शासन में सरकारी पद-ग्रहण करने न करने के सम्बन्ध में कोई राय देने का समय अभी नहीं आया है। उसके मत से इस समय कोई राय देना 'नीतिविरुद्ध, असामयिक और हानिकारक' होगा। कार्यसमिति के प्रति गम्भीर आदर रखते हुए भी हम इस मामले में उससे सहमत होने में अपने आपको असमर्थ पाते हैं। नये शासन में कांग्रेसवाले सरकारी पद-ग्रहण करें अथवा न करें, इस सम्बन्ध में आज कोई निर्णय करना 'अनैतिक, असामयिक और हानिकारक' क्यों होगा? जब तक नया विधान बन नहीं गया था तब तक यह कहा जाता था कि वह विधान देखे बिना कोई राय नहीं दी जा सकती, यद्यपि वह राय दे दी गई कि कांग्रेस की और जनता की सम्मति के बिना जो विधान बनाया जायगा वह कांग्रेस को स्वीकृत न होगा। एक महान् सिद्धान्त के आधार पर यदि विधान ही अस्वीकृत किया जा सकता है तो क्या वही आधार पद-ग्रहण न करने की राय देने के लिए पर्याप्त कारण नहीं है?

वे व्यावहारिक बातें क्या हैं? हम कार्यसमिति के भीतर की बातें नहीं जानते और न किसी को जानने का अधिकार ही है। एक बात जो स्पष्ट देखने में आती है, यह है कि कांग्रेस के नेताओं में ही इस प्रश्न पर घोर मतभेद हो गया है। एक पक्ष पद-ग्रहण करने पर तुला हुआ है तो दूसरा पक्ष उसका वैसा ही घोर विरोधी भी है। एक तीसरा भी पक्ष है, पर वह बेचारा इस समय निर्बल हो रहा है, जो समझता है कि कांग्रेसवालों का कौंसिलों में जाना ही उचित नहीं है। आपस के इस विरोध को देखकर ही यदि कार्यसमिति इस समय इस विषय पर

राय देना "अनैतिक, असामयिक और हानिकर" समझती हो तो इस पर यही पूछा जा सकता है कि वह किस समय की राह देख रही है। क्या वह समझती है कि लखनऊ के अधिवेशन तक वातावरण निर्मल हो जायगा और कांग्रेसवाले एक दिल से पद-ग्रहण करने अथवा न करने का निश्चय कर सकेंगे ? यह आशा सफल होने की कोई आशा नहीं है, वरञ्च ज्यों ज्यों समय बीतेगा, त्यों त्यों भावों की तीव्रता बढ़ती ही जायगी। अब तो कार्यसमिति के सदस्यों को भी वादविवाद में पड़ने की स्वतन्त्रता मिल गई है, इससे वाद पर और भी रंग चढ़ जायगा। यह विषय ही ऐसा है जिसमें कांग्रेस के भीतर एक-मत हो नहीं सकता।

कांग्रेसवालों का—उसके नेताओं का—कर्तव्य है कि जनता को प्रश्न समझावें और दिशा भी दिखावें। नेताओं का चुप हो रहना और समय पर केवल वोट गिनकर ऐसे प्रश्न का निर्णय कराना सर्वथा अनुचित है। इसी अर्थ में हम कहते हैं कि इस समय कार्यसमिति को चाहिए था कि हमें दिशा दिखाती, नेतृत्व ग्रहण करती, न कि टाल-मटूल करती।

प्राचीन और नवीन चिकित्सा-पद्धति

संयुक्त प्रान्तीय मेडिकल कान्फरेंस में सभापति के आसन से मेजर रंजीतसिंह ने जो भाषण किया है उसमें आपने बहुत-सी महत्त्व की बातें कही हैं। नवीन चिकित्सा-पद्धति के पण्डित होते हुए भी आप प्राचीन प्रणाली को प्रोत्साहन देने के पक्ष में हैं। अपने भाषण में आपने कहा है—

मैं भूतपूर्व मंत्री राय राजेश्वरबली को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने सर्वप्रथम देशी चिकित्सा-पद्धति को सुधारने के लिए कहा, और सरकार से कुछ सहायता भी दिलवाई। हमें इस पद्धति की ओर सहायता का हाथ बढ़ाना चाहिए, और सरकार पर यह असर डालना चाहिए कि वह इन चिकित्सा-पद्धतियों को प्रोत्साहन दे। मेरे स्वर्गीय मित्र हकीम अजमलखाँ ने दिल्ली में यूनानी कालेज खोलकर प्रशंसनीय काम किया है। इस सम्बन्ध में मैं यह कहना चाहता हूँ कि सरकार ने डाक्टरी शिक्षा देने में तो कोताही नहीं की, पर इसका कोई प्रबन्ध नहीं किया गया कि विदेशों से ओषधियों का मँगाना बन्द किया जाय। भारत में सब तरह की जड़ी-बूटियाँ और ओषधियाँ पैदा होती हैं। बंगाल में हमारे कुछ डाक्टर भाइयों ने दवाइयाँ बनाने का प्रबन्ध किया है, और मैं इस सम्बन्ध में बंगाल केमिकल वर्क्स और बंगाल इम्यूनिटी वर्क्स को बधाई देता हूँ। पर बंगाल में जो कुछ हो रहा है वह अभी बहुत कम है। इस कार्य का और भी विस्तार होने की बड़ी आवश्यकता है।

दूसरा बड़ा प्रश्न है डाक्टरी शिक्षा का। इस समय इसके लिए दो मुख्य शिक्षालय हैं—एक तो लखनऊ का किंग जार्ज मेडिकल कालेज और दूसरा है आगरे का मेडिकल स्कूल। ब्रिटिश मेडिकल कौंसिल में उनका रजिस्ट्रेशन नहीं स्वीकार किया जाता इसलिए आगरे के मेडिकल स्कूलवाले नाराज़ हैं। दूसरा बड़ा प्रश्न है मेडिकल शासन का। इसकी भी तारीख ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ है जब कि कम्पनीवालों को अपनी गोरी फ़ौजों के साथ डाक्टर भी विलायत से भेजने पड़ते थे। गत महायुद्ध से यह प्रमाणित हो गया है कि सब काम गोरे डाक्टर ही नहीं कर सकते, क्योंकि बहुसंख्यक हिन्दुस्तानी डाक्टरों ने भी महायुद्ध में काम किया था। आई० एम० एस० के बारे में मैं यही कहूँगा कि केवल ज़िद के ही कारण योरपीय डाक्टरों को हिन्दुस्तानियों के मुक़ाबिले में ऊँचे पद दिये जाते हैं। मैं केवल इतना ही कहूँगा कि ग्रेट-ब्रिटेन में इस समय सैकड़ों हिन्दुस्तानी डाक्टर काम कर रहे हैं, जिनमें से कई डाक्टर बड़े उच्च पदों पर आसीन हैं।

सम्पादकीय नोट

योरप की परिस्थिति

इटली ने अबीसीनिया पर आख़िर चढ़ाई कर ही दी। उसने ब्रिटेन के, साथ ही राष्ट्र-संघ के विरोध की कुछ भी परवा नहीं की। इससे यह एक बार फिर प्रकट हो गया कि युद्ध रोकने में राष्ट्र-संघ कहाँ तक अक्षम है और उसके साथ ही केलाग-पैक्ट आदि अन्तर्राष्ट्रीय समझौते भी निरर्थक हैं। साफ़ हो यह भी कि राष्ट्र-संघ ने योरप को जिस संगठन में रखने का प्रयत्न किया था वह कारगर नहीं सिद्ध हुआ। यही नहीं, उसके स्थान में कतिपय राष्ट्रों का अपना अलग संगठित होना शुरू हो गया है जो योरप के लिए किसी दिन घातक सिद्ध होगा। कदाचित् इसी भय से ब्रिटेन भी इटली और अबीसीनिया के मामले से बच निकलने का भाव व्यक्त कर रहा है। यदि ऐसा न होता तो सर सेमुअल होर ने जेनेवा में जो गर्जन-तर्जन उस दिन किया था तथा ब्रिटेन ने भूमध्यसागर में अपने नौबल का जो प्रदर्शन किया था वह सब आज युद्ध छिड़ जाने पर इतना निस्सार कदापि न सिद्ध होता। वास्तव में ग्रेट-ब्रिटेन और फ्रांस तथा इनके साथ राष्ट्र-संघ भी यह नहीं चाहते कि योरप में युद्ध छिड़े। और उधर जर्मनी अपनी ऐसी गति-विधि प्रकट कर रहा है कि फ्रांस के लिए वह हौआ हो रहा है। जर्मनी ने पोलेंड से समझौता कर लिया है, उसका हंगरी से भी मेल-मेल बढ़ रहा है और अब उसने आस्ट्रिया तथा बेल्जियम की ओर भी अपना मैत्री का हाथ बढ़ाया है। इस प्रकार मध्य-योरप में इन राष्ट्रों का एक संघ-सा बन रहा है। ग्रेट-ब्रिटेन की सद्भावना के फल-स्वरूप जर्मनी ने वर्सेलीज़ के सन्धि-पत्र के विरुद्ध अपना सैनिक बल बढ़ा ही लिया है और अब वह जब इस तरह राजनैतिक दल बढ़ाने को प्रवृत्त हुआ है तब यह अवस्था फ्रांस के भय का कारण तो होगी ही और ग्रेट-ब्रिटेन भी उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। और सो भी उस दशा में जब जर्मनी लुथिआनिया के अन्तर्भुक्त अपने मेमल को लोभ-भरी दृष्टि से देख रहा है। यही देखकर इटली ने अबीसीनिया पर आक्रमण किया है और यही देखकर फ्रांस ने तथा ब्रिटेन ने भी उसे ऐसा अन्यायमूलक कार्य करने दिया है। क्योंकि भावी संघर्ष में फ्रांस और ब्रिटेन दोनों को इटली की सहायता की आवश्यकता पड़ेगी और कम से कम फ्रांस उसे सुदूरस्थ अबीसीनिया के कारण हाथ से जाने देना उचित नहीं समझता। यह सच है कि जर्मनी इस समय केवल अपने राष्ट्र का संगठन करना चाहता है, वह युद्ध के लिए न तो उत्सुक है, न उसके लिए तैयार ही है। परन्तु उसकी निगाह रूस पर ज़रूर है, क्योंकि हिटलर रूस के वर्गवादियों का घोर शत्रु है। और यद्यपि रूस उसकी मंशा जानता है और उसके भय से उसने फ्रांस, इटली आदि से अपने सिद्धान्तों को ढीला कर के समझौता भी कर लिया है, तथापि इससे अवस्था में सुधार नहीं हुआ है। इधर इटली ने अबीसीनिया के ऊपर आक्रमण कर उसे और भी जटिल बना दिया है।

ऐसी दशा में यदि ब्रिटेन राष्ट्र-संघ के क़ानूनी दाँव-पेंचों का आश्रय लेकर उन्हीं के द्वारा इटली का विरोध करना चाहता है तो यह उसके लिए स्वाभाविक है। जापान ने जब राष्ट्र-संघ की उपेक्षा करके मंचूरिया पर आक्रमण किया था उस समय भी ब्रिटेन ने इसी तरह के क़ानूनी दाँव-पेंच दिखाये थे। तब जो लोग यह समझते हैं कि इटली और अबीसीनिया के युद्ध में ब्रिटेन भी शामिल होगा वे भूलते हैं। योरप का राजनैतिक वायुमण्डल इस समय ऐसे किसी युद्ध के उपयुक्त नहीं है।

इटली और अबीसीनिया

अबीसीनिया पर इटली का जो आक्रमण हुआ है उसे राष्ट्र-संघ ने भी अन्यायमूलक घोषित किया है। परन्तु इटली को इसकी परवा नहीं और वह अबीसीनिया को हड़प लेने को कटिबद्ध है। इटली उसकी अपेक्षा कहीं अधिक सभ्य और बलसम्पन्न है। ऐसी दशा में अबीसीनिया और उसकी क्या बराबरी है। इसमें सन्देह नहीं कि अबीसीनिया यों ही डर कर तलवार नहीं रख देगा, वह अपनी शक्ति के अनुसार इटली से डटकर युद्ध करेगा। परन्तु इस युद्ध में अन्त में उसी का पराभव होगा। इटली क्या, इस बात को सारी दुनिया जानती है। तथापि अबीसीनिया के सम्राट् काफ़ी चतुर राजनीतिज्ञ हैं। इसका प्रमाण उन्होंने पिछले दिनों बार बार दिया है। ऐसी दशा में कौन कह सकता है कि इस संकट-पूर्ण अवस्था का सामना करने के लिए उन्होंने यथाशक्ति पहले से तैयारी न की होगी? तो भी इटली के आगे वह सारी तैयारी उनकी रक्षा न कर सकेगी। और यदि कोई वैसी ही विचित्र घटना न हो गई तो वह दिन दूर नहीं है जब अबीसीनिया को इटली के आगे घुटना टेकना पड़ेगा। एक तो उसे आधुनिक शस्त्रास्त्रों से सज्जित किसी राष्ट्र की सहायता नहीं प्राप्त हो सकी, दूसरे वह स्वयं इटली के समान तैयार नहीं है। तब उसे अपने बल से ही शत्रु का सामना करना पड़ेगा। और उसका वह बल ऐसा नहीं है कि इटली उसे पददलित करने से विमुख हो जाय। परन्तु योरप की वर्तमान दशा को देखते हुए यह बात भी निश्चय-पूर्वक नहीं कही जा सकती कि ऐसा ही होगा। यह भी बहुत कुछ सम्भव है कि राष्ट्र-संघ के अपने सिद्धान्तानुसार इटली का आर्थिक बायकाट करने पर उससे बायकाट में प्रमुख भाग लेनेवाले राष्ट्रों का संघर्ष न हो जाय। उस दशा में यह दो राष्ट्रों का युद्ध योरप के महायुद्ध में परिणत हो सकता है। इसी स्थिति को बचाने के लिए ग्रेट-ब्रिटेन के राजनीतिज्ञों ने पिछले दिनों अपना उग्र रूप दिखाया था। परन्तु मुसोलिनी के इटली ने उस सबकी उपेक्षा करके युद्ध छेड़ ही दिया। अब देखना है कि उसका यह युद्ध आनेवाले दिनों में कैसा रूप धारण करता है। इस समय तो वह दो ही राष्ट्रों के बीच में हो रहा है, जिनमें एक अर्थात् अबीसीनिया आक्रान्त है और इतना साधनरहित है कि वह अपने शत्रु के आगे अधिक समय तक ठहर नहीं सकता। चाहे जो हो, इस युद्ध से इतनी बात भले प्रकार स्पष्ट हो गई है कि जिसकी लाठी उसकी भैंसवाला सिद्धान्त आज भी सोलहों आने ठीक दिखाई दे रहा है और यह दिखाई दे रहा है कि वर्तमान योरपीय सभ्यता की चमक-दमक के पीछे दानव-युग की असभ्यता पहले की ही भाँति आज भी खुलकर खेल रही है।

देश की दुरवस्था

इस समय जहाँ कांग्रेस में फूट पड़ी हुई है और उसके छोटे-बड़े नेता परस्पर लड़-झगड़ रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर सम्प्रदायवादियों का बोलबाला हो रहा है। पंजाब में इस समय शहीदगंज के मामले को लेकर सिक्खों और मुसलमानों में जिस वैमनस्य का बीज बोया गया है उसने बहुत ही उग्र रूप धारण कर लिया है। मुसलमान यहाँ तक क्रुद्ध हो उठे हैं कि उन्होंने सिक्खों के साथ हिन्दुओं से भी व्यवसाय-व्यापार न करने का आन्दोलन शुरू कर दिया है और यदि सरकार के हस्तक्षेप करने का डर न होता तो अब तक सारे पंजाब में नहीं तो कम से कम उसके सभी मुख्य मुख्य शहरों में मुसलमानों की सिक्खों और हिन्दुओं से खूनी भिड़न्त हुए बिना न रहती। निस्सन्देह अब इस विकट दशा की ओर कुछ इने-गिने मुसलमान नेताओं का ध्यान गया है और उन्होंने इस विषम परिस्थिति को क़ाबू में लाने का कुछ प्रयत्न भी किया है, परन्तु ऐसे लक्षण नहीं दिखाई देते कि पंजाब के इस गृह-कलह पर वे अपना उपयुक्त प्रभाव डाल सकेंगे।

इधर कांग्रेस में अलग विशृंखलता बढ़ रही है। और इसका सबसे अधिक खेदजनक रूप लखनऊ के कांग्रेसी नेताओं ने दिखाया है। यों तो साम्यवादी कांग्रेसी शुरू से ही अपना मतभेद प्रकट करते हुए कांग्रेस के प्रधान प्रधान नेताओं का विरोध करते आ रहे हैं, परन्तु इधर जब से नया शासन-विधान पास हुआ है और नये शासन-प्रबन्ध में कांग्रेसियों के सरकारी पद-ग्रहण करने का प्रश्न उठ खड़ा हुआ है तब से कांग्रेसवालों में और भी अधिक मतभेद हो गया है। लोगों का अनुमान है कि पद-ग्रहण करने के पक्ष में कांग्रेस के बड़े बड़े सूत्रधार हैं, अतएव जो लोग उसके पक्ष में नहीं हैं वे अपना तीव्र मतभेद प्रकट कर रहे हैं और ऐसा जान पड़ता है कि कांग्रेस का यह गृह-कलह उसके अगले अधिवेशन में सूरत की तरह उसकी सूरत बिगाड़ने में ज़रा भी आगा-पीछा नहीं करेगा।

इस प्रकार एक ओर कांग्रेस की फूट और दूसरी ओर साम्प्रदायिक कलह देश की शान्ति और व्यवस्था के विघातक सिद्ध हो रहे हैं और देश के वे सभी नेता चुपचाप बैठे इस सारी दुरवस्था की उपेक्षा कर रहे हैं जो देश के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर चुके हैं। जान पड़ता है कि इस समय प्रतिक्रियावादियों ने देश में अपना महत्त्व बढ़ा लिया है, उन्होंने राष्ट्र के संयम और बुद्धि को हतप्रभ कर दिया है। इस समय देश की ऐसी ही भीषण दुरवस्था है। सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि यह सब राष्ट्र के नेता महात्मा गांधी की आँखों के सामने हो रहा है। इससे अधिक दुःख की और क्या बात हो सकती है!

'बैतुल-माल' का प्रश्न

शहीदगंज के मामले के बाद से पंजाब के मुसलमानों के एक बड़े समूह ने 'मुसलमानों से ख़रीदो' का जो आन्दोलन खड़ा किया है उसकी निन्दा दिल्ली के मुसलमानों ने खुल्लमखुल्ला की है। उक्त आन्दोलन के प्रवर्तक पीर जमायतअली शाह उस दिन जब अपने प्रचार के दौरे के सिलसिले में दिल्ली में पधारे थे तब वे वहाँ अपना प्रचार नहीं कर सके और दिल्ली के मुसलमानों ने उनकी बात सुनने से इनकार कर दिया। यह देखकर पीर साहब के अनुयायियों ने अब एक दूसरी चाल चली है। वे उक्त आन्दोलन को 'बैतुल-माल' के सिद्धान्त पर आश्रित बताकर उसे धार्मिक बाना पहनाना चाहते हैं। उनका कहना है कि इस आन्दोलन का केवल यही मतलब है कि मुसलमान यदि मुसलमानों से ही ख़रीदेंगे तो मुसलमान का पैसा मुसलमान के ही पास रहेगा और इससे मुसलमान-जाति की आर्थिक दशा सुधरेगी। और यह विचार प्राचीन 'बैतुल-माल' के विचार से मेल खाता है। बैतुल-माल अर्थात् सार्वजनिक कोष की व्यवस्था सदा मुसलमानी देशों में रही है और उसके धन से आपद्ग्रस्तों की सहायता होती रही है। अपने उक्त आन्दोलन से पीर साहब इसी बैतुल-माल की फिर स्थापना करना चाहते हैं, जिससे मुसलमानी उद्योग-धन्धों का पुनरुज्जीवन किया जा सके। इस आन्दोलन का उद्देश किसी का बायकाट करना नहीं है, न पिकेटिंग करना है। ये महानुभाव यह भी कहते हैं कि बायकाट और पिकेटिंग मुसलमानी विचार नहीं हैं, ये तो हिन्दू-चीज़ें हैं। पीर साहब के समर्थकों की ये दलीलें सरल और स्पष्ट हैं। इनसे किसी का विरोध भी नहीं हो सकता है। परन्तु कठिनाई सिर्फ़ यही है कि यदि उनके अनुकरण पर भारत की दूसरी जातियाँ भी अपने अपने 'बैतुल-माल' स्थापित करने लग जायँगी तो इसका परिणाम क्या होगा। क्या इससे राष्ट्रीय भावना के विकास में बाधा नहीं पहुँचेगी जो वर्षों के परिश्रम और आत्मत्याग के बाद इस देश में पल्लवित हो चुकी है? परन्तु पीर साहब के अनुयायी राष्ट्रीय भावना का इस देश में अस्तित्व ही नहीं स्वीकार करते। न सही, किन्तु उनके इस आन्दोलन से क्या वे पारस्परिक व्यवहार-बन्धन नहीं टूट जायँगे जो गत सात सदियों से यहाँ जड़ पकड़े हुए हैं। इस आन्दोलन के पुरस्सरकर्ताओं को समझ लेना चाहिए कि यह बेल मड़ये नहीं चढ़ेगी, बल्कि इसके बढ़ने पर भारतीय सामाजिक अवस्था सारी की सारी इस तरह बिगड़ जायगी कि उसके सुधरने में युगों का समय लगेगा। खेद की ही नहीं, बड़े परिताप की बात तो यह है कि जो लोग इस घातक अवस्था का सारा भेद समझते-बूझते हैं वे भी इस समय या तो उसकी उपेक्षा कर रहे हैं या एक-दो वक्तव्य निकाल कर अपने कर्तव्य से छुट्टी पा लेते हैं। परन्तु सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि रावी के तट पर स्वाधीनता का बिगुल फूँकनेवाली कांग्रेस भी पंजाब के इस

भीषण आन्दोलन के प्रति तटस्थ की नीति ग्रहण-सा किये हुए है। निस्सन्देह, पंजाब का यह आन्दोलन अपने ढङ्ग का एक विकट आन्दोलन है और इसका परिणाम देश की शान्ति और व्यवस्था के लिए अन्त में उसी प्रकार घातक सिद्ध होगा जैसा कि ऐसे आन्दोलन यहाँ सिद्ध हो चुके हैं। अतएव हिन्दू-मुसलमान—दोनों जातियों के नेताओं के इसकी ओर समुचित रूप से ध्यान देना चाहिए।

बुनकरों के उन्नति की योजना

ग्राम-सुधार के सम्बन्ध में भारत-सरकार ने जो व्यवस्था की है उसके अनुसार प्रान्तीय सरकारें अपने अपने प्रान्त में कार्य करने लग गई हैं। संयुक्त प्रान्त में इस सिलसिले में जो योजना कार्य में परिणत की जा रही है उसमें हाथ के बुने कपड़े को प्रोत्साहन देने का भी प्रबन्ध किया गया है। इस कार्य के लिए प्रान्तीय सरकार ने गत अप्रेल में १५ निरीक्षक यह बात जाँच करने के लिए नियुक्त किये थे कि कहाँ कहाँ कितना कपड़ा बुना जाता है तथा कितने बुनकर हैं एवं उनके तैयार किये हुए माल की कैसी खपत है। इन लोगों की जाँच का काम समाप्त हो गया है और अब उनकी रिपोर्ट शीघ्र ही प्रकाशित होगी। इसके बाद प्रान्तीय उद्योग-धन्धा-विभाग उन पर विचार कर कपड़े की बुनाई के धन्धे के समुन्नत करने के विचार से अपने निश्चयों को कार्य में परिणत करेगा।

उपर्युक्त जाँच से पता लगा है कि बुनकरों को सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि वे अपना बना माल बेच नहीं पाते। यह भी मालूम हुआ है कि प्रान्त के पश्चिमी ज़िलों की अपेक्षा पूर्वी ज़िलों में बुनकरों की दशा संतोष-जनक है। पश्चिमी ज़िलों के बुनकरों की जहाँ ६-७ रुपया मासिक औसत आय है, वहाँ पूर्वी ज़िलों के बुनकरों की औसत आय १६ से २० रुपया मासिक तक है। प्रान्तीय सरकार की इस सम्बन्ध की कार्रवाई का यहाँ के बुनकरों पर अच्छा प्रभाव पड़ा है और उन्हें आशा हुई है कि सरकार उनके तैयार किये हुए माल की बिक्री का समुचित प्रबन्ध करके उनके धन्धे को समुन्नत करेगी। उनके लिए प्रान्तीय सरकार लखनऊ में एक ऐसी बड़ी दूकान खोलने का प्रयत्न कर रही है जहाँ वह भिन्न भिन्न केन्द्रों के बुने हुए कपड़ों के नमूने तथा विक्रयार्थ कपड़े रखकर उनके प्रचार का प्रबन्ध तथा लोक-रुचि का परिचय प्राप्त करना चाहती है। इस दूकान के साथ सरकार १२ कनवेसर भी नियुक्त करेगी जो सारे प्रान्त में घूमकर बुने हुए कपड़े की बिक्री की व्यवस्था करेंगे। सरकार यह भी प्रबन्ध करने का प्रयत्न करना चाहती है कि वह बुनकरों से उनका सारा माल खरीद कर लिया करे। प्रारम्भ में वह केवल सहयोग-समितियों से सम्बन्धित बुनकरों का ही माल ख़रीद करेगी। आशा है, इस व्यवस्था से इन प्रान्तों के बुनकरों का धन्धा अधिक उन्नत हो जायगा।

शर्मा जी का सत्याग्रह

जयपुर के पण्डित रामचन्द्र शर्मा देवी-मन्दिरों में पशुबलि के विरुद्ध दो-चार जगह अनशन-व्रत करके उसे रोकने का उपक्रम कर चुके हैं। कहते हैं कि उन्हें अपने इस प्रयत्न में सफलता भी मिली है। फलतः उन्होंने इस बार कलकत्ते के प्रसिद्ध काली-मन्दिर में होनेवाली पशुबलि के रोकने के लिए आमरण अनशन-व्रत प्रारम्भ किया। परन्तु कलकत्ते में उनके इस प्रयत्न का वहाँ के बंगाली शाक्तों ने विरोध किया, जिसके फलस्वरूप वहाँ के अधिकारियों ने उन पर तथा उनके अनुयायियों पर ऐसे प्रतिबन्ध लगा दिये कि शर्मा जी को काली-मन्दिर से काफ़ी दूर रह कर अपना भीषण प्रदर्शन करना पड़ा। वे वहाँ ३२ दिन तक निरन्न पड़े रहे। इस बीच में उनके पक्ष में काफ़ी आन्दोलन होता रहा। अन्त में महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय जी के बीच में पड़ने पर उन्होंने अपना सत्याग्रह एक वर्ष के लिए स्थगित कर दिया। कुछ लोगों ने उन्हें यह लिखकर वचन दिया है कि बलि-प्रथा रोकने के लिए उन्हें प्रचारार्थ एक वर्ष का समय दिया जाय। इस प्रकार शर्मा जी ने अपना अनशन भंग किया जो सचमुच बड़े सन्तोष की बात है।

इस प्रसंग पर कुछ लोगों ने ऐसा भाव प्रकट किया है

कि हिन्दुओं में प्रचलित पशुबलि के रोकने के लिए ऐसे अस्त्र के प्रयोग की क्या ज़रूरत है जब स्वयं उनका एक विशाल समूह उस प्रथा का घोर विरोधी है। हिन्दुओं में कुछ नामधारी शाक्त स्मार्त ही इस प्राचीन प्रथा के हामी हैं। उनका विशाल समूह तो जैनधर्म के अहिंसा-वाद का या तो अनुयायी है या सुधारवादी नये समाजों के अन्तर्भुक्त है। फिर जैनधर्म के प्रमुख नेता तो हिन्दुओं के मन्दिरों की बलि-प्रथा के बन्द करने का आन्दोलन अब तक बराबर करते ही आये हैं। ऐसी दशा में शर्मा जी जैसे वीर पुरुषों को इस साधारण प्रथा का उन्मूलन करने के लिए आमरण उपवास का आश्रय लेना महात्मा जी के इस अमोघ अस्त्र का दुरुपयोग करना ही कहा जायगा। तथापि जो कुछ हुआ सो हो गया। भविष्य के लिए उन्हें सावधान होकर ही अनशन-अस्त्र का प्रयोग करना चाहिए। जब उनके आन्दोलन को देश के बड़े बड़े नेताओं की सहानुभूति प्राप्त है तब उसे वे अन्य उपायों से भी भले प्रकार सफलता प्रदान कर सकते हैं।

एक प्रश्न

हिन्दी के क्षेत्र में इस समय आलोचकों का अच्छा दौर दौरा है। जिसे देखो वही अपनी मनमानी सम्मतियों को लेखबद्ध कर उसे आलोचना के नाम से लोगों की आँखों में धूल झोंकने का उपक्रम कर रहा है। और तो और, इस प्रवृत्ति को हिन्दी की उच्च संस्थायें तथा दिग्गज नेता तक पुरस्सर करते दिखाई दे रहे हैं। इस पद्धति के हिन्दी में प्रचलित हो जाने से साहित्यिकों में जो कटुता बढ़ रही है उससे हिन्दी का अहित ही हो रहा है। खेद की बात है कि लेखकों का ध्यान इस ओर नहीं जा रहा है और वे अपनी मनमानी करने के सरल मार्ग का अनुधावन करना ही अपने लिए श्रेयस्कर समझ रहे हैं। लेखकों की यह प्रवृत्ति वास्तव में निन्दनीय है, पर गुटबन्दी के वर्तमान युग में इसकी ओर कोई ध्यान नहीं दे रहा है। इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति की किसी निराधार सम्मति का विरोध करने का साहस करता है तो उसे सम्मतिदाता के चेले लोग काटने दौड़ते हैं। यही नहीं, वे ऐसी अनर्गलता का तूफ़ान उठाकर खड़ा कर देते हैं कि सिवा चुप रह जाने के उस सम्बन्ध में कुछ लिखने का साहस ही नहीं होता। जब कोरी सम्मतियाँ देकर ये मानी लेखक अपने कथन का समर्थन करना चाहते हैं तब उनसे वाद-विवाद करना विशुद्ध वितण्डा-वाद करना हो जाता है। परन्तु इस सम्बन्ध में मौन हो जाने या उनकी अनर्गलता की उपेक्षा करने से भी तो हिन्दी के अहित की ही सम्भावना है। ऐसी दशा में क्या करना चाहिए, यह वास्तव में एक प्रश्न है। हिन्दी के हितचिन्तकों को इसे हल करने के लिए प्रवृत्त होना चाहिए।

स्वर्गीय श्रीमती रामेश्वरी देवी 'चकोरी'

श्रीमती रामेश्वरी देवी चकोरी के स्वर्गवास का समाचार सुनकर किस हिन्दी-प्रेमी का हृदय दुःखी न



[स्वर्गीया श्रीमती रामेश्वरीदेवी मिश्र 'चकोरी']

होगा। आपने अल्पावस्था में ही सुन्दर कवितायें लिखकर हिन्दी की कवियित्रियों में अपना एक विशेष स्थान बना

लिया था और यदि यक्ष्मा का उन पर यह घातक आक्रमण न होता तो निस्सन्देह हिन्दी-कविता की श्री-वृद्धि में उनका बहुत कुछ हाथ होता। पिछले दो वर्षों से ज्यों ज्यों उनकी ख्याति बढ़ी त्यों त्यों उनका स्वास्थ्य भी गिरता गया और अन्त में हमें हिन्दी की इस श्रेष्ठ कवियित्री के निधन का असामयिक समाचार सुनना पड़ा। स्वर्गीय चकोरी जी के पति श्रीयुत अरुण जी जो कि स्वयं एक साहित्यिक हैं के प्रति इस अवसर पर हम अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

डाक्टर सरजूप्रसाद तिवारी का स्वर्गवास

हमें दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि डाक्टर सरजूप्रसाद तिवारी का इन्दौर में स्वर्गवास हो गया। डाक्टर साहब इन्दौर ही में नहीं, इन्दौर के बाहर भी बहुत लोकप्रिय थे और उनकी साहित्यिक और सार्वजनिक सेवायें भुलाई नहीं जा सकेंगी। 'मध्यभारत-हिन्दी-साहित्य-समिति' जिसका प्रधान कार्यालय इन्दौर में



[स्वर्गीय डाक्टर सरजूप्रसाद तिवारी]

है—बहुत कुछ आपके ही प्रयत्न का फल है। पिछली बार ईस्टर के दिनों में इन्दौर में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन हुआ था तब आप उसके स्वागताध्यक्ष थे। उस समय भी आपका स्वास्थ्य चिन्त्य था, तथापि आपने यथाशक्ति स्वागत-समिति के कार्यों में भाग लिया था और पहले दिन की कार्य्यवाही में बीमारी की अवस्था में भी सम्मेलन के मंडप में आप पधारे थे। साहित्यिक और सामाजिक कार्यों में आप बराबर आर्थिक सहायता देते और उनमें दिलचस्पी लेते रहते थे। ईश्वर आपको सद्गति और आपके कुटुम्बियों को धैर्य प्रदान करे, यही हमारी कामना है।

मरा हुआ बाप बेटी का ब्याह देखने आया

बहुतों का यह खयाल है कि मृत्यु के बाद भी मनुष्य इस संसार से सम्बन्ध रखता है। बहुत-से लोग मृतात्मा को बुलाते और उनसे बातें करते सुने गये हैं। हाल में एक बहुत ही आश्चर्य-जनक घटना हुई है उसका यहाँ उल्लेख करते हैं। पटना के प्रतिष्ठित व्यक्ति रायबहादुर श्री विनोदविहारी मजूमदार, एम० ए०, बी० एल०, की यह आँखों देखी घटना है जो इस प्रकार है—

रायबहादुर का लड़का सन् १९२४ में स्वर्गवासी हुआ था। वह अपने पीछे एक लड़की छोड़ गया था। गत मार्च में उस लड़की का विवाह था। विवाह के समय रायबहादुर ने ही नहीं, वहाँ जो लोग भी उपस्थित थे सबों ने उस स्वर्गीय लड़के को अपनी लड़की के पास बैठे हुए देखा और पहचाना। उसके साथ ६ व्यक्ति और थे, जिन्हें कोई नहीं पहचान सका। शायद वे उसके दूसरे लोक के साथी थे। इतना ही नहीं, इस मृत पुत्र ने अपनी मा (रायबहादुर की स्त्री) को जो मंडप की दूसरी ओर बैठी थीं, पुकारा भी।

इस घटना का वर्णन रायबहादुर ने इस ढंग से और इतने करुणोत्पादक शब्दों में किया कि सभा में जो लोग उपस्थित थे सबों की आँखों में आँसू आ गये।

रायबहादुर एक ज़िम्मेदार व्यक्ति हैं, और उनका अविश्वास नहीं किया जा सकता। किसी अवसर पर हो सकता है कि पुत्रवियोग से पीड़ित उनकी आत्मा ऐसा स्वप्न देख सकती है, उनकी स्त्री को भी ऐसा अनुभव हो सकता है। पर विवाह में उपस्थित सभी व्यक्तियों को यह मृत पुत्र कैसे दिखाई पड़ा और उसकी आवाज़ भी सुनाई पड़ी, यह एक प्रश्न है, जिस पर मनोवैज्ञानिकों और प्रेतात्मा या दूसरे लोक में विश्वास न रखनेवाले वैज्ञानिकों के लिए विचार करने के योग्य है।

Printed and published by K. Mittra at The Indian Press, Ltd., Allahabad.



भारत का फूल

[चित्रकार—श्रीयुत वेदरतन वर्म्मा

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

दिसम्बर १९३५ } भाग ३६, खंड २ संख्या ६, पूर्ण संख्या ४३२ { मार्गशीर्ष १९९२

ताराकाश

लेखक, श्रीयुत सुमित्रानन्दन पन्त

तारों का नभ! तारों का नभ!
सुन्दर, समृद्ध, आदर्श सृष्टि!
जग के अनादि पंथ-दर्शक वे,
मानव पर उनकी लगी दृष्टि!
वे देव-बाल भू को घेरे,
भावी भव की कर रहे पुष्टि!
सेवों की कलियों-सा प्रभूत
वह भावी जग-जीवन-विकास!

मानव का विश्व-मिलन पवित्र,
चेतन आत्माओं का प्रकाश!
तारों का नभ! तारों का नभ!
अंकित अपूर्व आदर्श सृष्टि!
शाश्वत शोभा का खिला अदन,
अब होने को है पुष्प-वृष्टि!
चाँदनी चेतना की असन्द,
अग-जग को छू दे रही तुष्टि!

जवाहरलाल नेहरू और हिन्दू-संस्कृति

लेखक,
श्री भाई परमानन्द जी, एम० ए०,
एम० एल० ए०



भाई परमानन्द जी ने अगस्त की 'सरस्वती' में "स्वराज्य क्या है ?" शीर्षक एक लेख लिखा था। उसके उत्तर में पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने एक लेख आक्टोबर की 'सरस्वती' में "भाई परमानन्द और स्वराज्य" शीर्षक से लिखा था। भाई जी का यह लेख नेहरू जी के उसी लेख के प्रत्युत्तर में लिखा गया है। आशा है इस विवाद से इस जटिल प्रश्न पर समुचित प्रकाश पड़ेगा।

स्वराज्य के बारे में मैंने पिछले दिनों एक लेख "स्वराज्य क्या है ?" लिखा। अलमोड़ा में रहते हुए पं० जवाहरलाल नेहरू ने उसे पढ़ा। ऐसा मालूम होता है कि उसे पढ़कर उनके विचारों को थोड़ी-सी ठोकर लगी और उन्होंने इस विषय पर अपने विचारों को लेखबद्ध करना आवश्यक समझा। अपने लेख में पंडित जी ने न सिर्फ़ अपना पक्ष पेश करने का यत्न किया है, बल्कि कई स्थलों पर यह इच्छा प्रकट की है कि कुछ एक बातों पर मैं अपने विचार खोल कर स्पष्ट करूँ। पं० जवाहरलाल जैसे राजनैतिक स्थिति रखनेवाले व्यक्ति जब मुझसे कुछ सवाल करें तब मेरे लिए यह एक प्रकार से कर्त्तव्य हो जाता है कि मैं उनका उत्तर दूँ। लेख में कई बातों को छुआ गया है। उनमें से हर एक को मैं यहाँ नहीं ले सकता, क्योंकि उस दशा में लेख बहुत ही लंबा हो जायगा। फिर भी मैं उन कुछ सवालों को लेकर जवाब देने का प्रयत्न करूँगा जो पं० जवाहरलाल के दिल में पैदा हुए हैं।

असली विषय को लेने से पूर्व मैं इतना निवेदन कर देना चाहता हूँ (अगर यह धृष्टता न समझी जाय) कि इस विषय पर पंडित जी के अपने विचार बहुत साफ़ या स्पष्ट नहीं हैं। इस बात को उन्होंने अपने लेख के अंत में इस प्रकार स्वीकार किया है—"पुराने इतिहास और आधुनिक संसार की राजनीति पर विचार करते हुए दिमाग़ में ख़यालात का एक हुजूम पैदा हो जाता है। क़लम उनका साथ नहीं दे सकता। वह बेचारा तो धीरे-धीरे काग़ज़ पर काली लकीरें खींचता है, विचारों की दौड़ में बिलकुल पिछड़ जाता है। उसकी धीमी रफ़्तार से उलझन पैदा होने लगती है।"

जब वस्तु-स्थिति ऐसी हो तब मेरी राय है कि हमें एक-दूसरे के विचारों पर चाहे वे कितने ही परस्पर-विरोधी हों, बड़ी गंभीरता से ध्यान देना चाहिए ताकि हम किसी सही नतीजे पर पहुँच सकें।

पं० जवाहरलाल का पहला प्रश्न यह है—"स्वराज्य में स्व (सेल्फ़) क्या है? (और अगर इसका संबंध 'हिन्दू' शब्द से है तो) भाई जी की राय में हिंदूत्व क्या है ?"

वास्तव में यह एक मौलिक प्रश्न है। इससे पूर्व कि इस बात का जवाब दिया जाय कि हमारा 'सेल्फ़' क्या है और हमारा हिन्दूत्व क्या है, मैं यह बताना आवश्यक समझता हूँ कि वर्तमान जातीयता (नेशनेलिटी) का विचार योरप में क़रीब दो सौ वर्ष पूर्व से पैदा हुआ है और विभिन्न अवस्थायें या मंज़िलें तय करता हुआ वर्तमान रूप में हमारे सामने आया। जान स्टुअर्ट मिल तथा अन्य विद्वानों ने जातीयता की परिभाषा करते हुए बतलाया है कि वह कई बातों के मिलने से बनती है। उदाहरणार्थ ख़ून या नस्ल का एक होना, देश का एक होना, भाषा का एक होना, मज़हब और गवर्नमेंट का एक होना, और, इन सबसे बढ़कर, संस्कृति का एक होना (संस्कृति में इतिहास, परंपरायें, त्योहार, दर्शन, कला आदि सम्मिलित हैं)। परंतु इसके साथ-साथ हमें यह भी याद रखना चाहिए कि हर जातीयता के बनने के लिए इन सभी तत्त्वों का होना जरूरी नहीं

> कांग्रेस ने खिलाफ़त के मज़हबी आंदोलन-द्वारा इस्लामी जोश भड़काया; हिन्दू-मुस्लिम-एकता पर असाधारण एवं अनावश्यक ज़ोर देकर मुसलमानों के दिमाग़ को सिर पर चढ़ाया; एकता-सम्मेलनों के द्वारा तथा कोरे चेक दे-दे कर हिन्दू-हितों को क़ुर्बान किया; सांप्रदायिक निर्णय जैसे प्रजासत्ता एवं राष्ट्र-विरोधी फ़तवे पर मौन धारण किया—ये घटनाएँ एवं तथ्य ऐसे हैं जिनसे एक अंधा आदमी भी साफ़ नतीजा निकाल सकता है कि अगर कांग्रेस की नीति इसी प्रकार चलती रही तो हिन्दू दिन-प्रतिदिन कमज़ोर होते और मिटते चले जायँगे।
>
> भाई परमानन्द

है। इनमें से कोई दो-तीन भी ऐसे मज़बूत हो सकते हैं कि वे, अन्य भेद-भावों की विद्यमानता में भी, जाति बना दें। जातीयता के वास्तविक भाव (स्पिरिट) को समझना बहुत आसान हो जाता है, अगर हम एक मनुष्य के जीवन को अपने संमुख रख लें। छः-सात बरस का बच्चा है। उसका रङ्ग-रूप और बौद्धिक अवस्था बच्चों की-सी है। वही बच्चा बड़ा होकर लड़का बनता है और फिर जवान होता है। बाद में बूढ़ा हो जाने पर उसके शरीर और दिमाग़ में अगणित परिवर्तन आ जाते हैं। परन्तु एक बुड्ढा आदमी भी अपने छुटपन की हालत को याद करके इस बात का ज्ञान रखता है कि उसका जीवन बचपन से लेकर बुढ़ापे तक बराबर, सिलसिलेवार, एक ही चला आता है। जीवन का इस प्रकार जारी रहना या जीवन-अनुवर्त्तन (Continuity of Life) ही वास्तविक जातीयता है।

यदि हम जातीयता के इस सिद्धान्त को अच्छी तरह से समझ लें तो 'स्व' या 'हिंदुत्व' के विचार के विषय में जितने प्रश्न या संदेह पं० जवाहरलाल ने किये हैं, वे ख़ुद-ब-ख़ुद मिट जाते हैं। हिन्दुओं के वर्णों या जातियों के विभाजन को, उनके सामाजिक संस्कारों और रस्मों को, उनके विभिन्न मत-मतान्तर को मैं हिन्दुओं की जातीयता नहीं समझता, बल्कि जाति के लिए एक प्रकार का लिबास ख़याल करता हूँ, जिसे बनाये रखना या बदल देना जाति के अपने इख़्तियार की बात है। और, इसमें कोई परिवर्तन कर देने से जाति मिट नहीं जाती, बल्कि इसे एक प्रकार की उन्नति (Progress) का साधन समझा जा सकता है। इस प्रश्न पर दो प्रकार के लोग पाये जाते हैं; एक वे जो परिवर्तन के ख़िलाफ़ होते हैं—रूढ़िवादी (Conservative) और दूसरे तबदीली-पसंद (Progressive)।

इस अवसर पर एक अन्य बड़े सवाल का जवाब भी दे दिया जाय तो कोई हर्ज न होगा। अपने लेख में मिस्र, ईरान आदि के उदाहरण देकर मैंने बताया था कि ज्यों ही इन देशों ने इस्लाम स्वीकार किया, त्यों ही इनकी अपनी-अपनी असली जातीयता मिट गई और अरबी-सभ्यता में जज़्ब हो जाने से ये एक प्रकार के स्थायी दासत्व का शिकार बन गये। पं० जवाहरलाल ने मिस्र का उदाहरण लिया है। उन्होंने कहा है कि मिस्र में कई हज़ार वर्ष तक एक सभ्यता रही। 'फिर क़रीब २,२०० वर्ष हुए सिकंदर ने मिस्र फ़तह किया' और इसके बाद रोमवासियों ने। १,३०० बरस हुए मुसलमानों ने उसको विजित किया। इस पर पण्डित जी का सवाल है कि मेरे पहले लेख में किस युग के मिस्रियों को असली जाति कहा गया है। इसका उत्तर यह है कि जब तक मिस्र-वासियों ने अपने अंदर जातीय अनुवर्त्तन या सिलसिले (Continuity) को क़ायम रक्खा और जब तक उनके अंदर यह भाव विद्यमान रहा कि वे उसी जाति में से उत्पन्न हुए हैं जिसने पिरामिडों को बनाया और योरप में अपनी सभ्यता फैलाई, तब तक वे चाहे स्वाधीन रहे, चाहे रोमन लोगों के अधीन रहे या यूनानियों के, उनकी जातीयता बराबर बनी रही। परंतु जब अरबवासियों ने मिस्र को विजित करके मिस्रवासियों को उनके समस्त भूत (Past) से अलग कर दिया तब उस समय मिस्री-जाति मिट गई और तब मिस्र में उस बड़े शानदार मिस्री वृक्ष के स्थान में अरब की एक शाखा गाड़ दी गई।

यह बात ब्रिटेन के इतिहास से भी भली भाँति प्रकट हो जाती है। ब्रिटेनवासी जो केल्ट् (Celts) कहलाते थे, तीन सौ वर्ष तक रोमन-शासन के अधीन रहे। रोमन-दासत्व के होते हुए उनका मज़हब, संस्कृति और जातीयता बने रहे। (उनके मज़हब, और रीति-रवाज पुराने आर्यों-जैसे और वर्तमान हिन्दुओं से मिलते-जुलते थे।) जब ऍंग्लो-सेक्सन लोगों ने ब्रिटेन पर आक्रमण करने आरंभ किये तब उन्होंने अपनी जीतों के साथ ब्रिटेन-वासियों को मिटा दिया और उस जाति के स्थान

में ऍंग्लो-सेक्सन नस्ल न सिर्फ़ शासक बन गई, बल्कि वहाँ की जाति कहलाने लगी।

इसी प्रकार जो कुछ मिस्र में हुआ, ठीक वही ईरान में हुआ। जब अरबी फ़ौजों ने ईरान को विजित किया और सभी ईरानियों को मुसलमान बनाना चाहा तब उन ईरानियों के सामने जो अपनी जाति से प्रेम करते थे, यह सवाल पैदा हुआ कि आया वे जातीयता को तिलांजलि दे दें या देश को। कुछ हज़ार ईरानियों ने अपनी जाति और मज़हब को बचाना श्रेयस्कर समझा और कश्तियों में बैठकर अनहलवाड़ा (गुजरात) आ पहुँचे। (इनकी सतानें आज-कल के भारतीय पारसी हैं।) यह बात भी बहुत दिलचस्प है कि इस समय रज़ाशाह पहलवी के शासन में ईरान में जो नया जातीय या राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहा है उसका बड़ा उद्देश यह है कि ईरानियों में से बाद की अरबी-सभ्यता को निकाल कर ईरान की पुरानी संस्कृति को नये सिरे से क़ायम किया जाय।

स्वतंत्र होते हुए या परतंत्र रहते हुए जब तक हिन्दू स्त्री, पुरुष और बच्चे के अन्दर यह भाव मौजूद है कि उनका संबंध श्री राम और श्री सीता से है और वे अपने देश के पूर्वजों की आत्माओं को अपनी आत्मा के अंदर देखते हैं तब तक वे हिन्दू-जातीयता या राष्ट्रीयता को क़ायम रखते हैं। ज्यों ही कुछ हिन्दू अपने सभी पूर्वजों से संबंध-विच्छेद करके अपने मज़हब, अपने इतिहास और अपनी संस्कृति आदि का नाता अरब से जोड़ लेते हैं, त्यों ही उनके अंदर से हिन्दूत्व मिट जाता है और उसके स्थान में ग़ैरीयत आ जाती है। यह बात एक छोटे से उदाहरण से स्पष्ट हो जाती है। जिन लोगों के दिल में हिन्दूत्व (स्व) विद्यमान है वे महाराज युधिष्ठिर, राजा विक्रमादित्य, महाराना प्रताप, महाराज शिवाजी, और गुरु गोविंद को अपने राष्ट्रीय वीर और मुक्तिदाता (Liberators) मानते हैं। इसके विपरीत जिन लोगों के दिल से वह हिन्दूत्व उड़ गया है वे भारत पर आक्रमण करनेवाले महमूद ग़ज़नवी, मुहम्मद ग़ोरी, तैमूर, बाबर आदि शत्रुओं को स्मरणीय पूर्वज और क़ौमी 'हीरो' समझते हैं।

अपने पहले लेख में मैंने इस बात को नहीं छेड़ना चाहा कि स्वतन्त्र भारत की गवर्नमेंट का क्या रूप हो; वह लोकतंत्रात्मक हो या प्रजातंत्र, साम्यवादी हो या फ़ेसिस्ट। परंतु इतनी बात मैं ज़रूर कह देना चाहता हूँ कि राजनैतिक या आर्थिक स्वतंत्रता का सांस्कृतिक और सामाजिक स्वतंत्रता से आसानी के साथ भेद किया जा सकता है। भारत सदियों तक मुसलमान बादशाहों का ग़ुलाम रहा। ग़ुलाम होने से इसकी राजनैतिक स्वतंत्रता जाती रही, परन्तु बाह्य प्रभावों के बावजूद इसकी सांस्कृतिक स्वतंत्रता बनी रही। सांस्कृतिक स्वतंत्रता ही थी जिसने हिन्दुओं को मुसलमान शासकों से अलग रक्खा और इस कारण ही हिन्दुओं में इस्लामी गवर्नमेंट के मुक़ाबिले पर विरोध का झंडा खड़ा करनेवाले उत्पन्न हुए। यदि राजनैतिक स्वतंत्रता के साथ हिन्दुओं की संस्कृति और सामाजिक जीवन ख़त्म हो गये होते, जैसा कि मिस्र, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में हुआ, तो हिन्दुओं में ऐसे देशभक्त और राष्ट्रीय वीर न उत्पन्न होते। राजनैतिक दासत्व एक प्रकार से जाति का शारीरिक दासत्व होता है, परन्तु सांस्कृतिक दासत्व उसके दिमाग़ी दासत्व के समान है। पहले शारीरिक ग़ुलामी आती है। इसके बाद विजेता जाति का लाभ इसमें होता है कि विजित जाति के अंदर अपनी संस्कृति, अर्थात् स्व-भाषा, स्व-साहित्य और स्व-गौरव का प्रचार करके (जैसा कि ब्रिटिश गवर्नमेंट ने अपनी शिक्षा-पद्धति के द्वारा भारत में किया है) उसके अंदर ऐसी दिमाग़ी ग़ुलामी पैदा कर दे कि विजित अपने आपको विजेता का ही एक अंश (Mind-born sons) समझने लग जाय और इस प्रक्रिया के पूर्ण हो जाने पर उसके अंदर स्वतंत्रता की इच्छा ही मिट जाय।

आर्य-संस्कृति और द्रविड़-संस्कृति के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में कई मत हैं। उदाहरणार्थ 'ऋग्वेदिक इंडिया' के प्रसिद्ध लेखक श्री अविनाशचन्द्र दास का मत अन्य इतिहासज्ञों से सर्वथा भिन्न है। उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि पुराने बेबिलोनियावासी, मिस्रवासी और उनके समान द्रविड़ भी आर्य नस्ल की एक शाखा थी, जो कई युग पहले आर्य नस्ल से अलग होकर दूर देश में जाकर आबाद हुई। यह अन्वेषण-फल सही हो या न हो, यह एक तथ्य है कि इतिहास-काल से बहुत पूर्व उत्तर-भारत के आर्य और दक्षिण-भारत के द्रविड़ एक दूसरे के साथ मिल-जुल गये और उन्होंने अपनी संस्कृति को सम्मिलित बना लिया। इसलिए पिछले युगों में दोनों नस्लें हिन्दू कहलाने लगीं और अगर इनमें कोई पृथक्त्व था तो वह धीरे-धीरे मिट गया।

पं० जवाहरलाल कहते हैं—"विचारणीय बात तो यह है कि इस समय इसी पंजाब में हिन्दू-महासभा की शक्ति ज्यादा है और दक्षिण में तो उसकी पहुँच बहुत कम है।"

पंडित जी के इस सवाल का जवाब ऐतिहासिक घटनाओं से मिलता है। भारतवर्ष पर विदेशी आक्रमण का रास्ता उत्तर-पश्चिम से ही रहा है। इसलिए इन बाह्य आक्रमणों का मुक़ाबिला करने के लिए पंजाब एक प्रकार से भारत के फाटक का काम करता रहा है। सिकंदर ने पंजाब को जीता। परन्तु चंद्रगुप्त ने थोड़े ही दिन बाद सिकंदर के शासन को पंजाब के लोगों की सहायता से हटा दिया और सिकंदर का एक बड़ा भारी प्रांत जो कंधार तक फैला हुआ था, सेल्यूकस की लड़की के विवाह के कारण उसके अधीन हो गया। चंद्रगुप्त के राज्य-काल में चाणक्य एक बड़ा भारी देशभक्त राजनीतिज्ञ था, जिसने पंजाब में से विदेशी शासन निकालने की तदबीर की। इसके बाद सदियाँ गुज़र गईं। अब हम उस काल में पहुँचते हैं जब भारत की सीमाओं से परे ईरान, तातार और अफ़ग़ानिस्तान में बड़े बड़े इस्लामी राज्य खड़े हो गये। इस्लाम नदी की तरह उमड़ता हुआ भारत की तरफ़ बढ़ रहा था। पंजाब के राजा जयपाल ने इस बढ़ती हुई शक्ति को उसके घर में ही दबा देने के लिए अफ़ग़ानिस्तान पर आक्रमण किया। उसके बेटे अनङ्गपाल ने महमूद ग़ज़नवी को रोकने के लिए पेशावर पर चढ़ाई की और महमूद की फ़ौज के साथ बड़ा ज़बर्दस्त मुक़ाबिला किया। ऐसा मालूम होता था कि महमूद और उसकी सेना नष्ट होने को है कि अनङ्गपाल के हाथी ने राजा को धोखा दिया और लड़ाई की क़िस्मत बिलकुल पलट गई। इसके बाद दो बड़े प्रबल आक्रमणों का पंजाब ने मुक़ाबिला किया। जब पंजाब विजित हो गया तब भारत का फाटक खुल गया और उसके बाद शेष भारत में, दो-चार को छोड़ कर, विदेशी आक्रमणों के मुक़ाबिले का सामर्थ्य ही न रहा। कई शताब्दियों के शासन के बाद पंजाब में वही शक्ति उत्पन्न हुई जिसने इस इस्लामी नदी को न सिर्फ़ रोका, बल्कि इसका बहाव उलटा कर दिया—पंजाब की फ़ौजों ने पठानों को जमरोद तक जा भगाया और अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह का मुक़ाबिला किया। इसे भारत के इतिहास में एक बड़ा भारी चमत्कार कहा जा सकता है। पंजाब में यदि हिन्दूत्व का ज्यादा ज़ोर है तो इसका कारण पंजाब की भौगोलिक स्थिति और इसके पिछले युग की ऐतिहासिक घटनायें हैं।

पं० जवाहरलाल एक और जगह कहते हैं कि कांग्रेस के ध्येय के बारे में मैं अपनी राय को सिद्ध करूँ। अर्थात् यह कि "हिन्दू-महासभा पहले प्रकार के स्वराज्य, अपनी जातीयता और धर्म के रखने, के लिए यत्न कर रही है, और दूसरे प्रकार के स्वराज्य, अपनी जातीयता मिटाने और पराये की ओढ़ने, की कांग्रेस कोशिश करती है।"

अपनी बात को स्पष्ट करते हुए पंडित जी ने कहा है कि कांग्रेस ब्रिटिश गवर्नमेंट से लड़ाई करती है और व्यंग्य से यह भी कि हिन्दू-महासभा नौकरियों की फ़िक्र में रहती है। पं० जवाहरलाल को हिन्दू-महासभा के बारे में थोड़ी-सी ग़लत-फ़हमी है। हिन्दू-महासभा को इस बात की परवा नहीं है कि कोई हिन्दू नौकरी करे या न करे। जिस बात का विरोध हिन्दू-महासभा करती है वह केवल इतनी ही है कि भारत-सरकार एक संप्रदाय या समुदाय की रिआयत करके और उसे ऊँचा उठाकर दूसरे सम्प्रदाय को नीचा दिखाती है और दोनों में पारस्परिक घृणा एवं ईर्ष्या उत्पन्न करती है जैसा कि उसने सांप्रदायिक निर्णय के द्वारा किया है। हर एक न्याय-प्रिय मनुष्य इस बात को पसन्द करेगा कि सरकारी मुलाज़मतें योग्यता की मीयाद पर हर एक भारतीय के लिए खुली हों। इसमें न नौकरियों की इच्छा है, न नौकरियों की माँग; बल्कि हिन्दू-महासभा के सामने यह सिद्धांत का प्रश्न है।

अब रही यह बात कि कांग्रेस किस तरह से अपनी जातीयता को मिटाकर स्वराज्य प्राप्त करना चाहती है। मुझे यह बताना है कि मैं इस परिणाम पर कैसे पहुँचता हूँ। मुझे इसका सबूत या प्रमाण देने के लिए यह आवश्यक नहीं मालूम देता कि इसके समर्थन में मैं कांग्रेस का कोई प्रस्ताव उद्धृत करूँ। मेरा निष्कर्ष कांग्रेस के संचालकों की नीति और उनके जीवन भर के आचरण पर आश्रित है। हिन्दू कांग्रेसी नेता हिन्दू-नाम को क़ायम रखना नहीं चाहते। वे कहते हैं कि हम न हिन्दू हैं, न मुसलमान। जो हिन्दू अपने आपको हिन्दू कहने से शरमाते हैं वे हिन्दू-संस्कृति के प्रेमी कैसे हो सकते हैं? कांग्रेसी नेता दिन-रात, हर घड़ी, हमें यह बताते हैं कि सांप्रदायिकता देश को विनष्ट कर रही है। इसका मतलब क्या है? क्या वे यह नहीं जानते कि उनकी इस बात को सुननेवाले केवल हिन्दू ही हैं? मुसलमान न उनकी बात सुनते हैं, न मुसलमानों पर इसका कोई असर होता है। मुसलमानों को कट्टर संप्रदायवादी बनते देखकर हिन्दुओं से यह कहना कि सांप्रदायिकता ज़हर है, सिर्फ़ यही मानी रखता है कि हिन्दू हिन्दूत्व को छोड़ दें। कांग्रेस ने ख़िलाफ़त के मज़हबी आंदोलन को अपने अंदर घुसेड़कर इस्लामी जोश भड़काया। परन्तु इसके परिणाम-स्वरूप जब मलाबार से शुरू होकर देश भर में हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए और प्रायः हर जगह हिन्दू क़त्ल किये गये तथा लूटे गये तब कांग्रेस ने हिन्दुओं के लिए सहानुभूति का एक शब्द भी मुँह से न निकाला। कांग्रेस ने अपनी इस थियरी से कि हिन्दू-मुस्लिम-एकता के बग़ैर स्वराज्य नहीं मिल सकता, मुसलमानों के दिमाग़ को आसमान पर चढ़ा दिया है। कांग्रेस के नेताओं का हाल यही रहा है कि मुसलमानों को ख़ुश रखने के लिए हिन्दू अधिकारों का बलिदान करते जायँ। कांग्रेस की तरफ़ से जितने एकता-सम्मेलन हुए हैं उन सबमें इसी बात का यत्न किया गया है कि मुसलमानों की दिन-प्रति-दिन बढ़ती हुई माँगों को मंज़ूर कर लिया जाय ताकि किसी तरह हिन्दू-मुस्लिम-एकता हो जाय और गवर्नमेंट के साथ लड़ाई में कांग्रेस जीत जाय। कोरे चेक पेश करने की नीति के अंतस्तल में यही नीति काम करती है। सांप्रदायिक निर्णय—जैसे प्रजासत्ता-विरोधी और राष्ट्र-विरोधी फ़तवे पर मौन धारण करने का कारण इसी में पाया जाता है।

कांग्रेस ने ख़िलाफ़त के मज़हबी आंदोलन-द्वारा इस्लामी जोश भड़काया; हिन्दू-मुस्लिम-एकता पर असाधारण एवं अनावश्यक ज़ोर देकर मुसलमानों के दिमाग़ को आसमान पर चढ़ाया; एकता-सम्मेलनों के द्वारा तथा कोरे चेक दे-देकर हिन्दू-हितों को क़ुर्बान किया; सांप्रदायिक निर्णय—जैसे प्रजासत्ता एवं राष्ट्र-विरोधी फ़तवे पर मौन धारण किया—ये घटनायें एवं तथ्य ऐसे हैं जिनसे एक अंधा आदमी भी साफ़ नतीजा निकाल सकता है कि अगर कांग्रेस की नीति इसी प्रकार चलती रही तो हिन्दू दिन-प्रति-दिन कमज़ोर होते और मिटते चले जायँगे। और, दूसरी तरफ़ न सिर्फ़ संप्रदायवादी मुसलमानों की बल्कि वर्तमान गवर्नमेंट

की शक्ति बढ़ती और मजबूत होती जायगी। इससे एक और नतीजा भी साफ़ निकलता है—अगर हमें हिन्दुओं को मिटाते हुए ही स्वराज्य का युद्ध करना है तो इससे कहीं बेहतर बात यह है कि हम अपने 'स्व' को बदल लें और अपने आपको इँग्लेंड के 'स्व' में जज्ब कर दें। इससे हमको बग़ैर किसी तकलीफ़ या क़ुर्बानी के स्वराज्य मिल जायगा।

बस्ती है यह किन मस्तों की

लेखक, श्रीयुत रामानुजलाल श्रीवास्तव

बस्ती है यह किन मस्तों की कैसी अद्भुत मधुशाला है।
बेहोश पड़े पीनेवाले मदहोश पिलानेवाला है॥
क्या नहीं जानते हो कोई इस ढब से आनेवाला है।
उर में मरुथल की प्यास भरी कर में टूटा-सा प्याला है॥

ऐसे प्यासे को मधुवाले कुछ अपना जादू दिखला दे।
सुधिवालों को बेसुध कर दे सुधिहीनों में फिर सुधि ला दे॥
मुझको तो कुछ ऐसी दे दे बस एक दिखूँ मैं लाखों में।
कुछ शीशे की कुछ सागिर की कुछ दे जो भरी है आँखों में॥

तू ढाले जा ऐ मधुवाले जिससे मैं तलछट तक पाऊँ।
औ' चूम चूम अपने ओठों को झूम झूम पीते जाऊँ॥
मधु कभी नहीं है चुकने की तू देने में संकोच न कर।
मैं पीनेवाला मतवाला कुछ कम ज्यादा का सोच न कर॥

तू यह न समझना मधुवाले मैं प्यास बुझाने आया हूँ।
मस्तों के उर का एक तुझे संदेश सुनाने आया हूँ॥
यह प्यास हमारी बनी रहे औ' बना रहे आना-जाना।
दर पर यह लगती रहे सदा आबाद रहे यह मैख़ाना॥



[हिज़ हाइनेस महाराना सर भूपालसिंह जी, जी० सी० एस० आई०]

उदयपुर में विजयादशमी

लेखक, कुँवर चाँदकरण शारदा

कुँवर चाँदकरण शारदा गत दशहरा के दिनों में उदयपुर गये थे और मेवाड़ के महाराना के मेहमान हुए थे। इस लेख में आपने वहाँ के दशहरे के उत्सव का बड़े सुन्दर ढङ्ग से वर्णन किया है।

वीरभूमि राजस्थान के मेदपाट (मेवाड़) प्रान्त की राजधानी उदयपुर और प्रातःस्मरणीय देशभक्त महाराना प्रताप की जन्मभूमि चित्रकूट (चित्तौड़) किस देशभक्त भारतवासी को प्यारी नहीं? प्राचीन संस्कृति के रक्षक धनुष की टंकार करनेवाले भीलों की विहार-स्थली मेवाड़ की कौन प्रशंसा नहीं करता? धर्म के रक्षार्थ ज़िन्दा चिताओं में भस्म होनेवाली वीर-प्रसविनी वीर राजपूतनियों की जन्म-भूमि का कौन गुणगान नहीं करता? मेवाड़ की पुनीत भूमि धर्म, जातीयता तथा भारतीय संस्कृति की त्रिवेणी के निर्मल जल से सिञ्चित है। यह वीर-वाटिका, केसरिया बाना पहने हुए, सिर को हथेली में लिये हुए, निर्भय वीर योद्धाओं के ऐतिहासिक वीरतापूर्ण कार्यों से सुवासित है। अतः इसके यश गा-गाकर कर्नल टाड जैसे निष्पक्ष अँगरेज़ और भारत के बड़े-बड़े विद्वान् इतिहास-लेखकों ने इसके सुवर्ण इतिहास को लिखकर इसे अमर कर दिया है। ऐसी वीरभूमि की तीर्थयात्रा करने के लिए हम इस बार दशहरे के शुभावसर पर गये। भगवान् राम के वंशज सूर्यकुल-शिरोमणि, आर्यकुल-कमल-दिवाकर, हिन्दुओं के सूर्य उदयपुर के महाराना किस प्रकार दशहरा मनाते हैं, यह देखने की उमंग कई वर्षों से मेरे हृदय में थी। राजस्थान प्रान्तीय हिन्दू-सभा का शिष्टमंडल उदयपुर पहुँचा। हिज़ हाईनेस महाराना साहब सर भूपालसिंह जी बहादुर जी० सी० एस० आई० ने तथा उनके योग्य मंत्रिमंडल ने हमें राज्य का मेहमान बनाया और हमें

की शक्ति बढ़ती और मजबूत होती जायगी। इससे एक और नतीजा भी साफ़ निकलता है— अगर हमें हिन्दुओं को मिटाते हुए ही स्वराज्य का युद्ध करना है तो इससे कहीं बेहतर बात यह है कि हम अपने 'स्व' को बदल लें और अपने आपको इँग्लेंड के 'स्व' में जज्ब कर दें। इससे हमको बग़ैर किसी तकलीफ़ या कुर्बानी के स्वराज्य मिल जायगा।

बस्ती है यह किन मस्तों की

लेखक, श्रीयुत रामानुजलाल श्रीवास्तव

बस्ती है यह किन मस्तों की कैसी अद्भुत मधुशाला है।
बेहोश पड़े पीनेवाले मदहोश पिलानेवाला है॥
क्या नहीं जानते हो कोई इस ढब से आनेवाला है।
उर में मरुथल की प्यास भरी कर में टूटा-सा प्याला है॥

ऐसे प्यासे को मधुवाले कुछ अपना जादू दिखला दे।
सुधिवालों को बेसुध कर दे सुधिहीनों में फिर सुधि ला दे॥
मुझको तो कुछ ऐसी दे दे बस एक दिखूँ मैं लाखों में।
कुछ शीशे की कुछ सागर की कुछ दे जो भरी है आँखों में॥

तू ढाले जा ऐ मधुवाले जिससे मैं तलछट तक पाऊँ।
औ' चूम चूम अपने ओठों को झूम झूम पीते जाऊँ॥
मधु कभी नहीं है चुकने को तू देने में संकोच न कर।
मैं पीनेवाला मतवाला कुछ कम ज्यादा का सोच न कर॥

तू यह न समझना मधुवाले मैं प्यास बुझाने आया हूँ।
मस्तों के उर का एक तुझे संदेश सुनाने आया हूँ॥
यह प्यास हमारी बनी रहे औ' बना रहे आना-जाना।
दर पर यह लगती रहे सदा आबाद रहे यह मैख़ाना॥



[हिज़ हाइनेस महाराना सर भूपालसिंह जी, जी० सी० एस० आई०]

उदयपुर में विजयादशमी

लेखक, कुँवर चाँदकरण शारदा

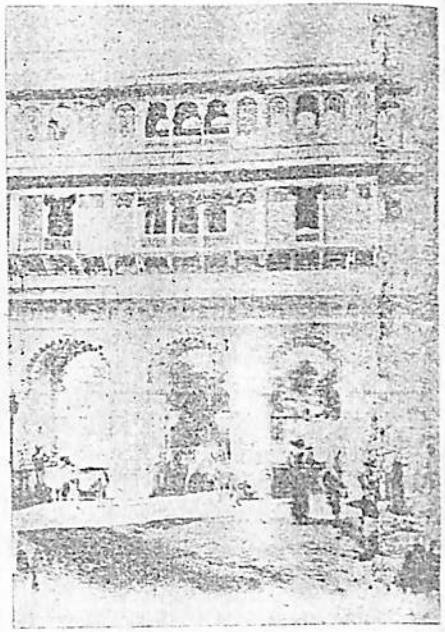
कुँवर चाँदकरण शारदा गत दशहरा के दिनों में उदयपुर गये थे और मेवाड़ के महाराना के मेहमान हुए थे। इस लेख में आपने वहाँ के दशहरे के उत्सव का बड़े सुन्दर ढङ्ग से वर्णन किया है।

वीरभूमि राजस्थान के मेदपाट (मेवाड़) प्रान्त की राजधानी उदयपुर और प्रातःस्मरणीय देशभक्त महाराना प्रताप की जन्मभूमि चित्रकूट (चित्तौड़) किस देशभक्त भारतवासी को प्यारी नहीं? प्राचीन संस्कृति के रक्षक धनुष की टंकार करनेवाले भीलों की विहार-स्थली मेवाड़ की कौन प्रशंसा नहीं करता? धर्म के रक्षार्थ ज़िन्दा चिताओं में भस्म होनेवाली वीर-प्रसविनी वीर राजपूतनियों की जन्म-भूमि का कौन गुणगान नहीं करता? मेवाड़ की पुनीत भूमि धर्म, जातीयता तथा भारतीय संस्कृति की त्रिवेणी के निर्मल जल से सिञ्चित है। यह वीर-वाटिका, केसरिया बाना पहने हुए, सिर को हथेली में लिये हुए, निर्भय वीर योद्धाओं के ऐतिहासिक वीरतापूर्ण कार्यों से सुवासित है। अतः इसके यश गा-गाकर कर्नल टाड जैसे निष्पक्ष अँगरेज़ और भारत के बड़े-बड़े विद्वान् इतिहास-लेखकों ने इसके सुवर्ण इतिहास को लिखकर इसे अमर कर दिया है। ऐसी वीरभूमि की [illegible] करने के लिए हम इस बार दशहरे के शुभअवसर पर गये। भगवान् राम के वंशज सूर्यकुल-शिरोमणि, आर्यकुल-कमल-दिवाकर, हिन्दुओं सूर्य उदयपुर के महाराना किस प्रकार दशहरा मनाते हैं, यह देखने की उमंग कई वर्षों से मेरे हृदय में थी। राजस्थान प्रान्तीय हिन्दू-सभा का शिष्टमंडल उदयपुर पहुँचा। हिज़ हाईनेस महाराना साहब सर भूपालसिंह जी बहादुर जी० सी० एस० आई० ने तथा उनके योग्य मंत्रिमंडल ने हमें राज्य का मेहमान बनाया और हमें

पिचोलिया-झील के सुन्दर तट पर गनगौर-घाट के ऊपर बने हुए सुन्दर महलों में से 'बागौर की हवेली' में जो 'सत्कारालय' कहलाता है, ठहराया था।

आसोज शुक्ला अष्टमी के सायंकाल के चार बजे से ही सारे उदयपुर नगर में बड़ी चहल-पहल थी। सड़कों पर छिड़काव हो रहा था। नये नये वस्त्र पहनकर अमरशाही पगड़ियाँ बाँधकर लम्बी अँगरखियाँ पहनकर, कमर बाँधे हुए, हाथों में सोने-चाँदी की मूठों की तलवारें लिये हुए सरदार पैदल तथा घोड़ों पर तथा मोटरों पर महलों की तरफ़ बढ़े जा रहे थे। उदयपुर की जनता और स्त्रियाँ भी इस दृश्य को देखने के लिए अपने क़ुर्ब-क़ायदे के मुताबिक़ उमड़ पड़ी थीं। महलों के सामने ही बड़े-बड़े चबूतरों पर खास सूर्यद्वार के नीचे दरीखाने का प्रबन्ध हो रहा था। लाल जाज़में बिछाकर उन पर सफ़ेद बुर्राक़ चाँदनी बिछाई गई थी और उस पर एक बड़े सिंहासन पर मसनद रक्खी हुई थी। पुरोहित सरदारों की पोशाकों में यह देख रहे थे कि कौन-कौन सरदार बाक़ायदा पोशाक में पधारे हैं। चोबदार लाल बनात की लम्बी अँगरखियाँ और केसरिया पोशाकें पहने हुए इधर-उधर काम कर रहे थे। महलों के सामने ही सुन्दर सुन्दर सोने-चाँदी के ज़ेवर पहने हुए कई हाथी अच्छी अच्छी बेशक़ीमती झूलें डाले हुए सोने-चाँदी की अम्बारी से सुसज्जित झूम रहे थे। एक से एक सुन्दर घोड़े सोने-चाँदी के ज़ेवरों से सुसज्जित अलग ही अपना यौवन दिखा रहे थे। आज इन हाथी-घोड़ों की भी खुशी का ठिकाना न था, क्योंकि आज हिन्दुओं सूर्य मेदपाटेश्वर अपने कर-कमलों से इनकी पूजा करनेवाले थे।

हम लोगों को भी 'सत्कारालय' से लाल वर्दी पहने हुए चोपदार महलों में दरबार दिखाने ले गया। ठीक हाथी-घोड़ों के पूजा-स्थान और दरीखाने के ऊपर ही तिबारी में हम लोग बैठाये गये। हमारे सामने के विस्तृत मैदान में लाल वर्दी पहने हुए महाराना साहब की पैदल पल्टन बन्दूकें लिये खड़ी थी। उसके आगे सजे हुए पूजन के घोड़े और हाथी खड़े थे। ठीक समय पर रेज़िडेंट श्रीमान् कर्नल बीथम साहब पधारे। फ़ौज ने



[गनगौर-घाट, उदयपुर]

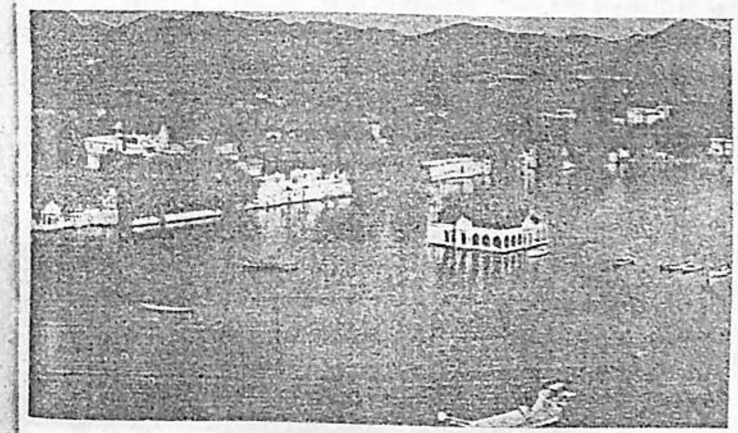
उनको सलामी दी और बाजा बजाया। हमारे सामने के हाथीख़ाने के ऊपरवाले कोठे पर फ़ौज के पीछे दरी पर कुछ कुर्सियाँ रक्खी थीं। वहाँ रेज़िडेंट साहब बिठाये गये। एक-दो और अँगरेज़ और मेमें भी उनके साथ बिठाई गईं। उदयपुर के सिक्कों पर लिखा हुआ 'दोस्ती लंदन' का चित्र हमारे सामने घूमने लगा। ठीक ६ बजे महाराना साहब की सवारी आई। चारों ओर से "खड़े हो" "खड़े हो" की आवाज़ें आने लगीं। रेज़िडेंट साहब और सब उपस्थित जनता एक साथ खड़े हो गये। उनके सत्कार में फ़ौज ने सलामी दी, बाजा बजा। महाराना साहब ने घोड़ों का पूजन करना आरम्भ किया। सबसे पहले श्री एकलिंग जी का घोड़ा जिस पर चँवरें डोलाई जा रही थीं, सोने-चाँदी के गहने पहने हुए लाया गया।

उसके सिर पर जवाहिरों का मुकुट बाँधा गया। एक लाल कपड़ा दिया गया। पुरोहित जी मंगलाचरण और वैदिक मंत्र पढ़ते जाते थे। साईसों को दो दो नारियल और एक चाँदोड़ी रुपया और चार चार पापड़ियाँ दी जाती थीं। वे नम्बर से अभिवादन कर घोड़े को वापस लौटा ले जाते थे। इस प्रकार कई घोड़ों का पूजन हुआ। तत्पश्चात् महाराना साहब सर भूपालसिंह जी बहादुर

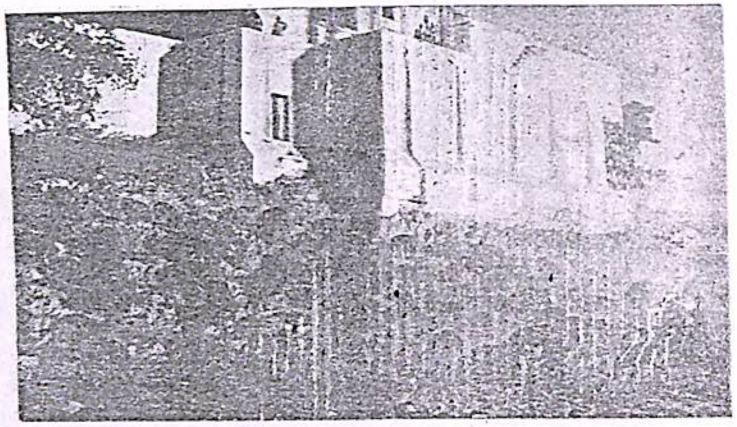


[महाराना साहब अपने सरदारों के साथ शेर के शिकार में]

तामजाम में दरीखाने में लाये गये। दरीखाने के नुकड़ पर द्वार के पास घुसते ही उनके लिए कुर्सी लगाई गई थी। एक एक सुन्दर सजा हुआ हाथी झूमता हुआ उनके सामने लाया जाता था। महावत अभिवादन करता था। हाथी को एक लाल कपड़ा दिया जाता था और उसके मौर जो तोरण की क़िस्म का खजूर का बना हुआ था, बाँधा जाता था। इस प्रकार कई हाथियों का पूजन हुआ। उधर पास के द्वार से ज़नानी ड्योढ़ी पर महारानी साहबा ने भी पूजन के समय घोड़ी और हथिनी की पूजा इसी प्रकार की। सारे दरबारी खड़े थे। परन्तु १६ उमराव बैठे हुए थे। इन उमरा और सरदारों में पहले नम्बर और दूसरे नम्बर के सरदार होते हैं। और अपने अपने पद तथा



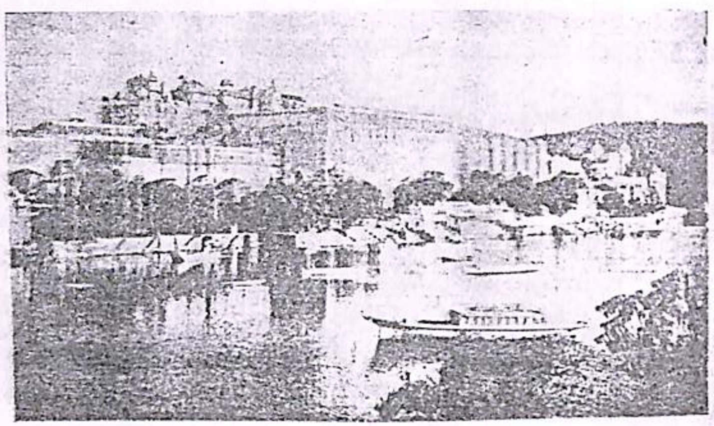
['सत्कारालय' से पिचोलिया झील का दृश्य]



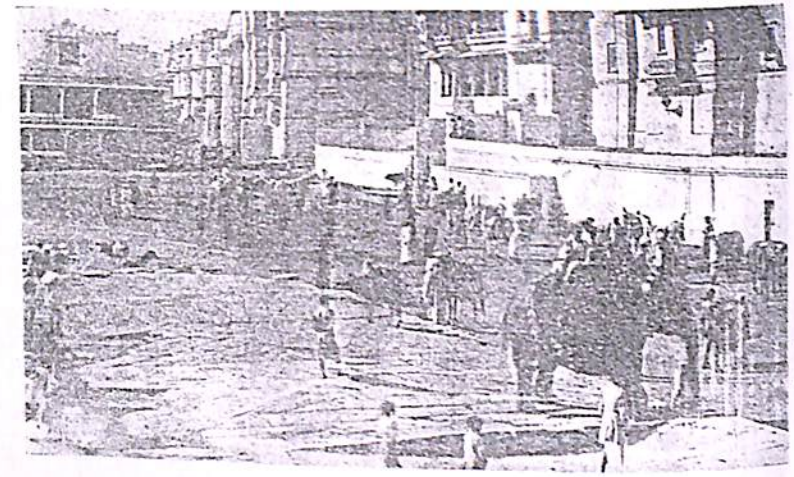
[खास ओडी, जहाँ से जंगली सूअरों के रोज़ कई मन मक्की खाने के डाली जाती है। यह यहाँ का एक अपूर्व दृश्य है]

प्राचीन पद्धति के अनुसार ये दरबार में बैठाये जाते हैं। जिनको जिस वर्ष पधारने का हुक्म होता है वे उसी वर्ष आते हैं। शाहपुरा, बेगूँ, बनेड़ा, बेदला, कानौड़, बदनोर, बीजोलिया, सादड़ी, देलवाड़ा, गोगूँदा, मेंडिर, बान्सी, कोठारियाँ, पारसोली, सलूम्बर, भैंसरोड़गढ़, कुरावड़, देवगढ़, करेड़ा, आमेट, मेजा, सरदारगढ़ आदि अौवल दर्जे के सरदार माने जाते हैं। ये सब सरदार अपनी अपनी पोशाकों में सुसज्जित वीरता-पूर्वक तलवारें धारण किये हुए बहुत ही शोभायमान प्रतीत होते थे।

तत्पश्चात् श्रीमान् महाराना साहब तामजाम में बैठकर ठीक उतने ही क़दम पर तामजाम से उतरे जहाँ से १६ उमरा की बैठक आरम्भ होती है। उनके उतरते ही सब उमरा खड़े होगये। श्रीमान् महाराना साहब के आगे आगे चोपदार दो सुन्दर शाही शमादान लिये हुए चल रहे थे। उनके पीछे पंचोली चरानेवाले चँवर डोलाते चल रहे थे। महाराना साहब के आते ही उमरा ने झुककर अभिवादन किया। महाराना साहब के गद्दी पर विराजने पर सब अपने अपने स्थान पर बैठ गये। दरबार बड़ा भव्य मालूम होता था। महाराना साहब की गद्दी के पीछे दो एक-से क़द के जवान डाढ़ीवाले एक-सी दरबारी वर्दी पहने बड़े बड़े चँवर डोला रहे थे। गद्दी के पीछे मुसद्दी,



[झील के तटवर्ती राजमहल, उदयपुर]



[पूजनार्थ लाये गये घोड़े, उदयपुर]

मुसाहब, दीवान वग़ैरह जिनकी बैठकें नियुक्त हैं, अपने अपने स्थान पर बैठे हुए थे। गद्दी की बाईं ओर कर्जाली के महाराना साहब के स्वयं राज-परिवार-वाले सफ़ेद पोशाक धारण किये हुए दोनों पैरों में चूड़ीदार पाय-जामे पर सोना धारण किये हुए महाराज अभयसिंह जी और महाराज प्रतापसिंह जी बड़े शोभायमान मालूम होते थे।

गद्दी से सीधी ओर १६ उमरा चबूतरे के कटघरे की दीवार से लगे हुए अपने अपने स्थान पर बैठे थे। गद्दी के सामने सादड़ी, बनेड़ा वग़ैरह के राजकुमार बैठे थे। इनके पीछे चारण, बारहट, कविगण जिनको उत्तम कविताओं के कारण महारानाओं की तरफ़ से जागीरें बख़्शी हुई हैं, बैठे थे। गद्दी की बाईं ओर मुसाहब खड़े थे। लाल वर्दी पहने चोबेदार, छड़ीदार छड़ियाँ और घोड़े लिये खड़े थे। इनके आगे जागीरदार बैठे थे। बीच बीच में राजपुरोहित दरबार के इशारे पर कुछ बात कह-सुनकर आता था। सबके बैठने के पश्चात् खड्ग जी की सवारी आई। गुलाब-बाग़ में एक ताख में कनफटा नाथों में से एक नाथ नवरात्र आरम्भ होने से पहले खाना-पीना आदि त्याग कर बैठ जाता है। ८ दिन बराबर आसोज शुक्ला १ से ८ तक एक स्थान पर बिना पानी पिये रोटी खाये खड्ग हाथ में लिये जप करता रहता है। इस कठिन तपस्या का व्रत वही साधु करता है जो महन्त जी की फेरी हुई हरड़ ले लेता है। जैसे प्राचीन काल में राजा-महाराजा किसी कठिन कार्य के सम्पादन के लिए पान का बीड़ा सरदारों में घुमाया करते थे, उसी प्रकार इस आठ दिन की निराहार और निर्जल तपस्या के लिए महन्त जी हरड़ घुमाते हैं। जो चेला उस हरड़ को ले लेता है वही इस आठ दिन के निर्जल-निराहार व्रत को करता है। खड्ग जी की सवारी महलों के आगे बड़ी धूम-धाम से आई। खड्ग जी की सवारी के आगे आगे घुड़सवार पल्टन थी। उसके पीछे कई बाजे बजते थे। "रणकौंकण" का बाजा जो बाँसों पर था और जिससे उदयपुर के महारानाओं ने बड़े बड़े युद्धों में काम लिया था, विशेष आकर्षक था।

उसके बाद खड्ग जी की सवारी पालकी में आई। खड्ग जी को गोद में लेकर नाथ उठाकर दरबार के सम्मुख ले आया। उसने खड्ग दरबार को भेंट की। वह खड्ग सिलहेख़ाने का अफ़सर सिलहेख़ाने में ले गया। तत्पश्चात् घोड़े और हाथी के फेरने का काम प्रारम्भ हुआ। एक घोड़ा सामने आता गया। उसको घुमा घुमाकर दिखाते गये। इस प्रकार सब नौ घोड़े देखे गये। तत्पश्चात् हाथी एक के बाद एक लाया गया और वे भी घुमा घुमाकर दरबार को दिखाये और ले जाये



[पूजनार्थ लाये गये हाथियों का दृश्य, उदयपुर]

बाज़ी लगाकर पान के बीड़े चाबते होंगे। अब वह आत्मा नहीं है। आज कोरा शरीर और बाह्य बातें रह गई हैं।

जिस वीर-भूमि चित्रकूट में जन्म लेने के लिए देवता भी लालायित थे उस स्वतंत्रता के ओजस्वी पुजारियों और भक्ति-रस में लवलीन मीरा की भूमि की वर्तमान दशा को निहार कर न मालूम क्या क्या भाव हमारे मन में आने लगे। अब चित्तौड़ में न तो प्राचीन ज़माने के गगन-स्पर्शी महल हैं, न स्वर्ण और रत्न-जटित देवालय और मूर्तियाँ हैं।

गये। तत्पश्चात् एक के बाद एक चारणों, बारहटों ने खड़े होकर वीरतापूर्ण शब्दों में कवितायें कहीं। फिर पान के बीड़े बाँटे गये। पान के बीड़े हाथ में ले लेकर कई सरदारों ने बैठे बैठे अभिवादन किया और कइयों ने खड़े हो होकर अपने क़ायदे के अनुसार अभिवादन किया। तत्पश्चात् दरबार बरख़ास्त हो गया। ये बीड़े सीख के बीड़े थे। दरबार की सवारी त्वमजाम में बैठकर गई। सरदार जागीरदार सबके चले जाने के बाद उमरा गये। दरीखाने की चाँदनियाँ और जाजमें उसी वक़् उठ गईं। अन्दर महलों में दरबार की सवारी जाते ही पातरियों और ढोलनियों के गाने के शोर-गुल से दरबार पधारे। इन पातरियों आदि का दृश्य हमें अच्छा न लगा, हम भी अपने डेरे पर लौट आये।

रात को सोते सोते विचारने लगे कि क्या कभी आर्यों का वह प्राचीन गौरव जाग्रत होगा? महाराना प्रताप के ज़माने में ये घोड़े और हाथी युद्ध की तैयारी देखने के लिए देखे जाते रहे होंगे। सरदार और उमरा रणभूमि में मातृभूमि के हितार्थ बलिदान होने के लिए प्राण की

वैसे महल जो अब उदयपुर में हैं। वहाँ तो एक-मात्र कीर्ति-स्तम्भ सारे प्राचीन काल की स्मृति दिलाने के लिए अटल वीर-योद्धा की भाँति खड़ा चित्तौड़ के खंडहरों से वीर-रस अब भी टपकता है। जिस भूमि की रक्षा के लिए वीरों ने अपना बलिदान किया उनका स्मरण दिलाने के लिए चबूतरे और छत्रियाँ खड़ी हुई अब भी हमें कर्तव्यनिष्ठ योद्धा बनने के लिए उत्साहित कर रही हैं। आन पर मरनेवाले स्वतंत्रता के पुजारियों की स्मृतियाँ अब भी हमें आततायियों को पददलित करने के लिए ढाढ़स बँधा रही हैं। राना कुम्भ का जयस्तम्भ अब भी हमारे रक्त में वीरता का संचार करता है। जौहर-कुण्ड अब भी पद्मिनी-सी आदर्श पति-भक्ता देवियाँ बनने के लिए हमारी माता और बहनों को उत्साहित कर रहा है। क्या भारत के दिन फिर फिरेंगे? क्या सांगा, कुम्भ, प्रताप, जयमल, पत्ता जैसे भीषण बलिदान करनेवाले इन खंडहरों से पुनः पैदा होंगे? क्या भगवान् वह वीर आत्मा इस जर्जर शरीर में कभी दिखावेगा? ऐसी बातें सोचते-सोचते हम निद्रादेवी की गोद में विलीन हो गये।

गूढ़ अर्थ रखनेवाली एक सुन्दर कहानी

वह

लेखक, श्रीयुत विजय वर्मा

"और वह—?"

कहकर वह मेरी ओर देखने लगी।

मैंने कहा—जाने दो: सब कुछ इसी जीवन में पा लेने की इच्छा की पूर्ति यदि न हो तो उसके लिए इतनी बेचैनी 'संसार के सर्वश्रेष्ठ' विशेषण से युक्त प्राणी को शोभा नहीं दे सकती।

वह विचलित हो उठी: मेरी ओर उसने जिस दृष्टि से देखा उसे भूलना असंभव है, किन्तु उसमें जो कुछ था उसका विश्लेषण करना भी मेरे लिए संभव नहीं। यही कह सकता हूँ—उसमें था क्या नहीं?

मैं तो चुप रह गया।

तब वही बोली—जिसके कारण यह विशेषण उचित हो सकता है उसी पर कुठार चलाकर तो उसका गर्व करना शोभा नहीं दे सकता। 'सब कुछ' न मिले पर जो जीवन के लिए अन्य सब कुछ से भी बढ़कर है उसके लिए प्रयत्न किये बिना कोई कैसे रहे?

'कोई' का तो प्रश्न ही न था। 'मैं' [illegible] रह सकती हूँ?—यही स्पष्ट बात थी। ऐसा न होता तो कह देता, 'जैसे अन्य सब रहते हैं।' पर उसके लिए तो मैं ऐसा कह नहीं सका।

परन्तु न कहने से क्या होता है? यही उत्तर मेरे मन में है, यह उसने समझ लिया और फिर कह उठी—जैसे हम हैं वैसे ही अन्य सब हैं, अथवा जैसा हम समझते हैं, वैसे ही और सब लोग हैं, यह कैसे ठीक कहा जा सकता है? संसार में सभी प्रकार के प्राणी हैं।

इस बार मैंने शीघ्रता के साथ कहा—अर्थात् मानवरूपधारी होने से ही कुछ नहीं होता। यह तो बहुत पुरानी बात है।

उसकी भौंहें टेढ़ी होगईं। "अब नई बात—इस युग की बात—यह है कि यह रूप—यह शरीर—पा लेने से ही कर्तव्य की इतिश्री मानकर मन को बेलगाम छोड़ देना चाहिए, इन्द्रियों के संयम की बात को हँसी उड़ानी चाहिए और तरह तरह के राग-द्वेष को ज़ोरों के साथ पकड़ते जाना चाहिए?"

यह कहकर उसने व्यंग्यपूर्ण हँसी हँसी।

मेरा सब शरीर जल उठा। सहने की भी एक सीमा होती है। दर्शनशास्त्रियों की भाँति मैं भी ऐसी अनेक बातें कह सकता हूँ, किन्तु इस व्यावहारिक जगत् में अपनी इस अवस्था में ऐसी बातें सुनकर मुझे क्रोध आये बिना नहीं रहता। मुझे ये बातें या तो अबोध बच्चों की जान पड़ती हैं या भयंकर ढोंगियों की।

वह यह जानती है और जानने पर भी मुझसे ऐसा कह रही है!

जान पड़ता है फिर उसने मेरे मन की अवस्था समझ ली! परन्तु इस बार उसने उस बारे में कुछ कहना व्यर्थ समझा!

वह बोली—मैं तो नहीं जाऊँगी। आपको मैं जाने से रोक नहीं सकती। मेरा कहना तो यही है कि ऐसे स्थान के निकट खड़े होना भी पाप है।

"पाप?"

"निस्सन्देह पाप।"

× × × ×

उस दिन का प्रथम 'प्राइज़ टिकट' मेरे ही नम्बर-वाला निकला और मुझे पूरे सौ रुपये मिल गये। इन रुपयों को पाकर मैं फूला न समाया। रास्ते में मैं जब चलने लगा तब मुझे जान पड़ा मानो हवा में उड़ा जा रहा हूँ। कपड़े की एक बड़ी दूकान देखते ही उसके भीतर जाकर मैंने साड़ियाँ दिखलाने की फ़रमाइश की और एक साठ रुपये की साड़ी पसन्द की।

वह इन साड़ियों को छूती तक नहीं, इसका खयाल करना मैंने मूर्खता ही समझी। घर पहुँचकर दरवाज़े की दराज़ से झाँककर देखा लालटेन जल रही है और एक पुस्तक पढ़ी जा रही है। कान लगाकर सुनने लगा। शायद कुछ शब्द सुनाई पड़ें और यह मालूम हो जाय कि कौन पुस्तक पढ़ी जा रही है। पर कुछ भी न सुनाई पड़ा।

साँकल ज़ोर से खटखटाई।

तेज़ी से उठकर उसने भीतर की जंज़ीर खोल दी।

किवाड़ खोलकर मैं सीधा उस पुस्तक के पास पहुँचा। मुझे भय था कि कई पुस्तकें वहाँ न हों। पर केवल एक पुस्तक थी।

उसे मैंने उठाया नहीं। पूछा—क्या पढ़ रही थीं?

वह बोली—रहस्य।

"क्या? 'रहस्य' क्या! जीवन-रहस्य, चरित-रहस्य, पेरिस-रहस्य—"

बात काटकर उसने गंभीरता से कहा—गीता-रहस्य।

"लोकमान्य तिलक का गीता-रहस्य?"

"हाँ"।

"क्यों? क्या तुम यह निर्णय करना चाहती हो कि यदि मैं एक ओर होऊँ और तुम दूसरी ओर तो तुम्हारा कर्तव्य क्या है?"

वह चुप रही।

मैंने कहा—मौन सम्मति का लक्षण है।

उसने सिर हिलाकर जतलाया 'नहीं', किन्तु उसकी आँखों के ऊपर उठते ही मैंने देखा वे वेदना से चिल्ला रही हैं—इसमें सन्देह ही क्या है?

"यह वेदना किसलिए?" मैं कहने लगा—"मैं तो पूर्व-जन्म, पर-जन्म, कर्म-फल आदि कुछ भी तुम्हारी तरह नहीं मानता; परन्तु तुम जैसा मानती हो उसके अनुसार तुम्हें इस तरह दुखी क्यों होना चाहिए? तुम्हारे सिद्धान्तों के अनुसार तो मेरा-तुम्हारा सम्बन्ध इसी जन्म का नहीं है। तुम तो ऋण चुकाने के लिए ही आई हो। फिर यह दुःख क्यों?"

"इसी लिए तो। हम तो सभी के प्रति ऋणी हैं, पर इस ऋण को तो राग-द्वेष को हटाकर, सच्ची करुणा, सच्ची वेदना के उत्पन्न होने से ही हम चुकाने की कुछ शक्ति पा सकते हैं।"

"तो अब तुम मुझ पर दया करोगी—मेरे प्रति करुणा और वेदना की तरंगें अपने हृदय-सागर में उत्पन्न करोगी!—नहीं जानता तुम्हारी इन पागलों की-सी बातों पर हँसना चाहिए या रोना। क्या तुम दुनिया की सीधी-सादी एक साधारण स्त्री नहीं बन सकतीं? तुम्हारी पुस्तक को देखने के लिए मेरे मन में इतनी अधिक उत्सुकता हुई, किन्तु मैं हाथ में एक बंडल लिये हूँ, इसे देखने या इसके बारे में पूछने की तुम्हारे मन में तनिक भी इच्छा उत्पन्न नहीं हुई। यह विरक्ति तो अपमान—घोर अपमान—करने-वाली है।"

मैंने समझा था मेरी यह बात सुन वह लज्जा से सिर नीचा कर लेगी, परन्तु उसने तो बच्चे की-सी सरलता और उसी के-से आश्चर्य के साथ मेरी ओर देखा! न जाने क्यों मेरा ही सिर नीचे झुक गया?

मैं अपने पथ पर—जिसे वह पाप-पथ कहती थी उसी पर—चलता गया।

× × × ×

"मैं फिर अपना ऋण चुकाने आऊँगी। आशा

है...।" वह आगे न कह सकी। यह देखना कठिन न था कि वह थोड़ी ही देर की मेहमान है।

मेरे नेत्रों में आँसू आ गये। मैंने कहा—तुमने मुझे ऐसा पशु समझा जिसका स्वभाव किसी भी शिक्षा-दीक्षा से बदला नहीं जा सकता। तुमने भूल की है।

"बस, यही मैं सुनना चाहती थी। इसी लिए मैंने आज यह सारी—जला—दी—है।" वह फिर आगे कुछ न कह सकी।

मैंने चिल्लाकर कहा—आना, ज़रूर। फिर आना।

उसकी आँखें बन्द हो गई थीं, किन्तु उसने उन्हें खोल दिया।

डाक्टर आ गया। डाक्टर को देखकर उसके कोमल मधुर होंठों पर विद्रूप परिहास की रेखा खिंच गई।

वह अन्तिम और अमिट रेखा थी!

अनुरोध

लेखिका, श्रीमती कुमारी शकुन्तला देवी 'अकर्मण्य' श्रीवास्तव

कोमल कुसुमित कलियों का शुचि स्वागत डाल सजाये।
अन्तरतम के कोने में आशा का दीप जलाये॥
कितनी कितनी श्रद्धाओं से नव नैवेद्य लुटाये।
अपलक लोचन से लखती पथ कब पलक बिछाये॥

राह देखते नेत्र थके जीवन भी थकता जाता।
निशि निशीथ अवसान निकट बस मिलने तक है नाता॥
इस उजड़ी कुटिया को एक दिन आ आलोकित करना।
मुझ आहत के शून्य गगन में पुलक प्रेम रस भरना॥

अरे! दीप बुझने पर है सूखी फूलों की माला।
बाधक होता क्या मेरा यह अवगुण जीवन काला॥
दीन तुम्हें प्यारे लगते रखते दीन तुम्हें दृग-पल।
भर दो! निज कर से प्रभु मेरे आ मेरा अंचल॥



स्वर्गीय लाला देवराज जी।

लाला देवराज जी

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०

लाला देवराज ने पंजाब में स्त्री-शिक्षा और हिन्दी का प्रचार उस समय आरम्भ किया था जब वहाँ के लोग स्त्री-शिक्षा के विरोधी थे और हिन्दी का नाम भी न जानते थे। खेद है कि गत वैशाख में ७५ वर्ष की आयु में उनका स्वर्गवास हो गया पर जालन्धर के कन्या-महाविद्यालय के रूप में उनका सबसे बड़ा स्मारक हमारे सामने है। श्रीयुत सन्तराम जी उन्हें व्यक्तिगत रूप से भी जानते थे और इस लेख में आपने उनका संक्षिप्त पर सुन्दर परिचय दिया है।

जगद्विख्यात इतिहासशास्त्री श्रीयुत एच० जी० वेल्स के मतानुसार किसी व्यक्ति की महत्ता के परखने की कसौटी यह है—"क्या वह विकसित होने के लिए छोड़ गया है? क्या उसके प्रयत्न से लोग नवीन शैली पर इतने जोर के साथ सोचने लगे हैं कि उसके मरने के बाद भी उनकी वह विचार-सरणी बंद नहीं हुई?" इस कसौटी के अनुसार भी श्रीमान् देवराज जी एक महापुरुष थे। उनकी महत्ता को समझने के लिए आज से पचास वर्ष पीछे जाना पड़ेगा। उस समय भारत में, विशेषतः पंजाब में, स्त्री-शिक्षा का नाम-निशान न था। उस समय जिन महावीरों ने, लोक-मत के घोर विरोध के रहते भी, स्त्री-शिक्षा का पंजाब में प्रचार किया उनमें श्रीमान् देवराज जी सर्वप्रधान थे। उनके द्वारा संस्थापित जालन्धर का कन्या-महाविद्यालय ही शायद पंजाब में स्त्री-शिक्षा की सबसे पहली संस्था है। इसमें केवल पंजाब से ही नहीं, वरन सुदूर काठियावाड़, गुजरात, कच्छ, संयुक्त प्रान्त, मध्यप्रदेश और बिहार से भी कन्यायें शिक्षा प्राप्त करने आती थीं। विद्यालय का वार्षिकोत्सव स्त्रियों और स्त्री-शिक्षा के प्रेमियों के लिए एक पुण्य-पर्व का काम देता था। जिस काल में पंजाब का नारी-समाज पर्दे की कड़ी बेड़ियों में जकड़ा पड़ा था, उस काल में यह विद्यालय स्त्रियों के लिए राक्षसों से पीड़ित प्रदेश में वाल्मीकि के आश्रम के समान था। वहाँ आकर वे स्वतंत्रता और निर्भयता के साथ बिना पर्दे के घूमती-फिरती थीं। इन पंक्तियों के लेखक ने सनातन-धर्म के नाम को बदनाम करनेवाले कुछ अज्ञानी लोगों को बहुत ही घृणित रीति से स्त्री-शिक्षा और जालन्धर के कन्या-विद्यालय की खिल्ली उड़ाते देखा है। कुछ लड़के लड़कियों का वेष बनाकर एक छकड़े पर बैठ जाते थे और अतीव अश्लील गीत गाते हुए गेंद-बल्ला खेलने का स्वाँग भरते थे। सनातन-धर्म्म के उत्सवों में इसी मंडली के साथ सबसे अधिक भीड़ हुआ करती थी। परन्तु आज हम क्या देखते हैं? वही सनातन-धर्मी ख़ुद कन्या-पाठशालायें खोल रहे हैं। आज उनके उत्सवों में स्त्री-शिक्षा के विरुद्ध वैसी बकवाद करने का किसी को साहस नहीं होता। दूसरे शब्दों में श्रीमान् देवराज जी ने आज से पचास वर्ष पूर्व जनता को जिस सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा की थी, जिस नवीन विचार-सरणी पर उसको डाला था, उस पर वह अब पूरे प्रेम और उत्साह के साथ अग्रसर हो रही है। इसी लिए मैं कहता हूँ कि महत्ता की कसौटी पर वे पूरे उतरते हैं। खेद है कि स्त्री-जाति के इस परम हितकारी और पंजाब में स्त्री-शिक्षा के इस निर्भीक मार्ग-दर्शक का, ७२ वर्ष की आयु में, गत ४ वैशाख संवत् १९९२ को अचानक देहान्त हो गया।

लाला देवराज जी का जन्म जालन्धर के एक सम्पन्न और प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। उनके पिता राय सालिगराम जी एक बड़े रईस और सरकारी इलाक़े में तहसीलदार थे। लाला जी को अपनी माता श्रीमती काहनदेवी पर बड़ी भक्ति और स्नेह था। अपने चार भाइयों में वे दूसरे थे। सबसे बड़े भाई का देहान्त बहुत दिन पहले हो चुका था। तीसरे भाई रायज़ादा भक्तराम जालन्धर के प्रसिद्ध बैरिस्टर थे। चौथे भाई श्रीयुत हंसराज जी बैरिस्टर कांग्रेस के प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता हैं। श्रीमान् देवराज की एक भगिनी भी थीं। उनका विवाह स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी (तब महाशय मुंशीराम जी) के साथ हुआ था।

मुझे स्वर्गीय लाला देवराज जी के साथ कोई दो बरस तक रहने का सुअवसर मिला था। इस थोड़े-से समय में मैंने उनमें अनेक देवदुर्लभ गुण देखे। सबसे पहला सद्गुण तो उनका बहुत उच्च चरित्र था। विद्यालय की लड़कियाँ उन्हें 'चाचा जी' कहा करती थीं और वे सचमुच उनके चाचा ही थे। जिस प्रकार किसी स्नेहशील पिता के घर में प्रवेश करते ही सभी बच्चे हर्ष से प्रफुल्लित हो उठते हैं और उससे आकर लिपट जाते हैं, ठीक उसी प्रकार श्रीमान् देवराज जी के महाविद्यालय के आँगन में पाँव रखते ही विद्यालय की सभी लड़कियाँ उनसे आकर लिपट जाती थीं। कई छोटी लड़कियाँ तो उनकी पीठ पर चढ़ जाती थीं और जेबों में हाथ डाल कर फल-फूल निकाल लेती थीं। उस समय वे भी उन बच्चियों के साथ बच्चे ही बन जाते थे। वे भी उनके साथ उसी प्रकार खेलते थे, हो हो करके चिल्लाते थे, भागते थे, लुकते थे। लड़कियाँ उन्हें खोजती थीं, वे लड़कियों को खोजते थे। मुझे यह दृश्य देखने का सौभाग्य अनेक बार प्राप्त हुआ था। सचमुच ऐसा जान पड़ता था, मानो पिता अपनी पुत्रियों के साथ खेल रहा है। माता-पिता के स्नेह से वंचित 'आश्रम'-निवासिनी कन्यायें लाला जी के साथ इस प्रकार खेलकर अपने माता-पिता के विछोह को भूल जाती थीं। आश्रम का कठोर और स्नेहशून्य जीवन लाला जी के इस पिता-सदृश व्यवहार से उन्हें सरस जान पड़ता था।

मैंने [illegible] कम कन्या-संस्थायें ऐसी देखी या सुनी हैं जिनके संचालकों पर किसी-न-किसी प्रकार का आचार-दोष जनता ने न लगाया हो। यही कारण

है कि आज से कुछ वर्ष पूर्व तक किसी भी कन्या-विद्यालय के साथ छात्राओं के रहने के लिए आश्रम या बोर्डिङ्ग हाउस न होता था। परन्तु श्रीमान् देवराज-द्वारा संस्थापित जालन्धर के कन्या-महा-विद्यालय के साथ लगभग आरम्भ से ही छात्रावास का होना इस बात का प्रमाण है कि जनता को लाला देवराज पर कितना भारी विश्वास था। उनका कट्टर-से-कट्टर विरोधी भी कभी उनके चरित्र पर दोष नहीं लगा सका।

एक समय की बात है, मैं लाला जी के साथ विद्यालय को जा रहा था। विद्यालय सड़क से बाहर कोई डेढ़ मील के अन्तर पर है। रास्ते में [illegible] मुसल-मान किसान युवती सिर पर रोटी और हाथ में छाछ का लोटा लिये जाती मिली। लाला जी ने झट उसकी पीठ पर हाथ रख दिया और बड़े स्नेहपूर्ण शब्दों में पूछा—बेटी, कहाँ जा रही हो? युवती ने भी ठीक उसी भाव से जो पुत्री का पिता के प्रति होता है, उत्तर दिया—चाचा जी, खेत में हरवाहे को रोटी देने जा रही हूँ। उस स्वर्गीय दृश्य को देखकर मुझे बड़ा ही आनन्द प्राप्त हुआ। मैंने मन में सोचा, कितनी पवित्र आत्मा है, कितना शुद्ध हृदय है! कोई दूसरा मनुष्य इस प्रकार निःसंकोच होकर दूसरे की लड़की की पीठ पर हाथ रखने का साहस नहीं कर सकता।

लड़कियाँ भी सचमुच उनके साथ अपना पिता-पुत्री का सम्बन्ध मानती थीं। लाला जी ने मुझे सुना सुनाया था कि एक समय वे रेल में यात्रा कर रहे थे। जिस डिब्बे में वे सवार थे उसी में एक और युवक भी आ बैठा। उसने आकर बड़े प्रेम और सम्मान के साथ उन्हें नमस्ते किया। थोड़ी देर के बाद उन्होंने उससे पूछा कि मैंने आपको पहचाना नहीं, आप मुझे कैसे जानते हैं? उस लड़के ने झट से कहा—आप मुझे नहीं जानते! मैं आपका जामाता हूँ। आपकी अमुक लड़की मेरे साथ ब्याही हुई है। यह सुनकर लाला जी दंग रह गये। फिर उन्हें याद हो आया कि हाँ, इस नाम की अमुक स्थान की एक लड़की विद्यालय में पढ़ा करती थी। तब उन्होंने जेब से एक रुपया निकाल कर, पुराने शिष्टाचार के अनुसार, उस युवक को भेंट किया और कहा कि आप सचमुच मेरे जामाता हैं, ससुर का यह प्रेमोपहार स्वीकार कीजिए और मेरी बेटी से खुशी-खुशी कह दीजिएगा।

आज कितने कन्या-विद्यालय या गर्ल्स स्कूल हैं जहाँ इस प्रकार का पिता-पुत्री का सम्बन्ध देख पड़ता है या सम्भव भी है? कहावत है कि मर्द की माया और वृक्ष की छाया उसके साथ ही जाती है। अतः लाला जी के निधन से विद्यालय को जो इस अंश में हानि हुई है उसकी पूर्ति अब किसी भी प्रकार सम्भव नहीं। लाला जी की मानस-पुत्रियों का सारे देश में एक जाल-सा फैला हुआ था। कोई भी नगर ऐसा न होगा, जहाँ जालंधर-विद्यालय की पढ़ी हुई दो-एक लड़कियाँ न हों।

लाला जी में वाणी का संयम भी बहुत था। मैंने कभी उनको किसी की निन्दा करते नहीं सुना। बड़े आदमियों में बहुधा निन्दा-चुग़ली सुनने की बड़ी आदत होती है। वे कान के भी बड़े कच्चे होते हैं। परन्तु लाला जी की बात इसके बिलकुल विपरीत थी। जब कोई मनुष्य उनके सामने किसी की निन्दा करने लगता तब वे फ़ौरन उसे रोक देते और कहते कि यदि उसमें एक-आध कमी थी तो सद्गुण भी तो बहुतेरे थे। सर्वतो भावेन वह बहुत भला मनुष्य था। हमें उसकी निन्दा नहीं करनी चाहिए।

लाला जी रसिक और आनन्दी भी खूब थे। निर्दोष हँसी-मखौल में अच्छा रस लेते थे। एक समय की बात है, जालन्धर में एक ब्रह्मचारी आये। वे कोई २०-२२ वर्ष के युवक थे। घर की सारी संपत्ति किसी आर्य-सामाजिक संस्था को दान कर दी थी और अब आप स्वामी दयानन्द की शैली पर संस्कृत पढ़ने के उद्देश से जगह-जगह घूमते-फिरते थे। उनके सिर पर गाय के खुर के बराबर चौड़ी

और बहुत लंबी चोटी थी। सिर नंगा रखते थे। पाँवों में खड़ाऊँ और तन पर धोती मात्र रहती थी। वहाँ एक आर्यसमाजी प्रोफ़ेसर के यहाँ ठहरे थे। जब चलते थे तब खड़ाऊँ की खटखट और चोटी का फहराना अजब बहार दिखाता था। कुछ दिनों के बाद जब वे जालन्धर से जाने लगे तब मैंने उनको एक एड्रस देने का आयोजन किया। कुछ सज्जन निमंत्रित किये गये। उनमें अधिकांश लोग तो उदार विचार के रसिक मनुष्य थे, पर दो-एक घोर आर्यसमाजी भी थे। ब्रह्मचारी जी के जल-पान के लिए एक पैसे के पकौड़े मंगाये गये। मेरे पास कुछ शक्कर पड़ी थी, उसका शर्बत बनाकर निमंत्रित सज्जनों को पिलाया गया। जब एड्रस—अभिनन्दन-पत्र—देने का समय हुआ तब पहले तो ब्रह्मचारी जी ने ही आने से इनकार कर दिया। बड़ी मुश्किल से वे पकड़ कर लाये गये। अब उस विचित्र सभा का सभापति कौन हो, यह समस्या आ खड़ी हुई। उन दिनों मित्रवर भदन्त राहुल सांकृत्यायन (तब श्री केदारनाथ जी) मेरे पास ठहरे हुए थे। वे उठकर खड़े हो गये और बोले कि मैं समझता हूँ, इस सभा के प्रधान पद के लिए मुझसे योग्य दूसरा मनुष्य नहीं। इसलिए मैं इसका प्रधान बनता हूँ। इतना कहते ही वे झपटकर कुरसी पर जा बैठे। तब मैंने अभिनन्दन-पत्र पढ़ना शुरू किया—"श्री ब्रह्मचारी जी महाराज, जब आपकी चोटी का फहराना और खड़ाऊँ का खड़खड़ाना याद आयगा, तब हम रो-रो मरेंगे—मैं इतना ही कह पाया था कि ब्रह्मचारी जी वहाँ से भागने लगे। उन्हें पकड़कर बैठाये रखने का यत्न किया गया कि आप पूरा एड्रस तो सुनकर जायँ, परन्तु वे रोनी सूरत बनाकर कमरे से बाहर भाग गये। प्रधान जी समेत सारी सभा उनके पीछे भागी और उनको सड़क में पकड़ लिया कि हमने इतनी तैयारी की है, अब आपको एड्रस लेना ही पड़ेगा। ख़ैर, ज्यों-त्यों करके वे वहाँ से भाग गये और फिर उनको जालन्धर में किसी ने नहीं देखा। परन्तु सभा में बैठे हुए एक घोर आर्य-समाजी, मास्टर सत्यपाल जी, मुझसे बहुत बिगड़े। मैंने उनके बिगड़ने का कारण पूछा, तब बोले—तुमने एक ब्रह्मचारी को तेल के पकौड़े क्यों खिलाये हैं? मैंने पूछा—इसमें क्या हर्ज है? वे बोले—शास्त्र में ब्रह्मचारी को तेल के पकौड़े खिलाने का कहाँ विधान है? मैंने कहा—भाई, मैंने तो शास्त्र पढ़े नहीं। मुझे पता नहीं था, क्षमा कीजिए।

लाला देवराज जी ने जब ब्रह्मचारी को अभि-नन्दन-पत्र देने की बात सुनी तब वे बहुत हँसे और बोले—तुमने मुझे क्यों न बुलाया? उस सभा में तो मैं भी सम्मिलित होना चाहता था। मैंने कहा—जी आपको किसने बता दिया? आपको सभा में बुलाना तो दूर, मैं तो डरता था कि आप सुनेंगे तो नाराज़ होंगे। वे बोले—ऐसी निर्दोष हँसी में क्या डर है?

लाला जी बड़े विद्या-व्यसनी थे। उनको उत्त-मोत्तम पुस्तकें इकट्ठी करने का बड़ा शौक़ था। वे अपने पीछे अपना निज का एक बहुत बड़ा पुस्तकालय छोड़ गये हैं। भगवान् बुद्ध का जीवन-चरित और उनके उपदेश वे विशेष चाव से पढ़ा करते थे।

उन्होंने पंजाब में हिन्दी-प्रचार के लिए भी बहुत काम किया था। छोटे बच्चों की प्रकृति को वे खूब समझते थे। उनके लिए उन्होंने ४० के लगभग छोटी-छोटी सुन्दर पुस्तकें लिखी हैं। कन्या-पाठ-शालाओं में आज भी जितना लाला जी की पुस्तकों का प्रचार है उतना किसी दूसरे की पुस्तकों का नहीं। उन्होंने 'पाञ्चाल पण्डिता' नाम की एक मासिक पत्रिका भी कई वर्ष तक चलाई थी। उस समय पंजाब में हिन्दी का बहुत ही कम प्रचार था। फिर सन् १९१९ में उन्होंने महाविद्यालय की ओर से 'भारती' नाम की एक और मासिक पत्रिका निकाली थी।

लाला देवराज जी [illegible]समाज के पुराने सेवक और पक्के समाज-सुध[illegible] थे। उनके परिवार में

दो लड़कियों और एक लड़के ने जात-पाँत तोड़कर विवाह किया है। पर्दा-प्रथा पर तो वे बहुत दिन पहले से ही कुठाराघात कर चुके थे। वे आनरेरी मजिस्ट्रेट थे। परन्तु सन् १९२० में, मार्शल ला के कारण असहयोग करके, उन्होंने मजिस्ट्रेटी छोड़ दी थी।

वे बड़े मिलनसार, निरभिमान और सहृदय थे। उनसे मिलकर सदा आनन्द प्राप्त होता था। संगीत, वाद्य, चित्रकारी आदि ललित कलाओं का भी उनको बड़ा शौक़ था। महाराष्ट्र आदि से बहुत अच्छे-अच्छे संगीताचार्य मँगाकर वे विद्यालय में लड़कियों को शिक्षा दिलाया करते थे। मेरा अनुमान है कि अब भी लड़कियों के लिए संगीत, वाद्य और चित्रकारी का जैसा अच्छा प्रबन्ध जालन्धर-महाविद्यालय में है, उतना किसी दूसरे में नहीं। महाविद्यालय की हिन्दी-शिक्षा की तो सारे पंजाब में धाक है। मेरा अपना भी अनुभव है कि कन्या-महाविद्यालय की लड़कियाँ पंजाब में हिन्दी लिखने में सबसे अच्छी हैं।

लाला जी अपने पीछे दो पुत्र, श्रीयुत गन्धर्वराज तथा श्रीयुत ऋषिदेव, और विधवा स्त्री श्रीमती टहलदेवी जी को छोड़ गये हैं। उनकी पुत्री श्रीमती गार्गीदेवी और पुत्र श्री बोधराज का देहान्त पहले हो चुका था। परन्तु लाला देवराज का सबसे बड़ा स्मारक उनका स्थापित किया हुआ कन्या-महाविद्यालय है। बड़े सन्तोष का विषय है कि लाला जी के लोकान्तरित होने पर कुमारी लज्जावती, श्री कर्मचन्द्र एडवोकेट और श्री खैरायतीराम जी एडवोकेट आदि अनेक देवियों और सज्जनों ने लाला जी के लगाये हुए उपर्युक्त पौधे की रक्षा और सेवा का भार अपने ऊपर ले लिया है और तन, मन, धन से उसमें लगे हुए हैं।

अपरिचित से

लेखक, श्रीयुत पद्मकान्त मालवीय

मैंने भी देखी हैं अच्छी घड़ियाँ तुम्हें बताऊँ क्या ?
सुन न सकोगे, लम्बी गाथा है, यह तुम्हें सुनाऊँ क्या ?
हँसती है तो हँस ले दुनिया, ऐसा समय हमारा है।
शिकवा उसका क्या जब अपनी क़िस्मत करे किनारा है ॥
भिक्षापात्र भाग्य का लेकर बैठा अलख जगाता हूँ।
अपने आप कभी हँसता हूँ और कभी मैं गाता हूँ ॥
लाल सखी का कभी इधर भी कोई तो आयेगा ही।
सोया है जो आज किसी दिन आख़िर वह जागेगा ही ॥
यद्यपि भाग्य पास है ऐसा जिससे जग भय से भागे।
हाथ न फैला है फैलेगा यह न किसी के भी आगे ॥

नारी-अपहरण में हिन्दू-समाज की ज़िम्मेदारी

लेखक, पण्डित मोहनलाल नेहरू

'कमज़ोर मार खाने की निशानी' एक पुरानी मसल है, और आज तक वह ठीक साबित होती जा रही है। स्त्री-जाति कमज़ोर है। उसे शायद परमेश्वर ने ही कमज़ोर बनाया है, कम से कम पुरुष ने तो कमज़ोर बनाया ही है। आदमी जब जंगली हालत में था तब से आज तक जब कि वह अपने को सभ्य समझता है, स्त्री पर नाना प्रकार के अत्याचार करता आया है। उनमें से एक उसे अपहरण करने का भी है। कमज़ोर होना तो बड़ा पाप है और यह उसी पाप का प्रायश्चित्त है। मेरा मतलब यह नहीं है कि सभी पुरुष अत्याचार करते हैं, मगर बहुत कुछ तो करते ही हैं। कुछ ऐसी स्त्रियाँ भी हैं जो पुरुषों पर अत्याचार बिलकुल उसी तरह करती हैं, जैसे पुरुष कुछ स्त्रियों पर करते हैं। मगर यहाँ उनसे कुछ वास्ता नहीं, अधिकतर जो होता है उसी के बारे में लिखा गया है।

जब पुरुष के पास अधिकार होता है तब वह उस अधिकार-द्वारा क्या नहीं करता ? भीष्म पितामह अपने से कमज़ोर काशिराज पर चढ़ दौड़े और उसकी लड़कियों का अपहरण किया। भगवान् कृष्ण ने ख़ुद ही ऐसा रास्ता दिखाया। दूसरे देशों में भी वैसा ही होता रहा है और हो रहा है। इसका भी काफ़ी सुबूत है। वे लोग क़ानून-क़ायदों-द्वारा रोक-थाम अब भी करते रहते हैं। फ़ौज-द्वारा लड़कर स्त्री का अपहरण करना उतना ही बुरा है, जितना चुरा ले जाना। हमारे देश में आज-कल स्त्रियाँ चोरी जाती हैं, इसमें शक नहीं और उनमें अधिकतर हिन्दू-जाति की ही होती हैं, इसमें भी सन्देह नहीं। इस तरह चोरी जाने में और सीना-ज़ोरी से ले जाये जाने में ज़रा-सा भी भेद नहीं है।

> हिन्दुओं की ही स्त्रियों का अपहरण क्यों होता है ? इसलिए कि हिन्दू-समाज में अपहृत नारी वापस नहीं ली जा सकती। जब तक समाज की यह संकीर्णता दूर नहीं की जायगी तब तक हिन्दू स्त्रियों का अपहरण रुक नहीं सकता। यह लेख पढ़िए।

बहुधा लेखक इस विषय पर लिख चुके हैं और अभी हाल में ही श्री राधारमण जी शर्मा के लेख में जो सितम्बर के 'चाँद' में छपा है बहुत विस्तार से हिन्दू-स्त्रियों के चोरी जाने के कारणों का विवरण दिया गया है और इसमें सन्देह नहीं कि वह बिलकुल ठीक है। किन्तु ऐसे लेखों के पढ़नेवालों को यह भ्रम हो सकता है कि वे हिन्दू-स्त्रियों के अपहरण का भार केवल मुसलमानों पर ही रखते हैं। सम्भव है कि उन गुंडों में मुसलमानों की काफ़ी संख्या हो, किन्तु हिन्दू भी कम नहीं हैं। मुक़द्दमों में ऐसा साबित हो चुका है। उदाहरण के लिए इलाहाबाद हाईकोर्ट के पिछले साल भर के मुक़द्दमों को उठाकर देख लीजिए। उनमें अधिक संख्या हिन्दू स्त्री-चोरों की है और उन चोरों में स्त्रियाँ तक मौजूद हैं। बड़े बड़े उच्च जाति के ब्राह्मण तक इस बात के लिए सज़ा

पा चुके हैं। वास्तव में ऐसा मालूम होता है कि इन गुंडों की मंडलियाँ हैं, जिनमें हिन्दू, मुसलमान, पुरुष, स्त्री, सभी सम्मिलित हैं। अगर मैं यह कहूँ कि हिन्दू-समाज स्वयं ही अपनी स्त्रियों का अपहरण कराता है तो शायद अनुचित न होगा। शर्मा जी ने स्वयं ही ऐसा एक उदाहरण अपने लेख में दिया है, जिससे मेरी राय का समर्थन होता है। मगर मैं खाली उसी पर दार-मदार नहीं करता। अगर सेवा-समिति से कोई दरियाफ़्त करे तो वह सैकड़ों उदाहरण इसके सुबूत में दे सकती है। यहाँ मैं केवल दो उदाहरण दूँगा जो मुझे सेवा-समिति के सेक्रेटरी श्री भारतीय जी ने बताये हैं।

एक १७-१८ वर्ष की लड़की जो नवविवाहिता थी, किसी कारण से गर्भवती हो गई। पति ने उस गर्भ का अपने द्वारा होना स्वीकार न कर उसे घर से निकाल दिया। बिरादरी को तो मौक़ा मिलने की देर थी। हमारा हिन्दू-समाज किसी सुधार में यक़ीन नहीं करता। बस, वह नवयौवना बहिष्कार करने योग्य हो गई, चाहे जो भी उसका परिणाम हो। उसके पिता से कहा गया कि यदि वह उसे आश्रय देगा तो वह भी समाज से निकाल दिया जायगा। वह इस धमकी से इतना डरा कि प्रयागराज लाकर उसे त्याग दिया। सेवा-समितिवालों ने उसे बहुत समझाया, किन्तु वह कब माननेवाला था। धारों रोता था, परन्तु लड़की को तो त्यागना ही था सो त्याग गया। सेवा-समिति ने उसे आश्रय दिया, मगर न मालूम वैसी कितनी लड़कियाँ निराश्रिता रह जाती होंगी। समाज की हालत तो देखिए! जो कोई उस लड़की को आश्रय दे वह भी बहिष्कार के योग्य। और यह है हमारा हिन्दू-समाज जो रात-दिन अहिंसा की दोहाई देता रहता है। किसी कीड़े को जान से मारो तो वह हिंसा है, मगर अपने बाल-बच्चों को भूखा मारने पर मजबूर किये जाओ। यह कैसी अहिंसा है? वाह!

दूसरा उदाहरण उससे भी ज़्यादा आश्चर्यजनक है! वह भी सुनिए। एक हिन्दू उच्च कोटि के परिवार में दो भाई थे। बड़े विवाहित थे और दोनों भाइयों में काफ़ी मेल व प्रेम था। अचानक बड़े भाई का देहान्त हो गया और घर में उनकी विधवा और छोटा भाई रह गये। भावज को वह काफ़ी आदर-भाव से रखता था, जो उसके लिए उचित भी था। मगर समाज को कहाँ चैन? लोगों में काना-फूसी होने लगी। वह भिन्न भिन्न वर्ग के दो व्यक्तियों को एक घर में रहते देख उनका सम्बन्ध पवित्र समझ ही नहीं सकता था। काना फूसी इस दर्जे तक बढ़ी कि भाई का विवाह होना असम्भव हो गया और उसे भावज के त्यागने पर मजबूर होना पड़ा। पर किस मुँह से वह सब भावज से कहता? उसे तीर्थ कराने घर से ले चला और नैनी के स्टेशन पर जो इलाहाबाद से ४ या ५ मील पर है, उसे छोड़कर ग़ायब हो गया। वह युवती इतनी बेवक़ूफ़ न थी जितनी उसे समाज ने समझा था और वास्तव में बहुधा हिन्दू-स्त्रियाँ होती भी हैं। वह इलाहाबाद शायद आई-गई हो या कुछ अनुभव उसे प्रयाग-सेवा-समिति का था। उसने इलाहाबाद-स्टेशन पर उतरकर सेवा-समिति वालों को जो वहाँ तैनात रहते हैं, बुलाकर सारा कच्चा चिट्ठा कह सुनाया। वे बेचारे उसे उसके घर ले गये और कुछ रुपया-पैसा उसे दिलवाकर उसके रहने-सहने का उचित प्रबन्ध कर आये।

और एक ताज़ा उदाहरण लीजिए। जबलपुर के ज़िले में बेंडा नाम का एक ग्राम है। जुलाई-महीने की बात है, वहाँ कुछ गोरे सैनिकों ने धावा बोल दिया। एक आदमी जान से मारा गया और कितनी ही स्त्रियाँ दिन-दोपहर बेइज़्ज़त की गईं। गाँववाले कुछ छिपकर, कुछ घायल होकर खुले मैदान में अपनी स्त्रियों तथा मा-बहनों पर बलात्कार होता देखते रहे। बाद को वे सब स्त्रियाँ जाति से अलग कर दी गईं। ऐसा उन्होंने जज साहब के

सामने बयान किया है। यह दोहरा अत्याचार हुआ! यही तो हमारा हिन्दू-समाज है!!

समाज की ऐसी दशा में चरित्र-सम्बन्धी शिक्षा क्या करेगी? कितनी ही सच्चरित्र, कितनी ही शिक्षित कोई युवती क्यों न हो, समाज तो फ़र्ज़ी बातों पर उसका बहिष्कार करने पर कटिबद्ध है, चाहे वह गुंडों के हवाले ही हो जाय। चरित्र की रक्षा की हिम्मत तो ज़रूरी चीज़ है। मगर मैं पूछता हूँ कि वह हिम्मत ऐसे मामलों में जो श्री राधारमण जी ने स्वयं लिखे हैं या बेंडा में हुए, क्या कर सकती है।

गुंडे चाहे हिन्दू हों, चाहे मुसलमान हों, अधिकतर हिन्दू-लड़कियों पर ही अपना हाथ साफ़ करते हैं। क्यों? उन्हें हिन्दू-समाज ही सहायता देता है। मुसलमान-समाज उन्हें सहायता नहीं देता, वरन रोक-थाम करता है। इसी से एक लड़की के अपहरण में चारों तरफ़ से हाय-पुकार होने लगती है। जब वह समाज अपहृत लड़की को बचा लेता है तब उसको दोषी या कुलटा ठहराकर समाज से निकाल बाहर नहीं करता। वह गुंडों को दण्ड दिलाकर उसे आदरपूर्वक घर में रखता है और आगे उसका अपहरण होने से बचाता है। हिन्दू लड़की का पिता पहले तो स्वयं ही उसका चोरी जाना छिपाता है, क्योंकि उसे डर रहता है कि समाज उस लड़की का बहिष्कार करावेगा ही, और अगर वह लड़की मिल गई तो क्या लाभ। यहाँ तो घर से एक दफ़े जाना बहिष्कार के वास्ते काफ़ी है। वह मिली तो उसके घरवालों की और उसकी दोनों की तबाही, न मिली तो कुछ हालतों में उसकी तबाही बच जाती है। इस ख़याल से शायद समझदार लड़कियाँ ख़ुद ही छिप रहती हों। कहते हैं, पञ्जाब में अक्सर ये भगाई हुई लड़कियाँ ब्याही जाती हैं। सच-झूठ की ख़बर नहीं। पञ्जाब में लड़कियाँ कम हैं, बङ्गाल में और संयुक्त-प्रांत में बहुत हैं। क्या अच्छा होता

यदि लड़कियों के माता-पिता स्वयं उन लड़कियों को पञ्जाब में ब्याह देते! लड़की भगानेवालों का पेशा ही ख़त्म हो जाता।

एक मित्र ने मुझे एक ऐसा मामला बताया है, जहाँ एक मित्र की स्त्री का दूसरे मित्र ने उसकी अनुपस्थिति में अपहरण कर लिया। उन दोनों में न कोई मुसलमान है, न गुंडा। मुझे एक दूसरा ऐसा मामला मालूम है, जहाँ एक ऊँचे अफ़सर की स्त्री को दूसरे ऊँचे अफ़सर ने भगा लिया और थोड़े ही दिनों के बाद निकाल बाहर भी किया। ऐसी दशा में यह देखा गया है कि हिन्दू-समाज स्त्री को ही सज़ा देता है और पुरुष साफ़ छूट जाता है और गुलछर्रे उड़ाता है।

ऐसा भी देखा गया है कि बहुत कुछ घर के झगड़ों से तंग आकर या सास-ननद के अत्याचारों को न सहकर भी लड़कियाँ भाग खड़ी हुई हैं। अपने समाज में जब तक सुधार न होगा और जब तक वह सामाजिक बहिष्कार के शस्त्रों को भूल न जायगा तब तक यह समस्या हल न होगी। हमें दूसरों पर इल्ज़ाम लगाने के पहले अपने घरों को ठीक करना है।

यह न समझा जाय कि मैं राधारमण जी से चरित्र-सम्बन्धी शिक्षा देने में सहमत नहीं हूँ। मैं चरित्र-सम्बन्धी शिक्षा उसे समझता हूँ जिससे कोई व्यक्ति अपनी आत्मरक्षा या अपने सतीत्व की रक्षा कर सके। दूसरे शब्दों में वह शिक्षा जो अपराधी या भावी अपराधी को दण्ड दे सके। उस शिक्षा की न केवल स्त्रियों को ज़रूरत है, वरन हिन्दू पुरुषों को भी। वह शिक्षा न किताबी है, न स्कूलों में ही मिल सकती है। वह तो मा-बाप के उत्साहित करते रहने में बच्चे को शुरू से ही मिल सकती है। जब अपनी आत्म-रक्षा का भार हम अपने ऊपर उठा लेंगे तब दूसरा आसानी से हमारे घरों पर आक्रमण नहीं कर सकता।

यह कम्प किसी किसी पदार्थ में दिखलाई भी देता है, जैसे खिंची हुई तन्त्री। यह कम्प केवल धुँधली बाह्य रेखा से मालूम होगा। वायवी साधन से सब जगह शब्द पहुँचता है। उदाहरण में टेलीफ़ोन का खिंचा हुआ तार बतलाया गया है। यह भी लिखा है कि कई बधिर पुरुषों को सिर की हड्डियों-द्वारा शब्द सुनवाया गया है। तरकीब यह की गई थी कि एक सख्त डंडा उनको दाँतों के नीचे दबाने को दिया गया जिसका एक सिरा उस पदार्थ से लगा हुआ था (जैसे घड़ी या पियानो बाजा) जो उत्पन्न हो रहा था। यह भी खोज करनेवालों ने पता लगाया है कि शब्द का वेग कितना होता है। उन्होंने बतलाया है कि बिजली की कड़क चमक के थोड़ी देर बाद सुनाई देती है। उसी तरह बन्दूक़ से पहले एक ज्वाला निकलती दिखलाई देगी तब शब्द सुनाई देगा। इससे यह सिद्ध होता है कि शब्द को भी यात्रा करने में कुछ देर लगती है। शब्द से प्रकाश अधिक शीघ्रगामी है। इसकी गति १,८६,००० मील प्रति सेकंड है। वायु में शब्द की यात्रा का वेग केवल पाँच सेकंड प्रति मील है। पानी में लगभग एक सेकंड के और लोहे या फ़ौलाद में एक सेकंड के तिहरे के। वायु से पन्द्रह गुणा अधिक वेग शब्द की यात्रा का लोहे में होता है। उन लोगों ने बतलाया है कि बिना तीन चीज़ों के न तो शब्द उत्पन्न हो सकता है, न वह दूर तक यात्रा कर सकता है और न उसका ज्ञान ही हो सकता है—(१) शब्द-उत्पन्न करनेवाले पदार्थ में कम्प हो, (२) उस पदार्थ से कोई साधन जुड़ा हो, (३) और दूसरी ओर कम्पों का स्वीकार करनेवाला कोई यन्त्र हो जो कम्पों की गति बता सके। तब उनका अनुभव किया जा सकता है। यह भी खोज से पता लगाया गया है कि शब्दों में भिन्नता होती है। शब्द की उच्चता चेतनता के अंश का अनुरूपक है, और इन दो बातों पर निर्भर है कि वह कितना तीव्र है या कान में कितनी चेतनता है। किसी किसी शब्द की उच्चता दुर्बल होने पर भी तीव्रता में कमी नहीं होती है। बाज़ बाज़ कान घड़ी के टिक टिक करने से व्याकुल हो जाते हैं और बन्दूक़ या तोप की आवाज़ का उन पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है। इससे यह सिद्ध होता है कि प्रकृति का एक यह नियम है कि शब्द की तीव्रता बढ़ते ही कान की चेतनता घट जाती है। यह भी कुछ कान को प्रकृति ने शक्ति दी है कि एक ही तरह के शब्दों की भिन्नता को वह पहचान ले। वास्तव में बहुत कम शब्द हैं जो 'शुद्ध' कहे जा सकते हैं, यानी जिनमें स्वर की अधिकता न हो। स्वर की अधिकता की उपस्थिति या अनुपस्थिति शब्द के गुण का सूचक होती है, और इससे यह सिद्ध होता है कि शब्द का गुण बहुत कुछ वायु की तरङ्ग के आकार पर निर्भर होता है जो हमारे कान तक पहुँचती है। खोज से यह भी पता चला है कि उस तरङ्ग का आकार कैसा होता है और अमुक पदार्थ से उत्पन्न हुए शब्द में कौन कौन सस्वरता उपस्थित है और उनका एक-दूसरे के प्रति क्या सम्बन्ध है।

जो कुछ आज-कल के विज्ञान-विशारदों ने इस ओर खोज करके लिखा है यदि उसका शतांश भी लिखा जाय तो एक छोटी-मोटी पुस्तक लिख जायगी और यह लेख अपनी सीमा को उल्लंघन करके एक नया रूप धारण कर लेगा। पुराने ज़माने में हमारे देश में जो खोजें की गई थीं उनका तो पता नहीं है, लेकिन जिनका पता है और जिनके कुछ अंश ऊपर उल्लिखित किये गये हैं उनसे पता चलता है कि आधुनिक और प्राचीन समय के खोज करनेवालों का विचार-प्रवाह एक ही ढङ्ग का है।

अँगरेज़ी-लेखकों ने शब्द की व्याख्या करके श्रुति की व्याख्या की है। वे कहते हैं कि जो वायु हमारे चारों तरफ़ रहती है वह कम्पों-द्वारा बराबर आकुलित हुआ करती है जो लहरों के आकार में हम तक पहुँचती है। अँगरेज़ी में 'श्रुति'-शब्द इस अर्थ का सूचक समझा जाता है कि किस प्रकार शब्द के कम्प ज्ञानेन्द्रियों पर प्रभाव डालते हैं और कैसे उनमें एक विशेष चेतनता उत्तेजन-द्वारा उत्पन्न होती है। केवल वही कम्प शब्द को उत्तेजना देते हैं जिनमें सतता होती है। ये सीमायें प्रत्येक मनुष्य में पृथक् पृथक् होती हैं। इनका सामान्य अतीत २० से लेकर २०,००० कम्प प्रति सेकंड है। बहुत-से जानवर केवल बहुत ऊँचा शब्द सुन पाते हैं, इसके प्रतिकूल मछलियों और जलजन्तुओं में मन्द कम्पों की चेतना होती है—और सो भी वे जिनमें शीघ्रता न हो।

कान के तीन हिस्से होते हैं। बाहरी हिस्सा शब्द की लहरों को जमा करता है, बीचवाला सबसे अन्दरवाले हिस्से तक पहुँचाता है और अन्दरवाला उनका विभेद और विच्छेद करता है और उन्हें ज्ञानतन्तुओं की प्रवृत्तियों में परिवर्तित कर देता है, जिन्हें मस्तिष्क पा कर उनको प्रतिबंधित करता है। दोनों कानों में बराबर शब्द पहुँचता है, और एक-दूसरे की सहायता किया करता है। यदि उस आदमी से बातें की जायँ जिसके कानों की चेतना घट गई है तो वह कान के पीछे हाथ लगा कर सुनेगा, जिससे यह प्रकट होता है कि वह शब्द की लहरों को अधिक एकत्र करने की चेष्टा कर रहा है और वह बातें करनेवाले मनुष्य के ओठों की तरफ़ देखेगा। देखने और सुनने में बड़ा सम्बन्ध है। बहुत कुछ हम देख करके समझ लेते हैं कि क्या कहा जा रहा होगा, चाहे कान न मदद करें। मनुष्यों को प्रकृति ने यह शक्ति नहीं दी है कि वे अपने कानों को इधर-उधर चला सकें। यह शक्ति बाज़ बाज़ जानवरों में होती है, वे अपने कानों को घुमाते हैं और विस्तृत भी कर लेते हैं और वह भी जिधर से शब्द आ रहा होता है उधर कान कर देते हैं। कान के अन्दर का हिस्सा अनियत होता है और इसी वजह से उस पर प्रतिनाद का बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है। यह नहीं है कि उसे प्रतिनाद मालूम ही न होता हो।

कानों के परिमाण से शब्दों की लहर कहीं बड़ी होती है। उसका अतीत ३ इंच से लेकर ५५ फ़ुट तक होता है। कान के मध्यभाग का छिद्र वायु से सदा परिपूर्ण रहता है। किसी किसी के सोने के समय वह बन्द हो जाता है। इसका सम्बन्ध तालु से होता है। किसी चीज़ के निगलने के समय यह सदैव खुल जाता है, और अन्दर की हवा बाहर निकल जाती है और बाहर की हवा अन्दर आ जाती है। इससे बाहर और अन्दर की हवा का दबाव बराबर रहता है। यदि दबाव बराबर न रहे तो कान की चेतना जाती रहती है।

कानों से केवल हम सुनते ही नहीं हैं, वरन शब्द की व्याख्या भी करते हैं। शब्द की तरङ्गों में भिन्नता होती है—किसी में तीव्रता होती है और किसी में स्वर। स्वर यह सूचित करता है कि अमुक समय में कितनी वायु की तरङ्गें कान तक पहुँचती हैं और उनका स्थायित्व क्या है। यह अभी अँगरेज़ विद्वानों के मतानुसार विवाद-रहित नहीं है कि किस तरह से हम किसी शब्द का स्वर पहचान पाते हैं, जिसकी ध्वनि मिश्रित होती है। इस ओर खोज करनेवालों का कहना है कि बहुत कुछ खोज किये जाने पर भी अभी बहुत कुछ खोज करना बाक़ी है।

जानवर कान का उपयोग अधिकतर नर और मादा के खोजने में करते हैं। नर शब्द उच्चारण करता है और मादा उसे सुनकर समद हो जाती है। मादा शब्द के ओज से प्रभावित होती है। टेलीफ़ोन-द्वारा नर का शब्द मादा तक पहुँचाया गया और उसे सुनकर उस पर वही प्रभाव पड़ा जो नर के सामने होने पर पड़ता। कुछ पतिंगों में सुनने की शक्ति उनके अगले पैरों में होती है और किसी किसी के शरीर में। प्रकृति की ऐसी ही विचित्र रचना है।

अब यह मालूम हो गया है कि शब्द क्या है, शब्द कितनी तरह के होते हैं, कैसे उत्पन्न होते हैं, कैसे यात्रा करते हैं और कैसे सुनाई देते हैं। अब यह देखना रह गया है कि शब्द का प्रभाव कामकारिणी इच्छाओं पर क्या पड़ता है। कुछ अँगरेज़ी-लेखकों ने इस ओर बहुत खोज की है। शब्द-द्वारा ही हम अपनी इच्छायें प्रकट करते हैं

और इसी वजह से विषयवर्ग की सूची में इसका प्रथम स्थान है। घोड़े हिनहिना कर, कुत्ते गुर्रा कर अपनी मादाओं को उत्तेजित करते हैं। कहा जाता है कि प्राचीन समय में मनुष्य भी इसके लिए अश्लील शब्दों का उच्चारण करते थे। एक और लेखक का कहना है कि इस प्रथा का लोप अभी तक नहीं हुआ है, और न शायद कभी होगा। ऐसे अवसरों पर सभ्यता संकुचित होने लगती है और मनुष्यों और जानवरों में केवल नाममात्र का फ़र्क़ रह जाता है। एक लेखक का मत है कि ऐसे भाषित शब्द ही नहीं, वरन कोई सुरीली ध्वनि भी आनन्ददायक होती है और उनके मतानुसार कटिकिंकिणी पहनने का अभिप्राय भी यही है। हमारे देश के कवियों का भी शायद यही विचार था। इस तरह की चीज़ों की सूची में उनके मतानुसार चूड़ियों और बिछुओं का भी स्थान है। एक कवि कहता है—'कटिकिंकिणी नेक न मौन गहै चुप हैवो चुरीन सों सीखती हैं।' मतिराम जी कहते हैं—

"गौने को द्योस सिंगारन को,
'मतिराम' सहेलिन को गन आयो।
कञ्चन के बिछुवा पहिरावत,
प्यारी सखी परिहास जनायो।
पीतम श्रौन समीप सदा,
बजैं यों कहके पहले पहिरायो।
कामिनी कौल चलावन को,
कर ऊँचो कियो पै चल्यो न चलायो॥"

'नूपुर की झनकार एक' प्रचलित कहावत है। ये सब आभूषण कामदेव के बड़े सहायक हैं। रामायण में तुलसीदास जी ने कहा है—

"कंकणकिंकिणि नूपुर धुनि सुनि।
कहत लषण सन राम हृदय गुनि॥
मानहुँ मदन दुन्दुभी दीन्हीं।
मनसा विश्वविजय कहँ कीन्हीं॥"

कहीं कहीं यह प्रथा है कि जो पुरुष किसी स्त्री से प्रेम प्रस्ताव किया चाहता है वह उसकी कटिकिंकिणी को छू देता है और स्वभावतः वह ध्वनित हो जाती है। यदि स्त्री चुप रही तो पुरुष समझ लेता है कि उसका प्रस्ताव स्वीकृत हो गया है।

प्रभाव बहुत कुछ प्रथा पर निर्भर होता है। आस्ट्रिया में किसान जब सबेरे अपने बैलों या घोड़ों को खेतों में काम करने के लिए ले जाने लगते हैं तब अपने चाबुकों को बजाते हैं। कहा जाता है कि इस शब्द का बहुत बड़ा प्रभाव गाँव की युवतियों पर पड़ता है, और वे पहचान लेती हैं कि अमुक शब्द उनके प्रेमी के चाबुक का है। गुड़ियों के (नागपञ्चमी) अवसर पर यहाँ पतावर के कोड़े बनते हैं जिन्हें मनचले युवक या 'बुड्ढे लड़के' घुमा घुमा कर बजाते हैं और उनका भी अभिप्राय गाँव की युवतियों को प्रसन्न करने का होता है।

प्रभाव बहुत कुछ स्वर पर भी निर्भर होता है। मन्द स्वर में विश्वास होता है। एकान्त में भी प्रेमी अपनी प्रेमिका से अपने तप्त हृदय का उद्गार मन्द स्वर में ही कहता है। जैसे, 'चुराये हुए चुम्बन मीठे होते हैं' वैसे ही मन्द स्वर में कहे हुए शब्द अति मधुर होते हैं। अपवादवक्ता भी मन्द स्वर में ही बातें करते हैं। उनका यह ख़याल होता है और ठीक ख़याल होता है कि इससे प्रभाव कम-से-कम द्विगुणित हो ही जायगा। अपने यहाँ की एक कहावत है, "क्या कनफुसकी करते हो।" इसका प्रयोग उन अवसरों पर किया जाता है जब यह सूचित करने का अभिप्राय होता है कि क्या प्रपञ्च कर रहे हो।

जितने भर शब्द कान में आते हैं उन सबमें संगीत का प्रथम स्थान है। केवल यही नहीं कि मस्तिष्क आनन्दित हो जाता है, वरन उसका बहुत बड़ा प्रभाव मांसपेशियों पर पड़ता है जो स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हितकर हैं। एक अँगरेज़ी-लेखक 'विल्कस' का कहना है कि संगीत की उत्पत्ति मांस-पेशियों के कार्य के साथ हुई है। यह और भी लेखकों का मत है कि संगीत की ताल और मांस-पेशियों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह बहुत लोगों का मत है कि ताल कार्य-प्रवर्तक है। एक लेखक का कहना है कि सस्वरता यह कहते हुए जान पड़ती है कि वाणी नाच रही है, एक अच्छा भाव अच्छी तरह प्रकट किया गया। अरिस्टाटिल ने सबसे पहले यह कहा था कि ताल और सस्वर गति या वेग हैं, और इस कारण मनोवृत्ति के चिह्न हैं। इर्गो-ग्राफ़-यंत्र-द्वारा यह पता लगाया गया है कि सोल्लास संगीत चेतनावान् पुरुषों की थकावट मिटा देता है, और बाज़ को मध्यम स्वर का संगीत अरुचिकर होता है। आधुनिक समय में यह खोज करके पता लगाया गया है कि मांसपेशियों को छोड़कर हृदय और श्वास पर भी संगीत का अच्छा प्रभाव पड़ता है। संगीत के प्रभाव से रक्त भी शरीर में शीघ्रगामी हो जाता है, और मस्तिष्क अधिक काम करने लगता है। एक नवयुवक के सिर में गहरी चोट लगने से सिर की हड्डी का एक भाग टूट कर गिर पड़ा था। उस समय देखा गया कि संगीत के प्रभाव से पहले की तरह मस्तिष्क में रुधिर संचालित हो गया। एक दूसरे का कहना है कि यह भी देखा गया है कि संगीत के प्रभाव से मूत्राशय में सिकुड़न पैदा हो जाती है। जर्मनी में यह खोज से पता लगाया गया है कि यदि संगीत ध्यान-पूर्वक सुना जाय तो नाड़ी की गति तीव्र हो जाती है और यदि विशेष ध्यान न दिया जाय तो उसकी गति मंद हो जाती है। इसका भी पता लगाया गया है कि सुखमय उत्तेजना नाड़ी की गति को मंद कर देती है और असुखकर चेतना उसे तीव्र कर देती है। रुधिर के परिभ्रमण पर संगीत का प्रभाव पड़ता है और इसी कारण त्वचा पर भी प्रभाव पड़ता है। किसी किसी को अच्छा संगीत सुनने से बहुत पसीना निकलने लगता है। संगीत का प्रभाव गुर्दों पर भी पड़ता है, क्योंकि कोई कोई बहुमूत्र के आवेग से आकुलित हो जाते हैं। बाजों में

संगीत सुनने के समय दृष्टि की तीव्रता बढ़ जाती है।

जानवरों पर भी संगीत का बड़ा प्रभाव पड़ता है। कुत्तों में चेतनता इतनी बढ़ जाती है कि २० प्रति शत अधिक आक्सीजन का वे उपभोग करते हैं और १७ प्रति शत कार्बोनिक एसिड का परित्याग करते हैं। शेर सारंगी को बहुत पसन्द करता है। सारंगी और वीणा बहुत-से जानवरों को पसन्द है। अँगरेज़ी-लेखकों के भी मतानुसार वीणा का बड़ा प्रभाव मृग पर पड़ता है, और सर्प पर भी वैसा ही बड़ा प्रभाव पड़ता है। चिड़ियों, कीड़ों और पतिंगों का भी यही हाल है—संगीत से वे भी प्रभावित होते हैं। पक्षियों में सम्भवतः मुर्ग़ों पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है।

चीन और ग्रीस देशवासियों का यह कहना था कि संगीत का चरित्र पर शुभ और अशुभ दोनों प्रभाव पड़ सकते हैं। लगभग ३,००० वर्ष पहले चीन के एक सम्राट् का विश्वास था कि वही अच्छा शासक हो सकता है जो अच्छी तरह संगीत समझता हो। उसके प्रतिकूल औरंगज़ेब को संगीत से चिढ़ थी। एक दफ़ा कुछ लोगों ने कृत्रिम अर्थी बनाकर उसे उठाया और शोकनाद करते हुए महल के पास से निकले। बादशाह ने पूछा कि किसकी मृत्यु हो गई है। शोकनाद करनेवालों ने कहा कि संगीत की। श्मशान में बादशाह ने अपने प्रतिनिधि-द्वारा कहला भेजा कि इतनी गहराई में दफ़न किया जाय कि फिर वह बाहर न आ सके।

शुष्क हृदयवालों पर बेशक संगीत का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। संगीत का भी उस सूची में नाम है जिससे अनभिज्ञ पुरुषों की संज्ञा पशु है। एक देहाती मसल है—"भैंस के आगे बीन बजे और भैंस खड़ी पगुराय।"

फिर वही श्रुति-वाक्य स्मरण हो आता है—"शब्दो नित्यः।"

जीवन-सरिता

लेखक, एक 'राष्ट्रीय आत्मा'

देखो तो तटिनी के तट पर, आकर उसके परम समीप,
कितने हैं जल चुके यहाँ पर, और बुझ चुके प्रेम-प्रदीप।
कितने लाल लुट चुके, कितने मिट्टी में मिल चुके सुहाग,
कितने बालक, युवा-वृद्ध थे कितने निर्धन, धनिक-महीप ॥१॥

देखो पावन पयस्विनी वह, फिर भी बहती है अविराम,
नहीं देखती, नहीं देखती, कोई दृश्य विकट-अभिराम।
कलमात्र चलती जाती है, सज नज समयोचित अभिसार,
इस श्रम का पयोधि प्रियतम से, क्या होगा परिणय-परिणाम? ॥२॥

उसी आपगा के पुलिनों पर, पादप-पुञ्ज लगाकर पाँति,
अचल-अटल हो खड़े-खड़े हैं, पथ-रक्षक प्रहरी की भाँति।
जो सन्तत सचेत रहते हैं, पाते हैं उत्तम उपहार,
पथ-बाधक सब बह जाते हैं, होता है उनका संहार ॥३॥

वे जो निज मन-मल धोने को, करते हैं मल मल स्नान,
या वे जो धोखा देने को, हैं धरते बहुधा बक-ध्यान।
स्रोतस्विनी बहाती अपना, सबके लिए सदा शुचि स्रोत,
अपनी अपनी अभिलाषा का, पाते हैं सब उससे दान ॥४॥

रंग-रँगीले विविध विहंगम, बहुधा बोल मनचले बोल,
भाव टटोल रहे हैं उसका, निज निज गाँठ गिरह की खोल।
सुनी-अनसुनी कर उन सबकी, जाती चली धुनी धुन बाँध,
कोई मोल नहीं ले सकता, उसका मन-माणिक अनमोल ॥५॥

विमल-वारि-भरिता सरिता वह, दिखलाकर निज चारु चरित्र,
दोनों ही कुल-कूल कर रही, कुल-ललना की भाँति पवित्र।
कितने ही गन्दे नालों को कर लेती वह निर्मल नीर,
कोई छल से भी न छू सका, उसका रुचिकर चीर विचित्र ॥६॥

तीर तीर ही रम्य नगर हैं, आस-पास ही हैं बहु ग्राम,
अगणित दुर्गम दुर्ग बने हैं, पक्के घाट सुभग सुरधाम।
जिनमें नरनागर, नवनागर, भटनागर हैं नागर-देव,
छूने न दी किसी को छाया, पाया उचित नदी यह नाम ॥७॥



कोरिया का वज्र पर्वत

[कोङ्-गोसान्—उतेव्री (नया पुल)]

लेखक, श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन

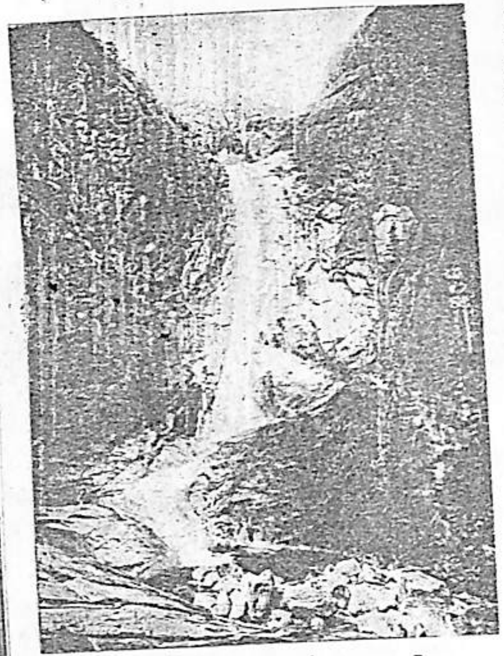
कोरिया का वज्रपर्वत प्राकृतिक सौंदर्य का अद्भुत नमूना है। पचास मील के गिर्द में फैले इस पर्वत पर बौद्धों के अनेक मठ, मन्दिर और विहार हैं। श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन जी को भी इस पर्वत और इसके बौद्ध आश्रमों ने आकर्षित किया, और आपने इस पर्वत-प्रदेश की यात्रा की। इस लेख में उसी का वर्णन है।

कोङ्-गो-सान् कोरिया का अतिसुन्दर तथा जगत्प्रसिद्ध पर्वत है। अँगरेज़ी में इसे 'डाइमंड मौन्टेन' कहते हैं और कोरिया की भाषा में 'खिन्-खङ्-सान्'। दक्षिण-भारत के आन्ध्र-प्रदेश में अवस्थित श्री पर्वत (वर्तमान नागार्जुनी कोंडा) का दूसरा नाम वज्रपर्वत था। बौद्ध-धर्म के प्रचार के साथ कोरिया का यह पर्वत वज्रपर्वत हुआ। कोरिया का वज्रपर्वत अपनी अनुपम शोभा और प्राकृतिक वैचित्र्य के लिए विश्व-विख्यात हो चुका है। यह पर्वत कोरिया के पूर्वी समुद्री-तट पर ५० मील के घेरे में अवस्थित है। कोरिया की राजधानी सोल्-जोन् (केइ-जो) से ८ घंटे में रेल-द्वारा पहुँचा जा सकता है। कोरियावासियों की कहावत है—"प्राकृतिक सौन्दर्य की बात मत चलाओ, जब तक तुमने कोङ्-खिन्-खङ्-सान् नहीं देखा है।"

कोङ्-गो-सान् की इस प्रकार की ख्याति सुनकर किसका मन उसे देखने को न ललचायेगा? १३ अगस्त को श्री कुरिता के साथ हम वज्र-पर्वत के लिए रवाना हुए। गन्-जेन् से समुद्र-तट से होती हुई रेल चु-सेन् स्टेशन तक गई है। कोरिया के स्थानों के नाम मैं यहाँ जापानी-भाषा में लिख रहा हूँ। कोरियन और जापानी दोनों भाषाओं में नाम के लिए चीनी शब्द-संकेत लिखे जाते हैं, उच्चारण में दोनों अपनी अपनी भाषा का प्रयोग करते हैं। अँगरेज़ी-भाषा में छपे काग़ज़-पत्रों में जापानी उच्चारण ही ज़्यादातर लिखा जाता है, और वही बहुत प्रचलित हो गया है।

हम लोग पौने आठ बजे गाड़ी से रवाना हुए। रास्ते में कहीं धान, सोंवाँ के खेत, कहीं छोटे देवदार और दूसरे वृक्षों से हरे-भरे पर्वत, कहीं फूस की चौरस छत के छोटे छोटे घरोंवाले कोरियन गाँव थे। जहाँ-तहाँ जापानियों के भी घर, जो अपेक्षाकृत अधिक बड़े, खपड़ैल या टीन की छतोंवाले तथा काँच से जड़े सरकन्त कपाटों से युक्त दिखलाई पड़ते थे। पचासों जगह गाड़ी को सुरंगें पार करनी पड़ीं। खेतों को देखने से स्पष्ट मालूम होता था कि यहाँ के किसानों ने नये ढङ्ग के खेती के तरीक़े को बहुत अंशों में अपना लिया है। यहाँ जापानी पुरुष आम तौर से कोट-बूट पहने हुए दिखाई दिये, किन्तु कोरियन पुरुष प्रायः सभी सफ़ेद अचकन और पायजामे पहने हुए दिखाई पड़ते थे।

साढ़े दस बजे के क़रीब हम चु-सेन् स्टेशन पर पहुँचे। ओन्-सेइ-री (ओन्-छङ्-नी) के लिए मोटर-बस तैयार थी। हम बस पर बैठकर आध घंटे में एक जापानी होटल में दाख़िल हो गये। ओन्-सेइ-री का



[कोङ् गोसान्—क्युर्युंएन् जलपात]

अर्थ है ताताबानी गाँव। इस गाँव में गर्म पानी के चश्मे हैं, और हर एक होटल ने अपने यहाँ तमकुन्ड तैयार किये हैं। कमरा दिखाया गया, और साथ ही चाय और जापानी मिठाई मुसकुराते हुए चेहरों के साथ पहुँच गई। नहाने का पानी तैयार है, इसकी भी ख़बर आगई। निपटने और थोड़ा विश्राम करने में एक बज गया। फिर हम दो ये पर मोटर कर शिन् केइ जी (छिन्-ने-सा) मठ के लिए रवाना हुए। छिन्-गे-सा मठ में पहुँच गये। थोड़ी देर में ६३ वर्ष के वृद्ध प्रधान भिक्षुओं-वाला लम्बा चोगा पहने स्वागत के लिए आगये। न वे हमारी भाषा समझते थे, न उनकी भाषा हम। हमारे साथी श्री कुरिता की अँगरेज़ी भी बहुत कच्ची थी, और दस बात में कहीं एक बात वे अनुवाद कर पाते थे। तो भी वृद्ध भिक्षु की मुखाकृति से ही मालूम होता था कि बुद्ध की जन्मभूमि के एक भिक्षु का यहाँ आना उनके लिए असाधारण घटना हुई है। सत्कार के लिए मधु का शर्बत और चीनी के प्याले पहुँच गये। कोरियन मठों में, मालूम होता है, स्वागत में चाय का स्थान मधु के शर्बत ने दख़ल किया है। भारत में भी आगन्तुक को शर्बत प्रदान करना पुरानी प्रथा है। भिक्षु ने शर्बत को प्याले में उँड़ेलते वक़्त बायें हाथ को भी दाहने हाथ की केहुनी के पास इस ख़याल से लगा दिया था जिसमें देना दोनों हाथ से हो। भारत की भाँति कोरिया में भी (जापान में भी) सत्कार-प्रदर्शन के लिए कोई चीज़ देते वक़्त दोनों हाथों का लगाना ज़रूरी समझा जाता है।

पहला काम हमें मठ देखना था। मालूम हुआ, फु-उन् नामक भिक्षु ने ईसा की चौथी-पाँचवीं शताब्दी में इस मठ की स्थापना की। बुद्ध-धर्म कोरिया में ३७२ ईसवी में पहुँचा था, और उसकी बादवाली शताब्दियों में उसका प्रभाव बहुत बढ़ गया। उसी समय बौद्ध-भिक्षु एकान्त-आश्रम के लिए स्थान ढूँढ़ते हुए इस पर्वतश्रेष्ठ में पहुँचे थे, और अपनी गहरी श्रद्धा-द्वारा इसके महत्त्व को समझ वज्रपर्वत को कोरिया के बौद्ध-धर्म का केन्द्र तथा पवित्र स्थान बनाने में सफल हुए। यद्यपि इस मठ की स्थापना पन्द्रह शताब्दी पूर्व हुई थी, तो भी लकड़ी का अधिक इस्तेमाल होने से पुरानी इमारतें कई बार जल चुकी हैं। इस समय का सबसे पुराना मन्दिर मुचावनी (मुग्-नग्-चोन्) तीन सौ वर्ष पहले बना था। प्रधान मन्दिर को बने सिर्फ़ चालीस वर्ष हुए हैं, और उसके भीतर की शीनमबुद्ध, लोकेश्वर, मंजुश्री की काष्ठमूर्तियाँ तो सिर्फ़ ६ वर्ष पहले बनी थीं। किन्तु प्रधान मन्दिर के द्वार पर एक पत्थर का चीनी ढँग का ३०-४० फुट ऊँचा जो स्तूप है वह मंदिर के प्रथम निर्माण के वक़्त बनाया गया था। पत्थर सहनेवाला है और पन्द्रह शताब्दियों के जाड़े-गर्मी ने उसे जीर्ण-शीर्ण कर दिया है, तो भी स्तूप के चौखूँटे घेरे में पुरानी मूर्तियों की रूप-रेखा दिखलाई पड़ती है। दो-तीन और छोटे छोटे मन्दिर हैं। वे भी नये हैं। मुख्य द्वार दोमहला है, और बिलकुल नया है। उसके देखने से मालूम होता है कि कोरिया के बौद्धधर्म में नई जान आ रही है। मन्दिर के हाते में एक ओर पाठशाला का मकान है, जिसमें आस-पासवाले ३५ लड़के चार वर्षों तक की पढ़ाई करते हैं। अध्यापक मठ के एक भिक्षु ही हैं। यह भी मालूम हुआ कि बराबर रहनेवाले भिक्षुओं की संख्या २० है; और निर्वाह के लिए पहाड़ का जङ्गल और कितने ही खेत हैं।

मन्दिर का दर्शन कर हम क्यु-र्युं-एन् जलप्रपात की ओर रवाना हुए। कोङ्-गो-सान् में ऐसे कितने ही जलप्रपात हैं, किन्तु यह जल-प्रपात सबसे ऊँचा है। मठ से प्रायः ५-६ मील दूर है। रास्ते पर यद्यपि सीमेंट के पुल आदि बने हुए हैं, तो भी चढ़ाई काफ़ी कठिन है।

रास्ते में हमें एक-आध जगह दो-एक सोडावाटर, सिगरेट, फ़ोटो-कार्ड आदि की दूकानें भी मिलीं। इन दूकानों में कोङ्-गो-सान् में मिले नाना रङ्ग-ढङ्ग के स्फटिक तथा दूसरे पत्थर भी बेचने के लिए रक्खे थे। श्वेत-रञ्जित भोजपत्र के काठ पर स्थानीय दृश्य भी चित्रित किये हुए रक्खे थे। यात्री के बैठने के लिए बेंच, गर्म सादी चाय और स्वागत-शब्द तो हर वक़्त तैयार रहते हैं। एक तरुण दूकानदार ने जब सुना कि मैं भारतीय हूँ तब वह जापानी भाषा में छपी महात्मा

गान्धी की संक्षिप्त आत्मजीवनी उठा लाया। मालूम होता है, कोरियन लोग महात्मा गान्धी से विशेष प्रेम रखते हैं।

क्यु-र्युं-एन् का अर्थ है नौ-नागों का ह्रद। जलप्रपात के ऊपर आठ कुंड हैं। यहाँ का मनोरम दृश्य देखकर हम लौट पड़े।

शाम को पाँच बजे हम लौटकर फिर उक्त मठ में आ गये। हमारे साथी के लिए कोरियन भोजन तैयार था। नियम के अनुसार बारह बजे बाद तो हम खा नहीं सकते थे, उधर कोरियन भोजन को चखना भी देखनी ज़रूरी था, इसलिए भात के दो नेवाले तथा कुछ तरह की भाजियों में रक्खी साग-भाजी में एक एक कौर मुँह में डाला। लाल मिर्च सिर्फ़ अचार में था। कोरियन लोग मिर्च के शौक़ीन हैं, किन्तु हमारे जापानी साथी का ख़याल कर मिर्च डालने से हाथ रोका गया था। एक समुद्री वनस्पति की पत्ती तथा पकौड़ी-जैसी चीज़ भी तेल में तली गई थी। बाक़ी सभी चीज़ें पानी में उबाली हुई थीं। कच्चा प्याज़ रहा था, और प्याज़ के पत्ते से रङ्ग चोखा हो गया था। कोरिया के भिक्षु मांस से बहुत परहेज़ करते हैं।

हमारे साथी ने जल्दी जल्दी भोजन समाप्त किया, और चिराग़ जलते-जलते हम अपने होटल में आ दोबारा तमकुंड में डूबने को तैयार हो गये। मालूम हुआ, लौटते वक़्त का मोटर का किराया महाशयों ने बहुत आग्रह-पूर्वक स्वयं दे दिया है।

कोङ्-गो-सान् के मठों में युतेन्-जी (यु-जम्-सा) का मठ सबसे बड़ा और सबसे पुराना है। किसी समय कोङ्-गो-सान् में १०८ मठ जहाँ-तहाँ बिखरे हुए थे। तीस वर्ष पूर्व उनकी संख्या ४० थी, किन्तु आज-कल ३२ हैं, जिनमें २२० भिक्षु और तीन भिक्षुणियाँ रहती हैं। दोनों के मठ अलग अलग हैं। हमारे साथी श्री कुरिता कुबेन् जो नहीं जानेवाले थे, इसलिए एक पथप्रदर्शक ले लिया जो अपनी भाषा जानता था। ७॥ बजे हमारी मोटर टैक्सी रवाना हुई। उसने फ़ोतेइ में हमें उतार दिया। फ़ोतेइ अच्छा बाज़ार है। यहाँ कई जापानी दूकानें भी हैं। ॥ बजे के क़रीब वही टैक्सी फिर आई, और हम पीछे की ओर लौटे। जापान टूरिस्ट ब्यूरो की ओर से छपे टाइमटेबिल में स्पष्ट था तब मालूम हुआ कि मोटर का रास्ता बहुत घूम कर गया है। कुछ पीछे लौट कर एक लकड़ी के पुल से नदी पार कर हम आगे चले। सड़क बहुत रद्दी थी। कुछ समय के बाद हम पहाड़ के अंचल में पहुँच गये। फिर रास्ता नदी और पहाड़ के दर्मियान से जा रहा था। बराबर की भूमि में सभी जगह धान की खेती होती है। आज-कल वे फूल रहे हैं।

गाँवों में कोरियन लोगों के घर सारे की फूस की छतवाले तथा कमहले मिले। वे ग़रीब तो हैं ही, किन्तु उनकी ग़रीबी को भारत से नहीं मिलाया जा सकता। घरों में एक-दो कमरे ऊँची कुर्सी के होते हैं, और बग़ल का नीची कुर्सी का एक कमरा रसोई घर होता है। मुर्ग़ियों का दरबा बाहर होता है, और सूअर का खोभार भी बाहर ही एक तरफ़



[संकेइजी संस्थापक]

होता है। कोरियन लोगों के घर छोटे होते हैं, किन्तु उनके कपड़े बहुत साफ़ होते हैं। गंदे कपड़ेवाले आदमी बहुत कम देखने में आते हैं। सफ़ेद रंग उनका जातीय रंग है। तरुण, बाल, वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी को आप सफ़ेद कपड़ों में देखेंगे। एक-आध तो कभी काले या हरे कपड़ों में भी दिखाई पड़ जायँगे, किन्तु ऐसा बहुत कम है। हमारे रास्ते में एक-आध जगह दो-एक जापानी घर भी दिखाई पड़े, और उनके घरों के पास सेब, नासपाती और आड़ू के बाग़ भी थे। जापानियों का गुज़ारा भला साग, सेब, आलू और मक्के से चल सकता है! कोरियन लोगों का ध्यान इन बातों की ओर कम है। हमारे एक जापानी इंजीनियर सहयात्री ने कहा—काम में कोरियन लोगों को आप हमेशा पीछे पायेंगे, हाँ बात बनाने तथा राजनीतिक आन्दोलन में वे बहुत उत्साह दिखलाते हैं। इंजीनियरिंग की ओर वे नहीं आते। उक्त इंजीनियर १९०४ ईसवी में रूस-जापान-युद्ध के समय में यहाँ आये थे, तब से यहीं रेलवे-विभाग के इंजीनियर हैं।

ह्व-कु-सेन्-क्वो में उतर गये। टैक्सी थोड़ी देर के बाद लौट गई



[कोङ् गोसान्—धार पर पुल]

होगी। यह गाँव छोटा-सा है। लेकिन दो-तीन दूकानें तथा दो-तीन कोरियन होटल हैं। दस बजे हम चले। २॥ मील तक तो रास्ता ठीक मिला। उसके बाद चढ़ाई शुरू हुई, और ख़ूब ज़ोर-ज़ोर से। बारह बजे थे, जब हम जोत पर पहुँचे। वहाँ से दूर तक [illegible] की ही नहीं, दिगन्त विस्तृत नीले समुद्र को भी देख रहे थे।

थोड़ा उतरकर दो-चार घरों का एक गाँव मिला। हमारा मध्याह्न-भोजन का समय हो रहा था, और होटलवालों का भात-भाजी का पाथेय प्रतीक्षा कर रहा था। हमारी बाईं ओर ठंडा जल की धारा बह रही थी। जल के तट पर छाया में बैठ गये। वहाँ हमने भोजन किया।

उतराई साधारण थी, और वह भी हरे वृक्षों की छाया में। कुछ दूर उतरकर दूसरी ओर से आनेवाली बड़ी धार के [illegible] ऊपर को चढ़ने लगे। कुछ दूर चलकर एक लीक मिली। फिर एक चौड़ी सड़क आ गई। मोटर की नहीं, पैदल की। अनुमान हो गया, अब हम युतेन्-जी मठ से बहुत दूर नहीं हैं। वृक्षों के बीच से चलते हुए हम एक छोटे गाँव में पहुँचे। यह होटलों का गाँव था। चंद क़दमों के बाद ही मठ का प्रथम दरवाज़ा था। इसके भीतर स्त्रियों का रहना नहीं हो सकता था, इसलिए सारे होटल बाहर बने हुए थे। दरवाज़े से मठ दो फ़र्लांग पर होगा। एक [illegible] का बना सुन्दर काठ का पुल मिला, जिसके पार मठ था। इस जगह भूमि अधिक विस्तृत और पर्वत-पंक्ति दूर हट जाती है। चारों ओर देवदार ही देवदार दिखाई पड़ते हैं। नदी, देवदार, पर्वतावली देखकर मैं तो समझने लगा, हिमालय में पहुँच गया हूँ। युतेन्-जी कोङ्-गो-सान् का सबसे बड़ा मठ है। इसमें २०६ भिक्षु रहते हैं, इसलिए बहुत-से मकान होने ही चाहिए। इस मठ की स्थापना चौथी सदी में हुई थी। और उसी जगह पर जहाँ, भारत से आये हुए भिक्षुओं [illegible] कथा के अनुसार नौ-नागों ने डरा धमकाकर भगाना चाहा था!

भारतीय भिक्षु का नाम सुनते ही लोगों के कान खड़े हो गये, और संकेजी के प्रधान की चिट्ठी पर तो और भी प्रभाव पड़ा। मठ के प्रधान ने स्वागत किया। जापानियों के आने के समय संकेजी के प्रधान [illegible] के हो गये थे, इसलिए वे जापानी भाषा [illegible] नहीं [illegible] भिक्षु सकते थे, किन्तु यहाँ अब [illegible] बोल रहे थे। दो भिक्षु कुछ अँगरेज़ी वाक्य भी बोल लेते थे। ४। बजे हम पहुँचे थे और तीन बजे ही लौटना था, इसलिए [illegible] मन्दिर देखना था। [illegible] बिलकुल भारतीय जूतों की ऐसी है, [illegible] और आज-कल रबड़ के जूतों के [illegible] के कारण [illegible] भी नहीं मिलते। प्रधान मन्दिर में गये। एक वृक्ष की शाखाओं पर बहुत-से बुद्ध खड़े हैं। कहा तो गया, छः सौ बुद्ध हैं, किन्तु उतने मालूम नहीं पड़ते। विहार की स्थापना के समय का बाहर का [illegible] पाषाण-स्तूपमात्र है। स्तूप में नौ तल्ले हैं, और वे चतुष्कोण हैं। संकेजी की अपेक्षा यह स्तूप अधिक सुरक्षित है, इसी लिए [illegible]। विहार की सबसे पुरानी इमारत प्रधान द्वार है, शायद पीछे का हो। आजकल इसमें सैकड़ों नामांकित हैं, जो सदी के तट के [illegible] हैं। [illegible] की पट्टियाँ लटक रही हैं। हर एक नाम अमर करनेवाले [illegible] कुछ पैसे ख़र्च कर उन्हें यहाँ लगवा देते हैं। यह [illegible] नेरहवीं सदी में बना था। प्रधान मन्दिर के एक ओर चार सौ वर्ष का पुराना एक विशाल घंटा है। उसी की बग़ल में मन्दिर का म्यूज़ियम है। इसमें कुछ पुरानी पुस्तकें, चित्र-फलक, कपड़े और बर्तन रक्खे हैं। इनमें एक सात सौ वर्ष की पुरानी पुस्तक है। छः सौ वर्ष के पुराने दो-तीन जापानी चित्र-फलक हैं। एक में हरे बाँस के सामने मर-[illegible] को चित्रित करने में बड़े कौशल का परिचय दिया गया है। मठ का छः सौ वर्षों का एक भिक्षु-वस्त्र (चीवर-केसा-कषाय) भी है। इसको [illegible] ख़ूब साफ़ है, और मकान भी साफ़ रक्खे गये हैं, इससे जान पड़ता है कि युतेन्-जी मठ अच्छी अवस्था में है। मठ के भिक्षुओं के पढ़ने के लिए पाठशाला है, जिसमें ६० विद्यार्थी पढ़ते हैं।

आते ही कोङ्-गो-सान् के दूध-जैसे सफ़ेद मधु से स्वागत किया गया था। चलते वक़्त हस्तलेख देने के लिए आग्रह हुआ। दो-तीन

छोटे बड़े काग़ज़ों पर कुछ संस्कृत वाक्य लिख दिये, जो भविष्य में आनेवाले भारतीय को ज़रूर दिखाये जायँगे।

ठीक तीन बजे विदा हुए। पहले सवा तीन घंटे में पूरी की गई यात्रा लौटते वक़्त सवा दो ही घंटे में तय की। मोटर के लिए पौन घंटे इन्तज़ार करना पड़ा। शाम को चिराग़ जलने से पूर्व ही होटल में आ दाख़िल हुए।

नमकुंड में विधिपूर्वक स्नान हुआ। आकर कमरे में बैठने पर एक जापानी भिक्षु मिलने आये। वे आज ही आये थे। श्री कुरिता ३ बजे लौट गये थे, इसलिए आगे की यात्रा के बारे में बहुत-कुछ जानना था। भिक्षु गो-तो थोड़ी अँगरेज़ी भी बोल लेते हैं। इसलिए जब उन्होंने प्रस्ताव किया कि "यदि एक दिन और अधिक दें तो हमारे साथ परसों चो-अन्-जी मठ में पहुँच सकते हैं। हाँ, रास्ता (४० किलोमीटर) प्रायः सारा पैदल का है"। हमने तुरन्त स्वीकार किया, और सात बजे उनके साथ प्रस्थान करने का निश्चय कर सो गये।

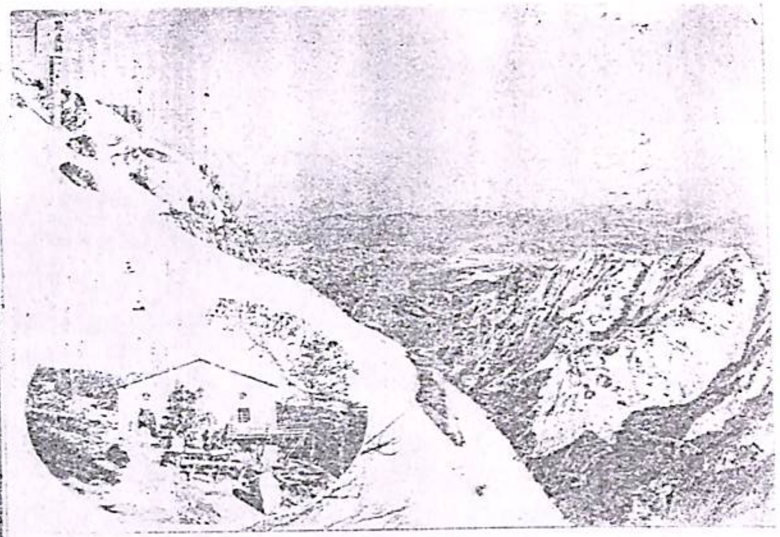
पन्द्रह तारीख़ को हाथ-मुँह धो नाश्ता हुआ। ७ येन् होटल के वास-भोजन तथा डेढ़ येन् परिचारक-गण को पारितोषिक देकर मोटर के अड्डे पर गये। पन्द्रह पैसे देकर ठाक वक़्त पर मोटर से रवाना हुए। हमारे नये तीन साथियों में एक डाक्टर, इकेदा महाशय इंजीनियर, और श्री गो-तो भिक्षु थे। पिछले दोनों सज्जन इँग्लिश बोल लेते हैं। आज की पैदल-यात्रा में बहुत आदमी थे। मोटर छोड़ने पर चढ़ाई शुरू हुई। प्रायः घंटे भर चलकर हम [illegible] के नीचे पहुँचे। यहाँ तीन विचित्राकार पर्वतशिखर हैं, जिन्हें तीन बुद्ध कहते हैं। एक शिखर पर चढ़ने के लिए सीढ़ी और लोहे की ज़ंजीर भी लगी है। कुछ सौ गज़ चढ़कर हम वहाँ पहुँचे। फ़ोटोग्राफ़र कैमरा लिये तैयार था। चारों का फ़ोटो उतरा। ऊपर से दूर तक के हरे तथा पथरीले पहाड़ों की एक झाँकी ली। फिर दूसरी ओर से उतर कर रास्ते पर पहुँचे। अभी चढ़ाई ही चढ़नी थी। चढ़ाई कठिन तो थी, किन्तु सवेरे की



[कोङ् गोसान्—संकेइजी मठ]

मुसीबत शाम को भूल जाती है। हमारे आगे आगे एक हृष्ट-पुष्ट योरपियन व्यक्ति जा रहा था। नज़दीक से देखने पर मालूम हुआ, कि पुरुष-वेष में वह स्त्री है। बड़ी बेतकल्लुफ़ी से पीठ पर पंद्रह सेर का बोझा लादे जा रही थी। पूछने पर मालूम हुआ, हमारे आज के गन्तव्य स्थान से वह कल ही लौट चुकी है।

नौ बजे के क़रीब हम जोत पर पहुँचे। पन्द्रह मिनट की उतराई उतर कर सोडालेमनेड, मिठाई-चाकलेट की दूकान मिली। वहीं कुर्सी खड़ी थी, ४० येन् ((२)) देकर ४ मील तक चलना तय हुआ। इस तरह इंजीनियर और हम मोटर से रवाना हुए। हमारे बाक़ी दो साथी झम्पान पर सवारी कर रहे थे। यहाँ का झम्पान बदरीनाथ से दूसरी ही तरह का है। दो बाँसों से एक बेंत की कुर्सी बँधी रहती है। आगे की ओर रस्सी से बँधा एक पायदान भी लटकता रहता है। दोनों बाँस ६-७ हाथ लम्बे होते हैं। हर एक सवारी पर तीन आदमी होते हैं। एक बार दो आदमी उठाते हैं। सवारी कंधे पर नहीं उठाई जाती। आदमियों के कंधे से कांधासीती दो फंदे लटकते रहते हैं। फंदे के भीतर बाँस को डाल हथेली से भी बाँस को पकड़े वाहक चलते हैं। मोड़ के संकीर्ण होने पर सवारी को गिरने का डर होता है, इसलिए ऐसी जगह उतर जाना पड़ता है। एक आदमी को एक



[कोङ् गोसान्—वैरोचन शिखर, कुने होटल]

कोरियन को ७५ येन् वेतन मिलने पर जापानी को १०० येन् मिलेगा। दोनों की तनख्वाह में बराबर २५ सैकड़े का अन्तर होता है। पुलिस कान्स्टेबल जापानी होने पर ५० येन् पावेगा, किन्तु कोरियन होने पर ३५ येन् ही मिलेंगे। जापानी को घर, अन्न आदि पर कोरियन की अपेक्षा अधिक ख़र्च करना पड़ता है, इसी लिए यह फ़र्क़ रखना पड़ता है। नौकरी में व्यक्ति के निर्वाह-मान को तो देखना ही पड़ेगा।

आज के अन्तिम तीन मील की यात्रा तो प्राकृतिक दृश्य में अद्भुत थी। चाहे पहाड़ और उसकी शिलाओं और शिखरों को देखिए, चाहे ऊँचे वृक्षों और वनस्पतियों की ओर नज़र दौड़ाइए। सभी मुझे पद-पद पर नगाधिराज हिमालय का स्मरण दिला रहे थे। कुने होटल के मील डेढ़ मील पर जाने पर तो भोजपत्र के वृक्ष भी आ गये। यहाँ साल में चार मास तक बर्फ़ रहती है। रास्ता अप्रैल-मई में खुलता है।

चार बजे हम कुने होटल में पहुँचे। एक पर्वत की चोटी पर समुद्र-तल से पाँच हज़ार फुट ऊपर यह होटल अवस्थित है। कोङ्-गो-सान् के सर्वोच्च शिखर बिरो-बो (वैरोचनकूट) के दर्शनार्थी बहुत-से लोग हर साल यहाँ आया करते हैं। उन्हीं के लिए रेलवे के भूतपूर्व प्रधान डायरेक्टर कुने के स्मरण में यह होटल बना है। होटल अभी पूरी तरह से तैयार नहीं हुआ है। रेडियो का भी यहाँ इन्तज़ाम है। तैयार हो जाने पर यह भी एक आकर्षक स्थान हो जायगा। यह स्थान ३८ अक्षांश में अवस्थित होने से भारत के बदरीनाथ के समान ठंडा है।

शाम को मालूम हुई थी—कल पाँच बजे सबेरे ही वैरोचनकूट पर चढ़ना है। मैंने तब पाँच बजे उठने का संकल्प किया था, और ठीक समय पर नींद खुल भी गई, किन्तु अपनी मंडली को देखा कि अभी लम्बी पड़ी है। तब सात बजे तक कुकुरनिंदिया लेता रहा। उठकर हाथ-मुँह धोते गये, तब देखा, बाहर बूँदें पड़ रही हैं, और आकाश में घना बादल छाया हुआ है। ऐसे समय में वैरोचनकूट से समुद्र और पर्वत-

रोज़ का ३॥ येन् देना पड़ता है। (येन् की क्रय-शक्ति देखने पर उसे साढ़े तीन रुपया ही समझिए)। और इसी से यह भी मालूम होता है कि कोरिया में मज़दूरी उतनी सस्ती नहीं है, जितनी भारत में। ढोने-वाले के मोज़े-सहित जापानी बूट, साफ़ कपड़े और तिनके की टोप देखने से भी आपको उसका अनुमान हो जायगा।

शोगेन् में ट्रेन से उतर हम धार पार हो एक दूसरी धार से ऊपर की ओर चलने लगे। इंजीनियर साथ साथ चल रहे थे। दोपहर को एक शीतल स्थान पर बैठकर हमने होटल-द्वारा प्रदत्त पाथेय को तक-सात् किया। रास्ते में जहाँ-तहाँ थोड़ी थोड़ी दूर पर विश्राम करते हुए आगे बढ़ रहे थे। एक जगह इंजीनियर से कोरिया के बारे में बात-चीत छिड़ गई। उन्होंने कहा—हज़ारों कोरियनों ने जापानी लड़कियों से शादी की है। जापानी इसे बुरा नहीं मानते। स्वयं जापान-सम्राट् के कुल की राजकन्या को कोरिया के एक राजवंशी कुमार ने ब्याहा है। लेकिन जापानी लोग बहुत कम कोरियन लड़कियों से ब्याह करते हैं। कारण शायद कोरियन स्त्रियों की काम करने में उतनी तत्परता का अभाव है, जितनी जापानी स्त्रियों में पाई जाती है। अथवा पोशाक के भद्देपन से कोरियन स्त्रियाँ अपने सौंदर्य को उतना आकर्षक नहीं बना सकतीं।

तनख़्वाह की बात चलने पर मालूम हुआ—उसी काम के लिए



[कोङ् गोसान्—अवलोकितेश्वर (कन्नन्) शिखर]

माला देखने का आनंद कहाँ मिलनेवाला था, और इसी लिए साथी इन्तज़ार कर रहे थे कि शायद बादल हट जायँ और कुदरत के रूप का मज़ा आ जाय। किन्तु वह होनेवाली बात न थी।

हमने नाश्ता किया। पाथेय साथ बाँध दिया गया। भोजन, बिस्तरा आदि सबके लिए ८ येन् देने पड़े।

७॥ बजे चले, कूट आधा मील से अधिक दूर नहीं था। चढ़ाई भी बहुत मुश्किल नहीं थी। आध घंटे से कम में ही ऊपर पहुँच गये। शिखर के बिलकुल पास सोडा, मिठाई, फल आदि की दूकान है। पास में यात्रियों के ठहरने का एक मकान था, जिसकी टीन की छत एक ही दो दिन पूर्व बड़ी सफ़ाई से उखड़कर बाहर रख दी गई थी।

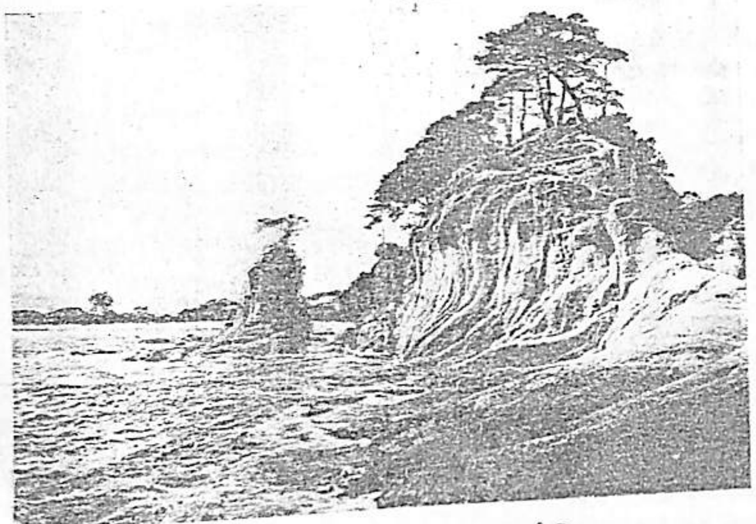
कूट की नोक पर तो हम चढ़ गये, किन्तु दस गज़ से आगे कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। हमारे ज़िद करने पर बूँदें कुछ कड़ी हो गईं। भागकर दूकान के भीतर पनाह ली।

साथी लोग एक बार बढ़कर बादलों के पर्दे के पीछे सूर्य की सफ़ेदी देखकर फिर बैठ गये। चंद मिनटों के बाद हताश होकर चलना पड़ा।

अब तक हमारा यात्रा पश्चिमी कोङ्-गो में हुई थी, किन्तु अब भीतरी कोङ्-गो में उतरना था। कुछ दूर ढलुआ पथ देखकर अनुमान हुआ था, पेट का पानी हिले बिना ही उतर जायँगे। किन्तु यह ग़लत ख़याल कुछ ही मिनटों तक रहा। बाईं ओर मुड़े, और देखा, अरे! यह तो खड़ी उतराई है। कुलियों ने उतरते हुए बतलाया—यह सोने-रुपे की सीढ़ी है। शायद बहुत खड़ी सोने की और कम खड़ी रुपे की। एक घंटा उतरने पर देखा, कितने ही स्त्री-पुरुष ऊपर की ओर आ रहे हैं। अपने राम तकदीर मना रहे थे—अच्छा हुआ जो बाहर से भीतर की ओर चल रहे हैं, नहीं तो इस चढ़ाई में छठी का दूध याद आ जाता। प्रायः सारी कठिन उतराई उतर आने पर देखा, कुछ कोरियन सम्भ्रान्त महिलायें आ रही हैं। उनमें एक-दो दस वर्ष पूर्व के पेरिस-फ़ैशन में ज़र्क़-बर्क़ थीं; और उनके पीछे एक साठ वर्ष की बुढ़िया एक फ़ैशनेबुल तरुणी का हाथ पकड़े ऊपर की ओर घसीटी जा रही थी। भाषा मालूम न थी, नहीं तो कहना चाहता था—अरे छोकरी! क्यों मरने जा रही है? अभी तो चढ़ाई का श्रीगणेश ही हुआ है।

बूँदें ऊपर ही भर थीं। उतराई में नहीं। ऊँचे वृक्षों की छाया में हम चलते गये। दस बजने के क़रीब म्योकिल्सो पहुँचे। यहाँ एक पर्वतकन्ध में ५० फ़ुट ऊँची पद्मासनासीन बुद्ध-मूर्ति खुदी हुई है। इसका आसन ही ३० फ़ुट ऊँचा है। कला की दृष्टि से अच्छी तो नहीं कही जा सकती, किन्तु कोङ्-गो-सान् की यह सबसे बड़ी शिलोत्कीर्ण मूर्ति है। किसी समय यहाँ मन्दिर रहा होगा, किन्तु अब बौद्ध-धर्म के बुरे दिन आने पर मठ उजड़ गया। अब सामने चबूतरा-सा है, जिसकी मरम्मत होती रहती है। किसी ने यहाँ पत्थर की एक लालटेन लगा दी है।

कुछ समय और उतरने पर हम मक-इन् (महायान-मठ) के सामने पहुँचे। रास्ता छोड़कर ५० गज़ ऊपर चढ़ने पर मठ मिला। मठ की सभी इमारतें नई हैं, और सभी साफ़-सुथरी तथा अच्छी अवस्था में हैं। भिक्षु भी इसके के पर जैसे सफ़ेद कपड़े पहने थे। यह सब देखने से मालूम हुआ कि कोरिया में बौद्ध-धर्म की फिर जाग्रति हो रही है। इस मठ में ३० भिक्षु रहते हैं। और उतरने नदी तट पर एक जापानी भोजनालय मिला। नदी पार कुछ ऊपर फुनोकुरतु का बौद्ध-मठ है। इसका एक देवल एक चट्टान की छोर पर बना है, और उसके



[समुद्र-तट से कोङ्गो—कोरिया का वज्रपर्वत]

बड़ी भार को सँभालने के लिए एक लोहस्तम्भ बना है। यह एक-स्तम्भी मठ कोङ्-गो-सान् की अजायबात में से है।

शिलाओं में छः-छः इंच गहरे कितने ही लेख हैं। उनमें अधिकांश नये हैं। कुछ मिनट और उतरने पर नदी की बाईं ओर रास्ते की एक शिला में बहुत-सी मूर्तियाँ उत्कीर्ण मिलीं। सामने तीन बुद्ध-मूर्तियाँ हैं, इसी लिए जापानी लोग इसे सन्-बुत्सुगन् (तीन बुद्धशिला) कहते हैं।

ग्यारह बजे के कुछ बाद हम छोकुन-जी मठ में पहुँचे। यहाँ भी ३० भिक्षु रहते हैं। मठ अच्छी अवस्था में है। कोरिया की भाषा में इसे प्यो हुन्-सा कहते हैं। प्यो हुन् नाम के एक दक्षवीं भिक्षु ने ६७७ ईसवी में इसकी स्थापना की थी। किन्तु उस समय की कोई चीज़ अब नहीं है। प्रधान मन्दिर तथा कुछ और इमारतें पंद्रहवीं सदी में बनी थीं। इस मठ के एक दर्जन शाखा-मठ हैं।

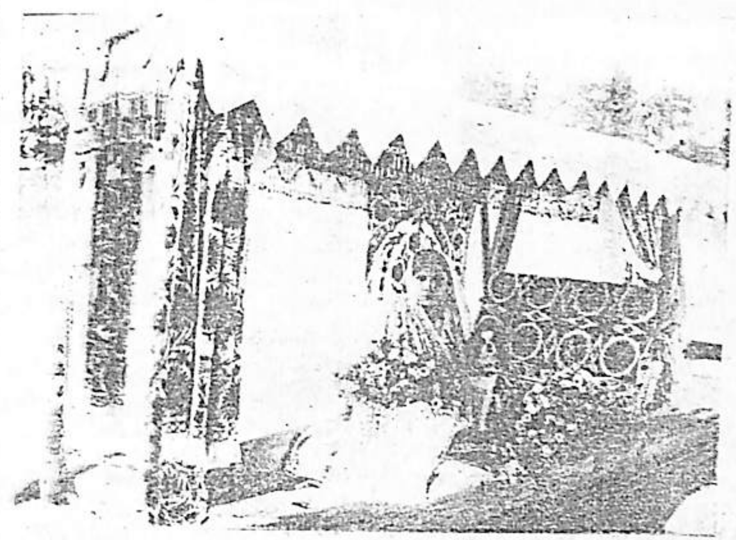
यहीं हमें अगले चोअन्-जी मठ के एक भिक्षु तथा उचिकोङ्गो के स्टेशन-मास्टर मिल गये। साथ ही नीचे चले। प्रायः डेढ़ मील पर चोअन्-जी (चङ्-अन्-सा) मठ मिला। इस मठ की स्थापना पाँचवीं सदी में हुई थी। अनेक शिल्पियों ने इसे अतिसुन्दररूप दिया था, किन्तु ५५६ ईसवी में आग से जलकर राखमात्र रह गई। दसवीं और पंद्रहवीं सदियों में इसके पुनर्निर्माण में राजाओं का हाथ रहा। किन्तु सोलहवीं सदी के जापानी हमले में यह फिर आग की भेंट हुआ और ताइयुङ्-चेन्-मन्दिर-मात्र बच रहा। रेल के स्टेशन के पास होने से अब इस मठ की भी अभिवृद्धि हुई है। ३० भिक्षु रहते हैं।

स्टेशन-मास्टर से मालूम हो चुका था, अन्तिम ट्रेन साढ़े तीन बजे जायगी। जाकर मन्दिरों के दर्शन किये, भिक्षुओं से मिले, मध्याह्न-भोजन समाप्त किया। फिर थोड़ी देर विश्राम किया और दो बजे रवाना हुए। स्टेशन तक (प्रायः १॥ मील) पहुँचाने के लिए दोनों साथी भी चले। मठ के कार्यालय के सामने लोहे और सीमेंट का सुन्दर पुल था। यहाँ तक मोटर भी आते हैं। सड़क अच्छी है। यहाँ कोरियन और जापानी होटल हैं। स्टेशन प्रायः १॥ मील पर है। उनमें पहले ही योरपीय ढंग का चो-अन्-जी होटल है, जो रेलवे-द्वारा सञ्चालित है।

स्टेशन पर पहुँचने पर मालूम हुआ, अभी गाड़ी के आने में आध घंटे की देर है।

यहाँ से तेचुगन् तक (प्रायः ७० मील) एक कम्पनी की बिजली-चालित रेलवे है। पहाड़ों की अधिकता के कारण बहुत-सी सुरंगें पड़ती हैं। लाइन बड़ी लाइन (ब्राडगेज) है।

७॥ बजे रात को गाड़ी केइ-जो स्टेशन पर पहुँची; ठिकाने पर आते ही देखा श्री तानी पहुँचे हुए हैं, और इस प्रकार भाषा की दिक्क़त का सामना न करते हुए हम हिगाशी होङ्-गान्-जी मन्दिर में पहुँच गये।



[शिकारा]

स्वर्ग का एक कोना

लेखिका,
श्रीमती महादेवी वर्म्मा एम० ए०

श्रीमती वर्मा जी काश्मीर गई थीं। उसे उन्होंने 'स्वर्ग का एक कोना' बताकर जिस कवित्वपूर्ण भाषा में उसका इस लेख में चित्रण किया है, आशा है, वह भावप्रवण पाठकों को अधिक रोचक प्रतीत होगा।

उस सरल कुटिल मार्ग के दोनों ओर, अपने कर्त्तव्य की गुरुता से निस्तब्ध प्रहरी-जैसे खड़े हुए, आकाश में भी धरातल के समान मार्ग बना देनेवाले सफ़ेदे के वृक्षों की पंक्ति से उत्पन्न दिग्भ्रान्ति जब कुछ कम हुई तब हम एक दूसरे ही लोक में पहुँच चुके थे जो उस व्यक्ति के समान परिचित और अपरिचित दोनों ही लग रहा था जिसे कहीं देखना तो स्मरण आ जाता है परन्तु नाम-धाम नहीं याद आता।

उस सजीव सौन्दर्य्य में एक अद्भुत निस्पन्दता थी जो उसे नित्य दर्शन से साधारण लगनेवाले सौन्दर्य्य से भिन्न किये दे रही थी।

चारों ओर से नीलाकाश को खींचकर पृथ्वी से मिलाता हुआ क्षितिज रुपहले पर्वतों से घिरा रहने के कारण बादलों से बने घेरे-जैसा जान पड़ता था। वे पर्वत अविरल और निरन्तर होने पर भी इतनी दूर थे कि धूप में जगमगाती असंख्य चाँदी-सी रेखाओं के समूह के अतिरिक्त उनमें और कोई पर्वत का लक्षण दिखाई न देता था। जान पड़ता था किसी चित्रकार ने अपने आलस्य के क्षणों में रुपहले रंग में तूलिका डुबाकर नीले धरातल पर इधर-उधर फेर दी है।

जहाँ तक दृष्टि जाती थी, पृथ्वी अश्रुमुखी ही दिखाई पड़ती थी। जल की इतनी अधिकता हमारे यहाँ वर्षा के अतिरिक्त कभी देखने में नहीं आती, परन्तु उस समय के धरातल और यहाँ के धरातल में उतना ही अन्तर है, जितना धुले हुए सजल मुख और आँसूभरी आँखों में। मार्ग इतना सूखा था कि धूल उड़ रही थी, परन्तु उसके दोनों किनारे सजल थे, जिनमें कहीं कहीं कमल की आकृतिवाले छोटे फूल कुछ मीलित और कुछ अर्धमीलित दशा में भूल रहे थे।



[शीतकाल में काश्मीर का एक दृश्य]

हुए दूसरों के कौतूहल का कारण बन रहे थे और कहीं कोई धर्म्म-दिग्गज धर्मपालन और उदरपूर्ति में कौन श्रेष्ठ है, इस समस्या के समाधान में तत्पर थे। प्रकृति की चञ्चलता की कमी की पूर्ति मनुष्य में हो रही थी।

अधिकारियों ने हमारे कमरे, नौकर आदि की जैसी सुव्यवस्था थोड़े समय में कर दी वह सराहने-

रावलपिण्डी से २०० मील मोटर में चलने से शरीर अवसन्न हो ही रहा था, उस पर चारों ओर बिखरी हुई अभिनव सुषमा और संगीत के आरोह-अवरोह की तरह चढ़ाव-उतारवाले समीर की सरसर ने मन को भी ऐसा विमूर्च्छित-सा कर दिया कि श्रीनगर में वदरिकाश्रम पहुँचकर बड़ी कठिनता से सत्य और स्वप्न में अन्तर जान पड़ा। वह आश्रम जहाँ हाउसबोट में जाने तक हमारे ठहरने का प्रबन्ध था, सहज ही किसी ज़ू का स्मरण करा देता था, कारण, वहाँ अनेक प्रान्तों के प्रतिनिधि अपनी अपनी विशेषताओं के प्रदर्शन में दत्तचित्त थे। कहीं कोई पञ्जाबी युवती अपने वीरवेश में गर्व से मस्तक उन्नत किये देखनेवालों को चुनौती-सी देती घूम रही थी, कहीं संयुक्त-प्रान्त की कोई प्राचीना घूँघट निकाले इस प्रकार संकोच और भय से सिमटी हुई खड़ी थी मानो सब उसी के लज्जा-रूपी कोष पर आक्रमण करने पर तुले हुए हैं और वह उसे छिपाने के लिए पृथ्वी से स्थान माँग रही है, कहीं कोई महाराष्ट्र सज्जन शिखा का गुरुभार सिर पर धारण किये जलाने की लकड़ियों को धोते

योग्य थी, परन्तु वहाँ के वास्तविक जीवन का परिचय तो हमें अपने हाउसबोट में जाकर ही मिल सका। नीले आकाश की छाया से नीलाभ झेलम के जल में वे रङ्गीन जलयान वर्षा से धुले आकाश में इन्द्रधनुष की स्मृति दिलाते रहते थे।

जिसने इस प्रकार तरङ्गों के स्पन्दित हृदय पर अछोर अन्तरिक्ष के नीचे रहने का इतना सुन्दर साधन ढूँढ़ निकाला उसके पास अवश्य ही बड़ा कवित्वमय हृदय रहा होगा। जीना सब जानते हैं और सौन्दर्य्य से भी सबका परिचय रहता है, परन्तु सौन्दर्य में जीना किसी कलाकार का ही काम है।

हमारे पानी पर बने हुए घर में एक सुन्दर सजी हुई बैठक, सब सुख के साधनों से युक्त दो शयनगृह, एक भोजनालय और दो स्नानागार थे। भोजन दूसरे बोट में बनता था, जिसके आधे भाग में हमारा माँझी सुलताना सपत्नीक चीनी की पुतली-सी कन्या नूरी और पुत्र महमदू के साथ अपना छोटा-सा संसार बसाये हुए था। साथ ही एक तितली-जैसा शिकारा भी था जिसे पान की आकृतिवाली

छोटी-सी पतवार से चलाकर छोटा महमदू दोनों कूलों को एक करता रहता था।

हम रात को लहरों में झूलते हुए खुली छत पर बैठकर तट के एक-एक दीपक को पानी में अनेक बनते हुए तब तक देखते ही रह जाते थे जब तक नींदभरी पलकें बन्द होने के लिए सत्याग्रह न करने लगती थीं और फिर सवेरे तब तक कोई काम न हो पाता था जब तक जल में सफ़ेद बादलों की काली छाया अरुण होकर फिर सुनहरी न हो उठती थी। उन फूलों के देश पर रुपहले-सुनहले रातदिन बारी बारी से पहरा देने आते जान पड़ते थे। वहाँ के असंख्य फूलों में मुझे दो जङ्गली फूल मजारपोश और लालापोश बहुत ही प्रिय लगे।



[तैरता हुआ खेत]

मजारपोश अधिक-से-अधिक संख्या में समाधि पर फूल कर अपनी नीली अधखुली पँखड़ियों से, अस्थिपञ्जर को ढँके हुई धूलि को नन्दन बना देता है और लालापोश हरे लहलहाते खेतों में अपने आप उत्पन्न होकर अपने गहरे लाल रंग के कारण हरित धरातल पर जड़े पद्मराग की स्मृति दिला जाता है। फूलों के अतिरिक्त उस स्वर्ग के बालक भी स्मरण की वस्तु रहेंगे। उनकी मजारपोश जैसी आँखें, लालापोश जैसे होंठ, हिम जैसा वर्ण और धूलि जैसा मलिन वस्त्र उन्हें ठीक प्रकृति का एक अंग बनाये रखते हैं। अपनी सारी मलिनता में कैसे प्रिय लगते हैं वे! मार्ग में चलते चलते न जाने किस कोने से कोई भोला बालक निकल आता और 'सलाम जनाब पासा' कहकर विश्वासभरी आँखों से हमारी ओर देखने लगता। उसकी गम्भीरता देखकर यही प्रतीत होता था कि उसने सलाम करके अपने गुरुतम कर्त्तव्य का पालन कर दिया है, अब उसे सुननेवाले के कर्त्तव्यपालन की प्रतीक्षा है। शीत ने इन मोम के पुतलों को अंगारों में पाला है और दरिद्रता ने पाषाणों में—प्रायः सवेरे कुछ सुन्दर सुन्दर बालक नंगे पैर पानी में करम का साग लाने दौड़ते दिखाई देते थे और कुछ अपना अपना शिकारा लिये 'सलाम जनाब पार पहुँचायेगा' पुकारते हुए। ऐसे ही कम अवस्थावाले बालकों को कारखानों में शाल आदि पर गम्भीर भाव से सुन्दर बेलबूटे बनाते देखकर हमें आश्चर्य हुआ।

काश्मीरी स्त्रियाँ भी बालकों के समान ही सरल जान पड़ीं। उनके मुख पर न जाने कैसी हँसी थी, जो क्षण भर में आँखों में झलक जाती थी और क्षण भर में होंठों में। वे एड़ी चूमता हुआ कुर्ता और उसके नीचे पायजामा पहनकर एक छोटी-सी ओढ़नी को कभी कभी बीच से तह करके तिकोना बनाकर और कभी कभी वैसे ही सिर पर डाले रहती हैं। प्रायः मुसलमान स्त्रियाँ ओढ़नी के नीचे मोती-



[शिव जी का मन्दिर]

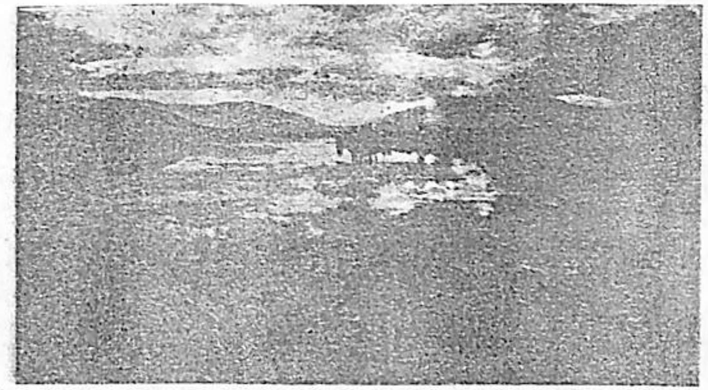
लगी या सादी टोपी लगाये रहती हैं जो सुन्दर लगती है।

प्रकृति ने इन्हें इतना भव्य रूप दिया, परन्तु निष्ठुर भाग्य ने दियासलाई के डिब्बे जैसे छोटे मलिन अभव्य घरों में प्रतिष्ठित कर और एक मलिन वस्त्र-मात्र देकर इनके सौन्दर्य का उपहास कर डाला और हृदयहीन विदेशियों ने अपने ऐश्वर्य्य की चकाचौंध से इनके अमूल्य जीवन को मोल लेकर मूल्य-रहित बना दिया। प्रायः इतर श्रेणी की स्त्रियाँ मुझे कागज़ में लपेटी कलियों की तरह मुर्झाई मुस्कराहट से युक्त जान पड़ीं। छोटी छोटी बालिकाओं की मन्द स्मित में याचना, प्रौढ़ाओं की फीकी हँसी में विवशता और वृद्धाओं की सरल चितवन में असफल वात्सल्य झाँकता रहता था।

इसके अतिरिक्त, सफ़ेद दुग्धफेनिभ दाढ़ीवाले, आँखों में पुरातन चश्मा चढ़ाये, पतली उँगलियों में सुई दबाकर कला को वस्त्रों में प्रत्यक्ष करते हुए शिल्पकार भी मुझे तपस्वियों-जैसे ही भव्य लगे। इस सुन्दर हिमराशि में समाधिस्थ पर्वत के हृदय में इतनी कला कैसे पहुँचकर जीवित रह सकी, यह आश्चर्य्य का विषय है। कोई काष्ठ-जैसी नीरस वस्तु को सुन्दर आकृति देकर सरस बना रहा था, कोई कागज़ कूटकर बनाई हुई वस्तुओं पर छोटी तूलिका से रंग भर-भरकर उसमें प्राण का संचार कर रहा था और कोई रंग-बिरंगे ऊन या रेशम से सूती और ऊनी वस्त्रों को चित्रमय-जगत् खिंचे दे रहा था। सारांश यह कि कोई किसी वस्तु को भी ईश्वर ने जैसा बनाया है वैसा नहीं रहने देना चाहता था।

काश्मीर के सौन्दर्य्यकोष में सबसे मूल्यवान मणि वहाँ के शालामार और निशातबाग़ माने जाते हैं और वास्तव में सम्राज्ञी नूरजहाँ और सम्राट् जहाँगीर की स्मृति से युक्त होने के कारण वे हैं भी इसी योग्य। शालामार में बैठकर तो अनायास ही ध्यान आ जाता है कि यह उसी सौन्दर्य्यप्रतिमा का प्रमोदवन रह चुका है जिसे सिंहासन तक पहुँचाने के लिए उसके अधिकारी को स्वयं अपने जीवन की सीढ़ी बनानी पड़ी और जब वह उस तक पहुँच गई तब उसकी गुरुता से संसार काँप उठा। यदि ये उन्नत, सघन और चारों ओर वरद हाथों की तरह शाखायें फैलाये हुए चिनार के वृक्ष बोल सकते, यदि आकाश तक अपने सजल उच्छ्वासों को पहुँचानेवाले फ़ौवारे बता सकते तो न जाने कौन-सी करुणमधुर कहानी सुनने को मिलती?

जिन रजकणों पर कभी रूपस्वियों के रागरंजित सुकोमल चरणों का न्यास भी धीरे-धीरे होता था,



[मानस बल]

इस लेख के सब चित्र डब्ल्यू लैंम्पर्ट की कृपा से प्राप्त

उन पर जब यात्रियों के भारी जूतों के शब्द से युक्त कठोर पैर पड़ते थे, तब लगता था कि वे पीड़ा से कराह उठेंगे।

किंवदन्ती है कि पहले शालामार का निर्माण और नामकरण श्रीनगर बसानेवाले द्वितीय प्रवरसेनद्वारा हुआ था, फिर उसी के भग्नावशेष पर जहाँगीर ने अपने प्रमोद-उद्यान की नींव डाली। अब तो उसके, अनन्त प्रतीक्षा में जीर्ण, वृक्षों की पंक्ति में, किसी परिचित पदध्वनि को सुनने के लिए निस्तब्ध पल्लवों में, ऊपर क्षणिक वितान बना देनेवाले फ़ौवारों के सीकरों में और झंझामय प्रपातों में पारस्य देश की कला की अमिट छाप है। हमारे अजस्र प्रवाहिनी सरिताओं से निरन्तर सिक्त देश ने जल को इतने बन्धनों में बाँधकर नर्तकी के समान लास सिखाने की आवश्यकता नहीं समझी थी, परन्तु मुसलमान शासकों के प्रभाव से इसने हमारे सजीव चित्र से उपवनों को सजल भी बना दिया। जिस समय सारे फ़ौवारे सहस्रों जल-रेखाओं में विभाजित हो-होकर आकाश में उड़ जाने की विफल चेष्टा में अपने तरल हृदय को खण्ड खण्ड कर पृथ्वी पर लौट आते हैं, सूखे प्रपातों से अश्रुपात होने लगता है, उस समय पानी के बीच में बनी हुई राजसी काले पत्थर की चौकी पर किसी अनन्त अभाव की छाया पड़कर उसे और भी अधिक कालिमामय कर देती है।

डल-झील की दूसरी ओर सौन्दर्य्यमयी नूरजहाँ के भाई आसफ़अली का पहाड़ के हृदय से चरण तक विस्तृत निशातबाग़ है, जिसकी क्रमबद्ध ऊँचाई के अनुसार निर्मित १२ चबूतरों के बीच से अनेक प्रकार से खोदी हुई शिलाओं पर से झरते हुए प्रपात अपना उपमान नहीं रखते। इसकी सजलता में शालामार की-सी प्यास छिपी नहीं जान पड़ती, वरन एक प्रकार का निर्वेद मनुष्य को तन्मय-सा कर देता है। मनुष्य ने यहाँ प्रकृति की कला में अपनी कला इस प्रकार मिला दी है कि एक के अन्त और दूसरी के आरम्भ के बीच में रेखा खींचना कठिन है, अतः हमें प्रत्येक क्षण एक का अनुभव और दूसरे का स्मरण होता रहता है। इसके विपरीत अन्तःपुर की सजीव प्रतिमाओं के लिए इन प्रतिमाओं के आराधक और आराध्य बादशाह के लिए तथा इनके कौतुक से विस्मित सर्वसाधारण के लिए तीन भागों में विभक्त शालामार के पत्ते पत्ते में मनुष्य की युगों से प्यासी लालसाओं की अस्पष्ट छाया मदिरा की अतृप्त मादकता लिये घूमती-सी ज्ञात होती है, परन्तु दोनों ही अपूर्व हैं, इसमें सन्देह नहीं।

इस चिर नवीन स्वर्ग ने सुन्दर शरीर के मर्म में लगे हुए व्रण के समान अपने हृदय में कैसा नरक पाल रक्खा है, यह कभी फिर कहने योग्य करुण कहानी है।

प्राणदण्ड

लेखक, श्रीयुत योगेन्द्रनाथ गुप्त

(१)

हज़ार वर्ष से भी पहले की बात है। उस समय राजराजा दक्षिण-भारत के चोलों के राजा थे। छोटा-सा देश था, छोटा ही राज्य था। त्रिचनापल्ली और तञ्जौर को मिलाकर ही उस समय चोलों का राज्य था। उस समय देश में शान्ति नहीं थी। छोटे छोटे राजा परस्पर कलह करके रक्त की नदी बहा रहे थे। पाँड्य और चेर नामक दो छोटे छोटे देश और थे। इन दोनों ही देशों के राजाओं का आपस में बराबर युद्ध होना रहता था। प्रजा हाहाकार करती रहती, किसी के घर में भोजन की सामग्री नहीं रहती था। जिस मार्ग से होकर सेनायें निकलतीं उसके आस-पास की खेती नष्ट हो जाती, गृहस्थों के मकान तक न रहने पाते। सैनिक-गण घरों को लूटकर प्रायः आग लगा दिया करते, और देखते ही देखते वे स्वाहा हो जाते। केवल उनकी जली हुई दीवारें हृदय में ध्वंस की स्मृति लिये खड़ी रह जाती थीं।

राजराजा जिस समय सिंहासन पर बैठे थे, वे किशोरावस्था को पार नहीं कर पाये थे। उनके बड़े भाई देश के लिए युद्ध करते-करते एक-एक करके अपने प्राण गँवा चुके थे। राजराजा को अल्पवयस्क देखकर पांड्य तथा चेर देश के राजाओं ने समझा कि चोल-राज्य को हड़पने के लिए यह समय अनुकूल है। उन लोगों ने कहला भेजा कि हमारी अधीनता स्वीकार करो या युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।

यह समाचार पाकर राज्य के लोग भयभीत हो उठे। किन्तु अल्पवयस्क होकर भी राजराजा विचलित नहीं हुए। उनके हृदय में पूर्व-पुरुषों के गौरव की कथा स्मरण हो आई। राजा करिकाल ने देश पर देश जीत कर चोलवंश का जो गौरव बढ़ाया था, क्या वह आज नष्ट हो जायगा? नहीं, नहीं, कदापि नहीं। जीवन रहते तक मैं ऐसा न होने दूँगा। राजराजा ने सोचा कि यदि शत्रु का यह अहङ्कार मैं न तोड़ सका तो चोलराज्य का ध्वंस हो जायगा। प्राण रहते क्या मैं ऐसा होने दूँगा?

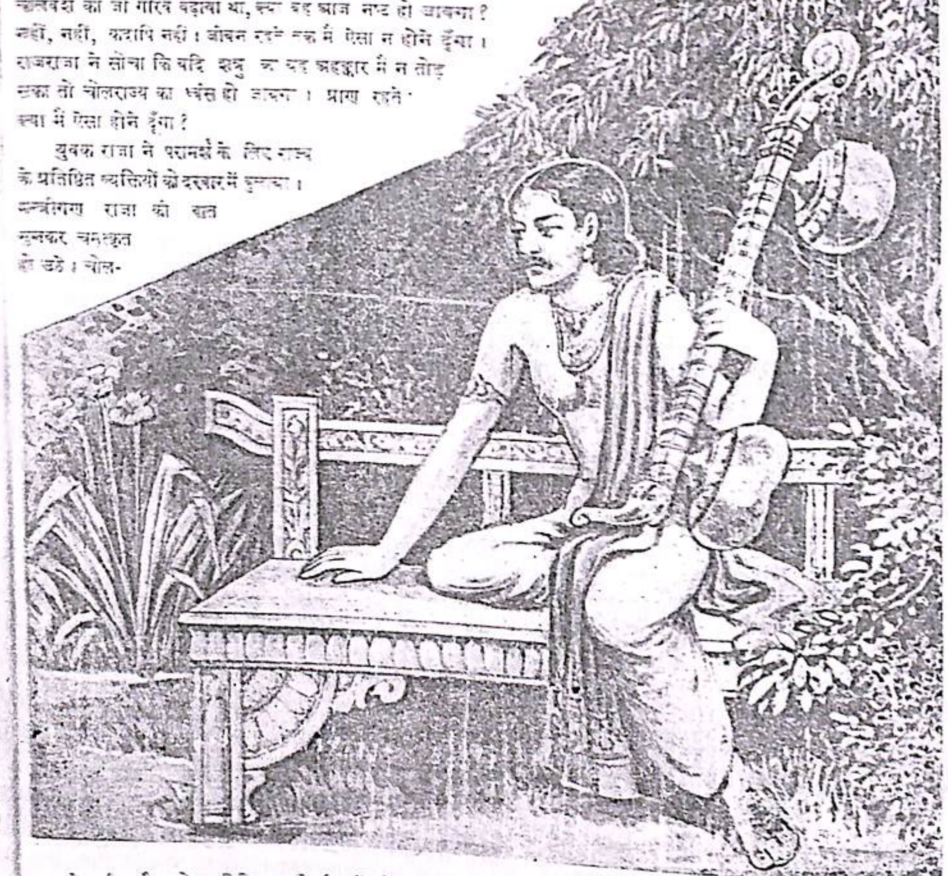
युवक राजा ने परामर्श के लिए राज्य के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को दरबार में बुलाया। मन्त्रीगण राजा की बात सुनकर चमत्कृत हो उठे। चोल-राज्य के अतीत गौरव को सुप्रतिष्ठित करने की उन्हें भी प्रबल आकांक्षा थी। किन्तु तामिल-देश के समस्त राजाओं पर आधिपत्य करना कोई आसान बात तो थी नहीं। कहाँ उसके लिए आवश्यक सेना थी और कहाँ उतना धन था? कोई कुशल सेनापति भी तो नहीं था!

मन्त्रियों तथा देश के बड़े बड़े लोगों ने एक-स्वर से कहा—महाराज, अर्थबल, सैन्यबल तथा रणकुशल सेनापति होने पर ही शत्रु पर विजय प्राप्त करना सम्भव है, अन्यथा विजय की कोई आशा नहीं है। इस प्रकार युद्ध करने से चोलराज्य पाण्ड्य तथा चेर देशवालों के हाथ में चला जायगा। आप किस बल पर असाध्य साधना करेंगे?

राजा ने कहा—बहुत अच्छा। आप लोगों का परामर्श सुन लिया, अब मैं अपना कर्तव्य स्थिर करूँगा। सब लोग विस्मित होकर अपने अपने घर चले गये।



कुण्ठित स्वरलहरी का अनुसरण करती हुई वहाँ पहुँची और देखकर विस्मित हुई।



(२)

राजा की किशोरावस्था व्यतीत हो चुकी थी। यौवन के प्रबल उत्साह और पराक्रम से उसका शरीर और मन परिपूर्ण था। उसने सेनापति अविरन्धरण को बुलवा भेजा। सेनापति की अवस्था उस समय पचास वर्ष से अधिक हो चुकी थी। किन्तु वार्द्धक्य की मलिन छाया तथा अवसाद उनके शरीर में नहीं था। उनका लम्बा शरीर स्वस्थ, सुडौल और सुन्दर था।

म्यान से तलवार निकाल कर सेनापति ने तरुण महाराज का अभिवादन किया और कहा—महाराज का क्या आदेश है?

दारुण निदाघ के प्रथम प्रभात में जिस समय उषा की सुनहरी आभा की आड़ से सूर्य प्रकाशित होते हैं तब उसकी रश्मियों के पीछे जिस प्रकार के दीप्त ताप की प्रखरता का आभास रहता है, उसी प्रकार अभिज्ञ सेनापति ने देखा कि यद्यपि तरुण होने पर भी यह युवक राजा होने के योग्य है। अविरन्धरण ने अनिमेष दृष्टि से उस दीप्त मुखच्छवि की ओर ताकते हुए प्रसन्न मन से कहा—आज्ञा दीजिए।

राजराजा ने कहा—मेरे शरीर का एक बिन्दु भी रक्त जब तक धमनियों में प्रवाहित होता रहेगा तब तक मैं चेर, चालुक्य तथा पाण्ड्य राजाओं की अधीनता कदापि नहीं स्वीकार करूँगा।

उत्साह से सेनापति का मुख प्रदीप्त हो उठा। उसने खुली तलवार म्यान में बन्द कर ली और घुटना टेककर कहा—महाराज, ऐसी ही बात आपके मुख से शोभा देती है।

"सेनापति, मैं युद्ध करूँगा। किन्तु मेरी सेना कहाँ है? सेना के कप्तान कहाँ हैं? युद्ध के योग्य रणपोत कहाँ हैं? राजकोष में अर्थ भी नहीं रह गया है। यदि चेर और पाण्ड्य देश के राजाओं ने एक साथ हमारे राज्य पर आक्रमण किया तो चोल-राज्य का एक भी आदमी जीवित न रहेगा। इसका कोई प्रतीकार कीजिए।"

सेनापति ने कहा—महाराज, सम्राट् परान्तक जब तक जीवित थे तब तक तो किसी वस्तु का अभाव था नहीं। स्वर्गीय महाराज की मृत्यु के बाद ही इस राज्य की यह दुर्दशा हुई है। किन्तु मुझे यदि समय मिला, अधिक नहीं केवल पाँच वर्ष का भी समय मिल गया, तो मैं धन एकत्र कर लूँगा, साथ ही युद्ध के लिए उपयुक्त रणपोत तथा सेना भी प्रस्तुत कर लूँगा।

"क्या आप ऐसा कर सकेंगे?"

"हाँ महाराज, अवश्य कर सकूँगा। अपने देश के गौरव से कौन नहीं गौरवान्वित होता? कौन नहीं चाहता कि अपने देश की मान-रक्षा करूँ? आपकी कृपा से मातृभूमि की गौरव-रक्षा के लिए अवश्य समुचित प्रयत्न कर सकूँगा।"

"आपका कल्याण हो। मैं जिस तरह भी हो सकेगा, धन-संग्रह कर दूँगा। आप सेना का संगठन आरम्भ कर दीजिए। मैं ऐसी भी कोई-न-कोई व्यवस्था करूँगा, जिससे चेर तथा पाण्ड्य-राज्य के राजाओं की लोलुप दृष्टि चोल-राज्य पर न पड़े।"

राजराजा यह बात जानते थे कि कलहनिरत चेर तथा पाण्ड्य-राज पाँच वर्ष ही नहीं, बल्कि उससे भी अधिक समय तक पारस्परिक युद्ध में ही संलग्न रहेंगे।

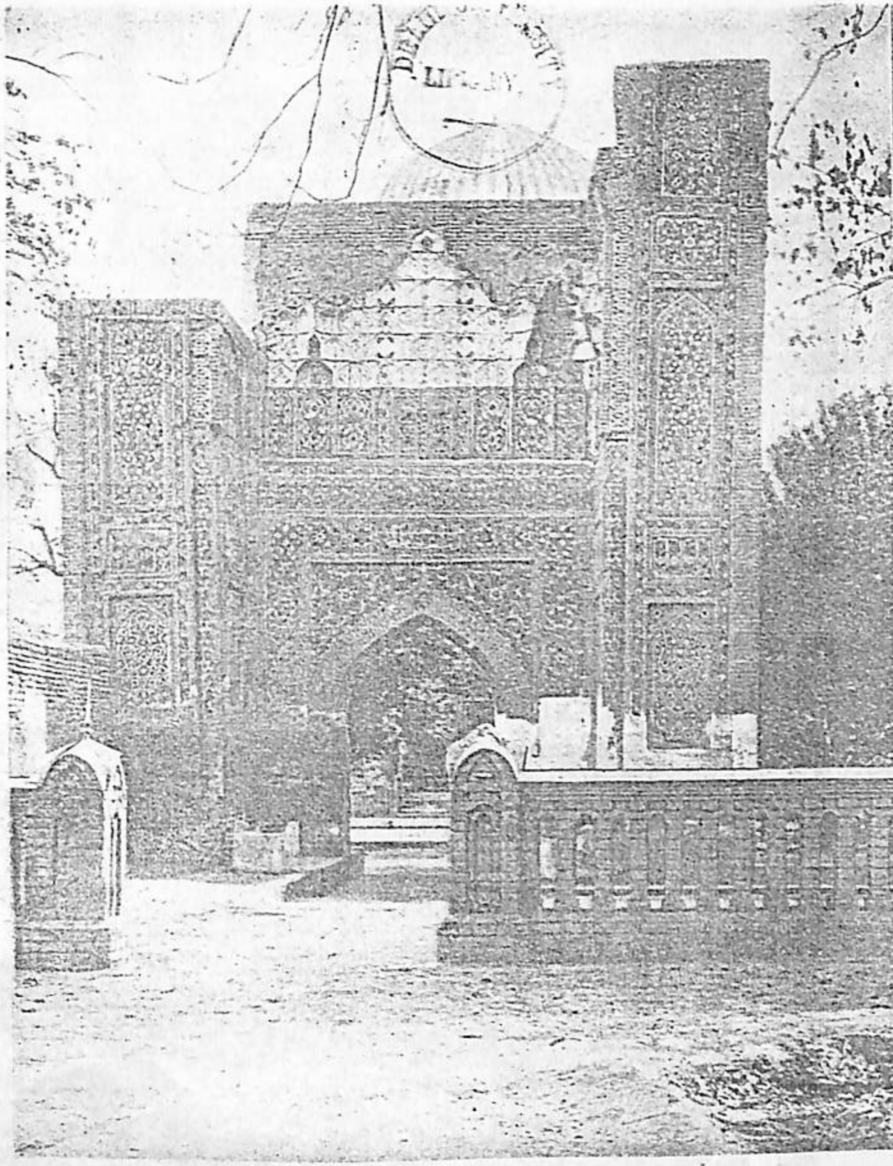
(३)

राजा के आह्वान से देश के लिए युद्ध करने को हज़ारों युवकों का दल आया और सेना में सम्मिलित हुआ। उन युवकों के ललाट में दीप्ति थी, मुख में हास्य था और बाहुओं में बल। उन सभी का हृदय उत्साह से पूर्ण था। अविरन्धरण उन्हें युद्धकला की शिक्षा देने लगा।

इतिहास के सभी पाठकों को यह बात मालूम है कि प्राचीन काल में भिन्न भिन्न देशों के सभ्य भारतवासियों के साथ व्यापार हुआ करता था। आर्यों ने भिन्न भिन्न देशों में जितने राज्य स्थापित किये थे उन सभी देशों में व्यापार के निमित्त वे आया-जाया करते थे। एक देश की वस्तुएँ अन्य देशों में ले जाकर वे विक्रय किया करते थे।

एक वह भी दिन था जब इन चेर, चोल और पाण्ड्य राजाओं के जहाज़ समुद्र का अतिक्रमण करके भिन्न-भिन्न देशों में व्यापार के लिए जाया करते थे। उस युग में वर्तमान मदरास के समीप एक राज्य था। उस देश की राजकुमारी पाण्डुवा ने विवाह के समय पिता से तीन सौ पैंसठ ग्राम दहेज़ के रूप में प्राप्त किये थे। प्रतिदिन एक-एक गाँव के लोग अपने अपने गाँव का राजस्व लाकर राजकुमारी को दिया करते थे। इस राजकुमारी के कई व्यापारिक जहाज़ थे। वे सब जहाज़ मोती लादकर यूनान और रोम जाया करते थे। उस समय भारतवासी इसी प्रकार समुद्र पार करके व्यापार किया करते थे। इस सिलसिले में चोल, चेर और पाण्ड्य राजाओं की सामुद्रिक चढ़ाइयों के सम्बन्ध में भारत में खूब प्रसिद्धि थी।

जहाज़-निर्माण का कार्य्य बहुत ही शीघ्रतापूर्वक किया गया। सैकड़ों जहाज़ तैयार करके जल में छोड़ दिये गये। सारे जहाज़ तैयार हो जाने पर राजराजा उन्हें देखने गया। समुद्र के तट पर खड़े होकर उसने देखा—वह असीम अनन्त नीलसागर अनन्त आकाश की गोद में क्षितिज में जाकर मिल गया है। इसकी हर एक तरङ्ग से कैसा गर्जन हो रहा है! उसके मन में याद आई उस दिन की बात जब उसके पूर्वज फेनिल नील अनन्त सागर के हिंडोले पर झूलते झूलते व्यापार के निमित्त अपनी वस्तुएँ देश-विदेश को भेजा करते थे। वही समुद्र है, वही चोल-राज्य है, वही चोल-निवासी हैं, वही गिरि, नदी, वन आदि सभी कुछ हैं! तब कौन-सी ऐसी बात है जिसके कारण उस युग में जो सम्भव था वह आज क्यों न सम्भव होगा? वही साहस, वही पराक्रम क्या आज न लौट सकेगा?



समरक़न्द में तैमूरलङ्ग का मक़बरा। ईंटों और खपड़ों पर की गई नक़्क़ाशी का एक नमूना। उस समय वहाँ ऐसी इमारतों का बाहुल्य था।



अबीसीनिया में योरपियन ढङ्ग की सैनिक शिक्षा बड़े ज़ोरों से आरम्भ हो गई है। तीन लाख सैनिक उत्तरी मोर्चे पर भेजे जा रहे हैं। चित्र में स्वेडन देश का एक शिक्षक उन्हें फ़ौजी तालीम दे रहा है।





दिसम्बर के अन्त में—त्रिवेन्द्रम् में होनेवाले महिला-सम्मेलन के लिए बम्बई-महिला-संघ के स्त्री-प्रतिनिधि।



कुमारी कमला शिवदासिन (कराची सिंध)—इन्होंने बङ्गाल के शान्तिनिकेतन की नृत्य-कला का सुन्दर अध्ययन किया है। इस चित्र में ये अपना एक भारतीय



बेला सरकार—मार्टिन एण्ड कम्पनी के इंजीनियर मिस्टर जी० के० सरकार की पुत्री हैं। इस वर्ष प्रयाग-संगीत-सम्मेलन में ध्रुपद की प्रतियोगिता में ९ वर्ष के अन्दर की



मिस रेवादत्त—ये अ... अपनी उम्र के ११वें वर्ष में हैं... प्रयाग में जो हाल में सर्वभारती... संगीत-सम्मेलन हुआ था उस... मे [illegible]



श्रीयुत बी॰ ग्रो॰ चाघरी। व प्रथम गूँगे और बहरे भारतीय चित्रकार हैं जो लन्दन के 'रॉयल कालेज ग्राफ़ ग्रार्ट' से चित्रकला में ग्रेज्युएट होकर निकले हैं।



पंजाब-सरकार के भूतपूर्व मिनिस्टर लाला हरकिशनलाल। इन्हें अदालत का अपमान करने के कारण गत मास में एक महीने की सज़ा सुनाई गई थी। ये पंजाब के एक बड़े बैंक के चेयरमैन और वहाँ के प्रमुख व्यापारियों में हैं।

श्रीयुत वाङ्ग शीङ्ग वेई—चीन के प्रधान मंत्री और वैदेशिक मंत्री जिन पर हाल में गोली का घातक आक्रमण हुआ था।





सर एडवर्ड बक। ये रूटर के लन्दन में स्थित कार्यालय के एजंट हैं और हाल में भारत भ्रमण के लिए आये हैं।



बड़ौदा की हर हाइनेस महारानी साहबा अपनी विलायत-यात्रा समाप्त करके स्वदेश लौट आई हैं। आपका यह चित्र बम्बई में इटालियन जहाज़ विक्टोरिया से उतरने के बाद लिया गया है।



कुमारी रोशन नौशेरवाँ मिर्ज़ा। ये मदरास विश्व-विद्यालय की ग्रेज्युएट हैं और टाटा की छात्र-वृत्ति पाकर आक्सफ़ोर्ड में पढ़ने के लिए इँग्लेंड गई हैं।

अन्त में सम्भव हो गया। एकलव्य की शुभ साधना के समान राजराजा की साधना सफल हुई। आज उनके दस लाख सैनिक युद्ध के लिए आवश्यक अस्त्र-शस्त्र से तैयार थे। सैकड़ों युद्धपोत रण के गौरव से गर्वित थे। उनके मस्तूल पाल डालकर वन के वृक्षों के समान आकाश की ओर मस्तक उठाये खड़े थे। इस प्रकार की सारी तैयारी हो जाने पर उस पहली मुलाक़ात के ठीक पाँच वर्ष बाद सेनापति अविरन्धरण ने आकर राजा के दर्शन की प्रार्थना की।

राजराजा ने बड़े ही आदर के साथ सेनापति को ग्रहण किया। इस पाँच वर्ष में सेनापति और भी वृद्ध हो गया था। उसके मस्तक के सभी बाल सफ़ेद हो गये थे, किन्तु मुख में प्रसन्नता की मुस्कराहट थी।

एक दिन चेर तथा पाण्ड्य देश के राजाओं ने राजराजा के पास दूत भेजकर कहलाया था कि या तो हमारी अधीनता स्वीकार करो या युद्ध करो। आज उसके उत्तर के रूप में चोलराज्य का दूत चेरराज्य तथा अन्यान्य शत्रु-राजाओं के पास यही सन्देश लेकर गया। चेरराज्य ने उद्धत-भाव से कहा—मैं युद्ध करूँगा। पाण्ड्य-राज्य ने कहा—सोचकर उत्तर दूँगा।

राजराजा ने अब युद्ध की घोषणा कर दी। पहले युद्ध हुआ चेर-राज्य के साथ। चेरराज्य जल तथा स्थल दोनों ही प्रकार के युद्ध में पराजित हुआ, उसकी नौवाहिनी ध्वंस हो गई, उसका अहङ्कार चूर्ण हो गया। इसी प्रकार पराजित होने पर पाण्ड्य-राज्य ने भी उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। विजय-लक्ष्मी ने उस दिन जो गौरव की माला हाथ में लाकर राजराजा को पहनाई थी वह आजन्म अम्लान-भाव से उनके गले में झूलने लगी।

देखते देखते चोलराज्य समस्त करमण्डल-समुद्र-तट तक विस्तृत हो गया। राजराजा ने एक-एक करके अपनी सेनाओं का दिग्विजयी दल लेकर उत्तर में कलिङ्ग और दक्षिण में सिंहल तक विजय कर लिया।

राजधानी तंजौर अतुल धन-सम्पत्ति से ऐश्वर्यशाली हो उठी। वहाँ राजराजा ने एक अपूर्व देव-मन्दिर बनवा दिया। वह देव-मन्दिर आज भी वर्तमान रहकर उनकी कीर्ति का गौरव प्रकाशित कर रहा है। इसी प्रकार देश पर देश जीतकर वे दक्षिण-भारत के एक विजयी सम्राट् के रूप में परिगणित हो गये। उनकी उपाधि हुई राजाधिराज राजचक्रवर्ती।

(४)

इसी तरह बहुत दिन बीत गये। राजराजा अब प्रौढ़ हो चुके थे। सेनापति अविरन्धरण दिवंगत हो गया था। युवराज राजेन्द्र तरुण युवक था। सैन्यदल का वह प्रिय सेनापति था। सर्वत्र शान्ति, सर्वत्र सुख-समृद्धि विराजमान थी। कमला के कमल हास्य से खेत-खेत में हरी-भरी खेती लहलहाती रहती, नदियों में क्षीर की धारा प्रवाहित होती रहती, गाँव गाँव में उत्सवगीत होते रहते। नगर धन-धान्य से पूर्ण थे, देवमन्दिर स्तवगीत से मुखरित तथा आरती के घंटे से ध्वनित थे। ऐसा सुखमय युग था।

ऐसे ही समय में समाचार आया कि वेंगी का राजा अभी तक पराजित नहीं हो सका। वह इस समय भी स्वाधीन है। वेंगी छोटा-सा राज्य था, इसलिए राजराजा ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया था। शायद बाद को भी वह उधर ध्यान न देता। परन्तु वेंगी के राजा विमलादित्य ने राजराजा की राजधानी तंजौर के एक वैश्य को अपमानित और लाञ्छित किया था, इसलिए इस अनुचित अपमान के प्रतीकार के लिए राजराजा सोये हुए सिंह के समान जाग पड़े। उन्होंने अपने पुत्र राजेन्द्र से कहा कि जिस प्रकार भी सम्भव हो, इस उद्दत राजा को बन्दी करके लाओ, अन्यथा जीवित अवस्था में मत लौटना। पिता की आज्ञा शिरोधार्य करके राजेन्द्र ने वेंगी के राजा के विरुद्ध युद्ध करने के लिए प्रयाण किया।

(५)

राजा विमलादित्य को प्रजा नहीं चाहती थी। सैनिकगण भी उसके प्रति श्रद्धा नहीं करते थे। जो राजा प्रजा का पालन नहीं करता, जो राजा सैनिकों को वेतन नहीं देता, दीन-दुखियों के दुःख से दुःखी होकर आँसू नहीं बहाता, उसकी दुरवस्था देखकर प्रजा क्यों आँसू बहावे? सैनिकगण ही उसके लिए क्यों लड़ने लगे? राजा विमलादित्य राजकार्य्य नहीं देखा करता था। वह केवल आमोद-प्रमोद में ही अपना समय व्यतीत किया करता था, प्रजा के सुख-दुःख का उसे कोई ख़याल नहीं था। राजेन्द्र चोल जिस समय अपना दल-बल लेकर विमलादित्य की राजधानी के तोरण के सम्मुख पहुँचा और मोरचाबन्दी कर दी, उस समय विमलादित्य की आँखें खुलीं। किन्तु कहाँ उसके सेनापति थे, कहाँ मन्त्री थे और कहाँ सैनिक थे? कोई उसके पास तक न फटका। सैनिकों ने कह दिया कि हम युद्ध नहीं करेंगे। उन्होंने सोचा कि राजराजा प्रजावत्सल राजा हैं। वे चोल हैं तो इससे हानि ही क्या है? हम चालुक्य होकर भी तो चालुक्यराज से किसी प्रकार के उपकार की आशा नहीं कर सकते? वेंगी-राजा की एक चिड़िया भी राजा के पक्ष में युद्ध करने के लिए तैयार न हुई, बिन्दुमात्र भी रक्तपात न हुआ। अनायास ही वेंगी पर विजय हो गई। बन्दी विमलादित्य की मुखश्री मलिन हो उठी। विजयी राजराजा के सैनिक विजय के उल्लास में वेंगी-राजा के हृदय पर आघात पर आघात पहुँचाने लगे। लज्जा और अपमान से उसका मस्तक नत हो उठा।

इस विजय का समाचार पाकर राजराजा आनन्द से गद्गद हो उठे। विजय का डंका बज उठा, देवमन्दिरों में पूजा-पाठ होने लगे।

(६)

उस दिन राजमार्ग में बेहद भीड़ थी। घर घर, बरामदों में तथा खिड़कियों के पास सर्वत्र आदमी ही आदमी भरे थे। क़तार के क़तार

नर-नारी खड़े थे बन्दी राजा को देखने के लिए। राजेन्द्र ने बन्दी विमलादित्य को लेकर विजयी सेना के साथ तञ्जौर नगर में प्रवेश किया। विमलादित्य के हाथ शृङ्खला से बँधे थे। बन्दी राजा विमलादित्य मस्तक नीचे किये हुए धीरे धीरे चला जा रहा था, पहरेदार लोग उसे घेरकर राजप्रासाद की ओर लिये जा रहे थे। करुणाहीन दर्शक उसका उपहास करने लगे और ज़ोर से हँस-हँसकर उसका तिरस्कार करने तथा उसे धिक्कारने लगे। बहुत-से लोग कापुरुष कह-कहकर उसके प्रति घृणा प्रकट करने लगे।

तरुण राजा विमलादित्य के शरीर का अनुपमनीय सौन्दर्य मेघ से आच्छादित निष्प्रभ चन्द्रमा के समान मलिन था, किसी ने भी उसके प्रति सहानुभूति की दृष्टि से नहीं देखा। राजकुमारी कुण्ठवि ने खुली हुई खिड़की की राह से उस बन्दी राजा का मलिन मुखच्छवि देखकर हृदय में वेदना का अनुभव किया। उसकी आँखों से आँसू के दो बूँद गिरे, परन्तु किसी को उसका पता नहीं चल सका।

(७)

बन्दी जब राजराजा के सम्मुख उपस्थित किया गया तब सब लोगों को आशङ्का हुई कि कठोर प्रकृति के राजा शायद इसी समय वेंगी के राजा के प्राणदण्ड का आदेश करेंगे। विमलादित्य ने अपने शृङ्खला से बँधे हुए दोनों हाथ मस्तक से लगाकर सम्राट् राजराजा को प्रणाम किया। राजराजा ने गम्भीर भाव से उस अलस युवक के सुन्दर और विवर्ण मुख की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा। बाद को युवराज राजेन्द्र से कहा—वेंगी-राज का बन्धन मुक्त कर दो।

राजेन्द्र ने स्वयं आकर विमलादित्य का बन्धन मुक्त कर दिया। सम्राट् की इस उदारता के कारण सब लोग हर्षध्वनि कर उठे। बाद को एकान्त कमरे में बैठकर राजराजा ने विमलादित्य के सम्बन्ध में किस दण्ड का विधान किया, यह बात किसी को ज्ञात न हो सकी।

(८)

विमलादित्य का राज्य आज राजराजा के अधिकार में है। सम्राट् ने राज्यशासन की नई व्यवस्था कर दी है। प्रजा उनके उत्तम शासन से सुखी होकर शान्तिपूर्वक निवास कर रही है, इससे वह चालुक्यराज विमलादित्य को भूल गई है। इसमें उनका अपराध ही क्या है? भूल जाना तो मनुष्य का धर्म है। विशेषतः ऐसे असावधान और विलासी राजा के हाथ से वे लोग मुक्त हो सके हैं, यह तो विधाता की कृपा ही हुई।

विमलादित्य नगर के बाहर एक विशाल भवन में अकेला ही रहा करता। कोई उससे मिलने या बात-चीत करनेवाला नहीं था। परन्तु उसे प्रतिदिन के उपयोग की सभी वस्तुएँ वहाँ मिल जाती थीं। पहरेदार लोग उस भवन के तोरण के पास पहरा दिया करते। राजा कहीं बाहर नहीं जाने पाता था। तरुण चालुक्यराज अकेले ही बैठे बैठे वीणा बजाया करता। इस कला में वह बहुत ही निपुण था। अब वीणा ही उसकी एकमात्र सङ्गिनी थी। फाल्गुन में जब वनों में फूल खिल उठते थे, चिड़ियाँ मधुर स्वर में गा-गाकर समस्त दिन कलरव किया करती थीं, दक्षिणी हवा व्याकुल भाव से आवेग के साथ बहने लगती थी, उस समय फाल्गुन की शुक्ल निशा में वह स्वच्छन्द-भाव से वीणा बजाया करता, सुर की लहर लहर से वसन्त की शोभा खिल उठती, वर्षा के आकाश पर जब कज्जल के समान काले मेघ मँडराते रहते, गड़गड़ा कर बादल गरजा करते, रह रहकर बिजली चमक उठती, उस समय वह अपनी वीणा में मेघमलार की रागिनी बजाया करता था। उसके श्रोता थे वन के पक्षी और फूले हुए वृक्ष और लतायें। निराशा की वेदना में उसके दिन कट रहे थे, किन्तु एक दिन—

(९)

एक दिन एक आश्चर्यजनक घटना घटित हुई। उस समय शरद्-ऋतु की शोभा विकसित हो उठी थी। नील निर्मल आकाश था। कहीं से मानो एक नवीन आनन्द हृदय में लेकर कमल और कुमुद खिले थे, मधु के लोभी मधुप मधु का लुण्ठन करते करते गुनगुना रहे थे। ऐसी ही शरद्-ऋतु के एक प्रभात में—उस समय भी सूर्य आकाश में प्रदीप्त नहीं हो उठे थे, केवल लालिमा उड़ाकर सबको प्रसन्न और मुग्ध कर रहे थे। चिड़ियाँ घोंसले छोड़कर उड़ ही भर पाई थीं। विमलादित्य उपवन के एक कोने में एक शिला पर विराजमान हो, शरद्-ऋतु के उस सुन्दर प्रभात में वीणा बजाने में तन्मय था। ठीक उसी समय अपनी सहचरियों को साथ में लिये हुए राजकुमारी कुण्ठवि देवमन्दिर में पूजा करने जा रही थी। रक्षकों से वह घिरी हुई थी। उसके कानों में पड़कर उस वीणा की सुरलहरी ने एक नवीन जगत् का पता बतलाया।

राजकुमारी चकित हो उठी। उसके मन में यह बात आई कि इस वन के भवन में वीणा कौन बजा रहा है। पालकी से उतरकर उसने कहा—ज़रा मैं इस बग़ीचे में घूम आऊँ। पहरेदारों ने कहा—यह तो ठीक नहीं है। सहचरियों ने कहा—लौटने में विलम्ब होगा। परन्तु राजकुमारी ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। उसने कहा—होने दो, मैं जाऊँगी। सहचरियों ने साथ चलने की इच्छा प्रकट की, किन्तु राजकुमारी ने राजहंसिनी के समान गर्दन उठाकर गर्वमय स्वर में कहा—नहीं।

राजा की यह दुलारी कन्या है, यह बात तो किसी से छिपी थी नहीं, इससे मुँह खोलने का साहस कोई नहीं कर सका।

वन का हरा-भरा और सुहावना पथ था। दोनों ओर कुञ्ज ही कुञ्ज लगे थे, वे सभी पत्रों तथा पुष्पों से सुरभित और सुसज्जित थे। वीणा बजानेवाला उस समय मुग्ध होकर भावों में तन्मय था, सुरलहरी सप्तम पर पहुँच गई थी। शरद्-ऋतु के देवता मानो वहीं इस उपवन में आकर बन्दी हो गये थे। पत्तियों की आड़ से छन-छनकर सुनहरी किरणें उसके मुँह पर पड़ रही थीं।

कुण्ठवि स्वरलहरी का अनुसरण करती हुई वहाँ पहुँची और देखकर विस्मित हो गई। उसने पहचाना कि यह वही बन्दी चालुक्यराज है जिसकी दुर्दशा देखकर मेरे नेत्रों से दो बूँद आँसू उस दिन गिरे थे।

एकाएक कुण्ठवि को देखकर विमलादित्य चौंक उठा। सावधानी के साथ वीणा को रखकर वह खड़ा हो गया। उस समय भी वीणा का स्वर वायु में रीं रीं करके झङ्कृत हो रहा था। विस्मित और स्तम्भित बन्दी ने पूछा—आप कौन हैं? कुण्ठवि ने अकुण्ठित कण्ठ से गौरव के साथ कहा—मैं राजाधिराज राजराजा की कन्या कुण्ठवि हूँ। भीत और सङ्कुचित होकर विमलादित्य ने कहा—देवि, मैं बन्दी हूँ। मैंने कौन-सा अपराध किया है? मोतियों के समान दाँत विकसित करके हँसती हुई राजकुमारी ने कहा—इधर से ही होकर मैं प्रतिदिन देवाराधन के लिए जाया करती हूँ। मुझे यह नहीं मालूम था कि आप इस बाग़वाले मकान में ही बन्दी हैं। आज आपकी वीणा का सुमधुर स्वर सुनकर मुझे कौतूहल हुआ। उसी की निवृत्ति के लिए यहाँ आई हूँ।

× × ×

राजकुमारी उस दिन से देवमन्दिर में जाते समय प्रतिदिन ही उस तरुण बंदी राजा की वीणा की तान सुनने लगी। वीणा के प्रत्येक स्वर में मानो विमलादित्य के बन्दी-जीवन की कथा उच्चरित हुआ करती थी। धीरे धीरे विमलादित्य और कुण्ठवि परस्पर एक दूसरे से प्रेम करने लगे।

इसी तरह कई महीने बीत गये। एक दिन विमलादित्य ने कहा—देवि, मैं बन्दी हूँ। तुमने मुझसे प्रेम करने की ग़लती क्यों की? मालूम नहीं कि किस दिन मेरे प्राणदण्ड की निष्ठुर आज्ञा सुनाई जाय। राजकुमारी! यह तो असम्भव है कि हम तुम प्रेम का जीवन बितावें, सर्वथा असम्भव है।

कुण्ठवि ने दर्पमय स्वर में कहा—विमलादित्य, तुम किसी भी बात के लिए मत डरो। मैं तुम्हें मुक्त कर लूँगी। यदि ऐसा न कर सकी तो यह जीवन ही विसर्जित कर दूँगी। राजकुमारी के मुख में बिजली की चमक के समान हँसी विकसित हो उठी। उसकी दृढ़ता से मुग्ध होकर बन्दी ने कहा—देवि, तुम अवश्य राजाधिराज की सुयोग्य कन्या हो।

(१०)

युवराज राजेन्द्र अपनी इस मातृहीना भगिनी को प्राणों से भी अधिक प्रिय समझता था। बचपन में उसकी कितनी ही आग्रहपूर्ण किन्तु अनुचित प्रार्थनाओं को भी उसने स्वीकार किया था। ये दोनों ही भाई-बहन एक साथ ही माता-पिता के स्नेहमय अञ्चल में रहकर बड़े हुए थे।

राजेन्द्र एकान्त कमरे में बैठा था। वह यही सोच रहा था कि सिंहल-विजय की यात्रा किस प्रकार करूँ। नौवाहिनी को सुसज्जित करने तथा सेना को सुसङ्गठित करने के लिए उसका मन अधीर हो रहा था। उसी समय कुण्ठवि उसके कमरे में पहुँची।

राजेन्द्र ने स्नेह पूर्वक कुण्ठवि को सम्बोधित करके कहा—तुम यहाँ एकाएक कैसे आ गई हो बहन?

कुण्ठवि ने कहा—भैया, तुमसे मुझे एक बात कहना है।

राजेन्द्र ने विस्मित होकर कहा—तुमको? बतलाओ। क्या किसी नये देश की कोई नई चीज़ उपहार देना होगा?

कुण्ठवि गम्भीर होकर विमलादित्य की गुणगान तथा उसके प्रेम की कथा कह गई और उसने उस प्रेम-रक्षा के लिए कोई उपाय करने का आग्रह किया।

इस आकस्मिक संवाद से राजेन्द्र विस्मित हो उठा। उसका चेहरा उतर गया। वह सोचने लगा कि राजराजा जैसे दुर्धर्ष राजा से मैं यह बात कैसे कहूँगा। वह समझ गया कि इसका परिणाम बहुत ही भयङ्कर हो सकता है। किन्तु कुण्ठवि ने जब अपनी देह से सचिकुका में खचित एक छोटी-सी छुरी निकाल कर कहा—भैया, यदि तुम पिता जी से कहकर हमारे विवाह की व्यवस्था न कर सकोगे तो मैं यही छुरी हृदय में भोंक कर प्राण-त्याग कर दूँगी।

राजेन्द्र का स्नेह से दुर्बल हृदय काँप उठा। यह क्या? यह तो बड़ी आश्चर्यजनक घटना है! कुण्ठवि बन्दी राजा के प्रेम में पड़ गई!

डर के मारे राजेन्द्र का हृदय थरथर काँपने लगा। वह सोचने लगा कि किस तरह, किस साहस से, मैं सम्राट् से कहूँगा कि विमलादित्य तथा कुण्ठवि परस्पर एक-दूसरे से प्रेम करते हैं, अतएव आप विमलादित्य को मुक्त करके उन दोनों का विवाह कर दीजिए। ऐसा कहने का फल क्या होगा, यह राजेन्द्र को अज्ञात नहीं था। परन्तु फिर भी—

फिर भी बहन का मुँह ताककर राजेन्द्र राजराजा के समीप गया।

× × ×

राजराजा मन्त्रियों तथा अन्यान्य सभासदों से परिवेष्टित राजसभा में विराजमान था। ऐसे ही समय में राजेन्द्र वहाँ पहुँचा। पुत्र को देखकर राजराजा ने पूछा—क्या तुम्हें कुछ कहना है?

"हाँ सम्राट्!"

"कह सकते हो।"

सम्राट् की आज्ञा पाकर राजेन्द्र ने कुण्ठवि और विमलादित्य का हाल कह सुनाया। श्रावण के मेघ के समान राजराजा का मुख गम्भीर हो गया। सभास्थल नीरव था। सहसा एक उग्र हास्य के अट्टहास से चारों दिशाओं को मुखरित करके राजराजा ने कहा—इतनी बड़ी स्पर्द्धा इस हतभाग्य बन्दी चालुक्यराज की! इतना घोर अपमान! असह्य है। इतने दिनों तक इसके मामले का निपटारा न करके मैंने बहुत अनुचित किया है। कल ही इसका फ़ैसला करूँगा, उचित दण्ड दिये बिना न रहूँगा। सेनापति, कल सबेरे विमलादित्य को हमारे सम्मुख उपस्थित करो।

किसी के मुँह से बात न निकली। राजेन्द्र नीरव, स्तब्ध, मलिन और निस्पन्द था। सारा आकाश घने काले मेघ ने ढँक गया।

(११)

विमलादित्य उस दिन रात को चिन्ता में मग्न था। कुण्ठवि अब नहीं आती! वीणा अब उस तरह नहीं बजती। हतभाग्य बन्दी ने सारी रात जाग कर ही काटी थी। प्रातःकाल की स्निग्ध और शीतल वायु लगने पर उसे ज़रा-सी तन्द्रा आगई। इतने में एकाएक झनझना कर उसके कमरे का द्वार खुल गया। चकित होकर उसने देखा कि क़तार के क़तार सैनिक चले आ रहे हैं। उन सबके हाथ में नंगी तलवारें हैं। बाद को—पहले एक दिन जिस प्रकार वह बन्दी के रूप में लाया गया था, ठीक वैसे ही सैनिक लोग कौतूहल से अभिभूत जनता के बीच से उसे लेकर राजसभा को गये।

उस दिन राजसभा में बड़ी भीड़ थी। राजा के मंत्री, पार्षद तथा नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति उन्हें घेरे बैठे थे। उसी समय बन्दी विमलादित्य को लिये पहरेदार लोग राजसभा में उपस्थित हुए। रक्षकों का दल हाथ में नंगी तलवारें लिये हुए उसे घेर कर खड़ा हो गया। एक ओर विमलादित्य खड़ा था और दूसरी ओर राजकुमारी कुण्ठवि। वह भी स्त्री पहरेदारों से परिवेष्ठित थी।

सम्राट् का निर्णय सुनने के लिए सभी लोग गर्दन उठाये प्रतीक्षा कर रहे थे। राजराजा ने कहा—एक सुन्दर राजा को बन्दी करने के कारण आज मुझे अपनी कन्या का परित्याग करना पड़ रहा है। मंत्रिगण, यदि मैं पहले ही इस हतभाग्य बन्दी का मस्तक तीक्ष्ण तलवार के आघात से शरीर से पृथक् कर देता तो कुण्ठवि को इसकी रूपराशि पर मुग्ध होने का अवसर ही न मिलता। आज मैं उस अनुचित विलम्ब का प्रतीकार करूँगा।

सभा के मध्यस्थल से होकर हा हा करता हुआ हँसी का एक अट्टहास निकल गया।

प्रेम ने विमलादित्य को साहसी बना दिया था। उसने एक बार मस्तक उठाकर कुण्ठवि की ओर ताका। कैसी सुन्दर, प्रशान्त उज्ज्वल दृष्टि थी! दृष्टि क्या थी, मानो जगमगाते हुए दो तारे थे। कुण्ठवि की ओर देख लेने के बाद एक बार सभा की ओर ताककर विमलादित्य ने गर्वमय स्वर में कहा—सम्राट्! अपराध मेरा है। राजकुमारी का नहीं। उसे क्षमा कर दीजिए।

कुण्ठवि ने कहा—पिता, राजाधिराज सम्राट्, बन्दी चालुक्यराज ने कोई अपराध नहीं किया है। अपराधिनी मैं हूँ। मुझे दण्ड दीजिए, विमलादित्य को क्षमा कर दीजिए।

राजराजा ने एक विकट हँसी हँसकर कहा—चालुक्यराज विमलादित्य, तुम्हारे लिए मैं प्राणदण्ड का आदेश करता हूँ।

सभामण्डप के सभी लोग एक साथ ही हाय हाय करने लगे। निर्भीक विमलादित्य के प्रशान्त मुखमण्डल पर हँसी की एक रेखा खींच दी गई।

राजराजा ने फिर कहा—तुम्हें कुण्ठवि, तुम्हारे प्रति मेरा आदेश है निर्वासन का।

कुण्ठवि हँसी। हँसकर जेब से वह छुरा निकालने का प्रयत्न करने लगी, किन्तु छुरा उसमें नहीं था, इससे वह मूर्च्छित होकर वहीं गिर पड़ी।

(१२)

हाँ, प्राणदण्ड हुआ। एक शुभ मुहूर्त में नृत्य-गीत और उत्सव के साथ चालुक्यराज विमलादित्य ने प्राणदण्ड के रूप में कुण्ठवि को प्राप्त कर लिया और कुण्ठवि का चिर-निर्वासन हुआ विमलादित्य के हृदय-राज्य में। राजराजा ने कन्या और दामाद को दहेज़ के रूप में वेंगी का राज्य दिया।

विमलादित्य ने राजराजा की पद-धूलि ग्रहण करके कहा—मैंने आज जो अमूल्य रत्न प्राप्त किया है, उसकी तुलना में वेंगी का राज्य तुच्छ है।

राजराजा हँसने लगे।

फ़ारसी में भागवत



लेखक, श्रीयुत महेशप्रसाद मौलवी आलिम फ़ाज़िल

श्रीमद्भागवत हिन्दुओं का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। जिस समय भारत में फ़ारसी का ज़ोर बढ़ा, संस्कृत के अन्य ग्रन्थों की भाँति श्रीमद्भागवत के भी उसके प्रेमियों ने फ़ारसी में अनुवाद कर डाले। इनमें से कई अनुवाद अब भी मिलते हैं। फ़ारसी और अरबी के सुप्रसिद्ध पंडित श्रीयुत महेशप्रसाद जी ने इस लेख में ऐसी ही भागवतों का परिचय दिया है।

भारत में जिस समय फ़ारसी का ज़ोर था उस समय संस्कृत के अनेक अपूर्व ग्रन्थों का अनुवाद फ़ारसी में हुआ था अथवा यह कि संस्कृत-ग्रन्थों के असली भावों को दर्शाया गया था। पुराणों की महत्ता कुछ कम नहीं। यही कारण है कि अनेक पुराण फ़ारसी में मिलते हैं। समस्त पुराणों में सबसे अधिक प्रसिद्ध 'श्रीमद्भागवत' है। यही कारण है कि गद्य तथा पद्य में इसकी कई प्रतियाँ प्रकाशित तथा हस्तलिखित (फ़ारसी में) सम्पूर्ण अथवा अपूर्ण मिलती हैं। फ़ारसी भागवत की ये प्रतियाँ मेरी दृष्टि में आई हैं।

(१)

'श्रीमद्भागवत' के नाम से सम्पूर्ण बारह स्कन्ध फ़ारसी पद्य में हैं। इसके रचयिता का नाम लाला अमानत राय और उपनाम 'अमानत' लिखा हुआ है। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ मुंशी नवलकिशोर साहब के प्रेस कानपुर* से सन् १८७० ईसवी में प्रकाशित हो चुका है। मँझले आकार के १,७४८ पृष्ठों में है। दो भागों में विभक्त है। एक भाग में प्रथम ८ स्कन्ध हैं और दूसरे में बाक़ी तीन स्कन्ध हैं। परन्तु यह ज्ञात रहे कि अन्तिम तीन स्कन्धों को लाला साहब ने पहले रचा था, क्योंकि दशम स्कन्ध के पहले जो पद्य हैं* उनसे स्पष्ट है कि लाला साहब लालपुर नामक स्थान के निवासी थे। इनके बाल्य-काल में ही जब यह स्थान पानी की बाढ़ से नष्ट हो गया तब ये दिल्ली में अपने पिता के यहाँ जाकर रहने लगे। वहाँ इन्होंने पढ़ा-लिखा और सन् ११४५ हिजरी अर्थात् सन् १७४२ ईसवी में पहले अन्तिम तीनों स्कन्धों को लिखा। प्रथम नौ स्कन्धों के रचे जाने की समाप्ति का समय नवम स्कन्ध के अन्त में श्रावण सुदी चतुर्थी संवत् १८०७ विक्रम अर्थात् (सन् १७५० ईसवी) लिखा हुआ है†। इसी भाग के अन्तिम पृष्ठ पर प्रेस के मैनेजर की ओर से एक विज्ञापन प्रकाशित है। उससे स्पष्ट होता है कि प्रेस की ओर से अन्तिम तीन स्कन्ध प्रथम प्रकाशित हुए थे, क्योंकि लाला साहब ने उन्हें पहले रचा था। और आदि के नौ स्कन्ध बाद को प्रकाशित हुए, क्योंकि ये स्कन्ध अन्तिम तीनों स्कन्धों के बाद रचे गये थे। नवलकिशोरी संस्करण के सिवा लाला साहब के प्रथम नौ स्कन्धों का कोई अन्य संस्करण मेरी दृष्टि में अभी तक नहीं आया और न किसी लेख से ही मुझे यह मालूम हो सका कि कहीं यह दुबारा छपा है, किन्तु अन्तिम तीनों स्कन्धों का एक और संस्करण मेरी दृष्टि में अवश्य आया है जो 'सुदर्शन-चक्र-प्रेस' से जमादी-उल-औवल सन् १२७२ हिजरी (जनवरी सन्

* लखनऊ के सिवा मुंशी जी का एक छापाख़ाना पहले कानपुर में भी था।

* देखो पृष्ठ २—८।

† देखो पृष्ठ ६६५।

१८५६ ईसवी) का प्रकाशित है। इस संस्करण से मुझे यह नहीं मालूम हो सका कि यह प्रेस कहाँ था। इस संस्करण की जो प्रति देखने में आई है* उसके प्रथम दो पृष्ठ नष्ट थे। संभवतः इसी कारण यह पता नहीं चल सका कि यह प्रेस कहाँ था। हाँ, इसमें जो छोटी-सी भूमिका है उससे ऐसा जान पड़ता है कि यह प्रेस दिल्ली में रहा होगा। यह संस्करण बड़े आकार के १,१६६ पृष्ठों का है और सचित्र है। वास्तव में इसी संस्करण के आधार पर अन्तिम तीन स्कन्धों का नवलकिशोरी संस्करण संकलित हुआ है।

प्रथम प्रति के रचयिता ने अपने ग्रन्थ को मधुर बनाने के लिए बीच बीच में आवश्यकतानुसार ग़ज़लें व रुबाइयाँ भी लिखी हैं। इसके सर्वप्रिय होने पर लाला साहब ने संवत् १८१२ विक्रम (सन् १७५४ ईसवी) में रामायण को भी फ़ारसी-पद्य में लिखा था जो मुंशी नवलकिशोर के प्रेस से ही सन् १८७२ ईसवी में प्रकाशित हो चुका है।

(२)

'चन्द्रमुन' अथवा 'चन्द्रमणि' नाम के कोई पण्डित जी हुए हैं। उन्होंने सन् ११०६ हिजरी (सन् १६९५ ईसवी) में फ़ारसी में श्रीमद्भागवत को रचा था। यह प्रति छोटे आकार के ४६० पृष्ठों में है। सन् १८६१ ईसवी की हस्तलिखित प्रति बनारस के 'कारमैकल पुस्तकालय' में है। अति सुन्दर अक्षरों में है। मानो नवीन ही लिखी गई है।

इसके लिखनेवाले सज्जन का नाम इस पर नहीं। यह प्रति मूल-लेखक की ही प्रति से नक़ल की गई है। इसका नाम एक स्थान पर 'नर्गिस्तान' व दूसरे स्थान पर 'संबुलिस्तान' लिखा हुआ है।

(३)

'श्रीमद्भागवत' के नाम से एक तीसरी पुस्तक जो केवल दशम स्कन्ध का पद्यानुवाद है, मिली है। पूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध दोनों में कुल १४,३२० शेर (पद्य) हैं। यह अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति हिन्दू-हाई-स्कूल, बनारस, के पुस्तकालय (म्युज़ियम विभाग) में है। इसका आकार मँझोला है। कुल पृष्ठ एक हज़ार के लगभग हैं। यह प्रति पुराने ढंग के मोटे काग़ज़ पर साधारण लिपि में है। किसी व्यक्ति तथा वस्तु के नाम व कुछ विशेष शब्द लाल रोशनाई से लिखे गये हैं अन्यथा सारा ग्रन्थ काली रोशनाई से ही लिखा गया है।

ग्रन्थकार का नाम मक्खनलाल उपनाम 'तमन्ना' और पिता का नाम सिच्चिदानन्द जाति माथुर कायस्थ लिखी हुई है। ग्रन्थ में रचे जाने का समय सन् १२३१ हिजरी (सन् १८१६ ईसवी) है। ग्रन्थ में लखनऊ के नवाब ग़ाज़ी-उद्दीन हैदर के निमित्त प्रशंसात्मक पद्य हैं। उनसे ऐसा अनुमान होता है कि स्वयं लेखक महाशय अथवा उनके घरानेवाले नवाब के यहाँ अवश्य नौकर थे।

ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध भाग के लिखे जाने का समय १४ रजब सन् १२६७ हिजरी (सन् १८५१ ईसवी) अर्थात् पूर्णमासी पूस संवत् १९०८ विक्रम है। इसके पश्चात् ही उत्तरार्द्ध लिखा गया है। इसको जिसने लिखा अर्थात् नक़ल किया है उसका पता ग्रन्थ से कुछ नहीं चलता।

(४)

'श्री भागवत महापुराण' नाम की एक हस्तलिखित प्रति (गद्य में) मेरे पास है। प्रति बड़े आकार के ३५२ पृष्ठों में थी, किन्तु इसके आदि के ६ पृष्ठ और २ पृष्ठ बीच के खण्डित हैं। नहीं तो इसमें सम्पूर्ण १२ स्कन्ध थे।

यह किसका भाषान्तर किया हुआ है, यह कब भाषान्तर किया गया, कहाँ किया गया, इन बातों का पता अभी तक मुझे नहीं मालूम हो सका। हाँ, इस प्रति के लिखे जाने का समय श्रावण बदी एकादशी शनिवार संवत् १८५८ या १८५९ विक्रम है*। लेखक का नाम

* यह प्रति तथा नवलकिशोरी संस्करण की सम्पूर्ण प्रति काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय पुस्तकालय में श्रीराम सेकशन में है—P. 9. 9., 1. 2.. 3.

* दिन और तिथि आदि जो अन्त में लिखे हुए हैं उनमें से संवत् का एकाई अंक स्पष्टरूप से नहीं पढ़ा जाता।

नहीं लिखा हुआ है, किन्तु लेख से स्पष्ट है कि आदि व अन्त के १६६ पृष्ठ एक व्यक्ति के लिखे हुए हैं और मध्य के १०० पृष्ठ किसी दूसरे के लिखे हुए हैं। पर दोनों लेखकों की लिखावट सुन्दर है।

मेरा खयाल है कि यह प्रति अभी कहीं नहीं छपी है। पर एक और प्रति मेरे पास अवश्य ऐसी है जिसका पाठ उक्त प्रति से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। यह प्रति किसी अन्य व्यक्ति के हाथ की लिखी हुई है। बड़े आकार में है। इसमें दशम स्कन्ध भी पूर्ण नहीं अर्थात् प्रति अधूरी है, जिससे लेखक का नाम तथा लिखे जाने का समय भी नहीं मालूम हो सकता, परन्तु काग़ज़ व लिखाई आदि से स्पष्ट है कि यह प्रति कम-से-कम सौ वर्ष पूर्व अवश्य लिखी गई थी।

यह हस्तलिखित प्रति फ़ारसी गद्य में मेरे पास है। भागवत का सार है। बड़े आकार के ३८४ पृष्ठों में समाप्त है। इसके रचयिता अथवा रचे जाने के समय की बाबत कुछ पता नहीं चला। अन्त में जो कुछ है उससे पता चलता है कि बनारस में ही कोई सज्जन राय सुखलाल बहादुर थे। उनके छोटे भाई हरचरनदास जी थे। उन्होंने इस प्रति को चतुर्दशी संवत् १८५५ विक्रम अर्थात् १२ जमादी-उल-औवल सन् १२१३ हिजरी (सन् १७९८ ईसवी) को समाप्त किया था।

उक्त हस्तलिखित प्रति के विषय में अब यह कहना अनुचित न होगा कि यह प्रति वास्तव में किसी हिन्दू सज्जन की रचना प्रतीत होती है।

(५)

यह 'श्रीमद्भागवत' के नाम से सन् १८७० ईसवी में गुजरानवाला (पंजाब) के 'ज्ञान-प्रेस' का छपा हुआ एक और संस्करण है। यह छोटे आकार के केवल ११६ पृष्ठों का है और गद्य में है। इसके कर्ता कौन सज्जन थे, उन्होंने इसे कब लिखा था, इन बातों का कुछ पता न लग सका।

अन्त में यह कहना अनुचित न होगा कि इन फ़ारसी ग्रन्थों से चाहे कोई लाभ हो या न हो, किन्तु इनकी तुलना करने पर यह अवश्य जाना जा सकता है कि ग्रन्थ के विवादास्पद विषयों को इन लोगों ने अथवा इनके समय के लोगों ने क्या समझा था।

उद्गार

लेखक, श्रीयुत कुञ्जविहारी चौबे

(१)

जीवन पाकर भी कर न सका,
जी-वन की यह दावाग्नि शान्त।
वसुधा में आकर सुधा छोड़,
विष-पान किया बन निपट भ्रान्त।
जग निद्रा में था जागरूक,
मैं जग कर भी कब सजग रहा?
विधि की गति-विधि के हो अधीन,
मैं बना रहा हतमति नितांत!!

(२)

क्रन्दन ही मेरा हृदय-गान,
शोकाश्रु-बिन्दु शुचि रत्न-हार।
करुणा ही मन का केलि-कुञ्ज,
पीड़ा मेरा सर्वस्व-सार।
संताप शुद्ध तप है मेरा,
असफलता मेरी सफल सिद्धि:
चुन हारों के ही शुष्क फूल,
गूँथा मैंने निज विजय-हार!!

खेलों का महत्त्व

लेखक, श्रीयुत वंशीधरसिंह

यों तो सदैव ही जनता का स्वास्थ्य राष्ट्र का सबसे बड़ा बल माना गया है पर आधुनिक युग तो मानों खेलों का ही युग है। संसार के प्रायः सभी देशों के खिलाड़ी संगठित रूप से इस मैदान में विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से संसार-यात्रा के लिए निकलते हैं और अपनी शक्ति की परीक्षा करते हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि इस सम्बन्ध में भारत भी नये दृष्टि-कोण से विचार करने लगा है और उसने कुछ करके दिखाया भी है। इस नवीन दृष्टि-कोण के प्रचार और प्रसार के उद्देश्य से ही लेखक ने यह विचारपूर्ण लेख लिखा है।

जब किसी राष्ट्र की अवनति होता है, दुर्भाग्य से उसकी संस्कृति का लोप होने लगता है। अनेक महत्त्वपूर्ण कलाऍं एवं व्यवसाय उपेक्षा की दृष्टि से देखे जाने लगते हैं और जिन कार्यों में उसके पूर्वज गर्व-पूर्ण तत्परता से भाग लेते थे उनके सम्पर्क से उसे संकोच होता है। उदाहरण के लिए केवल संगीत और व्यायाम को ही लीजिए। प्राचीनों ने संगीत को आराधना का महत्त्वपूर्ण अंग और ललित कलाओं में से एक माना है। श्री नारद भगवद्भक्तों में अग्रगण्य माने जाते हैं। पर अब बंगाल के अतिरिक्त उत्तर-भारत में इस विद्या की यह दुर्दशा हो गई है कि वेश्याओं और निम्न कोटि के लोगों को छोड़कर किसी भी वर्ग अथवा समाज में संगीत-कला का प्रचार नहीं है। रुचि भी इतनी दूषित हो गई है कि सिवा ग़ज़लों जैसे निम्न कोटि के गानों के और किसी चीज़ की क़द्र ही नहीं है। ठीक यही हाल खेलों का भी है। भगवान् रामचन्द्र एवं श्री कृष्णचन्द्र का खेलों में भाग लेना सब जानते हैं और जानते हैं कि विना खेलों में शरीक हुए, विना शारीरिक शिक्षा-लाभ किये, हमारे पूर्वज इतने भारी योद्धा नहीं हो सकते थे। फिर भी कसरत करना, कुश्ती लड़ना, खेल खेलना आदि आज अधिकांश जनता को सुरुचिपूर्ण नहीं प्रतीत होते। ये काम

अबोध बालकों के समझे जाने लगे हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि अब कुछ कुछ रुचि-परिवर्तन हो रहा है और लोग खेलों में थोड़ी-बहुत दिलचस्पी लेने लगे हैं। भारतीय टेनिस टीम 'डेविस कप' में सम्मिलित होने लगी है। कुश्ती का कौशल दिखलाने के लिए हमारे पहलवान विदेश जाते हैं और जो विदेशी पहलवान यहाँ कुश्ती लड़ने आते हैं वे अपना गर्व खोकर ही वापस जाते हैं। हमारी हाकी-टीम संसार-विजयी सिद्ध हुई है। हम अब इंग्लैंड से क्रीकेट के टेस्ट-मैच खेलने लगे हैं। हमारी फ़ुटबाल-टीम अफ़्रीका हो आई है। घोष और रोबिन चटर्जी जैसे नवयुवक तैराकी में संसार के लिए आदर्श उपस्थित कर चुके हैं। परन्तु इस ओर हमारी यह प्रगति अभी बहुत धीरे धीरे हो रही है। इस विशाल देश के लिए यह सब कुछ समुद्र में एक बूँद के बराबर है। पढ़ाई का परीक्षा-फल जानने को तो सभी माता-पिता उत्सुक रहते हैं, किन्तु बालक ने शारीरिक उन्नति कितनी की है, इसकी किसी को चिन्ता नहीं। मेरे तुच्छ विचार में यह उदासीनता प्राणघातक है। निर्बल, अल्पायु, अकर्मण्य युवकों की संख्या-वृद्धि का कारण अधिकांश में यही हमारी उदासीनता है।

पाश्चात्यों की जीवनचर्या में खेल, व्यायाम अथवा शिकार का लगभग वही स्थान है जो उनके जीविका-सम्बन्धी व्यवसाय का। बड़े से बड़ा राज-नीतिज्ञ, साहित्यिक, वैज्ञानिक प्रतिदिन अनिवार्य रूप से व्यायाम के लिए समय निकालता है और

यथासम्भव वर्ष में एक-दो मास का अवकाश प्राप्त करने का प्रयत्न करता है ताकि वह किसी समुद्रतटस्थ अथवा पार्वतीय स्थान पर जाकर और खेलों में सम्मिलित होकर मनोरंजन करे तथा अपना स्वास्थ्य सुधारे। गम्भीर मानसिक व्यापार और चरित्र-गठन में खेल सहायक ही होते हैं, बाधक नहीं होते। इस तत्त्व को पाश्चात्यों ने समझा है। फलतः आज वे प्रत्येक विषय में, जीवन-व्यापार के प्रत्येक विभाग में, हमसे बहुत आगे बढ़े हुए हैं।

परन्तु खेलों के शिक्षाप्रद प्रभाव पर बहुत ही कम लोग ध्यान देते हैं। धार्मिक शिक्षा से बहुत कुछ नैतिक उन्नति हो सकती है, पुस्तकाध्ययन मस्तिष्क को पुष्ट करने में सहायक होता है, किन्तु शारीरिक बल अथवा 'उपक्रमकारिता' (Intuition) की वृद्धि में इन दोनों में से किसी के किये कुछ नहीं हो सकता। पुस्तकों अथवा अध्यापकों के द्वारा प्रस्तुत किये हुए मानसिक भोजन को पचाने के लिए, समझ कर ग्रहण करने के लिए, बालकों के अपरिपक्व मस्तिष्क को बहुत ही कष्टप्रद प्रयत्न करना पड़ता है। परन्तु खेलों में बालक जो कुछ औरों को करते हुए देखता है, जल्दी ग्रहण कर लेता है और अनुकरण करने का उद्योग करता है। अतः शारीरिक ओज के साथ ही साथ मानसिक स्फूर्ति की अभिवृद्धि एवं निर्माण-शक्तियों को उत्तेजित करने के लिए खेल ही सर्वोत्तम साधन हैं। खेलों-द्वारा ही क्रियाशील मनुष्य उत्पन्न हो सकते हैं। जिस प्रकार खेल सिखाये और खेले जाने चाहिए यदि वैसे ही खेल सिखाये और खेले जायँ तो विश्वास मानिए कि खेलों की सहायता से ही सुयोग्य एवं सत्पात्र भारतीयों की संख्या बढ़ेगी।

खुली हुई हवा में कसरत करने से स्वास्थ्य पर लाभदायक प्रभाव पड़ता है, व्यायाम से शरीर का गठन होता है और इस प्रकार रोगादि के प्रतिरोध की क्षमता आती है। भारत के सर्वश्रेष्ठ कवि कालिदास ने भी कहा है—शरीरमाद्यं खलु धर्म-साधनम्। प्रत्येक खेल मांस-पेशियों को कुछ न कुछ पुष्ट करते ही हैं। फ़ुटबाल, क्रिकेट आदि कुछ ऐसे खेल हैं जिनसे शरीर की प्रायः सम्पूर्ण पेशियों पर ज़ोर पड़ता है, वे सभी बलवान् और पुष्ट होती हैं। इसलिए पूर्ण शारीरिक विकास के लिए एक से अधिक खेलों में ऋतु के अनुसार भाग लेना चाहिए, क्योंकि खेल एक दूसरे के पूरक हैं, अर्थात् जो कुछ कमी एक में रह जाती है वह दूसरे खेल के द्वारा पूरी हो जाती है। खेलों से शारीरिक बल एवं वेग के अतिरिक्त लाघवता तथा शीघ्रता के गुण भी शरीर को प्राप्त होते हैं। इसके सिवा इनसे एक प्रकार की शोभा, मनोहरता, शरीर-लालित्य तथा चेष्टा-सुगमता आती है, जिनके कारण ढलती हुई आयु में भी, अर्थात् शरीर में स्थूलता आ जाने पर भी खिलाड़ी अपने खेल-प्रसाद-विहीन समवयस्कों की अपेक्षा अधिक क्रियाशील और चुस्त रहता है। अपने पहलवानों को ही लीजिए। गामा की तोंद को देखिए और फिर उसकी बिजली जैसी झड़प की कल्पना कीजिए, जिससे ज़िबेस्को जैसा विश्वविख्यात सुभट बात की बात में चित हो गया। क्या ही अच्छी बात हो यदि हमारे पहलवान कुश्ती के अतिरिक्त अन्य खेलों अथवा कसरतों से भी शौक़ करें। शायद उनकी बड़ी बड़ी तोंदों का परिमाण तब कम हो जाय। काम-काजी किसानों, असभ्य कहे जानेवाले परन्तु नैसर्गिक विधि से जीवन-यापन करनेवाले भील-सन्थालों, सदा खेलते-कूदते रहनेवाले बच्चों (माता-पिता के अत्यधिक लाड़ के पुतले, रुई के फाये में लिपटे हुए अभागे बच्चों का ज़िक्र नहीं है) में विरला ही दीर्घोदर मिलेगा। बम्बई से प्रकाशित 'रामपंचायतनम' वाले चित्र को देखकर मन में कैसे भाव उत्पन्न होते हैं, क्या कहूँ। प्रचण्ड शिव-कोदण्ड का भंग करनेवाले, महापराक्रमी परशुराम के दर्प का हरण करनेवाले, चौदह वर्ष वनवास करनेवाले, रावण-जैसे उत्कट दानव के वध की क्षमता रखनेवाले मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् के

सेठ जी की सी तोंद ! चित्रकार एवं प्रकाशक की बलिहारी ! "वृषभकंध केहरि ठवनि" तथा "केहरि-कटि पट पीतधर" पर विचार कीजिए और तब विचार कीजिए चौदह वर्ष वन-वास से आये हुए महाराज के चित्र पर ! राम, कृष्ण, महावीर, भीष्म, अर्जुन, अभिमन्यु, पृथ्वीराज, आल्हा-ऊदल, प्रताप, शिवाजी इत्यादि के कल्पित चित्रों में तोंद दिखलाना अपने को हास्यास्पद करना है। पुरानी बातों को छोड़िए। मेजर नायडू, विजय मर्चेंट, अमरनाथ, सईद अहमद, छोटे बाब, ध्यानचन्द, रूपसिंह, मोहनबगान के पाल इत्यादि के सुदृढ़ सबल शरीर में आधी छटाँक फालतू गोश्त या चर्बी नहीं दिखाई देगी। आप पूछेंगे, शरीर कैसा होना चाहिए। उत्तर में यही कहना पर्याप्त है कि अपने देश के प्रमुख खिलाड़ियों को देखिए। देखिए उन छरहरे शरीरों को जिनकी पेशियाँ ढीली अवस्था में रेशम-जैसी मृदुल एवं सुखद तथा कड़ी होने पर फौलाद जैसी कठोर होती हैं, और फिर यह प्रश्न आप कभी न करेंगे।

हाँ, शरीर को तो खेलों से लाभ होता ही है, किन्तु केवल इतना ही नहीं। खेल हमारी मांस-पेशियों को सुदृढ़ करने और हममें साहस और सहनशक्ति भरने के अतिरिक्त वे वह प्लवनशीलता, वह स्थायी प्रफुल्लता, वह अदम्य जिन्दादिली प्रदान करते हैं जो मरते दम तक हारने का नाम नहीं लेतीं। एन्ड्रू लैङ्ग नामक अँगरेज़ लेखक का क्रिकेट के सम्बन्ध का एक कथन न्यूनाधिक रूप से अन्य खेलों पर भी लागू होता है। उनका वह कथन यह है—"क्रिकेट स्वयं शिक्षा है और उसमें चित्त-स्वास्थ्य, न्यायशीलता एवं अध्यवसाय अपेक्षित है। पाठशाला के कमरों की अपेक्षा क्रीड़ा-क्षेत्र पर अधिक शिक्षा मिलती है और इस शिक्षा से अधिक लाभ उठाना चाहिए। क्योंकि बिना औत्सुक्य के—बिना भावुकता के—मनोरंजक क्रिकेट हो नहीं सकता और ये गुण जीवन को अधिक समृद्ध बनाते हैं—संस्कृत करते हैं।" खेल चरित्र-निर्माण में सहायक होते हैं और मनुष्य को शान्तिप्रिय व्यवसाय के योग्य बनाने के साथ ही साथ इस योग्य भी बनाते हैं कि अवसर पड़ने पर वह अपनी और देश की भी रक्षा कर सके।

सब खेल अच्छे होते हैं, क्योंकि सबका परिणाम कल्याणकारी होता है। हर प्रकार के खेल का विशेष प्रकार का शिक्षाप्रद मूल्य है। खेल दो कोटियों में विभाजित किये जा सकते हैं—एकाकी खेल तथा सामूहिक खेल। साधारणतः हम कह सकते हैं कि एकाकी खेलों से व्यक्तित्व का विकास होता है और स्वातन्त्र्य का गुण प्रस्फुटित होता है, और सामूहिक खेल हममें सहकारिता के भाव का संचार करते हैं।

कोई खेल क्यों न हो, वह खेल खेल न कहलायेगा यदि उसमें किसी प्रकार की आशंका न हो। अँगरेज़ी का एक पद्य है जिसका यह भाव है कि विवेकी जनों की क्रीड़ा के लिए वह खेल जिसमें दुर्घटनाओं की सम्भावना न हो, निकृष्ट है। कुछ खेलों में उत्तेजनापूर्ण साहस अपेक्षित है। किस साहस एवं मनःस्थैर्य के साथ हमारे क्रिकेट के महारथी मेजर नायडू, अमरनाथ, वज़ीरअली, विजय मर्चेंट (माथे पर पट्टी बाँधे हुए), दिलावर-हुसेन (जो माथे पर गेंद लगने से संज्ञाहीन हो गये थे) और नावले (इनके सिर में भी चोट लगी थी) इँग्लिश बोलरों की बन्दूक की गोली के समान वेग से आनेवाले गेंदों के सामने डटे रहे और रन करते रहे ! गेंद की तेज़ी का यह हाल था कि थोड़ी-सी भी चूक का परिणाम होती—कपालक्रिया।

किसी खेल में दक्षता प्राप्त करने के लिए नियमित आहार, निद्रा, बँधी हुई एवं स्वास्थ्यवर्द्धिनी जीवन-चर्या नितान्त आवश्यक है। बिना इसके सिद्धि मिल ही नहीं सकती। यशः-प्राप्ति के लिए अथवा स्वान्तःसुखाय, नैपुण्य-लाभ सबको इष्ट है। खेलों के ही बहाने खिलाड़ी अपने को अच्छी शारीरिक दशा में रखता है। यही क्या कम है !

योरप—जैसा कि मैंने उसे देखा

३—इटली में मेरा प्रथम सप्ताह

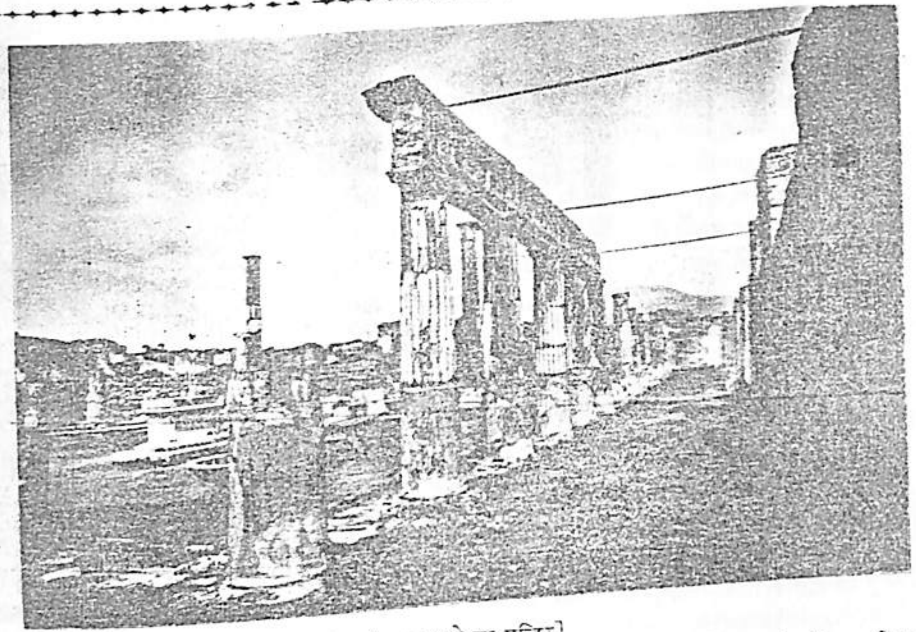
किसी समय रोमन साम्राज्य और संस्कृति की सारे संसार में बड़ी धाक थी। रोमन साम्राज्य के प्राचीन वैभव के ध्वंसावशेष अब भी इटली में यत्र-तत्र देखने को मिलते हैं। इस लेख में श्रीयुत हरिकेशव घोष ने उसी का बहुत ही संक्षिप्त और सुन्दर ढङ्ग से परिचय दिया है साथ ही इटली की वर्तमान प्रगति का भी उन्होंने समुचित ज़िक्र किया है।

लेखक,
श्रीयुत हरिकेशव घोष



सईद बन्दर से ब्रिंडिसी की यात्रा बड़ी सुहावनी थी। लालसागर से आगे बढ़ने पर ठंड मालूम पड़ने लगी और हमें गर्म कपड़े पहनने पड़े। भूमध्य-सागर अत्यन्त शान्त था। धूप चटकीली थी, दिलखुश मन्द वायु बह रहा था और दिन मनोरम और ठंडे थे। यात्रियों ने इस ऋतु का पूर्णरूप से आनन्द लिया। हमारे मित्र श्रीयुत के०... तो अपनी प्रसन्नता को बिना प्रकट किये न रह सके। वे इतने ज़ोर ज़ोर से गाने और नाचने लगे कि बहुत-से गम्भीर लोगों ने उनकी कड़ी आलोचना अवश्य की होगी। सारांश यह कि उन उज्ज्वल दिनों ने प्रत्येक व्यक्ति को आनन्द-विभोर कर दिया था।

तीसरे दिन यूनान के निकट के छोटे-छोटे द्वीप दृष्टिगोचर होने लगे। उनमें से कुछ में लोग बसे हुए थे, परन्तु अधिकांश चट्टानी पहाड़ होने के कारण उजाड़ थे। चौथे दिन लगभग आठ बजे प्रातःकाल हम ब्रिंडिसी पहुँचे। मैं और मेरे साथ कुछ और मित्रों ने ब्रिंडिसी में उतरने का निश्चय किया, इसलिए हमने अपने इरादे की सूचना 'पर्सर' को दी और हमें अपने पासपोर्ट पर 'विसा' मिल गया। हमने अपना रुपया पहले ही इटालियन सिक्के—लिरा में बदल लिया था, जो हमें एक पौंड में साठ के हिसाब से मिला। उस समय युद्ध की चर्चा नहीं थी, इसलिए विनिमय की दर स्थिर थी ! चुङ्गी-घर के

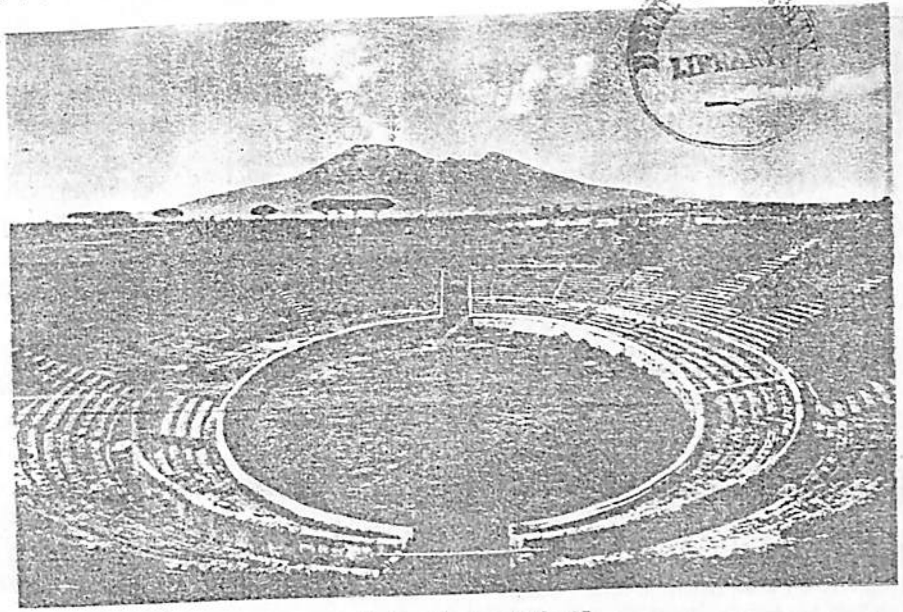


[पाम्पियाई—अपालो का मन्दिर]

साधारण शिष्टाचारों से छुट्टी पाने पर हमने दो टैक्सियाँ किराये पर लीं और शहर देखने निकले। ब्रिंडिसी गन्दा शहर है और सिवा इसके कि वह एक बन्दरगाह है, उसका कोई और महत्त्व नहीं है। फौजी सिपाहियों की एक बड़ी संख्या को सड़क पर मार्च करते हुए हमने एक बड़े खुले मैदान की ओर जहाँ रविवार का सैनिक प्रदर्शन किया जा रहा था, जाते हुए देखा।

सड़क ऊबड़खाबड़ पत्थरों की बनी, तङ्ग और गन्दी थी। एक योरपीय शहर का हम लोगों पर जो पहला प्रभाव पड़ा वह अत्यन्त निराशाजनक था। ठाकुर साहब ने सीधा लन्दन जाने की अपनी मूल योजना में परिवर्तन कर लेने के कारण आपने आपको बहुत कोसा। मेरी योजना बदलवा देने के कारण श्रीयुत डी...ने बहुत खेद प्रकट किया। खैर श्रीयुत लाल ने विश्वास दिलाया कि हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं है। उनके मित्र श्रीयुत गोविल का जो गत वर्ष ब्रिंडिसी उतरे थे, कहना था कि इटली की विचित्र घाटियों से होकर अपनी नेपल्स की यात्रा में उन्होंने कुछ अत्यन्त चित्रोपम दृश्य देखे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि जब हम इटली के दक्षिणी पर्वतों की घाटी से होकर गुज़रे तब हमें श्रीयुत लाल का वक्तव्य सत्य प्रतीत हुआ।

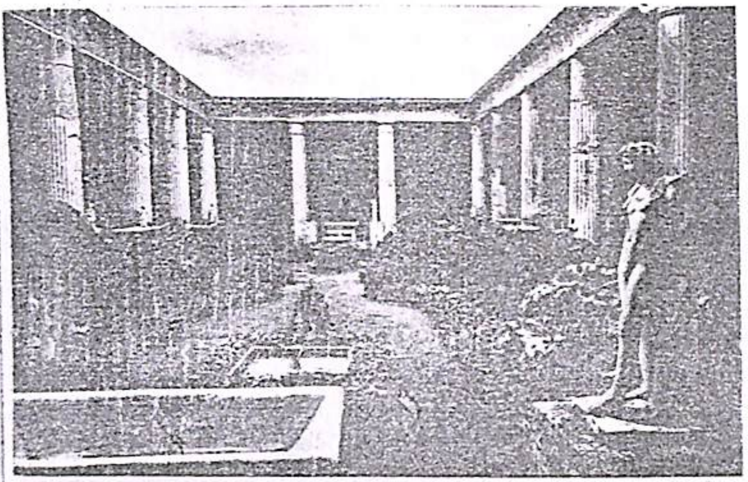
सब मिलाकर हम आठ व्यक्ति थे, परन्तु हममें से कोई इटालियन भाषा का एक शब्द भी नहीं बोल सकता था, इसलिए हमने टामस कुक से एक गाइड लिया। शहर में दो घंटे घुमाकर वह हमें सहीसलामत स्टेशन पर ले गया। स्टेशन पर खाने के लिए हमें सिर्फ़ कुछ रोटी और मक्खन मिल सका, लेकिन फल यथेष्ट मिले। हम सब लोग बहुत भूखे थे, इसलिए जो कुछ भी मिला उसे ख़ूब खाया। लगभग १२ बजे दिन को हमने नेपल्स की गाड़ी



[पाम्पियाई—(एम्फ़ीथियेटर)]

पकड़ी। गाड़ी बहुत भरी थी, परन्तु हमें आराम के साथ बैठने के लिए जगह मिल गई। इटाली से होकर जानेवाले यात्रियों को रेलवे वास्तविक किराये में ६० प्रतिशत की रिआयत करती है। दिन कुछ कुछ गर्म हो चला था, इसलिए इस यात्रा में हमें पेय पदार्थों का यथेष्ट सेवन करना पड़ा। टामस कुक का आदमी हमारे लिए बड़े काम का निकला, परन्तु अपनी सेवाओं का उसने हमसे बहुत अधिक मूल्य लिया। औसत दर्जे के मुसाफ़िरी असबाब को रेल के डिब्बों तक लिवा जाने का हमें ८ आने देने पड़े। हमें ज्ञात हुआ कि गत चार वर्षों में दक्षिणी इटली की उल्लेखनीय उन्नति हुई है। गेहूँ और चावल की हमने अत्यधिक कृषि देखी। इटली अपनी शराब के लिए प्रसिद्ध है और हमने पहाड़ों की ढाल पर अङ्गूर के बड़े बड़े बाग़ देखे। कुछ स्थानों का दृश्य तो अत्यन्त आश्चर्य्यजनक था। पर्वतों की ढालों पर अङ्गूर-उद्यानों, छोटी-छोटी नदियों और सुन्दर गृहों का दृश्य हमारे लिए सर्वथा नवीन था। जिन स्टेशनों से हम गुज़रे वे बड़े नहीं थे, परन्तु पानी, सोडा और आइस-क्रीम सर्वत्र सुलभ था। ब्रिंडिसी में हमने टामस कुक से नेपल्स में एक होटल की व्यवस्था करने के लिए कहा था। नेपल्स में हम रात में पहुँचे। गाड़ी से उतरते ही हमें टामस कुक का आदमी मिला। उसने तुरन्त हमारे असबाब के लिए प्रबन्ध किया और नेपल्स की खाड़ी पर के ठीक ऊपर अधिष्ठित एक अच्छे होटल में ले गया। वह रात विशेष रूप से तारों से पूर्ण थी और बहुसंख्यक बिजली की बत्तियों के प्रकाश में हमने खाड़ी की एक झलक देखी।

हमारे पाठकों को यह भली भाँति मालूम होगा



[पाम्पियाई—एक भद्र पुरुष का गृह और उद्यान]

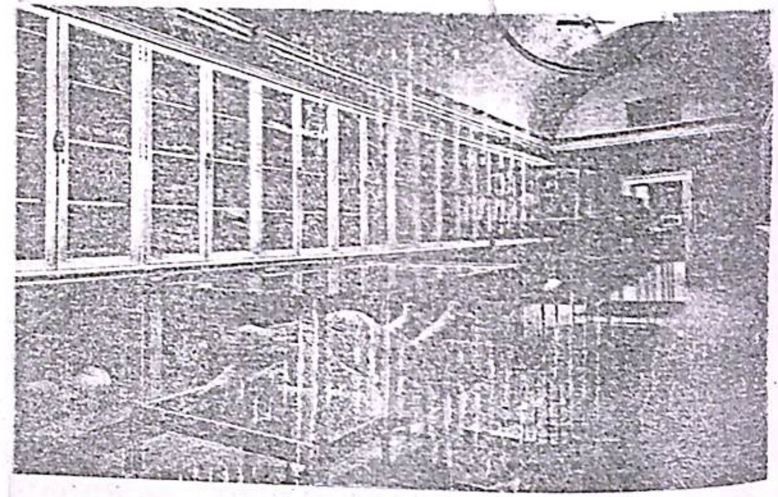
का अड्डा होने के कारण यह नगर बहुत प्रसिद्ध हो गया था। सन् ६३ ईसवी में भूकम्प से पाम्पियाई की भीषण हानि हुई थी, तो भी यह समृद्धिशाली व्यापारिक केन्द्र बना रहा और भूकम्प के बाद ही यह नगर फिर से बस गया। प्रथम भूकम्प के सोलह वर्ष बाद अन्तिम विध्वंस संघटित हुआ। विसूवियस एकाएक जागृत हो उठा और अपनी चोटी से बड़ी शीघ्रता के साथ जलती हुई राख और लावा की घोर वृष्टि करने लगा। पाम्पियाई के ऊपर २० से २५ फुट तक मोटी राख पड़ गई। उसके निवासी ढहते हुए मकानों से भागे; परन्तु उनमें बहुत-से हवा में फैली ज़हरीली भाफ से दम घुट जाने के कारण मर गये।

इस भीषण दुर्घटना ने विद्वानों के अध्ययन के लिए सांस्कृतिक काल के अनेक अमूल्य स्मारकों को सुरक्षित रक्खा है। पाम्पियाई का पता लोगों को सोलहवीं शताब्दी में चल गया था, यद्यपि वास्तविक खुदाई सन् १८०६ में आरम्भ हुई। तब से यह कार्य्य अविश्रान्तभाव से चल रहा है। उल्लेखनीय इमारतें जिनमें 'हाउस आफ़ वेट्टी', 'हाउस आफ़ सिलवर वेडिङ्ग' और 'हाउस आफ़ गोल्डेन क्यूपिड' सम्मिलित हैं, अभी तीस वर्ष हुए प्रकाश में लाई गई हैं। सुव्यवस्थित जीर्णोद्धार और पुनर्निर्माण ने इसे पुरातत्त्व के क्षेत्र में संसार का सबसे सफल प्रयास प्रमाणित किया है।

कि नेपल्स यथेष्ट प्राचीन नगर है। विसूवियस का जीवित ज्वालामुखी नेपल्स की खाड़ी पर प्रहरी के समान खड़ा है। अतीत काल से यह ज्वालामुखी पड़ोस के नगर का कई बार विध्वंस कर चुका है। प्राचीन रोमन नगर—प्रसिद्ध पाम्पियाई इसी विसूवियस से निकले लावा में धँसा गया था। जो यात्री इटली से गुज़रते हैं वे विसूवियस और पाम्पियाई का नगर जिसकी अब बहुत काफ़ी खुदाई हो चुकी है, देखने से नहीं चूकते। पाम्पियाई के खँडहरों से रोमन नगर का प्राचीन वैभव, उसकी संस्कृति, कला और खेल सब हमारे सामने अत्यन्त स्पष्टरूप से आ जाते हैं। रोमन-इतिहास और संस्कृति से सम्बन्ध रखनेवाली यहाँ जो पुरातत्त्व की वस्तुएँ निकली हैं वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। प्रत्येक वर्ष हज़ारों यात्री पाम्पियाई देखने आते हैं।

पाम्पियाई नगर को उसका विधिवत् स्वरूप ईसा के जन्म से ६ शताब्दी पूर्व यूनानियों ने दिया था। फोनेशिया और यूनान के नाविकों का उतरने

पुरातत्त्व की दृष्टि से अन्य प्राचीन नगरों के ध्वंसावशेषों के विपरीत पाम्पियाई में वास्तुकला की अनेक विभिन्न शैलियों का साक्षात् होता है। कहीं कहीं लावा के टोकों से युक्त पत्थर के गम्भीर और स्थूल तोरण हैं और कहीं मूर्तियों और भित्तिचित्रों से अलंकृत गृह-द्वार हैं, जो निर्माण-कला की एक सर्वथा भिन्न शैली का परिचय देते हैं। विनाश के पूर्व इस नगर की जन-संख्या सम्भवतः २५,००० थी। नगर के स्थायी निवासियों के अतिरिक्त उसके औद्योगिक और व्यापारिक महत्त्व के कारण व्यापारियों की एक बहुत बड़ी संख्या उसमें आकर वास किया करती थी।

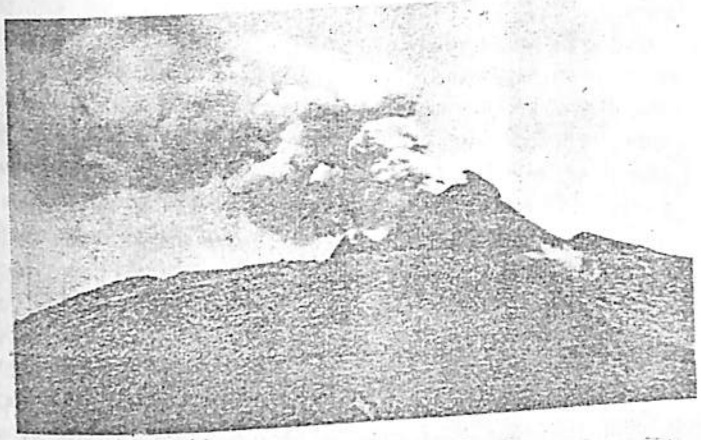


[पाम्पियाई का संग्रहालय]

हम नेपल्स में तीन दिन ठहरे और पाम्पियाई, विसूवियस और संग्रहालय देखा। संग्रहालय में वे विचित्र मूर्तियाँ जो खोदकर निकाली गई हैं, प्रदर्शन के लिए रक्खी गई हैं। नेपल्स के इस संग्रहालय में बहुत-सी विख्यात रोमन-मूर्तियाँ भी हैं। कुछ मिस्र की विख्यात मूर्तियाँ भी इसमें संगृहीत हैं। रोमन लोगों की उन दिनों की महान् संस्कृति को देखकर चकित हो जाना पड़ता है। यूनानी मूर्तियों में से कुछ तो बहुत ही आश्चर्य्यजनक हैं। वे अधिकतर पौराणिक विषयों से सम्बन्ध रखती हैं। यूनानी पुराण-शास्त्र अत्यन्त मनोरञ्जक है। ये संगमरमर की प्रतिमायें उसी यूनानी पुराण के महान् योद्धाओं के पराक्रम, महान् प्रेमियों और शक्तिमान तथा निर्दयी राजाओं की गाथायें कहती हैं। चारु वेनस, अनुपम ईरिस और नील नदी की प्रस्तर प्रतिच्छाया आदि उन प्रसिद्ध मूर्तियों में से कुछ हैं जिनका नेपल्स के इस संग्रहालय को गर्व है। सभी संगमरमर सफ़ेद नहीं हैं, किन्तु विभिन्न रङ्गों के हैं और विभिन्न देशों से लाये गये थे। ये पत्थर अब अप्राप्य हैं, इसलिए ये प्रतिमायें बड़ी मूल्यवान् हैं।

हमारे नेपल्स में ठहरने के दूसरे दिन एक इटालियन भद्र पुरुष से जो अच्छी अँगरेज़ी बोल सकते थे, मेरी भेंट हुई।

इटालियन संस्कृति और फ़ैसिस्ट आन्दोलन के सम्बन्ध में मेरी उनकी कई घंटे बड़ी मनोरञ्जक बातें हुईं। मैंने उन्हें और उनकी प्रिय पत्नी को 'लंच' के लिए निमंत्रित किया और उसके बाद हम खाड़ी के गिर्द के बाग़ों में जी बहलाने को गये। फ़ैसिस्ट सरकार क़ायम होने के बाद से इटली की चतुर्मुखी उन्नति के सम्बन्ध में उन्होंने बातें करनी शुरू कीं। कला, व्यवसाय और कृषि की उन्नति अत्यन्त स्पष्ट है। देश में मुसोलिनी की लोकप्रियता बहुत बढ़ी हुई है। मैंने



[विसूवियस ज्वालामुखी]

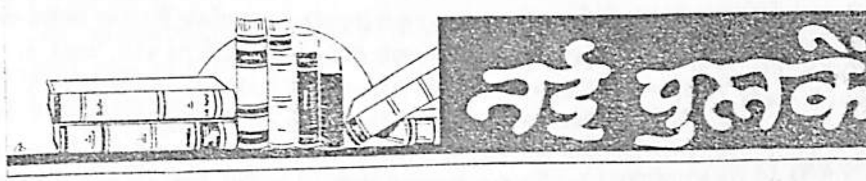
और भी ख़राब थी और अब तो कृषि-सम्बन्धी कार्यों के विस्तार के कारण उनमें बहुत कुछ उन्नति हो गई है। इटली ने कृषि-सम्बन्धी उपजें अब बाहर से मँगाना बहुत कुछ कम कर दिया है और उसने शराब, चावल, ताज़े फल और मुरब्बे बाहर भेजने में यथेष्ट वृद्धि की है।

इटली में होटलों का व्यय उनकी श्रेणी के अनुसार कम और अधिक पड़ता है। बहुत-से होटलों में मूल्य के सम्बन्ध में मोल-तोल करना पड़ता है।

उनसे पूछा कि क्या मुसोलिनी विदेशियों से मिलते हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि आज-कल यह सम्भव नहीं है, क्योंकि प्रत्येक डिक्टेटर के शत्रु होते हैं और उनके जीवन पर जो पिछला आक्रमण हुआ उससे अब किसी को उनसे मिलने की आज्ञा नहीं मिलती। इन इटालियन महोदय ने नगर की सामाजिक स्थिति दिखाने के उद्देश से अपनी ही ओर से हमसे प्रस्ताव किया। हम मज़दूरों के कुछ घर देखने गये। सरकार ने जो नये मकान बनवाये हैं वे अत्यन्त स्वच्छ और सुखप्रद हैं, परन्तु इन्हें अन्य योरपीय देशों के समकक्ष लाने के लिए अभी बहुत कुछ करना बाक़ी है। दक्षिणी इटली के मज़दूर-श्रेणी के लोग उतने साधन-सम्पन्न नहीं हैं, जितने उत्तरी प्रान्तों के मज़दूर हैं। ख़ैर, मेरे मित्र ने बतलाया कि पहले उनकी स्थिति

हमारे देश की दूकानों की भाँति वहाँ की दूकानों में भी मोल-तोल करने की आवश्यकता पड़ती है। साधारणतया दूसरे दर्जे के अच्छे होटल में ठहरने और भोजन का व्यय १० रुपया प्रतिदिन बैठता है। भोजन अच्छा होता है और फल यथेष्ट मिलते हैं। इटली में संगीत का बहुत प्रचार है और उसका संगीत सारे योरप में विख्यात है।

नेपल्स में तीन दिन ठहरने के पश्चात् हम इटली की फ़ैसिस्ट सरकार की राजधानी—रोम के लिए रवाना हुए। यह यात्रा नेपल्स से केवल ६ घंटे के लगभग की होने के कारण सुखप्रद प्रतीत हुई। यहाँ इटालियन टूरिस्ट कम्पनी का एजेंट हमें मिला और शहर के बीच में हमें एक अच्छे होटल में ले गया।



[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

१—पद्माकर-पंचामृत—सम्पादक, पंडित विश्वनाथप्रसाद मिश्र, एम० ए०, प्रकाशक, श्री रामरत्न-पुस्तक-भवन, काशी, हैं। सजिल्द पुस्तक का मूल्य ३) है।

२-३—श्री ओंकारनाथ शर्मा द्वारा लिखित, उद्योग-मन्दिर, गुलाबबाड़ी, अजमेर से प्रकाशित २ पुस्तकें—

(१) यांत्रिक—चित्रकारी—मूल्य २॥) है।

(२) वैक्युम-ब्रेक—मूल्य २) है।

४-५—श्री अजितप्रसाद जी-द्वारा लिखित, अजित आश्रम, लखनऊ से प्रकाशित २ पुस्तकें—

(१) देवेन्द्रचरित—सजिल्द पुस्तक का मूल्य ॥=) है।

(२) अजिताश्रम-पाठावली भाग १—मूल्य ।-) है।

६—सुन्दर-सतसई (कविता)—निर्माता, पंडित सुन्दरप्रसाद, प्रकाशक, सेठ ब्रजलाल जी बागड़ी, कोटा (बीकानेर) हैं। मूल्य ॥।) है।

७—प्रलाप (कविता)—लेखक, श्री मृत्युंजय जी, प्रकाशक, शारदा-सदन, काशी हैं। मूल्य ।=) है।

८—चारु चयन—संग्रहकार, श्री हनूमान् शर्मा चौमूँ, जयपुर हैं। पुस्तक बिना मूल्य वितरणार्थ है।

९—भारतीय अनुशीलन—(ओझा-अभिनन्दन-ग्रन्थ)—प्रकाशक, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग है। मूल्य नहीं लिखा है।

१०—विनय-पिटक—अनुवादक, श्री राहुल सांकृत्यायन, प्रकाशक, महाबोधि-सभा सारनाथ, बनारस हैं। सजिल्द पुस्तक का मूल्य ६) है।

११—सफल जीवन—लेखक, श्री छविनाथ पांडेय, बी० ए०, एल-एल० बी०, प्रकाशक, विद्यामंदिर, बनारस सिटी, हैं। मूल्य १॥) है।

१२—दोस्त दर्जियाँ (पहला भाग)—लेखक व प्रकाशक, श्री ईश्वरदत्त, दर्ज़ीघर, रंगमहल बाज़ार, लाहौर, हैं। मूल्य १॥) है।

१३—दि स्टोरी आफ़ दि नोबुल प्राइज़ विनर्स (अँगरेज़ी)—लेखक, श्री ए० के० सेन, प्रकाशक, ईस्टर्न पब्लिशर्स, इलाहाबाद, हैं और मूल्य २॥) है।

१४—पत्र-पुष्प—लेखक, ठाकुर देवीसिंह, चौमूँ, प्रकाशक, जयपुर स्टेट प्रेस, जयपुर, हैं। मूल्य नहीं लिखा है।

१५—राष्ट्रालोक—प्रकाशक, पंडित हरिभुज शास्त्री, अध्यक्ष मातृभाषाप्रचारक ग्रन्थ-माला विद्यालय, नू कौड़ियाँ, अमृतसर, हैं और मूल्य ≡) है।

१६—सेलेक्ट जेम्स (अँगरेज़ी में)—संग्रहकर्ता व प्रकाशक, ठाकुर देवीसिंह जी, चौमूँ, जयपुर हैं।

१—हिन्दीमुहावराकोष—यह हिन्दी का अपने ढंग का एक सुन्दर कोष है। इसे दक्षिण-भारत के प्रोफ़ेसर जम्बुनाथन, एम० ए०, ने लिखा है। आपका हिन्दी के प्रति बड़ा अनुराग है। आपके प्रयत्न से मैसूर-राज्य में हिन्दी का ख़ूब प्रचार हुआ है और आज भी हो रहा है। ऐसे ही विद्वान् हिन्दी-प्रेमी ने इस अनूठे कोष की रचना की है। आपका यह प्रयत्न प्रशंसनीय है और इस क्षेत्र में काम करनेवालों को आपकी इस रचना से प्रोत्साहन ही नहीं मिलेगा, किन्तु सहायता भी मिलेगी। हिन्दी में अभी तक शब्द-कोष ही निर्दोष नहीं बन पाये हैं, तब मुहावरा-कोष के 'पूर्ण' तथा 'निर्दोष' बनने की कैसे आशा की जा सकती है? तथापि इस कोष से एक अभाव की अवश्य पूर्ति हुई है। इसकी रचना में प्रोफ़ेसर साहब ने विशेष परिश्रम किया

है और इसके सर्वाङ्गपूर्ण बनाने में आपने अपनी ओर से कुछ उठा नहीं रक्खा है और इसमें जो यत्र-तत्र त्रुटियाँ हैं उनकी ज़िम्मेदारी इसके प्रणेता पर नहीं डाली जा सकती, क्योंकि प्रणेता ने जहाँ जो मुहावरा प्रयुक्त पाया तथा जिसका जो किया गया अर्थ उन्हें प्राप्त हुआ उसे उन्होंने वहाँ से उठाकर इसमें रख दिया है। उदाहरण के लिए प्रथम पृष्ठ के ३ नंबर के 'अंकुश देना या मारना' को ही लेते हैं। इसका दूसरा अर्थ उन्होंने 'अधीन बनाना या वश में कर लेना' लिखा है। पर यह अर्थ ठीक नहीं है। अर्थ होना चाहिए 'प्रेरित करना', 'प्रेरणा बढ़ाना' आदि। यद्यपि इस तरह की त्रुटियों या मतभेदों की इस पुस्तक में कमी नहीं है, तथापि पुस्तक बड़े काम की है, विशेषकर शिक्षकों और विद्यार्थियों के लिए। इसमें आये हुए मुहावरों की संख्या भूमिका में नहीं बताई गई है। अन्दाज़ से साढ़े तीन हज़ार से ऊपर ही उनकी संख्या होगी। इस मँझोले आकार की २८८ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य १॥) है। पुस्तक सजिल्द है। मिलने का पता—श्री एम० वि० शेषाद्रि एंड कंपनी, बलेपेट, बँगलोर सिटी। ने० श०

२—प्रेम की देवी या वीर हरिजन बालिका—लेखक, श्रीयुत गणेशप्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक, श्री चिरञ्जीलाल हुलसान, ३ दहीहट्टा स्ट्रीट, कलकत्ता हैं। मूल्य आठ आने।

यह एक नाटक है। इसका कथानक इस प्रकार है—सुशीला घुरहू चमार की युवती पुत्री है। एक दिन वह अपनी बकरियाँ चराते हुए गाँव के पास की नदी के किनारे जा पहुँचती है। वहाँ वह गाना गाती है। जगदीश एक ब्राह्मण ज़मींदार का पुत्र है। वह घूमता हुआ संयोग से उधर जा निकलता है और गाना सुनकर गायिका के पास जाता है। जाते समय मार्ग में पैर फिसलकर वह नदी में गिर पड़ता है, जहाँ मगर के आक्रमण से सुशीला नदी में कूद कर उसके प्राण बचाती है। दोनों का प्रेम हो जाता है और उनकी प्रेम-लीला को गाँव के कुछ लोग देख लेते हैं। सूरजराम नाम का एक पचास वर्ष का धनी बुड्ढा है। वह भी सुशीला से पुन प्रेम की भिक्षा माँगता है। उधर जगदीश बाबू की बहन युवती रमा से भी विवाह करना चाहता है, इसके लिए वह रमा के पिता को उधार रुपया देता है। घुरहू अपनी कन्या के प्रेम की बात सुनकर उसे घर से निकाल देता है। वह आत्म-हत्या करने के लिए रेल की पटरी पर जा लेटती है। जगदीश उसकी रक्षा करता है। इसी बीच में सूरजराम सुशीला को बदमाशों-द्वारा उड़ा ले जाता है और एक अगम्य स्थान में क़ैद कर रखता है। ठीक विवाह के समय रमा घर से निकल भागती है, सुशीला भी कारागृह से चल खड़ी होती है। दोनों नदी तट पर मिलती हैं और कलकत्ते जाकर एक वृद्ध मेम की सहायता से व्यापार से धन कमाती हैं। घुरहू तथा जगदीश भी कलकत्ते पहुँचते हैं। वहाँ वे दोनों अपनी खोई हुई निधियों को पाते हैं। सूरजराम अपने पन्द्रह हज़ार रुपयों के लिए जगदीश के पिता की सारी जायदाद नीलाम पर चढ़वाता है। उसी समय ख़बर पाकर जगदीश घुरहू तथा सुशीला के साथ वहाँ पहुँचता है और अपने पिता की रक्षा करता है। सूरजराम को कन्याओं के भगाने के अपराध में पकड़वा देता है। पिता की सम्मति से जगदीश सुशीला से विवाह करने को तैयार होता है। उसी समय यह प्रकट होता है कि सुशीला घुरहू चमार की नहीं, राजमंत्री विश्वेश्वर शर्मा की पुत्री है। राजकोष का भाजन बनकर भागते समय उन्होंने अपनी पुत्री को एक अपरिचित व्यक्ति को सौंपा था और वह अपरिचित व्यक्ति घुरहू चमार था।

हमारी सम्मति में सुशीला को विश्वेश्वर शर्मा की औरस सन्तान सिद्ध करने की विशेष आवश्यकता न थी। ऐसा करके लेखक ने वीर हरिजन बालिका को अन्त में ब्राह्मण-कुमारी बनाकर पुस्तक की सामयिकता तथा उद्देश दोनों को क्षति पहुँचाई है। 'प्रेम ही सच्चा धर्म है'—लेखक का यह उद्देश सुशीला को हरिजन बालिका ही बनी रहने देने से सम्भवतः अधिक स्पष्टतया सफल हो सकता और राजा तथा मंत्री-सम्बन्धी सारे अन्तर्कथानक की भी आवश्यकता न पड़ती। पुस्तक पढ़ने में मन लगता है और अभिनय तथा चित्रपट दोनों में ही इसकी कथा का सफल उपयोग किया जा सकता है। पुस्तक की भाषा सरल और सुबोध है तथा कवितायें साधारण तथा आज-कल के प्रचलित थियेटरों के ढंग की हैं।

३—प्रलाप (कविता)—रचयित्री श्रीमती सुशीलादेवी सामन्त, प्रकाशक, श्री देवेन्द्रनाथ सामन्त, एम० ए०, एल-एल० बी०, एम० एल० सी०, चाईबासा हैं।

यह पुस्तक 'वीणा', 'अन्तर्धान', 'अभिलाषा' आदि भिन्न भिन्न शीर्षकोंवाली ४३ कविताओं का संग्रह है और खड़ी बोली में लिखी इन सरस कविताओं की लेखिका हैं गुजराती-भाषाभाषिणी एक महिला कवि। प्रारम्भ में अपना परिचय देते हुए उन्होंने लिखा है—

"हिन्दी मेरी मातृभाषा नहीं है। मेरी मातृभाषा गुजराती है। परन्तु मैं राष्ट्र-भाषा हिन्दी को अपनी मातृ-भाषा से अधिक पूज्य समझती हूँ।" लेखिका का यह विचार अभिनन्दनीय है।

इन कविताओं में कवि-हृदय की एक सहज स्वाभाविक करुण झंकार ओतप्रोत है। इन्हें हम 'प्रलाप' कहकर कैसे पुकारें? निःसन्देह एक वियोगिनी के हृदय-कानन के ये सहज, सरस तथा सुन्दर काव्य-कुसुम साहित्य-रसिकों के हृदय में सहानुभूतिपूर्ण आत्म-विस्मृति की अवस्था उत्पन्न कर देते हैं। पुस्तक में छन्द-सम्बन्धी कुछ त्रुटियाँ भी खोजने से मिल जायँगी, परन्तु 'काव्य' हृदय का सहज अन्तर्नाद है, केवल छन्द ही नहीं। कविता-प्रेमियों को इस रचना का आनन्द लेना चाहिए।

४-५—साहित्य-सेवक-संघ छपरा की २ पुस्तकें—

(१) मेरी योरोप-यात्रा—लेखक, त्रिपिटकाचार्य श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन। मूल्य १॥=) है।

लंका, तिब्बत, योरप आदि के उत्साही पर्यटक, बौद्ध-साहित्य के ख्यातिप्राप्त पंडित श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन जी का विशेष परिचय देने की आवश्यकता नहीं। भिक्षु जी की योरप-यात्रा का यह मनोरंजक वर्णन सरस और सुन्दर शैली में लिखा गया है। लन्दन, पेरिस तथा जर्मनी के प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थानों, शिक्षणालयों, अद्भुतालयों, ग्रन्थागारों आदि का वर्णन सरल तथा सजीव भाषा में लिखे होने के कारण पाठकों के सामने उन उन चीज़ों को मूर्त्तिमान् रूप में लाकर खड़ा कर देता है। अध्याय के अध्याय पढ़ जाने पर भी जी नहीं ऊबता। भारतीय त्रुटियाँ और विदेश की ख़ूबियाँ कहीं कहीं पास-पास तुलनात्मक रूप में अंकित की गई हैं। ऐसे स्थानों पर लेखक ने अपने व्यंग्य के चाबुकों की जो फटकार लगाई है उससे देशवासियों के उद्बोधन का कार्य होता है। सचित्र होने से यह पुस्तक और भी उपयोगी हो गई है।

(२) लंका—लेखक, श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन। मूल्य ||=)।

इस पुस्तक में श्रीयुत राहुल जी ने अपने 'लंका-प्रवास' के अनुभवों, तथा लंका के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध नगरों एवं तत्सम्बन्धी इतिहास का रोचक वर्णन किया है। लंका-निवासियों के धर्म, उनका रहन-सहन, रीति-रवाज आदि अनेक विषयों का ज्ञान इस पुस्तक से हो जाता है। समन्तकूट का तीर्थ मुसलमान, हिन्दू तथा बौद्ध सबके लिए एक पवित्र तीर्थ क्यों है और कैसा है, इसका मनोरंजक वर्णन आपको इस पुस्तक में मिलेगा। लेखक की लेखनशैली की सब विशेषतायें इसमें भी हैं।

साहित्यसेवक-संघ, छपरा-द्वारा प्रकाशित इन दोनों पुस्तकों का गेट-अप सुन्दर है, परन्तु प्रूफ़-सम्बन्धी त्रुटियाँ भी यत्र-तत्र रह गई हैं। दोनों पुस्तकें उपादेय हैं।

—कैलाशचन्द्र शास्त्री, एम० ए०

६—लंदन में भारतीय विद्यार्थी—लेखक, श्री राजकुमार रघुवीरसिंह बार-एट-लॉ, प्रकाशक, राजस्थान मंडल, अजमेर और मूल्य १।) है।

लेखक महोदय ने ढाई सौ पृष्ठों की इस पुस्तक को पाठकों की सुविधा के लिए सात परिच्छेदों में विभक्त किया है। शिक्षा प्राप्ति के लिए लंदन में जाने-वाले भारतीय विद्यार्थियों को पहले जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और वहाँ का वातावरण उनके विचारों में परिवर्तन करके उन्हें अपने अभीष्ट से जिस प्रकार गिरा देता है उस सबका इस पुस्तक में यथोचित विश्लेषण किया गया है। इसकी शैली उपन्यास-जैसी है। मदन, ऐयर और गुप्ता इसके मुख्य पात्र हैं। वे शिक्षा-प्राप्ति की कामना से लंदन जाते हैं। ऐयर का

आचरण आरम्भ से अन्त तक पश्चिमी ढंग का. और गुता का पूर्वी ढंग का है। मदन अपने आचरण में दोनों विचारों से अच्छी बातों को ही अपनाने का प्रयत्न करता है। कुछ दिन के बाद उसकी भारतीय विचारधारा मन्द पड़ जाती है और पश्चिमी लोगों का सहवास उसे अधिक प्रिय हो जाता है। उसे सैर-सपाटे अधिक पसन्द होते हैं यहाँ तक कि लंदन के समुद्री किनारे की सैर में वह मिस जोन्स के फंदे में फँस जाता है। मदन को मिस जोन्स के प्रेम में विशुद्धता का भान होता है, पर कुछ ही दिनों में उसके आचरण पर उसे सन्देह भी होने लगता है। मिस जोन्स अपनी वाक्-चतुरता से मदन को फिर विश्वास दिलाती है और उससे मदन का मेल-जोल अधिक बढ़ जाता है। किन्तु अचानक मदन को फिर उसके भ्रष्टा-चरण का प्रमाण मिल जाने से उद्विग्नता उत्पन्न हो जाती है। वह अपनी हत्या का प्रयत्न करता है, पर दैवयोग से बच जाता है। इस घटना के बाद उसकी विचारधारा विशुद्ध हो जाती है; और वह सदा के लिए सचेत हो जाता है।

अन्य घटनायें प्रसंगवश ही इसमें लाई गई हैं। इस पुस्तक को पढ़कर भारतीय विद्यार्थी लंदन में जाकर अधिक चेतनता के साथ अधिक बातें सीख सकता है। पुस्तक सुपाठ्य और उपयोगी है।

— गंगासिंह

७—प्रवासी भारतीयों की वर्तमान समस्यायें — लेखक, श्रीयुत प्रेमनारायण अग्रवाल बी० ए०, प्रकाशक, मानसरोवर-साहित्य-निकेतन, मुरादाबाद हैं। मूल्य १) है।

अपने विषय की यह एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। प्रवासी भारतीयों की समस्यायें भारत के भविष्य जीवन का एक कठिन प्रश्न है। इस पुस्तक में लेखक ने बड़ी रोचक शैली तथा ज़ोरदार भाषा में प्रवासी भारतीयों की समस्याओं की ओर देश का ध्यान आकृष्ट किया है। अपने प्रवासी भाइयों की कठिनाइयों की ओर से हम लोग कितने उदासीन हैं और उनके ऊपर किये गये अन्याय तथा अत्याचारों का विरोध न करके हम अन्याय और अत्याचार को कैसे प्रोत्साहन देते हैं. यह इस पुस्तक के पाठ से स्पष्ट हो जाता है। पुस्तक की भूमिका में प्रवासी भारतीयों की समस्याओं के विशेषज्ञ श्रीयुत स्वामी भवानीदयाल जी संन्यासी ने इन बातों पर, आपबीती घटनाओं-द्वारा, अच्छा प्रकाश डाला है। प्रत्येक भारतहितैषी को यह पुस्तक पढ़नी चाहिए।

८—भारतीय सहकारिता-आन्दोलन—लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सकसेना, एम० ए० बी० काम०। पता—व्यवस्थापक, भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन, है। मूल्य २) है।

प्रोफ़ेसर शंकरसहाय सकसेना बरेली-कालेज में अर्थ-शास्त्र के अध्यापक हैं और अपने विषय के विशेषज्ञ हैं। इस पुस्तक में उन्होंने भारतीय ग्रामों की अनेक आर्थिक समस्याओं तथा सहकारिता-द्वारा उनको हल करने के उपायों पर अच्छा प्रकाश डाला है। पुस्तक विस्तृत अध्ययन तथा परिश्रम से लिखी गई है। और अपने विषय की हिन्दी में संभवतः एक ही पुस्तक है। आज-कल जब देश का ध्यान ग्राम-संगठन और ग्राम-सुधार की ओर लगा हुआ है, इस पुस्तक में वर्णित उपायों से इस कार्य में बड़ी सहायता मिल सकती है। पुस्तक की भाषा सरल और विषयोपयोगी है तथा गेट-अप सुन्दर है। आशा है, हिन्दी-प्रेमी इस पुस्तक का उचित आदर करेंगे।

९—कौटिल्य के आर्थिक विचार—लेखक, श्रीयुत जगनलाल गुप्त तथा श्रीयुत भगवानदास केला। पता—व्यवस्थापक, भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन। मूल्य ||।=) है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अँगरेज़ी तथा हिन्दी में यद्यपि कई अनुवाद हो चुके हैं, तथापि उनके ग्रन्थ के विषयों को सरल रूप में रखनेवाली एक पुस्तक की आवश्यकता थी। इन लेखकों ने इस पुस्तक को लिखकर इस कमी को दूर किया है। इस पुस्तक के पढ़ने से मालूम होगा कि ईसा से ३२२ वर्ष पूर्व हमारे देश में लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर भारतीय मनीषियों ने कैसे प्रौढ़ ग्रन्थ लिखे थे। उस समय की रीति-नीति तथा समाज-व्यवस्था के बारे में इस पुस्तक से हम पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। आशा है, पुस्तक का उचित आदर होगा जिसके कि वह सर्वथा योग्य है।

१०—श्री तुकाराम-चरित्र (जीवनी और उपदेश)— मूल-लेखक, श्रीयुत लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर, बी० ए०। हिन्दी-अनुवादक—श्रीयुत लक्ष्मण नारायण गर्दे। मूल्य १≡) है। पता—गीता-प्रेस, गोरखपुर।

यह मराठी-पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद है। हिन्दी में कबीर तथा तुलसी को छोड़कर संभवतः अन्य किसी संत कवि के जीवन के विषय में इतना छान-बीन, विस्तार तथा परिश्रम से लिखा हुआ ग्रन्थ हमने नहीं देखा। मध्य-युग के हिन्दी के सन्त कवियों के विषय में कवीन्द्र-रवीन्द्र के विश्वविद्यालय में बंगभाषा-भाषी विद्वान गवेषणा करें, उनकी वाणियों का संग्रह करने के लिए वे सुदूर स्थानों की यात्रा करें तथा उनकी अमर वाणी पढ़कर विदेशी लोग तक मुग्ध हों, परन्तु जिनकी भाषा में उन्होंने अमूल्य अनुभूतियों का अमृत भरा है वे पैर पसारे निश्चेष्ट सोया करें। इससे बढ़कर लज्जा का विषय क्या हो सकता है? इस पुस्तक में मूल-लेखक ने जिस परिश्रम तथा विस्तार से महाराष्ट्रदेशीय भक्त सन्त तुकाराम की जीवनी तथा उपदेशों को संकलित किया है उसे देखकर हमें बड़ा ही आनन्द हुआ। कर्म, उपासना तथा ज्ञानकाण्ड नामक तीन मुख्य खण्डों में यह ६६६ पृष्ठों का ग्रन्थ लिखा गया है। साधना के पथ पर चलने की इच्छावाले भक्तों के लिए तथा जनता में आध्यात्मिक भावों की पवित्र जागृति के लिए ऐसे सन्त कवियों की आत्मानुभूतियाँ, उनकी चमत्कार-पूर्ण जीवन-घटनायें तथा साधारण अवस्था से आध्यात्मिक चरम विकास के लिए उनके द्वारा अवलम्बित उपाय वास्तव में श्रद्धा, उत्साह और आत्मिक बल प्रदान करते हैं।

पुस्तक के अनुवादक हैं हिन्दी के प्रौढ़ लेखक श्रीयुत लक्ष्मण नारायण गर्दे जी। इसलिए अनुवाद की सुन्दरता के विषय में विशेष कहने की आवश्यकता नहीं। इस ६६६ पृष्ठों ऐसे बड़े आकार के उपयोगी ग्रन्थ को एक रुपये तीन आने के नाम-मात्र मूल्य पर देने के लिए गीता-प्रेस भी प्रशंसा का पात्र है। ऐसे सुन्दर तथा सुलभ ग्रन्थ का हिन्दी-प्रेमियों को संग्रह तथा स्वाध्याय करना चाहिए।

११—श्री चैतन्यचरितावली (खण्ड—चतुर्थ तथा पञ्चम)—लेखक, श्रीयुत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, प्रकाशक—गीता प्रेस, गोरखपुर। मूल्य क्रमशः ||=) और |||) है.

श्रीचैतन्यचरितावली के इन दोनों खण्डों के प्रकाशित हो जाने से श्री चैतन्य महाप्रभु का जीवन-चरित पूर्ण हो जाता है। पूर्व प्रकाशित खण्डों की ही भाँति इन दोनों खण्डों को भी लेखक ने अपनी ओजस्विनी, भक्तिपूर्ण तथा सरल शैली में ही लिखा है। चतुर्थ खण्ड में रंगीन तथा सादे चित्रों की संख्या चौदह तथा पंचम खण्ड में दस है। इसके पढ़ने से महाप्रभु का जीवन आँखों के सामने नाचने लगता है और हृदय में आध्यात्मिक बल तथा भक्ति का उदय होता है। पंचम खण्ड के अन्त में लेखक ने इन पुस्तकों की रचना के लिए प्रयुक्त ग्रन्थों की तथा चैतन्य-चरित-सम्बन्धी विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध पुस्तकों की एक सूची भी दे दी है। अध्ययनशील जिज्ञासु महोदय जो महाप्रभु के चरित के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहें, इससे लाभ उठा सकते हैं। आध्यात्मिक पथ के पथिकों तथा भक्तों के लिए पुस्तक परम उपयोगी है।

१२—एशिया की महिला-क्रान्ति—लेखक, श्री जगदीशप्रसाद माथुर 'दीपक', प्रकाशक, हिन्दी-साहित्य-मण्डल, बाज़ार सीताराम, देहली हैं। मूल्य १) है।

दीपक जी ने अपनी इस पुस्तक में एशिया-महाद्वीप के रूस, चीन, जापान, बर्मा, फ़ारस और भारत-देश की स्त्रियों की तथा अन्य देश नामक अध्याय में तुर्की की महिलाओं की जागृति पर प्रकाश डाला है। इन देशों में महिला-क्रान्ति से पूर्व स्त्रियों की दुर्दशा, उनका क्रय-विक्रय तथा अधिकार-हीन तथा मूक बन्दी-सा उनका जीवन अङ्कित करके लेखक ने क्रान्ति के पश्चात् उन देशों की महिलाओं के कार्य, त्याग, योग्यता तथा उनके द्वारा किये गये सुधारों का दिग्दर्शन कराया है। इस पुस्तक के पढ़ने से हिन्दी-भाषा-भाषियों को बहुत-सी नई बातें मालूम होंगी और उनका दृष्टिकोण विस्तृत होगा। भारतीय महिलायें इसे पढ़कर अन्य देशों की महिलाओं से त्याग, आत्मविश्वास तथा आत्मनिर्भरता की शिक्षा ग्रहण कर सकती हैं। लेखनशैली सुन्दर तथा

भाषा सरल है। पुस्तक का गेट-अप अच्छा है, पर मूल्य यदि प्रचार की दृष्टि से कुछ कम होता तो अधिक उचित होता।

१३—महिलासमाज—लेखक, श्रीयुत ओंकारनाथ 'दिनकर', प्रकाशक, परिवर्तन-प्रकाशक-विभाग, अजमेर हैं। मूल्य ।) है।

इस छोटी-सी पुस्तक में लेखक ने 'हमारा न्याय' शिक्षा, परदा तथा अधिकार नामक शीर्षकों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। स्त्रियों के प्रति पुरुषों-द्वारा किये गये अन्याय तथा अधिकारापहरण का जोशीले शब्दों में विरोध करते हुए लेखक ने महिलाओं की शिक्षा के अभाव से होनेवाली हानियों को दिखलाया है तथा परदे की प्रथा को दूर करने के लिए भी उचित कारण बतलाये हैं। पुस्तक में कोई नवीन विचार नहीं है, हाँ महिलाओं के पक्ष-समर्थन में लेखक ने उन स्मृतिकारों तथा भक्तों की कटु आलोचना अवश्य की है जिन्होंने स्त्रियों की निन्दा की है। परन्तु यह निन्दा विरक्ति-मार्ग में जिस प्रकार, कामिनी-काञ्चन के परित्याग के लिए 'कामिनीरूप' नारी की की गई है, उसी प्रकार उस पथ की पथिक नारियों के लिए पुरुषों को हेय बतलाया है। इस दृष्टिकोण को सामने न रखने के कारण लेखक की युक्तियाँ एकाङ्गी तथा एक पक्ष की हो गई हैं। प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ के अँगरेज़ी वाक्यों के उद्धरण देकर प्रारम्भ करना, विशेषतया उन स्थानों पर जहाँ वे स्मृति के श्लोकों अथवा वेदमंत्रों के अनुवादमात्र हैं, अवाञ्छनीय है। पुस्तक में अनेक सामयिक बातों पर भी प्रकाश डाला गया है। इस दृष्टि से पुस्तक उपादेय कही जा सकती है।

१४—अनुवाद-चन्द्रिका—लेखक, कविरत्न पण्डित चक्रधर नौटियाल, एम० ए०, शास्त्री, हिन्दी-प्रभाकर हैं। पता—मोतीलाल-बनारसीदास, पंजाबसंस्कृतपुस्तकालय, लाहौर। मूल्य १) है।

यह पुस्तक हाई स्कूल तथा इन्टरमीडियेट के परीक्षार्थियों को लक्ष्य में रखकर लिखी गई है। संस्कृत-अनुवाद पर अन्य भी अनेक लेखकों ने पुस्तकें लिखी हैं, परन्तु जैसी सरल पद्धति तथा क्रम से अनुवाद के लिए आवश्यक विषयों का विवेचन इस पुस्तक में हुआ है, वैसा बहुत थोड़ी प्रचलित पुस्तकों में दृष्टिगोचर होता है। संस्कृत-व्याकरण तथा अनुवाद दोनों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस बात का विचार रख कर ही शास्त्री जी ने इस पुस्तक को लिखा है। पुस्तक के अन्त में अशुद्धि-संशोधन, लोकोक्ति-संग्रह, पंजाब तथा संयुक्त-प्रान्त की प्राज्ञ तथा हाई स्कूल परीक्षाओं के प्रश्न-पत्र तथा शब्द-सूची नामक प्रकरणों से ग्रन्थ की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। पुस्तक परिश्रम से लिखी गई है और हाई स्कूल की श्रेणियों के लिए विशेष उपयोगी है।

१५—विद्यार्थी जैनधर्मशिक्षा—लेखक, श्रीयुत ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद जी, प्रकाशक, दि० जैन-पुस्तकालय, सूरत हैं। मूल्य १।।) है।

स्कूल तथा कालेज के जैन-विद्यार्थियों को जैन-धर्म के तत्त्वों तथा शिक्षाओं से परिचित कराने के उद्देश से लेखक ने इस पुस्तक को लिखा है। सम्पूर्ण पुस्तक शिष्य तथा शिक्षक के प्रश्नोत्तरों के रूप में सरल, शुद्ध तथा प्रतिपाद्य विषय के अनुरूप भाषा में लिखी गई है। जैन-धर्म की सम्पूर्ण रूपरेखा तथा उसके तत्त्व इस एक पुस्तक के पढ़ने से पर्याप्त रूप से समझ में आ सकते हैं। पुस्तक परिश्रम से लिखी गई है। आशा है, जैन छात्र इससे उचित लाभ उठावेंगे। अजैन जिज्ञासु भी जैन-धर्म की अनेक ज्ञातव्य बातों को इस एक पुस्तक से जान सकेंगे। लेखक ने पुस्तक के अन्त में जैनेतर धर्मों तथा जैन-धर्म की समानताओं तथा असमानताओं का भी संक्षिप्त परिचय दे दिया है जिससे पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में अन्य धर्मों के विवेचन में लेखक ने शिष्टभाषा का प्रयोग किया है। जैन तथा अजैन दोनों को इससे लाभ उठाना चाहिए।

१६—प्रसंगोचित पद्यमालिका—(संस्कृतग्रन्थ) संग्रहकर्ता श्रीयुत फूलचन्द्र मुनि, पृष्ठ-संख्या १६३, मूल्य ।।) है। पता—श्री जोतिमल मूलामल जैन (भावड़ा), मोतीबाज़ार, पो० मालेरकोटला स्टेट (पंजाब)।

उपदेश देने अथवा धर्म-प्रचार करने के समय व्याख्यान को प्रभावशाली एवं रोचक बनाने के लिए काम में आनेवाली संस्कृत सूक्तियों का तथा श्लोकों का इसमें संग्रह किया गया है। यह ग्रन्थ जैन उपदेशकों तथा प्रचारकों के बड़े काम का है। अन्य संस्कृतज्ञ विद्वान् भी इससे लाभ उठा सकते हैं। पद्यों का हिन्दी-अनुवाद जानबूझ कर ग्रन्थकार ने नहीं दिया है। परन्तु हमारी सम्मति में यदि हिन्दी-अनुवाद भी दे दिया जाता तो संस्कृत न जाननेवाले भी इस संग्रह से लाभ उठा सकते और ग्रन्थ के प्रचार का क्षेत्र भी बढ़ जाता। पुस्तक में शुद्धि-अशुद्धि की सूची भी लगा दी गई है। छपाई साधारण है।

१७—संध्या-पाठ (कबीर-पंथी पुस्तक)—टीकाकार, पं० मू० १०८ महन्त श्री विचारदास जी बीजक टीकाकार, पृष्ठ-संख्या ८० और मूल्य ≥) है। पता—कबीर साहेब का मन्दिर, सीयाबाग़, बड़ौदा (गुजरात)।

संतप्रवर कबीरदास की वाणी में 'संध्या-पाठ' का एक विशेष स्थान है। इस पुस्तक में मंगलाचरण, चौंड़ी आरती, ज्ञानस्तोत्र, विज्ञानस्तोत्र, दयासागर, चेतावनी आदि का समावेश क्रम से किया गया है। संध्या-पाठ पर महन्त जी ने 'सरला' नामक टीका में मूल-पदों की सरल तथा विशद व्याख्या की है। टीका में यथास्थान योग-सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य बातों पर प्रकाश डाला गया है। प्रारम्भ में संध्या के महत्त्व पर शास्त्रीय प्रमाणों-सहित एक छोटी-सी भूमिका लिखी गई है। पुस्तक कबीर-पन्थियों के काम की है और उन्हें इससे लाभ उठाना चाहिए।

१८—गोपी-प्रेम—लेखक, श्रीयुत हनुमानप्रसाद पोद्दार, पृष्ठ-संख्या ५६, मूल्य —)।। है। पता—गीता-प्रेस, गोरखपुर। भगवान् कृष्ण और गोपियों का प्रेम भगवद्-भक्तों के साधन और सिद्धि का चरम आदर्श है। प्रस्तुत पुस्तक में उसी पवित्र प्रेम की व्याख्या की गई है। गोपी-प्रेम क्या है और विश्वत्यागी विरक्त और भक्त महात्माओं में उसका क्यों इतना आदर है, यह बात इस पुस्तक के पढ़ने से बहुत कुछ समझी जा सकती है। पुस्तक उपादेय और मनन करने योग्य है।

१९—कृष्णकीर्त्तन—संग्रहकार तथा अनुवादक 'दीक्षित-बन्धु' हैं। पृष्ठ-संख्या १६ है। बिना मूल्य वितरित। प्रकाशक—श्री कन्हैयालाल दीक्षित, खलासी लैन, कानपुर हैं।

लेखक ने अपने पूज्य पिता की पुण्यस्मृति में "श्री मिश्रीलाल दीक्षित ग्रन्थमाला" का प्रकाशन प्रारम्भ किया है। उक्त ग्रन्थ-माला का यह प्रथम पुष्प है। इस छोटी-सी पुस्तक में कृष्णविषयक स्तुति-श्लोकों का संग्रह किया गया है। श्लोक चुने हुए हैं। श्लोकों के नीचे सरल तथा शुद्ध हिन्दी में उनका अनुवाद दिया गया है। कृष्ण-भक्तों के काम की है।

२०—आर्कीयोलोजी इन ग्वालियर-(अँगरेज़ी)—लेखक, श्रीयुत एम० बी० गर्दे, बी० ए०, सुपरिंटेंडेंट आफ़ आर्कीयोलोजी, ग्वालियर स्टेट। मूल्य १।।) है।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने ग्वालियर-रियासत की पुरातत्त्व-सम्बन्धी खोजों तथा वहाँ के प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थानों का संक्षिप्त परिचय दिया है। ग्वालियर-राज्य में उज्जयिनी, विदिशा, पद्मावती, दशपुर, कुन्तलपुर आदि प्रसिद्ध प्राचीन नगर हैं और ये ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इस पुस्तक में इन सभी स्थानों की पुरातत्त्व-सम्बन्धी बातों का विवरण दिया गया है।

स्वर्गीय ग्वालियर-नरेश ने अपने यहाँ पुरातत्त्व-विभाग को खोलकर तथा श्रीयुत गर्दे जी जैसे पुरातत्त्व के विशेषज्ञ को उसका प्रबन्ध सौंपकर वास्तव में एक उपयोगी कार्य किया है। इसके द्वारा कितनी ही अमूल्य ऐतिहासिक सामग्रियों की रक्षा की व्यवस्था हुई है जैसा कि इस पुस्तक से ज्ञात होता है। ग्वालियर के पुरातत्त्व-विभाग ने अपने यहाँ एक संग्रहालय भी स्थापित किया है, जो इतिहास के विद्यार्थियों के लिए बड़े काम का है। इस पुस्तक में ग्वालियर के प्रसिद्ध स्थानों के ३४ चित्र तथा ग्वालियर का मानचित्र भी दिया गया है। छपाई, गेट-अप आदि उत्तम है।

२१—माइन्ड इट्स मिस्ट्रीज़ एण्ड कन्ट्रोल—(अँगरेज़ी)—लेखक, श्रीयुत स्वामी शिवानन्द सरस्वती, प्रकाशक, गीता-प्रेस, गोरखपुर हैं।

मन के विषय में अनेक आध्यात्मिक ग्रन्थों में मिलनेवाली सामग्री का इस पुस्तक में संग्रह-सा कर दिया गया

है। मन क्या है, किससे बना है, इसका क्या परिमाण है, खाद्य द्रव्यों का इस पर क्या प्रभाव पड़ता है, कैसी अद्भुत शक्तियों का यह भाण्डार है, कैसे यह चञ्चल मन वश में किया जा सकता है इत्यादि शीर्षकों के नीचे लेखक ने अनेक उपयोगी बातों का संकलन किया है। एक ही विषय पर विभिन्न मतों को रखने से तथा उनमें से एक के निर्णय का प्रयत्न न होने से प्रतिपाद्य विषय की स्पष्टता कम हो गई है। योग्य जिज्ञासु तथा इस विषय से अनुराग रखनेवाले सज्जन इससे अनेक ज्ञातव्य बातें जान सकते हैं। विषय-प्रतिपादन की शैली यदि अधिक क्रम-बद्ध होती तो पुस्तक और भी उपयोगी हो सकती थी।

कैलाशचन्द्र शास्त्री, एम० ए०

२२-३०—'गीता-प्रेस' की ६ पुस्तकें

गोरखपुर के 'गीता-प्रेस' ने अब तक जितने काम किये उनमें लोकोपकार का भाव अधिक रहा है। हाल में उसने (१) 'ईश' (२) 'केन' (३) 'कठ' (४) 'मुण्डक' (५) 'प्रश्नोपनिषद्'— ये पाँच उपनिषद् सानुवाद शाङ्कर-भाष्य सहित नवीन छापे हैं। इनकी पृष्ठ-संख्या यथाक्रम ५०, १५०, १७०, १३० और १३० है और मूल्य ≡), ॥), ॥-), ।≡) और ।≡) है। इन सबमें एक एक रङ्गीन चित्र, विषय-सूची, मंत्रानुक्रमणिका, और शब्दार्थ एवं भावार्थबोधक शुद्ध अनुवाद है। वह मूल के बराबर बगल में लगा हुआ है। ऐसा होने से प्रत्येक वाक्य या पंक्ति का अर्थ समझने में बुद्धि स्वतः प्रविष्ट हो जाती है और उसमें छात्रों को विशेष सुविधा मिलती है। 'उपनिषद्' वेदों के अर्थ प्रकट करनेवाले होते हैं। और वेद, भगवान् की वाणी है जिनमें सम्पूर्ण शास्त्रों के सारभूत बीज भरे हुए हैं।

इनके अतिरिक्त (६) 'मुमुक्षुसर्वस्व'—नामतुल्य फल देनेवाला है। इसके पाँच प्रकरण हैं। पहले में आत्मज्ञान, दूसरे में आचारदर्शन, तीसरे में विरक्ति, चौथे में जप, ध्यान, उपासना और पाँचवें में बन्धनमोक्ष के उपाय बतलाये गये हैं। प्रत्येक विषय सोदाहरण है। इस लोक में निरामय रहने और बंधनमुक्त होकर परलोक प्राप्त करने के लिए यह ग्रन्थ मनन करने योग्य है। संपूर्ण विषय ६३, पृष्ठ चार सौ, मूल्य ॥|), रङ्गीन चित्र १ और अशुद्धि एक भी नहीं। (७) 'प्रेमदर्शन'—है। इसे नारदभक्ति सूत्र का विस्तृत अनुवाद या भाषाभाष्य कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं। इसमें अनुवादक महोदय ने एतद्विषयक अपनी व्यापक बुद्धि का परिचय दिया है। मनोदित भाव प्रदर्शित करने के सिवा अन्यत्र के अनेक वाक्य और आशय देकर इसे बहुत ही उपयोगी, हृदयग्राही एवं रुचिकारी बना दिया है। भक्तिविषयक बातों में अधिकांश व्यक्ति कम ध्यान देते हैं। किन्तु इसमें तो सामान्य मनुष्यों का मन भी आनन्दमग्न होकर संलग्न हो जाता है। इसके सम्पूर्ण ८४ सूत्रों का अवलोकन करने से सूचित हो सकता है कि वे सूत्र ८४ से पिंड छुड़ाने में समर्थ हैं। इसकी पृष्ठ-संख्या २००, चित्र ३, प्रकरण १६ और मूल्य ।-) है।

(८) 'नारदभक्तिसूत्र' में प्रेमदर्शन के मूल सूत्र संस्कृत में हैं। साथ में भावार्थबोधिनी टीका है। भगवद्भक्त इसको कंठस्थ करके प्रेमदर्शन के सहारे तल्लीन होना चाहें तो बड़ी सुविधा मिलती है। इसकी पृष्ठ-संख्या ३० और मूल्य)। है। और (९) गोविन्द दामोदर माधवेति' स्तोत्र है। इसमें भगवान् की विविध लीलाओं का मनोविनोदात्मक एवं आत्मकल्याणकारक रूप में परिचय कराने के साथ ही प्रत्येक श्लोक में 'गोविन्द दामोदर माधवेति' उच्चारण करा दिया है। इसके सुरीले श्लोकों की मधुर ध्वनि में मन मग्न हो जाता है। साथ में सुन्दर भाषानुवाद भी है। श्लोक ६८, पृष्ठ ४०, चित्र १ और मूल्य -)॥ है।

—हनुमान शर्मा



[चित्रकार—श्रीयुत सुशील घोष

सामयिक साहित्य

भारतवर्ष का परिवर्तनकाल

इँग्लैंड में 'ईस्ट इंडिया असोसिएशन' नाम की एक संस्था है। यह एक प्रकार की साहित्यिक संस्था है। इसमें शिक्षित अँगरेज़ और विलायत में जाकर रहनेवाले भारतीय परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। इस संस्था की कार्यवाही लन्दन से प्रकाशित होनेवाले मासिक पत्र 'एशियाटिक रिव्यू' में छपा करती है। गत आक्टोबर के अंक में श्रीयुत फ़िलिप मोरेल का जो पार्लियामेंट के मेम्बर हैं और जो हाल में दो महीने के लिए भारत का भ्रमण करने आये थे, एक लेक्चर छपा है। इसे इन्होंने 'भारतवर्ष का परिवर्तनकाल' शीर्षक में उक्त संस्था में पढ़ा था। लेक्चर के अन्त में उपस्थित सदस्यों की टिप्पणियाँ भी छापी गई हैं। यहाँ हम उनके लेक्चर का सार देते हैं—

भारतवर्ष से मेरा प्रेम बचपन से ही है। मेरी बुआ एना ने भारतीयों की सेवा में अपनी ज़िन्दगी ही गुज़ार दी। वे मुझे अपने पत्रों में भारत की बातें लिखकर और यहाँ के चित्र भी भेजा करती थीं। उन सब बातों से भारत के बारे में मेरा प्रेम बढ़ता गया। फिर भारत से मेरा इतना ही लगाव नहीं है। मेरी पत्नी भारत के एक भूतपूर्व गवर्नर-जनरल की पोती हैं और दूसरे की भतीजी। इसलिए मैं भारत की यात्रा करने यों ही नहीं निकल पड़ा था, बल्कि उसके स्नेह के बन्धन ने हमें आकृष्ट किया था।

भारतवर्ष में बड़े बड़े परिवर्तन हो रहे हैं। नये विधान के विषय में मुझे कुछ नहीं कहना है। इस सम्बन्ध में लार्ड हालीफ़ाक्स का एक वाक्य काफ़ी होगा—"सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह देखना है कि किस भावना से हम भारतीयों को नवीन शासन-विधान देते हैं और किस भावना से वे उसका स्वागत करते हैं।" परन्तु जिस परिवर्तन की बात मैं कहने जा रहा हूँ वह राजनैतिक उतना नहीं है जितना कि सामाजिक है।

उदाहरण के लिए पर्दा को लीजिए। हैदराबाद में मैंने एक अभूतपूर्व बात देखी। सड़क पर सफ़ेद वस्त्र से ढँकी हुई मुझे एक भूत-की कोई चीज़ चलती दिखाई पड़ी। उसमें आगे आँखों के दो जालीदार निशान बने थे। पूछने पर मालूम हुआ कि यह भूत नहीं, हम जैसी ही हाड़-मांस की मानव-आकृति है, जिसे सारी ज़िन्दगी क़ैदख़ाने में बितानी पड़ेगी। इससे यह सिद्ध होता है कि भारतवर्ष में अभी पर्दा है। इसमें सन्देह नहीं कि हज़ारों औरतें पर्दे के भीतर दुःख का जीवन व्यतीत कर रही होंगी। परन्तु इस प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन शुरू है और यह मर रही है। १८७५ में बड़ौदा में एक भी लड़कियों का स्कूल नहीं था। परन्तु अब वहाँ ६८,००० लड़कियाँ शिक्षा पा रही हैं। जो हाल बड़ौदा का है वही समस्त भारत का समझिए।

जात-पाँत के सम्बन्ध में भी बहुत बड़ा परिवर्तन हो रहा है। अछूत अब वे कहलानेवाले अछूत नहीं रहे। मैसूर में वे सिविल-सर्विस में भर्ती किये जा रहे हैं और बड़ौदा में महाराज के महल में उन्हें प्रतिवर्ष प्रीतिभोज दिया जाता है। ये नई प्रवृत्तियाँ बड़े बड़े शहरों में ही नहीं, देहातों में भी देखी जा रही हैं।

धर्म का ज़ोर अभी कम नहीं हुआ है। यह देखना हो तो बनारस जाइए! कलकत्ता-हाईकोर्ट का एक मुक़द्दमा मेरे देखने में आया। बङ्गाल के एक गाँव के एक देवमंदिर को ग़रीब किसानों की जेब से प्रतिदिन ३० पौंड की आमदनी होती है। सैकड़ों अछूत ऐसे हैं जो जीवन

की साधारण स्वच्छता से दूर रक्खे जाते हैं। क़ानून बन जाने पर भी बाल-विवाह अपनी तलवार चलाता जा रहा है। ग़रीबी का अब भी बड़ा विस्तार है और अमीरों में सार्वजनिक हित-भावना का अभाव है। परन्तु जब हम यह देखते हैं कि ये युगों के रस्म-रवाज हैं तब इधर जो सुधार हुए हैं वे कम नहीं जान पड़ते। इसमें सन्देह नहीं कि भारत के बहुत-से भागों में नया ख़ून जोश मार रहा है और पुरानी बेड़ियाँ टूटती चली जा रही हैं।

हम 'मदर इंडिया' जैसी किताबें पढ़ते हैं और कल्पना करते हैं कि भारतवर्ष मन्दिरों, महलों और खँडहरों का अर्द्धशिक्षित देश है और हम सोचते हैं कि ईश्वर ने हम सभ्यों को वहाँ न्याय और क़ानून की स्थापना करने को भेजा है। हमारे देशवासी भारत की जो सेवा कर रहे हैं उससे मैं इनकार नहीं करता। ब्रिटिश गवर्नमेंट के हाथों भारत की महान् उन्नति हुई है। परन्तु भारत में जो बौद्धिक और आध्यात्मिक परिवर्तन हो रहा है उसकी क़द्र करने में हम असमर्थ रहे हैं। हमने किपलिंग की यह बात मान ली है कि पूर्व और पश्चिम कभी नहीं मिल सकते, परन्तु वास्तव में देखा जाय तो भारत में दोनों मिलकर एक हो रहे हैं। और यदि हमें भारत में रहना है तो हमें भारतीयों की इच्छा से रहना होगा। किसी क़दर भी हो पिछले बर्षों में हमारी नीति कुछ ऐसी ही रही है। यद्यपि भारत में महान् राजनैतिक परिवर्तन हो गये हैं और हो रहे हैं, तथापि अभी यह शिकायत बनी हुई है कि हम भारतीयों के साथ बराबरी का बर्ताव नहीं करते। किसी अँगरेज़ से बातें करते समय उनके दिल में यह बात बनी रहती है कि वे एक शासक से बातें कर रहे हैं और स्वयं शासित हैं। वर्तमान वायसराय और लेडी विलिङ्गडन भारतीयों से सहानुभूति के साथ मिलते हैं, परन्तु किसी छोटे अँगरेज़ कर्मचारी का भी उपेक्षा का व्यवहार इस सब पर पानी फेर सकता है। अब मैं एक अत्यन्त नाज़ुक प्रश्न पर आता हूँ। मेरा तात्पर्य अँगरेज़-क्लबों में भारतीयों को सम्मिलित करने से है। जब तक ऐसे क्लब रहेंगे, भेद-भाव बना रहेगा। अँगरेज़ यह कहते हैं कि क्लब व्यक्तिगत जीवन की बात है और यदि कुछ अँगरेज़ भारत में भी अपने घर का वायुमंडल बनाये रखने के लिए अपने क्लब में ग़ैर अँगरेज़ों को नहीं आने देते तो इसमें किसी को क्यों आपत्ति हो? मेरा उत्तर यह है कि जिस क्लब में केवल अधिकारीवर्ग के ही लोग लिये जायँ वह सर्वथा प्राइवेट नहीं कहा जा सकता। इन्हीं क्लबों के कारण भारतीयों और अँगरेज़ों में भेद की खाई बढ़ती जा रही है, जो अन्य स्थिति में कदापि नहीं बढ़ सकती थी। यह दुःख की बात है कि वर्तमान वायसराय का जिन्होंने बम्बई में विलिङ्गडन-क्लब की स्थापना की है, अनुकरण नहीं किया गया। रियासतों में यह भेद नहीं है। वहाँ भारतीय और अँगरेज़ साथ साथ बराबरी के दर्जे पर खेलते और गप लड़ाते हैं। यही भाव हमें ब्रिटिश भारत में भी बर्तना चाहिए।

महारानी विक्टोरिया की यह घोषणा कि उनके साम्राज्य में सब बराबर हैं, तभी सफल हो सकती है जब हम भारतीयों के साथ उनके देश में भी समानता का बर्ताव करें।

अबीसीनिया का भेद और उसका पाठ

"अबीसीनिया का भविष्य अन्धकार में है। उस पर कुछ भी विपत्ति पड़े वह संसार को एक पाठ पढ़ा जायगा। वह पाठ क्या है? यही कि इस बीसवीं शताब्दी में भी कोई राष्ट्र तभी तक स्वाधीन रह सकता है जब तक वह जन और अस्त्र-शस्त्र से तथा आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों से पूर्ण रूप से पुष्ट है।" यह श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस के उस लेख की आरम्भिक पंक्तियों का आशय है जो नवम्बर के 'माडर्न रिव्यू' में छपा है और जिसे उन्होंने योरप से लिखकर भेजा है। आपने योरप में प्रकाशित अँगरेज़ी और फ़्रेंच पत्रों से उद्धरण देकर यह सिद्ध किया है कि इटली, ब्रिटेन और फ़्रांस तीनों अबीसीनिया को बाँट लेना चाहते हैं। इस सम्बन्ध में आपने लंदन के 'न्यू लीडर' का लेख उद्धृत किया है। उसका कुछ अंश इस प्रकार है—

"......१९०६ में तीनों साम्राज्यवादी शक्तियों—ब्रिटेन, फ़्रांस और इटली ने आपस के एक समझौते पर हस्ताक्षर किये, जिससे यह ध्वनित हुआ कि ये तीनों शक्तियाँ आगे चलकर अबीसीनिया को आपस में बाँट लेंगी। समझौते में यह छलपूर्ण सिद्धान्त तब भी स्वीकार किया गया था कि अबीसीनिया का अङ्ग-भङ्ग नहीं किया जायगा। परन्तु वास्तव में इस समझौते से अँगरेज़ों को नील नदी के शिरोभाग की धाराओं का अधिकार मिल गया। पश्चिमी अबीसीनिया में इटली की प्रभुता स्वीकार कर ली गई और अबीसीनिया की रेलवे लाइन पर फ़्रांस का अधिकार समझा गया।

"विश्वव्यापी महायुद्ध के साथ इस साम्राज्यवादी डकैती का भी दूसरा अध्याय शुरू हुआ। सन्धि के अनुसार इटली जर्मनी और आस्ट्रिया के साथ बँधा था। परन्तु फ़्रांस और ब्रिटेन ने उसे अपनी ओर फोड़ लिया। तीनों में एक गुप्त सन्धि हुई, जिसके अनुसार इटली को यह वचन दिया गया कि उसके पूर्वी अफ़्रीका के उपनिवेशों की सीमायें अबीसीनिया के अन्दर बढ़ा दी जायँगी। महायुद्ध के बाद अँगरेज़ों ने टाना झील पर बाँध बाँधकर नील नदी के ऊपरी जल पर अधिकार सुरक्षित कर लेना चाहा। इटली ने अँगरेज़ों के इस अधिकार को इस शर्त पर स्वीकार करने की माँग पेश की कि अँगरेज़ भी पश्चिमी आस्ट्रेलिया में इटली के पूर्ण आर्थिक प्रभुत्व को स्वीकार कर लें। परन्तु अँगरेज़ों ने समझा कि वे बिना इटली की सहायता के भी अधिकार बनाये रह सकते हैं, इसलिए उन्होंने इटली की शर्तों को ठुकरा दिया और यह दलील पेश की कि १९०६ की सन्धि के अनुसार पश्चिमी अबीसीनिया में इटली का पूर्ण अधिकार नहीं माना जा सकता। परन्तु ६ वर्ष बाद जब ब्रिटेन को इटली की सहायता की आवश्यकता पड़ी तब पश्चिमी अबीसीनिया में उसने उसका आर्थिक प्रभाव स्वीकार कर लिया।

"तब एक अघटित घटना घटी। अबीसीनिया ने ब्रिटेन और इटली के इस पारस्परिक लेन-देन को नापसन्द किया और लीग आफ़ नेशन्स के सामने इसका भण्डा-फोड़ करने के लिए उन्हें धमकी दी। कार्य में विफल होने पर ब्रिटेन ने नई चालें चलीं। उसने अबीसीनिया को ब्रिटिश सुमालीलैंड से होकर समुद्री किनारे तक ६०० वर्ग मील भूमि देने का लालच दिया। अबीसीनिया इस लालच में आ जायगा, इसका ब्रिटेन को इतना अधिक विश्वास था कि उसने १९२६ में अबीसीनिया का नया नक़शा तैयार कराया जिसमें 'ज़ेलिया' का बन्दरगाह अबीसीनिया के अन्तर्गत दिखाया गया। परन्तु ब्रिटेन के साम्राज्यवादियों को आश्चर्य-चकित करके अबीसीनिया ने इसे अस्वीकार कर दिया। वह अपनी स्वाधीनता खोने को तैयार नहीं था।"

इटली जानता है कि योरप की राजनैतिक स्थिति ऐसी है कि ब्रिटेन इस समय उसके साथ युद्ध नहीं छेड़ सकता, इसलिए वह परिस्थिति से लाभ उठाकर जितना देश जीत सके, जीत लेना चाहता है। तब क्या होगा? क्या बेचारा अबीसीनिया बे-मौत मर जायगा और संसार देखता रहेगा? क्या इस बुराई से कुछ भलाई भी होगी? सुभाष बाबू लिखते हैं—

चूँकि योरप की राजनीति में इस समय फ़्रांस का विशेष हाथ है, इसलिए दो बातों का होना अवश्यम्भावी है। पहली बात यह कि बाह्य रूप से राष्ट्रसंघ की धाक बनाये रहने के लिए आर्थिक बायकाट का सामूहिक रूप से कुछ प्रबन्ध किया जायगा। इसका मार्ग स्वयं मुसोलिनी ने अपने २ आक्टोबर के व्याख्यान में खोल दिया है। उसमें उन्होंने कहा है कि चाहे जितनी असुविधा का सामना करना पड़े, आर्थिक नियंत्रण हम बर्दाश्त कर लेंगे। दूसरी बात यह कि इटली के विरुद्ध कोई फ़ौजी कारखाई न की जायगी और न अबीसीनिया में उसको विफल करने का ही कोई प्रयत्न किया जायगा, क्योंकि मुसोलिनी कह चुका है कि ऐसे प्रयत्नों को वह युद्ध का निमन्त्रण समझेगा और युद्ध का उत्तर युद्ध से देगा और मध्य-योरप की राजनीति से अलग होकर जर्मनी को मनमानी करने का अवसर दे देगा। परन्तु इतने से ही यह नहीं कहा जा सकता कि युद्ध का ख़तरा अब नहीं रहा। भूमध्य-सागर में ब्रिटेन का जङ्गी बेड़ा अभी पड़ा है और ब्रिटेन ने इटली की प्रार्थना पर उसे वहाँ से हटाना अस्वीकार कर दिया है। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन के समाचार-पत्रों से यह विदित होता है कि युद्ध की सीमा

पर सेना और युद्ध-सामग्री का भेजा जाना अभी जारी है। यह स्पष्ट है कि ब्रिटेन बड़े क्षोभ के साथ पीछे हट गया है, पर उसने युद्ध की भावना का अभी त्याग नहीं किया है और वह अपनी पीछे हटने की स्थिति को 'सामूहिक कार्यवाही' की आड़ में छिपाना चाहता है।

कहते हैं, प्रत्येक काले बादल में एक उज्ज्वल रेखा होती है। यही बात अबीसीनिया के बारे में भी कही जा सकती है। युद्ध करते करते वह गिर जायगा, परन्तु गिरते गिरते भी विश्व की आत्मा में एक प्रकार की हलचल उत्पन्न कर जायगा। इससे संसार की दलित जातियों में एक नई विचारधारा बह निकलेगी। समस्त साम्राज्यवादी बेचैनी के साथ इसका अनुभव कर रहे हैं और जेनरल स्मट्स ने अपने हाल के एक भाषण में इसका उल्लेख भी किया है। दूसरी ओर साम्राज्यवादी देशों के विचारशील लोगों ने अपने आपसे यह पूछना आरम्भ कर दिया है कि क्या इस प्रकार उपनिवेश क़ायम करने का कार्य न्यायोचित है। उदाहरण के लिए प्रोफ़ेसर लस्की ने 'मैन्चेस्टर गार्जियन' में लिखा है कि ग्रेट-ब्रिटेन के अफ़्रीका में जितने उपनिवेश हैं वे सब राष्ट्रसंघ को सौंप दिये जायँ। श्रीयुत लैन्सबरी ने कुछ समय हुए यह अपील की थी कि संसार के समस्त कच्चे माल का सब मनुष्यों के समान हित की दृष्टि से उपयोग किया जाय। यहाँ तक कि सर सैमुएल होर जैसे अपरिवर्तनवादी ने जिनेवा में कहा था कि वे मिस्टर लैन्सबरी के प्रस्तावों के आधार पर की गई किसी भी जाँच-पड़ताल का स्वागत करेंगे। इस तरह वे साम्राज्यवादी भी जिनके अधिकार में यथेष्ट उपनिवेश हैं, एक प्रकार के पश्चात्ताप का अनुभव कर रहे हैं।

दो तरीक़े हैं जिनसे साम्राज्यवाद का अन्त हो सकता है। या तो कोई साम्राज्यवाद-विरोधिनी संस्था उसको उलट दे या साम्राज्यवादी देश स्वयं आपस में लड़कर निर्बल पड़ जायँ। यदि इटली की साम्राज्य-लिप्सा ने दूसरे मार्ग को प्रशस्त कर दिया तो अबीसीनिया का बलिदान व्यर्थ नहीं जायगा।

ख़तरा कहाँ है—

मनुष्य की जान को सबसे अधिक ख़तरा कहाँ है—घर में या घर से बाहर? इस प्रश्न के उत्तर में श्रीयुत एस॰ आर॰ बून नाम के एक अमरीकन लेखक ने नवम्बर की 'पपुलर साइंस' में एक लेख छपाया है, जिसमें उन्होंने अमरीका में होनेवाली समस्त दुर्घटनाओं से यह सिद्ध किया है कि मनुष्य की जान को सबसे अधिक ख़तरे घर में ही हैं। उनका कहना है कि हवाई जहाज़ पर मीलों ऊपर उड़नेवाले आदमी की जान उतने ख़तरे में नहीं है जितने ख़तरे में उस आदमी की जान है जो अपने घर में कुर्सी पर बैठा उपन्यास पढ़ रहा है। इसके प्रमाण में वे लिखते हैं—

गत वर्ष अमरीका के संयुक्त-राज्य में दुर्घटनाओं से एक लाख आदमी मरे और आधी से अधिक जानें घर में गईं। यदि आप घर में बैठे उपन्यास पढ़ रहे हैं या सीढ़ी पर चढ़ रहे हैं या ठंड से जमे हुए नल के पानी को ढीला कर रहे हैं तो आपकी जान को उस आदमी के मुक़ाबिले में जो हवाई जहाज़ पर बैठा हुआ किसी दूर के शहर को उड़ा जा रहा है, २६६ गुना अधिक ख़तरा है। आप कहेंगे यह अविश्वसनीय है। अच्छा, ज़रा इस शुष्क विषय को समझने में चित्त लगाइए। मैं यहाँ कुछ अङ्क देकर अपने इस कथन को सत्य प्रमाणित करूँगा।

जिस गति से पिछले वर्ष दुर्घटनायें हुई हैं, यदि उसी गति से इस वर्ष भी दुर्घटनायें हुईं तो इस वर्ष अमरीका की १२ करोड़ ५० लाख की जन-संख्या में ५१,८४,५०० मनुष्य दुर्घटनाओं के शिकार होंगे। कुछ सीढ़ी से फिसल कर गिरेंगे, कुछ कुर्सियों पर से उलट जायँगे, कुछ ख़ासकर स्त्रियाँ रसोईघर में कपड़ों में आग लगने के कारण जल जायँगी। हवाई जहाज़ों पर ५,६१,३७० या कुछ अधिक लोग ४,६०,००,००० मील उड़ेंगे। इनमें सिर्फ़ ३५७ आदमी ७३ दुर्घटनाओं के शिकार होंगे। इन ३५७ में भी ८८ बेदाग़ बच जायँगे। उनके खरोंच भी नहीं लगेगी। घर में बैठे रहनेवालों में २० आदमियों में एक आदमी अवश्य किसी न किसी तरह घायल हो जायगा।

परन्तु हवाई जहाज़ों पर उड़नेवालों में ६,३७८ आदमियों में सिर्फ़ एक आदमी घायल होगा। मान लीजिए कि आपका पड़ोसी जी बहलाने के लिए किसी मित्र के साथ आसमान की सैर करने चला गया। आपका क्या ख़याल है। वह ज़िन्दा लौटेगा या मरा हुआ? गत वर्ष ग़ैर सरकारी हवाई जहाज़ों पर १३,६७,२८८ आदमी उड़े। इन हवाई जहाज़ों ने ७,५६,०२,१५२ मील का चक्कर लगाया। दुर्घटनायें केवल १,५४६ हुईं और केवल २,७११ आदमी इन दुर्घटनाओं के शिकार हुए। पर इनमें केवल ७८४ घायल हुए और इन घायलों में भी आधे आदमियों को सिर्फ़ मामूली खरोंचें लगीं। इससे यह सिद्ध है कि यदि आप अपने शहर में किसी मित्र के निजी हवाई जहाज़ पर भी उड़ें तो आपकी जान को घर की अपेक्षा ७४ प्रति शत कम ख़तरा है।

× × ×

प्रायः देखा गया है कि लोग जहाँ अधिक सुरक्षा का अनुभव करते हैं वहाँ विचित्र दुर्घटनायें हो जाती हैं। विज्ञान और शिक्षा की समुचित व्यवस्था होते हुए भी ऐसी दुर्घटनायें प्रतिवर्ष बढ़ती जाती हैं। बहुत-से लोग स्वयं अपनी आरामकुर्सी पर से लुढ़कते देखे गये हैं।

आप चाहे जहाँ विचरिए, आसमान में, समुद्र में, या ज़मीन पर, परन्तु यह न भूलिए कि घर संसार में सबसे अधिक ख़तरनाक स्थान सिद्ध हुआ है। गत वर्ष आदमियों को अङ्ग-भङ्ग कर देनेवाली ७,६८,२१,००० दुर्घटनायें हुईं। परन्तु इनमें आधी से अधिक घरों में हुईं। अमरीका में बीमारी से उतने बच्चे नहीं मरते जितने दुर्घटनाओं से मर जाते हैं। अगले २५ वर्षों में प्रत्येक पाँच आदमियों में एक को घायल रहने के लिए तैयार रहना चाहिए। बाहर दुर्घटनाओं से जितने आदमी मरेंगे, घरों में उनकी अपेक्षा दूने प्राण गँवायेंगे। सबसे अधिक लोग गिरकर या आग में जलकर प्राण गँवाते हैं। गिरने की घटनायें अधिकतर सोने के कमरों में होती हैं और जलने की रसोईघरों में। स्वास्थ्य-विभाग की रिपोर्ट से पता चलता है कि सबसे अधिक लोग कुर्सियों पर बैठते या उठते समय, सीढ़ियों पर चढ़ते या उतरते समय, बिस्तर पर लेटते या उठते समय गिरते हैं। सबसे कम दुर्घटनायें स्नान-गृह में होती हैं और उनसे भी कम हवाई जहाज़ों में।

सुदूर पूर्व की नवीन समस्या

उपर्युक्त शीर्षक से लंदन से प्रकाशित होनेवाले 'राउंड टेबुल' नामक त्रैमासिक पत्र की नवीन संख्या में एक विद्वत्तापूर्ण लेख प्रकाशित हुआ है। उस लेख में अकाट्य तर्कों-द्वारा यह बात सिद्ध की गई है कि सुदूर पूर्व की स्थिति अब वह नहीं रही जो पहले थी और जापान ने सुदूर पूर्व का राजनैतिक मानचित्र सर्वथा बदल दिया है। नीचे हम उस लेख से कुछ अवतरण देते हैं—

१९३५ का वर्ष चीन और पश्चिम के सम्बन्ध में एक नया अध्याय खोलता है। पिछले चार वर्षों से जापान की नीति बड़ी उग्र रही है और गत जून में वह इस लायक़ हो गया कि उसने घोषणा कर दी कि उत्तरी चीन में उसी की इच्छा के अनुसार राजनैतिक चक्र चलेगा। उसने संसार के सामने यह स्पष्ट कर दिया कि उसने सुदूर पूर्व का मानचित्र बदल दिया है और उसकी यह घोषणा कि चीन और पाश्चात्य शक्तियों का सम्बन्ध उसके नियंत्रण में होना चाहिए, निरी घोषणा नहीं है। सन् १९२२ से संयुक्त-राज्य और योरप के राज्य यह नीति बर्तते आ रहे हैं कि चीन पूर्ण स्वाधीन माना जाय, उसका अङ्ग-भङ्ग न किया जाय और प्रशान्त महासागर में सबके एक निश्चित सीमा तक जङ्गी जहाज़ रहें ताकि सामूहिक रक्षा की समुचित व्यवस्था बनी रहे। १९२२ से १९३१ तक चीन में गृहयुद्धों के होते हुए भी वाशिंगटन की संधि के अनुसार यह स्थिति बनी रही। परन्तु सितम्बर १९३१ से ऐसी घटनायें होने लगीं जिन्होंने इस सन्धि पर पानी फेर दिया। चीन की पूर्णता जाती रही, उसका अङ्ग-भङ्ग शुरू हो गया और उसके साथ ही प्रशान्त महासागर में जङ्गी बेड़ों का वह निश्चित अनुपात भी नहीं रहा। १९३५ की बदली हुई परिस्थिति के लिए नवीन नीति निर्धारित करनी होगी और नवीन सिद्धान्त बनाने पड़ेंगे।

× × × ×

चीन को अन्तर्राष्ट्रीय क़र्ज़ दिये जाने या अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से चीन में किसी भी रचनात्मक कार्य्य के किये जाने के सम्बन्ध में जापान का प्रसिद्ध पत्र 'असाही' लिखता है—"जापान का यह मत है कि वह चीन में ब्रिटेन और अमरीका के साथ बराबरी के दर्जे पर सहयोग नहीं कर सकता। सहयोग के प्रश्न पर जापान तभी विचार कर सकता है जब ग्रेट-ब्रिटेन और अमरीका दोनों चीन में उसका नेतृत्व स्वीकार कर लें।" जापान अपने उद्देश की पूर्ति कैसे करेगा? चीन और पश्चिम के बीच में वह मूसलचन्द बनकर कैसे कूदेगा? चीन में वह ग्रेट-ब्रिटेन या अमरीका या लीग का हाथ कैसे पकड़ेगा? जापान चाहता है कि चीन की सरकार इतनी मज़बूत हो कि उसे वह सब प्रकार की सुविधायें दे दे, परन्तु इतनी मज़बूत न हो कि उसके लिए कभी कोई दरवाज़ा बन्द करे। उसकी वर्तमान नीति यह है कि चीन से अमरीका का प्रभाव उठ जाय और उसका स्थान जापान ले ले। इसी उद्देश से वह गत तीन वर्षों से कार्य्य कर रहा है।

× × × ×

समस्या इस प्रकार है। जापान की वर्तमान नीति और चीन में उसका वर्तमान हाथ ब्रिटिश व्यापार और चीन में लगी ब्रिटिश पूँजी के लिए भारी ख़तरा है। × × × यदि यह समस्या यों ही बनी रही तो ब्रिटिश साम्राज्य और जापान में आगामी तीस वर्षों के भीतर संघर्ष हो सकता है। ब्रिटिश साम्राज्य के कच्चे माल के उद्गम-स्थान—मलाया, बोर्नियो, आस्ट्रेलिया और जावा जापान के मार्ग में पड़ते हैं। इनकी रक्षा ब्रिटेन की जहाज़ी शक्ति पर ही निर्भर है। और जापान को कच्चे माल की कितनी भूख है, यह स्पष्ट है। कठिनाइयाँ और ख़तरे बहुत बड़े हैं। अमरीका की यह नीति जान पड़ती है कि वह पश्चिमी प्रशान्त महासागर से हट जाना चाहता है। दस वर्ष में वह फ़िलीपाइन को स्वाधीन करके चला जायगा। ब्रिटेन की जङ्गी नीति क्या होगी, इससे हमें कोई बहस नहीं, परन्तु आर्थिक प्रश्नों के सम्बन्ध में ब्रिटेन और जापान की पारस्परिक ग़लतफ़हमी दूर की जा सकती है। वह इस तरह कि जापान चीन में ब्रिटेन के हितों पर आघात न करे और ब्रिटेन इस बात का उसे विश्वास दिलावे कि वह उसको कच्चा माल प्राप्त करने में कभी कोई बाधा न उपस्थित करेगा।

—

भीलों की वर्तमान स्थिति

अमृतपुरा के भील-आश्रम की ओर से श्रीयुत परीक्षितलाल मजूमदार और श्रीयुत छोटेलाल मो० गांधी के हस्ताक्षर से भीलों के सम्बन्ध में एक विवरण-पत्रिका प्रकाशित हुई है। उससे भीलों की वर्तमान अवस्था का भली भाँति परिचय मिलता है। उक्त विवरण से एक अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

इन जातियों का निवास ख़ास कर पहाड़ी प्रदेश में है। शहर का जीवन इन लोगों को अगम्य है। इनके निवास के लिए पर्याप्त जगह भी नहीं, कहीं कहीं तो सरकार इन लोगों से रहने की जगह का किराया भी वसूल करती है। उच्च जातियों के ग्रामों में ये लोग ग्राम के चारों ओर क़िले के समान बसते हैं। ग्राम के आस-पास गंदगी, कीचड़ तथा पानी भर जाने से जहाँ मच्छरों की भरमार हो, जहाँ लोग झाड़ा-जंगल फिरते हों, ऐसी गंदी जगह में इनका निवास है। झोपड़ियाँ एक दूसरे से बहुत दूर दूर बाँधते हैं। समुदाय-रूप में रहना इनको पसन्द नहीं है। स्वतन्त्रताप्रिय होने के कारण ये लोग पहाड़ों में रहना पसन्द करते हैं।

इन लोगों को जंगल में रहते हुए भी झोपड़ी बाँधने के लिए बाँस आदि सामान भी दुर्लभ है। इनके झोपड़े टूटे-फूटे बाँस, फूस तथा ताड़ के पत्तों से बने होते हैं। इस समय जहाँ कि लोग घर बनाने में लोहा तथा सीमेंट का उपयोग कर रहे हैं, वहाँ इनको फूस भी नसीब नहीं होता।

इनकी झोपड़ियों का दरवाज़ा इतना छोटा होता है कि बिना सिर झुकाये अन्दर नहीं घुस सकते। इतनी नीची तङ्ग तथा छोटी झोपड़ी में ही इनके ढोर, बाल-बच्चे, बकरे, बकरियाँ, मुर्गे और एक-दो कुत्ते साथ ही साथ रहते हैं। इतनी तंग, गंदी तथा छोटी झोपड़ी में

रहते हुए भी मानो प्रभु ने इन्हें अत्यधिक सुखी बनाया हो। इनको न सुख न दुख।

इस प्रजा को वस्त्र पहनते हुए भी यदि नग्न ही कहा जाय तो भी अत्युक्ति नहीं। सर्दी, गर्मी और बरसात इस शरीर पर ही सहन करनी पड़ती है। प्रजा आकाश और ज़मीन के सहारे दिन पूरा करती है। पृथ्वी शय्या तथा आकाश परिधान है।

पहाड़ी प्रदेश में रहती हुई यह प्रजा सिर्फ़ एक लँगोटी ही पहनती है। उच्च वर्ण के सहयोग से इस जाति ने कपड़ा पहनना सीखा है। परन्तु कपड़ों के लिए भी साधन नहीं हैं। स्त्रियाँ एक कापडु (चोली), घाँघरा और एक ओढ़नी पहनती हैं। घाँघरा पहनने का ढंग ऐसा है कि घाँघरा लम्बा-चौड़ा होते हुए भी ये स्त्रियाँ अर्धनग्न मालूम पड़ती हैं। स्त्रियाँ घाँघरा को धोती की तरह घुटने से ऊपर ऊपर ही पहनती हैं। इस प्रकार कपड़े के उपयोग से भी यह प्रजा अनभिज्ञ है।

ख़ास कर स्त्रियाँ आभूषणों की शौक़ीन हैं। गले में काच के मनके, कौड़ियाँ और सीपियों का हार विविध प्रकार का पहनती हैं। हाथ में पीतल के मोटे मोटे दो कङ्कन, कहीं कहीं हाथ में एक एक और कहीं कहीं सारी बाँह में मोटे मोटे कङ्कन मारवाड़ियों की तरह पहनती हैं।

दुर्भाग्य से ही कोई दुर्व्यसन ऐसा न होगा जिसने इस जाति में घर न किया हो। दारू-ताड़ी में चूर रहना इनका नैतिक कर्म है। इस दुर्व्यसन ने इस वीर जाति का नाश किया है। इसको घर-बार तथा ज़मीन-जागीर से रहित कर दिया है। साथ ही वैयक्तिक ग़ुलामी के शिकंजे में जकड़ दिया है।

इनका बूमला (सूखी मछलियाँ), मुर्गे, बकरे, अण्डे और मांस ही भोजन है।

विवाह, त्योहार, मरण, पर्व आदि प्रसंगों पर पाड़ा और भैंस के मांस का प्रयोग करते हैं। विवाह, अतिथि-सत्कार सब मांस और दारू से ही करते हैं।

जब भील स्त्री-पुरुषों से पूछिए कि मांस क्यों खाते हो तब जवाब मिलेगा कि तुम तो घी, दूध, शाक-भाजी खाकर मज़बूत रहते हो, परन्तु हम क्या खाकर मेहनत मज़दूरी करें? हमारा मिष्टान्न, मेथीपाक जो गिनो, मुर्ग़ी, मछली, बकरा ही हैं।

अनाज में जुआर का रोटला मुख्य भोजन है। भात बहुत कम मात्रा में खाते हैं। अतिथि-सत्कार या पर्व, त्योहार पर भात को ही मिष्टान्न और इसी में ही आनन्द तथा आदर मानते हैं। दैनिक भोजन में जुआर और मकई ही मुख्य हैं। गेहूँ को ऊँचे आदमियों का खाना समझते हैं।

खाने, पीने तथा अन्य आवश्यक सभी बर्तन मिट्टी के ही होते हैं। यदि कभी मेहनत-मज़दूरी कर पैसा बचा और धातु के पात्र ले भी आये तो दारू के व्यसन में उसको कलाल के यहाँ गिरवीं रख आते हैं।

घर में यदि कोई बीमारी फैले तो दवा नहीं करते, परन्तु मूठ, भूत, प्रेत या डाकिनी का उपद्रव मानते हैं। माता के नाम पर मुर्ग़ी, बकरा, बकरी, भैंसे की बलि दी जाती है। बीमार आदमी अच्छा होने पर माता को बलि चढ़ाता है और नैवेद्य के रूप में दारू चढ़ाकर पी जाते हैं। इस अज्ञानता से पाखण्डी, धूर्त लोग खूब लाभ उठाते हैं और बहुत-से बीमार अकाल मौत से ही मर जाते हैं।

यदि आप किसी भील से पूछिए कि तुम कौन हो—हिन्दू हो या मुसलमान तो जवाब मिलेगा कि मैं तो भील हूँ या नायक इत्यादि। यह उत्तर इनकी धार्मिक अज्ञानता का परिचायक है।

भील स्त्री-पुरुष बहुत प्रेमपूर्वक रहते हैं। आनन्द से दिन व्यतीत करते हैं। पर गाँव जाते समय काम या मेहनत-मज़दूरी के समय दोनों साथ ही जायँगे। गृह-कार्य भी दोनों साथ मिल कर करेंगे। यह रवाज प्रशंसनीय है। आज-कल जितना प्रेम पढ़े-लिखों में देखने में नहीं आता उससे अधिक प्रेम भील स्त्री-पुरुषों में दिखाई देता है।

भीलों में तलाक़ का बहुत रवाज है। विवाह होने पर यदि स्त्री की आदमी से न पटे तो स्त्री अमुक रक़म आदमी को देकर दूसरा पति कर सकती है। इसी प्रकार

पुरुष भी स्वतन्त्र है। इस प्रकार भील स्त्री-पुरुष स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करते हैं।

विवाह की प्रथा हिन्दुओं-जैसी है। विवाह में वेदी का रवाज नहीं था, परन्तु अब आश्रम के प्रचार से यह प्रथा बदलती जा रही है। पहले वेदी से लग्न कराने पर भी ब्राह्मण विधि नहीं कराते थे। ग्राम के मुखिया लोग ही लग्न कराते थे। विवाह का दिन याद रखने के लिए एक रस्से में बहुत-सी गाँठें मारते हैं और प्रतिदिन एक एक गाँठ खोलते जाते हैं। जब गाँठ शेष रहे तब वर-पक्ष बरात ले कन्या के घर पहुँचता है। खास कर विवाह प्रातःकाल ही होता है। कन्या-पक्ष के आदमी वर को कन्धे पर उठा लेते हैं और वर-पक्ष के आदमी कन्या को कन्धे पर उठा लेते हैं। कन्या वर पर तथा वर कन्या पर चावल फेंकता है। अब भी वर विवाह के समय हाथ में ढाल तथा तलवार रखता है। इस प्रकार नाच-गान के साथ विवाह होता है। परन्तु अब वैदिक धर्म के प्रचार से इसमें परिवर्तन होता जा रहा है।

भीलों का मानसिक स्वभाव बालकों-जैसा होता है। घड़ी भर में भावना से खुश और घड़ी भर में नाखुश। बालक जिस प्रकार अपने सामान को बेदरकारी रखते हैं, इसी प्रकार भीलों का अपनी वस्तुओं के भूल जाने का स्वभाव होता है। अनेक बार ठगे जाने पर भील बार बार ठगा जायगा। थोड़ा-सा आदर दीजिए कि सब वैर भूल जायगा। मांसाहार के कारण स्वभाव तेज़ चिड़चिड़ा होता है। थोड़ी थोड़ी बात में गरम हो जाते हैं। दूसरों को नुकसान करने की आदत नहीं। भूखा भले ही कपास तथा अनाज आदि की चोरी कर ले, परन्तु किसी का घरबार लूट किसी को पायमाल करना नहीं चाहता। देनदारी थोड़ी भी यदि हो तो बहुत दुखी रहता है। देनदारी को ही भय या दुःख मानता है। अन्य किसी भी बात से डरता नहीं। सिर्फ़ क़र्ज़ और साहूकार से ही डरता है। विवाह आदि प्रसंग पर थोड़ी-सी रक़म उधार ले उसके अदा करने के लिए आजीवन ग़ुलामी करते हैं। भीलों को इस प्रकार के भयंकर महादुःखसागर से पार करने की हर एक का पवित्र फ़र्ज़ है।

भीलों का सर्वस्व गया, ग़ुलामी की जंज़ीरों में जकड़े गये। इसका मुख्य कारण निरक्षरता ही है। भीलों की कमाई से आज शिक्षितवर्ग आमोद-प्रमोद, भोग-विलासितामय जीवन व्यतीत कर रहा है। इस शिक्षा के ज़माने में भी जंगल में रहनेवाले भील अक्षरज्ञानशून्य हैं। कहीं कहीं सरकारी स्कूल या मिशन की ओर से चलते स्कूलों में विरले ही भीलों के लड़के दो-तीन चौपड़ी पढ़ें, परन्तु घर आकर वह भी सब भूल जाते हैं। भीलों की निरक्षरता के कारण ही शिक्षितवर्ग भीलों को ठग लेता है और भील ठगाये जाते हैं।

भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों में पिछड़ी क़ौमों की जन-संख्या

गोंड (मध्यप्रांत, मध्यहिन्द, बिहार, उड़ीसा)	२६,०२,५६२
संथाल (मध्यहिन्द, बिहार, उड़ीसा, मदरास)	२२,६५,२६५
भील { बंबई-प्रान्त, मध्यप्रांत बड़ोदा, राजपूताना) }	१७,६५,८०८
कांधी (कुर्ग, मदरास, मैसूर, हैदराबाद)	८,५५,२७६
ओरांओ (बिहार, उड़ीसा, आसाम, मध्यप्रांत)	७,६५,६८०
बणजारा { बंबई-प्रान्त, मध्य-प्रांत, पंजाब, हैदराबाद, मैसूर) }	६,५१,६७२
मुंडा (बिहार, उड़ीसा, बंगाल, आसाम)	५,६३,८३६
शबर (बिहार, उड़ीसा, मदरास, मध्यहिन्द)	४,७५,८६८
हो (बिहार, उड़ीसा)	४,४०,१७४
नाग (आसाम)	२,२०,६१६
कचारी	२,०७,२६६
कुल	१,११,७३,२०४
नायक, गामीत, बावचा, बावला, चोधरा, राठवा, राठोडीआ, तलावीया, दुबला, धाणका, किरात, कुकणा, वगैरे सब लगभग	५०,००,०००
कुल	१,६१,७३,२०४

ग़रीब श्रमजीवी

मज़दूरों की आर्थिक स्थिति कहाँ तक बिगड़ गई है, इसका अनुमान बम्बई-सरकार के 'श्रमकार्यालय' की एक रिपोर्ट से भले प्रकार विदित होता है। 'नवयुग' उसका विवरण अपने अग्रलेख में इस प्रकार देता है—

बम्बई-सरकार के श्रमकार्यालय की ओर से बम्बई के १४६६ मज़दूर-परिवारों की जाँच की गई थी। यह जाँच मई १९३२ से जून १९३३ तक की गई थी। उसकी रिपोर्ट भयंकर है। इसको पढ़कर विश्वास नहीं होता कि बम्बई के मज़दूर इस अवस्था में किस प्रकार अपना जीवन बिता रहे हैं।

रिपोर्ट से मालूम होता है कि ७४.७४ प्रतिशत परिवार एक कोठरी में गुज़ारा कर रहे हैं। कई जगह एक कोठरी में तो दो दो परिवार तक रह रहे हैं। दो कोठरियों में रहनेवाले परिवारों की संख्या २५ प्रतिशत है। इन पिंजरों में मानव-जीवन रह सकता है, यह एक आश्चर्य की बात क्या नहीं है? इन पिंजरों में रहनेवाले यदि अकाल में काल के ग्रास हों या रोग के जीवन भर के लिए शिकार हों या जीवन में ही बूढ़े हो जायँ और हताश होकर अपने गाँवों को लौट जायँ तो इसमें आश्चर्य क्या है?

प्रति परिवार में ३.०७० आदमी हैं। एक परिवार की आमदनी ५० रुपया है। प्रत्येक व्यक्ति की मासिक आमदनी बारह रुपया हुआ है। प्रति परिवार का मासिक खर्च ४५ रुपया १५ आना ९ पाई है। बमुश्किल पाँच रुपया उनके पास बचता है। मगर यह रिपोर्ट दो साल पहले की है। अब मज़दूरों का पगार कम हो गया है, स्थिति पहले से भी बदतर हो गई है, इसलिए कल्पना की जा सकती है कि मज़दूर किस प्रकार आज-कल गुज़ारा करते होंगे।

एक मज़दूर परिवार की आमदनी का औसतन १२.८१ प्रतिशत कोठरी के किराये में जाता है। जिन मज़दूरों की आमदनी कम है उनकी आमदनी का १७ प्रतिशत घर के किराये में चला जाता है। हाँ, जिनकी आमदनी कुछ ज़्यादा है उनकी आमदनी का कमरे के भाड़े में १०.१६ प्रतिशत जाता है। जो भाड़े में ही लगभग ७ रुपया खर्च हो जाते हैं। तब ४ आदमियों का एक परिवार ४३ रुपया में बम्बई जैसे शहर में कैसे गुज़ारा करता होगा, यह एक विचारणीय प्रश्न है।

किसानों के समान मज़दूर भी ऋण के भारी बोझ से लदे हुए हैं। ७४.७४ प्रतिशत मज़दूर क़र्ज़दार हैं। पठानों व मारवाड़ी साहूकारों को वे १८॥ प्रतिशत से १५० रुपया प्रतिशत सूद दे रहे हैं। औसतन सूद की मात्रा ७५ प्रतिशत है। बारह आना महीना प्रतिशत देना पड़ता है। साल में १५५ रुपया सूद में प्रति परिवार को देना पड़ता है। सोचिए कि १०० रुपया माहाना आमदनी में से २५६ रुपया जिस परिवार के घर का भाड़ा देने और सूद देने में चले जाते हैं उसके पास खाने और पहनने के लिए क्या बचा रहता होगा? मज़दूरों को मिल में प्रति दिन कम-से-कम ९-१० घंटे खड़े खड़े काम करना पड़ता है। इस कड़े काम में उनकी जो जीवन-शक्ति खर्च होती है उसकी भरपाई के लिए उन्हें पर्याप्त और पौष्टिक भोजन की दरकार है। मगर २८-२९ रुपया मासिक आमदनीवाला परिवार घी, दूध कैसे खा सकता है। यदि इस अवस्था में उनकी जीवन-शक्ति क्षीण हो रही है, कार्य-क्षमता घट रही है, तो यह स्वाभाविक है।

यदि मिल-मालिक चाहते हैं कि भारतीय मज़दूर योरपीय मज़दूरों के समान कार्यक्षम हों तो उनका फ़र्ज़ है कि वे मज़दूरों की अवस्था उन्नत बनावें, उनकी ज़रूरियात को पूरा करें और उनके प्रतिकूल वातावरण पैदा करें। मिल-मालिक और पूँजीपति मज़दूरों की उपेक्षा करके अपना रोज़गार ही नहीं बिगाड़ रहे हैं, बल्कि अपनी मौत को भी निमन्त्रण दे रहे हैं।

मुसोलिनी के व्यङ्ग्य चित्र

योरप में इधर मुसोलिनी की सबसे अधिक चर्चा हो रही है। सभ्यता के प्रचार के नाम पर वह अबीसीनिया की स्वाधीनता का अपहरण करने के लिए इटली को कहाँ लिये जा रहा है, यह तो आनेवाला समय बतावेगा, पर वर्तमान समय में उसका स्वरूप क्या है, यह योरप के समाचारपत्रों में प्रकाशित होनेवाले व्यङ्ग्य-चित्रों से स्पष्ट हो जाता है। ऐसे बहुत-से व्यङ्ग्य-चित्रों का संकलन लन्दन

से प्रकाशित होनेवाले 'रिव्यू आफ़ रिव्यूज़' ने किया है। उसी से लेकर यहाँ हम चार चित्र उद्धृत करते हैं।



[मुसोलिनी रूसी जाग्रत ज्वालामुखी।]



[सभ्यता या विनाश का नृत्य।]



[अबीसीनिया में सभ्यता का प्रचार।]



["परन्तु प्रिये, मैं तुम्हें सभ्य बनाना चाहता हूँ"।]

कविवर हाली की जयन्ती

गत २६ अक्टोबर को उर्दू के प्रसिद्ध कवि हाली की जयन्ती उनकी जन्मभूमि पानीपत में बड़ी धूमधाम से मनाई गई। उस तारीख़ को हाली को जन्म लिये १०० वर्ष हो गये। उसके सम्बन्ध में 'दैनिक भारत' में एक लेख छपा है। उसका एक ज्ञातव्य अंश इस प्रकार है—

आज—ता० २६ अक्टूबर से ठीक एक सौ वर्ष पहले (सन् १८३५ ई० में) ख़्वाजा ईज़ादबख़्श नाम के एक मुसलिम गृहस्थ के परिवार में एक बालक ने जन्म लिया। किसे पता था कि यही बालक आगे चलकर अपनी जन्मभूमि की तरह उर्दू-साहित्य और विशेषकर उर्दू-काव्य में एक नवीन युग लावेगा और सदैव के लिए अपना नाम अमर कर जायगा। इस बालक का नाम अल्ताफ़ हुसैन रक्खा गया।

बालक अल्ताफ़ को एक प्रकार से अपने माता-पिता के लाड़-प्यार से वंचित ही रहना पड़ा। जिस समय वह ७-८ वर्ष का ही था उसके पिता स्वर्ग को सिधार गये। माता का दिमाग़ पहले ही से ठीक नहीं रहता था।

पिता की उसकी छोटी अवस्था में मृत्यु और माता का पागलपन—इन दोनों का फल यह हुआ कि बालक अल्ताफ़ हुसैन को प्रारम्भिक शिक्षा भी उचित रीति से नहीं मिली। साधारण मुसलिम बालकों की तरह वह भी एक मकतब में बैठा दिया गया और वहाँ उसकी शिक्षा का श्री गणेश 'क़ुरान' रटाकर किया गया। थोड़ी सी अरबी और फ़ारसी भी उसे पढ़ाई गई, किन्तु उतनी ही जितनी कि एक सामान्य से सामान्य मुसलिम को क़ुरान आदि पढ़ लेने के लिए काफ़ी समझी जाती है।

अल्ताफ़ होनहार बालक था। उसे विद्या प्राप्त करने का शौक़ था। वह चाहता था कि अधिक से अधिक शिक्षा प्राप्त करे, पर उसके सम्बन्धी कुछ और ही ख़याल में थे। उन्होंने १७ वर्ष की आयु में ही अल्ताफ़ की शादी कर दी। शिक्षा-प्राप्ति में बाधा पड़ने लगी।

पर जिसे जिस बात की सच्ची लगन होती है वह अपने ध्येय की पूर्ति का कोई न कोई उपाय कर ही लेता है। अल्ताफ़ के ननुरालवाले सम्पन्न थे। इससे उसने लाभ उठाया और अपनी स्त्री को बहाने-बहाने उसके नैहर भेज आप चुपचाप दिल्ली के लिए भाग खड़ा हुआ।

दिल्ली में अल्ताफ़ ने उच्च कोटि के अरबी और फ़ारसी के साहित्य का अध्ययन शुरू किया। इन्हीं दिनों ग़ालिब का नाम उर्दू-साहित्य में रोशन हो रहा था। अल्ताफ़ को लिखने-पढ़ने का शौक़ था ही, उसने ग़ालिब के पास आना-जाना शुरू किया और उनसे उर्दू-शायरी का ज्ञान प्राप्त कर उन्हें अपना काव्य-गुरु बनाया।

ग़ालिब की कृपादृष्टि हाली पर विशेष रूप से रहती थी और हाली ने भी अपनी प्रतिभा के ज़ोर से उर्दू-कविता का प्रवाह ही बदल दिया।

हाली की कविता में सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उनकी भाषा सरल और उनके भाव सुबोध होते थे। भाषा और भाव का निकट से निकट सम्बन्ध ग़ालिब की कविता की ख़ासियत थी। हाली की कविता में भी ये गुण मौजूद दिखलाई देते हैं।

अस्तु, दिल्ली में इनकी शिक्षा समाप्त भी न होने पाई थी कि घरवाले इन्हें खोजते हुए दिल्ली पहुँचे और इन्हें वापस घर पकड़ ले गये।

ये क़िस्मत के उलट-फेर देख ही रहे थे कि इसी समय सन् १८५७ का ग़दर छिड़ गया और कई साल तक इन्हें बेकार घर बैठना पड़ा। बाद में ये दिल्ली के एंग्लो अरबिक स्कूल में शिक्षक हो गये। उन्हीं दिनों हैदराबाद के प्रधान मंत्री उक्त स्कूल को देखने आये। उन्होंने अरबी, फ़ारसी और उर्दू के विद्वानों, कवियों और लेखकों को कुछ छात्रवृत्तियाँ दीं। ७५) मासिक की एक छात्रवृत्ति हाली को भी मिली। पीछे वह बढ़ाकर १००) तक कर दी गई जो अन्त समय तक उनको मिलती रही।

उस समय तक उर्दू के कवि क़ाफ़िये और रदीफ़ के ही चक्कर में पड़े थे। क्रमबद्ध कविता करने की किसी की रुचि न थी। कहते हैं, कर्नल हाल राइड ने उस समय लाहौर में एक कवि-सभा स्थापित की और उसमें समस्या-पूर्ति के बदले निर्धारित विषय पर कवितायें पढ़ा जाना

शुरू हुआ। हाली भी उसमें शरीक हो गये और इन्होंने उर्दू-कविता का रूप ही पलट दिया।

सर सैयद अहमद खाँ ने अलीगढ़ में मुस्लिम एँग्लो ओरियंटल कालेज की स्थापना कर दी थी। वही कालेज आज मुस्लिम-विश्वविद्यालय के रूप में दिखलाई दे रहा है। हाली सर सैयद की मुसलमानों को शिक्षा देने की स्कीम का पूर्ण रूप से समर्थन करते थे।

उस समय मुस्लिमों में शिक्षा की कमी के कारण उनके कट्टरपंथी लोग शिक्षा के विरोधी थे। उनका कहना था कि पश्चिमी शिक्षा और विज्ञान इस्लाम के शत्रु हैं। इस मनोवृत्ति को मुस्लिमों से दूर करने में सर सैयद को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा था। हाली ने सर सैयद को इस सम्बन्ध में बड़ी सहायता पहुँचाई। अपने लेखों, कविताओं, व्याख्यानों आदि से हाली ने सर सैयद के शिक्षा-प्रचार के आन्दोलन के सम्बन्ध में फैली हुई ग़लतफ़हमियों को बहुत कुछ दूर कर दिया, फिर भी कट्टरपन्थी मुसलमान सर सैयद को उनकी इस चेष्टा के लिए 'क़ाफ़िर' तक कहा करते थे और हाली को भी उनके साथी होने के कारण अनेक बार कष्ट उठाने पड़े।

कहा जाता है कि एक बार हाली संयुक्त-प्रान्त के एक जज के यहाँ से लौट रहे थे। अलीगढ़ वापस लौटते समय उन्होंने एक गाड़ी किराये की। योरपीय ढंग से रहनेवाले जज के यहाँ हाली कि जज मुसलमान ही थे, कुछ दिन रहने के कारण ही उस मुसलमान गाड़ीवाले ने हाली के हाथ से पानी लेना तक पसन्द न किया। वह उन्हें क़ाफ़िर समझने लगा था। हाली को कई बार इसी तरह की मुसीबतों का सामना करना पड़ा था।

सर सैयद की सम्मति से हाली ने अपना सुप्रसिद्ध 'मुसद्दस' लिखा। इस 'मुसद्दस' ने सच पूछो तो हाली को अमर किया। इसके लिखने में हाली ने अपनी प्रतिभा का अद्भुत परिचय दिया है। 'मुसद्दस' को देखकर सर सैयद ने उसकी और उसके साथ हाली की बड़ी तारीफ़ की थी। लिखा था—"किस सफ़ाई से यह नज़्म तहरीर हुई है, बयान से बाहर है। जब ख़ुदा पूछेगा कि तू क्या लाया तो कहूँगा कि हाली से 'मुसद्दस' लिखवाकर लाया हूँ।"

'मुसद्दस' के प्रकाशित होने पर लोगों में एक अजीब लहर-सी उठी। हाली ने उसका कापी राइट अपने हाथों सुरक्षित नहीं रक्खा, बल्कि उसे सर्वसाधारण के समर्पण कर दिया। जिसे इच्छा हो वही उसे प्रकाशित कर सकता था। लाखों की संख्या में उसकी खपत हुई। आज भी उसकी अच्छी खपत है।

'मुसद्दस' में इस्लाम के प्राचीन गौरव तथा वर्तमान पतन का सजीव वर्णन करके मुसलमानों को जाग्रत करने की चेष्टा की गई है। हिन्दी के प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त को अपना प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ 'भारत-भारती' लिखने की प्रेरणा हाली के 'मुसद्दस' से ही मिली थी। जिस प्रकार गुप्त जी हिन्दी तथा हिन्दुओं के राष्ट्रीय कवि हैं, उसी प्रकार हाली उर्दू तथा मुसलमानों के राष्ट्रीय कवि थे। उर्दू-काव्य में तो वे एक नवीन रंग के प्रवर्तक ही कहे जा सकते हैं।

हाली ने अनेक पुस्तकें लिखीं। 'शैर और शायरी' नामक पुस्तक इन्होंने गद्य में लिखी और उसके द्वारा उर्दू-कविता में सुधार के उपाय बतलाये। 'हयाते जावेद' नाम से हाली ने सर सैयद का जीवनचरित लिखा। शेख सादी और हकीम नासिर ख़ुसरो की जीवनियाँ लिखीं। 'मुनाजाते बेवा' का तो कई भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। इनकी रुबाइयों का अनुवाद अँगरेज़ी में हुआ है। इनकी कवितायें और निबन्ध कई विश्वविद्यालयों की पाठ्य-पुस्तकों में स्थान पाये हुए हैं।

सम्पादकीय नोट

योरप और अगला महायुद्ध

योरप के राष्ट्र निःशस्त्रीकरण के सिद्धान्त का पालन जब नहीं कर सके तब जर्मनी ने हर हिटलर के नेतृत्व में वर्सेलीज़ के सन्धि-पत्र को मानने से इनकार कर दिया और स्वदेश की सुरक्षा की दृष्टि से अपना सैन्यबल बढ़ाने की घोषणा कर दी। फलतः जर्मनी ने अपनी सेनायें बढ़ा ली हैं और सामरिक दृष्टि से वह दिन दिन अधिकाधिक सबल होता जाता है। जर्मन के इस मनोभाव का अन्य राष्ट्रों पर काफ़ी प्रभाव पड़ा, यहाँ तक कि जो ब्रिटेन निःशस्त्रीकरण के आन्दोलन का पुरस्कर्ता होने के कारण अपना सैनिक बल बढ़ाने के काम से अभी तक बराबर विरत रहा उसने भी इस बात को लेकर अपनी पार्लियामेंट का नया चुनाव किया। इससे प्रकट होता है कि अब ब्रिटेन भी आत्मरक्षा के नाम से युद्धसज्जा करेगा। और इसका एक मतलब यह है कि योरप के सभी राष्ट्र अपना सैनिक बल बढ़ा चुके हैं और जो अभी तक इस बात से उदासीन थे वे भी अब उसे बढ़ाने लगे हैं। अभी उस दिन आस्ट्रिया की सरकार के अधिकारी ने भी आस्ट्रिया का सैन्यबल बढ़ाने की घोषणा कर दी है। इस प्रकार योरप के राष्ट्र शान्ति के मार्ग की ओर नहीं, युद्ध के मार्ग की ओर बढ़ रहे हैं। राष्ट्र-संघ ब्रिटेन और फ्रांस के प्रभाव में रहकर काम करता है, इससे राष्ट्रों ने अपने अपने अलग गुट बना लिये हैं। इन गुटों का प्रभाव भी बढ़ गया है। यदि ऐसा न होता, राष्ट्र-संघ सबके सहयोग से काफ़ी बलवान् होता, तो आज इटली को अबीसीनिया पर इस प्रकार अन्यायपूर्वक आक्रमण कर बैठने का साहस न होता। ब्रिटेन की प्रेरणा से राष्ट्र-संघ ने इटली के आर्थिक बायकाट की घोषणा कर दी है। यदि उसकी यह कार्रवाई कारगर सिद्ध हुई तो मानना पड़ेगा कि योरप शान्ति का इच्छुक है, नहीं तो उसका युद्ध का मार्ग खुला है—चाहे आज हो, चाहे कल हो।

इटली और अबीसीनिया

जैसा कि समझा जाता था अबीसीनिया इटली का सामना नहीं कर सका। इटली की सेनाओं के आगे उसकी सेनायें बराबर पीछे हटती जा रही हैं और इटली उसके विजित प्रदेश पर अपना अधिकार क़ायम करता हुआ बराबर आगे बढ़ता जा रहा है। इटली ने यद्यपि अबीसीनिया पर दो तरफ़ से आक्रमण किया है, तथापि उसका ज़ोर अभी इरीट्रिया की ओर ही है। इटालियन सोमालीलैंड की ओर से उसकी जो सेनायें अबीसीनिया के ओगेडन प्रदेश में घुसी हुई हैं वे अभी धीरे धीरे ही आगे बढ़ रही हैं। परन्तु इरीट्रिया की ओर से उसकी जो सेनायें अबीसीनिया में घुसी हैं वे बहुत आगे बढ़ गई हैं और उन्होंने अबीसीनिया का एक भाग भी अपने अधिकार में कर लिया है। इटली की इस विजय का श्रेय उसके वायुयानों को है। वायुयानों की बमवर्षा के भय से अबीसीनिया की सेना इटली की सेना से डटकर लड़ नहीं रही है, और यदि यही क्रम जारी रहा तो आश्चर्य नहीं कि इटली का अबीसीनिया की राजधानी अदिस अबाबा पर भी एक दिन झंडा फहराने लगेगा। आधुनिक ढंग के शस्त्रास्त्रों से सज्जित तथा शिक्षित सेना के लिए अबीसीनिया जैसे अर्द्धसभ्य राष्ट्र को आसानी से पददलित कर डालना कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी और वही अबीसीनिया की रणभूमि में इस समय हो रहा है।

इटली की अबीसीनिया के विजय करने की महत्त्वाकांक्षा के मार्ग में विघ्न डालने का जो प्रयत्न ब्रिटेन की ओर से हुआ था वह राष्ट्र-संघ की क़ानूनी दाँव-पेंच की नीति

के कारण विफल हो गया और अब तो यही प्रकट हो रहा है कि इस सम्बन्ध में राष्ट्र-संघ आर्थिक बायकाट करने के सिवा और कुछ नहीं करेगा। और आर्थिक बायकाट का इटली पर जैसा चाहिए वैसा प्रभाव भी नहीं पड़ेगा, क्योंकि आस्ट्रिया, हंगरी, पुर्तगाल के सिवा उसे अमरीका के संयुक्त-राज्यों का भी एक तरह का सहयोग प्राप्त रहेगा। ऐसी दशा में राष्ट्र-संघ की बायकाट-सम्बन्धी ढुलमुल नीति अन्त में निरर्थक ही सिद्ध होगी, क्योंकि इटली इस परिस्थिति का सामना करने के लिए पहले से ही काफ़ी तैयारी कर चुका है, इसके सिवा आगे भी उसको अपने मित्र राष्ट्रों से बहुत कुछ आवश्यक सहायता मिलती ही रहेगी। राष्ट्र-संघ की इस नीति का वास्तव में इटली पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और वह अबीसीनिया को सम्यक् रूप से पददलित कर निकट भविष्य में स्वाधिकारमुक्त कर लेने में अधिकांश में सफल-मनोरथ होगा।

चीन की समस्या

चीन की आर्थिक अवस्था सुधारने के लिए ब्रिटेन ने सर फ़्रेडरिक लीथ-रास नाम के एक अर्थविशेषज्ञ को चीन भेजा है। ये वहाँ की राष्ट्रीय सरकार के आय-व्यय के बजट, चलन सिक्के तथा विनिमय आदि को व्यवस्थित करने में चीन की सरकार को परामर्श दे रहे हैं, साथ ही तत्सम्बन्धी योजनाओं को कार्य में परिणत करने में भी सहयोग कर रहे हैं। इन्हीं के परामर्श के अनुसार राष्ट्रीय सरकार ने हाल में एक आर्डिनेंस निकाल कर चाँदी और चाँदी के सिक्कों की निकासी एक-दम बन्द कर दी है और लेन-देन के लिए नोट निकालने का भी आयोजन किया है। इसके सिवा वहाँ एक केन्द्रीय बैंक स्थापित करने का भी प्रबन्ध हो रहा है, जिसे नोट निकालने का भी अधिकार प्राप्त होगा। वह बैंक राजनैतिक प्रभाव से स्वतंत्र रह कर अपना कार्य करेगा। परन्तु राष्ट्रीय सरकार की यह सब कार्रवाई जापान को पसन्द नहीं है। वह नहीं चाहता कि ब्रिटेन या और कोई राष्ट्र चीन की इस प्रकार मदद करे। पाश्चात्य राष्ट्रों की ऐसी सहायता को वह उनका हस्तक्षेप समझता है, क्योंकि वह चीन को अपने 'राजनैतिक प्रभाव' के अन्तर्गत मानता है। परन्तु कदाचित् चीन या पाश्चात्य राष्ट्रों को जापान का यह दावा मान्य नहीं है और चीन के सौभाग्य या दुर्भाग्य से ब्रिटेन उसकी आर्थिक अवस्था का सुधार करने में विशेष यत्नवान् दिखाई दे रहा है। इसमें सन्देह नहीं है कि यदि चीन की आर्थिक अवस्था राह पर आ जायगी तो उसको बाहर भी साख बढ़ जायगी और उसे राष्ट्रोद्धार के भिन्न भिन्न कार्यों के लिए आवश्यक ऋण भी मिल सकेगा। परन्तु यह सब होने कैसे पावेगा? राष्ट्रीय सरकार की उन्नति के मार्ग में बाधाओं का अभाव नहीं है। अभी उस दिन शंघाई में जापान का एक अधिकारी मार डाला गया है, जिससे नाराज़ होकर जापान ने अपना एक जंगी जहाज़ शंघाई भेजकर राष्ट्रीय सरकार से उस घटना के सम्बन्ध में जवाब तलब किया है। इसके सिवा उसकी यह शिकायत एक ज़माने से बनी हुई है कि चीन में जापान के विरुद्ध बराबर आन्दोलन होता रहता है। यही कारण है उसने अभी हाल में ब्रिटेन के चीन को अन्तर्राष्ट्रीय ऋण देने के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया है। यही नहीं, उत्तरी चीन के पाँच प्रान्तों का एक अलग संघ बना देने का उसने एक सफल षड्यंत्र रच डाला है। प्रबल जापान के ऐसे मनोभाव के रहते चीन की राष्ट्रीय सरकार अपने पैरों खड़ी होने में कहाँ तक सफल-मनोरथ होगी, इस सम्बन्ध में उतनी दृढ़ता से अभी कुछ कहा नहीं जा सकता है। तथापि इस सिलसिले में वहाँ की सरकार जो प्रयत्न कर रही है उसके लिए वह प्रशंसा के योग्य है।

ग्रेट-ब्रिटेन का नया चुनाव

ग्रेट-ब्रिटेन का नया चुनाव हो गया और उसकी पिछली राष्ट्रीय सरकार की फिर जीत हुई। इस जीत का मतलब यह है कि अनुदारदल के नेता मिस्टर बाल्डविन की शासन-प्रणाली की विजय हुई या यही बात इस तरह भी कह सकते हैं कि वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति के समय ब्रिटेन की जनता ने मिस्टर बाल्डविन के ही कन्धों पर साम्राज्य की हितरक्षा का भार रखना सुरक्षित

समझा। इसमें सन्देह नहीं है कि राष्ट्रीय सरकार को पिछली बार की तरह बहुमत नहीं प्राप्त हुआ, साथ ही उसके अनन्य समर्थक प्रसिद्ध मज़दूर-नेता तथा भूतपूर्व प्रधान मंत्री मिस्टर राम्से मैक्डानल्ड इस बार बुरी तरह चुनाव में हार गये, तथापि मिस्टर बाल्डविन के दल की पूरी जीत रही और इस चुनाव में उनके वैदेशिक मंत्री सर सैमुअल होर तो बहुत ही अधिक वोटों से जीते। इससे जान पड़ता है कि ब्रिटेन का लोकमत बाल्डविन की नीति का समर्थक है। बाल्डविन की सरकार ने इटली और अबीसीनिया के मामले में राष्ट्र-संघ को जो महत्त्व प्रदान किया है तथा योरप के राष्ट्रों की, विशेषकर जर्मनी की, सैनिक तैयारी को देखकर आत्मरक्षा के विचार से वह जो अपनी सामरिक तैयारी करना चाहता है उसका इस चुनाव से समर्थन ही हुआ है। राष्ट्र का इस तरह बल पाकर ब्रिटेन भविष्य में इटली और अबीसीनिया के मामले में अधिक दृढ़ता दिखावेगा और इस बीच में जर्मनी ने नौ-सेना-सम्बन्धी पिछले समझौते की अवहेलना करके अपना नौ-बल पहले की अपेक्षा दूने के लगभग कर लिया है उसकी भी बाल्डविन की सरकार उपेक्षा नहीं कर सकेगी। निस्सन्देह योरप की राजनैतिक स्थिति इस समय बहुत अधिक बिगड़ गई है। ऐसी दशा में निःशस्त्रीकरण और विश्वशांति के पचड़े में पड़कर ब्रिटेन अपने हाथों अपने पैर में कुल्हाड़ी मार लेने की भूल कदापि नहीं करेगा। ब्रिटेन की राष्ट्रीय सरकार राष्ट्र-संघ का पाया मज़बूत बनाये रखने में दृढ़ता तो दिखावेगी ही, साथ ही साम्राज्य की रक्षा के विचार से वह अपना सामरिक बल अप-टु-डेट ले आने की समुचित व्यवस्था भी करेगी। इसमें सन्देह नहीं है कि ब्रिटेन की इस दृढ़ नीति का योरप की वर्तमान अवस्था पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा और आश्चर्य नहीं कि उस दशा में कोई ऐसा उपाय भी हाथ लग जाय जिससे योरप कुछ समय के लिए एक बार फिर सँभल जाय और वह नाशकारी महायुद्ध के मार्ग से भी विमुख हो जाय। इससे अधिक आनन्ददायक बात संसार की शान्ति के लिए और क्या हो सकती है?

ईराक़ के भारतीय

महायुद्ध के समय ईराक़ में जाकर अनेक भारतीय बस गये थे। तब से वे वहाँ रह कर शान्तिपूर्वक तरह तरह के उद्योग-धन्धों में लगे रहे हैं। परन्तु कहा जाता है, अब वहाँ की सरकार भारतीयों को वहाँ रहने का हुक्म नहीं दे रही है। अभी हाल में उसने कुछ भारतीयों को निकल जाने का आदेश भी दे दिया है। ईराक़ की वर्तमान सरकार की स्थापना प्रकारान्तर से भारतीय सेनाओं के रक्त बहाने पर ही हुई है। नहीं तो अरबों के उस भूभाग पर तो तुर्कों की ही सत्ता स्थापित थी। परन्तु वहाँ की अरब-सरकार, जान पड़ता है, यह बात भुला देना चाहती है और जिस ब्रिटिश सरकार की बदौलत आज उसे यह स्वतन्त्रता का युग नसीब हुआ है उसी के शान्त प्रजाजनों को वह अपने यहाँ रहने नहीं देना चाहती। प्रसन्नता की बात है, भारत-सरकार का ध्यान ईराक़ के भारतीयों की इस परिस्थिति की ओर आकृष्ट किया गया है, और इस सम्बन्ध में वह समुचित कार्रवाई कर रही है। देखना है कि भारतीय ईराक़ में रहने पाते हैं या उपनिवेशों के प्रवासी भारतीय जैसा ही उनके भी साथ व्यवहार होता है।

फ़िलीपाइन-द्वीप की स्वाधीनता

संयुक्त-राज्य के राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने फ़िलीपाइन-द्वीपों को १५ नवम्बर से स्वतन्त्र घोषित कर दिया है और वहाँ के नव-निर्वाचित राष्ट्रपति एम० एल० क्वेज़न ने स्वाधीन फ़िलीपाइन का शासन-भार अपने ऊपर ले लिया है। इस प्रकार इन द्वीपों के निवासियों की स्वाधीनता की माँग आख़िर में पूरी हो गई। जब से वहाँ के शासन की बागडोर स्पेन के हाथ से निकलकर अमरीकावालों के हाथ में आई है तभी से वहाँ के निवासी अपनी स्वाधीनता के लिए लड़ते आये हैं। अन्त में अमरीकावालों को उन्हें बाध्य होकर स्वाधीन कर देना पड़ा और यदि वहाँ के निवासी अगले १० वर्षों में अपनी शासन करने की क्षमता का सम्यक् परिचय प्रदान करेंगे तो १० वर्ष के बाद अमरीका की सेना भी वहाँ से बुला ली जायगी और फ़िलीपाइन पूर्णरूप से एशिया का एक स्वाधीन-राज्य हो

जायगा। इस व्यवस्था के लिए फ़िलीपाइन-निवासी तथा अमरीकावाले दोनों वास्तव में बधाई के पात्र हैं।

कांग्रेस की फूट

कहाँ होना यह चाहिए था कि देश की सबसे बड़ी राजनैतिक संस्था कांग्रेस एकमत होकर नये शासन-विधान के पक्ष या विरुद्ध में अपनी कोई स्पष्ट नीति घोषित करती और उसे कार्य में परिणत करने के लिए राष्ट्र का नेतृत्व करती, कहाँ संसार को यह बताया जा रहा है कि कांग्रेस के नेता और कार्यकर्ता इस समय केवल आपस में लड़-भिड़ रहे हैं। संयुक्त-प्रान्त के कांग्रेसियों में यह लड़ाई तो यहाँ तक बढ़ गई थी कि उसका लखनऊ में वार्षिक अधिवेशन तक होना खटाई में पड़ गया था। अभी तक इस आपसी लड़ाई के लिए बंगाल ही बदनाम था, परन्तु इस मामले में संयुक्त-प्रान्त बंगाल से भी आगे बढ़ गया है। इनके सिवा मध्य-प्रदेश का भी रंग-ढंग अच्छा नहीं दिखाई दे रहा है। और आश्चर्य तो यह है कि इस आपसी लड़ाई की छूत बढ़ती ही जा रही है। और यदि यही क्रम जारी रहा तो एक दिन कांग्रेस का सारा का सारा संगठन ध्वस्त हो जायगा। ऐसी दशा में आवश्यक यह है कि कांग्रेस के प्रधान प्रधान व्यक्ति अपनी निरपेक्ष मनोवृत्ति को अलग कर आगे आवें और कांग्रेस के इन सारे आपसी झगड़ों को दूर कर उसके ग्रस्त-व्यस्त संगठन को दृढ़ता प्रदान करें, अन्यथा गत २० वर्ष का सारा परिश्रम धूल में मिल जायगा और कांग्रेस देश के अन्य दलों की राजनैतिक संस्थाओं की श्रेणी में अन्तर्भुक्त हो जायगी, जिससे राष्ट्र का निस्सन्देह अधःपतन हो जायगा।

मौरावाँ का पुस्तकालय-सम्मेलन

मौरावाँ उन्नाव-ज़िले की देहात का एक बड़ा क़स्बा है। यह यहाँ के खत्री तालुक़दारों का केन्द्र भी है। ये लोग शिक्षा-प्रचार एवं लोक-सेवा के सदैव प्रेमी रहे हैं। परन्तु स्वर्गीय लाला केदारनाथ ने जब से यहाँ अँगरेज़ी का एक हाई-स्कूल, एक संस्कृत-पाठशाला तथा एक दातव्य औषधालय खोला है तब से यहाँ के शिक्षा-प्रचार एवं लोक-सेवा के कार्यों ने और भी अधिक व्यवस्थित रूप धारण कर लिया है। उनके उपर्युक्त आदर्श-कार्यों का यहाँ के उनके अन्य तालुक़दार बन्धुओं पर भी काफ़ी प्रभाव पड़ा है, जिसके फल-स्वरूप यहाँ अब कन्याओं की भी शिक्षा की व्यवस्था हो गई है तथा स्त्रियों की अँगरेज़ी ढंग की चिकित्सा का भी प्रबन्ध हो रहा है। अभी हाल में वहाँ उन्नाव-ज़िले का 'पुस्तकालय-सम्मेलन' हुआ था। इस सिलसिले में हमें भी वहाँ जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। हम मौरावाँ कोई २५ वर्ष बाद गये थे और वहाँ के अँगरेज़ी स्कूल के आस-पास कई एक छात्रावासों एवं अस्पताल की इमारतों को देखकर अवाक् हो गये। पहले जहाँ एक छोटा-सा अस्पताल, एक स्कूल और एक छात्रावास था, वहाँ आज अनेक भव्य इमारतों का एक बड़ा भारी समूह अस्तित्व में आ गया है। वास्तव में इन २५ वर्षों में मौरावाँ की बड़ी उन्नति हो गई है और अब वह इस बड़ी देहात का विद्यापीठ हो गया है। इस सबके लिए वहाँ के खत्री रईस सर्वथा प्रशंसा के पात्र हैं।

जिस पुस्तकालय-सम्मेलन के सिलसिले में हम मौरावाँ गये थे वह भी इन्हीं रईसों की उदारता का एक प्रसाद था। वहाँ का यह पुस्तकालय यद्यपि वहाँ के प्रसिद्ध वकील बाबू जयनारायण कपूर के गत १७ वर्ष के विशेष हिन्दी-प्रेम का फल है, तथापि उसकी वर्तमान सवर्द्धना में यहाँ के रईसों का भी पूरा हाथ रहा है। इस बार इसका वार्षिक अधिवेशन जिस धूमधाम से हुआ वह सर्वथा मौरावाँ के उक्त रईसों के अनुरूप ही हुआ। ऐसे सफल साहित्यिक समारोह प्रायः बड़े बड़े नगरों में ही देखने को मिलते हैं।

मौरावाँ का यह साहित्यिक समारोह दो दिन तक विशेष व्यवस्था के साथ होता रहा। पहले दिन पुस्तकालय-प्रदर्शिनी का उद्घाटन हुआ। इस अवसर पर स्वागत-भाषण स्वर्गीय लाला केदारनाथ के पुत्र राय बहादुर लाला प्रयागनारायण जी ने किया और सभापति डाक्टर वली मोहम्मद ने अपने सभापति के भाषण में साहित्य-प्रदर्शिनी का महत्त्व बताया। प्रदर्शिनी अपने ढंग की निराली थी। पुस्तकालय-सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य नक़शे, चार्ट तथा ग्राफ़ आदि विशेष सूझ-बूझ के साथ तैयार कर यहाँ रक्खे गये थे, जिनसे यह जान पड़ता था कि देश में तथा विदेशों में पुस्तकालयों के प्रचार तथा प्रसार का काम कहाँ कहाँ कैसा हो रहा है। जो हस्तलिखित पुस्तकें यहाँ प्रदर्शित की गई थीं उनमें कई एक विचित्र तथा अप्राप्य थीं। इसी दिन रात्रि में कविवर सनेही जी के सभापतित्व में कवि-सम्मेलन बड़ी सफलता के साथ सम्पन्न हुआ, जिसमें स्थानीय कवियों के सिवा कानपुर, लखनऊ आदि के कवियों ने भी भाग लिया था।

दूसरे दिन पंडित कृष्णबिहारी जी मिश्र की अध्यक्षता में साहित्य-परिषद् का अधिवेशन आरम्भ हुआ। स्वागताध्यक्ष कुँवर गुरुनारायण बी० ए० तालुक़दार ने अपने भाषण-द्वारा उपस्थित विद्वानों का स्वागत किया। इसके बाद राय बहादुर पंडित शुकदेवबिहारी मिश्र बी० ए० ने परिषद् का उद्घाटन किया। आपने अपने भाषण में हिन्दी-साहित्य-पुस्तकालय की सेवा का संक्षिप्त वर्णन करके हिन्दी-साहित्य की प्रगति का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया। इसके बाद परिषद् के सभापति पंडित कृष्णबिहारी मिश्र ने अपना भाषण पढ़ा, जो विद्वत्तापूर्ण ही नहीं, पर्याप्त रोचक भी था। कानपुर तथा लखनऊ के अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों ने इस परिषद् में भाग लिया। इस अवसर पर श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने 'साहित्य और जाति' पर एक अत्यन्त ही पाण्डित्यपूर्ण भाषण किया तथा अपनी दो कवितायें भी सुनाईं। भाषणों के पश्चात् कुछ प्रस्ताव स्वीकृत हुए, जिनमें 'अवध प्रान्तीय साहित्य-मण्डल' की स्थापना का प्रस्ताव मुख्य है। कार्यवाही २ बजे समाप्त हुई। इस बैठक में लखनऊ-विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर डाक्टर परांजपे, डाक्टर राधाकमल, डाक्टर राधाकुमुद, डाक्टर बी० एस० राम, डाक्टर ब्रजमोहन शर्मा, डाक्टर मजूमदार प्रभृति विद्वान् भी उपस्थित थे।

उक्त परिषद् के अधिवेशन के बाद तीसरे पहर उन्नाव-पुस्तकालय-सम्मेलन का अधिवेशन आरम्भ हुआ। स्वागताध्यक्ष श्रीयुत लाला हरीराम सेठ बी० ए०, एल-एल० बी० तालुक़दार थे। उन्होंने अपने भाषण में पुस्तकालयों की उपयोगिता और गाँवों में भ्रमणशील पुस्तकालयों की आवश्यकता बतलाई और बतलाया कि उन्नाव-ज़िले में ३४ पुस्तकालय हैं। परिषद् के मनोनीत सभापति लखनऊ-विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर डाक्टर परांजपे ने अपने विद्वत्तापूर्ण भाषण-द्वारा पुस्तकालयों की आवश्यकता, उपयोगिता और महत्त्व पर प्रकाश डाला। डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी, डाक्टर राधाकमल मुकर्जी, डाक्टर बी० एस० राम के भी भाषण हुए। इनके बाद उन्नाव-ज़िला-पुस्तकालय-संघ की स्थापना का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और सदस्यों की एक कार्य-समिति नियुक्त की गई। इस अधिवेशन में ज़िले के ग्रामीण पुस्तकालयों के प्रतिनिधि अच्छी संख्या में शामिल हुए थे।

अन्त में सायंकाल 'हिन्दी-साहित्य-पुस्तकालय' का १८ वाँ वार्षिकोत्सव लखनऊ-विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर डाक्टर परांजपे की अध्यक्षता में आरम्भ हुआ। प्रधान मंत्री बाबू जयनारायण कपूर ने रिपोर्ट पढ़कर सुनाई। तदुपरान्त कई पुरस्कार वितरित किये गये।

इस प्रकार मौरावाँ का यह साहित्यिक समारोह बड़ी धूमधाम तथा सफलता के साथ समाप्त हुआ और इसके इस रूप में समाप्त होने का सारा श्रेय पुस्तकालय के मंत्री श्रीयुत जयनारायण जी कपूर को है।

हिन्दी में प्रान्तीयता

जान पड़ता है, हिन्दी में भी प्रान्तीय भेद-भावों का अब ज़ोर बढ़ेगा। अभी तक हिन्दी का उर्दू से ही संघर्ष था और अब उसके लिए यह एक नई विपत्ति आ खड़ी हुई है। कुछ दिन हुए जब 'ब्रजमण्डल' नाम की संस्था की स्थापना हुई थी तभी यह आशंका हुई थी कि इसके अनुकरण पर आश्चर्य नहीं, कहीं और भी मंडल अस्तित्व में न आ जायँ और इस प्रकार हिन्दी के कार्यकर्ताओं की शक्ति संकुचित कार्यक्षेत्रों में बँट जाय। सो वह आशंका ठीक ही होती नहीं आ रही है, किन्तु उसके साथ एक और पुछल्ला लगाकर सामने आ रही है। उस दिन पटना में जो साहित्यिक समारोह हुआ था उस

सम्बन्ध में वहाँ के एक स्थानीय पत्र में बिहारी लेखकों के सम्बन्ध में जो प्रान्तीयतापरक चर्चा छिड़ी थी उस सिल-सिले में यह भी कहा गया था कि 'बिहार-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' का नाम केवल 'बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' रखना चाहिए। इधर हाल में मौरावाँ में 'अवध-मण्डल' की स्थापना की जा चुकी है। गुजरात में हिन्दी-प्रचार के लिए 'हिन्दुस्तानी-मण्डल' की स्थापना सरदार पटेल के आदेश से हो ही गई है। यह सब निःसन्देह हिन्दी की शुभ कामना को ही सामने रखकर हो रहा है, परन्तु यदि इन्होंने किसी कारण प्रान्तीय भावना का आश्रय दिया तो वह हिन्दी के लिए विघातक सिद्ध होगी। अतएव हिन्दी के महारथियों को चाहिए कि वे इन संस्थाओं की गति-विधि की ओर ध्यान दें, अन्यथा इनसे हिन्दी की हानि होने की सम्भावना है जैसा कि पटना के पिछले साहित्यिक समारोह-सम्बन्धी 'योगी' और 'अभ्युदय' के वाद-विवाद से प्रकट हो चुका है।

हरिजन-समस्या

हरिजनों के प्रमुख नेता डाक्टर अम्बेदकर ने यह घोषणा निकाली है कि हरिजनों को हिन्दूधर्म को छोड़कर दूसरा धर्म ग्रहण कर लेना चाहिए। यही नहीं, वे अपने दल-बल के साथ धर्म-परिवर्तन करने की तैयारी भी कर रहे हैं। डाक्टर अम्बेदकर यह साहसपूर्ण कार्य इसलिए कर रहे हैं कि उच्च जाति के हिन्दू हरिजनों को अछूत समझते हैं और उनके साथ समानता का व्यवहार नहीं करते।

इसमें सन्देह नहीं कि हरिजनों के साथ ऊँची जाति के हिन्दुओं का जो व्यवहार है वह सर्वथा निन्द्य है और इस बीसवीं सदी के युग में वह असहनीय भी है। परन्तु यह बात कि इसके लिए हरिजन हिन्दू-धर्म ही छोड़ देंगे, यदि वे सच्चे हिन्दू हैं तो उनके पौरुष का द्योतक नहीं है। हरिजनों के पास न तो अर्थ-बल है, न विद्या-बल है, परन्तु उनमें संख्या तथा मनुष्यता का पूरा बल है। फिर उनको ऊँची जाति के अनेक समर्थ लोगों की काफ़ी सहायता भी प्राप्त है। ऐसी दशा में वे यदि अपना संगठन करने को तैयार हो जायँ तो कुछ ही समय के भीतर अपने संघ-बल से उच्च वर्णवालों को अपने आगे झुटने टिकवा सकते हैं। परंतु खेद के साथ कहना पड़ता है, उनके नेताओं का ध्यान इस महत्त्व की बात की ओर नहीं जाता है, वे कष्ट-साध्य संगठन जैसे महत्त्व का कार्य करने को उद्यत नहीं दिखाई देते हैं, किन्तु वे अपने पददलित भाइयों को धर्म-परिवर्तन-द्वारा किसी दूसरे धर्म की अनुयायिनी जाति का आश्रय लेकर अपना अस्तित्व मिटाना चाहते हैं। हरिजनों के नेताओं को जानना चाहिए कि भारत उनका देश है और वे अपने देश में सभी क्षेत्रों में समान व्यवहार के अधिकारी हैं। परंतु अपनी अज्ञता और साधनहीनता के कारण वे अपने सारे नैसर्गिक अधिकार गँवा बैठे हैं; और यह सब उन्हें तभी प्राप्त हो सकेगा जब वे उसे प्राप्त करने एवं उसे अपने हाथ में रखने की क्षमता का अर्जन करने में समर्थ हो सकेंगे। परन्तु यह क्षमता उन्हें धर्म-परिवर्तन-द्वारा नहीं प्राप्त हो सकेगी। अपनी वर्तमान दीन-हीन अवस्था में वे जहाँ जायँगे, आज जैसे अछूत ही बने रहेंगे।

कुमारी अमला नन्दी

भारत की प्राचीन नृत्यकला में कुमारी अमला नन्दी ने बहुत थोड़े समय में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ली है। ये कलकत्ते के इकानमिक ज्वेलरी वर्क्स के अध्यक्ष श्रीयुत अक्षयकुमार नन्दी की पुत्री हैं। १९३१ के अप्रैल में नन्दी महोदय पेरिस के इन्टर्नेशनल कालोनियल एक्सपोज़ीशन में भारत के रत्नाभूषणों तथा ललितकला का प्रदर्शन करने के लिए योरप गये थे। पिता के साथ ही कुमारी नन्दी भी वहाँ गई थीं। पेरिस में इन्होंने फ़्रेंच पढ़ना आरम्भ किया और तीन मास में ही इतनी योग्यता प्राप्त कर ली कि फ़रासीसियों से ये धड़ल्ले से फ़्रेंच में बातचीत करने लगीं। कुमारी अमला नन्दी ने उक्त प्रदर्शिनी के मनोविनोद-विभाग में प्राचीन भारतीय नृत्यकला का प्रदर्शन किया। दर्शकों को इनका नृत्य बहुत ही पसन्द आया और उन लोगों ने इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। नृत्यकला के इस असाधारण प्रदर्शन की

योरपीय तथा भारतीय पत्रों ने भी काफ़ी प्रशंसा की। उस अवसर पर नृत्य-कलाविशेषज्ञ श्रीयुत उदयशंकर भी अपनी माता तथा भगिनी के साथ उपस्थित थे। ये अक्षय बाबू के मित्र हैं। अतएव कुमारी नन्दी ने इनके साथ भ्रमण करके जर्मनी, बेल्जियम, हालैंड, डेन्मार्क, नार्वे, स्वीडन, फ़िनलैंड, लिथुआनिया, पोलैंड, ज़ेकोस्लोवाकिया, आस्ट्रिया, हंगरी, इटली, स्विटज़लैंड तथा योरप के कई अन्य देशों में अपने नृत्यों का प्रदर्शन किया, साथ ही योरप के विभिन्न प्रकार के नृत्यों तथा गीतों की शैलियों का अध्ययन भी किया है, जिससे इन्हें बड़ा लाभ हुआ।



[कुमारी अमला नन्दी]

अमला नन्दी की अवस्था अभी कुल तेरह वर्ष की है और वे अपने पिता के साथ १० चौरंगी रोड, कलकत्ता, में रहती हैं। कुमारी अमला नन्दी ग्यारह वर्ष की अवस्था में अपने माता-पिता के साथ तीर्थ-यात्रा के सिलसिले में वृन्दावन में होली का नृत्य तथा दक्षिण में देवदासी-नृत्य देखकर इस कला की ओर आकर्षित हुई थीं। बाद को पेरिस की उक्त प्रदर्शिनी में तथा योरप के भिन्न भिन्न नगरों में उदयशंकर के साथ अपनी कला का प्रदर्शन करके अच्छी कीर्ति अर्जित की। एकमात्र जर्मनी के ही सौ से अधिक मुख्य नगरों में इनकी कला का प्रदर्शन हुआ था।

विदेशी पत्रों में कुमारी अमला की नृत्यप्रतिभा का समाचार पढ़कर रवीन्द्रनाथ ठाकुर महाशय ने कलकत्ते के सर्वप्रधान रङ्गमञ्च एम्पायर थियेटर हाल में स्वयं अपने अभिनय के साथ इनके नृत्य का प्रदर्शन किया। तभी से स्वदेश में भी अमला की नृत्यप्रतिभा की प्रसिद्धि हो गई। इनके नृत्य में भगवान् की आराधना का जो भाव उदित होता है उसे देखकर कितने ही भगवद्भक्त आँसुओं की धारा बहाते देखे गये हैं। इनके सभी नृत्य पूर्ण रूप से देशी भावों से ओत-प्रोत होते हैं तथा उनमें अनेक स्वयं अमला की कल्पना की उपज हैं।

कुमारी अमला की प्रतिभा केवल नृत्यकला तक ही परिमित नहीं है। बँगला के साहित्य-क्षेत्र में भी इन्होंने ख्याति प्राप्त की है। बँगला के भिन्न-भिन्न मासिक पत्रों में इनके लेख प्रकाशित होते रहते हैं। अमला के पिता श्रीयुत अक्षयकुमार नन्दी मातृमंदिर नामक एक मासिक पत्रिका गत सात वर्ष से निकाल रहे हैं। शिक्षा के सम्बन्ध में अमला ने अपने पिता की एक सुयोग्य पुत्री के रूप में परिचय दिया है।

जिन व्यक्तियों ने भारत से बाहर भारत के गौरव की घोषणा की है, कुमारी अमला उनमें एक हैं। इनका एक बड़ा चित्र 'सरस्वती' के पिछले अंक में भी हम प्रकाशित कर चुके हैं।

स्वर्गीय प्रोफ़ेसर सिलवेन लेवी

फ़्रांस के प्रसिद्ध प्राच्य-विद्याविद् प्रोफ़ेसर सिलवेन लेवी का स्वर्गवास हो गया। वे भारतीय संस्कृति के विशेषज्ञ थे। उन्होंने आजीवन भारतीय प्राचीन साहित्य का अध्ययन किया और उसके सम्बन्ध में सैकड़ों लेख लिखे। यही नहीं, उन्होंने कतिपय भारतीय विद्वानों को भारतीय संस्कृति का वैज्ञानिक ढंग से अनुशीलन करने का मार्ग बताया। उनके ऐसे ही गहन पाण्डित्य के लिए भारतीय विद्वान् उनका बड़ा आदर करते थे और इसी से सर्वभारतीय प्राच्य-सम्मेलन के दूसरे अधिवेशन का सभापति बनाकर उन्होंने उनका सम्मान किया था। कलकत्ता-विश्वविद्यालय ने उन्हें डाक्टर की पदवी

देकर उनको सम्मानित किया था। भारतीय नाट्यशास्त्र पर उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। उनका नैपाल का इतिहास भी प्रसिद्ध है। भारत और उसकी संस्कृति के प्रति उनका बहुत अधिक अनुराग था। प्रोफ़ेसर सिलवेन लेवी जाति के यहूदी थे और पेरिस में रहते थे। उनकी मृत्यु से भारतीय संस्कृति का एक ऐसा मर्मज्ञ विद्वान् सदा के लिए उठ गया है, जिसके अभाव की पूर्ति जल्दी नहीं होगी।

पुलिस की वार्षिक रिपोर्ट

सन् १९३४ के साल की प्रान्तीय पुलिस की रिपोर्ट हाल में प्रकाशित हुई है। १९३४ का साल पुलिस के लिए एक प्रकार से सन्तोषप्रद रहा। शान्ति क़ायम रखने तथा अपराधों के रोकने या उनका पता लगाने आदि अपने मुख्य काम करने की उसे पूरी सुविधा प्राप्त रही। क्योंकि रिपोर्ट के साल सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द रहा और कुल ८३ ही राजनैतिक मामले हुए जब कि १९३३ में उनकी संख्या ८७९ थी। अतएव १९३४ में वह राजनैतिक झमेलों से मुक्त रही। हाँ, उनके स्थान में साम्प्रदायिक दंगों में उसे अवश्य फँसना पड़ा। १९३४ में ऐसे ६० दंगे हुए थे जब कि १९३३ में कुल ९ दंगे हुए थे। रिपोर्ट के लेखक पुलिस के इन्स्पेक्टर जनरल मिस्टर एस० टी० हालिन्स ने लिखा है कि 'आज-कल देश में साम्प्रदायिक मनोमालिन्य बहुत बढ़ा-चढ़ा है। सन् १९०२ में जब मैं यहाँ के पुलिस-विभाग में नियुक्त हुआ था तब यह समस्या इतने उग्र रूप में नहीं थी।'

डकैतियों के सम्बन्ध में रिपोर्ट में लिखा है कि इस साल कुल ६७८ डकैतियाँ हुईं, और पिछले कई वर्षों की अपेक्षा यह संख्या कम है। इस सम्बन्ध में निरस्त्र ग्रामीणों की भी प्रशंसा की गई है जो सशस्त्र डाकुओं का मुक़ाबिला करने में अपने साहस का परिचय दिखलाने लगे हैं। इन्स्पेक्टर जनरल साहब ने लिखा है कि इस सम्बन्ध में ग्रामीणों को प्रोत्साहन भी दिया जा रहा है कि वे डाकुओं का डटकर मुक़ाबिला किया करें। परन्तु पुलिस-विभाग का यह प्रोत्साहन अधिक सार्थक होता यदि वह उन ज़िलों के कम से कम अपने विश्वास के ही आदमियों को, जहाँ डाके अधिक संख्या में पड़ते हैं, बन्दूक़ आदि रखने का भी अधिकार प्रदान कर देता। लाठियों से बन्दूक़धारी डाकुओं का सामना करना वास्तव में एक प्रकार का उपहासास्पद साहस माना जायगा। रिपोर्ट के साल सबसे अधिक डाके गोरखपुर (४३), मेरठ (४०), कानपुर (३९), इटावा (३७), अलीगढ़ (३१) और बस्ती (२८) में पड़े। कुल डाके ६७८ पड़े, जिनमें ३३२ डाकों में डाकू शस्त्रधारी थे। डाकों की यह समस्या वास्तव में विशेष रूप से ध्यान देने के योग्य है। पुलिस को इसे हल करने के लिए कोई कारगर योजना कार्य में परिणत करना चाहिए। प्रचलित पद्धति से वही होता रहेगा जो अब तक होता आया है।

स्वर्गीय श्रीयुत गोपाल कृष्ण देवधर

पूना की सर्वेन्ट आफ़ इंडिया सोसायटी के प्रधान श्रीयुत गोपाल कृष्ण देवधर का १७ नवम्बर को बम्बई में स्वर्गवास हो गया। आप इस सोसायटी के संस्थापकों में थे। सन् १९०४ में जिन देशभक्तों के दल को लेकर माननीय गोखले ने उक्त संस्था की स्थापना की थी उनमें एक आप भी थे। सन् १९२७ से आप उक्त संस्था के प्रधान पद पर आसीन रहे हैं। इधर डेढ़ महीने से आप लगातार रोगग्रस्त रहे। आपकी मृत्यु से देश का एक प्रमुख लोक-सेवक उठ गया है। आप उन लोक-नेताओं में रहे हैं जिनका एकमात्र व्रत लोक-सेवा में अहर्निश निरत रहना रहा है। आप सदा प्रसिद्धि से दूर रहे, परन्तु देशवासियों को दैवी विपत्ति से पीड़ित देखते ही आप उनकी सेवा करने को सबसे पहले पहुँचते थे। आपके प्रयत्न से सहयोग-समितियों का काफ़ी देशव्यापी प्रचार हुआ है। आपने सदा ऐसे ही रचनात्मक कार्यों में लगा रहना अपने जीवन का ध्येय बना लिया था। सभाओं के सभापति बनने या व्याख्यान झाड़ने का रोग आपको नहीं था। आपने लोक-सेवा का अपना एक मार्ग चुन लिया था और चुपचाप जीवन-पर्यन्त बराबर उसी पर चलते गये। ऐसे कर्तव्यनिष्ठ लोक-नेता के निधन से

वास्तव में भारत की भारी क्षति हुई है, जिसकी सहज में पूर्ति नहीं होगी।

बाल-विवाह की समस्या

सर्वभारतीय महिला-सभा के अन्तर्गत एक बाल-विवाह-विरोधिनी कमिटी है। इसकी मंत्री श्रीमती लक्ष्मी-मेनन ने हाल में एक बुलेटिन प्रकाशित की है। उसमें उन्होंने लिखा है कि बाल-विवाह की बुराई समाज से दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि पहले तत्सम्बन्धी आँकड़ों का अध्ययन किया जाय। उदाहरण-स्वरूप उन्होंने सन् १९३१ की मनुष्य-गणना के १५ वर्ष की उम्र के नीचे की विवाहित कन्याओं के आँकड़े दिये हैं, जो इस प्रकार हैं—

एक वर्ष की	८ फ़ी सदी
एक से २ वर्ष की	१·२ ,, ,,
दो से ३ ,,	२·० ,, ,,
३ से ४ ,,	४·२ ,, ,,
४ से ५ ,,	६·६ ,, ,,
५ से १० ,,	१९·९ ,, ,,
१० से १५ ,,	३८·१ ,, ,,

बाल-विधवाओं के आँकड़े इस प्रकार हैं—

१ वर्ष उम्र की	१,५१५
१ ,, से २ वर्ष की	१,७८५
२ ,, से ३ ,,	३,४८५
३ ,, से ४ ,,	९,०७६
४ ,, से ५ ,,	१५,०१९
५ ,, से १० ,,	१,०५,४८२
१० ,, से १५ ,,	१,३५,३३९

उन्होंने लिखा है कि सन् १९२१ की गणना के अनुसार एक वर्ष की उम्र की ९,०९९ कन्यायें विवाहिता थीं, परन्तु सन् १९३१ की गणना में इस उम्र की विवाहित कन्याओं की संख्या ४६,०८२ हो गई। इसी प्रकार सन् १९२१ में एक वर्ष की उम्र की बाल-विधवाओं की संख्या ७५९ थी, परन्तु १९३१ में उनकी संख्या १,५१५ हो गई।

इसके सिवा पैदा होनेवाले बच्चों की मृत्यु का लेखा देखिए। इनकी मृत्यु का वार्षिक औसत दो लाख है, अर्थात् प्रति घंटे २० बच्चे मरते हैं। इसी प्रकार हज़ार पीछे २४·५ बच्चे देनेवालियों की भी मृत्यु हो जाती है। यही नहीं, एक हज़ार नवजात शिशु पीछे १८१ मर जाते हैं और कहीं कहीं यह संख्या ४०० तक पहुँच जाती है। यह बाल-विवाह की कैसी विभीषिका है! ये इतने ही आँकड़े आँखें खोलने के लिए काफ़ी हैं। यह सब पूना के 'मरहट्टा' से लिया गया है।

इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी के दो नये डाक्टर

इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी में हाल में दो नये डाक्टरों की



[डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा]

वृद्धि हुई है। इनमें एक हिन्दी के सुपरिचित श्रीयुत धीरेन्द्र वर्मा हैं। आप यूनिवर्सिटी में हिन्दी-विभाग के

प्रधान हैं। आपने पेरिस की यूनीवर्सिटी से व्रजभाषा के सम्बन्ध में फ्रेंच-भाषा में अपना निबन्ध लिखकर डी० लिट० की डिगरी प्राप्त की है, जो सर्वथा आपके उपयुक्त है। आप भाषा-विज्ञान के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। आपने विदेश में हिन्दी-भाषा की उच्च डिगरी



[डाक्टर आर० एन० दुबे]

प्राप्त करके अपने साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी को भी गौरव प्रदान किया है। दूसरे सज्जन श्रीयुत आर० एन० दुबे हैं। आपने भी पेरिस की यूनीवर्सिटी से ही भूगोल में उक्त डिगरी प्राप्त की है। आप इलाहाबाद-यूनीवर्सिटी में भूगोल-विषय के लेक्चरर नियुक्त किये गये हैं। उपर्युक्त विषयों में डी० लिट० की डिगरियाँ प्राप्त करनेवाले यही प्रथम भारतीय हैं जो और भी महत्त्व की बात है। इस महत्त्वपूर्ण सफलता के लिए ये दोनों महानुभाव बधाई के पात्र हैं।

स्वर्गीय लाला रामनारायणलाल

लाला रामनारायणलाल इलाहाबाद के प्र[illegible] पुस्तक-व्यवसायी थे। आपने अपने अध्यवसाय [illegible] परिश्रम से लाखों की सम्पत्ति उपार्जित की। एक साध[illegible] हैसियत का साधन-रहित व्यक्ति क्या से क्या हो सकत[illegible] इसके आप एक आदर्श उदाहरण थे। आपके देहाव[illegible] से इलाहाबाद का एक पुरुषार्थी व्यक्ति उठ गया [illegible] हमारी आपके दुखित परिवार से हार्दिक सहानुभूति है [illegible]

सीमाप्रान्त का नया सर्क्यूलर

पश्चिमोत्तर-सीमाप्रान्त के शिक्षा-विभाग के मन्त्री[illegible] एक सर्क्यूलर निकाल कर वहाँ के सरकारी तथा सहा[illegible] प्राप्त कन्या-स्कूलों में हिन्दी और गुरुमुखी पढ़ाने का [illegible] कर दिया है, इससे उस प्रांत में बसनेवाले हिन्दुओं [illegible] सिक्खों की हक़तलफ़ी हुई है। फलतः पञ्जाब एवं [illegible] प्रांतों की साहित्यिक संस्थाओं ने सभायें करके उक्त सर[illegible] सर्क्यूलर का विरोध किया है। आश्चर्य है कि जब सर[illegible] मुसलमानों की सुविधा का ख़याल करके बिहार [illegible] मध्यप्रदेश आदि प्रान्तों में उर्दू की शिक्षा की व्य[illegible] करती जा रही है तब वह मुसलमान-प्रधान प्रान्तों के [illegible] ही अल्पसंख्यक हिन्दुओं आदि की भाषा-सम्बन्धी [illegible] सुविधाओं को दूर करने का उपक्रम क्यों कर[illegible] है। सीमाप्रांत के उक्त भाषा-सम्बन्धी सर्क्यूलर का [illegible] विरोध हिन्दुओं और सिक्खों की ओर से प्रारम्भ हुआ [illegible] वह उचित है और आशा है कि सीमाप्रांत [illegible] कार का ध्यान हिन्दू और सिक्खों की उचित माँग की [illegible] जायगा और वह उस सर्क्यूलर को वापस लेकर हिन्दू [illegible] और सिक्खों के साथ न्याय करेगी।

दीमक-भवन

हाटा, गोरखपुर, के ठाकुर शिरोमणिसिंह चौ[illegible] एम-एस० सी० ने दीमक-भवन का यह एक चित्र भेजा [illegible] उन्होंने इसके परिचय में लिखा है कि दीमकों [illegible] भवन अतीव ठोस और दृढ़ होते हैं। बाह्य सौन्दर्य [illegible] अतिरिक्त उनका भीतरी दृश्य तो देखते ही बनता [illegible] [illegible]मरे, कोठरियाँ आदि सभी कुछ होते हैं। ये [illegible] टीलेनुमा हैं। पर कुछ छत्राकार भी होते हैं। कुछ [illegible] ढालू और नाम-मात्र को चौड़े होते हैं; इनकी [illegible] सदा उत्तर-दक्षिण की दिशा में होती है। भवन-



[दीमक-भवन]

[illegible] यह विचित्र व्यवस्था दोपहर की कड़ी धूप से [illegible] रक्षा करती है। उनके भवन उनके कला-[illegible] चातुर्य के नमूने हैं। दीमकों के ये भवन [illegible] के इस अञ्चल में प्रायः पाये जाते हैं।

[स]रस्वती' के ३६ वें वर्ष की समाप्ति

[illegible] अङ्क से 'सरस्वती' का ३६वाँ वर्ष समाप्त होता [illegible] पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि [illegible] का यह वर्ष बहुत अच्छा रहा और जिस गति से 'सरस्वती' की उन्नति हुई है उसको देखते हुए हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि उसका भविष्य और भी अधिक उज्ज्वल है।

यह सच है कि 'सरस्वती' के निन्दकों की संख्या में कोई कमी नहीं हुई, पर हमें सन्तोष है कि इस वर्ष प्रकट रूप में 'सरस्वती' की निन्दा करने का उन्हें साहस नहीं हुआ। दो-तीन उदाहरण काफ़ी होंगे। नागरी-प्रचारिणी सभा को अपनी सभा की वार्षिक रिपोर्ट में इस बार गत वर्ष की भाँति 'सरस्वती' पर आक्षेप करने का साहस नहीं हुआ। उसे भय हुआ होगा कि इस वर्ष भी वह ऐसा करेगी तो जनता में उसकी स्थिति बहुत हास्यास्पद हो जायगी। यह बात हमको सभा के एक प्रतिष्ठित सदस्य ने ही बताई। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान मंत्री ने सम्मेलन की वार्षिक रिपोर्ट में 'सरस्वती' पर कुछ अनुचित आक्षेप किये थे, परन्तु जब उन्हें यह बताया गया कि उनका यह कार्य अनुचित है और बहुमत उनके विपरीत जा सकता है तब अपने उस आक्षेप पर चिप्पी चिपका देने में ही उन्होंने अपनी भलाई समझी। यहाँ हम सम्मेलन के उपसभापति श्रीमान् बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन को बिना धन्यवाद दिये नहीं रह सकते, क्योंकि 'सरस्वती' के प्रति प्रधान मंत्री के इस अन्याय की ओर जब श्रीमान् टंडन जी का ध्यान आकर्षित किया गया तब उन्होंने तुरन्त प्रधान मंत्री से कहा कि उन्हें वार्षिक विवरण में इस प्रकार व्यक्तिगत आक्षेप करना शोभा नहीं देता। वर्तमान युग में प्रगतिशील विचारों को प्रश्रय देना ही समाचार-पत्रों का सबसे बड़ा धर्म है और ऐसे विचारोत्तेजक लेखों को प्रकाशित करके 'सरस्वती' वही काम कर रही है जो वह गत ३५ वर्षों से करती आ रही है और जो उसे करना चाहिए। पण्डित वेंकटेश नारायण तिवारी जी के लेखों से तिलमिलाकर हिन्दी-साहित्य के कुछ मुल्लापंथी लोग तो इतना अधिक आगे बढ़ गये थे कि उन्होंने जैसा कि हमें दो-एक समाचार-पत्रों में पढ़ने को मिला, वायसराय तक के पास एक अर्ज़ी भेजी कि 'सरस्वती' का सरकार नियंत्रण करे और एक सभा में उन्होंने एकत्र होकर प्रस्ताव पास किया कि 'सरस्वती' का कोई

ग्राहक न बने। परन्तु जब उन्होंने अनुभव किया कि इस समय देश का वातावरण ही प्रगतिशील विचारों से ओत-प्रोत है और 'सरस्वती' उसी वातावरण का एक अङ्ग है और इस वातावरण में उनकी सुननेवाला कोई नहीं है तब वे स्वयं चुप हो गये। हमारे इन निन्दकों की निन्दा हमारे लिए प्रशंसा बन गई, क्योंकि हमने देखा कि उनकी निन्दा का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और देशव्यापी वर्तमान आर्थिक संकट के होते हुए भी हमारे ग्राहकों की संख्या ड्योढ़ी हो गई।

इस बढ़ती हुई ग्राहक-संख्या से, नये और पुराने ग्राहकों की प्रशंसात्मक चिट्ठियों से, प्रगतिशील समाचार-पत्रों की टिप्पणियों से हमने यह अनुभव किया कि 'सरस्वती' में नवीन परिवर्तन करके और उसमें प्रगतिशील विचारों को प्रश्रय देकर हम वही कर रहे हैं जो हमारा हमारे प्रेमी पाठकों और उदार ग्राहकों के प्रति कर्तव्य है। यहाँ इतना स्थान नहीं है कि हम उन सैकड़ों चिट्ठियों और समाचार-पत्रों की टिप्पणियों को उद्धृत करें जो 'सरस्वती' की प्रशंसा में लिखी गई हैं। हमारा ख़याल है, यहाँ एक उदाहरण काफ़ी होगा। सहयोगी 'वर्तमान' ने गत मास में 'सरस्वती' की प्रशंसा करते हुए लिखा था—"सुन्दर लेखों, सुन्दर छपाई, सचित्र एवं ठोस मैटर की दृष्टि से 'सरस्वती' ने जितनी अधिक उन्नति की है वह हिन्दुस्तान के पत्रों के लिए आदर्श की बात है। कई और पत्रों ने इसकी नक़ल करने की चेष्टा की है, पर वे असफल रहे।"

इस प्रकार पहले से भी अधिक आशा और उत्साह से हम सरस्वती का नवीन वर्ष आरम्भ करने जा रहे हैं। अगले वर्ष से हमें और भी श्रेष्ठ पुरुषों और विद्वानों का सहयोग प्राप्त होगा। यहाँ 'सरस्वती' के लेखकों के नाम गिनाने की आवश्यकता नहीं है। पाठक जानते हैं कि, इस समय 'सरस्वती' इतनी लोकप्रिय हो रही है कि पंडित जवाहरलाल नेहरू और भाई परमानन्द, जैसे भारत-विख्यात नेता उसे बराबर पढ़ते हैं और उसमें लिखते भी हैं। जनवरी के नववर्षाङ्क में हम मध्य-भारत के माननीय नेता सेठ गोविन्ददास का एक नाटक प्रकाशित कर रहे हैं। सेठ जी का लिखा हुआ हिन्दी सवाक चित्रपट 'धुँवाधार' बहुत-से पाठक देख चुके होंगे। हमारा विश्वास है कि सेठ जी बड़े ही सफल नाटककार सिद्ध होंगे और आगामी वर्ष हम उनके कई-एक नाटक पाठकों की भेंट करेंगे। इतिहास में मङ्गलाप्रसाद-पारितोषिक-विजेता प्रोफ़ेसर सत्यकेतु विद्यालंकार का नाम पाठक जानते ही होंगे। आगामी वर्ष से उनके भी विचारपूर्ण लेख पढ़ने का अवसर पाठकों को मिलेगा। डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल (हिन्दू-विश्वविद्यालय), पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र (जबलपुर), श्रीयुत चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार (लाहौर), कुँवर चाँदकरण शारदा (अजमेर), पंडित मथुराप्रसाद दीक्षित (बिहार) और हमारे वर्तमान राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्रप्रसाद और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्राण बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन आदि महानुभावों का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

इसके अतिरिक्त हम सरस्वती में बहुत-से नये और उपयोगी परिवर्तन भी करने जा रहे हैं, जिसका अनुभव पाठकों को नववर्षाङ्क देखने पर ही होगा। इसमें सन्देह नहीं कि 'सरस्वती' की वर्तमान उन्नति और उसके सम्बन्ध में हमारे भावी स्वप्नों का सारा श्रेय एकमात्र हमारे कृपालु ग्राहकों को ही है। इसलिए वर्ष की सुख-समाप्ति पर हम उन्हें बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि आगे भी हमें उनका सहयोग इसी प्रकार प्राप्त रहेगा।

Printed and published by K. Mittra at The Indian Press, Ltd., Allahabad.